

आधुनिक भारत के निर्माता

लाजपत राय

जीवन तथा कार्य

फिरोज चन्द

अनुवादक मोहिन्दर सिंह

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

भारत सरकार

प्रकाशन विभाग

मूल्य 50 रुपए ।

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 द्वारा प्रकाशित ।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मजिल) कनाट सकस, नई दिल्ली 110 001
- कामस हाउस, करीमभाई राड, बालाड पायर, बम्बई 400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 069
- एल० एल० आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास 600 002
- बिहार राज्य सहकारी बक बिल्डिंग अशोक राजपथ, पटना 800 004
- निकट गवनगेट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम 695 001
- 10 बी, स्टेशन रोड, सखनऊ-226 019
- राज्य पुरातत्वीय सग्रहालय बिल्डिंग पब्लिक गाड स, हैदराबाद 500 004

महाप्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय नासिक द्वारा मुद्रित ।

भूमिका

I

आपको अपने सस्मरणों का पुस्तक रूप देने के लिए कुछ समय अवश्य निकालना चाहिए”, यह सुझाव मैं अपने चीफ का बार-बार देता, विशेषकर उस समय, जब मैं उन्हें अपने अतीत के बारे में सोचते हुए और सस्मरण के भंडार में से कुछ न कुछ सुनाते हुए पाता। मैं सोचता हूँ कि अन्य लोग भी ऐसा ही अनुरोध करते रहेंगे। अन्य लोगों को क्या उत्तर मिलता होगा, यह मुझे मालूम नहीं। मेरे लिए तो उत्तर होता था—“भई, यह काम आप ही करना” या कुछ इसी प्रकार के शब्द निस्सदेह, कई बार (और अनेक बार बिना सुझाव दिए) कोई रोचक सस्मरण सुनाने के बाद, वह कह दिया करते—“मैं इसे अपने सस्मरणों में शामिल करूँगा।”

मैं पूरी गभीरता से सुझाव देता था। उनके उत्तर को मैं कभी गभीरता से नहीं लेता था—न ही उनके इकार को और न ही किसी अन्य उत्तर को। यदि मैं उनकी बात को गभीरतापूर्वक लेता, तो स्वाभाविक था कि मैं उन्हें मागदशन करने के लिए कहता। पूछता कि इसके लिए क्या करना है, सामग्री कहाँ से ढूँढनी है, इसे कैसे एकत्र करना है, कौन से साधन जुटाने हैं, किन लोगों से जानकारी या पत्र प्राप्त करने हैं आदि। और निस्सदेह, अपनी रचना के लिए सामग्री का मुख्य स्रोत उन्हें मानते हुए मैं बार-बार उन पर प्रश्न की बौछार करता—कई बार वह धीम भी खो बैठते—परन्तु यह सब मैंने नहीं किया। इस प्रकार की कोई बात मेरे मन में आई ही नहीं। उनके साधारण उत्तर को मैं केवल टाल देने का एक सरल तरीका ही मानता रहा।

एक दिन प्रमुख स्रोत से मागदशन मिलना बन्द हो गया। उनके उस सरल उत्तर को गभीरतापूर्वक लेना पड़ा। वह बात जो टालमटोल का एक तरीका दिखाई पड़ती थी, एक विधान अथवा आदेश का रूप लेती दिखाई पड़ी। इस तथ्य से अवगत होते हुए कि राजपत राय की

जीवनी एक महाकाव्य का विषय है, मैं अपनी सीमित योग्यता से भी पूरी तरह अवगत था। मैंने गक्षिप्त रूप में भी कभी किसी का जीवन चरित लिखने का प्रयास नहीं किया था। एक बात और जा मैं निरंतर महसूस करता था, वह यह कि जीवनी लिखना मेरे स्वभाव से अनुकूल नहीं। जीवन चरित्र से मेरा सबंध पाठक के रूप में तो समझ था, पर लेखक के रूप में नहीं।

इधर महाकाव्य का विषय मुझे पुवार रहा था। पुकार भी बनी हुई थी और हिचकिचाहट भी। क्योंकि मैं जा कुछ आसानी से कर सकता था, वह भी मैंने नहीं किया था अर्थात् अपनी यादा को धाढा बहुत लिखते रहना या भविष्य में उपयोग के लिए कोई रोजनामचा-सा लिखना, जिसमें जा कुछ महत्वपूर्ण लगे उसे दर्ज करत रहना आदि।

सी० एफ० एड्यूज से लालाजी को विशेष प्रेम था। युद्ध काल के निर्वासन से लौटने के बाद श्री एड्यूज लालाजी के बहुत निवट रहे थे और हमारे साप्ताहिक 'द पीपुल' में इसके आरम्भ काल से ही उनकी गहरी रचि रही थी और मेरी क्षमता का अनुमान लगा सकन का उन्हें पूरा अवसर मिला था। इस महाकाव्य के विषय के लिए मेरी योग्यता की जाच-परख करने के लिए वह बहुत उपयुक्त व्यक्ति थे। उन्होंने मेरा मागदर्शन करने और प्रत्यक्ष चरण पर मुझे सलाह-मशविरा देने तथा सहायता करने की पेशकश की। पाण्डुलिपि पढने तथा इसको किसी अच्छे से प्रकाशक को सौंपने का दायित्व भी उन्होंने लिया। इस कार्य को आरम्भ करने का श्रेय निश्चय ही उनका जाता है क्योंकि उनकी उदार पेशकश तथा आग्रह से ही यह कार्य शुरू हुआ। परन्तु, इसे शुरू करने से पूर्व प्रारम्भिक विचारविमर्श में इस बात पर महमति हो गई कि पाण्डुलिपि का अधिकांश भाग तैयार होने तक इस सबंध में ब्यौरेवार बातचीत स्थगित रखी जाए।

इस कार्य में बार-बार विलम्ब होने की कहानी शायद उबा देन वाली और निरर्थक लगे। ऐसी स्थिति में लेखक का सारा दोष अपन आप पर ले लेना चाहिए और निणय पाठक पर छोड देना चाहिए।

परन्तु देश के विभाजन की चर्चा करना जम्ही ह। इसलिए नहीं कि लेखक का उससे दोष के कुछ भाग से मुक्त किया जा सके बल्कि

भूमिका

इसका कारण है—पाठन का इस बात से अग्रगण्य कराना कि बटवारे के दौरान अमूल्य दस्तावेजों का एक बड़ा भाग सदा के लिए अप्राप्य हो गया, जिनमें स्वयं लालाजी के पत्र-व्यवहार की फाइलें तथा समाचारपत्रों आदि की कतरने भी शामिल थी। कई अन्य स्रोत जिनसे लाभ उठाया जाना था या तो अनुपयोगी हो गये या पहुँच से दूर हो गये। ऐसी असुविधाजनक स्थिति में यह कार्य—जो उखाड़े जाने के बाद फिर शुरू किया गया—पूरा करना पड़ा। इन परिस्थितियों में यह दैवी-विधान ही था कि प्रथम-पाण्डुलिपियाँ मैं, जो किसी-न किसी तरह बचा ली गईं, ऐसे बहुत से दस्तावेजों के व्यापक हवाले दूँ थे जो विभाजन के वज्रपात के पश्चात् उपलब्ध नहीं है।

लम्बी अवधि के इस कार्य के विभिन्न चरणों में मेरे परिवार के कई सदस्यों तथा मेरे कई मित्रों ने कई प्रकार से मेरी सहायता की। साहित्यिक पक्ष में मैं सबसे प्रथम और सर्वाधिक स्वर्गीय श्री आथर मूर का आभारी हूँ। लाला लाजपत राम के साथ उनका सम्पर्क उस समय हुआ, जब वह दोनों विधान सभा के सदस्य थे। उनके साथ मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क दिल्ली में उस समय हुआ, जब लाहौर देश का भाग नहीं रहा था। वह 'द स्टेट्समैन' के सम्पादक के पद से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। हमने पत्रकारिता का एक संयुक्त प्रयास शुरू करने की योजना तैयार की, जिसमें हमें आपसी सहयोग करना था। सहयोग की यह योजना तो सफल न हो सकी, परन्तु इसके कारण हमारे बीच परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हो गए। उन्होंने पाण्डुलिपि ध्यान से पढ़ी। ऐसा महसूस हुआ जैसे सी० एफ० एड्रियूज से मुझे जो आशा थी, वही अब मुझे मिल रही थी। एड्रियूज की तरह वह केवल साहित्यिक मुद्दों में ही रुचि नहीं रखते थे, वे इसका प्रकाशन भी करवाना चाहते थे। उन्होंने एक प्रमुख दैनिक समाचारपत्र के सम्पादक के पास इस पाण्डुलिपि की जोरदार सिफारिश की और इसे सिलसिलेवार प्रकाशित करने का सुझाव दिया। मैंने इस प्रकार की सहायता की आशा उनसे नहीं की थी और उन्होंने मुझे इस बात की जानकारी भी नहीं दी कि वह इस सब में क्या कर रहे हैं। मुझे इस बात का ज्ञान केवल तब हुआ जब वह इंग्लैंड चले गए। परिणाम यह हुआ कि इस पाण्डु-

लिपि का काफी बड़ा भाग एक ही समय पर तीन प्रमुख अंग्रेजी दैनिक समाचारपत्रों में प्रकाशित होने लगा और इसके साथ ही हिंदी, बंगला, मराठी, गुजराती, तेलुगु तथा उडिया के एक एक प्रमुख दैनिक समाचार पत्र में भी पाण्डुलिपि प्रकाशित होने लगी। यह श्रृंखला वारह से भी अधिक किस्तों में चली। इस प्रकार साजपत राय लेखमाला उस समय का एक प्रमुख राष्ट्रीय प्रकाशन बन गई। इतने बड़े पैमाने पर प्रकाशन की योजना मेरे मित्र स्वर्गीय श्री के० ईश्वर दत्त के प्रयासों का परिणाम थी, वह उन दिनों 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' में थे।

मुझे पंजाब विश्वविद्यालय के तत्कालीन रजिस्ट्रार स्वर्गीय प्रा० मदन गापाल सिंह की चर्चा अवश्य करनी चाहिए। वे कालिज के दिनों में मेरे अध्यापक थे तथा अपने इस छात्र में उन्होंने स्नेहपूर्वक रुचि बनाए रखी थी। उन्हें उस विषय में गहरी रुचि भी थी, जिस पर मैं काय कर रहा था। उन्होंने प्रथम पाण्डुलिपि के आरम्भिक अध्यायों का पढ़कर अपने मूल्यवान् सुझाव भी दिए। पर वह उस काय को पूरा न कर पाए क्योंकि 1947 के खून खराबे में उनकी हत्या कर दी गई।

'सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स सासायटी' के मित्रों ने स्वाभाविक ही इस काय में गहरी रुचि दिखाई। स्वर्गीय श्री मोहन लाल ने अनुरोध किया कि मैं अन्य काम छोड़कर यह जीवनी लिखने का काय पूरा करूँ और अन्य मित्रों की भी यही राय थी। मुझे इस बात का दुख है कि इस काय के पूरे होने में विलम्ब के कारण एक प्रिय मित्र का मुझ पर विश्वास कुछ कम हुआ। पर वह मेरे प्रति इतने कृपालु थे कि उन्होंने मुझसे स्पष्ट तौर पर ऐसा कुछ नहीं कहा।

II

जो मैंने स्वयं देखा केवल उसे अंकित भर कर देना या उम्र व्यक्तित्व का, जिसके साथ निवृत्त सम्पत्तियों का अवसर मुझे मिला, रेखाचित्र सा तैयार करना, सम्भवतः आमाम था परन्तु मुझमें इससे कहीं अधिक की आशा थी गई थी। मैंने तो केवल अन्तिम आठ वष देखे थे और इस अवधि में भी, सही अर्थों में, मेरी निजी जानकारी केवल उन दिनों

तब ही सीमित थी जिन दिनों वह लाहौर में हमारे साथ थे। प्रारम्भिक विकास काल और मेरे उनके सपनों में आने से पूर्व के सावजनिक जीवन के तीन दशकों से सम्बद्ध सामग्री तीन महाद्वीपों में बिखरी पड़ी थी। उसका संग्रह करने के लिए लगन, प्रतिभा और साधना की आवश्यकता थी और इसी कारण आरम्भ में हिचकिचाहट हुई। पर इस दिशा में उत्साहजनक बात यह थी कि लालाजी को शुरु से ही लिखते रहने की आदत थी, जो सदा बनी रही। मैंने उनके साथ सम्पर्क के दिनों में भी कोई डायरी या विवरण नहीं रखा था कि लालाजी ने क्या कहा या क्या किया पर 1925 के मध्य से लेकर अन्त तक 'द पीपुल' की फाइला से बहुत सहायता मिली। आरम्भिक काल के बारे में ऐसे सुलभ दस्तावेज मिलना आसान नहीं था, परन्तु जो कुछ भी उपलब्ध था—कुछ प्रकाशित कुछ अप्रकाशित—उससे काफी सामग्री प्राप्त हो सकती थी। यहाँ तक कि किसी व्यापक संगठन के न होते हुए भी मैं बिना कुछ खोए उनसे काफी लाभ प्राप्त कर सकता था।

क्षमायाचना के साथ मैं अपनी स्मृति पर अवित्त चित्र की आवश्यक रूपरेखा का कुछ पकितपान में वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा। घटनाओं का ब्योरा समय बीतने के साथ पूरी तरह याद नहीं रहता, अर्थात् मूर्ति सदा ही स्पष्ट रहनी है। मेरा वर्णन इस मूर्ति का ऐसा सिम्बल पाठक तक पहुँचा मकान में सफल हो पाता है या नहीं, यह अलग बात है। मैं अपनी वर्णन शैली द्वारा ऐसा प्रेरित कर पाने की क्षमता या तकनीकी श्रेष्ठता का दावा नहीं करता, मैं तो भूमिका में रेखाचित्र देन की कोशिश कर रहा हूँ।

बीस के दशक के उन आठ वर्षों की आरंभ दृष्टिपात करने से मेरे मन में सदा ही इस बात के प्रति आश्चर्य होता है कि उस समय मेरे मन में उस विशाल दूरी का जरा सा भी भान नहीं था, जो एक कालिज के सामान्य छात्र (जिसने कभी भी ऐसी कोई सफलता प्राप्त नहीं की हो, जो कालिज जीवन में प्राप्त की जा सकती है) और एक यशस्वी व्यक्ति के बीच हाती है। विशेष तौर पर जब वह यशस्वी व्यक्ति ऐसा हो जो अपनी स्वाभाविक प्रतिभा तथा परिश्रम से ही नहीं, बल्कि बलिदान और लगन से ध्याति की चरमसीमा पर

पहुच चुका है और कई दशका तक लाग उस महान नेता तथा गायन के रूप में सम्मान देते रहे हैं। पहली मुलाकात विश्व ही उम्र सामान्य युवक के लिए विस्मयकारी रही होगी। यदि यह सम्पन्न लम्बे समय के लिए बना रहे तो विस्मय की यह स्थिति शायद समाप्त हो जाए परन्तु जो बीच का अन्तर है वह ता बना रहेगा और श्रद्धा तथा सम्मान के रूप में प्रकट होगा।

हा, सदाभ विल्कुल ऐसा ही था जिस प्रकार ऊपर कल्पना की गई है। फिर भी पहली श्रेष्ठ तथा उसके बाद आठ वर्ष का सम्पन्न एक अलग ही प्रकार का अनुभव था। पहली मुलाकात के समय यशस्वी व्यक्ति ने युवक का भद्र मुस्कान के साथ स्वागत किया, चाहे ऐसी दृष्टि में जो किसी भी अनजान व्यक्ति की जाच-परख के लिए इस्तमाल की जाती है, परन्तु आँखों में एक विशेष चमक बनी हुई थी। जिस पल जो कोई उनके आँखों में सामने आता, उसी पल उसके मन से विस्मय और भय दूर हो जाता। जैसे ही उनसे बात करता वह तुरन्त सहज भाव में आ जाता और स्वयं को अजनबी विल्कुल महसूस नहीं करता, बल्कि विल्कुल परिचित सा महसूस करता और बिना किसी भी प्रकार की भूमिका बाधे उनसे मतलब की बात की जा सकती थी। यशस्वी व्यक्ति न केवल ऐसा था जिस पर कोई प्रभाव डलता था या जो आपके मन में जबरदस्ती सम्मान पदा करे, बल्कि उसकी एक विशेषता तो यह थी कि उस व्यक्तित्व में कुछ ऐसा प्रभाव अवश्य था, जिससे समानता का वातावरण उत्पन्न था। उसके लिए 'प्रजातन्त्र' केवल एक राजनीतिक सिद्धान्त ही नहीं था बल्कि जीवन की प्रत्येक सास थी।

यदि पहली श्रेष्ठ की यह तस्वीर है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि उसके पश्चात् आठ वर्ष का सहयोग तो इसकी पूर्ण परिणति ही थी। उनकी बुद्धिमत्ता तथा महानता का परिचय निरन्तर मिलता रहा पर इससे समानता के मतुलन में कोई गडबडी नहीं हुई और न ही स्वतन्त्र तथा स्पष्ट विचारविमर्श पर इसका कोई प्रभाव पड़ा। वह अपनी बात का अन्तिम नहीं मानते थे। वह असहमति को केवल महा ही नहीं करते थे या इसकी आना हा नहीं देते थे बल्कि ऐसा लगता था कि वह इसे प्रोत्साहन भी देते थे। जब कभी कोई

नया सहयोगी स्पष्टतया गन्ती पर होना ता भी वह इस बात का प्राथमिकता दत्त कि तब स या अपन अनुभव मे वह स्वय ही अपनी गन्ती समझ न और उगवी गलतफहमी दूर हा जाए न कि वह निणय को केवल इसी लिए स्वीकार कर ले, कयाकि विमी वरिष्ठ सहयोगी ने ऐसा कहा है । वह बहुत स्पष्टवादी थे और तोड मरोडकर बातें नही कहने थे । जो युवक दूरर दशक मे गठित 'सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स सोसायटी' के आजीवन सदस्य के रूप म उाने सम्पन्न म आ गए थे, वे भी इस बात के आदी हो गए थे कि उनसे अमहमत हान या उनकी आलाचना करन का अथ किसी प्रकार मे उनका आदर ररना नही माना जाता था और न ही यह समझा जाता था कि ऐसा कोई उद्देश्य रहा हागा ।

हमार सबध और हमार कनव्य तथा अधिकारो की औपचारिक रूप से एक सक्षिप्त पापन मे व्याख्या कर दी गई थी जिसके अनुसार सस्थापक आजीवन निदेशक नियुक्त किया गया था और जो युवक सदस्य बनते थे, उनके अधीन प्रशिक्षण प्राप्त करत थे, हमारे सस्थापक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन मे पूणतःकालिक कायबता के जीवन की कल्पना का श्रेय गोखले को देत थे । गोखले द्वारा पुणे म स्थापित सम्या के नमून का महा काफी परिवतन के बाद अपनाया गया था । एक परिवतन, जा सासायटी के वतमान मदस्या के गले नही उतरता वह यह है कि सस्थापक स्वय इम सगठन का सदस्य नही था । आजकल सदस्य साधारण तौर पर यह अनुमान लगा लेते है कि सस्थापक इस सगठन का प्रथम सदस्य था और जब उहें यह बताया जाता है कि वह इसका सदस्य नही था, तो साधारणतया उहें विश्वास नही होता । वे सोचते हैं स्वय व्रत लिए बिना यह अन्य लोगो को कैसे निष्ठा के बधन मे बाध सका । क्या गोखले न स्वय अपने जीवन को समर्पित करने का प्रण नही लिया था ?

वास्तविकता यह है कि सालाजी व्रत तथा प्रण को वह महत्व नही देते थे, जो गोखले देत थे और उनकी दृष्टि मे इन चीजो का बहुत नगण्य स्थान था । जहा तक उनके अपने समपण का प्रश्न है वह कई वष पूव कर चुके थे । इस दृढ निश्चय की घोपणा उहाने लाहौर आय ममाज के मच से की थी । इम निश्चय के अनुसार

सावजनिक काय उनके लिए व्यावसायिक काय से पहले था और इस निश्चय को पूरी ईमानदारी के साथ लागू करने के बाद उन्हें जा आय होती थी, उसमें से अपने मामा-य घरलू खर्च पूरे करने के बाद शेष बचने वाली राशि वह सावजनिक कार्यों के लिए दे देते थे । इस प्रकार एक वय उन्होंने घोषणा की कि उनकी आय साठ हजार हुई है इसमें से कोई पचास हजार उन्होंने सस्था को द डाले । इस पद्धति पर वह जीवनपर्यन्त चलते रहे । इस घोषणा के कुछ ही समय बाद उन्होंने अपना व्यवसाय पूरी तरह छाड़ दिया और अपना सारा समय सावजनिक कार्यों में लगाने लगे । अब पुस्तक की रायल्टी अथवा समाचारपत्रों में लिखने के पारिव्यमिक की राशि और तस्मी तथा पजाब नेशनल बक के डायरेक्टर के रूप में प्राप्त होने वाले शुल्क आदि से जो धन मिलता था उसमें से साधारण खर्च पूरे करने के पश्चात् वह शेष रकम सोसायटी को दे देते ।

उनके प्रबधाधीन कुछ सावजनिक कोष भी थे, पर अपन व्यक्तिगत खर्च के लिए वह उससे कभी कुछ नहीं लेते थे, हालांकि वह इनमें से कुछ भी खर्च करने के लिए स्वतंत्र थे । शताब्दी के आरम्भ में किये गए निश्चय ने आगामी दशका में उनकी जीवन पद्धति को निश्चित कर दिया था । यह उनके जीवन का अग बन गया और ऐसा करने के लिए उन्होंने कोई व्रत आदि लेने की आवश्यकता नहीं समझी थी । अपने निश्चयों को लागू करने के लिए उन पर कोई बाहरी बंधन नहीं था । यह पूणरूप से उनका निजी मामला था ।

ऐसे व्यक्ति से समरण की माग कौन कर सकता था ? गाँवले ने बकन एजुवेशन सोसायटी' में प्रचारक की भावना के साथ काम किया था और बाद में इसी पद्धति को उन्होंने एक भिन्न तथा व्यापक क्षेत्र में लागू करने के लिए सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी' की स्थापना की । इस सोसायटी में उन्होंने फर्ग्युसन कालिज वाली अपनी पुरानी पद्धति जारी रखी । साजपत राम द्वारा स्थापित सोसायटी का नमूना ता गोखले की सामायणी जैसा ही था पर समरण की भावना उनकी अपनी ही थी । सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स सोसायटी' की स्थापना करत समय सोसायटी

को जो कुछ भी वह दे सकते थे उन्होंने उदारतापूर्वक दिया पर इसके बावजूद मैंने अपने जीवन निर्वाह के लिए वह कुछ न लेते थे। उन्होंने अपनी आजीविका अर्जित करना जारी रखा। इसकी व्यवस्था वह अपने सावजनिक बाय में विभी प्रकार की बाधा डाले बिना ही कर लेते थे। यदि उन्हें सक्षमी या पञ्जाब नेशनल बैंक से या जब वह विधायक बन गए तो विधान सभा से या समाचारपत्रों में लिखने से उन्हें अपने अति साधारण व्यय से अधिक धन मिल जाता, तो वह अतिरिक्त धन सासायटी को या गुलाबदेवी अस्पताल ट्रस्ट आदि जैसी किसी समाज कल्याण योजना को दे डालते थे।

सामान्य सासारिक इच्छाओं को वह बहुत पीछे छोड़ चुके थे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उन्होंने सत्कार से सन्यास ले लिया था। पर यह विरोधाभास ही है कि 'सन्यास' भी उनके लिए अभिशाप था। आय समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने, जिन्होंने अपनी युवावस्था से ही उन्होंने अपना गुरु मान लिया था, उन नव वेदातियों की जोरदार शब्दा में भस्मना की थी, जो सत्कार का केवल मिथ्या और भ्रम जाल ही मानते थे। स्वामीजी के अनुसार इन लोगों के उपदेशों के कारण ही हमारे समाज का भारी नतिक पतन हुआ। शंकराचार्य के बाद भारतीय दशन में 'संन्यास' का अर्थ सत्कार को मिथ्या समझना ही माना जाता था। उस समय भी जब लाजपत राय की इस दृष्टिकोण के सक्तीण विराध में रुचि नहीं रही थी, वह 'संन्यास' की चर्चा करने के बहुत विरुद्ध थे। वे समझते थे कि आधुनिक सदन में भारत के लक्ष्य की प्राप्ति में यह सबसे बड़ा बाधा है।

लाजपत राय की इसी प्रकार की एक और विशेषता की चर्चा भी यहाँ प्रासंगिक है, वह है पुनीतता के प्रति अरुचि। संभव है उन्होंने स्वायत्तरायण सासारिक प्रयत्नों तथा इच्छाओं का त्याग कर दिया हो—जिस प्रकार केवल सत ही कर सकते हैं—परन्तु उन्हें सतता से भय लगता था। मेरे विचार में इसका एक कारण यह था कि इससे प्रजा-तान्त्रिक दृष्टिकोण समाप्त हो जाता है जिसे उन्होंने अपने जीवन में पूणरूप से शामिल कर लिया था। सत लोग, सामान्य जन समूह

से अलग श्रेणी बढे थे, "दुष्ट या अपवित्र" लोग के ऊपर, जो इन महा धर्माधिमारिया के आगे नतमस्तक हान थे । एक बात और कि 'सतता' आम तौर पर 'मन्याग से सम्बद्ध मानी जाती थी, किसी दूसरे साथ से सम्बद्ध, जिसके कारण इन समाज की उपेक्षा की जाती थी । एक समय पर एक ही समाज—जसा कि धारा न उम समय बहा था, जब उसमे दूसरे समाज के बारे में पूछा गया था । वह किसी घब या धमसार का नहीं मानता था, भगवान का नाम कम ही लेता था और सभी प्रार्थना भी नहीं करता था । परन्तु उमन अपने अडाम पडाम के लागे स सभी ऐसा करने का नहीं बहा और न ही ऐसी आशा की । ऐसा चुम्बक जिममे अथाह आकर्षण शक्ति हो, फिर भी यह अजीब लगेगा कि वह सभी नहीं चाहता था कि मुझ्या उसके साथ चिपके । ऐसा दिखाई पडता था कि परिपक्वता के साथ उनके जीवन से धर्मसिद्धान्तवादी आय समाज दूर हट गया हो—चाहे इसका उनके जीवन में दृवसमपण तथा सावजनिक जीवा में नैतिक सबदनशीलता पैदा करने में योगदान अवश्य रहा हो ।

हम उनके जन्मदिन के बारे में कुछ ज्ञान न था, न ही उन्हें हमन श्रद्धाजलि अर्पित करने का कोई अय अवसर सोचा—और जब वह हमारे बीच न रहे तो हमसे किसी को भी उनके 'अवशेष' के बारे में प्यार न आया । वह केवल मानवीय स्तर की चीजों को ही पसंद करते थे । मानवीय दुखलता का अपना ही आकर्षण है जोश में आकर दी गई दलील निभ्रता का कोई दिखावा नहीं थी । ऐसी मानवीय खूबियों के कारण स्नह और बफादारी के बधना को एक विशेष आकर्षण तथा शक्ति मिलती थी । उनके तुनक मिजाज हान तथा मामूली बातों पर खफा हान के पीछे भी यही बात थी । अक्सर ऐसा हाता था कि गुस्सा या किसी बटु शब्द के कहे जाने के थोड़ी देर बाद बहुत अधिक् उदारता इसकी क्षतिपूर्ति कर देती थी ।

III

यह वृत्तान्त स्वाभाविक रूप से मेरी उनके वार्यों, विश्वासा, व्यवहार तथा विचारा की आंतरिक जानकारी के आधार पर है । इसलिए उनके साथ मेरे सम्बन्ध की सीमा के बारे में सकेत देना गलत नहीं

होगा। यह निकट सम्पर्क 'सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स' साम्राज्यी की स्थापना से आरम्भ हुआ और बहुत ही कम समय में यह सम्पर्क घनिष्ठता में बदल गया। इस प्रकार युवा संस्थापक सदस्या का यह छोटा-सा दान लाजपत राय के विश्वस्त सहायको का दल बन गया, जिन्हें जिम्मेदारी का काय सौंपा जा सकता था। इस प्रकार यह उनका अन्तरंग दल था। परन्तु, वह मुख्यालय में कभी-कभार ही आते। लगातार कई सप्ताह तक नहीं ठहरते थे। कोई व्यक्ति लगातार कई सप्ताह के लिए उनके साथ तभी रह सकता था, यदि वह उनके साथ यात्रा करे या उनके विधान सभा का सदस्य निर्वाचित हो जाने पर अधिवेशन के दौरान उनके साथ रहे। मुझे साप्ताहिक समाचार-पत्र के कार्य के कारण लाहौर में ही रहना पड़ता था। यह समाचार पत्र जुलाई 1925 में आरम्भ हुआ था और इससे पूर्व एक बार ही मुझे अठ्ठा अवसर मिला था। लालाजी की जेल से रिहाई के थोड़े समय पश्चात्, जब डाक्टरों ने उनके स्वास्थ्य के हित में उन्हें सागर-तट पर रहने की सलाह दी थी, मैं दिसम्बर 1923 में लालाजी के साथ कराची में रहा और वहीं से मैं 1924 के आरम्भिक महीना में लालाजी के साथ यात्रा पर चला गया।

एक अन्य अवसर पर, जब बेलगाव में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ (1924 का अन्त) मैं लालाजी के साथ रहा। यद्यपि यह अवसर दम्बी अवधि का नहीं था, परन्तु काफी महत्त्वपूर्ण था। उन दिनों मैं वहाँ 'बम्बई क्रानिकल' में प्रागिद के तौर पर काम करता था और वहीं से लालाजी के साथ हो लिया, पर बेलगाव आते जाते समय उनके साथ न था।

साप्ताहिक समाचारपत्र आरम्भ हो जाने के पश्चात् केवल 1927 के अन्तिम दिनों में एक ऐसा अवसर आया, जब लालाजी मुझे अपने साथ कलकत्ता ले गए ताकि 'अनहेपी इंडिया लेट को शीघ्रता से पूरा किया जा सके'। इन दो या तीन अवसरों के अतिरिक्त उनके साथ सीधा सम्पर्क केवल उन दिनों में ही सम्भव होता था, जब लालाजी थोड़ी-सी अवधि के लिए मुख्यालय में ठहरते थे (कभी-कभी पंजाब के नगरों की अल्पकालीन यात्राओं के दौरान भी) और कभी-कभी विधानसभा, अधिवेशन के लिए दिल्ली की सक्षिप्त यात्रा के दौरान। 'द पीपुल्स' लालाजी के साथ इधर-उधर घूमने से मुझे प्रभावशाली

ढग से राकता था, परन्तु इसी के कारण लालाजी के साथ निरन्तर और निश्चित रूप से लाभदायक सम्पर्क बना रहता था, क्योंकि वह वही भी जाए लेकिन नियमित रूप में समाचार पत्र के लिए लिखते रहते थे। इसका अर्थ था कि वह मुझे हर सप्ताह लिखते और जब भी मिलते सामयिक विषयो पर मेरे साथ अधिक गभीरता से विचार करते जो शायद किसी अर्थ अवसर पर आवश्यक न हो।

मैं उन विशेष अवसरों के बारे में, जिनकी चर्चा पहले की गई है, कुछ और विवरण देना चाहूंगा। इन विशेष अवसरों में से 1923 के अंत में शुरू होने वाला विशेष अवसर सबसे अधिक महत्वपूर्ण था, जो लगभग 3 महीनों का था। विकासकाल में शिक्षा के दृष्टिकोण से इसका मेरे लिए बहुत महत्व था और मैं अब महसूस करता हूँ कि यह मेरे इस वृत्त के लिए अमूल्य है। विशेषकर उम निर्णायक काल में लालाजी के साक्षात् सम्पर्क से सोचने के ढंग तथा कार्य प्रणाली की पृष्ठभूमि को अधिक भलिभाति समझ सका जो मैं किसी अर्थ ढंग से नहीं समझ सकता था। यह समय लेखा जोखा करना तथा नई दिशा देने का था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में, जो साम्प्रदायिक एकता स्थापित की गई थी वह दृढ़ तथा स्थिर साबित नहीं हुई। निस्संदेह, कुछ समय पूर्व लालाजी ने 'साम्प्रदायिक' संस्थाओं के बारे में, विशेषकर हिन्दुओं को सम्बोधित करते हुए बहुत बड़े शब्दों का प्रयोग किया था। अब उन्होंने देखा कि इस पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता थी। 'अछूता' के बारे में भी फिर से विचार करने की विशेष आवश्यकता थी। नई दिशा निर्धारित करने का अर्थ हिन्दू समस्याओं, जैसे अछूतों के भ्राम्यता के समाधान के समय हेतु हिन्दू मंच जरूरी था। दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में निपटने के लिए भी इसकी जरूरत थी। सिंध, बम्बई, महाराष्ट्र, बंगाल और उत्तर प्रदेश के राष्ट्रीय नेताओं के साथ अनौपचारिक सलाह मशखिरे और विचार विमर्श के पश्चात् हिन्दू महासभा की दिशा पुनः निर्धारित की गई। मेरे विचार में इस संस्था का यह बहुत ही अच्छा समय था। इस समय इस संस्था की नीतियां तथा कार्यप्रणाली की रूपरेखा मालवीयजी तथा राजपत राय ने तयार की और जिससे हिन्दू वर्ग को बहुत लाभ हुआ और इसका राष्ट्रीय हितों तथा प्रगतिशील राजनीतिक कार्यक्रमों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

लालाजी के साथ बम्बई यात्रा की एक याद उनके साथ मेरे सम्पर्क का अनूठा अनुभव था। उसकी भी संक्षेप में यहाँ चर्चा कर देनी चाहिए। जैसे ही हम सावरकर के घर से निवृत्त होकर अपने मेजबान के घर जाने के लिए कार में बैठे, लालाजी पूरी तरह अपने विचारा में डूबे हुए दिखाई पड़े और शीघ्र ही उन्होंने अपने आपसे बातें करनी शुरू कर दी। वह मेरे माथे बातें नहीं कर रहे थे और न ही हमारा कोई और साथी वहाँ था। ऐसा दिखाई पड़ता था कि उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं कि कोई और उनके साथ भी है और उन्होंने कई ऐसी बातें भी कीं, जिनके बारे में मैंने उनसे पहले कभी सुना भी नहीं था। यह स्वगत वचन कुछ इस प्रकार था — हमने ऐसा करके देखा यह भी किया वह भी किया कोई कोर-बसर बाकी नहीं छोड़ी अपनी ओर से पूरा यत्न किया फिर भी किसी भी तरह सफलता नहीं मिली? इन बातों में गहरी निराशा ही मुख्य थी, ऐसी निराशा जिसकी झलक मैंने उनकी बातों में पहले कभी भी नहीं देखी थी। इस स्वगत वचन में नेपाल की घटनाएँ भी शामिल थीं और अथ बातें भी जिनके साथ मैंने कभी उनका संबंध होने की कल्पना भी नहीं की थी। विनायक सावरकर के साथ भेंट ने उनमें ऐसी मन स्थिति पैदा कर दी थी, जो मैंने उनमें पहले कभी नहीं देखी थी और न ही बाद में कभी देखने में आई। मैं चुपचाप बैठा रहा। अपने आपसे की गई उनकी बातों के बारे में बाद में मैं कभी जानने का साहम नहीं कर पाया।

दिवास्वप्न में अपने आपसे की गई इन बातों से हमें एक ऐसी झलक दिखाई दे गई, जो चाहे अपूर्ण थी, परन्तु ऐसा पारस्विक दिवा गई, जो अपरिचित था और जिससे यह संकेत मिलता था कि इस बात की संभावना है जो कुछ हमें दिखाई दे रहा है, उससे बहुत अधिक छुपा हुआ है। बाद में जब मैंने उनकी आत्मकथा के कुछ खंड मरणोपरान्त प्रकाशन के उद्देश्य से पढ़े, तो उनमें कुछ संक्षिप्त तथा महत्वपूर्ण अथ दृष्टिगत हुए — कलकत्ता में निवेदिता के साथ उनकी बातचीत या गायकवाड के साथ उस समय हुआ वार्तालाप जब सभी अतिथि जा चुके थे और उस राजकुमार ने श्यामजी और लालाजी को जान बूझकर रोक लिया था या उनके पत्रों में मैंने उनके स्पष्ट भाषा की वक्ता में

दाखिल होने के बारे में पडा । यह एक उलटनपूर्ण प्रश्न था, जिसका उत्तर मुझे उनके अप्रकाशित कागजों में मिला, जिसमें उन्होंने गदर पार्टी के अपने मित्रों से बार-बार यह अनुरोध किए जाने की चर्चा की थी कि वह अपना कुछ धन दक्षिण अमरीका में एक बस्ती बसाने के लिए दें, जहां भारतीय देशभक्ता को आवश्यकता पड़ने पर आश्रय प्राप्त हो सके । स्पष्ट है, उन्होंने इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया था कि सम्भवतः उन्हें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े ।

मेरे लिए अजीब किस्म का आश्चर्य वैजवुड के उस पत्र में था, जिसमें उन्होंने लालाजी से यह जानना चाहा था कि क्या वह ब्रिटिश सरकार की ओर से पशिया जाने को तैयार हैं । निस्संदेह, यह नियुक्ति कार्यान्वित नहीं हो पाई । सम्भवतः वैजवुड ने उस अवसर पर सामन आने वाली बाधाओं के बारे में नहीं सोचा था । हमने लालाजी को ऐसा साधारण प्रस्ताव की कभी चर्चा करते नहीं सुना था— परन्तु मुझे तुरत पता आया कि उन्होंने ईरान की इस नियुक्ति के बारे में आगा खा द्वारा दिलचस्पी दिखाने की चर्चा की थी । स्पष्ट है कि लालाजी को इसकी कुछ आन्तरिक जानकारी थी— चाहे वह उस समय लन्दन में नहीं, बल्कि 'यूसाक' में ठहरे हुए थे । 'द ट्रिब्यून', लाहौर के सम्पादक कालीनाथ राय मेरे इस आश्चर्य पर बहुत हैरान हुए जब मैंने उनसे यह सुना कि सर जान मेनाड ने लालाजी से यह जानना चाहा था कि क्या वह मस्ती बनना पसन्द करेंगे । असहयोग के तौर पर बिधान मंडला का बहिष्कार करने का प्रस्ताव सबसे पहले लालाजी ने ही किया था और यह प्रस्ताव करते समय उन्होंने उन अधिकारियों के प्रति भावुकतापूर्ण धृणा व्यक्त की थी, जो पंजाब की यत्नता तथा अपमान के लिए जिम्मेदार थे । सम्भवतः, लालाजी पद स्वीकार नहीं कर सकते थे, परन्तु इस समय मेरा तात्पर्य यह है कि निस्संदेह हमारा उनके साथ संपर्क इसके थोड़ी देर बाद ही हुआ, उन्होंने इस संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा ।

IV

बेलगाव में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर मुझे लालाजी के साथ बातचीत करने का एकमात्र अवसर मिला । नई दिशा निर्धारण का

काम जारी था, जिसके आरम्भ होने की चर्चा मैंने पहले की है। एक घटना और मेरी स्मृति में अभी भी स्पष्ट है, वह है श्रीनिवास अय्यंगार के साथ विचार विनिमय, जिसका उन्होंने उत्तर भी दिया था। “हा, मैं आपके विचारों से सहमत हूँ, परन्तु इस मामले में मैं अपने आपको साधजनिक रूप से वचनबद्ध नहीं कर सकता। मुझे एक वप के लिए अवेला छोड़ दो, मैं आपके साथ हूँ।” गुप्त रूप से इस प्रकार सहमत होना श्रीनिवास अय्यंगार के लिए विशेष बात बिल्कुल नहीं थी चाहे इसका विशेष कारण कुछ भी हो जिसकी वजह से उन्होंने बुद्धिमानी से इस प्रकार इन्कार किया—फिर भी उन्हें आशा थी कि उन्हें (कांग्रेस का) अध्यक्ष बना दिया जाएगा।

लालाजी इस प्रकार का व्यवहार करने वाले लोगों के साथ झगड़ते नहीं थे, निस्संदेह इससे उनके मन में राजनीति के प्रति अप्रसन्नता बढ़ती थी।

पुनरावलोकन से पता चलता है कि बेलगाव की घटनाओं से पंडित मोतीलाल और लालाजी के दृष्टिकोण तथा तौर-तरीकों में भिन्नता आ गई थी। कांग्रेस अधिवेशन ने गांधीजी को प्रसन्न करने के लिए कर्ताई करने वाले मतदाता स्वीकार कर लिए। लालाजी ने इन मतदाताओं से सम्बद्ध प्रस्ताव का विरोध तथा उपहास किया। उनके विचार में यह प्रस्ताव गलत था और स्वराज पार्टी के नेताओं द्वारा इसका समयन कुटिलतापूर्ण था। उनका यह विरोध राजनीतिक कारणों से भी अधिक नैतिक कारणों से था। उनकी यह नैतिक संवेदनशीलता थी जिसकी वजह से वह इस प्रकार की कुटिलतापूर्ण अवसरवादिता को स्वीकार न कर सके और उनके अलग अलग होने का यही बड़ा कारण था। कुछ ही महीनों में गांधीजी को बेलगाव की अपनी सफलता के खोखलेपन का पता चल गया और उन्होंने स्वयं ही यह ‘मतदान’ व्यवस्था समाप्त कर दी।

V

“अलगाव” के दौर की झलक मैंने बेलगाव में देख ली थी। जब इस बात की पुष्टि आने वाले महीनों में उस समय हो गई जब लाहौर

मे नहर के किनार कई बार टहलते हुए मैंने उन्हें अपन आपमे टेंगार के "एकला चलो" नारे को गुनगुनात हुए सुना ।

"एकला चला" विशेषकर उस घटना के बाद स्पष्ट हा गया, जिस मैंने उबेदुल्ला घटना का नाम दिया है (यह "साम्प्रदायिकतावादी ?" अध्याय मे वर्णित है) । मैंन इस घटना का कुछ ब्यौरवार वणन किया है, क्योंकि व्यक्तिगत सम्बन्ध के कारण मुझे इस बात की पूरा जानकारी है कि वावुल म एक शाखा को सम्बद्ध करने मे बहुत-सी अनियमितताओं के प्रति नताआ की लापरवाही से उन पर कितना प्रभाव पडा था, जब उन्होने इसकी ओर नताआ का ध्यान दिलाया था । तः उहाने उनकी बात अनसुनी और व्यग्य करन के सिवाय कुछ नही किया । राजपत राम शताब्दी के अवसर पर लिखे एक लेख मे, जो 'द हिंदु स्टान टाइम्स' म प्रकाशित हुआ था, मैंने उन बातों का स्मरण किया, जिनकी लालाजी ने कई बार चर्चा की थी । उहाने अपने आपको उस मामले मे, जिसे यह छोटी-सी साम्प्रदायिक उलझन समझत थे, उलझने दिया, क्योंकि उह इसमे "पूषकतावादी" भाग का रूप दिखाई देता था । उबेदुल्ला घटना न उनकी गलतफहमिया म बहुत वृद्धि कर दी । जहा तक मेरी जानकारी है, कांग्रेस के किसी अन्य नेता को उस समय 'पूषकता' का पूवज्ञान नही था । लालाजी ने इसका केवल अनुमान ही नही लगाया था, बल्कि लिंकन की भांति निश्चय कर लिया था कि इसका हर मूल्य पर विरोध करना है ।

म यहा यह बता देना चाहता हू कि मैंन उबेदुल्ला से घेट की थी (तब उनकी उम्र 70 वर्ष के करीब थी और वह इससे भी अधिक बूढे दिखाई पडते थे) । मैं उनसे 1940 मे लाहौर मे मिला और काफी लम्बा वार्तालाप चला, जिसम उन्होने "ब्रिटिश एजेंट द्वाारा लालाजी के मन मे पैदा की गई 'गलतफहमियो' के बारे मे स्पष्ट कर देना चाहा — परन्तु मुझे इस बात की कोई जानकारी न मिल सकी कि वावुल म शाखा स्थापित करने के लिए कांग्रेस की रुचि का कारण क्या हो सकता था ।

VI

फिर भी, एकता में उनकी बेहद रुचि थी। वह आखिर तक इस प्रयत्न में रहे कि किसी प्रकार सहमति से समझौता हो जाए। जिन्ना के साथ समय-समय पर उनकी बातचीत अतः तक जारी रही, जो इस बात का काफी बड़ा प्रमाण है। अतीत की ओर दृष्टिपात करने पर मैं अक्सर महसूस करता हूँ कि लालाजी के दिना के बाद कांग्रेस के नेताओं का जिन्ना के प्रति व्यवहार बिल्कुल ही बदल गया, जिसके कारण कई ऐसी कठिनाइयाँ पैदा हो गईं, जिन्हें टाला जा सकता था। 1940 में लीग के लाहौर अधिवेशन के कुछ समय बाद जहाँ पहली बार पाकिस्तान का सूत्रपात हुआ और जब जिन्ना साहब लाहौर आए थे, मैंने उनसे मुलाकात की और उनसे काफी सम्बन्धी बातचीत की। मैंने उन्हें याद दिलाया कि लाजपत राय और वह कितनी सद्भावना और अनौपचारिकता से विभिन्न विषयों पर विचारविनिमय किया करते थे। यदि उनका समाधान न हो सके, तो भी सच्चे मन से इस सिलसिले में प्रयत्न तो जारी रखें। जिन्ना ने उत्तर दिया—“मैं तो वही हूँ जैसा तुम पहले देखा करते थे, पर आज मेरे साथ और ही तरह का व्यवहार किया जाता है। गुलाम हुसैन हिदायतुल्ला ने जीवन भर कुछ नहीं किया, आज देशभक्त माना जाता है और मुझे देशद्रोही समझा जाता है।”

यह अर्थ लेना तो शायद अजीब लगे कि पाकिस्तान का जन्म जिन्ना के प्रति कांग्रेस के नेताओं के बदले हुए व्यवहार के कारण हुआ। परन्तु यह परिवर्तन दुर्भाग्यपूर्ण भी था और इसने जरूर कुछ न कुछ योगदान किया। चाहे कुछ भी हो, एकता के प्रति लाजपत राय के गम्भीर प्रयत्नों का अनुमान लगाने के लिए इस बात की चर्चा करना उचित ही है।

इस मुलाकात के कुछ समय बाद जिन्ना की यह शिकायत मेरे मन में कुछ अधिग्रहण बैठ गई। मैंने राजाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें इस बातचीत का संक्षिप्त सार और जिन्ना के व्यवहार के बारे में अपने प्रभाव की चर्चा की। मैंने राजाजी का चुनाव जान-बूझकर किया था क्योंकि मैं समझता था कि यह राजनीतिक व्यवहार में प्रतिसवेदी हैं, फिर भी मुझे इस बात से निराशा ही हुई कि इस मामले में उन्होंने बिल्कुल

अलग व्यवहार किया। उन्होंने कहा कि जिज्ञा के साथ उस समय तक कोई बात नहीं की जाएगी, जब तक उनके अपराध का प्रायश्चित्त नहीं हो जाता। उनका दोष यह था कि उन्होंने आज़ाद का (तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष) कांग्रेस का आडम्बर कहा था।

VII

वास्तव में मेरे जैसे अनुभवहीन पत्रकार के लिए मेरे प्रमुख उस मा के समान थे, जो बच्चे को पालने के लिए अपना दूध पिलाती है। मेरे व्यावसायिक विकास और प्रगति के लिए आवश्यकतानुसार उही से मुझे सब कुछ मिलता। यदि मैं और अधिक स्पष्ट शब्दों में कहूँ कि मुझे उनसे ठोस "शिक्षा" क्या मिली, तो मुझे मुश्किल से ही कोई बात याद आती है, सिवाय दो शब्दों के संक्षिप्त फामूले के—“लिखो, फाड़ो”, और यही फामूला वह बार-बार दोहराया करते थे और कई बार हमसे जोड़ दिया करते थे—“मैं यही किया करता था।” धैर्य और बड़ी आलोचना दो शब्दों के इस पाठ में संकृजिया की यह जोड़ी अन्य क्षेत्रों में भी लाभकारी थी—दस बहुमुखी हथियार का सर्वत्र प्रयोग हो सकता है। अन्य मामलों में “लिखो और फाड़ो” को परीक्षण प्रणाली कहा जा सकता है। वह सभी राजनीतिक कार्यक्रमों की इसी कसौटी पर परखा करते थे—“सिद्धांतवाद” के आकषण, तब शक्ति या किसी के व्यक्तित्व के आकषण से प्रभावित नहीं होते थे। इसी संक्षेप नुस्खे से उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में असाधारण स्थान प्राप्त कर लिया। सी० एफ० एड्यूज ऐसी बातों के बहुत ही माय्य पारखी थे और उन्होंने अपने मित्र लाजपत राय के काम को ध्यान से देखा था। उन्होंने लाजपत राय से गंभीरता से आप्रह किया कि वह अपनी अथ सभी गतिविधिया छोड़ दें और केवल अपना ध्यान भारत का एक ऐसा दैनिक पत्र देने के लिए केंद्रित करें, जो भारतीय जनमत के लिए वैसा ही करे जसा सी० पी० स्वाट के ‘माचेस्टर गार्डियन’ ने ब्रिटिश जनमत के लिए किया। उनके विचार में ऐसा करने वह अथ गतिविधिया से हटने की क्षतिपूर्ति कर पाएंगे। एड्यूज महसूस करते थे कि लाजपत राय इस तरह के दैनिक समाचार पत्र को ईमानदारी से अपने विचारों के अनुसार बना सकते हैं। उन्हें भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र

मे उनसे योग्य और कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता था । भारतीय पत्रकारों तथा उनके कार्य को जीवन भर देखने के अपने अनुभव के कारण मुझे एड्यूज के इस अनुमान की पुष्टि करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है ।

निस्संदेह, गरीबी के कारण वह विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त का लाभ नहीं ले पाए थे, फिर भी शायद वह सबसे अधिक ज्ञानी पत्रकार थे और इस व्यवसाय में न होते हुए भी वह पत्रकारिता के लिए (जैसा एड्यूज ने महसूस किया) उच्चकोटि के व्यक्ति थे । पत्रकारिता में उन्होंने यह सफलता सवप्रयोजन युक्ति से प्राप्त की, जिसे उन्होंने अपनी गति-विधियों के प्रमुख क्षेत्र से प्राप्त किया था । मैं तो यह कहूंगा कि 'प्रगमा' राजपत राय के कार्यों का एक शब्द में सारांश है, जिसके अनुसार वह 'राजनीतिक' क्षेत्र में सोच विचार करते थे । अनिवाय बातें, महत्वपूर्ण मूल्य तथा उद्देश्य नहीं बदलते थे, परन्तु अनुभवों की रोशनी में कार्यक्रम तथा नीतियों का बराबर मूल्यांकन होता रहता था । "इसे हम गतिशील व्यावहारिकता" का नाम दे सकते हैं । वह किसी विशेष विचार-धारा से सम्बद्ध नहीं थे, पर मोटे तौर पर निस्संदेह वह समाजवादी थे । वास्तव में उन्होंने उस समय ही काफी व्यापक समाजवादी कार्यक्रम की घोषणा कर दी थी जब वह अभी अमरीका में ही थे । यह अपील उस भाषण का प्रमुख भाग थी, जो उन्होंने वहाँ भारतीय छात्र वग के सम्मुख दिया और जिसका विषय था "युवा भारत का आह्वान" । वह घोषणा करते कि "हम समाजवादी झण्डा नहीं फहराते" और इसके पश्चात् वह कोई एक दजन मागों की चर्चा बहुत ही यथायथा ढंग से करते जिनमें समाजवादी उद्देश्या की चर्चा होती । प्रारम्भिक घोषणा का केवल एक ही उद्देश्य हो सकता है लोगो के समय से पूर्व ही परे न हटाया जाए, क्योंकि बुद्धिमान लोगो में भी बहुत से ऐसे थे जो रूस की श्रान्ति के थोड़े समय बाद समाजवाद से डरे हुए थे और भारत में तो राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक संगठन अभी बने ही नहीं थे ।

प्रमुख के साथ मेरा विशेष सम्पर्क होने और लोक सेवा सभ में प्रथम तथा उसका सस्यापक (अथवा उत्तराधिकारी) होने के कारण जो स्थान साप्ताहिक पत्र में मुझे प्राप्त था उसने लिए उचित यही था कि

दोना सस्याना का मैं पूण विवरण दूँ, परन्तु लाक सेवा सभ के हाल ही के इस निणय के कारण कि मघ का इतिहास लिखा जाए, मुझे इस विवरण को सक्षिप्त करना पड रहा ह ।

VIII

अपने प्रमुख के साथ मेरे सहयोग से मुझे प्रारम्भ मे यह ज्ञात हुआ कि असहयोग आदान-नकारिया के साथ असहयोग के तौर पर कालिज छोडना और विदेशी सरकार के विरुद्ध प्रचार मे कूद पडना ही काफी नहीं । असल मे स्वतंत्रता का अथ था कि कई मोर्चों पर सघर्ष किया जाए और इसके लिए बहुत सी बौद्धिक सामग्री और व्यापक अध्ययन की आवश्यकता थी । कठिन परिश्रम मे उन्होंने कई शैक्षणिक या व्यावसायिक महत्वाकांक्षा प्राप्त नहीं की, बल्कि लोगो की समस्याओं का समझने के लिए योग्यता प्राप्त की । बुद्धि को अच्छी तरह तीक्ष्ण रखा जाना चाहिए, अपनी मौज के अनुसार काय करने के लिए नहीं, बल्कि असल उद्देश्य के लिए, मन की उचित सेवा के लिए । यद्यपि अध्ययन और बौद्धिक योग्यता आवश्यक थे, परन्तु वह निस्वाभ लगन तथा अन्य अनिवाय बात का स्थान नहीं ले सकते थे, जो चरित्र के लिए मूलभूत थे और जिनका सम्बन्ध मन से है ।

भारत की समस्याओं के बारे मे मैं साजपत राय के त्रिवेणी सगम के दृष्टिकोण के साथ सहमत हूँ— जिसमे गंगा की मुख्य धारा हो, जो स्वाधीनता प्रदान करती है, इसके साथ सामाजिक तथा आर्थिक न्याय भी यमुना का सगम अवश्य होना चाहिए और इसे आधुनिक मदर्म मे ढाला जाना चाहिए । अदृश्य सरस्वती की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए । भाँडे सरस्वती सागर की ओर बहती हुई दिखाई नहीं देती, इसकी शक्ति भूमिगत है या वह सक्त है कि यह भूमि का भाग है । भारत की पुरानी परम्परा, जो जीवन शक्ति के समान जारी है इस बात मे इन्कार करती है कि उसकी समस्याओं का समाधान बनी बनाई आधुनिक पाठ्यपुस्तक मे या सैद्धान्तिकवाद मे मिल सकता है । आधुनिक ग्रामाजिव तथा आर्थिक दृश्य का ज्ञान आवश्यक था परन्तु भारत के पुरातन इतिहास का आधार और भारत के सागा के तौर-तरीका तथा

मनोविज्ञान के साथ सीधे सम्पर्क की जानकारी प्रथम आवश्यकता थी । लाजपत राय के प्रारम्भिक आर्यसमाजी दौर में सरस्वती पवित्र नदी है, जब तक स्वाधीनता प्रदान करने वाली गंगा का दिव्य जल मुख्य धारा के रूप में नहीं आ जाता । लाजपत राय की कथा का उनके जीवन की त्रिवेणी के रूप में उचित ढंग से अध्ययन किया जा सकता है, उनके मिलने और उनका त्रिवेणी सगम होने में । निस्सन्देह, इस अध्ययन में सरस्वती को कभी-कभार गायब हो जाने तथा कभी-कभार दिखाई पड़ने को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता ।

IX

‘अन्तिम जिनके लिए प्रथम बना’ का अर्थ यह नहीं है कि भारत के स्वाधीनता संग्राम को लाजपत राय के जीवन काल में ही सफलता मिली । इसकी चर्चा तो उनके अपने व्यवसाय की सफलता के बारे में है । उन्होंने सांसारिक लोगों की सामान्य इच्छाओं का परित्याग कर दिया था और इसी प्रकार सभी अन्य सांसारिक इच्छाओं को भी त्याग दिया था । अपने आपको पूर्णतया उस काय के लिए समर्पित कर दिया था, जिसे उन्होंने अपना लिया था । युद्ध के अग्रिम मोर्चे पर घायल होना और भारत के हित में बलिदान देने वाले कल्प में लोग द्वारा याद किया जाना ही उनकी प्रमुख आकांक्षा थी । उनका जो अर्थ हुआ, उससे उनकी मनोकामना पूर्ण हो गई ।

और उपमहार का वह मुवा शहीद ?

मुझे उन्हें उस समय से देखने का अवसर मिला, जब वह कालिज छात्र थे और उनके कायकाल के अन्तिम दिनों में भी निकट से देखने का काफी अवसर मिला । उनकी पार्टी के कार्यक्रम की गुप्त योजना में तो मैं भागीदार नहीं हो सका, परन्तु यह जानने के लिए कि वह किस मिट्टी के बने हुए थे या उन पर कौन-कौन से प्रभाव पड़े, इन बातों में जाने की आवश्यकता नहीं और न ही उनकी राजनीतिक विचारधारा तथा दृष्टिकोण को समझने के लिए इसकी जरूरत है ।

उपसहार में चित्रित भगत सिंह का रूप केवल घटनाओं से ही नहीं बनाया गया, बल्कि इसमें वहीं अधिभूत यह उनकी सतक और उत्कृष्ट की उपज है, जो इस ढंग से व्यक्त हुई। उन घटनाओं के बाद उनके साथ मेरा सम्पर्क समाप्त नहीं हुआ, क्योंकि 'पंड्यत्र नेस' में सफाई (प्रतिवाद) के लिए बनाई गई समिति के सचिव के तौर पर अदालत में हुई सारी लम्बी कायवाही के दौरान मुझे भगत सिंह तथा उनके साथियों के साथ निकट सम्पर्क रखना पड़ा था। और जब अधिकारियाँ ने उनकी गिरफ्तारी के लिए इनाम रख दिया था और पहचान से बचने के लिए उहाने दाढ़ी और केश मुडवाकर पगड़ी के स्थान पर फ्लैट हैट पहन लिया था, दिल्ली में एक समाचारपत्र के कार्यालय के बाहर अचानक मेरी उनसे मुलाकात हो गई थी। अतः दो डेढ़ मास की अवधि में—जो लाठियाँ बरसाएँ जान और उत्तर में रिवाल्वर की गोलीयाँ चलाएँ जाने के बीच में थी—मैंने भगत सिंह को काफी देख लिया था और भारत के युवकों को सम्बोधित करते हुए दिया गया असती देवी का चुनौतीपूर्ण वक्तव्य का शक्तिशाली प्रभाव, जिसकी भरतवाक्य में चर्चा है कोई बाह्यतापूर्ण अनुमान नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अवलोकन है।

फिरोज चन्द

विषय-सूची

10561
21.3.90
वेष्ट

1 बीज तथा भूमि	1
2 विकास किशोरावस्था के सघष	12
3 कालिज प्रभाव तथा मित्रताए	16
4 उर्दू वनाम हिन्दी एक उद्देश्य का आकषण	19
5 ब्रह्म समाजियो तथा आयों के बीच	23
6 आय प्राचीन अगूरी	26
7 आय समाज मे प्रारम्भिक प्रशिक्षण	33
8 नगरेतर वकील के रूप मे हरियाणा के कस्बा मे	39
9 छोटे जीनियस	45
10 मैजिनी—उनके पहले गुर	55
11 पुरातन नगर मे नया उफान	61
12 आय समाज मे विच्छेद	68
13 लाहौर म काग्रेस अधिवेशन	76
14 सामूहिक चेतना के लिए जीवन-चरित	79
15 मोम-से कोमल इस्पात-से कठोर	86
16 उनतिशील वकालत का त्याग	93
17 हरकिशन लाल	98
18 'द पजावी'	105
19 बम्बई काग्रेस अधिवेशन	108
20 गाखले के साथ इग्लड म	111
21 नया उत्साह	116
22 लाल, बाल, पाल	119

	पृष्ठ
23 पजाब म विद्राह	126
24 उडा लिया गया	131
25 'गदर' वाली मनोविक्षिप्ति	135
26 बन्द गाडी—अज्ञात गन्तव्य	155
27 माण्डले	164
28 जान मौजों की अग्नि-परीक्षा	181
29 निर्वासन से वापस	188

निवेष्टो बहती रही

30 निर्वासन का परिणाम	201
31 सूरत का विच्छेद	205
32 सूरत का परिणाम	220
33 अकाल	225
34 फिर इंग्लड में	230
35 लाहौर अधिवेशन म भाग न लेना	240
36 देश में प्रतिक्रिया विदेश म प्रचार	248

निर्वासित दूत

37 नीरम लक्ष्य को लाभप्रद बनाया	261
38 साथी प्रतिनिधिया के साथ मतभेद	272
39 बधन मुक्त छोर पर	278
40 जापान यात्रा का कार्यक्रम	281
41 युद्ध के दौरान भारतीय क्रांतिकारी	291
42 निर्वासित राजदूत	300
43 'यंग इंडिया'	316
44 पाकिया	330

45 भारतीय स्थिति के बारे में चिन्तन	341
अन्तिम जिनके लिए प्रथम बना था	
46 कांग्रेस अध्यक्ष	349
47 असहयोग	363
48. हास्य स्पर्ध गीत नाटिका	374
49 बारदोली का निणय	394
50 शिष्टता से निश्चेष्ट	399
51 कैद	407
52 महान व्यक्ति पुनरावलोकन	418
53 सोलन में स्वास्थ्य लाभ	427
54 एक हकीम द्वारा रोग-मुक्ति	432
55 बगाल की सधि	436
56 छुआछूत के विरुद्ध सघष	449
57 एक बार फिर यूरोप को	452
58 स्वराज पार्टी में	460
59 श्रमिक प्रतिनिधि के रूप में जेनेवा में	480
60 सम्प्रदायवादी ?	491
61 सेवा के लिए सेवा	518
62 कहानी एक मुकाबले और पराजय की	532
63 केंद्रीय विधान सभा में	550
64 अन्तिम	556
65 भरतवाक्य	572
सामग्री स्रोत	576

1. बीज तथा भूमि

त्रिमस के समारोह के प्रारम्भ से केवल दस दिन पहले अकस्मात ही ब्रिटिश सेनाध्यक्ष सर ह्यूगफ ने 11 दिसम्बर की शाम के विशाल नृत्य कार्यक्रम को रद्द कर दिया, हालांकि यह कार्यक्रम काफी समय पहले से निश्चित था और इसकी काफी प्रतीक्षा थी ।

1845 की शरद ऋतु में स्थिति काफी गम्भीर दिखाई देती थी । विशाल नृत्य का कार्यक्रम इसलिए रद्द करना पड़ा था, क्योंकि अम्बाला स्थित ब्रिटिश अधिकारियों को सूचना मिली थी कि सिख सेना ने पूव की ओर बूच कर दिया है और सतलुज का पार कर लिया है । सतलुज नदी के बारे में ब्रिटिश शासकों ने सदा ही जार दिया कि वह रणजीत सिंह के राज्य और उनके राज्य के बीच सीमा रहे । अम्बाला और सतलुज के पश्चिम में अब भी रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी शासन चला रहे थे, हालांकि लुधियाना और फिरोजपुर में ब्रिटिश सेना की अलग अलग बाहरी चौकियां थी ।

घोना पसा का बहुत कुछ दाव पर लगा हुआ था । गवर्नर जनरल सर हैनरी हार्डिंग स्वयं पहुंच गए थे, ताकि सेनाध्यक्ष के साथ तथा चिन्ता को कुछ कम कर सकें । इसके पश्चात् जो अभियान आरम्भ हुआ, उसमें अक्सर उन्हें वृक्षा के नीचे प्रेषण पेटियों के निकट बैठे देखा गया, क्योंकि उनके लिए, कैम्प कमचारियों का लाव लश्कर पहुंचने से पूव, आवश्यक बागजो को निपटाना जरूरी था ।

18 दिसम्बर को मुदकी में लड़ाई शुरू हुई । हैनरी हार्डिंग ने, जो स्वयं अनुभवी सैनिक थे, ब्रिटिश सैनिकों के एक भाग का दूर दराज सुरक्षित मुख्यालय से नहीं, बल्कि घोड़े पर सवार होकर तोपों के गोला की भारी गड़गड़ाहट के बीच संचालन किया ।

कुछ एक ने इस प्रकार लड़ाई के मैदान में उनके आने पर विरोध व्यक्त किया, परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । उनके मुख भवदूनिया निवासी सिकंदर महान का आदेश था, जिसने कभी पड़ोस की भूमि पर युद्ध लड़ा था । हार्डिंग एक अनुभवी सैनिक थे और उन्हें ज्ञात था कि कितना महत्वपूर्ण मुद्दा दाव पर था ।

सिपा के लिए जिस प्रकार एक इतिहासकार ने टिप्पणी की है, "साहसी दिल और बलिष्ठ भुजाओवाले तो अनेक थे, परन्तु ऐसा बुद्धिमान कोई नहीं था, जो मागदशन कर सके तथा समूची सेना को प्रेरणा प्रदान कर सके।" अनपढ़ परन्तु बहुत ही चतुर शेर-ए पजाब रणजीत सिंह का छ वष पूव देहात हो चुका था। वह अपने पीछे बड़ी शानदार सेना छोड़ गए थे, परन्तु उनका कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं था जो इस सेना का उचित उपयोग कर सके और राज्य की नाव को सही भाग पर ले जा सके।

राधाकृष्णन का जन्म दिसम्बर 1845 के उसी भाग्यपूण दिन, इस युद्ध क्षेत्र से केवल 48 किलोमीटर दूर, जगराव में हुआ, जो उस वन्चे का पिता बना जिसने शेर ए पजाब की पुरानी उपाधि को पुनर्जीवित किया।

मुद्दकी की लड़ाई में सिखों की पराजय हुई। ब्रिटिश शासकों के लिए युद्ध ठीक ढंग से आरम्भ हुआ था। अहास पडोस के मैदानों में कुछ और लड़ाइयां हुईं और खेल उत्तम हो गया। एक महीने के अन्दर जगराव में ही फिरोजपुर वाली सेना लुधियाना से आई सेना के साथ मिल गई। दो मास में ही युद्ध समाप्त हो गया। ब्रिटिश शासकों ने उस संधि को समाप्त कर दिया, जिसके लिए उन्होंने रणजीत सिंह पर बहुत जोर डाला था। अगले चार वर्षों में सतलुज पार का क्षेत्र भी उनका हो गया।

जिस समय पजाब में ब्रिटिश राज आया, उस समय वह अग्रवाल परिवार, जिसकी हम इस समय चर्चा कर रहे हैं, कई पीढ़ियों से मालेरकोटला तथा उसके आसपास के क्षेत्र में रहता था। अय स्थाना के अग्रवाल परिवारों के समान, वे लोग व्यापार तथा साहूकारी तो करते ही थे, साथ में इस स्थान पर उन्होंने महत्वपूर्ण प्रशासकीय पद सम्भालकर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि कर ली थी। विशेषकर उस परिवार के सांग पजाब के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित, मालेरकोटला रियासत के मुसलमान शासकों के कोषाध्यक्ष बने।

रेलगाड़ी से मालेरकोटला लुधियाना से लगभग 45 किलोमीटर पश्चिम की ओर है और इसकी आबादी 20 हजार के करीब है। पहले-पहल मालेर और कोटला दो अलग जिला नगर थे। सुन्दर मोती बाजार, जो इन दो कस्बा का मिलाता है 20वीं शताब्दी में बनाया गया है। जिस अग्रवाल परिवार की हम चर्चा कर रहे हैं, यह इन दोनों में से बड़े कस्बे, मालेर में अधिक थे। इतिहास से पता

योज तथा भूमि

पलता है कि सिद्ध शासनकाल में स्थानीय गटवही के कारण यह बचीला उम स्थान से नए स्थान की योज में निवल पडा, परन्तु यह गटवही अधिक समय के लिए नहीं थी। दरअसल, उनमें से कुछ-एक ने तो पटोस में बोटला में ही शरण ले ली, जो मुश्किल में तीन परलाग दूर था (बोटला का शब्दाय है विलेदार मम्बा)। इस बचीने के अय लोग सुधियाना और फिरोजपुर जिलों में बिखर गए, परन्तु उन्हें आमतौर पर "मलेरी" ही कहा जाता था।

मई वस्ती की इस योज में लाजपत राय के पुत्र सुधियाना जिले के एक कस्बे जगराव में पहुंच गए, जो फिरोजपुर से अधिक दूर नहीं। पुस्तैली मवान अब भी वहा है। वहां लाजपत राय के पिता राधाविश्वन के नाम पर, उनके घेठो द्वारा स्थापित किया हुआ स्कूल भी है, जिसे अब कालिज बना दिया गया है।

राधाविश्वन के पिताजी पटवारी थे। वे जगराव के निवल ही एक गाव में नियुक्त थे। उनका बंद छोटा था और उनके पौत्र के बचनानुसार वह "बहुत परिश्रमी तथा साहसी, बुद्धिमान, विवेकी तथा मिलासार थे।" उनमें दुवानदारा वाली सभी छुबियां तथा बमजोरिया थी, जो शताब्दिया से उनके पूर्वजों ने ग्रहण की थी। अपने बग के नियमानुसार उन्हें हर ढग में घा प्राप्त करने का शौन था। प्रारम्भ में ही पटवारी को अपर्याप्त वेतन मिलता है, परन्तु वह गाव का महत्वपूर्ण कार्यकर्ता है—उसे नमचारी भी कहा जा सकता है—उसे असुविधाजनक नैतिक सकोच भी नहीं करना पडता, विशेषकर इसलिए कि कानून इस बात की मौन सहमति देता है और प्रथा भी है कि यह नमचारी कुछ अधिक धन या सुविधाएं ले सके। उससे वेतन को तो केवल एक फीस ही माना जाता है या उसकी "ऊपरी" आय का अनुपूर्व समझा जाता है। अब तक जब भी बड़े लोगो ने "घ्रष्टाचार विरोधी" अभियान शुरू किया है और इसका जोरदार प्रचार किया है, इस "ऊपरी आय" के बिना कोई पटवारी तो ऐसे ही मिलता है जैसे सफेद कौआ। सच बात तो यह है कि पटवारी जो फ्रीस लोगो से वसूल करता है, उसे प्रशसा के तौर पर दी गई बख्शीश कहना ही उचित होगा, रिश्वत कहना ठीक नहीं। सभी पटवारी यह बख्शीश लेते हैं। धन तथा इस पुस्तनी प्यार के साथ-साथ उसने अपनी औलाद को समय के अनुकूल चलने योग्य बनाने का काम भी किया। जब राजनीतिक उचल पुथल आम ही हो तो किसी व्यापारी समुदाय के लिए चिर-स्थायी होना समभव नहीं, जब तक वह अपने को बदलती हुई परिस्थितिया के अनुकूल बना लेने योग्य न हो। मालेरबोटला के मुसलमान शासक, सिखा के साथ उनकी लडाइया, जगराव के लिए धराराहटपूर्ण यात्रा, रायबोट के मुसलमान राजा के छोटे-मोटे अत्याचार,

रणजीत सिंह के आश्रित कपूरखला का अहलूवालिया शासन, सिंगो की युद्ध म पराजय के बाद अंग्रेजों की आरम्भ और हक्का-बक्का करने वाले इतिहास के इन थपेड़ों में अपने आपको सभालता यह पानदान फलता-फूलता गया ।

छोटे बंद के मलेरी बनिया पटवारी न स्कूल में शिक्षा ता नाममात्र भी प्राप्त नहीं की थी । वह बनियो द्वारा बही-खाते लिखने में इस्तेमाल की जाने वाली प्रचीन लिपि से परिचित थे, जिसे "महाजनी" कहते हैं, परन्तु उन्हें उर्दू या फारसी का कोई ज्ञान नहीं था जिनमें भूमि का सारा विवरण रखा जाता था । परन्तु उनकी एक खासियत यह थी कि वह उन परिवार से थे जो अपने आपको हर परिस्थिति के अनुकूल बनाने में दक्ष था और हर स्थिति को स्वीकार कर लेता था । संभवतः वे लोग जिन्हें उर्दू तथा फारसी भाषा की जानबारी का लाभ भी था, वे तैजी से आने वाले आतिकारी ऐतिहासिक परिवर्तना के कारण अभी सभल नहीं पाए थे । परन्तु इस परिवार के व्यावहारिक सागा में आखें फाड़कर देखने अथवा आत्म विश्लेषण में समय नष्ट नहीं किया । जैसी भी राजनीतिक हवा चले, वह अपनी आर्थिक परिस्थितिवा को उसके अनुसार ढालने में प्रवीण थे । इस प्रकार उनमें से एक पटवारी का काय सभाल सकता था, जो अपनी छुटिया के बावजूद अपना काम अच्छी तरह करने के योग्य था । वह इसलिए एक ही पटवारी दे पाए थे, क्योंकि इतिहास की इस उमल-पुल में वे उन लोगों से पहले स्थिर हो गए थे, जिनके पास उचित प्रशिक्षण तथा योग्यता थी । उनका पटवारी अपनी जाति का सच्चा नमूना था और जाट भाइया के समान सनातनी विचारा बाला था, रीति-अनुपालन था । वह नियमित रूप में दिन में दो बार पूजा अचना करता था, आतिथ्य सत्कार में वह न्यासी गुरुओं की सगति करता था जो श्वेताम्बर जैन साधु होते थे ।

उनकी पत्नी उनसे कुछ भिन्न थी । अनपढ़ होने या बीस से अधिक तक न गिन सकने के कारण नहीं—जो उस पीढ़ी की महिलाओं को सबसे बड़ी कठिनाई थी—बल्कि इस कारण कि वह धन की लोभी नहीं थी । साजपत राम ने अपनी दादी के बारे में कहा है— 'मैंने ऐसी सत्य-प्रिय, नेक और मेहमान नवाज कोई महिला नहीं देखी जो इतनी दयालु तथा सादी भी हो । वह इस योग्य नहीं थी कि धन सभाल कर रख सके और उनके पति उन्हें अधिक धन देते भी नहीं थे । जीवन भर उन्होंने कभी ताला न लगाया और न कोई चाकी अपने पास रखी । उन्हें आभूषणों का या वनाव शृंगार करने का शौक नहीं था । वह इतनी दयालु थीं कि उनके पति उन्हें जो कुछ भी देते वह अपने पड़सियों को दे देती ।'

ज्ञान की अद्वय्य अगुलिया ने, जो गुण सूत्रा का मिलाकर भानुवाचिकता का जा संयोग करती हैं, धा से प्रेम न करन वाली इन महिला का और धन की दृष्टि से चतुर तथा व्यापहारिक पनि के माय संयोग बैसे किया हागा ।

हम बताया गया है कि यह "भिन्न" महिला असाधारण मनार्थशानिक अध्ययन का एक विषय भी थी—यदि आप चाहें तो परा-मनाविणात का या मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का विषय बटें । ऐसा दिखाई पड़ता था कि कभी-कभार उनके पति की मृत बहिन की आत्मा उनमें प्रवेश कर जाती थी । जब भी यह इस समाधि की स्थिति में होती, ता सारा परिवार उनके निकट जमा हो जाता था और देववाणी के तीर पर उनसे सलाह लिया करने से । वह भविष्यवाणी किया करती थी या ऐसी बातों की जानकारी दिया करती थी, जिनका किमी को ज्ञान नहीं होता था । बाद में घटी-घटनाओं ने उन भविष्यवाणिया को सही सिद्ध किया । परिवार का उनमें बहुत विश्वास था । उनके पोते न छोटी आयु में कई बार अपनी दादी को इस हाल में देखा था और जैमी हमन बर्षा की है, उनके बारे में लिया । इस स्थिति का उन्होंने कोई स्पष्ट कारण नहीं दिया, केवल इतनी बात और कही है कि "मेरी दादी कोई घासवाजी, छन या घोड़ेवाजी नहीं जानती थी । उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और वह बहुत कम बीमार हानी थी । "

ऐसे सपेन हैं कि उनके पति में ध्रमण लालसा थी । बेशक हमें ऐसी कोई जानकारी नहीं कि उन्होंने कबसे पूब के उन दिना में सचमुच ही कोई लम्बी यात्रा की ह । उनकी अन्तिम बीमारी केवल एक दिन की थी और वास्तव में उनकी मृत्यु अच्यवस्था की स्थिति में हुई ।

इन माता पिता के पुत्र, राधाकिशन ने घम में असाधारण रुचि दिखाई । राधाकिशन के स्कूल में प्रवेश से पहले ही मेवाले भारत में शिला नीति के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध लेख प्रकाशित कर चुके थे । मेवाले के देशवासियों ने (अप्रेजो ने) राधाकिशन के गांव में जा स्कूल (भदरसा) खोला था, उसे एक मौलवी चलाते थे जो फारसी पढ़ाते थे । राधाकिशन बड़े योग्य छात्र थे, अपनी कक्षा में सदा प्रथम रहते और नामल स्कूल की अन्तिम परीक्षा में वह पजाब भर में प्रथम रहे और उन्होंने "सही ज्ञान" अर्थात् गणित तथा शारीरिक विज्ञान में पूरे के-पूर अव प्राप्त किए । वह केवल योग्य होने से भी कुछ अधिक् थे । उनमें एक प्रकार की बौद्धिक दृढ़ता थी जिससे मन की बातों को धन के पोछे भागने की तुलना

मे निश्चित रूप से प्रायमिकता मिलती थी। उनमें धर्म के प्रति अपनी मां जैसी उपासी नहीं थी और मैं ही अपने पिता की वह रक्षिणी थी कि "हर सभ्य ढंग से धर्म अर्जित किया जाए।" उन्होंने धर्म में गहरी रुचि दिखाई, परन्तु उनके लिए यह वैसी सामान्य रीति नहीं थी जिस प्रकार उनके पूज्य ने शताब्दियों से अपनाई थी। वह अध्ययन करना, विचार करना तथा जांच करना चाहते थे और उसके बाद ही स्वीकार करने को तैयार थे। स्कूल में यह केवल एक ही धर्म का अध्ययन कर पाए, वह था उनके अध्यापक का धर्म, जो एक धर्मपरायण सुन्नी मुसलमान थे, "अपने धर्म में पूरी तरह दृढ़, ईमानदार तथा सत्यप्रिय।" हमें पता चला है कि उनके शानदार चरित्र ने इस्लाम का फैलाना का काम किया, क्योंकि उनके कई गैर-मुस्लिम शिष्य बड़े होकर धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गए। जो शिष्य स्वधर्म त्यागने से शिथिल होते थे, उन्होंने मन-ही-मन में अपना धर्म त्याग दिया और धर्मपरायण अध्यापक का धर्म अपना लिया। राधाकिशन ने भी ऐसा ही किया। वह नमाज अदा करते, रमजान में रोजा रखते और उन्होंने उलमा (मुसलमान धर्म के विद्वानों) के साथ मित्रता बनाई। कई वर्ष वह धर्म परिवर्तन की यात्रा दुविधा में फसे रहे और इसके परिणामों से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के कारण ऐसा करने से हिचकिचाते रहे। उन्होंने सच्ची लगन के साथ इस्लाम का अध्ययन किया। वह नये उत्साह के लिए सदा तत्पर रहते थे और उनकी इस विशेषता में आलोचनात्मक स्वीकृति का गुण था। जब सर सैयद अहमद खां ने इस्लाम का उदार व्याख्या आरम्भ की, जिसे आम तौर पर "सहज धर्म विज्ञान" का नाम दिया जाता था, राधाकिशन ने बड़ी उत्सुकता से नए सिद्धांतों का मनन किया। जो कुछ भी सर सैयद ने लिखा, उन्होंने उत्साह से पढ़ा और कई वर्ष उनके साथ पत्र व्यवहार करते रहे। एक बार एक पत्र में उन्होंने सर सैयद से पूछा कि क्या यह आवश्यक है कि मुसलमान बनने के बाद वह राधाकिशन नहीं रहे और किसी मुस्लिम नाम से जाना जाए। सर सैयद का उत्तर राधाकिशन के लिए प्रशंसनीय सीमा तक उचित था, क्योंकि उसमें कहा गया था कि नाम बदलना कोई महत्व नहीं रखता। जरूरी बात तो यह है कि केवल अल्लाह ही और उसके पैगम्बर "मुहम्मद" में दृढ़ विश्वास हो। राधाकिशन के अन्तःकरण को शांत करने के लिए इस पत्र में अवश्य ही बहुत प्रभाव डाला होगा।

राधाकिशन के अन्तरंग मित्र, दुनीचंद, जो बनौल थे, इस विशेष धर्म और धर्म परिवर्तन की विशेष कठिनाइयों के बारे में अपने मित्र के साथ भागीदार थे। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि एक दिन दाना मित्रा ने निःसंकोच इस्लाम कबूल कर

लेने का निणय कर लिया था । इस इरादे को लेकर वह मस्जिद की ओर रवाना हो गए । राधाकिशन की पत्नी को किसी तरह उनकी इस योजना की जानकारी मिल गई और उन्होंने सफलतापूर्वक उन्हें रोक दिया । उन्होंने अपने पति के अपघम को बहुत बटुता से महसूस किया, जिस प्रकार कोई भी सामान्य हिंदू नारी करती, परन्तु उन्होंने बड़ी युक्ति और अनुकूलनशीलता से, जो हिंदू पत्नियों की विशेषता है, इसे सहन किया । राधाकिशन के ससुराल की सिख गुरुओं में निष्ठा थी । बचपन में राधाकिशन की पत्नी को सिख गुरुओं की वाणी पढाई गई थी और राधाकिशन के घर में भी वह प्रातःकाल जपजी का नियमित रूप में पाठ किया करती थी । राधाकिशन अपने मुसलमान मित्रों को भोजन के लिए अपने घर आमंत्रित करने रहने थे । परम्परा निष्ठा के उन दिनों में (जो राजनीतिक अर्थों में "माम्प्रदायिक" नहीं थी) किसी हिंदू घर में ऐसा होना घृणित बात समझी जाती थी । परन्तु राधाकिशन की पत्नी कोई झगडा खडा नहीं करती थी । वह अपने पति के मित्रों के अपने बरतनों को (जो सामान्य हिन्दू घरों के समान धातु के होते थे) आग से साफ करके परम्परा निष्ठा को सतुष्ट करती । उन दिनों मासाहारी अग्रवाल को दैत्य से बम नहीं समझा जाता था । परन्तु राधाकिशन, जो विचारों की दृष्टि में जैन थे, हिन्दू अग्रवाल नहीं रहे थे । कई बार किसी मुसलमान मित्र के घर पकवाया गया मास खाने के लिए अपने घर से आते थे । इन सभी अत्याचार-पूर्ण कारवाइयों को उनकी पत्नी सहन करती रहीं । परन्तु राधाकिशन को पता था कि कहीं न-कहीं इसकी सीमा अवश्य आएगी और इस सीमा का उन्हें ज्ञान था । उन्हें पक्का सदेह था कि जिस दिन वह प्रकट रूप में मुसलमान बन गये, वह उनका घर छोड़ देगी और बाल-बच्चा को लेकर या तो मायके चली जाएगी या अपना अलग घर बना लेगी । "मेरे पिता मुसलमान नहीं बने , यह किसी करामात से कम नहीं और यह करामात करने का श्रेय मेरी माता को जाता है ।" यह बात राधाकिशन के पुत्र ने लिखी है । परन्तु एक पारिवारिक मित्र का कहना है कि इस मानसिकता का शुद्धि श्रेय बालक लाजपत को जाता है, जो उस समय गुलाब देवी की गाद में थे । जिस समय उन्होंने अपने पति को मस्जिद की सीढियों पर चढ़ते रोकना था और उन्हें अपने पुत्र का वास्ता दिया था, पिता राधाकिशन सुन रहे थे और हिचकिचाहट में थे, बच्चा इस स्थिति को, जो उसने पहले कभी नहीं देखी थी, देखकर रोने लगा । बच्चे के इस रुदन ने उस तनावपूर्ण स्थिति में मा के अनुनय की सफलतापूर्वक हिमायत की और अपने घर की भावनाओं से प्रेरित

होकर, राधाकिशन, जो ममे मुसलमान बनन के लिए सीमा पार करन ही जान थे, बिना धर्म परिवर्तन के घर लौट आये ।

राधाकिशन की पत्नी अपने ढंग की असाधारण महिला रही होगी । ऐसे मौजी पति को समालने के लिए उन्हे असाधारण युक्ति से काम लेना पड़ता होगा । और एक गृह स्वामिनी के तौर पर अपनी कम आय में गृहस्थी चलाना तो और भी चतुराई की बात थी । अध्यापक के तौर पर राधाकिशन को केवल पच्चीस रुपये मासिक वेतन मिलता था । वह धर्म-ज्ञान के अध्ययन में व्यस्त रहत थे । इस ज्ञान चेट्टा में उन्हें अपने विभागीय अधिकारियों के आगे पीछे घूमने की फुरसत बहा होती और इस प्रकार उनके साथ प्राथमिकता देने वाली बात बहा हो सकती थी, चाहे उनके शिष्य अध्यापक के रूप में उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे । शिक्षा में कई वर्षों की गहरी रुचि के बाद साजपत राय ने अध्यापक के तौर पर मुशीजी के बारे में लिखा "भारत में मुझे उनसे बढ़िया अध्यापक दिखाई नहीं पडा ।" कहते हैं उनके सारे सेवाकाल में उन्हें केवल दो बार ही वेतन-वृद्धि मिली—हर बार पाच रुपये की वृद्धि, और इस प्रकार जब उन्होंने अवकाश प्राप्त किया, तो उन्हें पैंतीस रुपये मासिक वेतन मिलता था । उनकी पत्नी इतनी कम आय में बड़े परिवार का पालने का काम समालती थी । उन्होंने कुल दस बच्चा को जन्म दिया । उनके देहान्त के अवसर पर उनमें से छ , चार बेटे और दो बेटियाँ, जीवित थे । वह इतनी कम आय में, इतने बड़े परिवार के लिए रोटी-कपड़े की व्यवस्था करने के साथ-साथ सभी पक्, त्यौहार तथा सस्कार पूरे करती थी—क्याकि हमें बताया गया है कि वह कोई त्यौहार मनाए बिना नहीं रहती थी—यह करामात से कम दिखाई नहीं देता । फिर भी उनकी सबसे बड़ी करामात तो उनका मजबूत मनोबल, था जिसे उनके पति धर्म विरोधी अत्याचारों के कारण सदा ही तोड़ने की सीमा तक पहुँच जाया करते थे । उ होने बहुत अधिक कष्ट झेले, परन्तु सभी चुपचाप । वह साक्षात् मनोबल की प्रतिमा थी । अपने दुख को वह केवल अपने तक ही रखती थी । दो वर्षीय साजपत अक्सर अपनी माता को अपने पति के ठीक न होने वाले तौर-तरीकों पर घटा दुख से आसू व हाते और बड़े ध्यान से देखते रहते । उनके पुत्र ने बाद में लिखा है कि "वह लगातार कई कई दिन भोजन नहीं करती थी और अपने बच्चों को गोद में लिए दुख भरी ठडी आँहें भरती रहती थी । परन्तु उन्होंने अपने पति से अलग हाने के बारे में कभी न सोचा । दरअसल, वह अपने पति से कभी भी अघिब समय के लिए अलग न रही और सदा ही उनके पास रही ।"

हमारे विचार में कष्ट झेलने, सेवा करने और इस प्रकार यदि सम्भव हो सके तो धमत्याग की सम्भावित विपदा टालने के लिए ।

वह विल्कुल निरक्षर थी, फिर भी गुणवती और विलक्षण थी । उनके पति ने उन्हें बार-बार पढ़ाने का यत्न किया और बाद में बेटे ने भी कोशिश की । परन्तु उनके कमजोर स्वास्थ्य और पति के प्रति निरंतर चिन्ता तथा गृहस्वामिनी के तौर पर असामान्य भारी घरेलू काम काज के कारण, जो कम आय और बड़े परिवार के कारण था, वह अपनी निरक्षर स्थिति पर ही सतुष्ट रही । उन दिनों अच्छे भाग्य वाले हिन्दू परिवारों की अधिकतर महिलाएँ भी निरक्षर ही थी ।

धालीस वर्ष की उम्र तक राधाकिशन "अनौपचारिक" रूप से मुसलमान रहे । वह केवल जोश तथा ईमानदारी के साथ इस्लाम की प्रशंसा ही नहीं करते थे, बल्कि उन्होंने नए धमत्यागी के समान अपने पूर्वजों के धम तथा रीतियों की निन्दा करने का स्वभाव बना लिया था । वह अपनी यह निन्दा समाचार पत्रों के लिए लेखों के रूप में भेजते, जिन्हें उन दिनों के ब्रह्म समाजी समाचार पत्र तुरन्त प्रकाशित कर देते । हिन्दू धम, दशम तथा सस्कृति के प्रति उनका यह व्यवहार तभी परिचित हुआ जब उनका पुत्र नए हिन्दू धम के सिद्धांतों का, जिन्हें आयसमाज ने स्थापित किया था, कट्टर अनुयायी बन गया और उसने अपने पिता को यह दिखा दिया कि हिन्दू धम का मूल जो बाहर से बढसूरत हो चुका है, और जो उसका अपना ही है, उसका मूल अन्दर-से-मुन्दर सुरभित है । राधाकिशन जान-बूझकर बेसमझ नहीं बने थे, असल में उन्हें सस्कृत का ज्ञान नहीं था । वह तो सत्य के उत्सुक जिज्ञासु थे, और उनके स्कूल का वातावरण ऐसा नहीं था, जिसमें वह हिन्दू धम को सही सम्बन्ध में देख सकते । जब उन्हें अपनी त्रुटि का पता चला, तो उन्होंने तुरन्त अपने आपको ठीक करने का प्रयत्न किया । उन्होंने हिन्दू धम के बारे में उपलब्ध साहित्य का पूरा अध्ययन किया । परन्तु वह उस धर्मोत्था में शामिल न हुए जिसके लिए उनका पुत्र इतनी निष्ठा से काय कर रहा था । उसका अध्ययन उसे आयसमाज की ओर नहीं, बल्कि वेदात की ओर ले गया । वेदात दशम की सूक्ष्मताओं ने उन्हें इस वद्वेषस्था में बहुत आकर्षित किया और उन्हें उपनिषदों की शिक्षा में बहुत शांति मिली ।

राधाकिशन ने जीवन भर धर्म का खचित्वक अध्ययन किया । वह हिन्दू धम की मूल पुस्तकों का उस गहराई से अध्ययन न कर सके, जिस प्रकार उन्होंने इस्लाम का किया था । परन्तु उन्हें जो कुछ भी (उद्दे में हिन्दी अथवा गुरुमुखी में भी) मिला, उसका उत्सुकता, परिश्रम, और निष्ठापूर्वक अध्ययन किया ।

समाचार-पत्रों में लेख लिखने के अलावा उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं। उनके धार्मिक अध्ययन का परिणाम एक उर्दू पुस्तक के रूप में सामने आया, जिसका नाम था 'तहकीक़े मज़हब'। यह विभिन्न प्रमुख धर्मों के मूल सिद्धांतों का संक्षेप में तुलनात्मक अध्ययन था, जिसके बारे में घोषित किया गया था कि यह लेखक द्वारा विभिन्न धर्मों के 22 वर्षों के अध्ययन का परिणाम है। हमें इस बात की कोई जानकारी नहीं कि मुशीजी ने कभी कविता भी लिखी हो, परन्तु उन्होंने अपने लिए "आजाद" उपनाम रखा हुआ था जो उनकी आत्मा तथा दृष्टिकोण का सही प्रतीक था। उनकी प्रकाशित पुस्तिकाओं में से एक पुनर्जन्म के बारे में थी, जिसका नाम था 'रिसाला-ए-तनासुख', जिसमें उन्होंने खासतौर पर अपने भूतपूर्व गुरु सर सैयद ब्रह्मद और हिंदू दाशनिवा की शिक्षाओं की तुलना की थी और आमतौर पर "प्रथम" को अधिक महत्व दिया था। पर वह स्वयं किसी विशेष विचारधारा के समर्थक नहीं बने। अपने इस सिद्धांत के बारे में उन्होंने स्वामी दयानन्द से भी वाद विवाद किया कि जो आत्माएँ मुक्ति प्राप्त कर लेती हैं उन्हें भी "परमानन्द" स्थायी तौर पर प्राप्त नहीं होता, बल्कि सीमित अवधि के लिए ही प्राप्त होता है, चाहे वह अवधि काफी लम्बी ही हो। उन्होंने देखा कि यह सिद्धांत पुरातन भारतीय दाशनिकों की शिक्षा तथा उनकी अपनी दलीला-दानों के विपरीत था। राधाकिशन ने सदा ही तक-सगत तथा सक्षिप्त होने का प्रयत्न किया और अपना ध्यान केवल विवादास्पद मामलों तक ही केंद्रित रखा। वह अपने दावे के सद्भ्रम में दलीला के साथ तैयार रहते थे और जिन दाशनिकों के साथ वाक्यमुद्ध करते थे, उन्हें अपनी बात कहने का अवसर दिया करते थे। उनकी लिखित सामग्री बहुत ही निष्पक्ष है, उसमें अलंकरण का प्रयोग कुल नहीं है। दरअसल, वह बिल्कुल अलंकार रहित है और इसमें निश्चय ही प्रस्तुतिकरण की शालीनता की कमी है।

इतिहास का अध्ययन करने के परिणामस्वरूप उन्होंने लगभग 150 पृष्ठ की पुस्तक 'वीर चरित' की रचना की जो मुख्यतौर पर टाड की पुस्तक 'एनल्स एण्ड एटिबिबटीज ऑफ राजस्थान' से ली गई चयनिका है। इसकी भूमिका में मुशी राधाकिशन ने ऐतिहासिक अध्ययन के मूल्यों की बात की है और इसके प्रति अपनी विशेष रुचि की चर्चा भी की है। कुछ समय के लिए यह पुस्तक लोकप्रिय रही और इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ।

पढ़ने में इनकी यह रुचि अत तक बनी रही। जय में लोक सेवा सभ में शामिल हुआ, तो मुझे उनके पढ़ाई में रहने का विशेष अवसर मिला, जब मैं 2, पाठ

स्ट्रीट, साहौर में उनके साथ वाले कमरे में रहा था। साला लाजपत राय ने यह मकान सप को दे दिया था और अपने लिए उसी मकान के आगे में एक छोटा दो मजिला मकान बना लिया था। उनके पिता गए मकान में नहीं गए, परन्तु पुराने मकान में यरामदे के दक्षिणी कोने में नीची छत वाले एक छोटे कमरे में रहते रहे। फर्नीचर के नाम पर उनके कमरे में एक घाट और एक कुर्सी थी। इसके अलावा कमरे में तीन और उचित ऊचाई पर दीवार के साथ लकड़ी का माटा खुरदरा लकड़ा लगा हुआ था। यह लकड़ा पुस्तकें, अखबार तथा अन्य वस्तुए रखने के काम आता था तथा भुशी राधाविशाल के साने तथा रहने के कमरे के तपोमय तथा सादा पहलू का प्रकट करता था। शायद गारे घर में यही एक कमरा था जिसमें किसी दरवाजे, खिड़की या रोशनदान में शीशे को स्थान नहीं मिला था। निस्सन्देह गमियों में वह यरामदे में या छुले में साते थे। प्रात उठकर वह कोई मनचाही पुस्तक या पिछले दिन का सायकाल का समाचार पत्र पढ़ा करते थे, क्योंकि साहौर में उन दिना प्रात कोई समाचार पत्र नहीं आता था। उनका यह अध्ययन नाश्ते तक जारी रहता था। नाश्ता करने के पश्चात् वह अपने दूसरे पुत्र रणपत राय की दुकान पर चले जाते (वह गणपत रोड, अनारकनो में बागड के व्यापारी थे) और अपना सारा दिन वही बिताते, जिसमें से अधिक समय पठन-काय में व्यतीत होता। शाम का भोजन वह रणपत राय के पास ही करते और उसके पश्चात् वह उस दिन का बड़े मातरम् बगल में दबाए बाट रोड पर अपने कमरे में आ जाते। वह साने से पहले इसे जरूर पढ़ते।

जो पुस्तकें पढ़ने का उन्हें विशेष शौक था, उनमें डेपर की पुस्तक 'कानपिलकट विद्वीन रिलिजन एंड साइम' का उर्दू अनुवाद भी थी। अक्सर वह प्रात एक धार इमका पाठ करते या फिर साय को साने से पहले इसे अवश्य पढ़ते। उनकी अन्य मनपसंद पुस्तका में से अधिकतर धर्म या साहित्य की पुस्तकें थी।

जब उनका देहात हुआ वह बयासी बप के थे। उनकी मृत्यु को लाजपत राय ने बहुत महसूस किया, घासकर इसलिए कि उन दिना जेल में होने के कारण पिता के अन्तिम क्षणा में उनके पास न रह सके और अपने कर्तव्य का पालन न कर सके। उन्होंने विशेष निर्देश दिया कि अन्तिम संस्कार का सारा खर्च उनको लेखक के तौर पर मिलने वाली रायल्टी से किया जाए, जिसे वह अपनी सम्पत्ति में से विशेष तौर पर भविष्य मानते थे।

2. विकास : किशोरावस्था के संघर्ष

मुशी राधाकिशन ने लगभग आठ वष अम्वाला जिले में रोपड़ के गर्वमेंट मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य किया। 1865 के आरम्भ में 28 जनवरी को जब वह रोपड़ में थे, पिता बन गए। उनकी पहली बच्चा, जो पुत्र था और जिसका नाम लाजपत राय रखा गया, उनकी ससुराल कुडीके गांव में एक छोटे कच्चे हाथवे में पैदा हुआ। जिस तरह अब भी आम रिवाज है गर्भवती महिलाएँ पहली प्रसूति के लिए अपने मायके चली जाती हैं। कुडीके, फिरोजपुर जिले के मोगा तहसील का एक छोटा-सा गांव है। यह राधाकिशन के अपने बच्चे जगराव से, जो लुधियाना जिले में है, आठ किलोमीटर दूर है।

पिता उस समय किसी लघु व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए दिल्ली गए हुए थे। उन्हें वहाँ यह समाचार मिला कि जन्म लेने वाला शिशु बहुत छोटा है। पिता स्वयं लम्बे तगड़े और व्यायाम करने वाले थे, उन्हें ऐसा बालक होने की बिल्कुल आशा नहीं थी।

शिशुकाल में रोपड़ का क्षेत्र, जहाँ मलेरिया का रोग फैला रहता था, लाजपत राय को स्वस्थ तथा शक्तिशाली का नमूना बनाने में सहायक न हो सका। बड़े होकर जब वह स्कूल जाने लगे, तो उन्हें खेलने के मुनाबले पुस्तक का अधिक शौक था। वह लगातार मलेरिया ग्रस्त होते रहे, जिसके परिणामस्वरूप बचपन में ही उनकी तिल्ली बढ़ गई।

लड़के की शिक्षा का कायम शुरू में अधिकतर राधाकिशन ने घर में ही किया तथा कक्षा में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम में काफी कुछ और भी शामिल किया गया। लड़का बुद्धिमान तथा परिश्रमी था और इसी प्रकार पुरस्कार जीता करता था, जिस प्रकार पिता अपने दिना में। पिता ने उसे केवल लिखन, पढ़ने तथा गणित की ही शिक्षा नहीं दी, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण—धर्म शिक्षा भी दी। लड़का अपने पिता के साथ कुरान भी पढ़ता, उनकी तरह नमाज अदा करता और कभी-कभी रमजान में रोजा भी रखता।

मुझे लाजपत अपने घर में धर्म बम को देखकर उलझन में अवश्य पड़े होंगे। उनके दादा रुढ़िवादी जैन थे, उनके पिता औपचारिक रूप से नहीं, वैसे पक्के मुसलमान थे, उनकी माता पति के मुसलमान मत के कारण सदा दुखी

रहती थी, परन्तु धम कार्यों में वह नियमित रूप से लगी रहती थी। जब कभी भी साजपत राय मा के साथ उनके मायके गये होंगे तब होने वहा सिख धम काफी देखा होगा। बचपन में भी जब उन्होंने इस स्थिति के बारे में विचार किया होगा, तो उलक्षण में पडे बिना कैसे रहे होंगे? कुछ भी हो मुशी राधाकिशन ने अपने बेटे के मन में भी धार्मिक जिज्ञासा और उत्सुकता की लगन लगा दी, जो आगे चलकर भी यनी रही, हालांकि लडके ने इस्लाम के सस्कार छोड दिए थे।

अपने पिता से उन्हें इतिहास के अध्ययन का शौक भी विरासत में मिला, जिसका व्यापक अर्थ था 'महाकाव्य' तथा 'वीरगाथा' पढने की रुचि। राधाकिशन ने लडके को छोटी आयु से ही फिरदौसी के 'शाहनामा' का अध्ययन आरम्भ करवा दिया, जिसे फारसी साहित्य में होमर के महाकाव्य या व्यास के 'महाभारत' के समान माना जाता है। उ होने अपने पिता के साथ मिलकर बार-बार फिरदौसी की रचना के अंशों का पाठ किया और बड़े हो जाने पर वह स्वयं यह सब पढने लड़े। इस अध्ययन ने उनकी ललक को सतुष्ट कर दिया और पढने की अभिलाषा उत्पन्न कर दी। बचपन में 'शाहनामा' के अध्ययन को, बाद में साजपत राय द्वारा इतिहास की पुस्तकें पढने के शौक का कारण कहा जा सकता है। यह संभव है कि फिरदौसी के नायकों के नाटकीय वार्तालाप के कारण बच्चे के मन में भाषण करने का शौक उत्पन्न हुआ हो। यह भी संभव है कि बचपन की इस शिक्षा ने ही उनके मन में जीवन भर की गतिशीलता और हर काम में वीरोचित तथा महाकाव्य का दृष्टिकोण पैदा कर दिया हो। व्यास और होमर की तरह फिरदौसी युद्ध क्षेत्र में घटने वाली घटनाओं के वर्णन तक ही सीमित नहीं रहता। इसका अर्थ है कि वह सरकारी इतिहास की तरह नहीं है। वह सबसेमाविष्ट है उनकी कविता उनके जवन तथा संस्कृति का पूरा तस्वीर पेश करती है। जिस बालक को ऐसी बौद्धिक खुराक मिली हो, स्वाभाविक है कि वह जीवन भर इतिहास की पुस्तकों में ऐसे ही व्यापक, विस्तृत संवज्ञान का ढूढेगा।

कुरान' तथा शाहनामा' के अध्ययन में व्यस्तता और बीच में बार-बार मलेरिया से बीमार होने के बावजूद उन्होंने अपनी पाठ्य पुस्तकों की उपेक्षा नहीं की। अपनी कक्षा में वह लगभग सदा ही प्रथम स्थान प्राप्त करने रहे। स्कूल में सबसे छोटी आयु के छात्र होने के कारण उन्हें अदभुत समझा जाता था। उन्होंने रोपड स्कूल में, जो छठ कक्षा तक था, पढाई पूरी कर ली। उस स्कूल के बाद होने के

घोड़े समय बाद मुशी राधाकिशन का स्थानांतरण शिमला हो गया। वह अपनी पत्नी और बच्चों को वहाँ न ले जा सके, क्योंकि कम वेतन के कारण उनके लिए नई जगह पर उनका खर्च सहन करना कठिन था। आगे की शिक्षा के लिए लाजपत राय को लाहौर भेज दिया गया। शिक्षा विभाग ने उन्हें सात रुपये मासिक छात्रवृत्ति दे दी, फिर लाहौर से वह दिल्ली चले गये। वहाँ वह तीन महीने रहे। परन्तु बीमार से रहने वाले उस लड़के को दिल्ली की जलवायु रास न आयी। उस समय तक लड़के के पिता शिमला चले गए थे, इसलिए लाजपत राय अपनी माँ के साथ अपने घर जगराव चले गये।

अभी बालक लाजपत राय तेरह वर्ष के भी नहीं थे और मिडिल स्कूल में ही पढ़ने थे कि उनकी शादी कर दी गई। निस्संदेह यह शादी रुढ़िवादी ढंग से, दो अप्रबाल परिवारों का मिलन करने के ढंग से, की गई थी। दुल्हन राधा देवी हिसार के एक परिवार से थी, जिसने कम आय वाले अध्यापक के घर के मुनाबले में अधिक संपन्नता देखी थी। हम दुल्हन और दम्पति-जीवन के बारे में बाद में चर्चा करेंगे। दिल्ली छोड़ने के बाद, जगराव में घर में कुछ महीने प्रिताने के पश्चात् वह मिशन हाई स्कूल, लुधियाना में दाखिल हो गये। वहाँ भी उन्हें होनहार छात्र के रूप में वजीफा दे दिया गया और वहाँ भी वह बीमार पड़ गये। कुछ महीना बाद उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। मुशी राधाकिशन को फिर तबादले का आदेश मिल गया। इस बार उनका तबादला अम्बाला हो गया। वहाँ उनकी पत्नी और बच्चे भी उनके पास आ गए। रोपड़ में उनके घर दो और बच्चा ने जन्म लिया था—मैलाराम, जिसकी छोटी आयु में ही मृत्यु हो गई और एक लड़की। अम्बाला के दिना में तीन और पुत्रा ने उनके घर जन्म लिया—रणपत राय, धनपत राय और नन्द लाल। बाद में नन्दलाल का अपने भाइयों के नाम से मिलता-जुलता नाम दलपत राय रख दिया गया। समोग से उन दिनों लाहौर में दलपत राय नाम के एक प्रसिद्ध वकील हुआ करते थे।

बीमार रहने वाले लाजपत राय को अम्बाला आए अभी दो महीने भी नहीं हुए थे कि वह बहुत गंभीर रूप से बीमार हो गये और कोई चार महीने विस्तर पर पड़े रहे। इस बार की बीमारी फोड़े के कारण थी, जिसका दो तीन बार आपरेण करना पड़ा। उन दिना के बारे में सोचने हुए उन्होंने बाद में लिखा -

“जीवन भर में अपने माता-पिता के लिए कष्ट और चिंता का कारण बना रहा हूँ, परन्तु उस वष मैंने उन्हें इतना कष्ट दिया कि भरे लिए उसे कभी भुला माना सभव नहीं।”

इस सबके बावजूद उन्होंने उस वर्ष मैट्रिक पास कर ली। दरअसल उन्होंने दोहरी मैट्रिक की। पंजाब विश्वविद्यालय अभी प्रारंभिक स्थिति में ही था और डाक्टर लिटनर कई प्रयोग कर रहे थे, ताकि इस विश्वविद्यालय को अन्य विश्वविद्यालयों से भिन्न पद्धति का बताया जा सके। इन नये विश्वविद्यालय की अभी अपने प्रात में भी अधिक साख नहीं थी, जब कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के डिग्री डिप्लोमा की अधिक साख थी। लाजपत राय न इस समस्या का समाधान दानो विश्वविद्यालयों—पंजाब तथा कलकत्ता की परीक्षाएँ देकर किया। वह दोनों में सफल हो गये और काफी समय बीमार रहने के बावजूद कलकत्ता की परीक्षा में वह पहले दर्जे में पास हुए। कलकत्ता की मैट्रिक के लिए उन्होंने फारसी का विषय दूसरी भाषा के रूप में लिया, परन्तु पंजाब की परीक्षा में उन्होंने कलकत्ता परीक्षा के विषयों के अतिरिक्त अरबी, उर्दू तथा शरीर विज्ञान के विषय लिए। उनके पिता इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि उनका बेटा अरबी सीखे, क्योंकि बचपन में उन्होंने अरबी शब्दानुशासन तथा वाक्य विन्यास सिद्धान्त के लिए काफी समय दिया था, परन्तु असल में लाजपत राय की इस अध्ययन में ज्यादा रुचि नहीं थी, उनकी यह सफलता तो उनकी योग्यता का प्रमाण थी। डाक्टर लिटनर के विश्वविद्यालय से उस वष केवल 108 छात्रों ने ही मैट्रिक पास की।

3. कालिज : प्रभाव तथा मित्रताएं

साजपत राय की आगे की शिक्षा एक समस्या बन गई । इस बात में संदेह नहीं था कि लड़का होनहार है और पढाई के लिए उत्सुक है । उनके पिता के लिए यह बहुत ही दुख की बात होती कि पढाई के लिए उत्सुक होने होनहार लड़के को इतनी जल्दी पुस्तकों से अलग किया जाए, परन्तु कालिज की शिक्षा के लिए धन कहाँ से आता ? यह कठिनाई बहुत ही बड़ी थी, परन्तु आश्चर्यकारक राधाकृष्णन ने निणय कर ही लिया कि वह अपने बेटे का कालिज में शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करेंगे चाहे इसके लिए शेष परिवार को घर में कितनी ही कठिनाइयाँ क्या न झेलनी पड़ें । मुरीजी जैसे स्वतंत्र चरित्र का व्यक्ति अपने मित्रों से सहायता मागने नहीं जा सकता था । कहते हैं कि उन्होंने एक ही मित्र से कभी सहायता मागी थी, वह था जगदल का एक सम्मानित मुसलमान, सजावल बिलोच, जो स्कूल में उनका सहपाठी था और जिसके साथ राधाकृष्णन के संबंध बहुत मद्भावनापूर्ण और घनिष्ठ थे । सजावल ने बच्चे को लाहौर में हाई स्कूल में पढ़ाने का खर्च बड़े शौक से दिया होता । परन्तु ऐसा लगता है कि शायद उसे अपना कर्तव्य निभाने के लिए कहा ही नहीं गया, क्योंकि साजपत राय स्कूल की शिक्षा के लिए लाहौर में बहुत ही कम समय ठहरें । कालिज-शिक्षा के लिए वह उन बजीफा पर जो उन्हें प्राप्त हुए थे, और घर से प्राप्त होने वाली आठ दम रुपये मासिक की छोटी सी राशि पर निर्भर रहे । निम्नदेह घर से आने वाली यह छोटी-सी राशि उनकी पिता की आय का काफी बड़ा हिस्सा होती थी ।

फरवरी 1881 में, सोलह वर्ष की आयु होने के कुछ समय बाद, साजपत राय लाहौर के एवमात्र कालिज में दाखिल हो गये । विश्वविद्यालय या गवर्नमेंट कालिज उन दिनों लाहौर का था कहिए कि पंजाब का एवमात्र कालिज था ।

कालिज में गरीबी के साथ संघर्ष निश्चय ही बहुत बढ़ित रहा होगा । परन्तु उन्हें गृहहारी कभी देखी नहीं थी, परन्तु अपनी कम आय में सादगी का एक म्तर बनाए रखा गया था और जब कभी भी वह बीमार पड़े, उनके माता पिता जानी देय रख कर सन्ने थे । लाहौर में, घर के बजट में से जो कुछ निकाला जा सकता था उसमें और प्राप्त होने वाले बजीफा की राशि इतनी मिनाकर गुजारा पताउं समय, उन्हें अपनी गरीबी का अहसास बराबर बना रहा था ।

उन्होंने स्वयं हमें बताया है, "पहले दो-तीन महीने तो मुझे बहुत भारी उलझन का सामना करना पड़ा, मेरी आँखों ने मुझे बहुत कष्ट दिया। इसके अतिरिक्त कई बार मुझे भोजन के बिना रहना पड़ा। बहुत सघप करने पर मैं विश्वविद्यालय से तीन रुपये मासिक छात्रवृत्ति प्राप्त करने में सफल हुआ। मैं लाहौर तो केवल इस विचार से गया था कि आर्ट्स की डिग्री प्राप्त करने के लिए पढाई करूँगा, परन्तु छात्रावास में कुछ सहपाठियों की सलाह पर मैंने कानून की पढाई के लिए भी दाखिला ले लिया। अपनी मासिक छात्रवृत्ति में से मैं दो रुपये मासिक गवर्नमेंट कालिज की फीस देता था, तीन रुपये कानून के स्कूल की फीस और शायद एक रुपया मासिक होस्टल फीस। मेरे पिता बड़ी कठिनाई के साथ मुझे केवल आठ दस रुपये महीना ही दे पाते थे और मुझे इसी राशि के साथ गुजारा करना पड़ता था। कानून की पुस्तकें काफी महंगी थी, परन्तु उनमें से जो अधिक आवश्यक थी, उन्हें मैं कुछ सस्ते भाव ही खरीद लेता था या फिर अपने मित्रों से उधार लेकर काम चला लेता था। आर्ट्स की पुस्तकों के बारे में भी मैंने यही नीति अपनाई। मेरे माता-पिता को मेरे लिए भारी कष्ट झेलने पड़ रहे थे और वे इसके लिए ऋण लेने को भी तैयार थे। परन्तु मैं उन्हें इस कष्ट में नहीं डालना चाहता था। इसलिए मैंने कमखर्ची का जीवन ही बिताया।"

इस कठोर सघप ने शीघ्र ही उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया कि उन्हें पहले कानून की शिक्षा पूरी करके डिप्लोमा ले लेना चाहिए, ताकि वह अपनी आजीविका अर्जित कर सकें। जल्दी ही उनकी योजना में उदार शिक्षा ने गण स्थान ले लिया। कानून की परीक्षा के लिए उन्होंने बहुत कठिन परिश्रम किया और साल के अन्त में भूखतार बनने की योग्यता प्राप्त कर ली, पर साथ में पोलिया से भी ग्रस्त हो गये। वह कानिज में दो वर्ष और रहे, परन्तु उन्होंने विश्व-विद्यालय की कोई और परीक्षा पास न की। बार बार की बीमारी, कानून की पढाई की प्राथमिकता, सावजनिक जीवन के कई सक्रिय मामलों में व्यस्तता और विश्व विद्यालय पाठ्यक्रम से बिल्कुल भिन्न प्रकार की शिक्षा में लगन—इन सब बातों का परिणाम यह निकला कि 1883 में इन्टरमीडिएट की परीक्षा में सफल उम्मीदवारों की सूची में उनका नाम नहीं था। परन्तु गवर्नमेंट कालिज में होते उनके ये वर्ष अन्य मामलों में उनके जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे। वहाँ उनके सहपाठियों में, जो बाद में बहुत प्रसिद्ध हुए, महात्मा हसराम, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, राजा नरेंद्र नाथ और प्रोफेसर रुचिराम साहनी के नाम शामिल थे। उन

दिना कालिज की कक्षा में बहुत कम छात्र होते थे । यद्यपि आजकल पढीगढ़ तथा साहौर में—हर वर्ष पचास हजार में अधिक छात्र परीक्षा देने हैं । इस बात में मन्हे है कि पञ्जाब के शिक्षा के इतिहास में किर्गों एवं एवं में होने योग्य छात्र हुए हैं जिनके वर्ष, 1882-83 में थे । 1883 में इन्टरमीडिएट की परीक्षा देने वाले इन पांच व्यक्तियों (साजपत राय, हसराम, गुरेन्द्र नाथ, गुरुदत्त और रचिराम) ने पञ्जाब का आधुनिक रूप देने में जिज्ञासा प्रकट की है शायद ही किसी और कक्षा के ऐसे छात्र मिल पाए । उनके कुछ शार्थों का साजपत राय के लिए महत्त्वपूर्ण सा बङ्गवर्ष है । दरभंगल, गुरुदत्त, हसराम, साजपत राय, चैनन आनन्द और राय गिबनाथ की जा मिल मद्रासी कालिज में थी उन्होंने कालिज के दिना के बाद भी एक स्तर के जीवों को बहुत अधिक प्रभावित किया । इन सबके जीवन की समानता उनका अनि रीतिबिधानी दृष्टि था । राम गिबनाथ, जो बाद में उत्तर प्रदेश में इजीप्शियर रहे, शायद इस सब में ही अधिक तपस्वी थे । यह सब पात्र रहते थे और उनमें प्राचीन भारतीय पांडुलेख, कलाकृतियाँ तथा पुस्तकें एकत्र करके के लिए बहुत उत्साह था । देहरादून में उता पर ता असास में एक निजी संग्रहालय था, जिसकी एक विशेष बात यह थी कि उसमें आर्य यज्ञ-शालाओं की रेखागणित की कृतियाँ अद्भुत ढंग से दिखाने गई थी । ये रेखा कृतियाँ प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने वाली श्रद्धा और लगन के साथ बनाई गई थी ।

4. उर्दू बनाम हिन्दी : एक उद्देश्य का आकर्षण

लाजपत राम के कालिज जीवन का बाद में लेखा-जोखा करने पर हम देखते हैं कि उनके अध्यापकों में से कोई भी उतना महत्वपूर्ण नहीं, जितनी महत्वपूर्ण उनके सहपाठियों की यह विशिष्ट मडली थी, जिनकी हम पहले चर्चा कर चुके हैं। अध्यापकों में से, जिनके नाम चर्चा के योग्य हैं, वे हैं—डॉक्टर लिटनर और मुहम्मद हुसैन आजाद। डॉक्टर लिटनर की आकांक्षा थी कि यह शिक्षा को दिशा निर्देश देने वाले बन सकें, परन्तु पंजाब विश्वविद्यालय के तत्वावधान में प्राच्य शिक्षा का एक गुदगुल स्थापित करने की उनकी योजना फलीभूत न हो पाई। परन्तु वह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने ईमानदारी और परिश्रम के साथ पंजाब में स्वदेशी शिक्षा के बारे में एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें यह तथ्य प्रकट किए कि पूर्व-ब्रिटिश काल में इस क्षेत्र में साक्षरता काफी अधिक थी, शायद एक मताब्दी के ब्रिटिश शासन के बाद जितनी साक्षरता इस क्षेत्र में आई, यह उससे भी अधिक थी। पूर्व-ब्रिटिश काल में इस क्षेत्र में साक्षरता का क्षेत्र निविघतापूर्ण था, जिसमें आटस, प्राच्य और कानून की शिक्षा शामिल थी। उन्होंने कई भाषाओं, विशेषकर पूर्वी-भाषाओं का अध्ययन भी किया। परन्तु प्रशासन एक अलग मामला है और विश्वविद्यालय का सरकारी इतिहास शायद यह प्रकट करता है कि प्रतिभाशाली डॉक्टर लिटनर को शायद इसलिए पद-त्याग करना पड़ा, क्योंकि उनके अधीन विश्व-विद्यालय के धन तथा हिसाब किताब में बहुत अधिक ढील पाई गई थी।

मुहम्मद हुसैन आजाद, गवर्नमेंट कालिज में इतिहास को एक अलग ढंग से रख दे रहे थे। अरबी और फारसी के प्रकाष्ठ विद्वान होते हुए भी, वह इस बात से पूरी तरह सावधान थे कि साहित्य तथा शिक्षा को समय के साथ बदलना चाहिए, और उन्होंने उर्दू भाषा को समृद्ध बनाने का काम अपने ऊपर ले लिया था, ताकि नई साहित्यिक आवश्यकताओं के लिए उसे इस्तेमाल किया जा सके—उन नई साहित्यिक आवश्यकताओं के लिए, जो मुख्य तौर पर पश्चिम के प्रभाव से पैदा हुईं। उनकी कविता तो खास महत्व की नहीं, परन्तु निश्चित रूप से उनका नाम उर्दू गद्य के पितामहों में से है। उन्होंने उर्दू-साहित्य का पहला व्यापक और नियमित इतिहास तैयार किया। उनकी लेखन शैली इतनी सशक्त और सजीव थी कि

वाद में शोध काय के दौरान तथ्य बिल्कुल निराधार भी पाए गए हैं, फिर भी उसकी प्रासंगिक उक्ति आम लोग के मन में नहीं हटती, क्योंकि वह बहुत कुशल साहित्यिक चित्रकार हैं और उनकी यौग्य बातें तथा जीवन की कानिया पाठकों के विचारा में घुस जाती हैं और पक्की तरह बैठ जाती हैं। इतिहासकार मेकाले की इस बात को चाहे अस्वीकार करें कि जब एक अपराध का कहा गया कि वह 'गिकाडियानी' की हिस्ट्री पढ़न या पोत पर काम करने में किसी एक का चयन कर सकता है, तो उसने पोत पर काम करने को कम कष्टकारी माना। मुहम्मद हुसैन आजाद में भी यह खतरनाक प्रतिभा थी। जब वह किसी उद् शायर को विशेष चरित्र में रूपायित करना चाहते, तो उसके समय में उनके पास कहानिया की भरमार हा जाती। कदात्मक प्रतिभा के मालिक 'मीर' के चिह्नचिडेपन के बारे में उन्होंने जो चुटकुले ध्यान किए, वह बाद में शोध काय करने वाले विद्वानों के लिए केवल कहानिया ही सिद्ध हुईं, परन्तु ऐसा दिखाई पड़ता है कि कई पीढ़िया तक लोग 'मीर' को उसी रूप में देखेंगे जैसा उसका चित्रण आजाद ने किया था।

लाजपत राय ने आजाद की अरबी कक्षाओं में चढ़ दिना के लिए ही भाग लिया, परन्तु वे चढ़ दिन उनके मन पर अमिट छाप छाड़ गए। आजाद कक्षा में भी गवार मजाक कर सकते थे। लाजपत राय को इसका अनुभव पहले ही दिन हुआ। परन्तु अरबी की कक्षा को छोड़ने का कारण यह नहीं था। उन्होंने अधिक विचारणीय कारणों से यह कक्षा छोड़ी। भाषा का विवाद उन दिना अभी आरम्भ ही हो रहा था। समुक्त प्रात में (जिसे आजकल उत्तर प्रदेश का नाम दिया गया है) एक आन्दोलन चल रहा था, जिसने परिणामस्वरूप कुछ वष बाद हिन्दी को अदालता की भाषा के रूप में मान्यता दे दी गई। पंजाब में प्राय समाज हिन्दुओं के लिए हिन्दी तथा सस्कृत के महत्व पर अधिक बल दे रहा था। कालिज में लाजपत राय के समाजी मित्रा ने, जिन्होंने निश्चय ही हिन्दी और सस्कृत का पक्ष लिया, उनसे अरबी छोड़कर सस्कृत भाषा लेने का आग्रह किया, चाहे उन्हें इस भाषा का अरार भी नहीं आता था — परन्तु यह किसी अच्छे उद्देश्य के लिए एक तरह का बलिदान था।

प्रोफेसर आजाद के अपन रवैये ने भी लाजपत राय को यह आग्रह मानन में सहायता की। आजाद यह बात बड़ा चढाकर कहा करते थे कि 'गिया' होन और फारसी का विद्वान होने के नाते वह भारत की बजाय ईरान को अपना घर

मानते हैं। इससे युवा लाजपत राय के मन में तेजी से पैदा हो रही देशभक्ति की भावना को ठेक लगी और उन्हें यह सदेह होने लगा कि अरबी और फारसी की पढ़ाई गैर-राष्ट्रीयता का प्रभाव बढ़ाने में लिए है। शत्रु घात लगाए हुए हैं और उन्हें अवश्य सावधान होना चाहिए। उन्होंने अरबी की कक्षा छोड़ने और संस्कृत सीखने के लिए यत्न करने का निश्चय कर लिया। परंतु जहां वह अरबी में कमजोर थे, वहां उनके भाग्य में संस्कृत में भी उससे अच्छा होना नहीं लिखा था। उन दिनों में भी, जब वह कट्टर आम ममाजी थे, वे संस्कृत साहित्य का ज्ञान केवल अनुवाद की गई रचनाओं से ही प्राप्त करते थे।

किसी व्यक्ति को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आजाद किसी प्रकार से कट्टर हिंदी विरोधी थे। दरअसल, वह न हिंदी विरोधी थे और न ही उन्हें भारत में घुणा थी। वह भारत को अपने ही ढंग से प्यार करते थे। शायद किसी और परिस्थिति में थोड़ी भी उन्हें हिंदी विरोधी होने का दोष न देता, चाहे उनका अपना योगदान केवल उर्दू में लिए था। आजाद ने देखा कि उर्दू साहित्य में निश्चित रूप से निष्क्रियता आई हुई है। गद्य ने कोई प्रतिभा आकर्षित नहीं की और पद्य का अधिकतर भाग किसी पिटी प्रणाली में ही होता है। यदि वे उसी लीक पर चलते रहें जिस पर वे उस समय मड गये थे, तो उन्हें इस स्थिति से निकालने और उन कई कार्यों में प्रयोग होने की कोई आशा नहीं, जिनके लिए आधुनिक बुद्धि इसे इस्तेमाल करना चाहे। उर्दू साहित्य का आधुनिक बनाने का प्रारम्भ पंजाब में ही हुआ। इसका सूत्रपात मुहम्मद हुसैन ने किया। उर्दू साहित्य को आधुनिक बनाने की यह महान तथा अविश्वसनीय करामात यह है कि यह परिवर्तन, जिसके बारे में आम विचार यह है कि यह पश्चिम के प्रभाव से (विशेषकर अंग्रेजी के माध्यम से) आया, असल में उन लोगों द्वारा आया, जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान बहुत कम था या बिल्कुल ही नहीं था, अर्थात् आजाद और हाली द्वारा और उनके बाद मर सैयद अहमद तथा शिन्वी द्वारा। इस नए आन्दोलन में इन चारों में से पथम स्थान निश्चय ही मुहम्मद हुसैन आजाद का है। उन्होंने पंजाब में इस आन्दोलन को गतिशील किया और उनके प्रभाव से ही यह गति तेज हुई। उनके अनुरोध पर ही हाली लाहौर तशरीफ लाए और उनके सम्युक्त प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप ही साहित्य के क्षेत्र में कुछ प्राप्ति आई। उस समय जब उर्दू साहित्य में यह बलवद्बल कायापलट हा रही थी, पंजाब में हिंदी आन्दोलन प्रवृत्त हुआ और हिंदी-उर्दू का प्रश्न उन दिनों का प्रमुख विवाद बन गया।

लाजपत राय ने हिन्दी हितैषिया का माप दिया । परन्तु उनके लिए मुहम्मद हुसैन आजाद ने प्रभाव से मुक्त होना इतना आसान नहीं था । उन्होंने आजाद की कसा इसलिए छोड़ दी, क्योंकि उनका विचार था कि यदि उ हों ऐसा न किया, तो वे आजाद के ईरान की ओर झुकाव से प्रभावित हो जाएंगे । किन्तु नियति यह थी कि लाजपत राय के राष्ट्रीय गौरव का इसी मुहम्मद हुसैन की रचनाओं से ही बल प्राप्त करना था । अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने जीवन पर इस प्रभाव की शानदार श्रद्धाजलि अर्पित की है । उनके पिता उनके पहले अध्यापक थे, जिन्होंने अपने लड़के को मुख्य तौर से फ़िरदौसी का 'शाहनामा' पढ़ाकर इसके लिए तैयार किया था । मुहम्मद हुसैन आजाद उनके दूसरे अध्यापक थे, क्योंकि उनके द्वारा बड़े बड़े ढंग से लिखी उर्दू की छोटी सी पुस्तक 'किस्स ए हिन्द' से ही लाजपत राय को पहली बार भारत के महान अतीत का पता चला । भारतीय इतिहास के ये अध्याय, कथा कहानियाँ के रूप में, ऐसी भाषा में पेश किए गए कि लेखक द्वारा भारत के अतीत पर गहरी धारणा की ये कहानियाँ बहुत तेजी से फैल गईं । सयोगवश लाजपत राय को यह भी स्पष्ट हो गया था कि उनके पिता की यह बात पूरी तरह ठीक नहीं थी कि मुस्लिम काल से पूर्व के भारत में कोई बात ऐसी न थी, जिस पर गव किया जा सके । 'शाहनामा' और 'किस्स' दोनों को वह स्कूल और कॉलेज के दिनों के बाद भी अकसर पढ़ते थे । बाद में उन्हें बनल राड की पुस्तक 'एनल्स एण्ड एटिक्विटिज आफ राजस्थान' का भी ज्ञान हुआ । राजस्थान की इन ऐतिहासिक गाथाओं और प्राचीन भारत के शानदार गौरव के बारे में अंग्रेज समाज द्वारा दी गई जानकारी ने उनके मन में मातृभूमि का नक्शा ही बदन दिया, परन्तु इसका आरम्भ निश्चय ही आजाद द्वारा 'किस्स-ए हिन्द' में किए गए वर्णन ने ही किया ।

मुहम्मद हुसैन आजाद की शानदार गद्य रचना के लिए उनके मन में प्रशंसा भी शायद इन्हीं दिनों में शुरू हुई थी । कुछ भी हा, यह उनके अन्तिम दिनों तक यती रही । आजाद, मर सँपद और शिल्पी—ये हमेशा ही उनके मनचाहे रहे ।

1056
21/3/96
कानून विभाग

5. ब्रह्म समाजियों तथा आर्यों के बीच

हिंदी आंदोलन के लिए वह शीघ्र ही एक सक्रिय प्रचारक बन गए। दरअसल, यह लाजपत राय के सावजनिक जीवन का प्रारम्भ था—क्यों कि वह तो अभी स्कूल से निकले ही थे। गुरुदत्त, हुसराज के साथ उन्होंने अपना सावजनिक जीवन इस आंदोलन से ही आरम्भ किया, जब वे तीनों कालिज में "नये" ही थे। गुरुदत्त और लाजपत राय ने हिंदी समयक स्मारक स्थापित करने के लिए हजारों हस्ताक्षर इकट्ठे करने के लिए बहुत भाग-दौड़ की।

युवा लाजपत राय ने पहला सार्वजनिक भाषण, 1882 में अम्बाला में, हिंदी के समर्पण में दिया, तब वह केवल अठारह वर्ष के थे। यह इस प्रचार के लिए विशेष तौर पर कहा गया था। एक अधीनस्थ मजिस्ट्रेट ने, जो थोताभा में था, गवर्नमेंट कालिज के प्रिंसिपल को रिपोर्ट भेज दी और उन्होंने इस जोशीले युवक को चेतावनी देनी कि छात्रा में यह आशा की जाती है कि वे ऐसे आंदोलनों से दूर ही रहेंगे।

लाजपत राय द्वारा हिंदी प्रचार में सक्रिय रूप से शामिल होने का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि उन्होंने आय समाज को स्वीकार कर लिया था। दरअसल, वह कुछ समय के लिए आय समाज और ब्रह्म समाज के बीच डावाडोल रहे। पंजाब, ब्रह्म समाजी नवीन चंद्र राय के अधिक प्रभाव में था और नवीन बाबू उन दिनों के कुछ अन्य अगली नवाओं के विपरीत हिंदी आंदोलन को बहुत ज्यादा महत्व देते थे। वह हिंदी को एक आधार मानते थे, जिस पर एक दिन समूचे भारतीय राष्ट्रवाद की इमारत खड़ी होगी थी। अग्निहोत्री, जिन्होंने ईश्वर से अनास्था रखने वाले देव समाज की नींव रखी, उन दिनों पंजाब ब्रह्म समाज के स्तंभ थे। लाहौर आते समय लाजपत राय अपने पिता से उनके लिए एक परिचय पत्र लाए थे। अग्निहोत्री अभी गवर्नमेंट स्कूल में ड्राइंग मास्टर थे और इनके माध्यम ही उर्दू का एक पत्र, जिसमें 'विरादर ए हिंद' कहते थे, सम्पादित किया करते थे। मुश्की, राधाविश्वन आय समाज तथा रुढ़िवादी हिंदू धर्म पर इस पत्र के माध्यम से हमले किया करते थे। लाहौर में लाजपत राय अग्निहोत्री के गहरे प्रभाव में थे। शायद वह कभी कभार अग्निहोत्री के साथ भाषण मात्राओं पर भी जाया करते थे। ब्रह्म समाज की एक बैठक में उन्होंने राम मोहन राय के

जीवन पर एक संछ भी पड़ा। 1882 में उन्हें पिता के मित्त द्वारा विधिवत ब्रह्म समाज की दीक्षा दी गई। अग्निहोत्री एवं ब्रह्म प्रभावशाली सावजनिक वक्ता थे और सभ्य हैं साजपत राय को इस बात का अहसास उनके सम्पर्क में आने से हुआ है कि प्रभावशाली भाषण में बितनी शक्ति होती है।

परन्तु साजपत राय अधिक समय के लिए ब्रह्म समाजी नहीं रहे। शान्ति के दिनों में, जैसा कि हमने पहले देखा है उनके मुख्य मित्त गुरुदत्त और हसराम थे और वह अक्सर उनके साथ आय समाज के बारे में बातचीत करते रहते थे। गुरुदत्त एक अदभुत व्यक्ति थे, उनकी उच्च बुद्धि, विभिन्न क्षेत्रों में विशाल ज्ञान भंडार और चर्चित कर देने वाली उनकी सबलतामुष्ठी प्रतिभा ने साजपत राय के मन पर गहरा प्रभाव डाला। परन्तु वे यह गुरुदत्त नहीं थे, जिन्होंने साजपत राय को आय समाज में शामिल किया, बल्कि एक अर्थ व्यक्ति थे, चाहे उनके पास बौद्धिक दार्ढ्य कम ही थे किन्तु उनका व्यक्तित्व चुम्बकीय था और व्यक्तियों के बारे में उनका अनुमान बिल्कुल ठीक होता था। वे थे साईं दास, लाहौर आय समाज के प्रधान। वह अपने मत के लिए नये मुरीद ढूँढने अक्सर होस्टल जाया करते थे और उन्हें इस बात की पूरी जानकारी थी कि जब उन्हें कोई होनहार नवयुवक दिखाई पड़ जाए, तो उसे बँरो आकर्षित करना है।

साईं दास ब्रह्म समाज की उम सभा में उपस्थित थे, जिसमें अग्निहोत्री ने साजपत राय को दीक्षा दी थी। जब वह सभा से बाहर आर, तो साईं दास उनसे मित्रों और तरफ भरी आवाज में बहने लगे कि एक अच्छा भला आदमी बेकार में ही गुमराह करने फास लिया गया है।

पंजाब ब्रह्म समाज की स्थिति संकट की आर बढ रही थी और तीनों गुट एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस कलह ने रोपड़ और जगराम में इस युवक को हकका-बकका कर दिया।

इस वक के अंत में लाहौर आय समाज अपनी बपगाठ मना रहा था। साजपत राय ने इस दूसरे समाज के बारे में अपने मित्रों, गुरुदत्त और हसराम, से बहुत कुछ सुना हुआ था। शार्पिक समारोह के अवसर पर, उनकी उत्सुकता उन्हें आय समाज की ओर ले गई। उन्होंने पहले कभी आय समाज नहीं देखा था। शार्पिक समारोह

के पहले दिन की बठक देखन के बाद वह दूसरे दिन भी वहाँ चले गए। दूसरे दिन के प्रमुख ब्यक्ति वह व्यक्ति थे, जो उन्हें भलि भाति जानते थे और जिनके मन में उनके लिए बहुत स्नेह था। वह उन्हें इमारत की छत पर एक ओर ले गये, ताकि वे उन्हें अपने भाषण का पांडुलेख दिखा सकें। युवा छात्र ने इस बात पर बड़ा गव महसूस किया कि उन्हें इतना महत्व दिया गया है।

साई दास ने उन्हें आय समाज में शामिल होने को कहा। साजपत राम महमत हो गये। साई दास का मुख अक्थनीय प्रसन्नता में चमक उठा।

6. आर्य : प्राचीन अंगूरी

एक बार आर्य समाज में शामिल होने की देर थी कि वह शीघ्र ही आंतरिक सलाहकारों में शामिल हो गये और अभी ज्यादा देर नहीं हुई थी कि वह प्रमुख पंक्ति के नेताओं में दिखाई देने लगे। लाहौर में आर्य समाज के अध्यक्ष, साईं दास न लाजपत राय को राजपूताना तथा संयुक्त प्रांत जाने वाले शिष्टमंडल के लिए चुन लिया। उन्होंने मेरठ, अजमेर, फर्रुखाबाद तथा अन्य स्थानों की यात्रा की, कई सांख्यिक मन्त्रालयों में भाषण किए, धन एकत्र किया और सभी स्थानों पर आर्य भाई बहुआ से मुताबात की तथा उनके साथ विचारों का आदान प्रदान किया। इस कार्य के साथ निकट सम्पर्क बढ़ने से पता चला कि समाज एक असाधारण संगठन है, जो धर्मोत्साही और गतिशील है। इसने सदस्य सुसंगठित और दृढ़ निश्चय वाले हैं, जो उस विशाल समुदाय के लिए जो बिखरे आटे की तरह पड़ा है, सम्भवतः खमीर का काम देगा। इससे लाजपत राय को वह माहौल मिला गया, जिसकी उन्हें काफी समय से तलाश थी। आखिरकार, वह वहां पहुंच गये जहां वह अपने आपको सहज स्थिति में महसूस करते थे।

वह आर्य समाज की धार्मिक या सैद्धान्तिक शिक्षा की श्रेष्ठता के कारण आर्य समाज की ओर आकर्षित नहीं हुए थे, यह तो इसके सदस्यों का देशभक्तिपूर्ण उत्साह और आयुक्त का इसकी प्राचीन शान फिर से दिलाने की आकांक्षा ही थी जिनसे उन्हें प्रेरणा मिलती थी, ऐसा उत्साह समाज की गतिविधियों में व्याप्त था, और इसके सदस्य इस आगे बढ़ते थे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कालिज के उनके निकट साधियों—गुरुदत्त और हसराम की संगति न उन्हें प्रभावित किया था। गुरुदत्त विलक्षण प्रतिभा के स्वामी थे, जिनकी उन दिनों अल्प चर्चा थी। बहुत छोटी आयु होने पर उन्होंने विज्ञान तथा दशनशास्त्र में गहरी रुचि दिखाई, जो उनकी आयु के सिंहास से बहुत असाधारण थी। वह तत्त्व-मीमांसा का एक गभीर छात्र बन गये थे। उन्हें भाषाएं सीखने की बहुत सुविधा थी। जब वह अभी स्कूली छात्र ही थे, तो उन्होंने किसी प्रौढ़ विद्वान, के समान संस्कृत का अध्ययन किया था। पश्चिमी दशनशास्त्र के अध्ययन से उनकी रुचि अज्ञेयवाद में बढ़ गई, जो पिछली शताब्दी के अंतिम दो दशकों के यूरोपियन विचारकों में आमतौर पर प्रचलित था। परन्तु उनके अज्ञेयवाद में विश्वास की

दलक भी शामिल थी। अध्यात्मवाद और इसके रहस्यवादी अनुभवा की आशाएँ उतने उतना ही वशीभूत करती थी, जितना अज्ञेयवाद और विश्वास का दी गई इसकी दौड़कतापूण चुनौतियाँ। उनकी योग में रुचि पैदा हो गई, संस्कृत व्याकरण की सूक्ष्मताओं और दशन ने उन्हें बेथम, मिल तथा हबट स्पेंसर से भी अधिक प्रभावित किया। फिर भी वह किताबी कीड़ा नहीं थे। वह ता अपनी पुस्तक की ओर केवल इस सीमा तक ही ध्यान देते थे कि उन्हें पढ़कर सतुष्ट हो सके तथा उन पर उचित दृष्टि से विचार कर सकें। वह चाहते थे कि जीवन तथा विचारा में एक रूपता रहे। उन्होंने एक रोजनामचा रखा हुआ था, जिससे उस निरंतर सघष की जानकारी मिलती है, जो इस सामजस्य को प्राप्त करने के लिए किया गया। शरीर निबल था, और अक्सर असफलता का कारण बनता था। इस ईमानदार व्यक्ति के लिए ऐसी प्रत्येक असफलता आत्म भत्सना का कारण बनती थी और रोजनामचे में इसका उल्लेख करना होता था—और इसके बाद होता था नया प्रयत्न। युवावस्था के आरम्भ में वह एक योगी से मिले थे, जब वह धार्मिक विश्वास तथा अज्ञेयवाद के बीच डाढ़ाडोल थे। योगी ने उन पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि वह एक शिष्य के रूप में उनके साथ जाना चाहते थे, परंतु मित्रा ने हस्तक्षेप किया और घर तथा मित्रा के बधन-याग के प्रति प्रेम से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। बताया गया है कि अज्ञेयवाद के साथ उनका अन्तिम सम्पर्क उम समय टूट गया, जब उन्होंने दयानंद को मृत्यु-शय्या पर देखा। समाज के संस्थापक ने मरते हुए एक ऐसे व्यक्ति का समाज में शामिल करने में सफलता प्राप्त की, जो उनके अनुयायियों में बहुत बुद्धिमान सिद्ध हुआ। गुरुदत्त सनकी स्थभाव के थे। कई बार सर्दियों के मौसम में बहुत गमिया के कपडे और गर्मियों के मौसम में सड़िया के कपडे पहन लिया करते थे। इस प्रकार की तपस्या से उतका उद्देश्य अपने मन तथा शरीर को सम्पूर्ण तथा आशाकारी उपकरण बनाना था। अपने सौर-तरीकों में मामूली सी बदला बदली करके उनके लिए गांधी बनना संभव था। उस समय से बहुत पहले जब गांधीजी ने स्वयं अपने आपको खाजा था और इस निखरे हुए गुरुदत्त से आप केवल गांधी ही नहीं, बल्कि और बुद्धिमान व्यक्ति बना सकते थे। पंजाब विश्वविद्यालय से निबल हुए छात्रों में से अद्य किसी ने इतना ध्यान आकर्षित नहीं किया, जितना गुरुदत्त ने। संभवतः हरदयाल इस मामले में एक अपवाद थे, वह एक बुद्धिमान व्यक्ति थे जिनके साथ लाजपत राय का लाहौर, यूरोप और अमरीका में काफी सहयोग रहा (अमरीका में हरदयाल के अनुयायियों तथा सहायकों के सहयोग से)।

दरअसल, वे दाता एव दूसरे स बट्टन मिसते-जुतते थे । व्यक्तिगत जान्ना म दोना मनमोजी थे और यही हालत उनके विचारा की थी । दोना म गभीरता बहुत अधिक थी । दोना मे बुद्धि और स्मरणशक्ति की विलक्षण प्रतिभा थी । उमुक्तता, ग्रहणशीलता, दृढ इरादा, भाषाओं तथा भाषण का शौक और तत्सम्पन्न विचारों न दाना की विचार-शक्ति का चरम सीमा तक पहुँचा दिया । वह एक धर्मविदुस दूसरे तक बहुत ज़रदी पहुँच जाते थे—ठेठ पूर्व से पश्चिम तक अतर्गण्ड्रीयवाद का भी बहुत पीछ छाड देने वाल महानगरीयवाङ् से बहुत ही सकीण तथा मौमिन राष्ट्रवाद तक, अज्ञेयवाद से सम्पूर्ण धार्मिक विश्वास तथा अध्यात्मवाद तक ।

दाना मे अपने आम पास ऐसे मित्र तथा प्रशसक एकत्र करन की दक्षता था, जो इनकी प्रशंसा करते नहीं सकते थे । दोना मे तपस्या की लगन थी । हृदयान की यह तपस्या अमरीका के पदायवाद और पेरिस के आमोद-प्रमोद मे भी प्रभावरहित रही । यदि गुरुदत्त के समान हृदयान न भी कोई डायरी रखी हो और यह डायरी एक दिन मिल जाए, तो यह बात देखना बहुत रचिपूण होगा कि क्या वह भी आत्म भत्सना से भरपूर है और क्या शरीर को बरूट देने की प्रतिज्ञा उसमे तार बार की गई ह ।

यागइशन तथा त्रियाआ मे जिन लोगो की रुचि है उनका उवदेश्य आमतौर पर ध्यक्तिगत भुक्ति है । परन्तु गुरुदत्त मे अपनी ब्यक्तिगत सम्पूर्णता ने इस प्रयत्न म सामाजिक तथा सामूहिक मूल्यों की उपेक्षा नहीं की । यद्यपि उनकी गणना 'राजनीतिक विचारा' वाले लागो मे नहीं की गई, फिर भी उनमे देशभक्ति की कोई कमी नहीं थी । छात्र जीवन मे वह अपन मित्र साजवत राम के समान परीक्षाओं के प्रति उदासीन ही रहते थे, परन्तु अपनी अधिक अकाल प्रीयता क कारण किंगो भी परीक्षा म बैठन वाले प्रतियोगिता का पछाड देन थे । यह राष्ट्रन वेदा आर पश्चिमी विचारा तथा आधुनिक विज्ञान का समान रुचि मे अध्ययन करते थे । 1886 म उन्होंने भौतिक विज्ञान म एम० ए० की परीक्षा पास की आर विश्वविद्यालय जीवनकाल म शान्तार वाय क वजह से उह गयनमैठ कानिज, राहोर म भातिक विज्ञान के महायक प्रोफेसर की नौकरी मिल गई । जसा कि उनके रोजनामके मे पता चलता है कि वह इस नौकरी पर बने रहन तथा प्रमे छोडकर योग ध्यान के क्षेत्र म मध्युणता प्राप्त करन के विचार मे डबाडोल रहे ।

भाषण देकर, लिखकर, सगठन का काय करने, अगुवाई करने तथा अपन मित्रा एव प्रशसकों के विमाल क्षेत्र में अपन चुम्बकीय व्यक्तित्व का लाभ उठाकर सारे समय यह आय समाज के लिये परिश्रम करते रहे। उनकी दौढ़िक प्रतिभा तथा सफनताआ और हममें भी अधिक् उनकी गभीरता तथा वफादारी न अपन निजी हिता का बलिदान देने के लिए तैयार रहने के उनके गुणा ने मवमें अधिक् युवा साजपत राय को प्रभावित किया। अपन जीवन में हर कदम पर साजपत राय स्वयं उनकी सलाह लेते थे। सेवा नियमों से अलग गुरुदत्त का मुकाबल राजनीति के क्षेत्र से भी हटकर था। प्रत्यक् राजनीतिक गतिविधियां ता अभी आरम्भ नहीं हुई थी—कम से कम पजाब में और यदि कोई ऐसी गतिविधि होती भी, ता सभय था कि “अपने विचारों में धायै हुए” गुरुदत्त हम “दहाडती चिंघाडती भीड़-भाड़ को विना देखे पास से गुजर जाने देते”। परंतु ध्यापक दृष्टि से यह देशभक्त थे आर उनके काय क्षेत्र में आन वाला पर जिम ससग का प्रभाव पडता था, उसमें देशभक्ति का जोश अवश्य होता था। साजपत राय को गुरुदत्त की उच्चकोटि की वाद्विक सफनताआ या ध्यक्निगत सम्पूणता के लिए किए गए यागिक प्रयत्ना न उतना आकृष्ट नहीं किया, जितना हम आदरावाद न कि हर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बलिदान की आवश्यकता हाती है। सभय है उहोन योगिक प्रयत्नों की भी प्रशसा की हा—चाह कुछ दूरी से ही सही और इसके अनुमरण के लिए कुछ मुकाब भी रहा हा। समाज के लिए पैम्फलेट प्रकाशित करने के जाश में उस समय गुरुदत्त अंग्रेजी की एक पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे, इसका नाम बहुत ही उपयुक्त ढंग से रिजेंट रेटर आफ आर्यावर्त’ (आर्यावर्त का पुनर्जीवन) रखा गया था, जा बहुत हद तक दशभक्ति के उद्देश्य की आर सवेत करता था। साजपत राय के आय समाज में शामिल होने में, गुरुदत्त के देशभक्ति पत्र का कई कम दखल नहीं था। अपना ध्यवसाय चुनन में वह गुरुदत्त से मशरिरा लेते थे। एक मौका ऐसा आया, जब उन्हें यह निणय करना था कि क्या वह कानून का पेशा छोडकर अपने आपको उस शिशा आन्दोलन के लिए अर्पित कर दें, जो समाज द्वारा शुन किया जा रहा था। प्रस्नाव यह था कि हमराज मुख्याध्यापक के तौर पर काय करें, (क्याकि उहोने अभी हाई स्कूल शुरू किया था, कालिज तो वाद में खुलना था) और साजपत राय उनसे दूसरे स्थान पर काय करने वाले सहयोगी हो। वह स्वयं भी सकाच में पडे हुए थे। हसरज न बी० ए० की डिग्री प्राप्त की हुई थी— यह प्रमाणपत्र उन दिनों बहुत ही कम होता था—साजपत राय के पास शिक्षा की कोई उपाधि

गहा थी। उन सोना न इस मामले पर विचार किया और अन्त में यह निणय किया गया कि साजपत राय अपना कानूनी व्यवसाय जारी रखकर कालिज के लिए अधिक उपयोगी मिद्ध हो सकते हैं।

गुरुदत्त के मामल भी व्यवसाय के चुनाव का प्रश्न था—मासिक व्यवसाय को त्यागन का चरम विकल्प इनस अलग था। वह “एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर” बन सकते थे, अर्थात् प्रातीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी। उन्हें यह पेशकश भी की गई। वह प्रशासनिक सीढ़ी पर एक-एक कदम चढ़ते और अपनी अद्वितीय प्रतिभा के साथ उस उच्च स्तर तक पहुँच जाते, जिस स्तर तक उन दिना किसी भारतीय का पहुँचने की अनुमति थी। कुछ गभीर मान विचार के बाद उन्होंने फैसला किया कि कालिज में पढ़ाना उनके लिए बहुत उपयुक्त है। अतः उन्होंने अपना काम जारी रखा, यद्यपि वह डी० ए० बी० कालिज समिति के एक प्रमुख सदस्य भी थे।

गुरुदत्त ने अपनी इच्छा में गरीबी का जीवन व्यतीत किया। उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ बहुत ही कम थी जो बड़ी आसानी से पूरी हो जाती थी। उनके बेटन का बड़ा भाग दूसरे लोग की महामयता पर या फिर पुस्तकें खरीदने पर खर्च होता था, जिनके लिए उनके मन में सदा उत्साह रहता था। धन जमा करने का वह पाप समझत थे और उनकी मृत्यु के समय पता चला कि उन्होंने अपनी पत्नी तथा बच्चा के लिए भी कुछ नहीं बचाया।

गुरुदत्त की मृत्यु से पूरा ही आय समाज में का विचारधाराएँ पैदा हो गई थी। एक विचारधारा के दो लोग थे, जिनका दृष्टिकोण आधुनिक कहा जा सकता है, जो इस ढंग से विचार करे कि क्या यथाथ तथा व्यावहारिक है, यह नहीं कि धर्मग्रन्थ किन बात की आज्ञा देते हैं सिद्धान्त क्या है और मतवाद क्या है? दूसरी विचारधारा इस व्यावहारिकता की निंदा करती थी और बिल्कुल सिद्धान्तों के अनुसार तथा धर्म ग्रन्थ के अनुसार चलने के पक्ष में थी। सामान्य तौर पर यह विश्वास किया जाता था कि गहली विचारधारा दृष्टिकोण के पक्ष से अधिक राजनीतिक तथा देशभक्तिपुण थी, जबकि दूसरी विचारधारापर धर्मसिद्धान्त तथा धर्मविज्ञान छाया हुआ था। पर गुरुदत्त का दोना पक्ष के लोग बहुत आदर करते थे। उनके अन्तिम दिना में दोना पक्ष के बीच की दूरी प्रत्यक्ष रूप में और भी बढ़ गई थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके प्रति सबसे बड़ी श्रद्धा जलि यह थी कि दोना पक्षों ने अपने समयन में उनका हवाला दिया। अपने प्रिय

मित्त के प्रति लाजपत राय की व्यक्तिगत श्रद्धाजलि जीवन कथा के रेखाचित्र के रूप में थी, जो 'रुबे' के दशक में आरम्भ में अंग्रेजी तथा उर्दू, दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुई। यदि हम आय समाज के लिए प्रकाशित की गई कुछ-एक पुस्तकों का छोड़ दें, तो यह श्रद्धाजलि-लेख लाजपत राय की प्रथम रचना कहा जा सकता है। हिसार के दिना में लिखी गई छोटी पुस्तिकाएँ तथा जो, पैम्फलेट फौजदारी अदानतों तथा मुकदमोंबाजी के धार में थे, इनसे अलग हैं।

यह किसी भी दृष्टि से उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक नहीं थी। अभी उनमें एक लेखक का कौशल नहीं आया था और इस पुस्तक में आदि से अंत तक एक गैर-पेशेवर व्यक्ति तथा जल्दबाजी के निशान बिल्कुल स्पष्ट थे। परन्तु यह बात प्रत्यक्ष रूप में देखी जा सकती है कि इस पुस्तक के गवाहपत्रों से भी भावनाओं की कोमलता की झलक मिलती है। यह महत्व की बात है कि लाजपत राय ने एक लेखक के तौर पर अपना जीवन 'जीवनकथा' नामक एक निबन्ध लिखकर आरम्भ किया। जीवन के अन्त तक जीवन-कथाओं के प्रति उनकी गहरी रुचि बनी रही। एक लेखक के बहुत लोकप्रिय रूप में, बाद में उन्होंने कई जीवन कथाओं पर अपनी कलम चलाई। उनमें में कई तो बहुत लोकप्रिय भी रही और जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, राष्ट्रीय चेतना जगाने में उनकी पुस्तकें भी सबसे अधिक योगदान उर्दू में लिखी गई 'मैजिनी की जीवन-कथा' का था।

लाजपत राय के कालिज के दिनोंमें दूसरे गहरे मित्त हसराम स्वभाव में गुददत्त से बिल्कुल उलट थे। उनमें गुददत्त जैसी अचभित करने वाली प्रतिभा तो नहीं थी, परन्तु उनमें कुछ ऐसे गुण थे, जिनके कारण उनके स्वभाव में अधिक स्थिरता थी। वह भी कालिज में दाखिल होने से पूर्व आय समाज में शामिल हुए, परन्तु उन्हें किसी संस्कृत पठित ने अपनी ओर आकर्षित नहीं किया और न ही उन्हें योग की संस्कृति में अधिक रुचि हो सकती थी। वह दूसरों की सेवा करने की अच्छी भावना से प्रेरित हुए थे। वह यह कार्य होशियार और व्यावहारिक व्यक्ति के समान करना चाहते थे, ऐसे आदर्शवादी व्यक्ति की तरह नहीं, जो इन विचारों को तब सगत सीमा तक पहुँचाएँ या तुरन्त पूर्णत्व दृढ़ता हो। वह अपने आस पास जोशीने युवकों की मण्डली तो जमा नहीं कर पाएँ, परन्तु उनमें मामला की व्यवस्था कर पाने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने सदा यहाँ तक कि गरीबी और सेवा का जीवन चुना। जब डी०ए०वी० कालिज की कल्पना की गई, तब उन्होंने अपने आपको इस संस्था के साथ घनिष्ठ रूप से जोड़ लिया, लगभग उसी

प्रकार जैसे मसीह के अनुयायी करते हैं। उनके आलाचका या कहना है कि यह सस्था तो एक साधन मात्र बनार्द गई थी, न कि अपने आप में एक उद्देश्य, किंतु हसरराज ने इस साधन को ही उद्देश्य मान लिया। दुष्ट की बात है कि सम्प्रदाय के प्रति भय कुछ मर्मपित करने वाला के साथ ऐसा ही होता है। हसरराज की विशेष क्षमता सगठन की थी। जो मस्था उन्हें गौपी जाती, वह उसका पूरे ध्यान से, इंच इंच करने निर्माण करत और ऐसा करते समय ब्यौरा के बारे में निष्ठा के साथ अति मावधान रहते। उनकी यह निष्ठा पूजा के स्तर तक पहुँची हुई होती थी, जो ईर्ष्यापूर्ण ढंग से कई बार प्रतिमा की रक्षा करते हुए ऐसे महान गतिशील आन्दोलन में स्वावट डाल देती, जिसमें राष्ट्रीय आकाक्षा होती थी।

हसरराज की तत्व भीमामा अथवा धर्म विज्ञान में कोई रचि नहीं थी और न ही वैदिक व्याकरण अथवा व्याख्या में। उनके लिए इतना ही काफी था कि नियति ने यह निश्चित कर दिया था कि आय समाज हिंदू समाज का मायता नितान के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। दूसरे शब्दा में वह आय समाज की ओर देशभक्ति के कारण आकर्षित हुए थे इसके दणन, धर्म, अथवा सैद्धांतिकता के कारण नहीं।

साजपत राय पूणत्व के आदर्शवाद और वायसाधकता के दा सिरा के मध्य खडे थे, परंतु आय समाज के सामने उपस्थित समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण गुरुदत्त की बजाय हसरराज के अधिक निकट था। हसरराज की तरह उनके लिए आय समाज की सबसे बड़ी योग्यता इसके सामाजिक, शक्षिक तथा कल्याण कार्यों में तथा हिंदू समाज में देशभक्ति की चेतना जगाने के कारण थी।

इन तीनों की मित्रता के लिए और संयोग से डी० ए० वी० कालिज के लिए यह अच्छा था कि उनकी गतिविधियाँ के क्षेत्र अलग अलग रह। साजपत राय ने अपना जीवन डी० ए० वी० कालिज की सेवा के लिए समर्पित करने का इरादा किया था, जैसे हसरराज ने किया। परन्तु विश्वविद्यालय की डिग्री न होने के कारण उन्हें हमेशा के लिए हसरराज का अधीनस्थ बनना था। इसी प्रकार यह सुझाव भी दिया गया था कि गुरुदत्त डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसिपल बन जाए। यदि ऐसा हो जाता तो उससे परिणाम अनपकारी होते। तीना मित्रों का स्वभाव इतना भिन्न था कि वह एक टीम के तौर पर कार्य नहीं कर सकते थे। किसी में किसी स्थिति में पहुँचकर उनमें मतभेद अवश्य होते और ऐसा होना उनकी मैत्री तथा मस्था के लिए, जो तीना को बहुत प्रिय थी, विनाशकारी सिद्ध होता।

7. आर्य समाज में प्रारम्भिक प्रशिक्षण

युवा राजपत राम आर्य समाज के मिदघाता का अपन म उमी प्रकार ममा रहे थे, जिन प्रकार बाई बहुत प्यासा पानी पीता है— ये थे मिदघालत थे, जा आय समाज का मून आधार थे, मताध मिदघान्ता का मग्रह भर नहीं । उनके दृष्टिकोण का ममज्ञा के लिए यह आवश्यक है कि शताब्दी के अन्तिम दो दशका में समाज की विचारधारा को ममज्ञ लिया जाए । उन वृद्ध व्यक्तियों के बारे में जान लेने की भी कुछ और आवश्यकता है, जो समाज के भाग्य की अगुवाई कर रहे थे ।

मरसे प्रथम मार्द दाम थे, जा उम समय लाहीर जाय समाज के अध्यक्ष थे और वे ही राजपत राय को आय समाज में शामिल करने के लिए जिम्मेदार थे । समाज के उद्देश्य की उनके मन में क्या धारणा थी ? क्या उनकी गहन रचि धर्म, विज्ञान या तात्विक सूक्ष्मताओं में अधिक थी या योग अध्ययन में अथवा व्यक्तिगत सम्पूर्णता और आत्मा की मुक्ति के लिए तपस्या करने में ? या इन सब बातों में सम्मिलित रूप से रचि थी; बल्कि अधिक रचि इस बात में थी कि यह समाज द्वारा अपन लोगो की, धर्म निरपेक्ष रूप में सामाजिक प्रोक्षित तथा कल्याणकारी काम करके, उनमें देशभक्ति तथा आत्म निर्भरता की भावना पैदा करे । वह एक सरकारी कार्यालय में बनब के पद पर काम करते थे । वह प्रत्यक्ष रूप में निमी राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं ले सकते थे । हमने यह भी नहीं सुना कि उन्होंने अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए कभी किसी यागी का पीछा किया । उनकी बुद्धि में ससृष्ट व्याकरण तथा धर्म विज्ञान की विद्वता भरती हुई थी । परंतु वह आय समाज के सबसे अधिक चतुर व्यक्तियों में थे और उनमें व्यक्तिया तथा मामलों को समझने की अलौकिक प्रतिभा थी । उनमें अधिक व्यवहार कुशल तथा ज्यादा सूझ-बूझ वाला व्यक्ति मिलना कठिन था । वह बुद्धिमान होने का दावा नहीं करते थे, परंतु विशेष बात यह है कि वह स्वयं लेखक भी थे । उन्होंने जो एकमात्र पुस्तक लिखी, वह बदिन सिदधान्ता या आय दर्शन के बारे में नहीं थी, बल्कि अजीब बात यह है कि वह पुस्तक फ्रांसिस बेवन् के निवद्यो का अनुवाद थी । शायद इससे यह संकेत मिल सके कि आय समाज के इस महान नेता का जीवन-दर्शन क्या था ।

वाद के वर्षों में इस बात को लेकर बहुत विवाद हुआ कि आय समाज राजनीतिक आंदोलन है या धार्मिक। मंच बात तो यह है कि आर्य समाज के सस्थापक एक राजनीतिक नहीं, बल्कि एक धार्मिक व्यक्ति थे और इसके बावजूद उनके मारे कार्यों में देशभक्ति की स्पष्ट झलक मिलती थी। उन्होंने अपने आस-मास ऐसे बहुत से व्यक्तियों को आकर्षित कर लिया था, जो उनकी देशभक्ति, ज्ञान तथा आध्यात्मिक सफलताओं के कारण आकर्षित हुए थे और जिनके लिए देशभक्ति एक प्रकार से धर्म था और देशभक्ति के बिना उनके लिए धर्म का कोई अर्थ नहीं था। इन व्यक्तियों में कुछ एक ने अपने निहित झुकावों के कारण बाद में आने वाले राजनीतिक आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। परन्तु यह कहना बिल्कुल बेहूदी बात होगी कि आय समाज एक प्रकार की राजनीतिक विचारधारा के लिए एक धार्मिक मुखौटा पहनकर आया था, या समाज एक अधगुप्त राजनीतिक आन्दोलन था, जिसने अधिकारियों को छोटा देने के लिए धर्म का लबादा ओढ़ा हुआ था। हम यह याद रखना है कि दयानन्द को आय समाज का सस्थापक कहना उचित ही है, परन्तु आंदोलन और संगठन के रूप में समाज दरअसल स्वामी तथा उनके कई अनुयायियों तथा मित्रों के संयुक्त विचार-विमर्श का परिणाम था। इन अनुयायियों तथा मित्रों में से कई समाज-सुधार तथा देशभक्ति को सबसे अधिक महत्व देते थे। समाज के मूल सिद्धांत—दस मूल नियम—तथा समाज का नविधान मुख्य तौर पर उनके पञ्जाबी सलाहकारों तथा प्रशासकों ने तैयार किये थे, इनमें से प्रमुख राय बहादुर मूलराज थे।

अपने मूल विषय से हटकर मूलराज के बारे में जान लेना हमारे लिए लाभकारी रहेगा, क्योंकि समाज के अर्थ नेताओं के मुकाबले उनके विचार अधिक स्पष्ट हैं और उन्होंने, चाहे वह मुख्य तौर पर सामने नहीं आए, विशेष महत्वपूर्ण शोधित योगदान दिया। वह इस बात में सावधान रहते थे कि अपनी बात उच्च स्वर में न कहें, परन्तु जो कहें, वह स्पष्ट स्वर में हो। उन्हें यह बात आती थी कि किस प्रकार यह आंदोलन के मुख्य व्यक्तियों पर अमर टालकर अपने आपका प्रभावशाली बनाए। राजनीतिक नेता बनने की आकांक्षा उनमें नहीं थी फिर भी उन्होंने पृष्ठभूमि में रहकर कई आंदोलनों को प्रभावित किया। वह अपने देश की राजनीतिक भुक्ति के लिए बहुत मोचत थे। बाद के वर्षों में साजपत राय कहा करते थे कि मूलराज ने गांधीवादी अमहयोग आंदोलन के सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों की उम्र समय बतपना की जब गांधीजी अभी स्कूली-छात्र ही रहे होंगे। परन्तु यह

साहसी काय करने के लिए बन्नी नहीं जान गए । यह स्वयं सरकारी सेवा में थे, यद्यपि अपने सम्पत्त में आने वाले सभी युवकों को यह शिक्षा दिया करते थे कि वे इस प्रकार के जीवन के पीछे न भागें । वह उस समय, जब बटवारे से पूर्व स्वदेशी आन्दोलन का जन्म भी नहीं हुआ था, स्वदेशी के प्रचारक थे । उन्होंने इस बात की भी पल्पना की कि स्वदेशी के हित में सरकार के साथ राजनीतिक असहयोग के साथ-साथ औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण भी किया जाना चाहिए । अपनी आत्मकथा में लाजपत राय ने मूलराज के बारे में लिखा है

“राय मूलराज—वह राय बहादुर थे—अपने पास यूरोप के गुप्त सगठनों का इतिहास रखते थे, जो दो भागों में था । यह पुस्तक उन्होंने किसी पुस्तकालय से मागी हुई थी । उन्होंने यह सारी पुस्तक पढ़ी । मैंने भी इस पुस्तक के कुछ पन्ने उन्हीं के पास पढ़े । मूलराज ने मुझे यह पुस्तक अपने साथ घर ले जान की अनुमति नहीं दी थी ।”

बाद में लाजपत राय ने यह पुस्तक इंग्लैंड से प्राप्त कर ली और अपनी जिज्ञासा पूरी कर ली ।

स्वदेशी की भावना के इस आरम्भिक प्रवक्तक ने भारत को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त कराने की इच्छा तो की, परन्तु उनका हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास नहीं था । लाजपत राय के शुरू के दृष्टिकोण पर मूलराज के प्रभाव का पता आत्मकथा के एक अंश से चलता है, चाहे उसका नाम नहीं दिया गया

“1889 के बाद कांग्रेस के प्रति मेरी उपेक्षा का कारण मेरे आय समाजी मित्रों की राय के कारण था । 1889 के बाद मुझे एक आदरणीय मित्र के साथ रहने का विशेष अवसर मिला, जो कांग्रेस के बट्टर विरोधी थे । उनके विरोध के कुछ कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं

1 कांग्रेस की स्थापना कुछ अंग्रेजों ने की थी, क्योंकि अंग्रेज अपने देश से प्रेम करते हैं, इसलिए यह संभव नहीं कि कांग्रेस भारत को आजादी दिलाएगी । अंग्रेजों को भारत में अपने राज से बहुत लाभ होते हैं, इसलिए यह असंभव है कि वे रजामंदी से भारत को आजाद कर देंगे । इस बात के भय से कि कहीं बुद्धिजीवी वर्ग गहरा राजनीतिक आन्दोलन शुरू न कर दे, जो इंग्लैंड की प्रभुसत्ता को चुनौती दे, उन्होंने बुद्धिजीवी वर्ग के लिए एक ऐसे व्यवसाय की व्यवस्था कर दी है, जिससे कोई हानि होने का भय नहीं और जिससे यह वर्ग दास-ताना दिन

“भाषण झाडकर” छुश हो जाएगा और समाचार-पत्रा मे अपना नाम देखकर प्रसन्न होगा। उन दिना यह युवक प्रत्येक अंग्रेज का भारत का शत्रु समझता था। वह कांग्रेस को केवल बेकायदा ही नहीं, बल्कि भारत के हिता के लिए हानिकर भी समझता था। उसके विचार मे उस समय भारतीयों के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि वह शिक्षा प्राप्त करके तथा स्वदेशी का प्रचार करके अपने आपको शक्तिशाली बनाए और चारी छिपे देश मे शस्त्र लाए और उस समय तक प्रतीक्षा करे, जब तक वह इतने शक्तिशाली नहीं हो जाते कि अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल सकें।

2 इस भद्र पुरुष का हिंदू मुस्लिम एकता मे कोई विश्वास नहीं था। उसका विश्वास था कि ऐसी एकता से हिंदुआ की हानि होगी। हिंदुओं मे आतिरिक्त एकात्मकता, धार्मिक उत्साह और साम्प्रदायिक आत्म सम्मान की कमी थी, जब कि मुसलमानों मे ये गुण बहुत अधिक थे। इसलिए एकता के ऐसे प्रयत्न से उन्हें सदा लाभ होगा। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान, तुर्की तथा अन्य देशा मे मुसलमानों को सत्ता प्राप्त थी। इसलिए एकता के प्रयत्न से मुसलमान राजनीतिक तौर पर बहुत शक्तिशाली हो जाएंगे। उसे तो ऐसा दिखाई देता था कि मूल आवश्यकता इस बात की है कि हिंदुओं को शक्तिशाली बनाया जाए और उन्हें एकात्मकता का भाग दिखाया जाए और उनमें राष्ट्रीय जोश की भावना भर दी जाए। उसकी दलील यह थी कि कांग्रेस आंदोलन मे हिंदू सुधार मे सगने वाली शक्ति का रुख मोड़ दिया जाएगा और हिंदू व्यर्थ काय मे व्यस्त हो जाएंगे।

3 एक और दलील यह थी कि राजनतिक आंदोलन से अंग्रेजों की दृष्टि मे हिंदू सदेहजनक हो जाएंगे, इसलिए वह केवल हिंदुओं की प्रगति मे बाधा ही नहीं डालेंगे, बल्कि हर संभव ढंग से उन्हें हानि पहुंचाएंगे।”

आय समाज के नेता सामान्य तौर पर इन विचारों मे सहमत थे, जो मूलराज, साई दास तथा लालचन्द का सामान्य धर्ममत था (लालचन्द बाद मे पंजाब के मुख्य न्यायालय के न्यायाधीश बने)। वह तीना सरकारी कर्मचारी थे। हमें बताया गया कि साई दास 1881 मे भी केवल स्वदेशी पहनते थे और स्वदेशी का ही प्रचार किया करते थे। मूलराज भी स्वदेशी मे विश्वास रखते थे यद्यपि यह इसका प्रयाग करने मे साई दास की तरह कट्टर नहीं थे। उनके मुता सह योगिया मे स हसराम ने छोटी उम्र से ही स्वदेशी को अपना लिया था। आय

समाज के प्रमुख व्यक्ति, बंगाल और महाराष्ट्र में इस आन्दोलन का जन्म होने से भी बहुत पहले से, स्वदेशी का प्रचार करते थे। उन सभी को स्वदेशी के इस्तेमाल के लिए समाज ने प्रेरित नहीं किया था, संभवतः, उनमें से कई तो समाज में शामिल होने से पूर्व स्वदेशी-प्रेमी तथा देशभक्त बन गए थे। इस बात में बहुत कम मदेह हो सक्ता है कि इन लोगों को समाज की शिक्षा, गतिविधियाँ, और सम्पूर्ण वातावरण में तथा अपने स्वदेशी दृष्टिकोण में बहुत समरूपता दिखाई देती थी। इनमें से कुछ ने तो ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने के बारे में, कांग्रेस द्वारा ऐसा विचार करने से कोई पचास वर्ष पूर्व ही सोचा था।

हम लाजपत राय की आत्मकथा में पढ़ते हैं

“लाला साई दास तथा लाला मूलराज को अक्सर इस बात का दुःख होता था कि भारत की उच्चकोटि की प्रतिभाएँ विदेशी साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए इस्तेमाल की जाती रही हैं। वे बहुत ही प्रतिभाशाली भारतीय छात्रों को सरकारी नौकरी में आने से रोकते। साई दास ने इसे बहुत गभीरता से महसूस किया कि काशी के पंडितों को लाड रिपन की गाड़ी खींचकर हिंदू धर्म का अपमान नहीं करना चाहिए था। उनके विचार में हिन्दुओं की सावजनिक नतिकता का चरम बिंदु उनके धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों और शैक्षिक मामलों में था, जिनका सरकार या अंग्रेजों के साथ कोई सरोकार नहीं होना चाहिए था और उनसे धन, सलाह भण्डारे या पथ प्रदर्शन के रूप में कुछ नहीं लेना चाहिए था। हिन्दुओं को, जो कुछ भी चाहिए, उन्हें अपने ही प्रयत्नों से प्राप्त करना चाहिए और उन्हें अपने आप में आत्मनिर्भरता की भावना अवश्य पैदा करनी चाहिए।”

इन महास्वी व्यक्तियों का राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर “हिंदू राष्ट्रवाद” था। अभी उन दिनों की याद बहुत ताजा थी, जब मुसलमान शासक हुआ करते थे और हिंदू उनकी प्रजा। आय समाज के इन नेताओं के दिलों में देशभक्ति की ज्योति हिंदू जाति की भ्रष्ट स्थिति को देखकर और भडकती थी।

अस्ती के दशक में साई दास ने आय समाज के लिए किसी अन्य व्यक्ति के मुकाबले अकेले बहुत अधिक काय किया। आप कह सकते हैं कि उनके धर्म में तीन चौथाई राजनीति हिन्दू जाति के लिए थी और यदि यही धर्म था, तो उनकी राजनीति केवल धर्म था।

ये कुछ व्यक्ति थे, जिनके साथ युवा लाजपत का निकट सम्पर्क हुआ। उनकी चोटिया चाहे कुछ भी हों, वह एक गतिशील मण्डली थी, जिसने घटनाओं का रूप देने में सहयोग करने के लिए दृढ़ निश्चय किया हुआ था। यही तो सगति थी, जिसके लिए लाजपत राय की आत्मा लालायित थी। युवा लाजपत राय दृढ़, गभीर तथा गतिशील कायकर्ता थे जिनकी समाज को ज़रूरत थी। इसी कारणवश उन्होंने आने वाले कई वर्षों में अपने को काय करने में जोड़ दिया और जब वह समाज से भी आगे बढ़ गए और उनका साथ छूट गया, तब उन्होंने न तो अपने दृष्टिकोण से समाज के प्रभाव को हटाया और न ही अपने कामकाज के ढंग से इसे दूर किया। अपने जीवन के बाद के वर्षों में उन्होंने सावजनिक गतिविधियाँ के लिए, जो भी क्षेत्र चुना, वह इस बात को भूल नहीं पाए कि उन्होंने प्रारम्भिक प्रशिक्षण आय समाज में प्राप्त किया है। आय समाज में उन्हें सबसे पहले सावजनिक वक्ता के रूप में, एक पत्रकार के रूप में, सामयिक विषयों पर छोटी छोटी पुस्तिकाओं के लेखक के रूप में, जीवन कथा के रचयिता के रूप में, उर्दू तथा अंग्रेजी लेखक के तौर पर प्रशिक्षण मिला। वही पर उन्होंने आन्दोलनों का नेतृत्व करने, बड़ी संस्थाओं का संगठन करने, उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अकाल पीड़िता तथा भूकम्प पीड़ितों के लिए सहायता व्यवस्था की अगुवाई करने और यतीमा के लिए, जो "जीवन के तूफान के कारण परित्यक्त" थे, आश्रम स्थापित करके उन्हें मान्य नागरिक बनाने का कार्य करने की शिक्षा ली थी। आर्य समाज में ही उन्होंने लोगों के दिलों को जीतने वाली वह भाषण कला सीखी जिसे सुनकर उनके श्रोता महान उद्देश्यों तथा संस्थाओं के लिए अपनी जेबें खाली कर दें।

8. नगरेतर वकील के रूप में हरियाणा के कस्बों में

यह प्रशिक्षण बहुमूल्य तो था, परन्तु जीवन की समस्या हल करने में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिली थी। उन्हें शिक्षा का लाभ देने के लिए उनके पिता ने बहुत बड़ा बलिदान किया था और सारे परिवार को काफी कष्ट झेलने पड़े। 1881 में उन्होंने मुख्तार की योग्यता पूरी कर ली थी। अन्य बातों में बहुत अधिक व्यस्त होने के कारण उन्होंने आर्ट्स के विषयों में विश्व विद्यालय की डिग्री परीक्षा पास नहीं की थी। इसी बीच वह विवाहित व्यक्ति बन गए। अब उनके लिए यह अनिवाय था कि कुछ कमाई कर और अपने पिता को कुछ राहत दें, जिन्होंने बहुत मामूली आय पर एक बड़े परिवार का पालन-पोषण किया था। पिता बेसवरी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब उन्हें राहत मिलेगी, जिसकी उन्हें बहुत आवश्यकता थी। बेटे के दिमाग पर लागू की सेवा करने की धुन सवार थी, लाखों बेचारे और बेसहारा लोगों की सेवा करने की धुन, फिर भी वह अपने परिवार की कठिनाइयों की अनदेखी नहीं कर सकते थे और वह अपने पिता के कृतघ्न बनकर जीवन आरम्भ नहीं करना चाहते थे। वह उन दो विचारों के बीच की पराकाष्ठा में जी रहे थे, जो उन्हें विपरीत दिशाओं में खींच रहे थे।

उनका मन पुस्तकों से उचट गया। "मेरी आत्मा बहुत ऊंचा उड़ना चाहती थी, परन्तु मेरे माता-पिता की गरीबी तथा कठिनाइयों मुझे निराश कर देती थी। बार-बार दंड-विधान की कोई अन्य पुस्तक मेरे सामने खुली पड़ी होती और मैं अपने विचारों में अतीत की किसी सावजनिक सभा में फिर किसी भाषण का कोई भाग पूरा कर रहा होता था।" उन्होंने अपना जीवन लोगों की सेवा के लिए समर्पित करने के बारे में सोचा। उन्होंने अपने आपका इसने लिए प्रशिक्षित करने का प्रयत्न किया और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के स्थान पर स्वयं तैयार की गई परीक्षाओं में पास होने की कोशिश की। परिस्थितियाँ उन्हें धरती पर गड़े ठूठों के साथ बांधे रखतीं, जब कि उनकी आत्मा ऊंचे, बहुत

ऊचे उडना चाहती थी। इन परिस्थितियाँ में अन्तिम निणय उही के पक्ष में होता था। कमाई शुरु करने के लिए उन्हें मुखतार के तौर पर काय आरम्भ करना ही पडा।

वह अपने छोटे कस्बे जगराव चले गये, ताकि वहा की अदालत में मुखतार के तौर पर काय शुरू करे। परन्तु उन्हें वह कस्बा और व्यवसाय दोनों ही अच्छे नहीं लगे। यह स्थान उनके लिए बहुत छोटा था। वह बहुत तेजी से उससे आगे बढ़ गये। उस छोटे कस्बे में, बड़ी समस्याओं के बारे में सोचने वाला कोई न था, और न ही ऐसा कोई सम्पर्क था जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले। इससे उन्हें घुटन सी महसूस होने लगी। उनकी आत्मा हतोत्साहित या महसूस करने लगी। मुखतार का काम तो और भी अधिक अरुचिकर लगा—जगराव से भी वही अधिक अरुचिकर, क्योंकि वह बहुत अपमानजनक था। उनकी आत्मा तो राजपूतों की धीर गाथाओं पर पत्ती थी। क्या कोई राजपूत मामूली से अधिकारों वाले मामूली कर्मचारी की, जो गुस्ताख हा, जी हुजूरी कर सकता था? फिर भी, यदि उन्हें वहा सफलता प्राप्त करनी थी तो उन्हें राजपूतों वाली ये सारी बातें अपने दिमाग से निकाल देनी जरूरी थी।

वह जगराव से ऊब गये और स्थिति में थोडा बहुत सुधार करने के लिए वह रोहतक चले गये, जहा उन दिना उनके पिता नियुक्त थे। रोहतक, जगराव के मुकाबले में बड़ी जगह थी और जी-हुजूरी से उनकी घणा जिला मुख्यालय में शायद उतनी बड़ी बाधा न हो सकी, जितनी जगराव में थी।

उन्होंने मुखतार के अपमानजनक काम को बहुत गभीरता से महसूस किया और यह भी महसूस किया कि यदि वह बकायत के पेशे में ही काय करेगा, तो अवश्य ही बकीलों की ऊची श्रेणी में करेगा। उन्होंने 1883 में यह परीक्षा पास करने का प्रयत्न किया था, परन्तु कई अन्य कार्यों में व्यस्तता के कारण सफल नहीं हो पाये। उनके पिता ने एक बार फिर कोशिश करने की प्रेरणा दी तथा उनकी अपनी सवेदनशील आत्मा ने भी, जो अपमानित महसूस कर रही थी, उन्हें पुन उबारा। परन्तु, अब फिर वह अपना समय मुखतार के काय, रोहतक आय समाज के लिए काय करने तथा परीक्षा के लिए तयारी करने में बांटने लगे जिसका परिणाम यह हुआ कि इस बार फिर वह उन 55 छात्रों में शामिल थे, जो फेल हो गए थे, उन दस में नहीं जो पास हुए थे। यदि उन्हें

तीन अक और मिल जाते तो बात बन जाती । यह असफलता हतोत्साह करने वाली थी, परन्तु उनके पिता ने एक बार और कोशिश करने पर जोर दिया ।

वह समाज के काम की उपेक्षा नहीं कर सकते थे । उस समय रोहतक की सामाजिक दशा बहुत ही खराब थी और वह उसमें कुछ जान डालना चाहते थे । इसके अलावा कई बार उन्हें सामाजिक कार्य, जैसे समिति की बैठको में, भाग लेने तथा मुख्यालय से सलाह लेने के लिए लाहौर जाना पडता था । डी० ए० बी० कालिज की कल्पना 1883 में थी गई थी और वह उसके प्रारम्भिक कार्यों तथा नियोजन में सत्रिय रुचि ले रहे थे । रोहतक में प्रस्तावित कालिज के लिए समयन प्राप्त करने में, जो मुख्य तौर पर धन के रूप में होता था, वह व्यस्त रहते थे । उन्हें कानून के काम के मुकाबले कालिज के काम में अधिक रुचि थी ।

वह हुसराज के उदाहरण का अनुकरण नहीं कर सके, इसलिए उन्हें अपने मित्र श्री बी० ए० की डिग्री से ईर्ष्या अवश्य हुई होगी और इस बात से भी कि उनके मित्र के एक बड़े भाई थे, जिन्होंने उनकी सहायता की थी । लाजपत राय को ऐसी किसी सहायता की आशा नहीं थी । उसके विपरीत उन्हें एक परिवार का पालन पोषण करना था । पहले ही वह मुखतार के रूप में प्रतिमाह दो सौ रुपये कमा रहे थे, यह कोई बहुत उदार आय नहीं थी, परन्तु उस आय के मुकाबले काफी अधिक थी, जो उन्होंने अपने पिता के घर में देखी थी । उनकी संवेदनशील आत्मा को मुखतार जैसे अपमानजनक कार्य के साथ समझौता करना ही पडा ।

एक बार लाहौर की यात्रा के दौरान उन्होंने निणय कर लिया कि वह मुखतार के काम पर वापस नहीं आएंगे, चाहे इसके परिणाम कुछ भी हों । परन्तु यह निणय ले लेने के बाद भी उन्हें पता नहीं था कि उन्हें आगे क्या करना है । उनके मित्र, दाशनिक तथा पय प्रदशक गुरुदत्त ने जब उनको इस आत्मिक यत्नणा की स्थिति में देखा, तो उन्होंने इसका कारण पूछा । लाजपत राय ने अपने अतमन की राय उनके सामने रख दी । गुरुदत्त, उन्हें निश्चित रूप से कोई सलाह देने से हपले, यह जान लेना चाहते थे कि क्या इस तीसरी बार कानून की परीक्षा उन्हें अपना भाग्य अच्छा हाने की आशा है ? उन दोनों ने, जैसा कि उन दिनों ऐसी स्थिति में परम्परा होती थी, एक क्लक को इनाम देकर परीक्षा परिणाम घोषित होने से पूर्व ही यह जान लेना चाहा कि उनका भाग्य इस बार कैसा है, और उन्हें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि ककालत के योग्य होने के

लिए उनका तीसरा प्रयत्न बेकार नहीं गया। जब परिणाम प्रकाशित हुआ, तो लाजपत राय पास होने वाले छात्रों में दूसरे स्थान पर थे। गुरुदत्त ने उन्हें वकील के तौर पर काम करने के लिए रोहतक वापस भेज दिया और स्पष्ट शब्दा में उन्हें बताया कि हसराम के अधीन सैकेंड मास्टर के रूप में काम करने के मुकाबले, वह वहाँ रहकर आंदोलन के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

रोहतक में रहते हुए उन्होंने स्थानीय आय समाज के लिए कुछ काम किया और समाज तथा डी० ए० वी० कॉलेज की गतिविधियों में व्यापक रूप से भाग लिया। उन्होंने कभी-कभार समाचार-पत्रों के लिए भी लिखा। कभी-कभार उन्होंने अंग्रेजी में लिखा परन्तु अक्सर उर्दू में 'रफीक ए हिन्द' के लिए लिखा, जिसे उनके युवा मित्र मौलवी मुहम्मद अली चिश्ती चलाते थे।

उनमें देशभक्ति का आवेश था और अपन दशवासियों की सेवा करने की गंभीर इच्छा थी, परन्तु उस युवक में, जो अभी कच्चा ही था, देश की राजनीतिक समस्याओं के अध्ययन के रूप में विशेष कुछ नहीं था। वह किसी प्रकार की अशांति फैलाने वाला भी नहीं था। वह बेवकाल विरोध के लिए ही सरकार का विरोध नहीं करता था। दरअसल, वह आय समाज की समस्याओं में सरकार की प्रशंसा किया करते थे, जसा कि उन दिनों आम रिवाज था। वह उस इस्लाम समयक झुकाव से भी पूर्णतया मुक्त हो गये थे, जो उनके पिता ने उन पर थोपा था और वह उस झुकाव से इस हद तक दूर चले गये थे कि मुस्लिम सल्ता के अत्याचार का अन्त करने के लिए किसी हद तक ब्रिटिश शासन को ही धन्यवाद देने थे। उनकी राजनीतिक विचारधारा तो अभी बन रही थी, परन्तु उन्होंने सामाजिक रूप से प्रकाशन के लिए लिखना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने तथा उनके आय समाज मित्रों ने महसूस किया कि आय समाज का अपना छापाखाना होना चाहिए। उन्होंने एक उर्दू पत्रिका निबालने के बारे में विचार किया जिसका नाम 'भारत देश सुधारक' था और एक अंग्रेजी पत्रिका, जिसका नाम (लाजपत राय के सुझाव पर) 'रिजिनेरेटर आफ आर्यावत' रखा गया, गुरुदत्त और हसराम को सौंपी गई। उर्दू पत्रिका की जिम्मेदारी लाजपत राय वा दी जानी थी, परन्तु मुख्यालय से दूर रहने के कारण वह यह काम न कर सके। वह कभी-कभार 'रफीक ए हिन्द' या किसी अन्य पत्रिका के लिए लिखत रहे।

वकालत के पक्ष में प्रगति पर उनके असतुष्ट होने का कोई कारण दिखाई नहीं देता था, परन्तु ऐसा दिखाई पड़ता है कि वह रोहतक में अपना स्थान नहीं बना सके थे। कुल मिलाकर रोहतक के दिन खास महत्वपूर्ण नहीं थे, क्योंकि यह केवल विक्रम काल था। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 1883-85 के काल में उनकी आत्म भूखी मरी थी। 1884 में वह रोहतक पहुँचे थे। 1885 में उन्होंने वकील की योग्यता प्राप्त कर ली थी। 1886 में उन्होंने पञ्जाब के जिले हिसार में एक महत्वपूर्ण मुकदमा अपने हाथ में लिया। वह जगह उनके मन को अच्छी लगी, इसलिए वह वहीं रुक गए। उन्होंने पहली बार महसूस किया कि उनके पाव जम रहे हैं। वह हिसार में लगभग छ वर्ष रहे। इन वर्षों में उनकी मानसिक परिपक्वता में काफी यागदान दिया और इस अवधि के दौरान ही समाज में उनके काय का बल मिला। और लगभग इसी समय राजनीति में उनका सूत्रपात हुआ।

रोहतक में आय समाज की स्थापना उनके आने से पहले हो चुकी थी। परन्तु वह अधिक विकसित नहीं हो पाई थी। हिसार में उन्हें मैदान तैयार करने और बीज डालने के लिए अपने मित्रों की सहायता लेनी पड़ी थी, परन्तु यहाँ भूमि अधिक अनुकूल थी, इसलिए नया पौधा बड़ी तजी से पनपने लगा और हिसार का आय समाज शीघ्र ही प्रात के उन क्षेत्रों में गिना जाने लगा, दरअसल जो बहुत सक्रिय थे।

अपनी आत्मकथा में लाजपत राय ने इस सफलता का कारण बताते हुए लिखा है कि दरअसल हिसार आय समाज को चरित्र बलवाले नेताओं की एक मण्डली का सहयोग मिला था। इन नेताओं के रेखाचित्र उन्होंने बड़ी कोमल भावनाओं के साथ अंकित किए हैं। इन नेताओं में उन्हें कुछ ऐसे व्यक्ति मिल गए जो जीवन में उनके परम प्रिय मित्र बने। उदाहरण के तौर पर लाला चन्द्र लाल थे—हरियाणा के सरदार। उनका उग्रवादी राजनीति से सबंध नहीं था। परन्तु मित्रों को उनसे अधिक वफादार साथी मिलना कठिन था। यहाँ तक कि जब लाजपत राय को उग्रवादी समझते हुए निर्वासित कर दिया गया था, तो चन्द्र लाल उन चन्द मित्रों में से थे, जिन्होंने लाजपत राय का साथ दिया। उनके निकट मित्रों ने, जो उनके राजनीतिक विचारों तथा उद्देश्यों से सहमत थे, उनका साथ छोड़ दिया था। परन्तु चन्द्र लाल ने खुले आम उनका साथ दिया, जसे कुछ हुआ ही न हो। अक्सर उन्हें अफसरों से सहयोग प्राप्त करने का अवसर मिला

परन्तु उन्होंने राजपत राय का साथ छाड़कर उन्हें घुषा करने का प्रयत्न अभी नहीं किया और न ही उनके साथ अपनी मित्रता का छुपाने की कोशिश की। वह खुले आम कहते थे कि वह राजपत राय के मित्र हैं और उन्हें राजपत राय में पूर्ण विश्वास है। वह राजपत राय का भाण्डते में चिट्ठिया लिखा करते थे और उन निर्वासित मित्र के बहने के अनुसार व्यक्तिगत तथा पारिवारिक काम किया करते थे। हिसार के अपने जिन मित्रों की राजपत राय ने अपनी आत्मकथा में चर्चा की है, उनमें से इस वफादार मित्र का उल्लेख अति कोमल शब्दा में किया गया है।

हिसार के इन नेताओं का आय समाज को जोरदार तक सगत बातें करने वाले कुछ बुद्धिजीवियों के मंच के बड़े आम जनता का आंदोलन बना दिया। इसी स्थान पर ही वह सही अर्थों में अपनी भाटी में सम्पन्न बनाए रख सके। अय स्थानों पर तो समाज में केवल दाबू लोग शामिल थे, परन्तु इस जगह इसमें किसान भी शामिल थे। हिसार में चट्टू लाल, राजपत राय और लखपत राय ने आय समाज को बहुत शक्तिशाली बना दिया। इस अनुभव को आय समाज के इतिहास में अद्वितीय माना जाना चाहिए।

हिसार में वह शीघ्र ही केवल सफल वकील ही नहीं बल्कि कई प्रकार से एक प्रमुख व्यक्ति बन गये, विशेषकर अपने अतिथि प्रेम के लिए तथा विभिन्न प्रकार के विधियों के घडलेदार पाठक के रूप में भी। इस युवक का, जिसे डिप्टी प्राप्त किए बिना ही गवर्नमेंट कार्लेज छोड़ना पडा था, अपने आप शिक्षा प्राप्त करने का काय पूरी गभीरता से आरम्भ हो गया था। जल्दी ही उनके पास महत्वपूर्ण पुस्तक का व्यक्तिगत संग्रह बन गया, जिसका ऐसे स्थान पर इतना महत्व था कि कई बार जिले के अंग्रेज मुख्याधिकारी भी उनके पास आते थे। वह इस नये स्थान के एक माननीय नागरिक बन गए। यहां के स्थानीय लोगों ने उन्हें नगरपालिका का सदस्य निर्वाचित कर दिया, यद्यपि इस निर्वाचन क्षेत्र में मुसलमान मतदाताओं की संख्या अधिक थी। इस नगरपालिका की उन्होंने कुछ समय के लिए अवैतनिक सचिव के रूप में भी सेवा की। हिसार के दिन उनके लिए केवल आय समाज के काय के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं थे, बल्कि नागरिक तथा राजनीतिक प्रशिक्षण के विनास काल के रूप में भी इनका महत्व था।

9 छोटे जीनियस

हिसार-काल के दिन वही थे, जिन दिनों इंडियन नेशनल कांग्रेस का पहला अधिवेशन दिसंबर 1885 में डब्ल्यू० सी० बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ। तीक्ष्ण-दृष्टि वाले तथा चतुर आयसमाजी मूलराज ने इस आन्दोलन को सदेहजनक घोषित कर दिया था। परन्तु लाजपत राय पहले से ही इस शकापूर्ण व्यवहार को नहीं अपना रहे थे। 1888 में कांग्रेस की ओर से अली मुहम्मद भोमजी का पंजाब की यात्रा करने के लिए नियुक्त किया गया। हिसार के इस युवा वकील ने उन्हें अपने नगर में आने का निमंत्रण दिया और उनके लिए एक सावजनिक सभा का आयोजन किया। कांग्रेस के साथ उनका यह पहला सम्पर्क था। उस समय कांग्रेस को बने केवल तीन वर्ष हुए थे।

जब ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की, सर सयद अहमद खा ने मुसलमान सम्प्रदाय के नाम पर इसका विरोध किया। अलीगढ़ के नेता ने अपने सह-धर्मिया को सलाह दी कि वे इस नये आन्दोलन से अलग रहें। वह चाहते थे कि मुसलमान देश के हाकिमा का समर्थन करके अपने हितों को बढ़ावा दें।

लाजपत राय सैयद से प्रेरित शिक्षाशा से, जो उनके पिता ने उन्हें दी थी, पहले ही दूर हट चुके थे। जब उन्होंने सर सैयद को इस नए और गैर-देशभक्त रूप में देखा, तो अलीगढ़ के नेता के प्रति उनका सम्मान और कम हो गया। उन्होंने समाचारपत्रों में सर सैयद के नाम कई "खुले पत्र" लिखे, जिनमें बताया गया था कि किस प्रकार सर सैयद उन बातों से पीछे हट रहे हैं, जिनका उन्होंने पहले स्वयं प्रचार किया था। इन पत्रों में उन्होंने सर सैयद द्वारा (उर्दू में) पूर्वलिखित कथनों का अंग्रेजी अनुवाद में विस्तारपूर्वक हवाला दिया, जिनसे यह स्पष्ट होता था कि किस प्रकार पहले वह अपने नये उपदेश के विपरीत प्रचार करते रहे थे। "खुले पत्र" एक प्रशासक की आर से हिसार से प्रकाशित हुए, और हिसार उन दिनों ऐसे व्यक्तियों के अधिक होने का दावा नहीं कर सकता था, जो ऐसे विवादपूर्ण लेख लिखने के प्रयत्न की अभिलाषा कर सकें। जो लोग लाजपत राय को जानते थे, उन्हें यह अनुमान लगाने में कोई कठिनाई नहीं हुई

कि "खुले पत्र" लिखने वाला कौन था। अपना परिचय गुप्त रखने का उनके लिए कोई विशेष कारण नहीं था, परन्तु अभी वह नेता नहीं बने थे और शालनिता से विवश होकर उन्होंने अपना नाम गुप्त ही रखा।

उर्दू में ये पत्र, साप्ताहिक 'काहिनूर' में मुशी राधाकिशन के नाम से प्रकाशित हुए। इन पत्रों में से, जो अंग्रेजी में प्रकाशित हुए, पहला पत्र 27 अक्टूबर 1888 का हिसार के हवाले से छपा और उसके नीचे लिखा हुआ था— "आपके एक पुराने अनुयायी का पुत्र।" जब सर सैम्युअल ने कांग्रेस के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया, तो उस समय उन्होंने यह नहीं सोचा था कि एक ऐसा व्यक्ति, जो पुस्तक तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी रचनाएँ बड़े ध्यान से और पूरी तरह पढ़ता रहा है, उन्हीं की रचनाएँ उनके मुँह पर दे मारेगा। लोगों की स्मृति अल्प होने के अतिरिक्त, सर सैम्युअल का यह लाभ भी था कि उनकी रचनाएँ अधिकतर उर्दू में थीं, इसलिए बँडबन, मूल, ड्यूम और बगाल, बम्बई तथा मद्रास के कांग्रेस नेताओं को, जो इस संगठन के प्रमुख सलाहकार थे, इन रचनाओं के अस्तित्व के बारे में जानकारी नहीं हो सकती थी। "खुले पत्रों" के लेखक ने आरम्भ में ही सर सैम्युअल को चेतावनी दे दी थी कि वह उनकी स्वनामों का "निरंतर पाठक तथा प्रशंसक" रहा है।

"दक्षपत से ही मुझे अलीगढ़ के श्वेत दाढ़ी वाले सैम्युअल की राय का सम्मान करना सिखाया गया। मेरे स्नेहशील पिता ने, जो आपका उन्नीसवीं शताब्दी के पैगम्बर से कम नहीं मानते थे, आपका 'सोशल रिफार्मर' निरंतर मुझे पढ़ कर सुनाया। अलीगढ़ इन्स्टिट्यूट गजट में आपके लेखों तथा परिपद और अन्य सांख्यिक स्थानों पर आपके भाषणों का मैं निरंतर अध्ययन करता रहा हूँ, और मर आदरणीय पिता ने उन्हें पवित्र अमानत के रूप में समालोकित रखा।"

लेखक ने सर सैम्युअल को उन दिनों का स्मरण कराया, जब उन्होंने जान स्टुअर्ट मिल की रचना 'आन लिबर्टी' की प्रशंसा की थी और जब बैथम की 'यूटिलिटी' का उनके कहने पर 'रिफार्मर' के लिए अनुवाद किया गया था। सबसे प्रभावकारी उद्धरण सर सैम्युअल को लिपित 'नाज़िब आफ इंडियन रिवोल्यूट' से था। यह पुस्तक 'विद्रोह' के बाद एक वर्ष के अंदर लिपी गयी थी और ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों की जानकारी के लिए इसका अंग्रेजी रूप उन्हें परिपत्र के रूप में भेजा गया था। इस पुस्तक में सर सैम्युअल ने प्रतिनिधि सरकार के मिर्दाता की वचासत की थी।

सर सैयद ने कहा था, "भिरा विश्वास है कि अधिकतर व्यक्ति इस विचार से सहमत हैं कि यह सरकार के बल्याण तथा प्रगति के लिए बहुत ही सहायक है, दरअमल इसकी स्थिरता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार के सलाहकारों में जनता के प्रतिनिधि हों। जनता के इन प्रतिनिधियों से सरकार को जानकारी हो सकती है कि क्या उनकी योजनाएँ लोगों को पसंद हैं? इससे पहले कि खतरे पैदा हो और हमारा विनाश कर दें। हम लोगों की यह आवाज ही खुटिया को पहले से दूर करने में सहायता देगी। परन्तु यह आवाज कभी भी नहीं सुनी जा सकती, और न ही सुरक्षा कभी प्राप्त की जा सकती है, जब तक लोगों को सरकार के सलाह-मशविरे में भागीदार नहीं बनाया जाता है।"

सर सैयद ने अपनी पुस्तक में इस बात की व्याख्या की थी कि प्रतिनिधित्व देने के सिद्धांत को स्वीकार कर लेने से सत्तावन के "विद्रोह" जैसी महाविपत्ति का भला कैसे टाला जा सकता था।

"यदि हिंदुस्तानी विधान परिषद में होते और अपने देशवासियों को सारी बातें समझा देते, तो जो सबट आए, वे टल जाते।"

सर सैयद की इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद सर आर्कलैंड कार्लिन (जो "खुले पत्ते" के प्रकाशन के समय उत्तर-पश्चिम प्रांत के गवर्नर थे) और लेफ्टी-नैंट काल ग्राहम ने किया था, जो सरकारी तौर पर सैयद के जीवनीकार थे। इन दोनों महानुभावों को सर सैयद द्वारा किसी रूप में प्रतिनिधि सरकार पर जोर दिए जाने में, किसी प्रकार "राजद्रोह" वाली बात दिखाई नहीं दी थी, जिस दोष के लिए सर सैयद इंडियन नेशनल कांग्रेस पर दोषारोपण कर रहे थे कि वह राजद्रोह का प्रचार करने वालों का संगठन है। स्वराज व स्वशासन को कांग्रेस ने अभी अपना लक्ष्य घोषित नहीं किया था, अभी तो वह विनम्र आवाज में ही बात कर रही थी—सबसे बड़ी मांग यह की थी कि प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को स्वीकार किया जाए और प्रांतीय गवर्नरों की विधान परिषदों में कुछ निर्वाचित लोग शामिल किए जाएं।

सच है कि कुछ "मूल निवासियों" को सरक्षण के तौर पर पापद नामजद कर दिया गया था। परन्तु एक "खुले पत्ते" में पूछा गया था कि 'क्या राजा शिव प्रसाद और आप जैसे लोगों को जनता का उचित प्रतिनिधि कहा जा सकता है और जिस चुनाव पद्धति से आपको परिषद सदन में भेजा गया है क्या उसका

कोई मूल्य है ? मेरे विचार में कोई भी व्यक्ति नहीं कहगा कि यदि राजा शिव प्रसाद भारत के लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते, तो उनके लिए भारत राष्ट्र का उस प्रकार अपमान करना संभव होता, जिस प्रकार उन्होंने इलवर्ट बिल पर अपने मुख्यात भाषण में किया था । क्या राजा प्यारे मोहन मुघर्ज़ों तथा अन्य स्वदेशी सदस्य नमक कर बढ़ाए जाने की सहमति देते, यदि उन्होंने यह सोचा होता कि उनकी गद्दिया उन लोगों की आवाज़ पर निर्भर करती हैं, जिनके गले, यदि कहा जाए, इस अप्रिय तथा अमानवीय कारवाई से काटे गए थे ?”

युवा आलोचक सर सैयद की तीस वष पुरानी रचनाओं में से उद्धरण देने से ही सतुष्ट नहीं थे, उन्होंने हाल ही में लिखे गए लेखा में से उद्धरण देकर भी यह सिद्ध किया कि केवल सात वष पूर्व तक सर सैयद भी उसी शैली में लिखते रहे थे । 1881 में जब लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज का स्तर बढ़ाकर उसे विश्व-विद्यालय बनाने का प्रश्न उठा, सर सैयद ने लिखा था

‘चापलूसी के तौर पर चाहे कुछ भी कहा जाए, परन्तु हकीकत यह है कि असल में हिन्दुस्तानिया तथा उनके हाकिमा के बीच स्वामी और दास के संबंध से अच्छे संबंध नहीं हैं ।”

प्रतिनिधि सरकार के प्रश्न पर सबसे उपयुक्त उद्धरण सर सैयद अहमद के उस भाषण से लिया गया था जो उन्होंने यू गाजीपुर कॉलेज का (बाद में जो विक्टोरिया कॉलेज बना) शिलान्यास करते हुए दिया था । उन्होंने कहा था

“उच्चतम परिपद में स्वदेशियों की नियुक्ति भारतीय इतिहास में स्मरणीय घटना थी । मुझे विश्वास है कि वह दिन अधिक दूर नहीं और जब वह दिन आएगा, आप मेरे शब्दों को याद करेंगे, जब यह परिपद प्रत्येक डिवीजन तथा जिले से लिए गए प्रतिनिधियों से बनाई जाएगी और इस प्रकार जो कानून यह परिपद पास करेगी, वे ऐसे कानून होंगे जो सारे देश की भावना से बनाए जाएंगे ।”

यह उद्धरण देते हुए “धुले पत्र” में कहा गया था, “सर सैयद, आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जिस दिन की आपने 1864 में चर्चा की थी, वह दिन निकट आता जा रहा है और आपको इस बान से शर्मिंदगी

महसूस करने की आवश्यकता नहीं कि आपके देशवासी नये युग के अनुकूल व्यवहार नहीं कर रहे। आपकी भविष्यवाणी अभी पूरी नहीं हुई, परन्तु हमें विश्वास है कि कभी न कभी यह अवश्य पूरी होगी और तब आपको यह महसूस करके सतोष होगा कि आपकी भविष्यवाणी व्यर्थ नहीं गई। सर सैयद क्या आप अपनी यह भविष्यवाणी वापस लेना चाहेंगे ?”

सर सैयद ने इलाहाबाद के मायबर पंडित अयोध्या नाथ के लखनऊ के भाषण की आलोचना की थी और कांग्रेसियों से पूछा था कि क्या उस समय उनके किसी आंदोलन का अस्तित्व था, जब सरकार ने “बरदान दिए थे, जिनका हम आनंद ले रहे हैं।” आगे से सुरत उत्तर मिला

“मैं अधिकतर उद्धरण आपके लेखों में से ही दिए हैं, यह बताने के लिए कि उस समय ऐसे आंदोलन का अस्तित्व था और सबसे प्रमुख आंदोलनकारी स्वयं आप थे।” तब सर सैयद ने लिखा था

“मुझे डर है आपके मन में भय का अहसास है—इस भय का कि यदि आपने कोई कारवाई आरम्भ की, तो सरकार या जिला अधिकारी आपको फूट डालने वाला तथा असंतुष्ट मानेंगे—और इसके कारण ही आप देश की भलाई के लिए आगे बढ़ने से हिचकिचाते ह। मुझ पर विश्वास कीजिए यह नतिक कार्रवाई गलत है, यह आशाका निर्मूल है कि भारत में इतना उदार हृदयी कोई अंग्रेज नहीं है, जो इस बात को प्रसन्नता तथा आशा की भावना के बिना किसी और रूप में लेगा कि देशवासियों में सभ्यता का बढ़ना एक स्वस्थ संकेत है।
भारत के लिए यह बहुत ही अच्छी बात होगी यदि भारतवासी खुले तौर पर तथा ईमानदारी से सरकार के कार्यों के न्यायपूर्ण तथा इसके विपरीत होने के बारे में अपनी बात कहें।”

ऐसा दिखाई पड़ता था कि अब कांग्रेस के आलोचक के रूप में सर सैयद ने वे सभी बातें त्याग दीं, जिनका वह पहले समर्थन करते थे।

बहुत समय पहले की बात नहीं कि अलीगढ़ के इस वुजुम को उदार-हृदयी तथा एकता का मुसलमानी माना जाता था और अब वह शोर मचा रहे थे कि हिंदुओं तथा मुसलमानों के हितों में टकराव है और मुसलमानों को कांग्रेस से दूर रहना चाहिए। यह सर सैयद ही थे, जिन्होंने राष्ट्रीय एकता का वह उत्कृष्ट चित्र पेश किया था, जिसमें हिंदुओं तथा मुसलमानों की भारत माता की

दो आंखों से तुलना की गई थी। क्या दाहिनी आंख बायीं आंख से झगडा कर सकती है? उनके युवा आलोचक वो, जो पहले उनके प्रशंसक रहे थे, उनके भाषणों से ऐसे अंश दूबने में कोई कठिनाई नहीं हुई थी, जिनमें उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के हित एक होने का प्रचार किया था और जिनसे सर सैयद का नया प्रचार बिल्कुल भिन्न था। और ये पुराने भाषण किसी भी तरह से इतिहास जितने प्राचीन नहीं हुए थे। अपनी पंजाब की यात्रा के दौरान, जो अस्सी के दशक में हुई थी और जो उन दिनों पंजाब की एक प्रमुख घटना थी, सर सैयद ने सबसे अधिक बल भारत की राष्ट्रीय एकता पर दिया था और कहा था कि हिंदू, मुसलमान तथा ईसाई समान हैं। गुरदासपुर में उन्होंने कहा था

“प्राचीन काल से ‘कौम’ शब्द एक ही देश के निवासियों के लिए इस्तेमाल होता आया है, यद्यपि उनमें कुछ भिन्न विशेषताएं हैं। जो उनकी खासियत हैं।

यह याद रखना होगा कि हिंदू तथा मुस्लिम शब्द पंजाब को व्यक्त करने के लिए हैं—वैसे सभी लोग, हिंदू, मुसलमान और ईसाई, जो इस देश में रहते हैं, सभी प्रकार से एक ही कौम के अंग हैं। उन सभी को राष्ट्र की भलाई के लिए एक हो जाना चाहिए, विशेषकर उस देश के लिए, जो सभी के लिए समान है।”

और जब ऐसे सांजनििक राष्ट्रीय मंच की स्थापना का काय वास्तविक रूप में होने लगा था, तो तुरंत ही वह दूसरे सिरे पर पहुंच गए थे और उन्होंने हिता के टकराव का उपदेश देना शुरू कर दिया था। गुरदासपुर का यह भाषण जो बरी 1884 में दिया गया था, केवल एक बप के अंदर ही ऐसा दिखाई पड़ता था कि सर सैयद में यह बुरा परिवर्तन हो गया था।

३ फरवरी 1884 को लाहौर में दिया गया उनका भाषण उनके गुरदासपुर भाषण से भी अधिक जोरदार था। लाहौर की इंडियन एसोसिएशन द्वारा पेश किए गए अभिनन्दन के उत्तर में सर सैयद ने कहा था

“यदि यह बात स्वीकार कर ली जाए कि एसोसिएशन के अधिकतर सदस्य हिंदू हैं तो भी मैं कहता हू कि यह प्रकाश भी उसी से विस्तृत हुआ है जिसे मैं ‘बंगाली’ का उपनाम देता हू। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि हमारे देश में बंगाली ही ऐसे लोग हैं, जिन पर हम उचित तौर पर गव कर सकते हैं और

केवल इन्हीं लोगो के कारण ही हमारे देश में ज्ञान, स्वतंत्रता और देशभक्ति प्रोत्साहित हुई है। इसलिए मैं वह सकता हूँ कि वे हिन्दुस्तान के सभी समुदायों के सिर तथा ताज हैं मैं स्वयं भी अपने देश तथा कौम की वफादारी से सेवा करना चाहता हूँ। "कौम" शब्द में मैंने हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों को शामिल किया है, क्योंकि केवल यही एक अर्थ है जो मैं इसे द सकता हूँ (राष्ट्र या कौम)। हम एक ही वंश में रहते हैं, एक ही सरकार के नियन्त्रण से हम पर शासन होता है, सभी के लिए लाभ के स्रोत वही हैं और अकाल के कारण पीड़ा भी हम सबको समान रूप से होती है। इन्हीं विभिन्न कारणों से मैं इन दोनों जातियों को एक शब्द देता हूँ, वह है "हिन्दू", जिसका अर्थ है कि वे हिन्दुस्तान के निवासी हैं। विधान परिषद में मैं सदा ही "इस राष्ट्र" की प्रगति के बारे में चिन्तातुर रहा ॥ १"

उस समय कांग्रेस ने कोई ऐसी मांग नहीं की थी और न ही किसी ऐसे सिद्धांत या नीति का समर्थन किया था, जिसका सर सैयद ने कभी न कभी समर्थन न किया हो। परन्तु जब राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो गई, तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि उन्होंने अपने सिद्धांत तथा नीतियां, सभी तबदील कर लिए हैं।

सकीण विचारों वाले लोग कांग्रेस को "राजद्रोही" कहकर उसकी निन्दा कर रहे थे, क्योंकि उसने भारतीय स्वयंसेवक बनाने का सुझाव देने का साहस किया था। जब मार्च 1883 में (कांग्रेस के विधिवत संगठन से कुछ ही समय पूर्व) ॥ यू.म. ने भारत में "स्वदेशी स्वयंसेवक" बनाने के उद्देश्य का समर्थन किया था और लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम (सर सैयद की जीवनी के लेखक) ने 'पार्लियामेंट' अखबार में उनकी दलीला का खण्डन करने की कोशिश की थी। सर सैयद ने लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम की ओर से नहीं, बल्कि ए० ओ० ह्यूम की ओर से जवाब दिया। उन्होंने लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम को लिखा

"मैंने श्री ह्यूम को लिखे आपके पत्र का ध्यान से पढ़ा है, जिसमें भारत के देशीय स्वयंसेवकों की हिमायत की गई है। भारतीयों को स्वयंसेवक बनाने की इजाजत न देकर सरकार यह जताना चाहती है कि उसे भारत के लोगों में विश्वास नहीं है। इसके परिणामों का अनुमान इस कथन से लगाया जाना चाहिए, "अगर हमसे विश्वास की अपेक्षा करते हो, तो तुम्हें

भी हम पर विश्वास होना चाहिए।" अभी यूरोपीय तथा भारतीया के बीच बहुत बड़ा अंतर है और जब तक इसे दूर नहीं किया जाता, देश में समृद्धि लाना असम्भव है।"

उपरोक्त विचारों के कारण वे सर सैयद के प्रशंसक से आलाचक बने। उन्होंने सर सैयद को यह भी याद दिलाया कि जिस पत्र के अंश वे उद्धृत कर रहे हैं, वह चार वष पहले लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम द्वारा लिखा गया था। "अब भारत के 11 बड़े शहरों में स्थानीय अधिकारी कुछ देशीय स्वयंसेवकों का ध्यान करेंगे, जो अच्छे और प्रमाणित राजभक्ति वाले परिवारों के होंगे। उन्हें यूरोपीय स्वयंसेवकों के समान अधिकारी के अधीन रखा जाएगा। मैं उन्हें अपनी कम्पनी के अधिकारी चुनने की छूट दूंगा। सिलसिला चल निकलने पर मैं रिक्त स्थानों के अनुरूप उन्हें खुद आदमी नियुक्त करने की अनुमति भी दे दूंगा। हमें इतना ही अधिकार दें दें और हम आगे लम्बे समय तक और कुछ नहीं चाहेंगे।"

कांग्रेस की स्थापना से पहले के और कांग्रेस बन जान के बाद के दिनों के सर सैयद में आये इस अन्तर से व्यालोचक को 'टेल आफ दू सिटीज' उपन्यास के प्रारम्भिक अंश की याद हो आई और अपना तीसरा पत्र उन्होंने इस तरह शुरू किया

"क्या हम यह कहें कि यह सबसे अच्छा समय भी है और सबसे बुरा समय भी। सबसे अच्छा समय इसलिए कि देश में एक राष्ट्र का उदय हो रहा है, और सबसे बुरा समय इसलिए कि समाज का एक विशेष वर्ग इसमें रोड़े अटकाना चाहता है और उसका नेता या कम-से-कम जिसे नेता माना जाता है दुर्भाग्य से बह व्यक्ति है, जो भारत में प्रतिनिधि सरकार का ज़रूरी हिमायती रहा है।"

पत्र में इस विराधाभास का बराबर उल्लेख होता रहा और उस 'वृद्धिमत्ता की उग्र', मूर्खता 'विश्वास का महावाक्य', 'अविश्वसनीयता', 'जाणा का बसत और निराशा की सर्दी तथा 'हम भारत के पुत्रों को ही जापान भारत के हित को ठेक पट्टावाते हुए देय रह है आदि कथना में व्यक्त किया गया।

आलोचक ने सर सैयद का झकझोरा कि उन्हें इस बात पर खुश होना चाहिए कि उनके देशवासियों में जाग्रति आ रही है और उनके स्वप्न, भविष्यवाणियां सही सिद्ध हो रही हैं तथा लाग किसी भी विरोध, चाहे वह खुद सर सैयद की तरफ से भी क्यों न हो, के आगे न झुकने का निश्चय कर चुके हैं।

“खुले पत्र” केवल सर सैयद के लेखों तथा भाषणों से लिए गए उद्धरणों के संचलन मात्र नहीं थे। उनके साथ जो टिप्पणियां दी गई थी, वे बड़ी तीखी, ध्यग्यात्मक, आलाचनापूर्ण तथा कटाक्ष से युक्त थीं। पत्रों की शक्ती कुछ जगह बहुत ही कट्ट और अपरिमाजित थी और युवा लेखक ने बहुत निष्ठुरता का परिचय दिया। कहीं-कहीं उनकी सफेद दाढ़ी का भी लिहाज न करते हुए उनकी जो धज्जिया उड़ाई गई हैं, उससे पाठकों को कुछ रज हो सकता है और गुस्ताखी लग सकती है, क्योंकि भारत में सफेद दाढ़ी का सम्मान किया जाता है।

अलीगढ़ के इस योवबुद्ध नेता के रवैये में यह विरोधाभास क्या था, यह समझना एक समस्या थी। पहले पत्र के अंत में लेखक ने “कुछ लोगो” के इन अपमानजनक कथनों का उल्लेख किया कि “जिन बातों को मैंने उधृत किया है, वे एक ईमानदार और सदचरित्र व्यक्ति ने उस समय लिखी थी, जब लेखक का केवल सिफारिश के बल पर विधान परिषद् का सदस्य बनने की कोई सभावना दिखाई नहीं दे रही थी।” उन्होंने इन अपमानजनक टिप्पणियों को गलत बताया। दूसरे पत्र में फिर “ऊपर दिए गए उद्धरणों के प्रकाश में” सगति का दावा करने के सभावित प्रयास को “बचकाना” बताते हुए सर सैयद के पतन की तुलना आदम के पतन से की गई।

“जिस प्रकार हमारी नस्ल के आदि प्रश्न आदम का पतन शतान के कारण हुआ था, उसी प्रकार सांसारिक सम्मान का प्राप्त करने की आपकी कामना आपके पतन के वास्तविक कारणों का जाहिर करती है।” हठी लेखक के तीखे बाण आगे भी चलते रहते हैं। “आपका इससे कोई फक नहीं पडने वाला, क्योंकि इस दुनिया में आपके बिन अब गिनती के रह गए हैं। परन्तु हमारे लिए जिन्हें अभी लम्बे समय तक जीवित रहने की आशा और स्वतन्त्रता की रक्नहीन लडाई लडने की इच्छा है, यह बहुत शर्म की बात है।”

अंतिम पत्र के फुटनोट में एक अलग तरह की अपमानजनक टिप्पणी की गई। “ऐसा कैसे हो गया कि आपकी प्रुख्योचित बलवती बुद्धि कन्या सरीखी

नजाकत में बदल गई, जो दिल कभी भारत के लिए धड़कता था, अब उसकी धड़कन रुक गई है और आप आधुनिक विविधन के मायावी जाल में फसे निडाल में पड़े हैं।”

इन पत्रों में वही-वही प्रौढता भी विद्यमान थी, किन्तु कुल मिलाकर वे उस मुफ़्फ़िसल वकील की विश्वसनीय अभिव्यक्ति के प्रमाण थे, जो अभी युवावस्था में थे।”

यह उनके राजनीतिक जीवन का पहला बड़ा करिश्मा था। उनकी शुरुआत काफी आशाजनक रही। जिस राजनीति की दलदल में सफलतापूर्वक चलना हो उसे बिबादास्पद स्थिति में अपन प्रतिद्वंद्वी से निपटने की समझ होनी ही चाहिए। शत्रु की कमजोरिया का पता होने के साथ-साथ उसे धराशायी करने लिए तीखे के दात और तज पजे हाना भी आवश्यक है।

पच्चीस वर्ष से कम आयु में ही साजपत राय में राजनीतिक सूझबूझ मौजूद थी, क्योंकि बाद की घटनाओं ने पूरी तरह सिद्ध कर दिया कि “हिंदू और मुस्लिम-दो अलग राष्ट्र के रूप में सर सैयद के नये प्रचार के सम्बन्ध में उनकी आशावादी सही थी। उस समय जा बीज बोए गए थे, वे जिन्ना के दिना में अंकुरित हुए। परन्तु इस तीखे आक्रमण के बावजूद साजपत राय ने सर सैयद के अच्छे गुणों की अनदेखी नहीं की। वे उन्हें उदू गध का विकास करने वाला में प्रमुख स्थान देते थे। और अत तक सर सैयद की अपने धर्म के अनुयायियों को दी गई इस मलाह की कद्र करते रहे कि वे विश्व-स्तर के इस्लामवाद के बहकावे में न आए और अपनी समस्याएँ हल करने के लिए दूसरे इस्लामी देशों की ओर न देखें, परन्तु मुसलमानों को राष्ट्रीय जागरण से दूर रखना और ब्रिटिश शासकों की कृपा से अलग राष्ट्र का राग आलापना बहुत गलत और विनाशकारी था। सर सैयद के काम कितने ही गलत और अनुचित क्या न हों, उनका अपना कोई स्वाय नहीं था। अत साजपत राय ने हमेशा स्वीकार किया कि सर सैयद ऊंचे विचार और अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति थे, जो निःस्वाय भाव से अपने लोगों की सेवा करना चाहते थे।”

10. मैजिनी—उनके पहले गुरु

इन "खुले पत्रों" ने काफी हलचल मचा दी। ह्यूम को, जो घबराहट महसूस कर रहे थे, इन पत्रों से काफी सहायता मिली। उनके लेखक को सुझाव दिया गया कि वह इन पत्रों को इकट्ठा करके एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करें। वह तुरंत सहमत हो गये। कहीं-नहीं चाक्यो में सुधार किया गया।

यह पुस्तिका, जिसमें उन महान मुस्लिम नेता का असली रूप दिखाया गया था और वह भी उसके अपने कथन प्रभावशाली ढंग से उसके सामने लाकर, कांग्रेस अधिवेशन की पूव सभ्या को जारी की गई और इसने राता-रात ही लाजपत राय का अपने राजनीतिक विचारों के कारण देश भर में प्रसिद्ध कर दिया।

सर सैयद के नाम को अन्तिम पत्र इलाहाबाद में कांग्रेस अधिवेशन से कुछ ही दिन पूव प्रकाशित हुआ था। अभी इन पत्रों की स्थाही खुशक भी नहीं हुई थी कि जूनियस अनामत्व से प्रकट हो गये (असली जूनियस के समान नहीं, जिसका परिचय अब तक लेखका को उलझन में डाले हुए है) और फौरन इलाहाबाद पहुँचे जहाँ रेलवे स्टेशन पर मालवीय और अयोध्या नाथ ने उनका उत्साह-पूवक स्वागत किया और उन्होंने देखा कि वह भारत की राष्ट्रीय राजनीति में प्रसिद्ध हो गये हैं। वह एक विवादात्मक व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे, जिसने बड़े असरदार ढंग से किसी अय की नहीं, बल्कि अलीगढ़ के महान सर सैयद अहमद खा की पोल खोलकर रख दी थी। उन्होंने अधिवेशन में दो भाषण दिए, जिनमें से एक तो एक प्रकार से 'खुले पत्रों' से ही जुड़ा था। यह भाषण उन्होंने उस दिन के मुख्य प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए दिया। यह प्रस्ताव निर्वाचित सदस्य शामिल करके विधान परिषदों का विस्तार करने के बारे में था। इस भाषण में उन्होंने यह सिद्ध किया था कि सर सैयद, जो अब कांग्रेस के और विशेषकर विधान मंडला में निर्वाचित सदस्य शामिल करने की मांग के प्रमुख विरोधी थे, इससे पहले अलग बोली बोलते थे, उन्होंने तीस वष पहले लिखी पुस्तक 'शर' में भी यही मांग की थी।

कांग्रेस के अधिकारिक इतिहासकार डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया ने 1888 के अधिवेशन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है

“साजपत राय निस्सदेह सही दृष्टि वाले व्यक्ति थे। वह 1888 के कांग्रेस अधिवेशन में उर्दू में बोले और उन्होंने प्रस्ताव किया कि आधा दिन शैक्षिक तथा औद्योगिक मामला के लिए रखा जाए। यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और तब से लगाई जाने वाली औद्योगिक प्रदर्शनियां उस प्रस्ताव के आधार पर नियुक्त की गईं समिति की सिफारिशों का सीधा परिणाम हैं।”

इनमें से एक भाषण को सामयिक विवाद के कारण सभ्यत अधिक प्रशंसा मिली, परन्तु दूसरे भाषण में अधिक ठोस कार्य का प्रस्ताव किया गया था। उस समय भी जब कांग्रेस की सारी कार्यवाही अंग्रेजी में होती थी, साजपत राय ने हिंदुस्तानी में भाषण दिया। उन्होंने स्पष्ट सवेत दे दिया कि उन्हें कांग्रेस के मामला में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है, और वह भरसक प्रयत्न करेंगे कि यह सगठन सही अर्थों में जनता की आवाज हो। औद्योगिक प्रदर्शनियों पर उन्होंने जो बल दिया, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि वह केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, रचनात्मक कार्य को भी महत्व देते हैं।

1888 के कांग्रेस अधिवेशन ने साजपत राय को निश्चित रूप से ऐसे आन्दोलन में शामिल कर दिया, जो प्रत्यक्ष तौर पर राजनीतिक था। उदासीनता के बाद एक दौर छोड़कर उन्होंने शेष सारा जीवन, अर्थात् अगले चार दशक, कांग्रेस के लिए कार्य करते हुए बिताए। उन्होंने कांग्रेस के पहले तीन अधिवेशनों में भाग नहीं लिया था, परन्तु वह उदासीन नहीं थे, यद्यपि (मुख्य तौर पर मूलराज के प्रभाव के कारण) उनके मन में कांग्रेस के प्रति कुछ सही सदेह थे। उन्होंने ए० ओ० ह्यूम की रचनाएँ पढ़ी थीं और उन पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा था, परन्तु मूलराज ने तो नये सगठन को एक ऐसा जाल घोंपित किया था, जो बालाक अंग्रेजों ने फैलाया था। अंग्रेज मित्तों के खतरनाक बेश में सामने आए थे। कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन तक (जो मद्रास में बदरद्दीन तैयबजी की अध्यक्षता में हुआ था) साजपत राय कांग्रेस कार्यकर्ता बन चुके थे। उन्होंने अपनी आत्मबया में लिखा है कि इस अधिवेशन ने मुझे “बहुत ही प्रभावित” किया।

उन्होंने कहा है, “उस समय तक श्री ह्यूम की दो पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो चुकी थी—‘द स्टार ऑफ द ईस्ट’ तथा ‘एन ओल्ड मैन होप’। मैंने कांग्रेस साहित्य में अच्छी पुस्तिकाओं का इतना अच्छा और कोई जोड़ा नहीं देखा। उनके पन्नों में ये स्वतंत्रता की एक लहर बढ़ती चली आ रही थी और उन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया।”

अपने "धुले पत्रों" आर बाद में कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में भाग लेकर उन्होंने अपना भाग्य निश्चित रूप से कांग्रेस के साथ सम्बद्ध कर लिया था, यद्यपि जैसा हमने कहा है, उनके जीवन में ऐसे अल्प दौर भी आए, जब वह अपने सगठन तथा उसकी नीतियों के प्रति आपेक्षिक रूप से उदासीन थे। इलाहाबाद में पंजाब के प्रतिनिधियों ने उन्हें यह काम सौंपा कि कांग्रेस का अगला अधिवेशन लाहौर में करने के लिए निमंत्रण दें, परंतु चुना गया बम्बई। यद्यपि उन्होंने बम्बई अधिवेशन में भाग लिया, परन्तु उनका जोश ठंडा पड़ने लगा। उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेस के नेता देश के हिता के मुकाबले नाम और दिखावे की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

1893 तक साजपत राय कांग्रेस अधिवेशनों में शामिल नहीं हुए, कांग्रेस के प्रति उदासीनता का यह उनका पहला दौर था।

कांग्रेस से भी अधिक मंजिनी ने उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन की ओर धकेला। यदि उन्होंने मंजिनी को गुरु न माना होता, तो संभव था कांग्रेस में उनकी अधिक रुचि न होती। इटली के इस महान व्यक्ति की रचनाओं से उनका परिचय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रचित 'स्पीचिज आफ जोसेफ मंजिनी' से हुआ, जो बंगाल के इस महान वक्ता के भाषण संग्रह में शामिल की गई थी और साजपत राय को आठवें दशक में यह पुस्तक देखने का अवसर मिला था।

आत्मकथा में उन्होंने लिखा है, "एक भाषण ने मुझे इस कदर प्रभावित किया कि जब भी मन उसे पढ़ा, मेरी आखा में कई बार आसू आ गए। मेरे नौमल मन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और मुझे निश्चय कर लिया कि जीवन भर मैं मंजिनी के उपदेशों पर चलूंगा और अपने राष्ट्र की सेवा करूंगा। मैंने मंजिनी का अपना गुरु मान लिया और आज भी वह मेरे गुरु हैं।"

यह उनके आय समाज में शामिल होने से पहले की बात है। उनके अपने कथन के अनुसार उनके पहले गुरु मंजिनी थे, ध्यान दे नहीं। आय समाज में शामिल होने से पहले वह देशभक्ति में पूरी तरह रगे जा चुके थे। आय समाज की ओर वह इसलिए आकर्षित हो गये, क्योंकि इसमें उन्हें देशभक्ति का उद्देश्य दिखाई दिया था। अभी ऐसा कोई प्रत्यक्ष राजनीतिक आन्दोलन शुरू नहीं हुआ था, जिसके लिए काम करते हुए वह देश की बलिबेदी पर अपने हों उत्सर्ग कर देते। इसके लिए उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी और अपनी आत्मा को धैर्य में रखना पड़ा।

उन्होंने पुस्तक विजेताआ के पास मैजिनी की 'जीवन तथा शिक्षा' पुस्तक की खोज की और आखिरकार उन्हें इंग्लैंड से अपने एक पंजाबी मित्र के सहयोग से यह पुस्तक उपलब्ध हो गई। उन्होंने इस पुस्तक को आदि से अंत तक पूरी उत्कृष्टता से पढ़ा और "मैं इस पुस्तक से उससे भी कहीं अधिक जारदार ढंग में प्रभावित हुआ जितना कुछ वय पूव सुरेद्रनाथ बनर्जी द्वारा मैजिनी के बारे में दिए गए भाषण से हुआ था। इटली के उस महान व्यक्ति के गूढ राष्ट्रवाद, विपत्तिया तथा कष्टों, उसकी नैतिक श्रेष्ठता और उसकी विशाल मानव-सहानुभूतियों ने मुझे बशीभूत कर लिया।" उन्होंने 'ड्यूटीज आफ मैन' का उर्दू में अनुवाद किया और जब यह पांडुलिपि तैयार हो गयी, तो उसे लाहौर में अपने पत्रकार मित्र के पास भेज दिया, जिसने इसमें कुछ परिवर्तन करने के बाद अपने नाम से प्रकाशित कर दिया।

बाद में उन्होंने मैजिनी और गेरिवाल्डी की जीवनिया उर्दू में लिखी। ये पुस्तकें विशेषकर मैजिनी की जीवन कथा, उन दिनों पंजाब को प्रमुख तौर से प्रभावित करने वाले विचारों में से थी। इस सब में हमें विचार करने का बाद में अवसर मिलेगा। इस बीच, हमारे लिए यह याद रखना जरूरी है कि मैजिनी पहले गुरु थे जिन्होंने इस बेचैन मन की उत्कृष्टताओं को सदुपेक्षित किया। आय समाज और कांग्रेस में शामिल होने से पूर्व ही उन्होंने अपना मन बना लिया था। समाज और कांग्रेस, दाना ही वे माध्यम थे जिनके जरिये उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करना था। इस लक्ष्य का निर्धारण उनके महान गुरु की रचनाओं में बिल्कुल स्पष्ट ढंग से किया हुआ था।

1883 में स्वामी दयानन्द का देहांत हो गया, दीपावली के दिन आय समाज गहरे शोक में डूब गया। समाज के कार्यकर्ता अपने महान स्वामी से वंचित होने का शोक मनाने के लिए एकत्र हुए। गुरुदत्त ने अजमेर में अन्तिम बीमारी के समय स्वामीजी की सेवा की थी और मृत्यु शय्या तथा वहां की शान्ति ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था। वह लाहौर की सभा को संबोधित करने के लिए उठे, परन्तु उनकी वाणी ने उनका साथ न दिया। जो भी बचना वहां बोलने के लिए उठे न बोल सके और अंत में बचक को संबोधित किया नय-परिवर्तित राजपत राय ने। उनका भाषण कोमल भावनाओं में भरपूर था, जिसने उन्होंने श्रोताओं को दो घंटे तक बशीभूत किये रखा। इस भाषण से एक सावजनिक वक्ता के रूप में उनका नाम हो गया। वह समाज में "सबसे अधिक प्रभावशाली वक्ता" माने जाने लगे। यह बात विशेष तौर पर दयान

वाली है कि सार्वजनिक कर्मा के रूप में उनका नाम एक घुमक्कड़ कर्मा के रूप में भाषण देते रहने के बाद पैदा नहीं हुआ, जैसा कि आम राजनीतिज्ञा के साथ होता है, और जो बाद में प्रतिष्ठित राजनेता बन जाने ह, वल्लि एक कर्मासिक ढंग से ग्रीक कर्माज्ञा के तरीके से अन्वेषि के भाषण से पैदा हुआ ।

स्वामी दयानन्द की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों तथा प्रशंसकों ने उनका समुचित स्मारक बनाने के प्रश्न पर विचार किया । इस विचार-विमर्श का अंतिम परिणाम दयानन्द एग्लो-वैदिक कालिज की स्थापना की योजना थी और जब इस विचार का कार्यान्वित करने का अवसर आया, तो लाजपत राम ने अपन हिस्से से अधिक योगदान किया ।

आठवें दशक के अंत में, वह अभी हिमालय में ही थे और आय समाज के आरंभिक व्यापक क्षेत्र में कार्यरत थे, उन्हें समाज के सर्वोत्तम सार्वजनिक कर्मा के रूप में ख्याति प्राप्त थी और "खुले पत्रा" की घटना के बाद वह काफी महत्वपूर्ण राजनीतिक नेता भी बन चुके थे । वह अब सार्वजनिक कार्यों को अपना काफी समय दे रहे थे और माघ ही एक कर्मा के रूप में भी काफी सफलता प्राप्त कर रहे थे । कर्मा-बन्धन ही उहोन एक हजार रुपये महीने से कम कमाए हाने—कई बार तो उनकी आय इससे दुगुने से भी अधिक होती थी । इस व्यवसाय में यह कोई अद्वितीय सफलता नहीं थी, परन्तु एक ऐसे युवक के लिए यह शानदार घात थी, जिसकी आकांक्षा अन्य क्षेत्रों के लिए निश्चित हो चुकी थी । उनकी फीस इतनी होती थी, जिसे किसी नगरेतर कर्मा के लिए बहुत अच्छी कहा जा सकता है । यदि वह कर्मा के व्यवसाय की आरंभिक ध्यान देते, तो शायद इससे भी अधिक कमा सकते थे, क्योंकि अपने मुकदमा का पूरे ध्यान से अध्ययन करके तथा पूरे कौशल से कर्मा करके उहाने अपने मुकदमा का उसी तरह विश्वास जीत लिया था, जिस प्रकार उनकी निष्कपटता और जोरदार अभिव्यक्ति ने आम लोग का विश्वास जीता था । अब उहोने अपने पिता को कम आय वाली नौकरी छोड़ देने के लिए सहमत कर लिया । उहोन अपने पिता की अवकाश प्राप्ति के लिए काफी धन अलग रख दिया, ताकि वह छोटे बच्चों की पढाई तथा पालन पोषण करके उनकी शादिया कर सकें । यह केवल एहतिमात के तौर पर सक्क की स्थिति के लिए था, क्योंकि लाजपत राम स्वयं घर का और पिता का पूरा खर्च उठा रहे थे और मुशीजी को अपने बच्चों की शिक्षा या शादी विवाह के लिए इस सुरक्षित निधि से कुछ खर्च

करने को जदम्यन नू मे

अरम्यन करन का

भी, यह व्याज नरुं उ

हिसार व दिनों नू नू नू

होवा गिरिवत या मा ज द नू नू नू

थे । जि सागा न एव नू नू नू

॥ ११॥ राग की आगा नू नू नू

रि १०९ म लिए । ममन नू नू नू

११ के ११०पर साहार नू नू नू

१११ के १११ मे गही पन्ना वरुं नू

१ १ १ १ ।

11. पुरातन नगर में नया उफान

लाहौर, जहाँ बसने के लिए लाजपत राय नौवें दशक के आरंभ में आए, उनके छात्र जीवन के समय से बाफ़ी भिन्न था। जब पहली बार मैट्रिक की परीक्षा देने के सिलसिले में वह लाहौर रेलवे स्टेशन पर उतरे थे, उस समय सबसे प्रमुख देखन वाली वस्तु पुलिस के सिपाही थे, जो लोगो को जैकतरा तथा उचक्का से सावधान रहने की चेतावनी दे रहे थे और तरुण लाजपत, सामान को उठाकर पीछे आने वाले कुली के आगे-आगे, आश्चर्य से यह सोचते जा रहे थे कि उन्हें अभी किसी चाल में फास लिया जाएगा और उनके पास जो मामूली सामान है, उसे छीनकर असहाय छोड़ दिया जाएगा। अब लाहौर नव आगन्तुकों के लिए इतना असुरक्षित नहीं था। कोई भी सिपाही किसी तरह से पुकारता दिखाई नहीं देता था और वह स्वयं भी तो अब स्कूल के छोकरे या लाहौर के लिए अजनबी नहीं थे। वह सुविधा-जनक सवारी किराये पर ले सकते थे और एक घोड़ा गाड़ी शीघ्र ही उनके व्यवसाय तथा सावजनिक गतिविधियाँ के लिए आवश्यक हो जाने वाली थी।

ब्रिटिश राज आधी शताब्दी से अधिक पुराना हो चुका था। प्रशासन सुदृढ हो चुका था और यह अपने ही सवेग से फैलता दिखाई पड़ रहा था। इसके कार्यालयाँ की संख्या बढ़ रही थी। अर्थात् लाहौर में "बाबू" लोगो की आमद में लगातार वृद्धि हो रही थी और स्वभावतः बाबू बनाने वाली प्रवृत्ति और अधिक तेजी से काम कर रही थी।

यद्यपि लाहौर तेजी से विकसित हो रहा था, फिर भी कोई कारखाना अभी लगता दिखाई नहीं देता था। बैंक तथा बीमे के काम में भारतीय लोगो की अभी कोई रुचि नहीं थी, परन्तु यूरोपीय लोगो के व्यापारिक सस्या बढ़ रहे थे और इस साम्राज्य की अष्टशुज भुजाएँ दूरदराज कलकत्ता या बम्बई के मुख्यालयाँ से या लंदन में मिली हुई थी। इन सस्यानाँ में भी कुछ बाबू काम करते थे, परन्तु अधिकतर बाबू राज्य तथा रेलवे के कार्यालयाँ में कमचारी थे। शिक्षा सस्याओं के विस्तार के साथ, छात्राधी संख्या में भी वृद्धि हो रही थी—बाबू तथा सभावित बाबू और यकीला थी

करन की आवश्यकता नहीं थी। साजपन राम न अपना तीना भाइयाँ के जीवन का व्यनस्मित करन का प्रबन्ध किया। पिता के लिए जा निधि अलग से रखी गई थी, वह व्याज जाडती रही।

हिसार के दिना म उन्हें ऐसी जायदाद की पक्षवश हुई, जिसकी श्रीमत म वृद्धि होना निश्चित था और जा वाद के दिना म उन्हें बहुत-सी अनजित राशि द सकती थी। जिन सागा न ऐसे प्रस्ताव स्वीकार किए उन्होंने काफी धन कमाया, परंतु साजपन राम की आवाधा ता अय क्षेत्त्र में थी। इसलिए उन्होंने ऐसे प्रस्ताव स्वीकार न किए। गभवत वह हमेशा हिसार छाडन के बार में साचने रहते थे, ताकि महानगर लाहौर म कम सवें। वह अचल सम्पत्ति के कारण प्रातीय नगर के धधा म नहीं पडता चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस प्रकार से कोई पूजा न लगाई।

11. पुरातन नगर मे नया उफान

लाहौर, जहा बगन के लिए लाजपत राय नौवें दशक के आरंभ में आए, उनके छात्र जीवन के समय से काफी भिन्न था। जब पहली बार मंड्रिव की परीक्षा देने के मिलमिले में वह लाहौर रेलवे स्टेशन पर उतरे थे, उस समय सबसे प्रमुख दृश्य वाली वस्तु पुलिस के सिपाही थे, जो लोगों को जैववतरा तथा उचक्का से सावधान रहने की चेतावनी दे रहे थे और तरण लाजपत, सामान का उठाकर पीछे आने वाले बुली के आगे-आगे, आश्चर्य से यह मोचते जा रहे थे कि उन्हें अभी किसी चाल में फास लिया जाएगा और उनके पाम जो मामूली सामान है, उसे छीनकर असहाय छोड़ दिया जाएगा। अब लाहौर नव आगन्तुकों के लिए इतना अमुरधित नहीं था। कोई भी सिपाही किसी तरह से पुनारता दिखाई नहीं देता था और वह स्वयं भी तो अब स्कूल के छोकरे या लाहौर के लिए अजनबी नहीं थे। यह सुविधा जनक सवारी किराये पर ले सकते थे और एक छोड़ा गाड़ी शीघ्र ही उनके ध्यवसाय तथा सावजनिक गतिविधिया के लिए आवश्यक हा जान वाली थी।

ब्रिटिश राज आधी शताब्दी से अधिक पुराना हा चुका था। प्रशासन सुदृढ़ हो चुका था और यह अपने ही सवेग में फैलता दिखाई पड रहा था। इसके कार्यालया की सख्या बढ रही थी। अर्थात् लाहौर में "बाबू" नागा की आमद में लगातार वृद्धि हो रही थी और स्वभावतः बाबू बनाने वाली प्रवृत्ति और अधिक तेजी से काम कर रही थी।

यद्यपि लाहौर तेजी से विकसित हो रहा था, फिर भी कोई कारखाना अभी लगता दिखाई नहीं देता था। वीक तथा वीमे के काम में भारतीय लोगों की अभी कोई रुचि नहीं थी, परन्तु यूरोपीय लोगों के व्यापारिक सस्या बढ रहे थे और इस साम्राज्य की अष्टभुज भुजाएँ दूरदराज कलकत्ता या बम्बई के मुख्यालया से या लन्दन में मिली हुई थी। इन सस्याना में भी कुछ बाबू काम करते थे, परन्तु अधिकतर बाबू राज्य तथा रेलवे के कार्यालया में कामचारी थे। शिक्षा सस्याओं के विस्तार के साथ, छात्रा की सख्या में भी वृद्धि हो रही थी—बाबू तथा समावित बाबू और बपीला की

सख्या म भी वृद्धि हो रही थी, यह वृद्धि अधिक तेज तो नहीं थी, परन्तु हो बराबर रही थी। इन नवागन्तुको की मेहरबानी से अनारक्ली एक उन्नत बाजार के रूप में विकसित हो रहा था। साहब तथा मेम साहब माल रोड की बड़ी दुकाना से सामान खरीदते थे, जो बड़े बड़े बगला म थे—ये बगले उस नमूने पर बनाए गए थे, जिसे सांख्यिक निर्माण विभाग के किसी गुमनाम प्रतिभाशाली व्यक्ति ने तैयार किया था। वह वास्तुकला की भावना से परिचित नहीं था और साहसी इतना था कि उसने ऐसा नमूना तैयार किया, जो पूव के लिए बिल्कुल विदेशी था और पश्चिम में किसी न देखा नहीं था।

बाबुआ, बकीला तथा छात्रों की इस भीड़ को भी कहीं बसाना था। और लाहौर उस फीताइमि के समान बढ रहा था, जितमे ईंट और चूने के सेल बढते चले जा रहे हा। उजाड स्थानों पर मकान बनाकर उनसे काफी किराया प्राप्त किया जा सकता था। जोडा गया धन "अनजित सवृद्धि" के रूप में प्राप्त होता है या समय से ? इस मसले पर ज्ञानवान अधशास्त्रिया वा भगजपच्ची करने दीजिए।

लाहौर के आकार म वृद्धि के साथ-साथ उसमे मानसिक परिवर्तन भी आ रहा था। इसका कारण चाहे कुछ भी हो, कोई भी यह महसूस किए बिना नहीं रह सकता था कि कोई उफान त्रिदाशील है। अस्पष्ट तौर पर आप कह सकते हैं कि यह शिक्षा तथा कम के कारण था या कह लीजिए इसकी कुछ बजह राजनीति थी, जो इस उफान में काम कर रही थी। इसका सबसे अधिक प्रभाव बाबू लोणा तथा बकीला पर पडा।

साजपत राय के छात्रकाल में कोई गैर-सरकारी और विमुक्त भारतीय शिक्षा योजना नहीं बनी थी, परन्तु साजपत राय के बकील बनने से पूव ही ईगार्ड प्रचारक डॉक्टर फारमैन इन दोष म सक्रिय थे, और 1889 में फारमैन त्रिशिया का रिज स्थापित कर दिया गया था। त्रिस्दिह प्रचारका के इन प्रपन के पीछे विज्ञान साधन थे और उनका हाकिमों के माप अभीम रम्य था। उनकी सस्थाओं के लिए एकडा खुनी भूमि सरकार की आर।। जरार के रूप म दी गई थी। उन सस्थाओं के लिए, त्रिारी यात्रनामं बन चुकी थी या अभी बनी बानी थी, लाहौर में उठ रहे उर।। म हा प्रचारका का जारी द्यन था।

उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से स्वदेशी प्रयत्न को बढ़ावा दिया कि वे ऐसी संस्थाएँ स्थापित करें, जो नई शिक्षा दें। इसलिए बाबुआ के लिए धैर्यशील बनना, बगला तथा मरवाही इमारतों के साथ-साथ दयानन्द स्कूल जैसी इमारतें भी बन रही थीं। वह स्थान जहाँ डी० ए० बी० स्कूल बना, लाजपत राय के छात्रकाल में असुरक्षित स्थान था—भयानक तौर पर असुरक्षित, बिल्कुल उजाड़। यह उफान इटें और छून के रूप में तथा उजाड़ का रूप बदलने में प्रकट हो रहा था।

अपने छात्रकाल में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय के जन्म की थोड़ी बहुत प्रिया देखी थी। डाक्टर लिटनर की, जिन्होंने इसकी स्थापना में प्रारम्भिक योगदान दिया था, इस शिक्षा के बारे में अपनी ही धारणा थी और अब तक वह धारणा बिल्कुल मिट ही चुकी थी और यह प्रयोग लगभग समाप्त कर दिया गया था। इस विश्वविद्यालय ने भी क्लबता और मद्रास विश्वविद्यालयों की पद्धति पर काम करना शुरू कर दिया था। पहले जिसे विश्वविद्यालय कालिज कहा जाता था, अब विश्वविद्यालय बन गया था और कालिज का नाम गवर्नमेंट कालिज हा गया था।

इस विश्वविद्यालय के साथ कानून, डाक्टरी तथा प्राच्यविद्या अध्ययन के महा विद्यालय सम्बद्ध थे। (प्राच्यविद्या अध्ययन महाविद्यालय एक प्रकार से डाक्टर लिटनर की उपज था) विश्वविद्यालय के सत्त्वावधान में प्रचारकों ने भी अपना कालिज स्थापित कर लिया था और भारतीय नेताओं को भी उसी तरह करना था—उन नेताओं का, जो इस नए उभार के नेता थे।

आठवें दशक में लाहौर में उठ रहे उफान की दो विरोधी धाराएँ थी ब्रह्म समाज तथा आय समाज। परन्तु उसके बाद हालात कुछ बदल गए थे।

पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री ने, जो लाजपत राय के पिता के मित्र तथा तरुण लाजपत के एक प्रकार से सरलाक थे, अब स्कूल अध्यापक की नौकरी छोड़ दी थी। उन्होंने ब्रह्म समाज भी छोड़ दिया था और अपने नए मत की स्थापना कर ली थी, जिसे देव समाज कहते थे। पंडित अग्निहोत्री के नाम के स्थान पर अब उनके अनुयायी उन्हें "देवगुरु भगवान" कहते थे। उन्होंने सक्रिय व्यक्तिता को ब्रह्म समाज से अलग कर दिया और उसे पंजाब में कमजोर कर दिया। इस प्रकार उसके विरोधी संगठन आय

समाज के लिए उसे मैदान से लगभग बिन्दुल हटा देना आसान हो गया। नई शैक्षिक व्यवस्था द्वारा तैयार किए गए प्रगतिशील तन्त्रों का, अधिक गतिशील तथा आक्रामक आय समाज, अपनी ओर अधिक आकर्षित कर सकता था। चूंकि उन दिनों शिक्षा एक मुख्य गतिविधि थी, आय समाज ने भी अपने संस्थापक के नाम पर एक स्कूल की स्थापना कर दी। इसने व्यावहारिक रूप से ब्रह्म समाज के विरुद्ध तथा आय समाज के पक्ष में निर्णय दे दिया। इस स्कूल में कालिज का विभाग पहले ही जोड़ा जा चुका था। इसका अध्यक्ष एक ऐसा युवक था जिमने डिग्री प्राप्त कर लेने के पश्चात् अन्य स्नातकों के समान नौकरी की तलाश नहीं की थी, बल्कि अपने आपका इस संस्था की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था। वह अवैतनिक प्रिंसिपल था। इस उपाधि का लाजपत राय के छात्रशाल में समझ पाना कठिन था।

बुद्धिमान लोगों ने आय समाज निश्चित रूप से जड़ पकड़ चुका था। इसकी गतिविधियाँ प्रति वर्ष 'नाहौर' तथा पंजाब भर में फैल रही थीं। इसकी घोषणा थी कि वह वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करेगा। सभी पुनर्जागरण आन्दोलनों के समान यह भी अतीत को पुकारता था। इसने प्राचीन भारत की गौरवपूर्ण स्थिति की वर्तमान गिरी हुई अवस्था से तुलना की। इस प्रकार इसने देशभक्ति की भावना बढ़ाई। यह उसके कई पहलुओं में से एक था। इसका एक अन्य पहलू हिन्दू समाज को इस याम्य बनाना था, जिससे कि वह आधुनिक समस्याओं को कुशलता के साथ हल कर सके। समझ है कि हिन्दू समाज की सभी बुराइयाँ अवदिक थीं, परन्तु विडम्बना यही रही कि आय समाज के बहुत से समर्थक, जो वेदा की पूजते थे, आधुनिक लेखकों, विचारकों, इतिहासकारों और यूरोप के राजनीतिकों के बारे में अधिक जानकारी रखते थे और वैदिक ऋषियों के प्रति उनका ज्ञान इनके मुँहवाले में बस गया। वे हिन्दू समाज को आधुनिक विश्व में सघन के योग्य बनाना चाहते थे। वे बाल विवाह तथा पैतृक पुजारी प्रथा समाप्त करने, रीतियों का सरल बनाने, विधवा विवाह से प्रतिबन्ध हटाने, सागर पार करने की आज्ञा देना और गामी लोग के समान बड़ाई के साथ एग्रेसिववाद लागू करना चाहते थे। इनमें से उन्हीं कई बातों को ब्रह्म समाजिया से मिलनी-जुलती थी, परन्तु वे अधिक आक्रामक थे। उनके लिए वह उदारवाद अधिक काम का नहीं था, जिसमें सभी धर्मों की अच्छी बातें

पर जोर दिया गया हो। वे चाहते थे कि जब अन्य धर्मों के प्रचारक हिन्दू धर्म पर आक्रमण करें, तो हिन्दू धर्म वाता को इट का जवाब पत्थर से देना चाहिए। जवाब मन था कि वे भी आश्रामक और अपने विराधिया के समान धर्म प्रचारक बने। उन्होंने छुआछूत समाप्त करन पर बहुत अधिक बल दिया तथा शुद्धि आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने देवनागरी तथा हिंदी के महत्त्व पर बल दिया और शायद इस मामले में भी ब्रह्म समाज को भी पीछे छोड़ गए। उनके नेतृत्व में शिष्टता तथा सत्सृष्टि की कुछ त्रुटि संभव थी, परन्तु उनमें आदालत को आगे बढाने का उत्साह अधिक था। नौवें दशक में ऐसा होता दिखाई पड़ता था कि आय समाज में एक प्रकार की सबव्यापकता है, जो पजाब के सावजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर छा जाएगी। हिन्दुआ में से अधिक गतिशील तथा प्रगतिशील लोग अधिक से अधिक सख्या में हमके झड़े के नीचे जमा होने लगे। जितनी अधिक सख्या में पढ़े-लिखे लोग लाहौर में एकत्र हुए, उतना ही आय समाज के मगठन में बल बढ़ा। दरअसल, लाहौर की मानसिक स्थिति बड़ी तेजी से बदल रही थी। पुनर्जागरणवाद तथा आधुनिकवाद धार्मिक अंधविश्वासों की विशाल परन्तु सुस्त शक्तियां पर लगातार आक्रमण कर रहे थे।

राजनीति की चर्चा भी बढ़ रही थी। कांग्रेस की शाखा अभी स्थापित की जानी थी, परन्तु इंडियन एसोसिएशन की शाखा मौजूद थी। राजनीति वकील लोग का शीक बनती जा रही थी। कानून के पेशे में कमाई बहुत थी। इसमें सम्मान भी था और धन भी। इस व्यवसाय में बुद्धिमान व्यक्ति बिना पूजा लगाए उन्नति कर सकता था और एक बार ऊंची श्रेणी में आ जाने पर मोटी फीस माग सकता था। यह सच है कि पजाब में बहुत बड़े जमींदार या राजा नहीं थे, जिनसे लाखा रुपये फीस के रूप में बढोरे जा सकते, परन्तु सफल वकील सम्पन्न मध्यवर्गीय परिवारों से अच्छी खासी फीस प्राप्त कर सकते थे। बकालत के पेशे में शाहाना आय तो संभव नहीं थी, परन्तु इतनी आय अवश्य संभव थी, जिसमें बिना कड़े परिश्रम के सुख तथा सम्मान मिल सकता था। वकील लोग अधिकारपूर्ण ढंग से राजनीति पर छाए हुए थे। वे बुद्धिमान लोग थे (जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी तथा जिनमें जाग्रति आ चुकी थी) आधे लोग थे, जो 'स्वतंत्र' थे, शेष आधे लोग सरकारी सेवा में होने के कारण 'आचार संहिता' से बंधे हुए थे। लाहौर में 'बाबू लोगो' की जितनी अधिक सख्या थी, उतने अधिक आय

समाजी सम्भव थे, और जितनी अधिक सध्या मे वकील थे, उतने अधिक राजनीतिज्ञ होने की सम्भावना थी ।

हिन्दुओ मे जहा ब्रह्म समाज तथा आय समाज की गतिविधिया ने यह हलचल पैदा की थी, वही मुसलमान भी नई-नई आवाजें सुन रहे थे—सर सैयद अहमद खा की, जि हाने 1883-84 मे पंजाब का दौरा किया तथा एक नए मत की, जिसे अहमदिया कहते थे । अपनी आधुनिक उदारवादी प्रवृत्तिया के कारण सैयद विचारधारा हिन्दुओ की ब्रह्म समाजी लहर से मिलती-जुलती थी (यू कहिए कि कांग्रेस के विरुद्ध सर्कीण विचारो से अभियान शुरू किए जाने से पूर्व यह समानता बहुत ही अधिक थी), जब कि उपरपथी अहमदिया जोश और लडाकूपन की दृष्टि से आय समाजियो से मिलते-जुलते थे । यह वह समय था, जब सिखा मे भी यह चेतना पैदा हो गई थी कि वे हिन्दुओ से भिन्न हैं । अब तक अधिकतर लोगो का यह अनुमान था कि वे भी हिन्दू मत के स्वच्छन्द सध मे शामिल अर्द्ध-स्वायत्त इकाइया म से एक हैं । यह लाजपत राय के कालिज के दिनो की बात है (जैसा कि कई बार उन दिनो की याद करते हुए उन्होने इस बारे में चर्चा की थी) कि छात्रा को परीक्षा के दाखिला फार्मों मे यह लिखना पडता था कि वे हिन्दू, सिख, ईसाई या मुसलमान हैं । इससे पूर्व हिन्दुओ तथा सिखा को इस प्रकार अलग नहीं दिखाया गया था । मैकालिफ को 1893 मे अपनी 'यायिक नौकरी से अवकाश लेने के लिए सहमत कर लिया गया था, ताकि वह सिख धर्म प्रथा का अंग्रेजी मे अनुवाद कर सके—सिख धर्म-प्रथा का जो अनुवाद उन्हाने उस समय किया, वह छ जिल्दा म था । डाक्टर ट्रम्प या, जिन्होंने सेक्रेट्री आफ स्टेट के लिए आदि धर्म का अनुवाद किया था, आठ वष पहले देहात हो चुका था । अंग्रेज कौम न सिखा मे रुचि लेनी शुरू कर दी थी । "1857 के गदर" मे वे इतने लाभकारी सिद्ध हुए थे कि साम्राज्य-वाद ने बुद्धिमत्तापूर्ण निगम्य किया कि उनके साथ विशेष व्यवहार किया जाए ।

यह उफान सभी समुदाया मे समान रूप से व्याप्त दिखाई पडता था और लाहौर से विकिरणशील हाकर पंजाब के दूरवर्ती कोना तक फैल गया । इसके चलने से लाहौर पंजाब का एक महानगर तथा राजनीतिक या शक्ति-केंद्र बनता जा रहा था ।

उफान, सावजनिक जीवन, राजनीति—दूसरे शब्दों में पंजाब का शक्ति-केंद्र, लाहौर, समाचार पत्रों को अधिक महत्व दे रहा था। "बुद्धिजीवी" बग था आधिपत्य था। "बरोडा बेजुवान" अभी भी बहुत ही बेजुवान थे। स्वाभाविक ही था कि प्रतिष्ठा तथा शक्ति अंग्रेजी समाचार पत्रों के हाथों में थी। पंजाब के अंग्रेजों के अधीन होने के शीघ्र बाद ही 'द सिविल एंड मिलिट्री गजट' शुरू हो गया था। भारतीय भी एक समाचार-पत्र चाहते थे। दयाल सिंह मजीठिया की वदायता के कारण 1881 में 'साप्ताहिक ट्रिब्यून' शुरू हो गया था।

आठवें दशक के मध्य में 'ट्रिब्यून' सप्ताह में दो बार छपने लगा था। यही एक प्रमुख भारतीय समाचार पत्र था, जो उन दिनों लाहौर से प्रकाशित होता था। नौवें दशक में यह सप्ताह में तीन बार निकलना शुरू हो गया उस समय इसके सम्पादक गण्डनाथ गुप्त थे, जो बंगाल के रहने वाले थे।

इस प्रकार, जब नौवें दशक में लाजपत राय लाहौर में बसने वहाँ बकालत करने और पंजाब की सावजनिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र में रहने के लिए आए थे, उस समय लाहौर—भौतिक तथा मानसिक रूप में—बहुत तेजी से बदल रहा था। जो उफान इस परिवर्तन के लिए कायम कर रहा था, उसने लाजपत राय को वह अवसर प्रदान कर दिया, जिसे उनकी प्रतिभा ढूँढ रही थी, उन्हें जोखिम उठाने की बे परिस्थितियाँ मिल गईं, जिनकी तलाश में उनकी आत्मा भटक रही थी—ऐसा जोखिम, जो केवल राजी कमाने के जीवन से वही अधिक बड़ा था।

12. आर्य समाज में विच्छेद

आर्य समाज अब उनकी गतिविधियाँ का प्रमुख क्षेत्र था। निस्सन्देह समाज विस्तृत हो रहा था, परन्तु इससे माथ ही उसे एक गभीर संकट का सामना भी करना पड़ रहा था। ऐसा लिखार् पड़ता था कि बड़े गुट के समथक एक आर और छोटे गुट के समथक दूसरी ओर विभाजित होने जा रहे हैं। उनमें इस विभाजन का बहुत ही छोटा सा विषय था शाकाहारवाद—एक गुट इसका कट्टर समथक था जा बड़े तथा छोटे गुटों दोनों सिरे को ही निपिद्ध मानता था। साड दाम और गुरुदत्त का, जो आर्य समाज में इन अलग अलग गुटों का धाराभा के समथक एक प्रतिनिधित्व करते थे देहावसान हो चुका था। परन्तु दाना विचार दूसरे को सहन करने को तैयार न थे। अभी गुरुदत्त जीवित थे, जब डी० ए० डी० की प्रबध समिति ने एक प्रस्ताव पारित करने कालिज विभाग खालने की अनुमति दे दी थी। अब उनकी मृत्यु के काफी समय बाद झगडा आरम्भ हो गया। लाजपत राय ने आत्मकथा में उसके कारणों की चर्चा की है। उहाने आर्य समाज के विभाजन के बारे में बहुत ब्यौरेवार न सही परन्तु आलाचनात्मक टिप्पणी लिखी है

“पहली बात तो लाला हसराम की व्यक्तिगत अलोकप्रियता थी। लोगों न यह आभास पा लिया था कि वह दम्भी, घमण्डी और अधिकार जमानेवाल हैं। वह चुपचाप अलग-अलग रहने और प्रबध में सख्ती के कारण लोगों में अप्रिय हुआ।

दूसरे शाकाहारवाद का प्रश्न था। इसका आधार स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रमुखता का प्रश्न था पंडित गुरुदत्त अपन अन्तिम दिना में स्वामीजी के इतने श्रद्धालु हो गए थे कि वह स्वामीजी द्वारा निधारित किए गए सिद्धान्तों से मामूली सा हटने को भी तैयार नहीं थे। वह यह मानते थे कि स्वामी दयानन्द द्वारा रचित ‘मत्याय प्रकाश’ का हर शब्द सत्य है। पंडितजी के शिष्या तथा अनुयायियों में भी यह भावना थी। जब उहाने शाकाहारवाद के बारे में विवाद उठाया, तो दूसरे गुट ने दलील दी कि

किसी भी आय समाजी के लिए यह अनिवाय नहीं कि स्वामी दयानन्द की शिक्षा को पूरी तरह मान ले, क्योंकि स्वामीजी प्रश्नातीत नहीं थे ।

पाणिज के प्रवचन में तो मतभेद और भी अधिक हो गए (1890 में गुरुदत्त के देहात के तुरत बाद) । यह मतभेद कालिज के पाठ्यक्रम में विशेषकर मसूदन के पाठ्यक्रम का लेकर थे । दयानन्द रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' में एक अध्याय शिक्षा के बारे में था, जिसमें प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक दी जाने वाली शिक्षा का पूरा व्यौरा दिया गया था । इस अतिनैतिक व्यवस्था में कालिदास तथा भवभूति को कोई स्थान ही नहीं दिया गया था । असल में तो ससृष्ट के नाटका की कोई गुंजाइश नहीं थी, कविता में भी केवल वाल्मीकि और घ्यास के महाकाव्या को सहन किया गया था और वह भी कविता के रूप में नहीं, बल्कि इतिहास की दृष्टि से । ससृष्ट के अध्ययन का मूल-आधार पाणिनि थे (पातञ्जलि के भाष्य के साथ), क्योंकि स्वामीजी ने उसके बाद के व्याकरण की जोरदार निंदा की थी । ऋषि दयानन्द का यह मूलभूत सिद्धांत था कि ऋषिया द्वारा रचित पुस्तकों तथा सामान्य लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों के बीच ऐसा अन्तर है, जिसे दूर नहीं किया जा सकता, और जिन विद्वानों को वेदा के मूल सत्य को खोजना और प्राप्त करना है, उन्हें केवल वही शिक्षा दी जानी चाहिए जिसका भाग ऋषिया ने प्रस्तुत किया है । विद्वान 'सत्यार्थ प्रकाश' को अक्षुब्ध मानते थे और उनके लिए यह गुरु की शिक्षाओं का वैसा ही अनिवाय भाग था जैसे अय सिद्धांत तथा उनकी अन्य रचनाओं में प्रस्तुत बातें । कम से कम वे इस प्रकार की घोषणा अवश्य करते थे, क्योंकि व्यावहारिक रूप में जब वे कोई योजना तैयार करते, तो उसमें कहीं कोई नरमी या समझौता कर ही लेते थे । अधिक व्यावहारिक विचारों वाले ध्यवित्तियों की राय थी कि 'सत्यार्थ प्रकाश' का पाठ्यक्रम वतमान परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं और इसका आधार तो वह धारणा है, जिसमें ससृष्ट-भाषी आपर्णित की कल्पना की गई है । अनुयायियों द्वारा दयानन्द की स्मृति में बनाया गया एगो वैदिक कालिज शुरू से इस विचार के साथ स्थापित किया गया था कि वह स्वामीजी की आदर्श योजना से भिन्न है । इसके नाम से ही समझौते की भावना जनकती थी

यह नाम रखने वाला तथा घोषणापत्र तयार करने वाला मे थे और इसका आशय तथा उद्देश्य निश्चित रूप से समझाते की भावना में प्रेरित थे । घोषणापत्र जारी किए जाने के दो वर्ष के अन्दर कोई क्रोम कार्य हँता दिखाई न दिया मिवाय उस राशि के (जा एक लाख से थोड़ी सी कम थी) । परन्तु जैसे ही उनके मित्र हसराम ने प्रस्तावित सस्या के लिए अपनी अवैतनिक सेवाएँ पेश कीं, उन्होंने स्कून की कक्षाएँ तुरन्त शुरू करने पर जाकर दिया । फिर, जब कोई तीन वर्ष बाद प्रवचन समिति ने (एक के बहुमत से) कालिज की कक्षाएँ आरम्भ करने का निणय किया, वह (लाजपत राय की तरह) उन छ व्यक्तिगतों में शामिल थे, जिन्होंने इस कारवाई का समर्थन किया । इस निणय को लागू करने के लिए पांच सदस्यों की जा उप-समिति बनाई गई थी वह उसमें शामिल थे । इस उप-समिति के मन्त्रियों के तौर पर उन्होंने स्वयं वह रिपोर्ट तैयार की थी जिसमें अध्ययन की इस योजना का धारा तैयार किया गया था । यह समझौते की एक और बात थी । गुरुदत्त ने लो और दो की भावना से कार्य किया । परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उनके अपने विचारों का रख साईं दास के विचारों से भिन्न था । इन दोनों विचार-धाराओं ने इन दोनों की मृत्यु के पश्चात् साईं दास के मित्रों तथा गुरुदत्त के अनुयायियों में प्रचण्ड टकराव पैदा कर दिया । सिद्धांतवादी गुट अधिक-से-अधिक कट्टर होता गया और जिस ढंग से कालिज चलाया जा रहा था उसकी खुलेआम और जोरदार निंदा करने लगा । अतः यह गुट कालिज से अलग हो गया और स्वामीजी के विचारों को कार्यान्वित करने के लिए उसने गुरुकुल विश्वविद्यालय की स्थापना की । दूसरे गुट ने कालिज को भंगल बनाने के लिए कार्य किया और इसके लिए धन एकत्र किया तथा ईंट, चूने जैसी ठाम वस्तुएँ प्राप्त कीं, और बहुत से विद्वान एकत्र किए । उनका समाजी अन्तःकरण इस बात से सन्तुष्ट होता था, जब वे महसूस करते थे कि शिक्षा के प्रसार के सामान्य रूप में सहायता देने के साथ-साथ उन्होंने पञ्जाब में हिन्दी के प्रचार के लिए एक महत्वपूर्ण संस्था खड़ी कर दी थी जा मित्रों के लिए आने वाले कुछ छात्रों में संस्थान के लिए भी प्यार पैदा कर रही थी, चाहे वे संस्थान के अनिवाय अध्ययन का उस कक्षाई में पालन नहीं

करते थे, जिसके बारे में दयानन्द के पाठ्यक्रम में व्यवस्था थी। यद्यपि उसके छात्र तथा विद्वान स्वामीजी के आदेश के अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते थे, फिर भी उनके स्कूल तथा कालिज समाज के लिए उचित सख्या में नए उत्साही युवक जुटा रहे थे, और उनकी सस्थाएँ उस व्यापक देशभक्तिपूर्ण उद्देश्य में सहायता दे रही थीं जो उन्हें बहुत प्रिय था। यदि उनका कालिज यह उद्देश्य प्राप्त कर सकता है, तो वे अपने सभी छात्रों के लिए पाणिनि के व्याकरण की जटिलताएँ सीखना अनिवार्य नहीं बनाना चाहते थे, भले ही पाणिनि तथा पातञ्जलि का दयानन्द ने बहुत गुणगान किया था। वे अध्ययन के लिए अव्यावहारिक पाठ्यक्रम पूरी तरह अपना देने की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अपने छात्रों का डराकर भगा देने के लिए तैयार न थे।

जब लाजपत राय ने प्रवेश किया तो मतभेद और अधिक स्पष्ट हात जा रहे थे। घाड़े समय के लिए उन्होंने निष्पक्ष रहने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके मानसिक झुकाव ने शीघ्र ही उनकी भावना को व्यक्त कर दिया। उन्हें इस बात में आश्चर्य नहीं दिखाई दिया कि इन कालिज को ऐसी सस्था में बदल दिया जाए जो पूणतया सस्कृत के उस पाठ्यक्रम अथवा मूर्तिपूजा का अपनाएँ, जो दयानन्द ने निर्धारित की थी। वह तर्कवादी थे और धार्मिक स्वतन्त्रता का मूल्यवान समझते थे। इसलिए स्वामीजी या किसी अन्य व्यक्ति के अन्धक हटने की बात नहीं मानते थे। उन्हें अपने मास वाले भाजन में बड़े पाप वाली बात दिखाई नहीं देती थी। उन्होंने मैजिनी का गुरु बना लिया था और समझ लिया था कि लागी की दशभक्तिपूर्ण सेवा के बारे में उनकी आकांक्षा में गुमसूत यम वाले लोग 'शाबाहारी' सनकिया के मुकाबले अधिक साझेदार थे। उन्हें उपराक्त गुट अधिक असिद्धावादी, अधिक अव्यावहारिक और दूसरे लोक के बारे में अधिक चिंतित लगा। उन्होंने यह भी महसूस किया कि उनके मित्र हसराम का गलत समझा जा रहा था और गलत रूप में पेश किया जा रहा था। उन्होंने अपने को उस गुट के साथ जोड़ दिया जिसका नेतृत्व हसराम कर रहे थे। जब उन्होंने एक बार अपने पक्ष की घोषणा कर दी, तो उन्हें उस पक्ष के लिए अधिक प्रचार करने को कहा गया। जब सस्कृत पाठ्यक्रम के बारे में विवाद जोरा पर था, उन्होंने उर्दू में एक पुस्तिका लिखी यह

दिखाने के लिए कि डी० ए० वी० कालिज ने संस्कृत की उपेक्षा नहीं की थी, जैसा उसके शाकाहारी आलोचक 'महा-मा' आरोप लगा रहे थे। अपने पक्ष के समर्थन में या अपने विरोधियों पर आक्रमण करने के लिए वह समय-समय पर समाचार-पत्रों में लिखते रहते थे। वह सप्ताह मशहूर तथा समिति की बैठका में भी भाग लेते थे। अन्य लोगों की तरह उन्होंने भी समय-समय पर मर्यादा संहिता का उल्लंघन किया। उन्हें यह सब कुछ करना पसंद नहीं था, जो उन्हें पक्षपातपूर्ण ढंग से करना पड़ा और उन्होंने किया।

अपने सह-धर्मियाँ के इन अनुचित झगडा का उन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा था, इस बात का अनुमान 1891 के समाज के चुनाव के बारे में व्यक्त पुनर्विचार से मिलता है, यद्यपि ये विचार उनके हिसार कान के समय के थे —

'ये दृश्य मैंने अपनी आंखों से देखे। उन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया और मैं रात को जागता रहता और इस बात पर आश्चर्य करना हुआ साबता रहता कि हमारी फूट की इस राष्ट्रीय बीमारी का निदान शायद भगवान ही कर सके। यह मतभेद समाप्त करने और लोगों में एकता लाने के लिए हमने अपने आपको भगवान की शरण में छोड़ दिया था, परन्तु वहा भी हम अपने पापा से मुक्त न हो सके और हमारी काली करतूता का परिणाम यह हुआ कि हम में एकता हान की बजाय हमने एक दूसरे के साथ लड़ना शुरू कर दिया और वह भी इस ढंग से कि निलज्जता की कोई सीमा न रही। 91 वीं जयन्ती के बाद जब मैं हिसार लौटा, तो मैं बहुत व्यथित था और समाज की स्थिति और मेरी बेचैनी ने मुझे इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि मैं सदा के लिए हिसार छोड़कर लाहौर जा रहा।"

इस लड़ाई में 'सबसे अधिक निराशाजनक घटना' की चर्चा करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसके लिए दोनों पक्ष बराबर जिम्मेदार हैं। उदाहरण कहना है 'मेरे विचार में साला हसराम की जिम्मेदारी उतनी ही बड़ी थी, जितनी साला मुशी राम की।"

असल विच्छेद 1892 के अंत में हुआ, जब लाहौर आर्य समाज का वार्षिक चुनाव था। चुनाव की पूर्व संध्या पर उस गुट ने, जिसके

साथ लाजपत राय न अपना भाग्य जोड़ा था, अपने एक प्रमुख नेता लाला (जो बाद में जस्टिस बने) लालचन्द के घर पर बैठक की। उनका उद्देश्य उस रात का निश्चय करना था, जो उन्हें अगले दिन अपना था क्योंकि दूसरे पक्ष न यह निश्चित करने के लिए कि सदन में बहुमत उनके समर्थकों का ही हो, बहुत-सी अनियमितताएँ और हेराफेरी की थीं।

लाजपत राय न लिखा है, 'कुछ सदस्य समाज के मंदिर पर पुलिस की महायत्ना से बच्चा करना चाहते थे। दूसरे सदस्य चाहते थे कि इस झगड़े का निपटारा अदालत करे और इसके लिए दोनों गुटों की बैठकें अलग-अलग समय पर बुलाई जाएँ। कुछेक ऐसे भी थे, जो पुलिस की सहायता लिए बिना, रात को साठियों के जोर से जबरदस्ती बच्चा करने के पक्ष में थे, चौथा गुट जिसमें मैं भी शामिल था, उसकी राय थी कि महात्माओं के साथ सहयोग असंभव हान के कारण यही अच्छा है कि अलग रास्ता अपना लें और साप्ताहिक बैठक के लिए मकान किराए पर ले लें।'

इस बैठक में अपने विशिष्ट भाषण में, जो आय समाज के इतिहास में स्मरणीय है लाजपत राय न कहा

"समाज इट पत्यर का नहीं, मिद्धाता का बना हुआ है। हम समाज में इसलिए शामिल हुए थे कि अपना जीवन सुधार सकें और लोगों की सेवा कर सकें, इसलिए नहीं कि मकानों पर कब्जा कर और उनकी खातिर लड़ाई करें। मैं लड़ने झगड़ने और अपनी सहायता के लिए पुलिस बुलाने या अदालत का सहारा लेने के विरुद्ध हूँ।"

यह सतुलित तथा उदार अपील सफल हुई। इस गुट ने पृथक हाने के बारे में एक औपचारिक प्रस्ताव पास किया और अगले दिन ही अलग समाज की स्थापना कर ली, जो बाद में 'अनारक्ली आय समाज' के नाम से जाना गया। विच्छेदवादी में आय समाज के मंदिर को छोड़ने के विचार से लाला हसराम के मन का बहुत दुःख हुआ, फिर भी वह सहमत हो गए।

लाजपत राय का इस समाज का प्रथम अध्यक्ष चुना गया।

बाद में जब उन्होंने अपना व्यवहार का बड़ा कडाई से पुनरावलोकन किया, तो उन्होंने महसूस किया कि पक्षपात के अपने जाश में उन्होंने महात्मा मुशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) के बारे में, जो दूसरे गुट के नेता थे, बड़ी द्वेषपूर्ण राय बना ली थी।

साजपत राय ने आत्मकथा में लिखा है, "मैं यह अवश्य कहूंगा कि मैंने अपनी उस राय में बहुत अधिक संशोधन कर लिया है, जो मैंने उनके बारे में 1892-93 में तथा उसमें कई 'बप' बाद बनाई थी कि वह शरारती है, प्रसिद्धि के पीछे लालायित है और नतागिरी के आकांक्षी है। अब मेरा विश्वास है कि लाला मुशी राम ने पार्टी के उद्देश्य से, पार्टी की भावना के अधीन जो किया था उसके आधार पर उनके बारे में निष्पक्ष लेना अनुचित था। अब महान व्यक्तित्वा के समान लाला मुशी राम में भी कमजोरियां थीं और उनके इतने गिद मडराने वाले उनसे अनुचित लाभ उठाते थे। वे लोग, जो उन्हें हरदम घेर रहते थे, अधिकतर उनकी राय तथा कार्यों का प्रभावित करते थे।

परंतु मेरा निश्चित रूप से यह कहना नहीं है कि वह शरारत करने वाले और प्रतिगांध रखने वाले व्यक्ति थे। जाश के क्षणों में मन जो राय बनाई थी, उसमें मैंने बाद में संशोधन कर लिया है और मुझे बाद में इस बात पर खेद हुआ है कि मैंने उनके साथ ऐसा अत्याय किया। लाला मुशी राम स्वभाव से आवेगशील थे, उन पर कुछ तथा मामूली आवेग नहीं, बल्कि उदार तथा महान आवेग प्रबल रहते थे। वह दयालु तथा अतिथि सत्कार करने वाले व्यक्ति थे और वह लोक सेवा की भावना से प्रेरित थे। वह इस बात से परिचित थे कि किस प्रकार दुख सहन किए जाते हैं और बलिदान कैसे दिया जाता है। एक मित्र के रूप में वह बहुत बफादार थे। इसान के रूप में वह बहुत स्पष्टवादी, खुले मन के तथा नेक थे।"

यह बात 1915 में लिखी गई। इस बात में कोई संदेह नहीं कि साजपत राय को नजरो में श्रद्धानन्द और ऊंचे, यहाँ तक कि बहुत ऊंचे उठने गए, विशेषकर 1919 के बाद से जो पंजाब में मासाल ला के दिन थे और 1926 तक, जब स्वामीजी का बलिदान हुआ। श्रद्धानन्द के जीवन के इस गौरवपूर्ण अंत में उनके मन में कितनी ईर्ष्या हुई होगी!

कमठ आर परिश्रमी ता वह थ ही, उन दिना जितना काम उहो किया वह स्वय लाजपत राय के लिए भी बठिन रहा हागा । उहे वकालत के पशे के लिए मरुन परिश्रम करना पडता था आर इससे भी अधिक् परिश्रम करना पडता था अपन अधिक् प्रिय सावजनिक जीवन के लिए । अदातत की ढगभग गभी छुट्टिया वह कालिज के लिए धन एक्त्र करन के वास्तु दारे करन मे लगा दत थे, क्याकि वह इमके प्रमुख प्रवक्ता ही नही, इसके प्रमुख थाचक भी थ । समाज म विच्छेद आर दोना गुटो के बीच शक्तुता न यह काय विशेष तार से बठिन बना दिया था । लाजपत राय न इस सबध म छाटा मा उदाहरण दिया है, "एक बार मुझे शिमला से नीचे पशावर पहुचना पडा, क्याकि यदि मैं कुछ घटे भी देर से पशावर पहुचता, ता मुझे कुछ भी नही मिलना था । दा दिना म गंन वहा से तीन हजार रुपये नकद एक्त्र किए । फिर 'महात्मा' का प्रतिनिधि मडल वहा पहुच गया आर कालिज के लिए उगाही बन्द हा गई ।"

यद्यपि समाज के धाना गुट 1892 म अलग हा गए थ, फिर भी यह विच्छेद सम्पूर्ण नही था । समाज के मदिर अलग थे, परन्तु जा महात्मा कालिज की प्रवध समिति मथे, उहाने वहा रहकर ताड-फोड की कारवाइया आरम्भ कर दी आर इन प्रकार 1897 स यह घोर सघप का समय था ।

"एक दिना ता इस शगडे न लाठिया के साथ लडाइ का रूप ले लिया । स्वर्गीय लाला साइ दास के सबसे बड पुत्र सुदर दासके सिर मे भारी चोटे आईं आर उ हनि अपनी पार्टी क लिए अपना जीवन दे दिया, दूसरे गुट की आर से किरती आर ने ऐसा ही भारी मूल्य चुकाया ।"

उन दिना उह बहुत बडा परिश्रम करना पड, आर कष्ट प्रद सघप भी । इसमे हैरानी की कोई बात नही कि ऐसे हालात ने उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाला आर एक बार तो वह निमोनिया के कारण मृत्यु के द्वार तक जा पहुचे । उनके दोना फेफडो पर बहुत गभीर प्रभाव पडा आर वह दो महीने विस्तर मे पडे रहे । "डाक्टर बेलीराम ने बडे स्नह के साथ मेरा इलाज किया आर मुझे वचाने के लिए बहुत कष्ट उठाए । जब तक भी म जीवित हूँ, उनका आभारी रहूंगा ।" यह बात वृत्तज्ञता से उहाने बाद मे लिखी ।

13. लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन

हमन दया है कि 1889 के बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के बाद कांग्रेस के प्रति लाजपत राय का उत्साह काफी धीमा पड़ गया था। उन्होंने इन विमर्श के मला में भाग लेने का कष्ट न किया, जब तक 1893 में 'पहाड़ स्वयं मुहम्मद के पाम न आया'। पंजाब में बखशी जैशीराम (जस्टिस श्री बखशी टेक चंद के पिता) के सुझाव पर, जो डी० ए० बी० कालिज के नेताओं में से एक थे, कांग्रेस का निमन्त्रण दिया। लाजपत राय भी स्वागत समिति में शामिल हो गए, परन्तु वह इसमें सक्रिय रूप से भाग लेने वाला नहीं थे। यद्यपि कांग्रेस को निमन्त्रण आय समाज के प्रमुख नेताओं के सुझाव पर दिया गया था, फिर भी आय समाजिया का रवैया उत्साहपूर्ण नहीं था। कई और लोग थे, जो अधिक तत्पर थे, विशेषकर साकोपकारक दयाल सिंह मजीठिया और युवा हरकिशन लाल/यद्यपि युवा हरकिशन लाल की बखशी जैशीराम तथा उनके आय समाजिया के प्रति राय मंत्रीपूर्ण नहीं थी। इसलिए लाहौर अधिवेशन आयों के मुकाबले ब्रह्म लोग की देख रेख में अधिक था, और लाहौर के एक प्रमुख ब्रह्म समाजी नाबिन चंद्र राय स्वागत समिति के अध्यक्ष थे।

लाजपत राय ने अधिवेशन में दो तीन भाषण दिए। उन्होंने लिखा है कि एक उल्लेखनीय बात यह है कि राय मूलराज ने इसमें बहुत अधिक भाग लिया। यह भद्र पुरुष, जैसा कि हमने देखा है एक सरकारी कर्मचारी थे और इससे भी बड़ी बात यह थी कि वह न्यायपालिका के अंग थे। इस प्रकार उनमें यह आशा थी कि राजनीति से दोगुना दूर रहें। परन्तु हकीकत यह थी कि सभाओं और अनौपचारिक बैठकों में वह पदों के पीछे से ही तार हिलाते थे। उन्होंने स्वामी दयानंद के लिए आय समाज के सविधान का प्रारूप तैयार किया था और वह चाहते थे कि कांग्रेस भी लगभग इसी प्रकार का सविधान अपना लें। ह्यूम के बारे में उनके मन में सदेह अभी भी बना हुआ था और सविधान के लिए यह भाग शायद उन्होंने इस सदेह की जांच के लिए ही की थी, यह आशा करते हुए कि ह्यूम के लिए इस सुझाव का

स्वीकार करना आसान नहीं होगा । घटनाओं में हम मदेह का गलत मिद्ध नहीं किया । ह्यूम न कहा कि किसी सविधान की बाई आवश्यकता नहीं और इस प्रकार यह प्रस्ताव पूरा न हो सका ।

आज यह बात शायद अविश्वसनीय लगे कि इतने वर्षों तक कांग्रेस बिना सविधान के रही । 1899 के लखनऊ-अधिवेशन तक इसका कोई सविधान नहीं था और इस अधिवेशन में जो सविधान अपनाया गया उसमें मूलराज द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव की आवश्यकता पूर्ण नहीं थी जैसे कि प्रतिनिधियों के लिए प्रतिनिधित्व का स्वरूप और उनके चुनाव के लिए किसी भी प्रकार की व्यवस्था, एक स्थायी संगठन जिसकी क्षेत्रीय शाखाएँ हों और जो मारा वष कायरेत रहे । कांग्रेस नेताओं ने 1908 में ऐसे काम के लिए प्रांतीय समितियों की बात नहीं साची थी । पंजाब के प्रतिनिधियों ने कई बैठकों में इस बात पर बल दिया कि देश के लिए कोई सविधान बनाने से पूर्व कांग्रेस का अपन लिए एक सविधान अवश्य बनाना चाहिए । निम्नदेह, यह मूल विचार मूलराज का था, उस अवाधमय व्यक्ति का जिसे आठ में रहकर अपन विचार पेश करने में आनंद आता था ।

1904 में भी कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने, जिनका नेतृत्व साजपत राय तथा उनके मित्र द्वारका दास ने किया, बेकार प्रयत्न किया कि कांग्रेस अपना सविधान निर्धारित करे । अब कांग्रेस का महाधिवारी महान और शाहाना सर फिराजशाह मेहता थे । जैसा कि दुनीचंद (अम्बाला) ने जो बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में उपस्थित थे, कहा है

“लाला साजपत राय और लाला द्वारका दास ने इस बात का असफल प्रयास किया कि कांग्रेस अपना कोई सविधान बना ले, पारसी नाइट ने उन्हें बिना किसी कठिनाई के धमकाकर चुप करा दिया । लाला साजपत राय का अभी वैसा व्यक्तित्व नहीं था जो दो वष बाद में उभरा ।”

“दो वष बाद” का प्रसंग बनारस के स्मरणीय अधिवेशन से है, जिसकी घटनाओं का व्यौरा बाद में सम्पूर्ण अध्याय में दिया जाएगा । यहाँ तो बस इतनी चर्चा कर देना ही काफी होगा कि साजपत राय और उनके मित्रों ने कांग्रेस के लिए एक सविधान की आवश्यकता को

14. सामूहिक चेतना के लिए जीवन-चरित

उनके मातामह मैजिनी को पढ़ने में जा तीव्र आवेग उत्पन्न हुआ, उसे उन लोगों के साथ, जिन्हें अंग्रेजी की पुस्तकें उपलब्ध नहीं थी, बाटने के लिए 1896 में वह उर्दू पुस्तक की एक श्रृंखला लिखने पर मजबूर हो गये। इनका नाम उन्होंने 'द ग्रेट मैन आफ द वर्ल्ड' रखा। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने पहले महान व्यक्ति, अपने गुरु गिस्मिप मैजिनी, को चुना, जिनके जीवन तथा शिक्षा ने उन्हें भारतीय युवा काल में बहुत अधिक प्रभावित किया था। एक बार उन्होंने 'द यूटीज़ आफ मैन' का उर्दू रूप देने का प्रयत्न किया था। अब उन्होंने मैजिनी के लोकप्रिय जीवन के बारे में एक छोटी पुस्तक लिखी और उसके पश्चात् गैरिवाल्डी की जीवनी। यह रेखाचित्र आधुनिक जीवनी लेखकों को उस प्रकार सतुष्ट नहीं करते, जिस प्रकार चित्र बनाने वाले कलाकार करते हैं। दरअसल ये रेखाचित्र किसी मनोवेग से प्रेरित होकर नहीं लिखे गए थे। मैजिनी और गैरिवाल्डी से उनके पाठकों में परिचित नहीं थे, इसलिए यदि ये रेखाचित्र स्पष्ट हों, तो इनका स्वागत किया जाएगा। राजपत राय निश्चित तौर पर व्यावहारिक या कहिए कि 'राजनीतिक' स्तर पर कार्य कर रहे थे। गणनीकरण और स्वतंत्रता के इटली के आंदोलन ने उन्हें बहुत आकर्षित किया था और उन्हें भारत की समस्या में कई बातें उन बातों के समान लगीं, जिनसे इटली के नेताओं को निपटना पड़ा था। इसके अतिरिक्त मैजिनी की अपील सबव्यापक थी, उनके उपदेश केवल उनके अपने देशवासियों को ही संबोधित नहीं थे। विभिन्न देशों के जो लोग उनकी शिक्षा से प्रभावित हुए, उनमें राजपत राय भी शामिल थे। इनके सम्पूर्ण करने के लिए गैरिवाल्डी की जीवनी तथा रेखाचित्र भी जरूरी था। इनके बिना इटली के एकीकरण की तस्वीर पाठकों के सामने सम्पूर्ण तौर पर नहीं आ सकती थी। विचार मैजिनी के थे और क्रियाकर्म गैरिवाल्डी का। मैजिनी की तरह वह भी स्वतंत्रता को प्यार करते थे केवल इटली में ही नहीं दक्षिण अमरीका में भी उन्होंने

जो वीरतापूर्ण सघप किए थे, यह बात उससे स्पष्ट होती थी। उन्होंने सघप किए, विजय प्राप्त की और प्रफुल्ल हृदय से राज्य अय लोगो को दे दिए और स्वयं फिर गरीबी की स्थिति में या शान्तिपूर्ण सादगी के जीवन में रहने के लिए अपन द्वीप में लौट आये। मैजिनी और गैरिबार्डी की जीवन नयाए चुनन से उनका उद्देश्य अपने देश के युवका में देशभक्ति की भावना पैदा करना था।

स्वाभाविक ही था कि उन्होंने ये जीवन चरित प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तका से तैयार किए थे। अधिकतर सामग्री छ भागा वाले सस्करण 'मैजिनीज लाइफ एंड राइजिंग' में और 'काउटेस सिजरेस्को' रचना से ली। बोल्टन किंग रचित 'लाइफ आफ मैजिनी' तथा अंग्रेजी की और बहुत सी लाकप्रिय पुस्तकें अभी प्रकाशित नहीं हुई थी। उनका नाम कोई नए तथ्य पेश करना नहीं था और न ही मूलभूत व्याख्या प्रस्तुत करना था। वह तो केवल अपने देशवासियों को इटली के उन महान व्यक्तियों के जीवन तथा शिक्षा से परिचित कराना चाहते थे, जिन्होंने उनके अपने मन का बहुत गहराई से प्रभावित किया था। और यह एक हकीकत है कि इसके पश्चात कई दशका तक देश के युवको को, विशेषकर पंजाब के, देशभक्ति की शिक्षा लाजपत राय की इन उद् पुस्तिकाओं से दी जाती रही। मैजिनी के रखाचित्र ने पंजाब में नई भावना तथा नई चेतना पैदा करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की किसी भी अन्य पुस्तक के मुकाबले अधिक काम किया। इस चेतना ने शीघ्र ही राजनीतिक आंदोलन को 1906-1907 की बड़ी घटनाओं के लिए तैयार कर दिया।

मैजिनी ने इटली की स्वाधीनता, उसकी एकता और उसके एए प्रजातंत्र बनने का मपना देखा था। वह एक राष्ट्रवादी थे जिनकी दृष्टि सकीण वधना से मुक्त थी और भारी मानवता उनका क्षेत्र थी। वह श्रातिकारी थे जिन्हें "लागो द्वारा, लोगो के लिए" श्रान्ति में विश्वास था और उन्होंने आतंकवाद की निंदा की, क्योंकि यह उनकी प्रसौदी के अनुकूल नहीं था। गतिशीलता के लिए आह्वान करते समय भी मैजिनी एक शिपक थे, जो नैतिक मूल्यों पर अधिक बल देते थे। लाजपत राय के लिए ये सब बातें सम्पूर्ण उपदेश थी, जो विदेशी साम्राज्य

के अधीन उनके देशवासियों के लिए उपयुक्त थी। वह उस एकता का बहुत मूल्यवान समझते थे, जो ब्रिटिश शासन ने भारत का दी थी और उनकी इच्छा थी कि उनका देश इस एकता को किसी प्रकार की हानि पहुंचाये बिना स्वतंत्र हो जाए। यह एक उद्देश्य था जिसके लिए निम्नी भी बलिदान को वह बड़ा नहीं समझते थे।

मरद्विध 1 इटली की एकता के निर्माताओं का, जो संक्षिप्त विवरण दिया उसका यहाँ स्मरण करना उचित ही है

“केवुर, मँजिनी, गरिवाल्डी तीना।

ये उसका दिमाग, उसकी आत्मा, उसकी तत्त्वज्ञान ”

लाजपत राय ने आत्मा को अन्य सभी के मुकाबले अधिक महत्व दिया परन्तु उनकी दृष्टि में और शिक्षा में मेरेडिथ के तीन में से अन्य दो नजर-अंदाज नहीं हुए। निस्संदेह, (मँजिनी आर गरिवाल्डी की तरह) केवुर ने अविचल्य के नाम से जा कुछ भी किया, उसे वह अधिक प्रशंसनीय या उचित नहीं समझते थे।

कुछ अधिकारियों का मँजिनी ने संबंधित इस पुस्तिका से खतरे का आभास हुआ और लाजपत राय का अन्तर में भूचलाए मिलती रहती थी कि उन पर मुकदमा चलाया जाएगा, परन्तु सरकारी वकील को शायद उन पर इस सम्बन्ध में मुकदमा बनाने में कठिनाई हुई। उन्हें यह जानकारी मिली थी कि “अधिकारियों ने उन पुस्तिका का दो या तीन बार अंग्रेजी में अनुवाद करवाया था ताकि बानूनी सलाह से सर्वे, परन्तु सरकार के बानूनी विशेषण में इस बात पर मतभेद था।” शिक्षा विभाग ने इस नए खतरे का अपने तौर पर विशेष नोटिस लिया। सभी मुख्याध्यापकों को परिपत्र जारी किए गए और शिक्षा विभाग के निदेशक ने अनेक बार डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसिपल से यह पूछा कि क्या लाजपत राय की पुस्तकें कालिज या स्कूल में पढ़ाई जाती हैं? स्कूलों के एक निरीक्षक का किसी छात्र के पास से एक ऐसी पुस्तक मिल गई तो मुख्याध्यापक से इस संबंध में स्पष्टीकरण मांगा गया था।

उनके अगले तीन महान व्यक्ति उनके अपने ही देश के थे, शिवाजी, दयानंद और कृष्ण। शिवाजी के बारे में उनकी पुस्तक मँजिनी और

गैरिवाल्डी के प्रकाशन के शीघ्र वाद ही प्रकाशित हो गई । दरअसल, य तीना पुस्तके 1896 मे प्रकाशित हुई थी । यह लगभग वही समय था, जब मुस्लिम इतिहासकारा द्वारा शिवाजी को गलत ढंग से पेश किए जान पर प्रतिन्रिया शुरू हो रही थी । इन इतिहासकारा ने अधिकतर उन लोगा को महान दिखाने के लिए प्रयत्न किया था, जिनके विरुद्ध शिवाजी जीवन भर सघष करत रहे थे । मराठा इतिहास के बार म यूरोप के इतिहासकारा की रचनाए भी अधिकतर फारसी स्रोता पर आधारित थी । शिवाजी का राष्ट्रीय नायक के रूप मे अभी उचित ढंग से पेश नहीं किया गया था । लगभग इसी समय तिलक ने गणपति समारोह के सिलसिले म अपना काय आरम्भ किया था और वह इस महान उत्सव को महाराष्ट्र मे राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए इस्तेमाल कर रहे थे । संभव है कि लाजपत राम ने तिलक के गणपति उत्सव से प्रेरणा ली हो । मराठा इतिहास के बारे मे रानडे की पुस्तक मराठी स्रोत इस्तेमाल करके लिखी गई पहली ऐसी पुस्तक कही जा सकनी है । क्योंकि इससे पूव केवल मुसलमान लेखका की पुस्तको को ही आधार बनाया जाता था । अब धारा बदल गयी थी और शिवाजी जोखिम उठाने वाले साधारण व्यक्ति, लुटेरा, "पहाडी चूहा" और यह सब कुछ नहीं रहे थे । जिस समय लाजपत राम ने शिवाजी के बारे मे अपनी पुस्तक निकाली, उस समय तक रानडे की पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी । परन्तु उन्हें इसकी पाडुलिपि देखने का अवसर मिल गया था और उन्होंने इससे काफी सहारा लिया था । उनकी पुस्तक उन पुस्तका मे से प्रथम थी जिनसे विचारधारा मे परिवर्तन आया और शिवाजी उपहास और निन्दा के स्थान पर प्रशंसा और नायक पूजा क विषय बन गए । यह अभी अपर्याप्त ही था । मराठा प्रलेख तथा इतिहास अभी आरम्भ ही हुआ था । इनके साथ ही लेखक स्पष्ट तार पर पम्पाती थे और हर उस घटना मे, जिसम शिवाजी को बदनाम करने का प्रयत्न किया गया था, उन्होंने शिवाजी का समर्थन किया । मराठी अभिलेखा का अध्ययन अभी आरम्भ ही किया गया था और जो अध्ययन किया गया था, वह अपूण तथा अस्थायी था ।

भारतीय इतिहास के बार मे अपनी पहुच को उन्होंने 'शिवाजी' की प्रस्तावना के रूप मे चात्सीस से अधिक पन्नों म बहुत अच्छी तरह स्पष्ट

किया था। इसमें उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि वे केवल अपने शानदार अतीत के इतिहास की ओर ही अधिक ध्यान न दें, बल्कि अपने पतन का इतिहास भी पढ़ें तथा यह बात भी जानें कि किस प्रकार हम वान की आर ध्यान न देने से उन्होंने कुछ स्वार्थी लोगों को इस काल को गलत ढंग से पेश करने का अवसर दिया है, जिस के कारण हिन्दू-मन तथा चरित्र के बारे में घतमात्र गलत धारणाएँ बन गई हैं। अपने चरित्र को इस प्रकार गलत ढंग से पेश किए जाने में हिन्दुओं ने मोटा स्वीकृति दी है। इससे समकालीन हिन्दू-मन सदूषित हुआ है और इससे परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक प्रभावों ने इसके प्राकृतिक विनाश में द्वावट डाली है। अपनी प्रस्तावना में उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि मराठा नायक के पश्चात् वह 'पंजाब के उस महान नायक' के बारे में लिखेंगे, जिन्हें सक्ट के समय पंजाब के पुनर्जीवन का श्रेय प्राप्त है। निस्संदेह इससे उनका तात्पर्य, सिखा के दसवें गुरु गाविंद सिंह से था, जिनकी वह सदा ही भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। "महान व्यक्तित्व" के जीवन चरित्र लिखने का जो उन्होंने वायदा किया था, उनमें चौथा नंबर निश्चय ही थी कृष्ण का था।

पंजाब के नायक के बारे में उनकी इच्छा अधूरी ही रही। महाभारत के नायक के बारे में उन्होंने अपना ध्यान पूरा किया, यद्यपि उस श्रृंखला में कृष्ण चौथे नंबर पर नहीं पाचवें नंबर पर रहे। उनकी चौथी पुस्तक दयानंद के बारे में थी। दलपत राय विद्यार्थी ने उर्दू में स्वामी दयानंद की आत्म कथा का संक्षिप्त रूप प्रकाशित किया। दलपत राय की मृत्यु के पश्चात् लाजपत राय ने दो मास का समय उस मत के संस्थापक का जीवन चरित्र लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने में लगा दिया, जिस मत का उन्होंने स्वयं अपना लिया था। यह पुस्तक सितंबर 1898 में प्रकाशित हुई। किसी मत के सदस्य से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उस मत के संस्थापक के प्रति आलाचनात्मक रवैया अपनाएगा; परन्तु लाजपत राय ने इस बात का ध्यान रखा कि उनकी पुस्तक—सत-चरित्र न बन जाए। उसका लाभकारी पहलू उस बात में था कि उसमें केवल स्वामीजी के जीवन के तथ्य तथा आय समाज की स्थापना के बाद की घटनाओं की ही चर्चा न हो बल्कि उसमें स्वामीजी के आरम्भिक जीवन के बारे में जो भी तथ्य मिलें, वे भी शामिल कर

लिए जाए। यह सभी कुछ इस ढंग में पेश किया गया, जो पढ़ने योग्य था। यही कारण है कि यह पुस्तक कुछ दशकों के लिए स्वामी दयानंद का प्रामाणिक जीवन-चरित रही, यद्यपि आय समाज ने आधिकारिक जीवन-चरित प्रकाशित करने के लिए एक समिति स्थापित की थी। राजपत राय की पुस्तक पढ़ने में काफी अच्छी थी, इसमें अधिक प्रशंसनीय भाषा इस्तेमाल नहीं की गई थी और न ही नीरसता ही थी। इसने पृष्ठा को निजी आदनों, स्वभाव और जीवन की छोटी-छोटी क्षात्रिया का उल्लेख करके रोचक बनाया गया था। परन्तु यह पुस्तक अस्पायी रेखाचित्र ही रही, क्योंकि बाद में दयानंद की मातृभूमि काठियावाड़ में बड़े परिश्रम से अनुसंधान करके पुस्तकें लिखी गई थी।

जीवन-चरित लिखने की इस श्रद्धालुता की अन्तिम पुस्तक 'श्री कृष्ण' भी और कई पहलुओं से यह सर्वोत्तम थी। कुछ स्थानों पर कुछ अलङ्कृत पैराग्राफ यदि काट दिए जाए—य पैराग्राफ कुल मिलाकर कोई दस बारह पन्नों के थे—तो यह "उच्च कोटि" की रचना थी, जो बहुत सुंदर ढंग में लिखी गई थी। इसमें क्रिस्तागोई का तरीका अपनाया गया था। संभवतः उन युवा लोगों के लिए (सभी युगों के) यह सर्वोत्तम पुस्तक है जो केवल कृष्ण की कहानी जानना चाहते हैं, शत यह है कि घृतात के अनावश्यक दस बारह पन्ने निकाल दिए जाए तथा भूमिका में की गई बहम भी हटा दी जाए। राजपत राय की कहानी के कृष्ण मुख्यतः से महाभारत की कहानी के कृष्ण हैं। बाद में भागवत तथा अन्य पुराणों की मिलावट तथा प्रज भाषा की पतनोमुख कविताओं उन्होंने दूर से ही हटा दिया था। भागवत की समझ कविता या अन्य कवियों की ध्यापक कल्पना के प्रति शायद वह उतने संवेदनशील नहीं थे। आम लोगों के मन पर उनके विध्वंसक प्रभाव के बारे में, जो इन्हें अक्षरशः लेते थे (नतिक व्यवहार के लिए मानदंड बताते समय भी), वह निश्चय ही बहुत अधिक जागरूक थे। अपनी कहानी या ईमानदारी से वर्णन करते समय उन्हें पूर्ण अधिकार था कि वह महाभारत की कहानी पर कायम रहें और कतई आवश्यक नहीं था कि इसी कारण वह किसी के विरुद्ध बात करें। परन्तु उन्होंने महसूस किया कि महाभारत के कृष्ण का पुनरुद्धान करने के लिए यह अनिवार्य है कि पतन काल के बनावटी कृष्ण को हटा दिया जाए। एक बार

आप कृष्ण की ऐतिहासिकता को स्वीकार कर लें, ता कोई कठिनाई नहीं रहती । तब निश्चय ही महाभारत का प्रभाव वाद के युग की कथा और कविता से अधिक वजनदार होता है । इसके अतिरिक्त यदि आप एक बार इतिहासकार के रूप में वैज्ञानिक जाच पड़ताल आरम्भ कर दें, तो बहुत सी पौराणिक कथाएँ एक दूसरे को स्वयं रद्द कर देंगी, और बहुत सी अन्तर्निहित प्रतिवादों के कारण रद्द हो जाएंगी । काव्यात्मक भ्रूणारो ने विरोधी आलोचकों को आसानी से यह आरोप लगाने में सहायता दी है कि कृष्ण तो एक बिगड़े हुए युवक थे, जिन्हें गोकुल की गोपियों के साथ शरारतों के अलावा और कोई काम नहीं था । फिर भी, सभी कथाओं में (पुराणों की, कविता की तथा अन्य) कृष्ण ने अपने वे कर्तव्य पूरे करने के लिए, जो उन जैसे राजकुमारों के स्तर के लिए उचित थे, अतः गोकुल और ग्वाले का काम छोड़ दिया था । ये कार्य उहाने बहुत छोटी आयु में, आप कह सकते हैं कि बाल्यावस्था में ही, आरम्भ कर दिए थे । इस अकेले व्यौरे ने उन सभी दत्त पुराण कथाओं को हटा फेंकने में लालपत राय की सहायता की, जो ईश-निन्दा के आरोपों में सहायक सिद्ध होती थी और अनाप शनाप थी । इतिहासकार के लिए उनका कोई मूल्य नहीं था ।

15. मोम-से कोमल इस्पात-से कठोर

‘आधे मोम, आधे इस्पात’ — यह विश्लेषण था लाजपत राय व मत का, जो एक उर्दू शायर ने एक बार किया था। सभी विपमता-का वा डटकर विरोध करना, अथवा शक्ति, बठिन से बठिन कष्ट भी मम्माम से झेलना — यह इस्पात वाले भाग के कारण था, जब कि मोम वाले भाग ने उन्हें कष्टा, विश्लेषक गरीबा और दलित लोगा के कष्टा के प्रति संवेदनशील बना दिया था।

वह सारी उन्नत मध्य करत रहे, इसलिए स्वाभाविक था कि उनकी जीवन-कथा पर ‘इस्पाती’ भाग हावी रहे, परन्तु संवेदनशील मोम घड़ी आसानी से उनकी महानता के आधे भाग पर दावा जता सकती है।

आज समाज ने उनकी बुद्धि तथा उनके दिल के इन दोनों भागा का इस्तेमाल किया। समाज की पत्रिकाआ का सम्पादन करने तथा उनके लिए लिखन, पुस्तिकाए प्रकाशित करन, दौरे करन, भाषण देने और धन एकत्र करन के अलावा उन्हें डी० ए० बी० कॉलेज तथा उसकी शाखाआ में (जैसे जालंधर एम्स संस्कृत स्कूल जो बाद में कॉलेज बन गया) विभिन्न हैसियतो से वायभार सापा गया। दरअसल, कॉलेज के लिए उनका काम प्रिंसिपल हसराम के बाद दूसरे स्थान पर था। फिर भी, आज समाज के अधीन उनका सबसे अधिक महत्वपूर्ण वाय शिक्षा संस्थाआ से बहुत दूर के क्षेत्रों में था, और इही क्षेत्रों में उनके मोम जैसे भाग ने उनकी आत्मा की पहली पुकार सुनी।

शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बहुत-सी भयानक प्राकृतिक विपत्तिया आईं, जैसे सूखा, अकाल और महामारी। 1897 में तिलक को 18 मास के लिए कारावास भेज दिया गया था, क्योंकि उन्होंने बम्बई प्रशासन द्वारा पंगे के विरुद्ध किए गए प्रवचन की आलोचना करने का साहस किया था। उस वर्ष सूखे और अकाल ने भी जैसे अधिकतम हानि पहुंचाने का निणय लिया हुआ था। अज स्थाना समेत राजपूताना में भयानक समाचार मिल रहे थे। ऐसे समाचारों से मोम वाले भाग का प्रभावित

हाना स्वाभाविक ही था। यह विपत्तिया उस भूमि में आई, जिनकी वीर गाथाओं में बाल राजपूत राय के मन में गौरव की भावना जगाई थी और जो उन्हें युवा काल तथा परिपक्वता की आयु में प्रेरणा देती रही थी। उनके लिए यह सहन करना बहुत कठिन था। बहादुर और गौरवशाली राजपूता के उत्तराधिकारी मक्खिया के समान मर रहे थे और घोर अभाव के विरुद्ध सघप करत हुए वे मक्खिया से भी बुरी तरह जी तथा मर रहे थे।

राजपूताना से प्राप्त हान वाली सूचनाओं से केवल असीम दुःशा की ही जानकारी नहीं मिली, बल्कि यह पता भी चला था कि इस दुःशा का लाभ उठाया जा रहा है। बहुत से ईसाई प्रचारकों ने, धर्म प्रचार के जोश में इस विपत्ति को अपने लिए देवी उपहार समझा, क्योंकि वे अधिक संख्या में लोगों का धर्म परिवर्तन के लिए बाबू में कर सकते थे। प्रत्यक्ष तौर पर वे जबरन मद लोगों को खाना तथा आश्रय देकर मानवता हितैषी कार्य कर रहे थे, परन्तु वास्तविकता इससे बिल्कुल भिन्न थी। वह न केवल बच्चा का ही बचाव कर रहे थे, बल्कि उन लोगों का भी बचाव कर रहे थे, जो जानते थे कि हिंदू धर्म, ईसाई धर्म से अलग है और इस प्रकार पथ भ्रष्ट करने के लिए हर उपसंभ्य साधन का इस्तेमाल किया जा रहा था। मिशन के कार्यकर्ता धाती और यज्ञोपवीत पहनते थे और माथे पर तिलक भी लगाते थे, ताकि वे ब्राह्मण दिखाई पड़ें। पूजा में पंडिता रमावादी के ईसाई यतीमखान द्वारा भेजे गए एजेन्ट लडके-लडकिया का 'पंडितजी' के पास ले जाते थे। आर कई बार तो ये कट्टरपथी लोग इससे भी बड़ी बुराई से नहीं चूकते थे—उदाहरण के तौर पर वे भूखे मर रहे किसी व्यक्ति की भूखी मर रही पत्नी को घृहका ले जाते थे और उस व्यक्ति के जीवन वचने की सुरत में भी उसकी पत्नी नहीं लौटाते थे। इन समाचारों ने सवेदनशील मन का अपमान की वेदना से भर दिया।

राजपूत राय का अन्त करण इससे बहुत द्रवित हुआ। इन घटनाओं ने उनकी जिह्वा का वाणी दी थी तथा उनकी कलम को अक्षर, जिससे उनके श्रोताओं तथा पाठकों को उनके मन के मोम वाले भाग की जानकारी मिली।

1897 और फिर 1900 के अकाल ने उनकी सभी शक्तिया, भाषण प्रतिभा, सहमत करने की क्षमता, संगठन करने और प्रवचन करने की शक्ति पर बोझ डाला।

लजपत राय हिन्दू नेताओं में अग्रगामी थे । यद्यपि उन्होंने आप समाज के अधीन काय शुरू किया, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने सारे हिन्दू समाज का संबोधित करना आरम्भ कर दिया और सभी हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त किया — इनमें रुढ़िवादी, यहाँ तक कि आम ब्रह्म समाजी भी शामिल थे । उन्होंने सहायता समितियों का गठन किया और उनके लिए धन जमा किया । डी० ए० वी० कालिज के छात्रों के साथ उनके व्यक्तिगत सम्पर्क हान के कारण स्वयं सेवा का एक मजबूत दल उनकी सेवा पर था । उन्होंने इस बात पर बल दिया कि केवल अस्थायी सहायता ही काफी नहीं, बचाए गए लड़के-लड़कियों के लिए स्थायी अनाथालय स्थापित किए जाए, जो भविष्य में ऐसे संकट के समय में सहायता कर सकें । इसके अलावा इन बचाए गए लड़के-लड़कियों का आत्मनिर्भर और लाभदायक भाग्य बनाने के लिए उन्हें विभिन्न दस्तकारियों का प्रशिक्षण दिया जाए । उन्होंने सहायता कार्य करने वाले अपने कार्यकर्तियों को निर्देश दिया कि सहायता के समय के छोटे बच्चे, विधवाओं तथा किशोरियों का प्रार्थमिकता दें — जिन्हें सरकार द्वारा शुरू किए गए सहायता कार्यों से सबसे कम लाभ होता है और जो ईसाई प्रचारकों से बेईमान किस्म के लोगों का बहुत आसानी से शिकार हो सकते हैं । इस बात का आग्रह भी किया गया कि सहायता केवल दान के रूप में ही न दी जाए, बल्कि जहाँ तक संभव हो सके लोगों को काम करने योग्य तथा अपना रोजगार अर्जित करने योग्य बनाया जाए । उन्होंने विशेषकर चर्खा कातने पर बल दिया, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि अन्य कार्यों में सहायता नहीं दी । यह उनकी दूर दृष्टि तथा आग्रह का ही परिणाम था कि फिरोजपुर में प्रमुख आम अनाथालय स्थापित हुआ जिसके वह कई वर्षों तक महासचिव रहे । इसके अलावा लाहौर में हिन्दू अनाथालय और मेरठ में भी एक अनाथालय बनाया गया । कुछ अन्य स्थानों पर स्थायी अनाथालय बनाए गए और बाद में कुछ स्थानों पर स्थायी अनाथालय भी बनें । इनमें से कुछ लजपत राय के परिश्रम का सीधा और कुछ अप्रत्यक्ष परिणाम थे । पंजाब और मेरठ में उन्होंने जो उदाहरण स्थापित किया, उसका अनुसरण सारे भारत में किया गया ।

जब भूखे मर रहे अनाथा का पहला दल साहीर पहुँचा, तो वह दख सकता थे कि उन्होंने एक नया जीवन ढालन में सफलता प्राप्त कर ली है, इसका अनुमान हम बात से लगाया जा सकता था कि इस अवसर पर रेलवे स्टेशन पर एक भारी जनसमूह एकत्र हुआ गया था। इस दल को तथा उसके बाद आने वाले अन्य दल को पहला आश्रय लाजपत राय के मेहमान-नवाज़ घर में मिला। कुछ समय अनारकली से आगे गनपत राड पर किराए के मकान में रहने के बाद उन्होंने फाट स्ट्रीट पर अपना मकान खरीद लिया था।

उनके कार्यकर्ताओं को यदि अपना काम करना था, तो उन्हें प्रचारका से टक्कर लेनी थी। पक्के निष्ठावान कार्यकर्ताओं का जो दल उन्होंने बनाया था, वह इस काम पर पूरा उतरने योग्य था। उन्होंने इस बात का अनुरोध किया कि जहाँ कहीं भी सरकारी अमला स्वयं-सेवका तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा काम कर, उसके कार्यकर्ताओं को सरकारी सहायता एजेंसी से समुचित भाग मिले और सरकारी अमला भेदभाव तथा पक्षपात न करे। कई मामले अदालत में ले जाए गए और प्रचारको के काम का इस प्रकार नगा किया गया, जो उनके लिए सुखद नहीं था। आखिरकार, यह तय हुआ कि प्रचारक उस समय तक किसी अनाथ हिंदू को नहीं ले सकेंगे, जब तक कि हिंदू एजेंसियाँ पहले उसे स्वीकार करने से इन्कार न कर दें।

इसके परिणाम ठोस थे। लाजपत राय इन्हें आकडाग नहीं, बल्कि नैतिक प्राप्ति मानते थे। परन्तु यदि उसे संस्था की दृष्टि में ही देखना है, तो यह सख्या कुछ कम नहीं थी। 1897 में जिस समय सारा सगठन निकुञ्ज शुरू से बनाया गया था, लाजपत राय के स्वयंसेवक लगभग तीन सौ अनाथों को बचा पाए थे, जिन्हें अनाथालया में शरण दी गई थी और बहुत से अन्य लोगों का भी सहायता दी गई थी। दूसरे अंश में इन स्वयंसेवकों ने लगभग दो हजार अनाथों को बचाया। नैतिक सफलता इस संख्या की दृष्टि से कहीं अधिक थी। सक्डो कार्यकर्ताओं ने, विशेषकर छात्र कार्यकर्ताओं ने, नागरिकता और देशभक्ति के कार्यों में पक्का प्रशिक्षण प्राप्त किया। सारा आंदोलन उस समुदाय की ओर से स्वावलम्बन का एक विशिष्ट प्रयत्न था,

जो सरकारी या विदेशी प्रचारक एजेंसिया से सहायता लेता था, क्योंकि उसके विचार में ऐसी विपत्तिया में केवल यही एजेंसिया ही कोई सहायता पहुंचा सकती थी। क्या इस प्रकार का स्वावलम्बन ही० ए० वी० कालिज के प्रयोग का सारतत्व नहीं था ?

लाजपत राय के अपने व्यक्तित्व के विकास में भी इन दो अभियानों का सर्वोच्च महत्व था। उन्होंने उसे विकास का अवसर दिया और सकौणता की सारी आशकाएँ दूर कर दी, जो उस स्थिति में संभव थी, क्योंकि आम तौर पर समाज के काय पंजाब में ही सीमित थे। अब उनका नाम सारे देश में फैल गया था और लाखों करोड़ लोग, जो राजनीतिक दृष्टि से अभी भी उदासीन थे, वे भी उनके बारे में जान गए थे। कांग्रेस में दिए गए भाषणों से अभी तक उनके बारे में वृद्धिजीवियों को ही जानकारी थी, उनके सहायता कामों में उपेक्षित जनता को भी प्रभावित किया।

इसका एक हानिकारक पक्ष भी था। ईसाई प्रचारकों ने इस अनुचित हस्तक्षेप पर नाराजगी व्यक्त की क्योंकि वे इसे अपनी गतिविधियों के लिए आरक्षित क्षेत्र मानते थे। उन्होंने अदालत, अकाल आयोग तथा समाचार-पत्रों में अपना भडाफोड किया जाना पसंद नहीं किया। यह तिरस्कार दोनों ओर था। इन छद्म ईसाइयों का इन अभियानों में निबट से देखने के बाद लाजपत राय के मन में उनकी नैतिकता और मानव स्तर के प्रति ऊंची भावना उत्पन्न नहीं हुई और बाद में जब वह अमरीका में रहे, तो उन्होंने उन लोगों के तौर-तरीकों का अध्ययन किया, जो अपने अमीर देशवासियों से धन एकत्र करने के लिए भारत का बदनाम करते थे। उन्हें इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं दिया कि वह इन लोगों के प्रति अपनी पहले से कायम की गई राय में परिवर्तन करें। कुछ भी हा, उन्होंने प्रचार सपठना का अपना धातु बना लिया था, जो निश्चय ही शक्तिशाली तथा प्रतिशाधी भी थे। वे अपने मीने की प्रतीप्ता कर सकते थे।

जब अकाल आयोग नियुक्त हुआ और गवाह बुलाए गए तो लाजपत राय ने इस अवसर में साम उठाया। रचनात्मक आर्थिक उपाय सुझान के अलावा उन्होंने धर्म परिवर्तन करने वालों के विरुद्ध जितने

व्यापक साधन प्राप्त थे और परित्यक्त बच्च जिनकी लूट का माल था, अमरदार प्रबंध करन का जोरदार आग्रह किया। धर्म के नाम पर मनुष्य की दुःखशा आर साधन के विरुद्ध सधप कितना जोरदार था आर यह कितना सफल हुआ, इसका अनुमान अकाल आयोग (1901) की रिपोर्ट के खंड 23 से लगाया जा सकता है, जो 'अनाथा' के वार म था। इसम जोरदार शब्दा म कहा गया था कि 'अनाथा से सम्बद्ध भरकारी नीति प्रान्तीय संहिताआ पर आधारित हानी चाहिए, ताकि इसके कारण अधिकारिया या जनता के मन म किराी प्रकार का सदेह न हा।' आयाग ने यह व्यवस्था दी कि अकाल के समय "राज्य उन बच्चा का अस्थायी सरक्षक होगा, जो उसे परित्यक्त मिलें, आर उहे अपन सरक्षण स दूर नहीं करेगा जब तक अकाल समाप्त हुए पर्याप्त समय न बीत जाए और इम दौरान उनके प्राकृतिक सरक्षक बूढने के प्रमास किए जाए और यदि यह सम्भव न हा, तो उसी धर्म के ऐसे व्यक्ति ढढ लिए जाए जा उहे गोद लेन का तैयार हो।" इन सिद्धान्ता पर बनाए गए नियमा का उचित ढम से लागू करन के लिए आयाग न आग्रह किया कि "सभी सामजनिक अकाल अनाथालया का गैर सरकारी समिति समय समय पर निरीक्षण करे जिमम विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हा।"

1897 और 1898 के बष स्वयं लाजपत राय के लिए भी विपदा के बष थे। अकाल सहायता अभियान म अगस्त 1898 तक बहुत अधिक ध्यस्त रहन के बाद कुछ राहन लन तथा मदानी क्षेत्रा की जोरदार गर्मी से बचन के लिए वह ऐंबाटाबाद चल गय। वहा एक दिन वह बर्षा म भीग गये, जिसके कारण उहे बुप्यार आन लगा। उस से वह जल्दी छुटकारा न पा सके। यहा तक कि उनके जिगर म सूजन आ गई। सितंबर से अप्रैल तक वह त्रिस्तर पर पडे रहे। इम के पश्चात् उनका जिगर कष्ट का कारण बनता रहा। शायद इम कष्ट का आरम्भ रापड के दिना म उनके बचपन से ही हो गया था। इस वार ता उनका राग इतना असाध्य हा गया था कि उनक बहुत से मित्रा न उनके स्वस्थ हान की आशा ही छाड दी थी।

अपनी बीमारी के दिना म ही उहे पता चला कि उनके भाई दलपत राय को तपेदिक हा गया ह। जब तक बडा भाई स्वस्थ हाकर

विस्तर से उठे, छोटे भाई का तपेदिव काफी अधिक बढ़ गया था। जून 1899 में लाजपत राय का परिवार में पहला बड़ा शाक देखा पड़ा। लाजपत राय को दलपत राय से बहुत गहरा प्रेम था और सावजनिक कार्य के लिए वह सभी भाइयों में से सबसे अधिक होनहार थे। दलपत राय पक्के आयसमाजी थे और संस्कृत के प्रति उनके मन में बहुत उत्साह था। शायद इसी कारण से ही वह अपने आपको दलपत राय विद्यार्थी कहते थे। लाजपत राय ने आत्मकथा में लिखा है, "मुझे आशा थी कि सावजनिक कार्य के क्षेत्र में उसकी व्याप्ति मुझसे अधिक होगी।"

तीस वर्ष की आयु के करीब अपने छोटे भाइयों में से सर्वाधिक होनहार भाई की मृत्यु को लाजपत राय ने बहुत अधिक महसूस किया।

16. उन्नतिशील वकालत का त्याग

किंगी व्यस्त वकील का इतनी अधिक असम्बद्ध गतिविधियाँ के लिए समय कैसे मिलता था? वकील सागा का आम तौर पर बहन का शौक है कि मानून का काय बहुत ही ईर्ष्यालु प्रेमिका जसा है। लाजपत राय की साहित्यिक क्षमता किसी पूर्णकालिक लेखक तथा सम्पादक के बराबर थी। उनके दारे भाषण, धन एकत्र करना कई सस्याआ का जिनके साथ उनका सम्बन्ध था कार्यालय का मामूय कामकाज, समाज का संगठनात्मक काम तथा समितियाँ की बैठकें, कालिज, अवाल महायता अभियान और अनायालय—ये सभी काम इतने अधिक थे कि इनके लिए पूरा समय काय करने वाले दो-तीन योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी। यदि कहा जाए तो यह अपन आप में एक मेजवान थे। ऐसा होता हुए भी उनके व्यवसाय में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हो सकता था, जो अपने पाम आने वाले मुक्किला की सख्या पर कुप्रभाव डाले बिना इतनी अधिक साव-जनिक गतिविधियाँ में भाग ले या उसे कुछ मुकदमे लेव में इकार न करना पडे। यह चीफ काट में वकील के तौर पर बहुत सफल मिद्ध हो रहे थे और प्रत्यक्ष तौर पर चाटी के वकील बनन दिपाई दे रह थे। इस बात के बावजूद कि लाजपत राय का अपना मन बही और था, उनका ध्यान मुकदमा की ओर पूरी तरह नहीं था। उन्होंने लिपा है “मेरी वकालत मेरी सावजनिक गतिविधियाँ में ग्राधा थी और मेरी सावजनिक गतिविधियाँ मेरी वकालत में अडचन डाल रही थी।” उन्हें दो ईर्ष्यालु प्रेमिकाओं के साथ एक ही समय निवाहने की कठिन समस्या का सामना करना पड रहा था।

बहु धार तो वह दोनों के बीच चुनाव के लिए मजबूरी महसूस करत। वह अपनी मनभाती प्रेमिका को दूसरी के पक्ष में त्याग देने के बारे में साच भी नहीं सकते थे। यह तो आरम्भ में रोजगार प्राप्त करने के लिए सुविधा का मामला था या बिल्कुल आवश्यकता की बात थी। अब वह उतनी जोरदार आवश्यकता महसूस नहीं करते थे, इसी लिए कभी-कभी सोचा करत थे कि बही ऐसा समय ता नहीं आ गया कि वह कष्टदायक दोहरी व्यवस्था को समाप्त कर दें। परंतु इस बात का उनके सारे परिवार पर प्रभाव पडना था इसलिए वह इस सबध में कोई

निणय केवल अपन तौर पर नहा ल गन्त थ । अउ वह तीन बच्चा के पिता थ
 — 71 पुत्र तथा एक पुत्री, जिनका जन्म तीव दशक मे हुआ था (उनके मन्म
 छाटे बच्चे का जन्म अगले दशक के आरम्भ मे हुआ) । बच्चे अभी बहुत छटे
 थे आर उनके लिए परिवार के मामला मे राय दना मन्मव नहीं था, परन्तु एक
 पिता के दायित्व से छुटकारा नहीं पाया जा सकना था । उनके भाइया न अब
 तक शिक्षा ममाप्त कर ली थी और वे अपन बारावार मे जन्म गए थे । उनकी
 पत्नी की शायद अधिक नहीं चलती थी । यह बात जिना महत्व की नहीं कि
 अपनी आत्मकथा मे साजपत राय न बद् ऐस परिच्छेद लिखे हैं, जिनसे अपन माता
 पिता के प्रति उनका अगाध प्रेम झलकना है, अपन कुछ भाइया तथा बच्चा के प्रति
 भी कई स्थानो पर कोमल भावनाए व्यक्त की गई हैं, परन्तु अपनी पत्नी के बारे
 मे उन्होंने कोई विशेष उल्लेख नहीं किया । जिस प्रकार स गाधीजी ने अपनी
 पुस्तक 'एकमपरिमेट विद द्रुप मे कस्तूरबा के बारे मे चर्चा की है, या यू कहिए
 विश्लेषण किया है वह साजपत राय का पन्ना नहीं था । उनकी आत्मकथा मे
 पत्नी के बारे मे बहुत संक्षेप मे चर्चा की गई है, परन्तु जो कुछ भी कहा
 गया है यह त्रिकुल स्पष्टवादी ढंग से कहा गया ह ।

उनके पिता न उनकी शादी उस समय ही कर दी थी, जब वह अभी स्कूली
 छात्र थे, परन्तु उनका घरलू जीवन कुछ वर्ष पश्चात् शुरु हुआ । इसमे निश्चय
 ही कोई लडाई झगडा नहीं था परन्तु यह बात स्पष्ट है कि इसमे ऊंचे दर्जे की
 सुख शांति भीन ही थी ।

मभवत यह बात मनावनानिका के लिए एक समस्या है कि यदि उन्हें अपनी
 पत्नी या घर से अधिक प्रेम हाता, ता समाज सुधार तथा 'रचनात्मक' कार्यों के लिए
 उनके मन मे उत्साह तथा भ्रमण-लालसा इतनी अधिक न दिखाई देती । उन्हें
 यह शिकवा था कि उनकी पत्नी उस प्रकार के जीवन मे अधिक रुचि नहीं लती
 थी जिस प्रकार का जीवन उन्हें पसंद था । ऐसा दिखाई पडता है कि उनकी पत्नी
 न इन बात का पूरी तरह अहसास कर लिया था और वह इसी से ही पूरी तरह
 मतुष्ट थी कि अपने पति की सुख मुविधा का ध्यान रखे और यह काम उन्होंने
 पूरी श्रद्धा से किया भी । शायद वह यह उचित ही महसूस करती थी कि उनके पति
 अपने बच्चा तथा घर के प्रति सदा न्याय नहीं करते थे जसा कि उन्हें करना
 चाहिए या वह कर सकते थे । परन्तु यह बात उन्होंने अवश्य ही शुरु मे समझ
 ली थी कि पति के इन तौर तरीका का तब्दील नहीं किया जा सकता, इसलिए

उन्होंने अपनी यह भावना माँ में ही रखी। उन्हें अपने आपका ऐसे जीवन के अनुकूल ढाल देना था जो दिया जाना चाहिए, जिसका चुनाव करना उनकी इच्छा नहीं थी। यदि उन्होंने जीवन को पति की इच्छा के अनुसार समूह यान के लिए मशिय यगदान नहीं दिया तो पति के रास्त में कोई राधा भी नहीं जानी और पूरी ईमानदारी में कोई ऐसी बात नहीं की, जिसमें अप्रमत्तता रहे या घरेलू तनाव पैदा हो। उहाँ का भी कोई मगडा गडा नहीं किया। इस विचित्र मद्दम का ध्यान में रखते हुए यह कोई कम महत्त्व की बात नहीं थी, चाहे इससे रचनात्मक योगदान नहीं मिलता था। और इस प्रकार आपकी सहमति से (या उनकी मौन स्वीकृति से) लाजपत राय की पत्नी का उनके जीवन के बड़े पैसला में कोई असर न था, इसलिए कालत के पेशे से इतनी जल्दी अवकाश लेने के प्रश्न पर, जब राय नेने का मामला आया तो यह राय माता-पिता में ली गई।

शुशी राधाविश्वन उम समृद्धि से प्रसन्न थे, जो उनके बकील पुत्र की फीमा में घर में आई थी। अपने पुत्र के सुझाव पर काफी समय पहले उन्होंने अपने काय में निश्चित अवधि से पूर्व ही अवकाश प्राप्त कर लिया था। उन्होंने लाजपत राय के इस विचार का जोरदार विरोध किया कि वह भरपूर युवावस्था में ही कालत छोड़ देंगे। पुत्र और पिता में असहमति थी। पुत्र न बाद में लिखा है "कालत का पेशा मेरी पसंद का नहीं था। मैं इसे छोड़कर अपना सारा समय देश सेवा में लगाना चाहता था। परंतु मेरे पिता इस विचार से महमत न थे और इस मद्दम में मेरे रास्त में कवावट थे। वह चाहत थे कि मैं धन जमा करूँ और अपने भाइयों तथा बच्चों के लिए उचित व्यवस्था करूँ। मैं यह उत्तर देता था कि मैंने अपने भाइयों का शिक्षा दिलाने की उचित व्यवस्था करने का अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है, और अपने बच्चा के पालन पोषण के लिए मेरे पास काफी राशि है। मेरे इस नेक प्रस्ताव का मेरी माँ ने कोई विरोध न किया। उनकी सहानुभूति मेरे साथ थी।"

यह रस्सागशी कुछ समय के लिए चलती रही और तभी समाप्त हुई जब 1898 में लाहौर आय समाज की शताब्दी के अवसर पर उन्होंने कालत के काम को सीमित करने और अपना अधिक से अधिक समय "कालिज, समाज तथा अपने देश की सेवा के लिए" देने के निणय की घोषणा कर दी। अब उन्होंने अपना

कार्यालय स्कूल की इमारत के एक कमरे में बना लिया और जिन दिना वह यात्रा पर न होते, तो कालिज तथा समाज के काम के लिए प्रतिदिन वहा जाते । अब नगरेतर समाजा के उनके दौरे बढ गए, क्योंकि उनकी घोषणा के बाद प्रात के सभी आय समाज (जो कालिज वाले गुट के समयक थे) यह समझते थे कि अपने वार्षिक अधिवेशन के लिए उन्हें निमन्त्रण देना उनका अधिकार था । उन्हाने कालिज में भारतीय इतिहास पर भाषण देना शुरू कर दिया, यद्यपि वह इस मिलमिले को कुछ एक महीना से अधिक जारी न रख सके । उन्हाने प्राचीन आय सभ्यता के बारे में उदू में एक पुस्तक लिखी, जिसमें इस सत्सृष्टि का पूण ब्यौरा दिया गया था । यह पुस्तक मुख्य तौर पर स्कूली छात्रा के लिए थी (परन्तु प्रौढ व्यक्ति इसक) अधिक पसंद करते तथा प्रशंसा करते थे) । यह पुस्तक एक प्रकार से उनकी उस समय की कल्पना की अप्रदूत थी, जिम कल्पना को उन्हान अपने असहयोग कारावास के दौरान पुस्तक का रूप दिया । उन्हाने स्कूली छात्रा के लिए अंग्रेजी की एक पाठ्य पुस्तक भी तैयार की । कुछ समय के लिए तो ऐसा दिखाई देता था, जैसे वह पूणकालिक अध्यापक तथा शिक्षा शास्त्री बनने जा रहे हैं ।

वह अपने मुक्किला के काम में व्यवस्थित ढंग से कमी करते जा रहे थे । अपने नए निणय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उन्हाने कोई दो सप बाद अगला कदम उठाया । उन्होने यह निणय किया कि जो कुछ भी वह ककालत से कमाएंगे, स्वयं नहीं लेंगे । यह घोषणा उन्होने अपने मित्र प्रिंसिपल हसरज को लिखे पत्र में की, और कई सप तक वह ककालत की अपनी कमाई, जिसे समर्पित करने की वह पहले घोषणा कर चुके थे, डी० ए० वी० कालिज को और समाज को देते रहे । आमतौर पर यह समझा जाता था कि वह अपनी सारी कमाई केवल समाज तथा कालिज को दिए जा रहे हैं । जब कि वास्तव में उनका यह निरन्धय ककाल के तौर पर व्यावसायिक फीस के बारे में था । ऐसा करने का उनका मुख्य उद्देश्य इस लालसा को समाप्त करना था कि वह अपना समय और शक्ति अपनी आय में वृद्धि करने के लिए गण्ट न करें । धन भंडार में वृद्धि करने और उनकी निष्ठा के बीच में नहीं आनी चाहिए । यद्यपि कई सपों तक वह यह आय मुख्य तौर पर कालिज तथा समाज को देते रहे, परन्तु उन्हें अपनी इच्छा से यह कमाई अन्य नेक कार्यों में भी लगाने की पूरी स्वतन्त्रता थी । इस प्रकार का बलिदान बनोया था और चायद अद्वितीय भी और इसका गहरा प्रभाव पडा । इस

बलिदान तथा निज के लिए धन के इस प्रकार से त्याग और इसके साथ ही वाक पटुता और जोरदार भाषण न उन्हें खतरनाक याचक बना दिया। चन्दे के लिए उनकी अपील आय समाज के वार्षिक अधिवेशन का निश्चित भाग बन गई और लागा के इन समारोहों में शामिल होने से कतराने के म्यान पर वहा और अधिक लोग आकर्षित होने लगे। उनके जोरदार भाषण कजूस से कजूस लागा को भी अपनी अटी ढीली करने के लिए विवश कर देते थे और इस प्रकार मौके पर ही भारी राशि एकत्र हो जाती थी, जिसका स्वागत किया जाता था। यह धन आय समाज तथा कालिज की अपर्याप्त तिजोरी को भरने में चला जाता था।

17. हरकिशन लाल

तीरें दशक में लाहौर में एक बहुत ही कमठ व्यक्ति था—गुवा बकील हरकिशन लाल। अनिवाय था कि चीफ कोर्ट में लाजपत राय की उनके साथ भेंट हो। यह आय ममाजिया के निदक थे और उन्हें 'गपोडा' बहकर आनन्द लिया करते थे। हमने वावजूद दाना न शीघ्र ही महसूस किया कि उनमें कोई बातें ममान हैं और यह सम्भव महयाग में बदल गया, जिमने बाद में मित्रता का रूप ले लिया।

यद्यपि वह इंग्लैंड से शिक्षा ममाप्त करने हार ही में भारत लौटे थे, परंतु हरकिशन लाल को शायद अपने महस्व के बारे में पहले ही अहसास हा गया था। गणित के विद्यार्थी के रूप में केंम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उनका विशिष्ट म्यान था। इंग्लैंड में अय भारतीय छात्रा के ममान उन्होंने भी बकालत पास कर ली। परन्तु उनके विपरीत किसी विशेष उद्देश्य से उन्होंने सोम्वाड स्ट्रीट (बक तथा महाजनी क्षेत्र) का और शेयर बाजार के तौर-तरीको का अध्ययन किया। वह नौवें दशक के आरम्भ में लाहौर आये। उनमें असाधारण शक्ति और तीक्ष्ण बुद्धि थी, जिसमें अयाह विचारा की भरमार थी और वित्तीय मामला की उच्च स्तरीय पूरी सूझ बूझ थी। उन्हें सट्टा बाजार के व्यापार की हेरा फेरी का गान भी था। उन्हें परम्परा की रत्ती भर भी परवाह नहीं थी और वह मनकी भी थे जिम प्रकार कोई गुवा स्वभाव में सामायत नहीं होता। वह इस बात के बारे में निश्चित दिखाई देते थे कि कोई बडा काय नहीं उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, परंतु उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि यह बकालत में हा या राजनीति में, उद्योग में है या वित्त क्षेत्र में। बकालत के पेशे में उन दिना होनहार व्यक्ति के लिए सफलता की सभावनाएं बहुत अच्छी थी। राजनीति में वह यह पहले ही देख चुके थे और वहा प्रतिभाशाली तथा साहसी नेतृत्व के लिए बहुत गुजाइश भी थी। उद्योग तथा वित्त के मामलो में पजाबियों ने अभी कोई महत्त्वपूर्ण काय नहीं किया था। हरकिशन लाल ने बकील के तौर पर काय प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु अभी वह इस बात के अनिश्चय में थे कि क्या इस व्यवसाय में बहुत अधिक जमन की गुजाइश थी। ऐसा दिखाई पड रहा था कि वह अभी आस-पाम के वातावरण का जायजा ले रहे हैं, इस बात की टाह ले रहे हैं कि व्यापार के कठिन उतार-चढाव क्या हैं और विशाल राजनीति क्षेत्र कैसा है। वह इतने अधिक

निदक ओर सनकी थे कि उनके लिए आय समाज में शामिल होना सम्व नहीं था । अल्पधक उत्साही आय समाजियो पर वह जार से हसने और उनका मजाक उडाते थे । उनके लिए वे सब अल्पवुदधि वाले तथा रग में भग डालते वाने थे । वह उनके साथ ऐसा बर्ताव करने, जिसमें घृणा छिपी हुई होती थी और अपनी तेज जबान के लिए उन्हें अच्छा मसाला मिल जाता था ।

हरकिशन लाल की प्रतिभा और व्यापारी जगत् के रास्ता तथा चार रास्ता की गहरी जानकारी के लिए उनके प्रति प्रशंसा और सम्मान के बावजूद, थाताभा के मन में यही प्रश्न उभर कर आता था कि क्या उच्चस्तरीय वित्तीय मामलों के इन जादूगरों का हरकिशन लाल ने अपने लिए आदश के रूप में घुना था ?

हरकिशन लाल की असफलता पर शत्रु क्षेत्र में प्रसन्नता की लहर तब दौड़ी जब उनका बैंक असफल होने पर अग्रेजा ने धी के दिए जलाए । उनके प्रति छिद्रावैषी होने का भी मन नहीं चाहता था । और 1919 के मासल ला के दिना म उ होने जिस शानदार ढंग से अपने व्यवहार का परिचय दिया, उससे हर सच्चे पजाबी का उन पर गव महसूस होता था । जब लाजपत राय निर्वासा के बाद लौटे, तो दोनों बहुत अधिक् प्यार से मिले । दाना इस बात के लिए चिन्तित थे कि माइवत ओ' डायर ने पजाब को, जो बहुत बडा आघात पहुंचाया है, उसे मिटाया जाए । ओ' डायर, लाजपत राय और हरकिशन लाल, दोनों से घृणा करता था और इस प्रकार दोनों में मित्रता का नया सबध स्थापित हा गया । जैसे ही अमरीका म रहने के बाद लाजपत राय ने पजाब में काय चारम्भ किया, उन्होंने अपना उर्दू दीनिक 'बन्द मातरम्' जारी कर दिया और 'राजनीति की तिलक विचारधारा' (तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स) की स्थापना की । हरकिशन लाल ने बडी उदारता से सहायता दी । वह समाचार-पत्र के महत्वपूर्ण हिस्सेदार तथा निदेशन बन गये और राजनीतिक विचार-धारा (स्कूल आफ पालिटिक्स) के लिए दस हजार रुपये दान देने का इन्कार किया । परन्तु यह सहयोग अल्प-अवधि का रहा । असहयोग आंदोलन के कारण वे दोनों फिर अलग-अलग पक्षा में चले गए । एक सरकार के सदस्य बन गये और दूसरे जेलों के बंदी । 'बन्दे मातरम्' में हरकिशन लाल का भाग लाजपत राय को खरीदना पडा और दस हजार रुपये दान देने का वचन

अपूर्ण ही रहा। जब लाजपत राय ने हरकिशन लाल को, जो यूरोप के लिए रवाना होने वाले थे, अनुस्मारक भेजा, ता उन्होंने बम्बई में उत्तर दिया कि उन्हें तिलक में विश्वास नहीं और न ही किसी राजनीतिक विचारधारा में, और धन मागने का कोई औचित्य नहीं, जब तक उनके मित्र उनमें परिवर्तन न ला सकें। इस प्रकार अत तक यह मैत्री अनियमित चलती रही।

हम नौवें दशक की अपनी चर्चा की ओर सौटते हैं।

मूलराज कुछ समय से इस बात पर जोर दे रहे थे कि भारतीय संयुक्त सेक्टर बैंक स्थापित किया जाए, जो भारतीय पुनर्निर्माण की ओर पहला कदम होगा। उनके सुझाव पर लाजपत राय ने कुछ चुने हुए मित्रों को एक परिपत्र भेजा, जिसका उत्तर सतोपजनक मिला। परन्तु लाजपत राय ने निश्चय कर लिया था कि यह बैंक किसी अन्य व्यक्ति की निगरानी में होगा, क्योंकि उनके अपने जिम्मे बहुत काम था और वह नहीं चाहते थे कि कालिज और समाज के लिए उनके काम में कोई बाधा पड़े। इस बीच हरकिशन लाल की प्रतिभा तेजी से धमक रही थी और ध्यान खींच रही थी। मद्यपि वह आय समाजिया की जोरदार खिलाफ उठाते थे, इसके बावजूद उन्होंने यह महसूस किया कि पंजाब में किसी भी योजना की सफलता के लिए उनका सहयोग अत्यावश्यक है। उन्होंने मूलराज के साथ कई बार विचारा का आदान-प्रदान भी किया था। उन्हें दयाल सिंह मजीठिया का विश्वास प्राप्त था और उन्होंने सरदार के 'ट्रिब्यून' में सम्पादक, नगेंद्र नाथ गुप्त का भी अपने साथ कर लिया था। पंजाब नेशनल बैंक आरम्भ कर दिया गया। लाजपत राय निदेशक वाइ में नहीं थे, परन्तु मूलराज और हरकिशन लाल ने उनके भाई दलपत राय का प्रबंधक तथा सचिव के पद के लिए चुन लिया। इस प्रयाग में लाजपत राय और हरकिशन लाल की मित्रता को पहला आघात पहुंचा।

उन्होंने आरम्भका में लिखा है, 'सचिव के तौर पर मेरे भाई ने हरकिशन लाल के आदेश पर कुछ ऐसा कार्य किया, जिसका सबंध एक अर्थ निदेशक से था। इस छोटे से बैंक का घाटा रहा और बोर्ड में प्रबंधक से लाभा हरकिशन लाल का स्पष्टीकरण इन के लिए कहा। मेरे भाई ने हरकिशन लाल का उनके अपने

हस्ताक्षरों वाला वह निर्देश दिखाया, जिसने अनुसार उसने काय किया था। लाला हरकिशन लाल चाहते थे कि दलपत राय उस दस्तावेज को नष्ट कर दें। ऐसा करने से इकार करने उमने लाला हरकिशन लाल को नाराज कर लिया और त्यागपत्र दे दिया।”

ऐसा लगता है हरकिशन लाल ने इस बदमजगी का और भी कटु बना दिया, क्योंकि उन्होंने दस हजार रुपये की वह राशि लौटाना स्पष्ट कर दिया, जो दलपत राय को जमानत के तौर पर जमा करवानी पड़ी थी।

लाजपत राय ने लिखा है, 'यह राशि बोट में मेरे भाई की मृत्यु के बाद तक न लौटाई, यद्यपि इसको मृत्यु उत्तरी बैंक की नौकरी से त्यागपत्र देने के एक वर्ष बाद हुई थी। मेरे भाई ने यह रकम मुझमें उधार ली थी और उसी अपने अन्तिम क्षणा में भी इस बारे में अप्रमदता प्रकट की थी।”

उनकी मंत्री को दूसरा आघात काफी समय बाद लगा। हरकिशन लाल ने देखा कि पंजाब नेशनल बैंक का बोर्ड उनके अनुकूल नहीं है। उन्होंने 'पीपुल बैंक' आरम्भ कर दिया, परन्तु जब पंजाब नेशनल बैंक के निदेशक के तौर पर उनका कार्यकाल समाप्त हुआ, तो उन्होंने दोबारा निर्वाचित होना चाहा। आय समाज ग्रुप ने लाजपत राय को उनसे मुकाबले में खड़ा कर दिया। दोनों के बीच यह पहला द्वन्द्व था, जिसमें लाजपत राय विजयी रहे।

लाजपत राय ने आत्मकथा में लिखा है, "मैं उनके स्थान पर निर्वाचित हो गया, इसके पश्चात् स्थायी विद्वेष हो गया और कांग्रेस के फंड के झगड़े को लेकर उस विद्वेष में और वृद्धि हो गई। इण्डिया इश्योरस कम्पनी में भी मूलराज और हरकिशन लाल के बीच अप्रिय मतभेद उत्पन्न हो गए। वर-असल, मूलराज तो इतने बटु हो गये, जैसे हरकिशन लाल को बरबाद करना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था।”

हरकिशन लाल और आय समाजियों की अच्छी तरह न बन पाई, बल्कि इस अनबन के कारण आय समाजी लोगों में कांग्रेस आन्दोलन से दूर हटने की रुचि में वृद्धि ही हुई। दयाल सिंह मजीठिया ने, जिन्होंने कई लोक हितपी ट्रस्ट स्थापित किए और 'ट्रिब्यून' आरम्भ किया, पंजाब कांग्रेस के मामलों में गहरी रुचि ली।

1893 का कांग्रेस अधिवेशन पंजाब में करने के लिए बरूणी जंशीराम ने निमंत्रण दिया था। वह लाहौर के वकीला में प्रमुख तथा आय समाज और डी० ए० वी० कालिज शुभ के प्रमुख नेता थे। परन्तु आर्य समाजिया का कांग्रेस के मामले में कम ही रुचि थी। 'महात्मा' शुभ ने सिद्धान्त रूप में राजनीति में उपरी रुचि लेने का विरोध किया, विशेषकर इसलिए कि यह 'गैर वफादारी' के तत्वावधान में था। मूलराज यद्यपि इन बातों के लिए उत्सुक थे कि पदों के पीछे रहकर नेता की भूमिका निभाए, परन्तु उन्होंने समिति का विरोध किया। दयाल सिंह और एक प्रमुख ब्रह्म समाजी जागेंद्र चन्द्र बोस, पंजाब कांग्रेस में विशेष हम्मी बने रहे। हरविशान लाल, दयाल सिंह के बहुत मुह लगे बन गए और उन्होंने उनकी राजनीति का पूरी तरह समर्थन किया। 1893 के अधिवेशन में तथा उसके बाद के वर्षों में पंजाब में कांग्रेस के मामले में मुख्य तौर पर दयाल सिंह तथा हरविशान लाल के हाथों में रहे।

1900 में लाहौर को कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन देखने का विशेष अवसर प्राप्त हुआ। 1898 में दयाल सिंह का देहांत हो चुका था। बरूणी जंशीराम ने राजनीति में अपनी रुचि निरंतर बनाए रखी और 1900 तक उन्होंने अपने क्षेत्र में काफी अच्छा प्रभाव बना लिया था। इसलिए, इस अधिवेशन में आर्य समाजिया ने पहले अधिवेशन के मुकाबले अधिक उत्साह दिखाया। वे बहुत सुव्यवस्थित और प्रशिक्षित व्यक्ति थे और उनकी ओर से सुझाव आया कि अस्थाई पडाल बनाने पर धन व्यय करने के स्थान पर एक विशाल हाल का निर्माण किया जाए, जिसमें कांग्रेस का अधिवेशन हो और यह इमारत स्थायी रूप में बनी रहे। इस प्रकार ब्रैडले हाल का निर्माण हुआ, यद्यपि कुछ आर्य समाजी इसका नाम किसी विदेशी के नाम पर रखे जाने के विरुद्ध थे।

अन्य बातों के अलावा कांग्रेस अधिवेशन के हिसाब किताब के कारण आर्य समाजियों और हरविशान लाल के बीच फिर मतभेद उत्पन्न हो गए। अधिवेशन से कुछ मास पूर्व बरूणी जंशीराम का देहांत हो गया जिस पर उनके अनेक मित्रों तथा डी० ए० वी० कालिज ने गहरा शोक व्यक्त किया। स्वागत समिति के अध्यक्ष बाबू काली प्रसाद राय ने उनकी चर्चा करते हुए उन्हें 'प्रातः में कांग्रेस आन्दोलन की जान तथा ज्योति' बताया। जंशीराम की मृत्यु में पंजाब में राजनीतिक जीवन को बहुत जबरदस्त धक्का पहुँचा।

क्या हरकिशन लाल का भी काँग्रेस व प्रति वही सदेह थे, जा आर्य समाजिया को य ? बाद म जब 1907 के शष्टपूण दिना म आय समाज के कुछ नेताआ ने 'हिन्दू हिता के नाम पर विराध थ्यवन किया और अपन आपना "गर वफादार" गनिनिधिया स अलग कर लिया, ता हरकिशन लाल उावे माथ थे, दूसरे गुट के माथ नहीं जिसक बारे म सदेह था । साजपत राय ने सभवत 1907 के वफादार प्रनिनिधि मडला के बारे म साचा हागा, जब उहोने यह कहा कि "हरकिशन लाल का राजनीतिक दृष्टिकान आय समाजिया वाला ही था, परंतु अप्रकट रूप म यह काप्रेसी थे ।"

जब 1900 म लाहौर म काप्रेस अधिवेशन हुआ, उम समय इस प्रात का राजनीतिक जीवन दो गुटो मे बट चुका था—हरकिशन लाल का गुट और आय समाज गुट । ट्रिब्यून ट्रस्ट के सस्थापक दयाल सिंह ने अपनी यसीयत मे हरकिशन लाल का एक ट्रस्टी नामजद किया था । दयाल सिंह के जीवन मे आय समाजियो को ममाचार-पत्र के विरुद्ध बोर्ड शिकायत न थी, परन्तु जब से हरकिशन लाल ने दसका नियंत्रण सभाला था, यह स्थिति बदल गई थी । लाहौर काप्रेस (1900) के अवसर पर 'ट्रिब्यून' हरकिशन लाल का ममाचार पत्र बन चुका था ।

आय समाजी नेताआ न यह साचना आरम्भ कर दिया था कि क्या यह उचित नहा रहगा कि वे अपना ममाचार-पत्र निकालना शुरू कर दे । थडले हाल म 1900 क काप्रेस अधिवेशन के बाद पजाब म राजनीतिक जीवन का दीपक बिल-बुल गुल हा गया था । पजाब काप्रेस न पहने भी काई अधिक काम नहीं किया था । परन्तु अउ ता जा रहा-सहा काम हा रहा था, वह भी निर्बाध नहीं था ।

हम आत्मकथा म पढ़त ह—“1900 क काप्रेस अधिवेशन के हिसाब किताब का झगडा कभी भी उचित ढग मे निपटाया नहीं गया । इसलिए जब भी समिति की बठक हाती, विवाद उभर कर सामने आ जात । अन्त मे लाला हरकिशन लाल न बोर्ड बैठक बुलाना ही छड दिया । इसके अतिरिक्त हरकिशन लाल का स्वय काप्रेस नेताआ के साथ झगडा हा गया । इंडियन एसोसिएशन ता पहने ही सो चुकी थी । पजाब अब 'राजनीति के बिना' हो गया और लाड कजन के बायमराय काल के आरम्भ म अय प्राता म जो आंदोलन हुए, पजाब न उनमे कोई विशेष भाग न लिया ।”

प्रशासन लोकमत के प्रति विल्कुल उदासीन हो गया और शीघ्र ही पजाब के नेताओं ने महसूस किया कि उन्हें अपने आपको हरकत में लाकर पजाब में राजनीतिक जीवन को पुनर्जीवन देना होगा, नहीं तो प्रशासन उन्हें निरादर से लताड़ देगा। आय समाज के नेताओं ने 1903 और 1904 में बार-बार स्थिति का जायजा लिया। राजनीतिक आंदोलन का पुनर्स्थान अवश्य होना चाहिए, केवल प्रश्न था कि कैसे? कांग्रेस समिति भ्रष्टाचार थी और हरकिशन लाल के हाथों में थी, इंडियन एसोसिएशन लगभग मर चुकी थी, इंडियन पूरी तरह हरकिशन लाल के आदेशों के अनुसार चलता था और शत्रुतापूर्ण था, उसकी राजनीति निंदनीय होती जा रही थी। उनके वार्तालापों की मुख्य बात यह थी कि उनका अपना समाचार पत्र हो। हरकिशन लाल जैसी समस्या के समाधान के लिए पजाब में एक ईमानदार और उग्र समाचार पत्र होना बुरी बात नहीं थी।

18. 'द पजाबी'

जब लाजपत राय नई शताब्दी में दाखिल हुए, तो उनकी सीमाएँ बहुत विस्तृत हो चुकी थीं व प्रतिदिन और फैलती जा रही थीं। आय समाज तथा पजाब उन्हें अपनी नई शक्ति के पूरा इस्तमाल के लिए बहुत छोटे लग रहे थे। यह नई शक्ति उनके अंदर उमड़ रही थी और वह इसके लिए उचित रास्ते ढूँढ रहे थे। पजाब में तो वह मजिनी तथा गैरिबाल्टी पर लिखी उन पुस्तिकाओं के कारण लोकप्रिय थे, जिनसे नई राष्ट्रीय चेतना पैदा हो रही थी और स्वतंत्रता के लिए इच्छा प्रबल हो रही थी। सामाजिक धार्मिक आंदोलन के नेता के रूप में वे उतन नहीं उभरे थे। छाटी बीजा का अपने स्थान पर अपना महत्व था परन्तु उनकी आत्मा किसी बड़े काम के लिए छटपटा रही थी।

कांग्रेस बहुत दबूँ दिखाई देती थी और इससे कोई उद्देश्य पूरा होता दिखाई नहीं देता था, परन्तु हममें सभावनाएँ अवश्य थीं। ऐसा जान पड़ता था कि उसकी रणनीति जाशीला खून ही नहीं है। परन्तु यदि उस प्रेरित करने वाली शक्ति मिल जाए तो निश्चय ही वह काम कर सकेगी।

जैसा कि हम देख चुके हैं 1900 के लाहौर अधिवेशन के बाद पजाब उदासीनता के दौर से गुजर रहा था। हरकिशन लाल भी, जिनके बारे में विचार था कि वह कांग्रेस को चला रहे हैं, उससे उब गये दिखाई पड़ते थे। लाजपत राय का यह सब बातें पसंद नहीं थीं। उन्होंने अपना समय तथा ध्यान अधिक-अधिक राजनीतिक कार्यों में लगाना शुरू कर दिया और शीघ्र ही यह महसूस कर लिया कि ऐसे काम का प्रभावशाली बनाने के लिए समाचार-पत्र प्रथम तथा सर्वापरी आवश्यकता है। वह और उन्हीं के ढंग से सोचने वाले अन्य व्यक्तियों का यह पक्का विश्वास था कि वर्तमान समाचार पत्र सावजनिक शिक्षा प्रदान करने के लिए वह ठोस आधार नहीं बन सकते जिनके बिना कोई भी महत्वपूर्ण राजनीतिक ढांचा खड़ा करना संभव नहीं हो।

एक दिन तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जिसे सहन करना ही असंभव था। लाहौर के एक प्रमुख भारतीय समाचार पत्र के सम्पादक ने कुछ छात्रों के गुप्त नाम से प्रकाशित किए गए लेख की मूल पाण्डुलिपि गवर्नमेंट कालिज के प्रिंसिपल

को सोप दी और इस प्रकार अपने आपको विश्वास के अयोग्य तथा पत्रकारिता के सिद्धांतों से बिल्कुल कोरा सिद्ध कर दिया। छात्रों को बदले की भावना से दड दिया गया। इसके पश्चात् साजपत राय तथा उनके मित्र उनके इम नियम का और अधिक न रोक सके कि वे अपना समाचार पत्र तुरन्त आरम्भ करें। उनमें से दस एकत्र हुए और उन नियमों को तोड़ दिया कि वे एक-एक हजार रुपये देंगे, यदि इस सीढ़े में उनका यह धन चला भी गया, तो कोई चिन्ता नहीं। दरअसल, उन्होंने कुछ नहीं खोया, क्योंकि उन्होंने प्रबन्धकों के तौर पर ऐसा व्यक्ति चुना जिसे ठोस व्यापार का सहज बोध था। वह थे डी० ए० वी० के एक लेक्चरर—त्रसवत राय। समाचार-पत्र जिसका नाम 'द पंजाबी' था—अक्टूबर 1904 में आरम्भ किया गया। अपने प्रथम संस्करण से इसने लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति कर दी थी कि वह उड़कर मुकाबला करेगा। यह सवसात था कि समाचारपत्र की नीति का पथ प्रदर्शन तथा नियंत्रण साजपत राय करेंगे। तिलक के सुझाव पर उन्होंने के० वे० अठावले को सम्पादक नियुक्त किया, वह स्वयं अक्सर अपने हस्ताक्षरों से लेख लिखते थे। इसके अतिरिक्त वह निश्चित रूप से आमदार पर बिना हस्ताक्षर के सम्पादकीय लिखत थे। 'द पंजाबी' का उद्देश्य केवल एक अतिरिक्त समाचार पत्र होना ही नहीं था। इसे तो सप्ताह दर सप्ताह अनेक तरीकों से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करना था, ताकि पंजाब में नई राजनीतिक चेतना पैदा की जा सके। अर्थ लोगों को इसमें चाहे कुछ भी दिखाई दिया हो साजपत राय के लिए तो यह निस्संदेह उसी कार्य का साप्ताहिक सिलसिला था जो कई वर्ष पूर्व मजिनी की पुस्तिका के प्रकाशन से आरम्भ हुआ था। दोनों मामला में उद्देश्य एक ही था पत्रकारिता तो उसी शिक्षा के प्रचार के लिए केवल एक और माध्यम थी। यह प्रभावशाली भी था, क्योंकि दिन प्रति दिन उस उपदेश को सांग करन के लिए यह ठोस ढंग से कारवाई करने में योगदान देता था। 'द पंजाबी' का आरम्भ उन्होंने इसलिए किया था जिससे आलसी जनमत को, जो पिछले तीन वर्षों में और अधिक निद्रिय हो गया था, उत्तेजित किया जा सके। उन्होंने भी महसूस किया कि वह समय निकट ही है जब यह सिद्ध हो जाएगा कि यह डाट-डपट कितनी हिनचारी है और उचित समय पर की गई है।

आजकल के मापदण्ड से 'द पंजाबी' काई बड़ा समाचार पत्र नहीं था और यदि भविष्य के स्तर से आकांक्षा जाए तो वह और भी घटिया लगेगा। वह आठ पन्नों का साप्ताहिक था जिसे एक छाटा सा प्रेम प्रकाशित करता था। समाचार सूचनाएँ

प्राप्त करने के लिए इसके पास कोई साधन नहीं थे। उन दिना भारतीय समाचार-पत्रों के कार्यालयों में 'खबर' का पत्रकारिता वाला महत्व नहीं होता था—न ही इसके लिए कोई सम्बा घोड़ा अमला ही होता था। 'रूपक' नाम की किसी वस्तु का उन दिना कोई ज्ञान नहीं था। हाफ-टोन ब्लैक अन्य वस्तु थी, क्योंकि ऐसा ब्लैक बनवाने के लिए बम्बई, पना या कलकत्ता जाना पड़ता था। बहुत से समाचार सम्पादकों में अभी सुश्रुणकला तथा छपाई की कला नहीं सीखी थी और न ही पाठक इन मामलों में अधिक तुलक मिजाज थे। 'द पजाबी' अपने तौर-तरीकों में शायद अपरिपक्व लगे, परंतु वह सावधान तथा प्रभावशाली था। इस पता था कि कैसे और क्या कहना है? इसका असल उद्देश्य सामन था—पंजाब का बड़े सपने के लिए तैयार करना, जो निश्चित रूप से निवृत्त आ रहा था, जिसका महज ही पूर्वानुमान हो रहा था। यदि इसका आभास युद्ध काव्योत्सवों को नहीं था, तो युवा कांग्रेसियों को अवश्य था और लाजपत राय को तो जल्द ही था, जिन्हें आनेवाली घटनाओं का बड़े रहस्यमयी ढंग से पूर्वानुमान हो जाया करता था। इस उद्देश्य के लिए 'द पजाबी' ने बहुत प्रभावशाली ढंग से कार्य किया। हर सप्ताह इसके बालमा में म्यानीय शिक्षा, पुलिस की व्यावृत्तियाँ और जातीय भ्रमड तथा अक्खडपन की चर्चा होती थी। इसके अतिरिक्त देश-व्यापी मामले होते थे, जैसे नाड बजन का विश्वविद्यालय से सम्बद्ध बिल तथा विदेशी और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ, जिन्हें उसी एकमात्र उद्देश्य के लिए इस्तमाल किया जा सके। आरम्भ से ही 'द पजाबी' ने मरा की जार सरकार के विरुद्ध जापान की सफलता की ओर विशेष ध्यान दिया। असफलताएँ समूचे पूर्व की चेतना का प्रभावित करने जा रही थी और 'द पजाबी' ने इस बात पर विशेष ध्यान रखा कि उस के पाठक इस शक्तिशाली प्रभाव में बचते न रह जाएँ।

यह सधय, जिसके लिए लाजपत राय और 'द पजाबी' तैयारी कर रहे थे, शीघ्र ही आ गया—उसमें भी शीघ्र जितनी उठे आशा थी। बंगाल में यह गवर्नर बजन द्वारा प्रसीडेंसी का दा भागा में विभाजित करने से और पंजाब में उप-राज्यपाल इन्वर्टसन के भूमि तथा नहर कालानी कानूनों के कारण पैदा हुआ। 'द पजाबी' ने इन मामलों के बारे में जनमत तैयार करने और जब यह आंदोलन शक्तिशाली और बढ़ते ज्वार का रूप धारण कर गया, तो उस सही तथा बंधक ढंग से व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

19. बम्बई कांग्रेस अधिवेशन

‘द पञ्जारी’ वाल गृह न कांग्रेस के साथ अपना सम्पर्क फिर से स्थापित करने का निगम किया और इसी लिए उन्होंने 1904 के बम्बई अधिवेशन में अपना एक प्रतिनिधि भेजा। लाजपत राय और उनके मित्र द्वारका दास (जिनका नाम पर लाजपत राय न लोक सेवा संघ को पुस्तकालय भेंट किया) कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने वाले इस प्रतिनिधि मंडल के प्रमुख नेताओं में थे। कांग्रेस में अभी सघन शक्ति अधिक नहीं थी और इसका “रचनात्मक” कार्य भी कम ही था। एक प्रकार से इसका एक वार्षिक मेला आयोजित होता था, जहाँ इसके प्रवक्ता अपने जोरदार भाषण झाड़ते थे। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय तक इसका मुख्य उद्देश्य साल भर की शिकायतों को व्यक्त करना था, जो स्थायी अथवा मोटी मांगों के अतिरिक्त होती थी। यह संगठन कुछ अव्यवस्थित ही रहा। आय समाजियों को, जो मुख्यवस्थित संगठना तथा सुनियोजित सांजनिक कार्य के अन्वयत थे कांग्रेस के कार्य विशेष प्रशासनिक न सगे। उन्होंने अपने प्रवक्ताओं, लाजपत राय तथा द्वारका दास के माध्यम से ऐसे सविधान और ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया, जो सारा साल निरंतर कार्य करे। परन्तु उनका दूसरा प्रयत्न सर फिरोजशाह मेहता न आसानी से विफल कर दिया। मेहता उस दिने कांग्रेस के सर्वाधिपति थे। परन्तु लाजपत राय के लिए यह अधिवेशन एक और दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण रहा जिसकी हम अभी चर्चा करेंगे।

अधिवेशन के तुरत बाद वह एक पोत द्वारा श्रीलंका के लिए रवाना हा गए और उन्होंने मालावार तट भूमि तथा मागर क्षेत्र की सुंदरता को देखा तथा उसकी प्रशंसा की और वापस आते समय रामेश्वरम की यात्रा की तथा मदुरै का प्रसिद्ध मन्दिर देखा। यह उनकी पहली दक्षिण-यात्रा थी। तीन दिन वह मद्रास के ठहरे और जी० सुब्रह्मण्यम अय्यर के अतिथि बने और फिर कलकत्ता के लिए रवाना हा गये।

1904 के कांग्रेस अधिवेशन के बाद इस भ्रमण के दौरान ही गांधी के साथ उनकी महत्वपूर्ण मुलाकात हुई। गोखले उन दिने सर्वोच्च परिषद की बैठक के संबध में कलकत्ता में ही थे। गांधीने उन्हें एक दशक के तोर पर परिषद में ले गए जो उस दिने नेशन के विश्वविद्यालय कानून की अनियमितताओं की

वैधता व वार म एक बिल पर विचार कर रही थी। उन्होंने गाखल का गैर-सरकारी पक्ष की ओर से बालते हुए सुना। उ होन और भाषण भी सुन और लिखा कि "उस सारे नाटक न मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला।"

बजन द्वारा आरम्भ की गई नीतिया पर दुख व्यक्त करत हुए कांग्रेस नेताआ न वायसराय के पास एक प्रतिनिधि मडल भेजन का निणय किया। बजन न कांग्रेस अध्यक्ष स मिलन से इन्कार कर दिया और इस प्रकार उसन 'कांग्रेस के मुह पर करारी चपत लगाई।" नेताआ ने इस पर "बहुत अपमान महसूस किया और बहुत पक्षताब खाए और ब्रिटिश जनता से अपीन करने का फैसला किया।" भारत की शिकायते ब्रिटिश जनता के समक्ष रखन के लिए, बम्बई अधिवेशन म इंग्लड व आगामी चुनावो के अवसर पर अपना एक प्रतिनिधि मण्डल बहा भेजने का निणय किया। गोखले ने सुझाव दिया कि साजपत राय को इस प्रतिनिधि मण्डल मे शामिल कर लिया जाए और साजपत राय न इस सुझाव का तुरत स्वीकार भी कर लिया। उन्होने महसूस किया था कि वह प्रतिनिधि मण्डल के लिए सहायक हागे तथा विदेश मे जा अनुभव प्राप्त होगा, वह अमूल्य होगा। वह गाखले के साथ सम्पर्क का बहुत महत्व दत थे और शीघ्र ही दाना के बीच आपसी सम्मान पर आधारित मित्रता स्थापित हा गई जिसकी खातिर साजपत राय ने बिना किसी प्रकार के पछतावे के बलिदान किए। गाना का राजनीतिक दृष्टिकोण समान नही था और बाद के दिनो म मतभेद और बढ गए, परन्तु उन्होने कभी टकराव का रूप न लिया।

गाखले के माध्यम से उन्होने कलकत्ता म और कई महत्वपूर्ण सम्पर्क स्थापित किए और वह सिस्टर निवेदिता के साथ अपन सम्पर्क का बहुत सम्मानपूर्ण और अद्वितीय मानत थे, सम्भवत वह सिस्टर निवेदिता द्वारा लिखित "उग्रवादी हिंदू धर्म" तथा सजातीय विषया पर रचनाए पढ चुके थे। आय समाज यदि "उग्रवादी हिंदू धर्म" नही ता और क्या था और अब तक आय समाज काफी हद तक उदारवादी भी बन गया था। हिंदू धर्म की व्याख्या करत हुए उनके दृष्टिकोण का अधिक बल हिंदू धर्म की निहित प्रतिभा पर हाता था, एक या दूसरे सक्ीण सिद्धात पर नही। व्यावहारिकता म उसका बल सम्पूर्ण स्वतंत्रता दिलाने पर था, विशेषकर राजनीतिक स्वतंत्रता। उन्होने बेदातवाद का अपने पिता के समान स्वीकार नही किया था, परन्तु वह इतने गम्भ और समझदार हो गये थे कि उस दशन के गुणो के महत्व को समझ सकते थे। निवेदिता मार्क्युतिक

तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में काम कर रही थी और वह अधिक से अधिक राजनीतिक तथा अर्थ मन्त्रिय क्षेत्रों में कायरत थी । परन्तु वे एक दूसरे का भली भाँति समझ सकती थी । यह सम्पर्क दासमान आत्माओं का सम्पर्क बन गया । वे राजनीति के बारे में बातचीत करती और बिना किसी प्रतिबन्ध के बातचीत करती । एस० के० रैंडविल्फ़ जा उस समय 'द स्टेटमैन' का सम्पादन करती थी, के कार्यालय की ओर जाते समय उन्होंने अपने विचारों का स्पष्टता से आदान प्रदान किया ।

बाद में उन्होंने लिखा, मैंने रास्ते में उनके मुँह से जो बातें सुनी, उन्हें कभी भूल नहीं सकता । वह ब्रिटिश शासन से ज़रूरदार घृणा करती थी और भारतीयों से बहुत प्रेम । राजनीति में वह उन्हीं न्यायमुक्त सिद्धांतों का समर्थन करती थी, जिन्हें मैं जिन्नी ने प्रतिपादित किया था । संक्षेप में, इस भेंट ने मरी इम धारणा का और भी दृढ़ कर दिया और इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई ।”

इसके बाद मीठी यादें शेष रह गई । बाद में जब भी उन्होंने उनका स्मरण किया, तो बहुत घुसदिली से किया और वे बात इतनी ताजा और महकदार नहीं, जैसे किसी वस्तु का सभलकर रखा दिया गया हो ।

20. गोखले के साथ इंग्लैंड में

ब्रिटेन में आम चुनाव स्थगित हो गए थे। इसलिए ब्रिटिश मतदाता, जिन्हें ब्रिटिश मता का निर्णायक विधाता माना जाता है, भारत से आध प्रतिनिधि मण्डल का मुगमना में स्वागत नहीं कर पाए थे। गोखले ने अपनी यात्रा में परिवर्तन कर दिया। जिस दिन (10 मई 1905) लाजपत राय का साहौर में खाना होना था, उन्हें एक तार मिला जिसमें कहा गया था कि इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश मति के अध्यक्ष सर विलियम वेडरबन ने गोखले को सलाह दी है कि वह अपनी यात्रा जुलाई तक स्थगित कर दें और उन्होंने यही किया। लाजपत राय को यह बात बहुत बेइश्वरी लगी। उन्होंने यूरोप की अपनी प्रथम यात्रा के लिए सभी तैयारियाँ पूरी कर ली थीं और साहौर के मित्रों ने उन्हें शादीदार ठग में विदाई भी दे दी थी। अब वह सब कुछ शायद बेकार का आडम्बर लगे। इसीलिए उन्होंने फैसला किया कि आम चुनाव हो या न हो, अपनी योजना में परिवर्तन नहीं करेंगे।

लाजपत राय को बाद में पता चला कि वेडरबन ने बेचत चुनाव कार्यक्रम के बारे में सूचित किया था, जिसे गलती से बम्बई में यह समझ लिया गया कि भारतीय प्रतिनिधि मंडल को अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करने की सलाह दी जा रही है।

वह अपने कार्यक्रम पर कायम रहे। बम्बई जाने हुए वह कुछ समय के लिए रास्त में पूना में ठहरा। इस संक्षिप्त विराम के दौरान वह आशिक रूप से गाखले व और आशिक रूप में तिलक के अतिथि रत्न और अगले दिन उनका जहाज खाना हो गया।

वह 'द पजाबी' के लिए बिना हस्ताक्षर के सम्पादकीय लिखना जारी न रख मने, परन्तु यथाशीघ्र उन्होंने विदेश में अपनी यात्रा अथवा गतिविधियों के बारे में पत्र लिखन का अवसर प्राप्त कर लिया। उन्होंने यात्रा विवरण में पोर्ट सईद, नपान, रोम तथा मिलान के बारे में (ये स्थान उन्होंने रास्ते में देखे) अपने विस्तृत अनुभव लिखे। 10 जून 1905 को वह लंदन पहुंच गए।

इंडियन नेशनल कांग्रेस की आर से, जो अब बीस वर्ष पुराना संगठन हो चुका था, लंदन में कुछ प्रचार सर विलियम वेडरबन की अध्यक्षता में बनाई गई

इंडिया कमेटी कर रही थी। यह समिति भारतीय मामला के बारे में एक लघु मासिक पत्रिका, जिसका नाम 'इंडिया' था, प्रकाशित करती थी। कांग्रेस हर वर्ष इस पत्रिका के लिए भारी राशि खर्च करती थी। दादाभाई नौरोजी भी काफी समय तक इंग्लैंड में रहे। वह दक्षिण वर्सिंग्टन में रहते थे और अपना अधिक समय भारतीय पक्ष के लिए समयन प्राप्त करने में लगाते थे। वह 1886 में और फिर 1893 में दो बार कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता कर चुके थे। दादाभाई को अंग्रेजों के 'याव तथा ईमानदारी के प्रति स्वाभाविक प्रेम' में विश्वास था और उनका अधिक समय भारत की ओर से इस "स्वाभाविक प्रेम" के प्रति पुनरावेदन करने में ही व्यतीत होता था। दादाभाई तथा वेडरबन इंग्लैंड में इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रमुख प्रवक्ता थे।

अधिक युवा तथा अधिक जाशीले व्यक्ति, कांग्रेस नेताओं की निस्तज तथा सौम्य राजनीति तथा लड़ने में उनकी इंडिया कमेटी से बहुत असंतुष्ट थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा युवा गुट के नेता तथा प्रवक्ता शक्ति थे। श्यामजी ने स्वामी दयानंद के अनुयायी के रूप में जीवन आरम्भ किया था, जिनकी सिफारिश पर संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर मानियर विलियम्स अपने अनुसंधान में सहायता के लिए, श्यामजी को इंग्लैंड में भेज गए थे। वहाँ कालत पास करने के पश्चात् श्यामजी भारत लौट आए थे और कुछ वर्षों के दौरान उन्होंने कई कार्यों पर ह्रास प्राप्त किया था। स्वतंत्रता प्रेमी व्यक्ति के लिए यहाँ की परिस्थितियाँ अनुकूल न देखकर आखिरकार वह भारत छोड़ गए थे। जान पड़ता था कि वह लड़ने में बस गए थे। वह हरबट स्पेंसर की लेखनी से बहुत प्रभावित हुए और जब उन्होंने इंग्लैंड में एक पत्रिका आरम्भ की तो उसका नाम 'इंडियन सोशियलजिस्ट' रखा। समाज विज्ञान के प्रचलन का मुख्य श्रेय हरबट स्पेंसर का था और पत्रिका के इस नाम का उद्देश्य इसके सम्पादक के सामाजिक विचारों के मुकाम का व्यक्त करना था। इस पत्रिका में कांग्रेस नेताओं पर, गाँधे और दादाभाई तथा कांग्रेस के ब्रिटिश मित्रों पर जोरदार आक्रमण किए। इस प्रकार से यह 'इंडिया' की घोर निन्दा थी। श्यामजी एक टेढ़े व्यक्ति थे और उनके साथ निबाह करना बठिन था यद्यपि आरम्भ में उन्हें विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का दिमाग तथा मुख्य प्रेरणा स्रोत समझा गया था, पर उन्होंने कोई स्थायी मित्र न बनाया और न ही किसी बफादार अनुयायी को आकर्षित किया। एक बड़ी बात तो यह थी कि उनकी तेज जवान उनकी बहुत बड़ी बूटि थी। वह सदा धन कमा सकते थे, परन्तु उसे छानने के लिए कभी तयार

नहीं होने थे। इसके साथ ही उन्होंने कांग्रेस नेताओं की गंभीर तथा सौम्य राजनीति के विरुद्ध असंतोष पैदा करने के लिए बहुत सशक्त प्रभाव डाला।

लाजपत राय ने लिखा है कि "यह कहना कि हरदयाल और सावरकर उनके अनुयायी थे, इन दो महान व्यक्तियों का महत्व घटाना होगा, परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं कि श्यामजी के विचारों ने उन्हें प्रभावित किया था।" इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि हरदयाल और सावरकर समूचे आतंककारी आन्दोलन को प्रभावित करने वाले माने जाते हैं। श्यामजी की भूमिका को देखते हुए इस लिए कम महत्व का समझकर छोड़ देना उचित नहीं कि उनका कोई निष्ठावान अनुयायी नहीं था। 1905 में श्यामजी अपने 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' तथा इंडिया हाउस के माध्यम से बहुत सक्रिय थे। यह छात्रावास भारतीय छात्रों को आकर्षित करने के लिए स्थापित किया गया था। वह लाजपत राय से उनके होटल में मिले और उनके साथ विचारों का आदान प्रदान किया और उन्हें इंडिया हाउस में रहने के लिए निमंत्रण दिया। यह निमंत्रण कुछ समय बाद स्वीकार किया गया था।

हाईकोर्ट में इंडिया हाउस का उस समय तक विधिवत उद्घाटन कर दिया गया था और इस अवसर पर लाजपत राय उपस्थित थे।

लगभग एक महीने के लिए लाजपत राय इंग्लिश काउन्सिल तथा स्काटलैंड का भ्रमण करते रहे, जहाँ उन्होंने बैठकों में भाषण देकर अपने पक्ष को स्पष्ट किया और जब श्यामजी के निमंत्रण पर वह अगस्त में लंदन लौटे, तो इंडिया हाउस में ठहरा।

परन्तु लंदन में कांग्रेस की इंडिया समिति के कुछ सदस्यों को उनका इंडिया हाउस में ठहरना उचित नहीं लगा। जब एक दिन लाजपत राय और श्यामजी ने 'होम ब्लू' के समर्थन में हलचल हाल में अथवा सोशलिस्ट बैठक में भाषण दिया, तो इंडिया कमिटी में हलचल स्पष्ट दिखाई दी थी। लाजपत राय अभी रहने के लिए श्यामजी के इंडिया हाउस में नहीं गये थे। वह बैठक किसी धार्मिक सङ्गठन ने बुलाई थी और लाजपत राय को उसके उपाध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने आमंत्रित किया था।

लाजपत राय न लिखा है

"जब सर हैनरी वाटन को पता चला कि श्यामजी तथा मने 'स्वराज' के ममथन में एक ही मंच से भाषण किए थे, उन्होंने बहुत नाराजगी व्यक्त की और ब्रिटिश ममिती के ममक्ष एक प्रस्ताव रखा कि मैं इंग्लैंड में प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में आया हूँ और मरा यह व्यवहार बहुत आपत्तिजनक है।"

परन्तु सर वेडरबन ने सर हैनरी के प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया और स्वयं लाजपत राय ने यह बात स्पष्ट कर दी कि "कांग्रेस का प्रतिनिधि बनकर मैंने अपनी स्वतंत्रता का सौदा नहीं किया, यद्यपि मेरे भाषण में ऐसी कोई बात नहीं थी जिस पर कोई कांग्रेसजन आपत्ति कर सके। और यदि यह कहा जाए कि प्रतिनिधि बनकर मुझे इस देश में अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता नहीं है, तो मैं प्रतिनिधिमंडल से त्यागपत्र देने के लिए तैयार हूँ, परन्तु किसी भी बात पर अपनी स्वतंत्रता का बलिदान देने को तैयार नहीं।"

सर हैनरी वाटन ने आखिर इस बात का सारा दाय उनको भाषण को गलत तौर पर पेश किए जाने को दिया और यह मामला समाप्त कर दिया गया।

लाजपत राय अपनी स्वतंत्रता छीने जाने को आसानी से सह्य नहीं कर सकते थे और उन्होंने इस स्वतंत्रता को पूरी तरह इस्तेमाल किया। लाजपत राय ने मानचैस्टर, ऐडनबरो, लिबरपूल तथा अन्य स्थानों पर भाषण दिए। गोखले भी पहुँच गये थे। अक्सर वे एक ही मंच से भाषण देते। कई बार वे यात्रा करते और अलग-अलग भाषण करते। उन्होंने अपना सदेश ब्रिटिश मतदाताओं तक पहुँचा दिया और इसका निणय उनकी बुद्धि पर छोड़ दिया।

भारत तथा ब्रिटिश दलगत राजनीति के बारे में 'द पजाबी' में प्रकाशित एक लेख में लाजपत राय ने लिखा कि लिबरल तथा टोरियों में से चयन करने वाली कोई बात ही नहीं। यदि कुछ लोग हैं जिनसे किसी प्रकार की मंत्री की आशा की जा सकती है, तो वे हैं लेबर पार्टी वाले। उस समय तक लेबर पार्टी लिबरल पार्टी का ही एक भाग थी। श्यामजी के माध्यम से लाजपत राय ने अतिवादी क्षेत्रों में कुछ मिलता बना ली थी। उन्होंने ब्रिटिश समाजवादी लेखक एच० एम० हिण्डमैन तथा कुछ आपरिण नेताओं की विशेष तौर पर चर्चा की है।

बड़ोदा के गायकवाड न, जो उन दिना लदन मे थे, सीमिल मे जहा वह ठहरे हुए थे एव स्वागत समारोह आयोजित किया । अतिथिया म श्यामजी और लाजपत राय भी थे, उनका महारानी से परिचय कराया गया । गायकवाड न धीरे मे उनके वान म बहा कि वे स्वागत समारोह समाप्त होने के तुरत बाद ही चने न जाए । वे अग्रेज अतिथिया के चले जाने के बाद वहा ठहरे रहे और उहनि महाराजा से बातचीत की "जिसम महाराजा न अपना मन हमार सामने ग्योलकर रख दिया और अपने जले दिल के फफोले हम दिशाए ।" ये शब्द लाजपत राय के ही हैं ।

भारत लौटने से पूव लाजपत राय ने अमरीका की सक्रिप्त यात्रा की । वह दीवान बट्टीनाथ के साथ गए थे, जो पंजाब के सरदारा के एव प्रमुख परिवार के वंशज थे और उस समय प्रगतिशील विचारो वाले युवक थे ।

अक्टूबर मे वह लदन लौट आये । सर विलियम वेडरबन ने उनके लिए भाषण-यात्रा का कार्यक्रम तैयार कर रखा था । गोखले तथा उन्हाने मिलकर बहुत-सी सभाआ म भाषण किए । इनमे से अनेक (विशेषकर लाजपत राय के भाषणा के लिए) बैठका का आयोजन सेबर सगठन के तत्वावधान म किया गया था ।

गोखले द्वारा इंगैड जाने वाले प्रतिनिधिमंडल के लिए लाजपत राय के चुनाव का इंडियन एसोसिएशन की पंजाब शाखा ने तुरत स्वीकार कर लिया था और उसने प्रतिनिधि के खच के त्रिण धन देने के वास्ते अपील जारी कर दी थी । लाहौर लौटने पर लाजपत राय न घोषणा की कि इस प्रकार जमा किए गए धन मे तीन हजार या लगभग इतनी राशि बच गई है, जा अथ सावजनिक कार्यों के लिए इस्तेमाल की जाएगी । उनकी इस वप की वकालत की आय डी० ए० पी० कालिज के बजाय, विदेश यात्रा पर खच हो गई थी ।

21. नया उत्साह

नवंबर 1905 के आरम्भ में लाजपत राय इम्प्लड से खाना हां गए। मार्च में वह एम० एम० पैनिनसुलर नामक उमी पोत पर सवार हो गए, जिस पर लाइ मिण्टो वायसराय का पद मभालने के लिए भारत आ रहे थे। वह 17 नवंबर को बम्बई पहुंचे।

साहौर में उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। साहौर रेलवे स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर तथा स्टेशन के बाहर भारी जनसमूह एकत्र था और जैसे ही उन्होंने डिब्बे से बाहर पाद रखा, एक बहुत ही प्रमुख नागरिक ब्रह्मममाजी नेता वावू जोगेंद्र चंद्र बोस ने उन्हें उठाकर अपने कंधों पर बैठा लिया। इस प्रकार उसी जनसमूह उन्हें देख सकता था और इसके साथ ही वह भीड़ की धक्कामपल से भी बच गया। जब वह अपनी वागी में सवार हुए, तो छात्र-गण गाड़ी खींचकर तीन किनामीटर से अधिक दूर उनके वाट रोड जाने मवान तक ले गए। छात्रों को लाजपत राय पर अटूट श्रद्धा थी और जब दावता तथा स्वागत समारोह का सिलसिला शुरू हुआ, तो छात्र भी इसमें पीछे न रहने—पवनमेट कालिज के छात्रों ने भी उनके अभिनंदन के लिए समारोह आयोजित किए।

अपने आसपास नजर घुमाकर देखने पर तुरंत ही उन्होंने आन वाली घटनाओं का आभास कर लिया। आम समाज के वापिक समारोह के लिए उनके नाम की घोषणा कर दी गई थी और आभा के विपरीत वहा इतने लोग एकत्र हो गए कि उचित व्यवस्था करना के लिए अस्थायी तौर पर इस सभा को स्थगित करना पडा। बाद में उन्होंने डी० ए० वी० कालिज के होस्टल में जन समूह को सम्बोधित किया। इस बैठक में उन्होंने कहा था कि उनमें जो भी अच्छाई है, वह समाज की ही देन है। परन्तु कई और बातों के कारण यह भाषण स्मरणीय हो गया, क्योंकि इसी भाषण में कहीं गई कई बातों को लेकर सरकार समझवा ने उनसे निर्वासन के औचित्य के पक्ष में दलीलें दीं। अपने भाषण के अंत में उन्होंने भविष्यवाणी की कि "भारतीय आवाज से खून की वर्षा होगी। उस समय आकाश विल्कुल निमन था, परन्तु रक्त के छोटे-छोटे घन्बे दिखाई दे रहे थे।"

सी० आर्द० डी० ने कागजों में लाजपत राय का खतरा प्रत्यक्ष रूप में बढ़ता ही जा रहा था। "खून की वर्षा" वाले भाषण के बाद शीघ्र ही एक अन्य भाषण में 'अप्रिय परिणामों' की धमकी दी गई थी और इसके अलावा "सशत वफादारी" के खतरनाक अपसिद्धांत की बात बही गई थी। जिस लाहौर के वारे में अधिकारियों ने कुछ समय पूर्व सोचा था कि वहाँ सब कुछ बिल्कुल शांत है, एकाएक उत्तेजित और खतरनाक हवा उठा था। बहुत दूर बारीसाल में हुए लाठी चार्ज के विरुद्ध हुई पहली विरोध सभा जा लाहौर में हुई, अवश्य ही स्थानीय अधिकारियों को अविश्वसनीय लगी होगी। स्थिति तथा घबराए हुए अधिकारी वर्ग के लिए राज्य की यह स्थिति असहनीय थी और लाजपत राय के लाहौर की, लाजपत राय के पंजाब की यह नई स्थिति, उनके समक्ष थी।

और यह राय बाहरी घटनाओं पर ही नहीं था। नई भूमि व्यवस्था के बारे में पंजाब की अपनी भी शिकायतें थीं।

भूमि के हस्तांतरण को रोकने के लिए नया कानून बनाया गया था। इस का बहुत विरोध हुआ, परन्तु उन लोगों ने इसका समर्थन किया जिन्हें इस कानून की व्यापक सूचियों में "कृषक" दिखाया गया था। लाजपत राय तथा 'द पंजाबी' ने इस बिल का विरोध किया। कांग्रेस के अगले अधिवेशन में इस कानून के विरुद्ध एक प्रस्ताव पारित किया गया। बाद में जब कांग्रेस ने देखा कि बहुत से मुसलमान भूमिपति इस कानून का समर्थन करते हैं क्योंकि इससे उनके अधिकारों को उचित संरक्षण मिलता था, तो उसने यह विरोध छोड़ दिया।

इन्डियन नेशनल कांग्रेस के भूमि आन्दोलन के बिल का तो इससे भी अधिक विरोध हुआ। इस मामले में हिन्दू, सिख, मुसलमान, शहरी तथा देहाती, कृषक तथा गैर कृषक सभी में पूरी एकता थी और शीघ्र ही पंजाब भूमि आन्दोलन के बवडर की लपेट में आ गया। हम इस आन्दोलन के बारे में बाद के अध्याय में बर्चा करनी पड़ेगी।

बारीसाल सम्मेलन के कुछ दिन पश्चात् कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बनारस में हुआ। पहली बार "वाय-पथी" तथा "दक्षिण-पथी" और फिर "गरम दलीय" तथा "नरम दलीय" में खुली टक्कर हुई।

बंगाल में अरविन्द के 'बंदे मातरम्' के कालमें नया उत्साह दिखाई पड़ रहा था। महाराष्ट्र में तिलक की पार्टी ने भोखले तथा उनके अनुयायियों के नरम तौर-तरीक़ा की आलोचना की। पंजाब में तो लाजपत राय पहले ही लागा के

विशेषकर युवा पीढ़ी के, श्रद्धा पात्र बन चुके थे और उन्होंने किसी के मन में लेशमात्र भी सदेह नहीं छोड़ा था कि वह गोखले, दादाभाई नौरोजी और फिरोज शाह मेहता के साथ नहीं, बल्कि तिलक, अरविंद और बिपिन चंद्र पाल के साथ हैं ।

बनारस में नया उत्साह हावी रहा । सभी ओर पिछले कांग्रेस अधिवेशनों के मुकाबले अधिक सरगर्मी दिखाई देती थी । अध्यक्षीय जुलूस, जिममें जोश में भरपूर भाग लिया था, नरम दलील नेता गोखले के लिए सतोपजनक श्रद्धार्जलि थी, परंतु यह जाश नरमपयी नीतियों के कारण नहीं, यह तो नई चेतना के कारण था । अध्यक्षीय सवारी में गोखले के साथ इम्लैंड के उनके सहयोगी लाजपत राय भी थे और बाद में उन्होंने लिखा

“बनारस के नागरिकों ने गोखले का शानदार स्वागत किया । मैं उनके साथ उसी गाड़ी में सवार था । पायदान पर एक स्वयमेवक खड़ा था, जिमके नार काना की बहुरा किण दे रहे थे । इस जलूम को देखकर कोई भी व्यक्ति मोच सकता है कि राष्ट्र के बुरे दिन खत्म होने को है । गोखले प्रसन्न थे, “यदि हम ने काय किया होता तो लोग में बहुत प्रशंसा तथा उत्साह होता,” यह उन्होंने कहा था और उनकी आवाज में आसू थे । यह वास्तव में बहुत ही अद्भुत दृश्य था ।”

22. लाल, बाल, पाल

वर्ष 1906 न बदली हुई मन स्थिति पर बल दिया, जा बमारस म दिखाई पडी थी। अधिक शक्तिशाली तत्वा न उस पवित्र शहर मे हुए कांग्रेस अधिवेशन म निश्चय ही अपनी उपस्थिति का अहसास करा दिया था। बड़ी सफाई से तयार किए गए प्रस्तावा की वार्षिक पुनरुक्ति, शानदार भाषणो से उनका समर्थन, जिनकी खूब प्रशंसा हाती थी, लेकिन जिसके बाद लोग निरुत्साहित तथा विदेशी हाकिम निश्चिन्त हो रहे थे, अब बाम नहीं दे सकती थी। अब भाषणा की नहीं, गतिशील काय थी, सामूहिक आंदोलन की, जिसम कुछ महत्वपूर्ण प्राप्ति के बिना चैन न हो, आवश्यकता थी। गति विज्ञान का मूलभूत सिद्धांत—क्रिया के विपरीत बराबर की प्रतिक्रिया—विल्कुल स्पष्ट दिखाई पडता था। वजन के अधीन अपसरशाही अवलड मन स्थिति मे थी, जो लोगो की नाराजगी को विश्वविद्यालय कानून, बंगाल के विभाजन तथा अन्य कई अप्रिय कारणो से बडा रही थी और इका सामूहिक प्रभाव बहुत ही अधिक था। वजन 1905 म चला गया, परन्तु निरडुश स्वभाव, जा बपीती के तौर पर वह छोड गया था, पीछे बना ही रहा। नई पार्टी—जो सचेत विचारधारा के रूप मे व्यक्त हुई थी और जिसके प्रतिनिधि बंगाल मे अरविन्द, पाल आर 'वन्दे मातरम्', महाराष्ट्र म तिलक और उनका 'बेसरी' तथा पंजाब म लाजपत राय और 'द पंजाबी' स्वीकार किए गए थे, स्वदेशी तथा बहिष्कार का अभियान तज करते जा रह थे। ये प्रत तथा प्रतिज्ञाए, जा बंगाल म भूल रूप म 'विभाजन समाप्त करवाने तक' क लिए ली गई थी, उन्हें अब असीम करार द दिया गया था। ब्रिटिश माल का बहिष्कार, विशेषकर ब्रिटिश कपडा का, कडे से बडा होता जा रहा था। मान-चैस्टर से माल भगवाने के माग पत, जा राजनीतिक उत्साहियो द्वारा नहीं, बल्कि व्यापार बुद्धि वाले मारवाडिया की आर से नव धप के आरम्भ म भेजे जाते थे, 1906 की सर्दी के मासम मे कम होते-हात बिल्कुल न के बराबर हा गए। बहिष्कार, जिसे इमके आलोचका ने हास्यास्पद होने की भविष्यवाणी की थी, इस अनुमान से बहुत दूर था, बल्कि इसके विपरीत इमका प्रचार हजारो घरा की छतो से हो रहा था और हजारो स्वयमेवक चौकिया इसे लागू करवा रही थी। राष्ट्रीय शिक्षा का आंदोलन छात्रा के मन को प्रभावित कर रहा था। उहानि कलकत्ता मे 'बहाइटवे लेडला' के आगे घटना दिया और फेशनप्रिय महि

लाभा ने सौजन्यतापूर्वक उनकी प्रातभाद विनती स्वीकार कर ली, नहा ता उन्हें धरना देने वालों के शरीर पर पाव रखकर ही बागें बटना हाना ।

कजन के आदेश ने पूर्वी बगाल में एक और प्रात बना दिया था । परन्तु जब इस प्रात के उप राज्यपाल ने वारीसाल में मानचैस्टर की मलमल का एक टुकड़ा खरीदना चाहा, तो दुकान पर उसके कमचारिया का बताया गया कि उन्हें पूर्वी बगाल के नए पार्टी नेता अश्विनी कुमार दत्ता से पूव अनुमति लेनी होगी ।

नई पार्टी के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में सिपिन चन्द्र पाल वहिष्कार के क्षेत्र में वृद्धि कर रहे थे, ताकि विदेशी हाकिमों तथा उनकी सरकारी मशीनरी के साथ ऐसा सहयोग कतई न किया जाए जो बिल्कुल अनिवाय न हो । दरअसल, इसका उद्देश्य वही कुछ दिखाना था जिस एक दशक बाद बेरग नकारात्मक "असहयोग" का नाम दिया गया, जिसमें पाल जैसे जोरदार ढंग से असहयोग कायप्रमों पर आप्रमण किया गया था ।

हालात गभीर रूप धारण कर रहे थे और अफसरशाही निश्चय ही घबराई हुई थी । घबराहट में उसने कई ऐसी कारवाइया की, जिनसे मनोविदिष्टि के लक्षण व्यक्त होते थे । छात्रों और स्वदेशी आन्दोलन के बारे में कलकत्ता में एक बदनाम परिपत्र जारी किया गया था, जिसके बारे में प्रमुख एंग्लो इंडियन समाचार पत्र 'द स्टेट्समैन' ने लिखा

"हम उस अल्पवृद्धि कमचारी का नाम अवश्य मालूम होना चाहिए, जिसके कहने पर उप-राज्यपाल ने इस आदेश का स्वीकृति दी । सरकार ने बिल्कुल सचकाना और ध्यय नीति अपनाने की गलती की है, जिसके परिणामस्वरूप शाहीदा की एक सेना खड़ी हो सकती है ।"

पूर्वी बगाल में जारी किए गए कई बदनाम परिपत्रों में शायद सबसे अप्रिय वह परिपत्र था, जिसमें सावजनिक तौर पर "वन्दे मातरम" का नारा लगाने की मनाही की गई थी । इस परिपत्र का एक प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि बंगालियों ने अप्रैल में वारीसाल में प्रातीय सम्मेलन में अपने सभी प्रमुख नेता जमा कर लिए । सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को गिरफ्तार कर लिया गया और सरकारी लाठियों के जोर से बैठक भंग कर दी गई ।

वारीसाल की पाशाविकता के विरुद्ध जोरदार नाराजगी फली । साहौर में साजपत राय की एक सावजनिक सभा में तुरत जोरदार विरोध व्यक्त

किया गया आर लाहौर की अगुवाई पर भारत के विभिन्न भाग के प्रमुख नगरों में भी ऐसा ही हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र आर पंजाब का "उग्रवादियों" के गढ़ ममता जाता था। निस्संदेह, पंजाब जोरदार सघर्ष में था।

जारीसाल में चलवाई गई लाठिया से आंदोलन का नई शक्ति मिली। सघर्ष का अन्त कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन के माध्यम हुआ। कांग्रेस के नरम दलीय नेताओं के घबराने का उचित कारण था। स्थिति का पूरी तरह "उग्रवादियों" के हाथ में जाने से बचाने के लिए उन्होंने दादाभाई नौरोजी का झन्ड से बुलवा लिया और कायदाही का संचालन करने के लिए उन्हें अध्यक्ष पद दे दिया, यद्यपि ऐसा करने के लिए उन्हें 82 वर्ष की आयु में इतनी लम्बी यात्रा का जाग्रिम उठाना पड़ा। दादाभाई का उग्रवादी तथा नरमपंथी-दाना गुट-बराबर सम्मान करते थे। उनकी उपस्थिति के कारण दाना गुट के बीच खाई प्रत्यक्ष नहीं होने पाई। यद्यपि ध्यान से देखने वाला को दोनों गुटों के बीच दृष्टिकोण का मतभेद स्पष्ट दिखाई पड़ता था।

कुल मिलाकर कलकत्ता अधिवेशन अधिक उत्साही समस्या के लिए आर भी सफलता का अवसर बना। इसके प्रस्तावों में स्वदेशी तथा बहिष्कार का समर्थन किया (यद्यपि यह पूर्णतया 'पाल' प्रणाली के अनुसार नहीं था) आर राष्ट्रीय शिक्षा का अनुमोदन किया जा बंगाली विचारधारा का त्रिपक्षीय कार्यक्रम था। इससे अधिक क्या हो सकता था कि स्वयं दादाभाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में एक शक्तिशाली शब्द डूब लिया, जिसे 'स्वदेशी' से भी अधिक शक्तिशाली रूप से केंद्रित करने के नारे का काम करना था। कांग्रेस मंच से उठे हुए पहली बार 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया। "स्वराज, स्वदेशी तथा बहिष्कार" ये तीन शब्द राष्ट्रवाद के पवित्र मंत्र बन गए।

राजपत राय ने लिखा है "इस अधिवेशन में राष्ट्रवादियों का बहुमत स्पष्ट किया, जब कि कुछ नरम दलीय लोगों को यह माल था कि जिस नेता का उन्होंने झन्ड से इस आशा से बुलाया था कि वह नरम भाषण देगा उसी ने ही उड़ी निर्भीकता से अनुचित विचार पेश कर दिए। परंतु उस अवसर पर बंगाल में केवल ऐसा ही करना संभव था। यदि कोई और रास्ता अपनाया जाता तो कांग्रेस के अस्तित्व के लिए ही संकट पैदा हो जाता।"

यहा मुण्डन की एक घटना वर्षा का विषय है। उस दिना के आय समाजी नेताओं के समान राजपत राय भी कई वर्षों में समीचीन दाढ़ी बढ़ाई हुई थी। बगाली जनसमूह ने बहुत उत्साहपूर्वक दादाभाई नौरोजी का स्वागत किया, जो नव-निर्वाचित अध्यक्ष थे। परन्तु भारतीय राजनीति में लाल-शाल-गान का दौर शुरू हो चुका था और बगाल भारी बहुमत से इस विचारधारा का ममथक था। इसका जारदार प्रमाण इस बात से मिल सकता है कि किस प्रकार भारी जनसमूह ने महाराष्ट्र और पंजाब से आए हुए दो पूज्य व्यक्तियों का स्वागत किया। जय राजपत राय हायड्रा रेलवे स्टेशन पर गाड़ी से उतरता जनसमूह ने दूर से ही उन्हें पहचान लिया इसमें उनकी समीचीन दाढ़ी ने बहुत सहायता दी।

फिर भी, जब अधिवेशन के लिए दादाभाई के नाम के प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए कहा गया, तो वह बिना दाढ़ी के मंच पर आए। श्रोता उलझन में थे—परन्तु जैसे ही अनुमोदन करने के लिए आए व्यक्ति ने अपने हाठ खोले, तो उनकी आवाज ने सारे सदेह दूर कर दिए। जो श्रोताओं को मंत्र मुग्ध रख सकती थी, वह राजपत राय की आवाज थी, उनकी दाढ़ी नहीं।

वह अपने मेजबान राय बहादुर रलियाराम (पंजाब के एक आय समाजी जो बगाल ईस्टन रेलवे में सुपरिंटेंडिंग इंजनियर थे) के घर समीचीन दाढ़ी के साथ आए और वहां से कांग्रेस अधिवेशन में सफाचट ठोड़ी के साथ पहुंचे। शाम को उनके मेजबान के घर एकत्र हुए उनमें बहुत से प्रशासक यह पूछ रहे थे कि लालाजी कहा है, यह झिलझिला तब तक जारी रहा, जब तक उन्हें लालाजी की आवाज एक ऐसे मुँह से नहीं सुनाई दी, जिसके चेहरे पर दाढ़ी नहीं थी। उन्होंने फिर कभी दाढ़ी नहीं बढ़ाई, यद्यपि मूछे अन्त तक रखी।

1906 के अन्तिम महीने तथा 1907 के आरम्भिक महीने बहुत ही तूफानी थे। बगाल में जो बहिष्कार आरम्भ हुआ था, पंजाब में उसकी जोरदार प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी थी। इससे अधिक महत्वपूर्ण, और शिक्षित वर्ग में कर्जनों के व्यवहार के विरुद्ध फैली नाराजगी से भी अधिक महत्वपूर्ण वे अनेक शिकायतें थीं, जो उप-राज्यपाल सर डेजिल इन्वेंटसन ने नहरी बस्तियां से सम्बद्ध कानूनों तथा मालिए और आबिधाने

की दरा में वृद्धि के कारण पैदा हुई थी। बंगाल में तो यह आन्दोलन अधिकतर 'भद्रलोक' से ही था, पंजाब में कृषक समस्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी।

बंगाल में अरविंद द्वारा सम्पादित 'दे मातरम्' महाराष्ट्र में तिलक का 'त्रेसरी' और पंजाब में 'द पंजाबी', जिसने सम्पादक थे अठावले, परन्तु उसका नियंत्रण तथा पथ प्रदर्शन साजपत राय करते थे, जिसका सभी का पता था। प्रातः के उनके मामा कायक्रम में छापाखाना में जाना और अन्तिम प्रूफ पढ़ना हाता था। 'द पंजाबी' एक मासाहिक के रूप में आरम्भ हुआ था, परन्तु अब सप्ताह में उसके तीन संस्करण निकलते थे। इसकी सख्या तथा प्रभाव में वृद्धि हो रही थी। स्वभावतया उनके साथ सरकार की नाराजगी भी बढ़ती जा रही थी। बार-बार अफवाहें उड़ती थी कि 'द पंजाबी' मुसीबत में पड़ रहा है, परन्तु यद्यपि उसने बड़ा साहसी रवैया अपनाया था फिर भी साजपत राय एक वकील की दृष्टि से उसके प्रफो की जांच करते थे।

फिर भी सरकार ने उनके सम्पादक क० क० अठावले तथा प्रकाशक जमवत राय के विरुद्ध मुकदमा आरम्भ कर दिया। उनमें एक लेख पर आपत्ति की थी, जिसमें एक पुलिस कास्टेबल की रहस्यमयी परिस्थिति में हुई मृत्यु की ओर ध्यान दिलाया गया था। वह एक ऐसे संस्करण में प्रकाशित हुआ था, जिसके प्रूफ साजपत राय ने नहीं देखे थे नहीं तो शायद उस लेख को उस रूप में प्रकाशित न होने दिया जाता, यद्यपि उस स्थिति में भी किसी न किसी कारण से 'द पंजाबी' मुकदमों से न बच पाता। इस मुकदमे के कारण, आशा के अनुसार 'द पंजाबी' आर भी लोकप्रिय हो गया और उसका प्रभाव बढ़ गया। विश्वास किया जाता था कि मुकदमों से सबद्ध तथा विलकुल सञ्चे थे। समाचार पत्र में मुसलमानों की महानुभूति भी जीत ली क्योंकि जिस कास्टेबल की मृत्यु में उसने हथि ली थी, वह मुसलमान था। जमवत राय और अठावले का गिरफ्तार कर लिया गया, उनकी जमानत हो गई। मुकदमा चला और मुशकवत की सजा सुनाई गई।

'द पंजाबी' के इस मुकदमों ने पंजाब में जोश और तनाव काफी बढ़ा दिया। जिस दिन उसने सम्पादक और प्रकाशक को सजा सुनाई गई, उस दिन लाहौर में सबसे अधिक जोश पैदा हुआ था।

यहा मुण्डन की एक घटना चर्चा का विषय है। उा समाजी नेताओ के समान लाजपत राय ने भी कई वष से लम् हुई थी। बगाली जनसमूह ने बहुत उत्साहपूर्वक दादाभा स्वागत किया, जो नव-निर्वाचित अध्यक्ष थे। परन्तु भा मे लाल-बाल-पाल का दौर शुरू हो चुका था और बगाल से इस विचारधारा का समयक था। इसका जोरदार प्रमा मिल सकता है कि किस प्रकार भारी जनसमूह ने महारा से आए इन दो पूज्य व्यक्तियो का स्वागत किया। जब हावडा रेलवे स्टेशन पर गाडी से उतरे ता जनसमूह ने दू पहचान लिया, इसमें उनकी लम्बी दाढी ने बहुत सहायता

फिर भी, जब अधिवेशन के लिए दादाभाई के नाम के प्रर मोदन करने के लिए कहा गया, ता वह बिना दाढी के मच थोता उलक्षण मे थे-परन्तु जैसे ही अनुमोदन करने के लिए ने अपने हाठ छोले, तो उनकी आवाज ने सार सदेह दूर क थोताआ का मन्न मुग्ध रख सकती थी, वह लाजपत राय क उनकी दाढी नहीं।

वह अपने मेजबान राय बहादुर रलियाराम (पजाब के ए जो बगाल ईस्टन रेलवे मे सुपरिंटेंडिंग इंजनियर थे) के के साथ आए और वहा से कांग्रेस अधिवेशन मे सफा पहुचे। शाम को उनके मेजबान के घर एकत्र हुए उनके यह पूछ रहे थे कि लालाजी कहा है, यह मिलसिला त जब तक उन्हें लालाजी की आवाज एक ऐसे मुह से जिसके चेहरे पर दाढी नहीं थी। उन्होंने फिर कभी यद्यपि मूछे अन्न तक रची।

1906 के अन्तिम महीन तथा 1907 क आरम्भिय ही सूपानी थे। बगाल मे जा वहिष्कार आरम्भ हुआ, मे उनकी जोरदार प्रतिध्वनि सुनाई दन लगी थी। इनस अधि और शिक्षित बग मे बजा के व्यवहार के विरुद्ध पंनी नारा अधिन महत्वपूर्ण के अनक मिनायते थी जा उप-राज्यपाल क इन्वेटशन ने नहरी बस्तिया मे सम्बन्ध कानूना तथा मानिए और

पुत्री, पावती, के साथ रहा। लालाजी न अपन ही कार्या में उसकी रुचि जगाई। वह सार्वजनिक सभाओं में बहुत सफल रही और असहयोग आन्दोलन में उन्होंने जेल-यात्रा भी की। लालाजी की मृत्यु के आठ वर्ष बाद, जब कांग्रेस ने परिष्कृत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़े, तो वह लाहौर के महिला निर्वाचन क्षेत्र से विधान सभा की सदस्य चुनी गई परन्तु शीघ्र ही गभीर रूप से बीमार हो गईं और जनवरी 1938 में उनकी भी मृत्यु हो गई।

वाद में, सेशन अदालत ने जमवत राय की सजा घटाकर छ महीने कर दी। इसके बाद चीफ वाट्र में अपील की गई।

इन दिनों गांधीले उत्तर भारत की यात्रा कर रहे थे। आमतौर पर यह विचार था कि राजपत राय भार गोखले का अलग राजनीतिक विचार धारा के समर्थक थे, परन्तु दोनों के आपसी व्यक्तिगत सम्बन्धों पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा था। राजपत राय ने गांधी का इंडियन एसोसिएशन की ओर से आमंत्रित किया। वह उस समय उनके अध्यक्ष थे। गोखले ने तुरत यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वह साहौर उस दिन पहुंचे जिस दिन उपयुक्त घटनाओं के कारण जोश फैला हुआ था, जिस दिन जसवत राय का दो वर्ष कैद की सजा सुनाई गई थी और उनकी जमानत हुई थी। जिस जनसमूह ने प्रातः 'द पंजाबी' की प्रशंसा में नारे लगाए थे और एला इंडियन समाचार-पत्र का उपहास उड़ाया था, सायरेलवे स्टेशन पर गोखले का स्वागत करने पहुंचा। 'द पंजाबी' को मिली सजा और भीड़ तथा पुनिम के बीच लगातार टकराव के कारण माहौल में बहुत अधिक तनाव पैदा हो गया था। परन्तु एस. उत्साहजनक स्वागत और गगनभेदी नारा की प्रशंसा गांधी के लिए कुछ कम हो गई जब जुलूम अनासूची पहुंचा और उस दिन के भाषक जसवत राय और अठारव (जो जमानत पर निहाल हुए थे) जुलूम में सम्मिलित हुए। जनसमूह ने गांधी की सहमति अथवा मुविद्या का ध्यान किए बिना उन्हें उठाकर उमी गाड़ी में बिठा दिया जिसमें गांधी तथा उनके अनुरोध पर स्वयं राजपत राय भी बैठे थे।

'द पंजाबी' के मुकाम के दौरान एक बहुत ही दुखद घटना हुई। देहरादून के डाक्टर जयचन्द का जिनका विवाह राजपत राय की इकलौती पुत्री पार्वती देवी से हुआ था दहात हो गया। यह अपन पीछे मुका विप्रवा तथा एकमात्र पुत्र छोड़ गए, जो केवल कुछ दिनों का था। उन्हें यह समाचार अदालत में उम गमम मिला जा वह 'द पंजाबी' में मुरदम में दनीलें दे रहे थे। राजपत राय को भारी मदमा नभ परन्तु स्वाभाविक धर्म के साथ उन्होंने अपन बाप का रात न्न में इन्तार कर दिया। उन्होंने अपन पुत्र का अन्तिम निदेश दिये और उम देहरादून भेज दिया। स्वयं अपना दैनिक बाप तारी रखा। इसके बाद घर में उनका अधिकतर साह विधवा

पुत्री, पावती, के साथ रहा। लालाजी न अपन ही कार्या में उसकी रुचि जगाई। वह सावजनिक सभाओं में बहुत सफल रही और असहयोग आन्दोलन में उन्होंने जेल-यात्रा भी की। लालाजी की मृत्यु के आठ वर्ष बाद, जब कांग्रेस ने परिष्कृत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़, तो वह लाहौर के महिला निर्वाचन क्षेत्र से विधान सभा की सदस्य चुनी गई परन्तु शीघ्र ही गम्भीर रूप से बीमार हो गई और जनवरी 1938 में उनकी भी मृत्यु हो गई।

23. पंजाब में विद्रोह

वर्ष 1907 में आदालतों की एक ऐसी लहर फनाई, जा असल में दश व्यापी बन गई। पंजाब में इसमें जा रूप धारण किया, वह कृषक विद्रोह बन गया और इसे सामान्य तौर पर जमींदार आदालत कहते थे। पंजाब में जमींदार का अर्थ आमतौर पर "भूमि-पति" माना जाता है। यानी वह कृषक, जा भूमिपति है। नये भूमि कानूनों के कारण दिन-प्रति दिन गरीब असहाय बच रहे थे या भार अधिक-से अधिक उग्र होता जा रहा था। नहरी बस्ती कानून ने नहर में सिंचित क्षेत्रों में हलचल मचा दी, इस जाश का स्वाभाविक बंद प्रमुख नहरी वस्तिया का नगर लायलपुर था। पश्चिम पंजाब में रावलपिण्डी भी लायलपुर जितना ही बुरा था, क्योंकि वहाँ सरकार ने अपने बदावस्त अधिकारी के अनुमानों के अनुसार अनुचित तौर से भू-राजस्व में वृद्धि कर दी थी। लाजपत राय ने उनकी शिकायतें ता उठाईं, परंतु वह कृषक आदालत में सक्रिय रूप से शामिल नहीं हुए। न ही वह इस आंदोलन से अलग रहे क्योंकि जमींदार उन्हें ऐसा नहीं करने देते थे।

भारत माता' के प्रचारक अजीत सिंह अपने भाई किशन सिंह के साथ (भगत सिंह के पिता) जालंधर के एंग्लो-संस्कृत स्कूल के छात्र थे, जहाँ आय समाज के नेता साई दास के बड़े पुत्र सुंदर दास मुख्याध्यापक थे। अजीत सिंह, सुंदर दास के चहुँदा शिष्य थे और लाजपत राय की राय में "इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह लाला सुंदर दास ही थे जिन्होंने सबसे पहले इन दो भाइयों के मन में देशभक्ति की जात जगाई।" लाजपत राय किशन सिंह से उस समय से परिचित थे जब केंद्रीय प्रांता में 1897 के अकाल के समय उन्होंने सहायता कार्यकर्ता के रूप में काम किया था। जब वह अनाया के एक दल का लेकर लौटा तो उन्हें लाहौर में नव-स्थापित अनायालय का सचालक बना दिया गया। लाजपत राय कई वर्ष तक अनायालय के सचिव रहे और उन्हें सचालक के साथ मिलन का अकाल अवसर मिलता रहता था, परन्तु ऐसा जान पड़ता है वह उनके भाई से विशेष रूप में प्रभावित नहीं हुए थे।

उन्होंने लिखा है, "अजीत सिंह उन दिना डी.ए.सी. कालिज के विद्यार्थी थे और उन्हें कुछ फिजूल खर्ची की आदत थी मुझे किशन सिंह अपने भाद में कुछ अधिव अच्छे लगत थे । 1906 में कांग्रेस अधिवेशन में अजीत सिंह उपवादी गुट की बैठका में देखे गये थे । उन्होंने मार्क्सजनिव सभाभा में वाद विवाद तथा विचार विमर्श में भाग लेना आरम्भ कर दिया था, वह समाचार पत्रों के लिये भी लिखत थे । 1907 में सूफी अम्बा प्रसाद के माध्यमिनबर उन्होंने एक संगठन बनाया जिस 'भारत माता' कहते थे और उसने तत्वावधान में युवक युवके आम उपवादी मिद्धता का प्रचार किया करत थे और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध घडल्लेदार भाषण किया करते थे ।"

राजपत राय का 'भारत माता' के साथ कोई संबंध नहीं था आर इस संगठन का मचालन करन वाले युवा लोग कई ऐसी बातें भी करत थे, जिन्हें सम्भवत राजपत राय स्वीकृति न दत । इतना हात हुए भी, वे युवक राजपत राय से महायता प्राप्त करन की आशा रखत थे । और उहे इस बात का विश्वास था कि राजपत राय को यह मालूम है कि वे देशभक्त हैं, उन्हें पता था कि इस दावे के बारे में राजपत राय इकार नहीं कर पाएंगे ।

राजपत राय ने लिखा है "इस दौरान अजीत सिंह मेरे पास बार-बार वित्तीय महायता के लिए आये, यद्यपि उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वह मेरी शर्तें पूरी नहीं करत थे ।"

अजीत सिंह तथा उनकी 'भारत माता' ने जमींदार आन्दोलन में प्रमुख तौर पर भाग लिया । वह जम से जाट थे और उन्हें किसानों के पक्ष में आवाज उठान का पूरा अधिकार था, परन्तु वह और उनका भाई, आन्दोलन में भाग लेने वाले बहुत से अन्य जाटों की तरह केवल बस्ती कानून रद्द किए जाने तक ही रुचि नहीं रखते थे—वे इस आन्दोलन को फिरंगी राज के विरुद्ध असतोष फैलाने के लिये उस्तेमान कर रहे थे ।

अजीत सिंह प्रभावशाली आन्दोलनकारी बनत जा रहे थे । उन्होंने सारे प्रांत का घ्रमण किया और सभाओं में भाषण दिए, हर स्थान पर उनका भाषण सुनने के लिये भारी सख्या में लोग उपस्थित हुए । लायलपुर के नाल कालानी में, जिस पर बस्ती कानून का सीधा प्रभाव पडता था,

अन्य स्थानों के मुकाबले आन्दोलनकारी बड़ी आसानी से लोगों को उत्तेजित कर पाते थे। चौधरी शहाबुद्दीन, जिन्हें बाद में नाइट की उपाधि दी गई तथा जो बाद में पंजाब विधान सभा के अध्यक्ष बन, इस क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान दे रहे थे। उस समय वह वकील थे और जमींदारी आन्दोलन में गहरी रुचि लेते थे।

मार्च 1907 के अन्त में (या अप्रैल के आरम्भ में) लायलपुर की जमींदार एसोसिएशन ने लाजपत राय को निमन्त्रण भेजा—और बाद में स्मरण पत्र भी भेजे कि वह लायलपुर में पशु मेले के अवसर पर वहाँ आयें। शहाबुद्दीन स्वयं लाजपत राय से मिले, ताकि निमन्त्रण पर जोर दे सकें। 21 अप्रैल को लाजपत राय, बहादुर सुख दयाल (जो बाद में जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने), बच्छी टेक चन्द, रामभजन इत चौधरी तथा जसवन्त राय के साथ वहाँ पहुँचे।

लायलपुर तथा रावलपिण्डी तूफान के क्षेत्र बन गये। अजीत सिंह ने लायलपुर की बैठक में कुछ दिन पहले रावलपिण्डी में एक सभा में भाषण दिया। रावलपिण्डी में उपस्थित नेताओं में प्रमुख तौर पर हुसराम साहनी तथा उनके भाई गुरदास राम साहनी, सम्मिलित हुए। दोनों प्रमुख वकील और आय समाज के सक्रिय नेता थे। देशभक्ति के आवेश से प्रेरित साहनी बहु राजनीति में बहुत रुचि लेते थे और इंडियन नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में भाग लिया करते थे। विशेष प्रासंगिक बात यह थी कि वे दोनों 'द पंजाबी' के दम जाहिना में थे, इस समाचार पत्र द्वारा 'पिण्डी' के मामला में गहरी दिलचस्पी लेने का एक कारण यह भी था। कुछ महीनों से 'द पंजाबी' के कालमा में रावलपिण्डी के डिप्टी कमिश्नर एग्न्यू की समाचारों तथा सम्पादकीयों में बड़ी आलोचना हो रही थी। रावलपिण्डी में अजीत सिंह की एक बैठक की अध्यक्षता गुरदास राम साहनी ने की थी। उनके भाई हुसराम तथा दो अन्य वकील जानकी नाथ धील और खजान सिंह ने भी बैठक में भाषण दिये जो रावलपिण्डी के एक अन्य प्रमुख वकील अमोलन राम ने बुलाई थी।

इन पाँचों वकीलों को जिलाधीश ने कारण बताओ नोटिस दिया था कि क्या न उन पर बैठक में भाग लेने के कारण वकालत करने के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया जाये।

पंजाब में बिद्रोह

इस नाटिस से पंजाब भर में जोरदार हलचल मच गई, क्योंकि लाला अमोलक राम तथा लाला हरसराज प्रातः के बहुत सम्मानित नेता थे। लाजपत राय नाटिस की सुनवाई से एक दिन पूर्व रावलपिण्डी पहुंच गये और उन्हें पता चला कि अदालत में नाटिस की सुनवाई के अवसर पर नगर में हड़ताल करने का निर्णय किया गया है।

रावलपिण्डी में स्थिति बहुत ही तनावपूर्ण दिखाई दे रही थी। पांच वकीलों को दिये गये उस नाटिस ने लोगों की रुचि इतनी उत्तेजित कर दी थी कि सुनवाई के दिन बहुत भारी जनसमूह, अनुमान है बीस हजार लोग, अदालत के अहाते में एकत्र हो गये थे। एक प्रकार से स्थिति की पराकाष्ठा तब आई, जब जिलाधीश न—जा अदालत के मामान्य समय में वाई दा घंटे देर में पहुंचे थे—घांपणा की कि पंजाब सरकार के आदेश पर "इस मामले में आगे की कार्यवाही रोक दी जा रही है।" लाजपत राय ने लिखा है कि "जनसमूह ने इस घांपणा का जारा से स्वागत किया और यह समाचार आगे की तरह फैल गया।"

लाजपत राय पर जार दिया गया कि वह जनसमूह का संबोधित कर—या कम-से-कम गलियां में जुलूस के साथ चले। उन्होंने इन्कार कर दिया पर शाम का नियमित सावजनिक सभा का संबोधित करना स्वीकार कर लिया।

अभी वह वकीलों के कमरे में ही थे कि उन्होंने सुना कि भीड़ डिप्टी कमिश्नर तथा जिलाधीश के बगले में जबरदस्ती दाखिल हो गई है।" यद्यपि संदेश-वाहक तुरंत दौड़ाये गये, ताकि ऐसी कारवाइयों का रोक जा सके, परन्तु विश्वास किया जाता है कि लोगों को हिंसा के लिये उत्तेजित करने वाले शरारती लोग अपना काम कर रहे थे।

दोनों ओर से बहुत तेजी से कारवाइ हुई—अफवाहें इससे भी तेजी से फैलीं।

'हमें अभी अदालत में ही थे कि हमें पता चला कि गडबड़ी को दवाने तथा गडबड़ी करने वालों को गिरफ्तार करने के लिये सेना भेजी गई है। हमें यह भी बताया गया कि एक पठान रेजिमेंट ने तयार होने में

कुछ आनाकानी की थी। एक पठान मेरे पास आया और कहने लगा कि फ्ला रेजिमेंट मेर आदेश की प्रतीक्षा कर रही है। मैं हस दिया और उसे टान दिया। मुझे मदेह था कि वह ध्वंसित जाम्म था।”

मेना न गडबडी का दबा दिया और भारी सख्या म लोगो को हवालात म बन्द कर दिया, जिनम कुछ प्रमुख नागरिक तथा कुछ पढे लिखे युवक भी थे। हम मझी सभाचार मिल रहे थे, परन्तु हम कर भी क्या सकत थे ?”

शाम को हाने वाली सावजनिक सभा की अनुमति न दी गई और उसका विचार छाड दिया गया। अगले दिन की गिरफ्तारिया म लाजपत राय के भेजवान—अमोलक राम तथा नोटिस वाले मामते के अन्य वकील शामिल थे। जिन्ही जमानत से इकार कर दिया गया और लाजपत राय चीफ वाट म यह याचिका दाखिल करने के लिए तुरत लाहौर पहुचे। वहा भी असाधारण घटनाए हुइ। लाजपत राय के शब्दा म

“यादाधीश न निणय दिया कि याचिका की सुनवाई डिधीजन बंध करेगी और इस बीच सरकारी वकील रावलपिण्डी के जिलाधीश से इस बात की जानकारी प्राप्त करेगे कि क्या न जमानत स्वीकार कर ली जाये।”

याचिका मुनयार्ड के लिये पेश होने से पूर्व सम्बद्ध जिलाधीश अदालत में रावलपिण्डी के कमांडिंग आफिसर का एक पत्र लेकर उपस्थित हुए, जो चीफ कोर्ट के यादाधीशा के ताम था। अनुमान है, उस पत्र में कहा गया था कि यदि गिरफ्तार नलाजा को जमानत पर रिहा किया गया, तो सभत्र ह भारतीय सैनिको म विद्रोह फैल जाये। अभियुक्तो के वकील को मह पत्र दखने की अनुमति नही दी गई, यद्यपि उन्होने इस पत्र की एक प्रतिलिपि मागी थी। औपचारिक तौर पर दलीले मुनने के बाद, जजा ने जमानत स्वीकार न करने का निणय किया।”

24. उड़ा लिया गया

“जो आदमी इम सारी शरारत के लिये जिम्मेदार है, वह अभी स्वच्छंद घूम रहा है, परन्तु वह अधिक समय के लिये ऐसे नहीं घूम सकेगा।” यह बात एक प्रमुख ब्रिटिश अधिकारी, चीफ कोर्ट के रजिस्ट्रार ने चीफ कोर्ट के एक वकील बोधराज ना, जो बाद में जम्मू-कश्मीर में न्यायाधीश बने थे, बताई थी। जिसकी आर उर्होंने संकेत किया था, वह लाजपत राय थे।

ऐसी ही खबर लाजपत राय के पास भी विभिन्न साधनों से पहुँची थी। एक मित्र ने, जिसे कुछ घरिष्ठ यूरोपियन अधिकारियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था, उन्हें गौपनीय बात बतायी थी कि “यह इस घटना पर दात पीस रहे हैं और उनका विश्वास है कि मैं ही इस सारी शरारत की जड़ हूँ और मेरे साथ तुरत कारवाई करके कड़ाई से निपटना चाहते हैं।” एक अन्य साधन से उन्हें पता चला कि ‘लायलपुर वाले मेरे भाषण की बड़े परिश्रम से जाच की जा रही है, ताकि उसमें राजद्रोह का अंश ढूँढा जा सके।”

कुछ मित्रों ने उन्हें सुझाव दिया कि वह लाहौर छोड़ दें और तब तक वहाँ न लौटें, जब तक यह तूफान समाप्त न हो जाये। इन सभी सुझावों के लिये उनका एक ही उत्तर था, “मैंने कोई ऐसी बात नहीं की जिसके लिये कानून की शक्ति मेरे विरुद्ध इस्तेमाल की जा सके, मुझे किसी ऐसी बात का ज्ञान नहीं, जो मैंने की हो और जिसके कारण कानूनपालिका की शक्ति मेरे विरुद्ध इस्तेमाल की जा सके, इसलिए मुझे न एक का भय है, न दूसरी का।”

एक बहुत आश्चर्यजनक परन्तु एक प्रकार से पक्की खबर, एक अन्य मित्र लाये थे, जो उच्च अधिकारियों के विश्वासपात्र समझे जाने वाले एक व्यक्ति के आधार पर कह रहे थे कि इस बात की आशंका है कि उनके साथ भी नामधारी सिख सम्प्रदाय के संस्थापक “भाई राम सिंह” के समान, जिसे आमतौर पर “बूका” कहा जाता है, धरताव किया जाएगा। नामधारियों को बूका कहा जाता था। 1872 में जब उनके पचास अनुयायियों को तोप से उड़ा दिया गया था, गुरु राम सिंह को बिना कोई मुकदमा चलाये 1818 के

रेगुलेशन तीन के अधीन बर्मा में निर्वासित कर दिया गया और उसके बाद से उनकी कोई खबर नहीं मिली।

इस पर लाजपत राय ने 1818 के रेगुलेशन तीन का अध्ययन किया। “द स्टोरी आफ् माई डिपार्टेशन” में उन्होंने लिखा है

“परन्तु रेगुलेशन का अध्ययन आश्वस्त करने वाला था, मैं इस बारे में पूरी तरह जागरूक था कि मन ऐसी कोई बात नहीं की कि रेगुलेशन के अधीन मुझे सरसरी तौर पर ही निर्वासित कर दिया जाएगा, मैं अपने आपको यह विश्वास कर लेने के लिए तैयार नहीं कर पा रहा था कि पंजाब सरकार, जिसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति है, जिसे पंजाब की एंग्लो-इंडियन शक्ति के सर्वोच्च हान और अपने साधन व्यापक होने के बारे में पूर्ण विश्वास है, सार ससार को यह विज्ञापित करना चाहेगी कि वह इतनी दुबल है कि मेरे जैसे कमजोर व्यक्ति के विरुद्ध यह कदम उठा रही है। अपने आपको बुरी से बुरी परिस्थिति के लिये तैयार करने के बाद, क्योंकि भाग जाने का विचार तो एक पल के लिए भी मेरे दिमाग में नहीं आया था, मैंने अपना वह कतव्य पूरा करने की ओर कार्रवाई शुरू कर दी, जो ऐसी स्थिति में मेरे मित्रों तथा देश के प्रति मेरे कर्तव्य पर था। मन अम प्राता में कुछ भारतीय नेताओं का पत्र लिखे और इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के अध्यक्ष विलियम वेडरबन को भी, जिसमें धिनाब कौनाल कालोनी के प्रबंध के बारे में कई कागजात भी थे। अग्रेजी डाक से दो दिन पूर्व इंग्लैंड में मैंने एक मित्र को पत्र लिखा जिसमें मैंने लिखा था कि मैं डाक से दो दिन पूर्व इसलिये लिख रहा हूँ कि इस बात का कोई ज्ञान नहीं कि मैं डाक के दिन तक स्वतंत्र भी रहूँगा या नहीं।”

उसी दिन उन्होंने अपने पिता को भी अपनी समावित गिरफ्तारी के बारे में पत्र लिखा, क्योंकि लाहौर में प्लेग फैलने के कारण सारा परिवार सुधियाना चला गया था और केवल उनके सबसे बड़े पुत्र प्यारे लाल ही पास में थे। इस पत्र में पुत्र ने अपने पिता से सादर विनती की थी

“मुझ पर कुछ भी बीत, आप धैर्य मत छोड़ना। जो कोई भी आप से खेलना है, कभी न कभी उसका चेहरा क्षुब्धता ही है। सत्ताधारी हाकिमों की आलाचना करना आप से खेलना है। मुझे जो बात व्याप्त करती है,

वह केवल यही कि आपको बच्युत होगा, इसलिये मैं आपसे आशवासन चाहूंगा कि मेरी गिरफ्तारी से आप व्याकुल नहीं होंगे। जो भी मुसीबत आये, उसे बहादुरी से बरदाश्त करना चाहिए।”

इसलिए ऐसी बात बिल्कुल नहीं कि उन्हें पूर्वाभास नहीं था। दरअसल, यह तो उस बात के लिये पूरी तरह तैयार थे, जो भविष्य में उनके साथ घीत सकती थी। अपने पत्र में उन्होंने अपने पिता को कुछ ध्यौरवार निर्देश दिए थे, जो एक बसीयत की भावना से जगराब की जायदाद को उनके पुत्रा के नाम हस्तांतरण करने के लिये थे।

9 मई डाक का दिन था, वह अंग्रेजी डाक के लिये कुछ पत्र लिखने के लिये प्रातः बैठे—एक पत्र एक समाचार पत्र के लिये पजाब की ताजा स्थिति के बारे में भी लिखना था। वह पत्र लिखने में व्यस्त थे कि दस बजे के करीब साता हसरार आये और उनका कुछ मित्र के साथ पिकनिक पर चलन के लिये बहा। लाजपत राय ने इसका कुछ दख्खार्ई से उत्तर दिया, उनसे पास न समय था और न उनका मन पिकनिक के लिये चाह रहा था। उनके मित्र चले गये। उन्होंने लिखना समाप्त कर दिया। उसके पश्चात् नाश्ता किया और फिर एक या दो पत्र लिखने के लिये बैठ गये। सुबह का काम समाप्त कर चुकने के पश्चात, वह चीफ कोट जाने के लिये तैयार हुए, मुख्यतः अपने एक मुबकिल के लिये एक बकील करने के लिये, जो दो दिन पहले इस काम के लिये उनके पास साठे तीन सौ रुपये छाड गया था। अभी उन्होंने वे नोट अपनी जेब में रखे ही थे और थोडागाडी लाने के लिये आवाज दी ही थी कि उनके मुशी न सूचना दी कि दो व्यक्ति मिलने आये हैं।

वह बाहर आये और अनारखली पुलिस के इन्स्पेक्टर गंगा राम तथा सिटी पुलिस के मुशी रहमत उल्लाह से मिले, वे दोनों ही बर्दी में नहीं थे। वे सदश लाये थे कि कमिश्नर तथा डिप्टी कमिश्नर उासे तुरत मिलना चाहते हैं।

लाहौर के कमिश्नर महत्वपूर्ण व्यक्तियों को बुलाया करते थे, ताकि “फला हुआ असतोप समाप्त करने के लिये उनसे हस्तक्षेप करवा सकें।” क्या लाजपत राय को भी इसी शान्तिपूर्ण उद्देश्य के लिये बुलाया जा

रहा था ? उन्होंने इन्सपेक्टर रहमत उल्लाह का बताया कि उन्हें बचहरी में कुछ काम है और वह थोड़ी ही देर में आ जाएंगे। इन्सपेक्टर ने उत्तर दिया कि कमिश्नर जिला कार्यालय में प्रतीक्षा कर रहे हैं और वह केवल कुछ मिनट के निये वात करना चाहते हैं, वह चाहें तो कमिश्नर से मिल स और बाद में बचहरी चले जाय।

इस अनुचित जल्दबाजी में कुछ सदर उत्पन्न किया। मुस्कराते हुए लाजपत राय ने कहा, 'बहुत अच्छा, माइए, मेरी गाड़ी तैयार है, हम इकट्ठे ही चलते हैं।' गाड़ी अभी मुख्य द्वार से बाहर निकली ही थी कि दो यूरोपियन अधिकारी घात लगाकर बैठे डाकुआ के समान दूधकर गाड़ी के पायदान पर चढ़ गये। पुलिस कप्तान रण्डल ने लाजपत राय पर चित थे, उन्हें गाड़ी में चढ़ा लिया गया। जिला पुलिस कार्यालय में—जो लाजपत राय के घर से केवल दो मिनट का सफर था—कमिश्नर यंग एम्बेड ने, लाजपत राय का सूचन किया कि गवर्नर जनरल इन कौंसिल में एक अधिपत्र जारी करके उनके नागरिक स्थान में परिवर्तन कर दिया है।

इसका अर्थ है कि उन्होंने उनके साथ "भार्डे राम सिंह जसा" व्यवहार करने का निणय कर लिया था। इसके लिये उसी अधिनियम का सहारा लिया गया था। यह देखना था कि नामधारी गुरु की तरह वे उन्हें बर्मा में किसी स्थान पर रखते हैं या निर्वासन और कैद के लिये कोई और स्थान चुनते हैं। इस पल तो कृपापूर्वक उन्हें यही आशयन दिया गया था कि उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाएगा।

25 'गदर' वाली मनोविक्षिप्ति

गदर के कारण भारत में यूरोपियन समुदाय पर गहरे आतंक की छाया थी। गदर-बेसहारा आरतता तथा बच्चा को मार देना के लिये उठे हुए अनवरत पाशविक हाथ—इसके कारण यूरोपियन समुदाय में समय-समय पर हिस्टीरिया की लहरे दौड़ जाती थी और इसके कारण बर्णा तथा सहानुभूति के लिये यह रागविज्ञान का एक विषय बन गया था। और इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि जिस नाटकीय ढंग से और बड़ा चढ़ाकर गदर के चित्र को पेश किया गया था, उसके कारण ही अंग्रेजों ने कई ऐसी बातें की, यदि उनकी मनोस्थिति ठीक होती, तो ये बातें इस ढंग से करना उनके लिये असंभव था।*

इस बात का समझने के लिये कि शाही आदश के अधीन लाजपत राय के निर्वासन का निष्पत्ति कैसा लिया गया हम 1907 में एंग्लो-इंडियन समुदाय की मनोस्थिति की गड़बड़ का पहले अध्ययन करना होगा, जब सारा समुदाय ही सावधोचित मद्रूपण का शिकार हो जाये, तो उप राज्यपाल तथा गवर्नर उस मद्रूपण से कैसे बच सकते थे।

एंग्लो इंडियन शासक निराधर आर आसान तीर-तरीका के आदी हो गये थे और बच प्रतिष्ठा पर प्रबन्ध चला रहे थे, इसलिए जब उन्हें दिन-पर-दिन विराध बढना हुआ तब आया तथा विराधी शक्तियाँ सशक्त होती दिखाई दी, तो वे शीघ्र ही घबरा गये। कुछ परिस्थितियाँ में एंग्लो इंडियन समुदाय मनोवैज्ञानिक स्थिति का शिकार हो गया—1857 की मनाप्रतिधि जिन दिनों गदर हुआ था। इसलिये 1907 में 1857 की यादें एंग्लो इंडियन मन को तब-तब लगीं। 1857 से 1907 तक ठीक अठ्ठाशताब्दी समाप्त हुई। कितनी अनिष्ट-सूचक बात थी। निश्चय ही वही शक्तियाँ फिर खुलकर खेलेंगी। भारतीय सैनिक फिर विद्रोह कर देंगे और सैनिकों तथा असैनिकों के साथ फिर वही बराबर का अमैत्रीपूर्ण व्यवहार किया जाएगा। महिलाओं तथा बच्चों का भी नहीं छोड़ा जाएगा। बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के एंग्लो इंडियन समाचार पत्रों ने भी "गदर मनोप्रतिधि" के बहुत तीव्र रोगलक्षण व्यक्त किये। कलवा तथा भोजनकक्षा में यह विषय गपशप और बातचीत का विषय था। साहब, चाहे बड़े थे या छोटे, सभी को हर जगह

*सामान्य एंग्लो इंडियन गदर साइड आफ द मडल (तृतीय संस्करण) पृष्ठ 86-87

1857 के भूत दिखाई देते थे । वे किसी भी कहानी पर विश्वास कर सकते थे, शत केवल यह थी कि वह गदर के अभिप्राय से जुड़ती हो, बेइमान मुखबिरो के लिये ऐसी स्थिति लाभकारी थी ।

एंग्लो-इंडियन समाचार-पत्र तो 1907 से पूव ही हिस्टीरिया की ओर बहत दिखाई पडत थे । इस स्थिति को 1857 के भाष जोडने से हालात बहुत ही खराब हो गये । लाहौर का एंग्लो-इंडियन दैनिक पागला जैसे गुस्से में था और उसके कालमा में उल्लेखनापूर्ण पत्र प्रकाशित होते थे, जिनमें माग की जाती थी कि जो पढे लिखे लोग राजनीतिक आंदोलन में हिस्सा लेते ह, उन्हें काडे लगाये जायें । सी० एफ० एड्यूज, जो अभी एंग्लो इंडियनो के तौर-तरीको के लिये नये थे और उन्हें सेंट स्टीफेन कालिज, दिल्ली में प्रोफेसर के तौर पर काय करते हुए अभी अधिक दिन नहीं हुए थे, इस स्थिति से बहुत स्तब्ध हुए और उन्होंने विरोध व्यक्त करने के लिये एक पत्र लिखा । कुछ समय बाद लाहौर के बिशप, डाक्टर लेफ्रोव ने भी एंग्लो-इंडियन समाचार पत्रों के इस स्वर का विरोध किया । साठ मिटा न भी स्वयं यह स्वीकार किया (लदन में सरकारी कार्यालय का लिखे गुप्त पत्रों में, जिन्हें हम अभी देखेंगे) कि इन लेखों का स्तर अपमानजनक तथा घटिया था, परंतु पंजाब सरकार ने दोपियों के विरुद्ध मुकदमें चलाने की अनुमति न दी ।

प्रतिदिन इन उग्र समाचारों को पढकर, साहब लोग यह विश्वास करने का तैयार हो गये थे कि 1857 का इतिहास दोहराये जाने के लिये पूरी तैयारी हो रही है । लाखों मैनिक केवल लाजपत राय के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं । 1857 का तवाही 10 मई को आरम्भ हुई थी । अदृशताव्दी के बाद फिर वैसी स्थिति का आतक फैल गया था और 10 मई का दिन अशुभ समझा जा रहा था । स्पष्ट तौर पर इससे "मार्च की सतान" जैसी गद्य आ रही थी । जैसे जैसे 10 मई का दिन निकट आता गया, दु स्वप्न जैसी चीखें हिस्टीरिया जैसा जोर पकड़ती गईं कि तुरत ही कोई कठार उपाय किया जाये । उस महत्वपूर्ण दिन के लिये साहब लोग ने अपने परिवारों के लिए किले में पनाह लेने की व्यवस्था करा ली थी । रेलवे अधिचारियों से भी कहा गया था कि राकट के समय सहायता के लिये वे भी पूरी तरह व्यवस्था कर लें ।

वीर हार्डी न, जिहान 1907 म भारत का दौरा किया, मानसिक तार पर राग वाली स्थिति के काफी प्रमाण देखे। दिल्ली में नगर निगम का कर दुगुना कर दिया गया था। वीर हार्डी ने इस का स्मरण करते हुए लिखा है

“आन्दोलन हुआ और कर वापस ले लिया गया। 10 मई का स्थानीय लोग मे लडाई हुई, जो पांच मिनट में समाप्त हो गई। यूरोपियन क्लब में समाचार पहुंचा कि लम्पट यूरोपियन तथा स्थानीय लोग ने विद्रोह कर दिया है और वे यूरोपियन लोग का बघ कर रहे हैं। स्वदेशी नगर में व्यापार तथा विनोद सामान्य रूप में जारी रहा।”

वीर हार्डी का जिस बात ने सबसे अधिक अचभे में डाला, वह थी इटावा की घटना, जिसमें लाजपत राम का नाम जोड़ा गया था। बाद में इस घटना को “इटावा की गप्प” का नाम दिया गया और इससे हमें यह झलक मिलती है कि 1907 एंग्लो इंडियन मन स्थिति क्या थी।

ऐसा दिखाई पड़ता है कि मयूकन प्रांत के इटावा नगर में हिंदू तथा मुसलमान कमचारी एक दूसरे के विपरीत उद्देश्य के लिए काम कर रहे थे। हिंदू मुसलमान बानबाल का तबादला करवाकर, उनके ध्यान पर पुलिस के ब्राह्मण डिप्टी सुपरिंटेंडेंट को लान में सफल हो गये। इसलिए जिन विभागों में मुसलमान कमचारिया की अधिक मख्या थी, उनकी पुलिस के साथ अनबन थी (वीर हार्डी ने लिखा है) परन्तु वहां वहाँ ऐसी बात हुई नहीं दिखाई पड़ती, जब तक पंजाब में लाला लाजपत राम का मामला नहीं उठा। थोड़े समय बाद मजिस्ट्रेट (रोज) को तहमीलदार ने (जा मुसलमान था) गुप्त रूप से सूचित किया कि उनके पास यह विश्वास करने के कारण है कि सभागीय हिन्दू कमचारिया की ओर से लाला लाजपत राम के पक्ष में बचने के लिए एक सूची जारी की गई है। श्याम विहारी मिश्र, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस, श्री प्रसाद, डिप्टी क्लेक्टर, कई वकील, जिनमें इटावा से बकालत करने वाले एक पंजाबी वकील जसवंत सिंह प्रमुख थे इस बारवाई के अगुवा थे और इसके अतिरिक्त ये लोग आम समाज के विभिन्न वर्गों के गाम राजद्रोह के लिये पत्र व्यवहार भी कर रहे थे। यह कहा गया था कि इन चिट्ठियां को रास्ते में ही पकड़ना संभव था और इस उद्देश्य से सुरत कारवाई की गई थी। वीर हार्डी हमें बताते हैं

‘इस बारवाई के दौरान 19 पत्र रास्ते में पकड़ लिए गए था खलील ने (जिसे विशेष तौर पर मुखविर नियुक्त किया था) यह दिखाया कि ये पत्र पकड़े गए हैं।

इनमें से अधिकतर बहुत ही भडकान वाले और दापी सिद्ध करने वाले थे, तथा कुछ निजी किस्म के थे। इनकी विशेष बात इन पर उन एक या दो अफसरों के हस्ताक्षर होना था जिनके नाम खलील ने बताये थे। डिवीजन के कमिश्नर कौबल ने और अधिक जाच पड़ताल की और सबको आश्चर्य किया कि ये दस्तावेज असली हैं। अपराध घोज विभाग के प्रांतीय निदेशक, शाप का बुलाया गया। वह इस बात से सहमत थे कि मामला गंभीर किस्म का है और उन्होंने सलाह दी कि एक समय पर तीन अर्थ स्थानों—उन्नाव, खेड़ी तथा अमृतसर में तलाशी ली जाये तथा जाच पड़ताल की जाये।

परन्तु इस बीच एक बहुत ही असाधारण घटना घट गई। राज इस सब में स्थानीय वालटियरों के कमांडर कैप्टन एडमसन से बात चला रहे थे। इस बारे में सभी स्थानीय अधिकारी मामले को बहुत गंभीर समझ रहे थे और इस भ्रम में फँस चुके थे कि नगर में विद्रोह होने वाला है और पुलिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

अपनी घर-गृहस्थी की रक्षा करने वाले स्वयंसेवकों के कमांडर के साथ सभी घटनाओं पर विचार विमर्श करने के बाद उनका निष्कर्ष यही था कि कप्तान न टूण्डला और कानपुर में स्वयंसेवकों को सावधान कर दिया कि वे तैयार रहें और तार मिलते ही उनकी सहायता के लिये तुरंत पहुँच जायें। परन्तु इस बीच शाप और कौबल बीच में आ गए और उनसे थोड़ी देर बाद स्वयं पुलिस महानिरीक्षक भी आ पहुँचे। महानिरीक्षक ने बिना कोई कारण बताये इस सारे मामले के बारे में बिल्कुल ही अलग विचार व्यक्त किया। यह निश्चित है कि उन्होंने सरकारी जाच के बाद अपनी राय घोषित कर दी कि सभी पत्र जाली हैं, और जाच करने वाले इंसपेक्टरों से यह कहलवा लेने में सफल हो गये कि खलील निश्चय ही बदमाश आदमी था और घोखेवाज के तौर पर माना जाता था, परन्तु उसे किसी अपराध में सजा नहीं हुई थी। मामले की जाच करने वाले अधिकारियों के विचारों में तीव्र मतभेद हो गये। बताया गया है कि रोज ने विरोध करते हुए कहा था कि यह सारा मामला अदालत में निणय के लिये देने को तैयार हूँ। परन्तु सरकार ने महानिरीक्षक की राय स्वीकार कर ली और खलील की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर दिया, और वह फरार हो गया। सरकार ने खोली को डाट-डपट की और रोज के विरुद्ध इससे भी बड़ी कारवाई की गई, शायद इसका कारण स्वयंसेवकों के मामले की असफलता थी। एंग्लो इंडियन अधिकारी वगैरह किसी भी

असंगत वह नी का तुरत स्वीकार कर मन का तैयार हा जाता था, शत कवल यही थी कि किमी न किमी ढग मे उसम लाजपत राय का नाम घसीट लिया जाना चाहिए। इस वग ने यह साच लिया था कि मारा इटावा शहर विद्रोह करने के लिए तैयार है, पुलिस की बफादारी में फव आ गया है।" बताया गया कि सरकार से 1818 के अधिनियम का प्रयाग करने के लिए कहा गया था और वह इसके लिये लगभग सहमत भी हः गई थी। कीर हार्डी का कहना है कि निर्वासन क आदेश जारी कर दिये गये थे।

पजाब सरकार की भी मन स्थिति ऐसी ही थी, जब लाला लाजपत राय को निर्वासित किया गया।

लाजपत राय की गिरफ्तारी के लिये पहल पजाब के उप राज्यपाल, सर डेजिस इन्वटसन की आर से हुई, यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि 1818 के अधिनियम 3 के इस नये इस्तेमाल का विचार सबसे पहले किमके दिमाग की उपज था। 1907 की तूफानी घटनाओं के बारे में इन्वटसन के अपने विचार उम पत्र से पता चलत हैं जो उमने उम समय तैयार किया था। मिटा न इसका साराण मालों का भेज दिया जसा हम बाद म देखेंगे। भारतीय राजद्रोह ममिति न (1917) जिमके अध्यक्ष सर एस०टी० रौलैट थे, हम दस्तावज की जाच की और इसके सक्षिप्त भाग अपनी रिपोर्ट में शामिल किये। कारवाई का क्षेत्रवार सक्षिप्त विवरण देन के बाद रौलैट रिपोर्ट म कहा गया है

"उप राज्यपाल की राय थी कि कुछ नता ब्रिटिश शासका का भारत स निकालन के बाद म साच रह हूँ या उनसे सत्ता छीन नेन का प्रयत्न कर रहे हः, चाह यह बल पूबक हो या सभी लागो के निष्क्रिय विराघ अथवा सत्याग्रह से हा, आर जिस ढग स उहोन सरकार का काम ठप्प कर दन की योजना बनाई है, वह लागो के मन म जाति भेद की भावनाए भडकाता है। उनके विचार म मारी स्थिति 'बहुत ही' खतरनाक थी और इसका समाधान करन के लिये तुरत कारवाई अनिवाय थी।"

जो समाधान अपनाया गया, वह था आंदोलन के नतावा, लाजपत राय तथा अजीत सिंह का 1818 के अधिनियम 3 के अधीन निर्वासित करना। प्रस्तावित नहरी वस्ती बिल को भी भारत सरकार ने रद्द कर दिया, परंतु गृह मंत्री लाड

जान मालें न यह सुझाव स्वीकार नहीं किया कि इस समस्या का मूल आधार कृषक समस्या है। 6 जून 1907 को हाउस आफ कामन्स में भाषण करते हुए उन्होंने कहा

‘पता चला है कि पंजाब के प्रमुख आन्दोलनकारियों ने पहली माच से पहला मद्र तक 28 बैठकें कीं। इनमें से केवल पाच प्रकट रूप से कृषकों की शिकायतों से सम्बद्ध थीं बाकी 23 बैठकें वित्तीय राजनीतिक थीं।’

इस बात पर दृढ़ता से कायम रहते हुए कि पंजाब का आन्दोलन अवश्य ही कृषक आन्दोलन का आरम्भ इसके मूल कारण आर्थिक थे लाजपत राय ने मालें द्वारा दिये गए तथ्यों के बारे में कहा

“पहली माच से मई 1907 तक की गई बैठकों की यदि कम-से-कम सख्या भी ली जाये तो ये 28 से कम-से-कम दुगुनी या त्रायक तिगुनी अवश्य थी और उनमें से अधिकांश प्रकट रूप से कृषक शिकायतों के बारे में थी। शुद्ध रूप से राजनीतिक बैठकों की सख्या दस बारह से अधिका नहीं थी।”⁴

वायसराय लाड मिण्टा ने लाजपत राय के निर्वाचन की स्वीकृति तुरत दे दी। लिबरल गृह सचिव “ईमानदार जान” (लाड मोर्से) का उस समय जानकारी दी गई, जब वारन्ट जारी हो चुके थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने हाउस आफ कामन्स में इस बार्गवाइड का समर्थन किया। वायसराय और गृह मंत्री के बीच क्या मतभेद हुए, इसकी आशिक जानकारी लाड मालें की पुस्तक ‘रिक्लकेशंस स आर आशिक जानकारी लेडी मिण्टो की पुस्तक ‘इंडिया मिटा और मील’ 1905—1910 से मिलती है। 2 मई 1908 को मिण्टा ने मालें का लिखा

“अधिक समय नहीं हुआ जब सर हैनरी वाटन ने हाउस आफ कामन्स में आपसे सिविल एर मिनिस्ट्री गजट में प्रकाशित कुछ पत्रों के बारे में पूछा था। वे अपमानजनक सीमा तक घटिया थे और उनका उद्देश्य जातीय घणा फैलाना था। पंजाब सरकार ने ऐसा करने वालों के विरुद्ध मुकदमे नहीं चलाये और न ही व्यक्तिगत रूप से मुकदमे चलाने की अनुमति दी। सम्भवतः वे ठीक हो सकते हैं परन्तु यह जानकर उन पोलने लगता है कि ऐसे पत्र एक प्रमुख अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र ने

⁴पोलिटीकल क्वेश्चर बाय इंडिया, पृष्ठ 164

प्रकाशित किये। हमने उप-राज्यपाल को लिखा है जिसमें सुझाव दिया गया है कि यद्यपि कोई निश्चित कारवाई नहीं की जाएगी, वह मम्पादक से मिले और उन्हें बता दें कि ऐसा करने से क्या हानि हो रही है।¹*

छ दिन बाद, मिण्टा न मालों का तार दिया

"तार (परिभाषित) मिण्टो से मालों को। 8 मई। तीन दिन पूर्व हम इन्वटसन की आर से पञ्जाब की वर्तमान राजनीतिक स्थिति के बारे में एक ठोस और आवश्यक विवरण मिलता। उ हान ऐसी स्थिति की चर्चा की है, जिससे गभीर संदेह पैदा होते हैं। हर जगह उग्रवादी खुलेआम और लगातार राजद्रोह का प्रचार करते हैं, समाचार पत्रों तथा उनके द्वारा आयोजित विशाल जनसभाओं में यह प्रचार होता है और समूह हमारी ओर से कोई कारवाई न किये जान पर हतप्रभ से देख रहे हैं, और इन्वटसन के विचार में वह दिन दूर नहीं जब वे ऐसी सरकार का तिरस्कार करेंगे, जो राजद्रोह को पनपने दे रही है और उसे रोकती नहीं और खुलेआम तथा सगठित अपमान को सहन करती है।

'राजद्रोह का अभियान का प्रमुख रूप लता है। लाहौर, अमृतसर, पिण्डी, फ़िराजपुर, मुल्तान तथा अन्य स्थानों पर लोगोंने खुलेआम बड़े अधिकारियों की हत्या करने का समर्थन किया है, और उरुन तथा अन्य नेताओं ने लागू से विद्रोह करने, अंग्रेजों पर आक्रमण करने तथा स्वतंत्र होने को कहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में जमींदारों का, जिनके द्वारा सेना के लिए जवान भर्ती किये जाते हैं, भ्रष्ट करने के लिए बाकायदा प्रयत्न किये जा रहे हैं। सिखा तथा सेना के पेंशन प्राप्त कर्मचारियों की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। राजद्रोह वाले पर्व सिखों के गांवों में बाटे जा रहे हैं और फ़िराजपुर में एक सावजनिक सभा में, जहां असताप का खुलेआम प्रचार किया गया, फ़िराजपुर में नियुक्त सिख रेजिमेंट के कर्मचारियों का आमंत्रित किया गया था और इनमें से कई सौ वहां उपस्थित थे। सिखा से कहा जाता रहा है कि उन्होंने भारत को हमारे लिए गदर से बचाया, और अब हम उनके साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं, और देश के स्वाधीनता संग्राम में देशद्रोह करने के लिये अब उनके साथ यह याम किया जा रहा है। यह आरोप लगाया जा रहा है कि कपास और गन्ने के विवसित हो रहे स्वदेशी उद्यमों को हम बरबाद करना चाहते हैं यह भी कहा जाता

है कि हमन सागा का धन ल लिया है और उनके बदल म उन्हें कागज दे दिय ह और गाव क सागा स नहा जा रहा है कि हय जब चल जाएंगे, तो हमार करेसा नाटा क लिये नकदी कौन देगा। सागा मे आग्रह किया जा रहा है कि ब एक हा जाये और सरकार का मातिया, आरिथाना तथा अन्य अदायगी-राशि न दें, दौर पर जान वाले सरकारी अधिकारिया का रसद पानी, गाडिया तथा अय सहा यता न दें, और स्वदशी सैनिका तथा पुलिस कमचारिया का "गद्दार" कहा जाता है और उनमे अनुरोध किया जाता है कि वह सरकार की नौकरी छोड दें।

यह प्रचार सुमगठित है आर इसका सचालन आय समाज की एक गुप्त समिति करती है। आय समाज एक मगठन है जो मूलभूत धार्मिक मगठन है और पजाब म इसकी सशक्त राजनीति प्रवृत्ति है।

'इस सारे आन्दोलन के प्रमुख केंद्र एक खत्री वकील हैं, लाला लाजपत राय जिन्होंने पजाब के कांग्रेसी प्रतिनिधि के रूप म इंग्लैंड की यात्रा की थी। वह एक नातिकारी और राजनीतिक उत्साही हैं, जो ब्रिटिश सरकार के प्रति बहुत ही जोरदार घणा स प्ररित है।'

'लाजपत राय क राजनीतिक सबधा की चर्चा करत हुए वायसरॉय सत्य स कोसा दूर थे, उसी तरह जैसे वह एक अग्रवाल को "खत्री" वकील बतात हुए सत्य क निकट नहीं थे।'

तार म आगे लिखा गया था

वह (लाला) स्वयं पृष्ठभूमि म रहने है, परंतु उप राज्यपाल क लगभग सभी स्वदशी भद्र पुरपा ने, जिन्होंने इम विषय पर उनसे बातचीत की है आश्वासन दिलाया है कि वह मुख्य-सचालक ह। राजद्रोह के प्रचार मे उनके प्रमुख प्रतिनिधि अजीत सिंह हैं, जा पहले एक अध्यापक थे और पिछने वर्ष रूस के जामूस सासैफ न उन्हें अपनी सेवा मे ले लिया था। राजनीतिक बटका मे वही सबसे ता वक्ता हैं, उन्होंने कई बार सरकार का सक्रिय विराध करन का समर्थन किया है और उनकी बातें अधिकतर कृपक-व्यय तथा सैनिको म असताप फैलान की आर केंद्रित होती ह। इन व्यक्तिया के विरुद्ध सामाय कानून के अधीन मुकदमे चरान पर आपत्तियो का उत्तर देने आर वर्तमान हालात मे इम बात का सतोपजनक प्रमाण देना सभव न हाने के कारण कि उन्होंने बैठको म क्या कहा है उप-राज्यपाल न

औपचारिक रूप से याचिका दी है कि उनसे विरुद्ध 1818 के अधिनियम 3 के अधीन वारण्ट जारी किये जाये, और उ होने तुरत कारवाई किये जाने की आवश्यकता पर यत्न दिया है, क्योंकि स्थिति में मुधार होन की जगह यह और भी अधिक गभीर होती जा रही है ।

इस मामले पर बल परिपद में विचार किया गया था और आज वारण्ट जारी कर दिये गये हैं कि लाजपत राय और अजीत सिंह को माण्डले में निर्वासित कर दिया जाये । मामले में गावजनिक् प्रदर्शन की सम्भावना या देखत हुए विशेष प्रवध किये गये हैं ।

मेरे विचार में, जो मेरी परिपद के विचार भी हैं, यह कारवाई बहुत ही आवश्यक थी, और यत्नमान आपातस्थिति इतनी गभीर है कि संभवत मुझे 1861 के कानून की धारा 23 के अधीन अध्यादेश जारी करना पड़े, ताकि सावजनिक सम्भाषा का नियंत्रित किया जा सके, मुख्य तार पर इस उद्देश्य से कि इन बैठका में भाषण दन वाला द्वारा कही गई बातों का पूरा और सही विवरण प्राप्त हो सके, और अधिक गभीर मामला में बठनों करने की विल्कुल मनाही कर दी जाये । भारतीय भाषाओं में किये भाषणा की आशुलिपि में पूरी जानकारी अंकित न होने के कारण उनका सही ब्यौरा प्राप्त करना कठिन है । हमें मुखबिरा द्वारा गुप्त रूप में लाई गई जवानी रिपोर्टों पर निर्भर करना होगा, और हमारा विचार है कि इन मुखबिरा की रिपोर्टों का खण्डन करने के लिये पत्र किये गये बहुत से गवाहा के कारण, इन लोगों को राजद्रोह के आरोप में सजा दे पाना कठिन होगा ।

'आज प्राप्त हुई सूचना के अनुसार पिण्डी डिवीजन में सनिका में हस्तक्षेप करने की सुनियोजित वाशिशों की जा रही है, परन्तु सैनिक स्थिति विल्कुल सतोपजनक है ।''*

गुप्त भाषा में दिये गये इस लम्बे तार के बाद, जिसमें से कुछ अंश हमने ऊपर दिए हैं लाड मिण्टो ने 8 मई को गृह मंत्री को चिठ्ठी लिखी

'मैं लाड के (विचनर) के साथ काफी लम्बा विचार विनिमय किया है और जो कुछ उ होने सुना है उमने अनुमान सनिका पर किसी प्रकार का कोई शरारती प्रभाव नहीं पडा है, परन्तु पंजाब के देहाती जिला की भावनाओं का

* वही पृष्ठ—125

दखते हुए यही उचित लगा है कि उन्होंने जो सर्वेक्षण दल भेजे थे, उन्हें वापस लिया जाये, क्योंकि गावों के लोगों का व्यवहार मैत्री का नहीं था।

‘यद्यपि हम समय-समय पर अफवाहें सुनते रहते थे कि पंजाब में भावनाएं अच्छी नहीं ह, डब्लुटमन की सूचना से हम बहुत ही आश्चर्य हुआ है। हमारा अनुमान है, पंजाब के वार में उनसे अधिक किसी को जानकारी नहीं है, और न ही भेरे लिये यह सोचने का कोई औचित्य है कि उन होने इसमें अतिशयान्ति की होगी। इसके साथ ही वर्तमान स्थिति में जब सेना खफादार है, शास्त्रहीन लोगों द्वारा विद्रोह करने जैसी कोई बात संभव हो सकती है, तो संभावना यह है कि और अधिक गड़बड़ी हो सकती हैं। यह गड़बड़ अधिक गंभीर किस्म की भी हो सकती है, और अब जब कि हम चेतावनी मिन गई है, हमें इस सम्बन्ध में काफी सावधानी बरतनी चाहिए।’ †

मीमात पेशावर में भी घुरा समाचार मिला था, इसकी जानकारी हम अगल अनुच्छेद में मिलती है

पेशावर जिले में चिन्ता का कुछ कारण है जिसकी संभावना, बटूर मुसलमान मीमात कबीलों के प्रांत की मुसलमान आबादी के साथ सहानुभूति के कारण है, जहां तक खतरे की संभावना है, भेरे विचार में, यह पंजाब और उत्तर तक सीमित है और लाड के० ने इस संवध में सैनिक सावधानी बरत ली है।**

उस समय के एंग्लो इंडियन मन की स्नायु रोगी स्थिति का पता लाड मिण्टा के पत्र से चलता है

‘मैं स्वयं महसूस करता हू कि असंतोष का अधिक कारण गदर की खपगाठ है। हम बताया गया है कि गड़बड़ की आशंका 8 और 11 तारीख के बीच हो सकती है। मेरा विचार है कि भेरेठ में गदर 10 तारीख को तथा दिल्ली में 11 तारीख का आरम्भ हुआ था और मैं इस बात पर बहुत हद तक यकीन करता हू कि यदि राजनीतिक कारणा का छोड़ भी दिया जाये, तो 1857 की यादें इस खप की विशेषता प्रदान करती ह।’ ***

1857-1907 । उस विशाल तबाही की पचासवीं खपगाठ । 10 मई-
“माचें के पुत्रा” जैमी अपशबुनी तिथि ।

† वही पृष्ठ 125 106

** वही, पृष्ठ 106

*** वही पृष्ठ 126

इससे दो अनुच्छेदा के बाद एग्लो इंडियन मन की स्नायु-रागी स्थिति की ओर स्पष्ट जानकारी मिलती है

“कलकत्ता से प्राप्त जानकारी से वहा के एग्लो इंडियन वग म फैंली हिस्टीरिया जमी घबराहट का पता चलता है, जिसे म अधिक खचिकर नहीं कह सकता, यह उसी भावना जैसा अहसास है जा लाड कर्निंग के समय गदर की स्थिति मे थी । हम उन दिनों के मुकाबले अब बहुत ही अधिक सशक्त हैं । इसके विपरीत विचारा वन आदान प्रदान और स्वदेशी लोगो के विचार 1857 के मुकाबले अब अधिक आसानी से सबविहित ह । और जो गलतिया हमारे अधिकारी करत है, उनके बारे में सामान्य तौर पर अधिक जानकारी होती है, और उन सागा का इनकी और भी अधिक जानकारी होती है, जा अपन अधिकारो के पति अधिक जागरूक है, और ऐसी गलतियो को सामान्य तौर पर स्वीकार करने के लिए कम ही तैयार होते ह । इस समय हम सकट मे निपटना है जिसके बारे म मुझे पूरी आशा है कि वह अधिक देर नहीं रहेगा और इस सकट के दौरान हम पूरी तरह दूढ तथा बहुत याम-सगत रहना होगा । जिन कारणो पर हम नियन्त्रण पाना है और जिनसे हमन निपटना ह वे इस कदर भडकाने वाले है कि हम एक भी अवसर खोना सहन नहीं कर सकत । कोई भी सामान्य आभास कि हम अनिश्चित है या हम दुबल हैं, घातक होगा । परन्तु जितना अधिक म देखता हू, मुझे उतना अधिक विश्वास हाता है कि हम शांति की आशा के साथ भारत में उस समय तक सत्ता म नहीं रह सकते, जब तक हम वहा के पडे लिखे वग को इस देश की सरकार मे अधिक हिस्सा देने का अवसर नहीं देते।” *

मौलें न तुरत उत्तर दिया—केवल सामान्य विचार, जिसमे कारवाई स्थानीय अधिकारियों पर छाड दी गई थी ।

मौलें न मिष्टा का लिखा

“9 मई—पजाब के बारे म आपके समाचारा से पता चलता है कि हम गहर सकट के निवट पहुच रहे ह । और हमे स्थिति से यथासभव उचित ढग से निपटना चाहिए । यदि झगडे जारी रहत है ता मैं यह कहन का साहस करता हू कि हम वडे उपाय करने होंगे । मैं आपको पक्के समथन का आश्वासन दता हू, चाहे दुर्भाग्यवश आपको कोई भी बडा उपाय करना पडे । शायद ऐसी बात हो कि

आपको राजद्रोह फैलाने वालों के विरुद्ध कारवाई के लिए ही नहीं, बल्कि कानून व्यवस्था बनाए रखने वाले अपने लोगों के विरुद्ध कारवाई के लिये भी समयन की और आवश्यकता हो, क्योंकि इतिहास में वे लोग नातिकारियां क मुकाबले अधिक मुखताए करने के लिये जिम्मेदार हैं। मैं केवल यही आशा करता हूँ कि कोई भी बड़ी कारवाई करने में पूर्व, इससे होने वाले सभी हानि लाभ पर पूणत विचार कर लिया जाये। यदि रत्ती भर भी ऐसा मही प्रमाण मिले कि राजद्रोह फैलाने वाले तत्त्व स्वदेशी सेना में असतोष फैला रहे हैं, तो इन्हें दवाने से कोई इन्कार नहा करेगा। आपको बेचल यह नही भूलना चाहिए कि जोश इन घडिया में, जैसा कि ऐसी स्थिति में हो ही जाता है लोग सदेह तथा सभावना को निश्चय तथा यथार्थ के साथ भ्रमित कर देते हैं।”*

समाचार पत्रों के हिस्टीरिया के कारण जो समस्या खडी हो रही थी, उसके बारे में

‘आपको व्यापक तौर पर पढे जाने वाले हमारे कुछ समाचार पत्रा में छपी सनसनी फैलाने वाली सुखियों के बारे में ध्यान नही है। कोई भी व्यक्ति यह ख्याल कर सकता है कि पिण्डों में सभी ओर भारकाट और आमजनी का मैदान गरम था और हत्या तथा बलात्कार की घटनाए आम थी, जैसे तीस वर्षीय युद्ध के दौरान मग्देबग घेरे के समय था। यह बकवास है या नही?’**

मौलें ने हर प्रकार की प्रतिक्रियावादी तथा दमनकारी कारवाईया के लिये अपनी अनुमति दे दी थी, परंतु उनके भूतपूर्व “उदार” व्यक्तित्व का भूत अभी पूणतया दफन नही हुआ था और उनकी आर भर्त्सना का सवेत करता रहता था, और उनके कानों में धीरे-धीरे कई जारा तथा दमनकारिया के नाम लेता रहता था। दम प्रकार की कुछ बानाफूवी उन दस्तावेजा से हमें सुनाई पडती है, जो मौलें द्वारा मिटो को भेजे गये पत्रा के रूप में हैं। इस प्रकार भारत में प्रतिक्रियावादी नीति के बारे में उन्होंने लिखा है

“प्रश्न है भविष्य का और यह जार और डूमा की तरह है। क्या हमें यह कहना है आपको सुधार उम समय करने चाहिए, जब आप शांत हो। इस बीच हम आपसे बड़े एक भी शब्द नहीं सुनेंगे। हमने अपनी सुधार योजनाए उठा रखी हैं।

* ज्ञान मौलें रिपब्लिकन भाग दो पृ० १११-१२

** वहा पृष्ठ ११३

फीट्सवग में जो लोग डूमा को सताने के कारण ग्राड ड्यूक के विरुद्ध शोर मचाते थे, इतने ही जोर से आपके और मेरे विरुद्ध शोर मचाएंगे, यदि हम अपने क्षेत्र में ग्राड ड्यूक की नीति नहीं अपनाते।”*

1907 में पंजाब में सरकार की कारवाइया को समझने के लिए हम मौलें और मिण्टो और किसी हद तक इन्वटसन के व्यवहार को ध्यानपूर्वक देखना होगा। मौलें एक उदारवादी के रूप में प्रसिद्ध थे, परन्तु उन्होंने अपनी उस ख्याति को तिलाजलि दे दी। केवल इतनी शेष रख ली कि नई हमनकारी नीति के बारे में विपक्ष का मुह बंद किया जा सके। मिण्टो हठिवादी तथा प्रतिक्रियावादी थे, परन्तु सामाज्य तौर पर उनमें पागलपन नहीं था। परन्तु वह बिना प्रभावित हुए बिल्कुल न रह सके। भारत के यूरोपियन समुदाय में हिस्टीरिया देशव्यापी रूप में फैल गया। कुछ भी हो इस अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण से उन्हें अपने मनमाने ढंग से कारवाई करने में सहायता की, परन्तु मौलें की पूर्ण अनुमति के कारण इन्वटसन बिल्कुल ही प्रतिक्रियावादी थे।

कुछ लोगों को तो यह संदेह था कि वह जान-बूझकर अशांति फैला रहे थे, ताकि उन्हें सभी प्रकार के आन्दोलनों से निपटने के लिए खुली छूट मिल सके। अधिक दयालुतापूर्ण दृष्टिकोण मौलें ने उस समय अपनाया, जब निर्वासन से काफी समय बाद इन्वटसन छुट्टी पर इगलड गए, तो उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था और सर्जन ने आपरेशन किया था। मौलें ने पंजाब के उप राज्यपाल के बारे में अपने विचार इस प्रकार लिखे —

“ इन्वटसन मुझसे मिलने आये—बहुत आश्चर्यजनक स्वास्थ्य लाभ कर चुके थे, ऐसा मुझे लगा। वह विचारवत है और अपने विचारा तथा अनुभव के अनुसार बहुत दृढ़ और अपने अनुभवों को ठीक तरह से समझते हैं, मुझे इस संबंध में पूर्ण विश्वास नहीं। किसी व्यक्ति के लिए एक पूरी पीढ़ी के साथ बड़ी ईमानदारी से परिश्रम करने के बाद, नई पीढ़ी के साथ जागना आसान नहीं होता। आपके भाग्य में यह कठिनाई निश्चित होती है कि आपको उन लया के सहयोग से काय करना होता है जिनकी प्रकृति प्रतिक्रियावादी होती है। खैर, हम इससे यथासंभव निपटना है। मैंने उनके साथ एस०एस० की कठिनाइया के बारे में बात-चीत की जो इस समय विशेष नहीं थी, परन्तु बहुत यथाय थी और आशा है

*कृती पृष्ठ ११५

कि मैं उनके मन को कुछ खोला, यद्यपि मुझे सदेह है कि यह बड़ा बड़ा मन था। सत्य तो यह है कि यदि यह विश्वास करने के ठोस और स्पष्ट कारण हैं कि भारत खतरनाक स्थिति की ओर बढ़ रहा है, और यदि इन तथ्यों का अच्छी तरह मिथ्या किया जा सकता है, तो—जहाँ तब समद में तथा देश में राय का प्रश्न है—हम जो चाहे कर सकते हैं।”*

मौलौ के अपने मदेह थे कि ऐसे “ठोस आर स्पष्ट प्रमाण” थे, जब कि उनके पास केवल सुनी-सुनाई बातें थी या इससे अधिक थी जवानी रिपोर्टें और वे उन भुखविरा की थी, जिन्हें चोरी छिपे मावजनिक बैठवा म भेजा जाता था।

मिण्टो ने मौलौ से निपटने के लिए बड़ी चतुर तकनीक अपनाई, जो कुछ समय के लिये काफी सफल रही। उ हाने सक्षिप्त सुनवाई के बाद राजद्रोह के लिये गोली मार देने के बारे में कहा और फिर रियायत के रूप में वह सभावार पत्रा के बारे में उपाय करने से ही सतुष्ट हो गये। मिण्टा इस तकनीक की सफलता के बारे में पूरी तरह जानते थे। उ होने अपनी पत्नी को लिया

“6 जून (शिमला) मुझे पिछले सप्ताह प्रकाशित ‘द टाइम्स’ पर हसी आती है। वे सोचते हैं कि मभी कुछ मौलौ न किया है। उ होने शानदार ढग से मेरा समयन किया है, परन्तु उ होने यहा किमी बारवाई के लिये अगुवाई नहीं की। जहा तक लाला लाजपत राय के निर्वाचन का प्रश्न है, उ हैं (मौलौ को) तो अपनी राय देने का भी अवसर नहीं था। कुछ जिला को अज्ञात घोषित करने का नाम मेरा ही था वैसे ऐसी घापणा करने का अधिकार केवल वायसराय को ही है।”**

मिण्टा ने जब अपने कायकाल के अंत के निकट अपनी पत्नी को यह लिखा, तो वह अधिक गलत नहीं थे

“दरअसल, मुझे विश्वास है कि जब से मैं यहा आया हू, हर मामले में मैं अपनी बात मनवाई है, परन्तु यह सब उस समय सामान्य तौर पर मैंने गुस्से में आकर नहीं, जब कि मेरा नाराज होना उचित था, बल्कि अपनी बात बहुत ही विनम्र ढग से कहकर किया है और उस व्यक्ति को प्रमान करने जिसमें मेरा वास्ता था।”

प्रतिभाशाली मौलौ को छलकपट से मिण्टो-नीति पर घूत वायसराय स्वयं लाया था। शायद स्वयं उमे यह सदेह होने लगा था कि जिस नीति का वह लागू कर

*करी पृष्ठ ११३

**मेरी वाउटेम ज्ञाप मिण्टा इंडिया मिण्टा एंड मोने 1905-1910 प० 138

रहा है। वह असल में किसी अर्थ की भददी उपज है। अनुमानित पिता ने अपने स्वभाव को कुछ सीमा तक 'रिक्लैक्शस' में व्यक्त किया है, जिससे गृह मंत्री तथा वायमराय के बीच बंध रही दूरी का सवेत मिलता है। अगस्त 1907 में ही ऐसा जा पड़ता है जमे मोर्ले, मिण्टो के आदमियों से ऊब गये हो।

23 अगस्त की टिप्पणी में कहा गया है, "उन्होंने आपके कल के समाचार का तार मेरे पास अभी भेजा है। मुझे इस बात से हैरानी होती है कि आप जैसे मझे हुए व्यक्ति यह बात किस प्रकार भूल जाते हैं कि वे एक स्वतंत्र देश की ससद के सेवक तथा प्रतिनिधि हैं, और वे यह स्वप्न लेते हैं कि एस० एस० ससद का अधिवेशन आरम्भ होने से केवल एक घंटा बाद तक ही जीवित रह सकते हैं, जिन्होंने इन नई व्यवस्थाओं को स्वीकृति दी हो। मैं समझता हूँ और कहता हूँ कि किसी आदालत-कारी का मुह बंद करने का यह बड़ा अधिकार "निर्वासन की मजबूरी" की आवश्यकता नहीं रहने देगा। लाजिमी तौर पर वह यह भूल गये होंगे जो मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में बताया था कि मैं उस व्यक्ति के अतिरिक्त, जिसके बारे में विश्वास किये जाने का ठास कारण है कि हिंसक गडबडी उनकी कारवाई का स्पष्ट और प्रत्यक्ष परिणाम है किसी और के निर्वासन की अनुमति नहीं दूंगा। वे कौन हैं— और —?" वही व्यक्ति जिन्होंने आपके अरुडेल सुधार का विरोध किया था— बहुत ही प्रशंसनीय तथा बुद्धिमत्तापूर्ण बात, जो हमारे समय में हुई। वही व्यक्ति या उन जैसे व्यक्ति, जो हम पर जोर दे रहे थे कि हम लाहौर तथा पिण्डी की गडबड का सहारा लेकर अरुडेल सुधार योजना छान सकते हैं। और तब, 72े समय में जब मंत्रिमंडल का विसर्जन हो चुका है, वकील बिखर गए हैं, और मेरी परिपद के लगभग आधे सदस्य रह गए हैं, वह मुझे एक सप्ताह से भी कम समय दे रहे हैं, जिसमें वह मुझसे कानून और राजनीतिक क्षेत्र के बहुत ही नाजुक तथा पेचीदा मामला का निपटारा चाहते हैं। मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि ये वायवारी भद्र पुंय (जो एक दूसरे की दूरदर्शिता, अनुभव तथा अर्थ गुणा की प्रशंसा करने को तत्पर रहते हैं) इन मामला को एक सप्ताह या एक घंटे में निपटा सकते हैं। फिर उन्हें यह सुविधा भी तो प्राप्त है कि उन्हें अपने प्रस्तावों का समर्थन करने के लिए दलीलें देने की आवश्यकता नहीं होती। मेरी स्थिति उतनी सुखद नहीं। मैंने आपको कई बार अपने उस नटखट विचार के बारे में बताया है कि सत्र-हवीं शताब्दी में आयरलैंड का और बीसवीं शताब्दी में भारत का राज्यपाल बनने

के लिए स्ट्रेफाड आदश विस्म का व्यक्त था। उहोने तो गरीब स्ट्रेफाड का सिर ही उतार दिया, और उस समय मे ही सरकार के बारे मे उसके विचार को स्वीकृति की दृष्टि मे नही देखा जाता। इससे पूव मेरे निगम की आपका तार द्वारा सूचना पहुंच जाती, परन्तु मुझे बहुत ही हैरानी होगी, यदि इस निर्णय को रद्द किए जान के स्थान पर और कुछ हुआ। यदि किसी व्यक्ति के उग्र भाषण मे दगा फसाद होता है, तो उमे दगे फसाद के लिए बन्द क्यो नही कर दिया जाता? यदि उनके पास काफी सख्या म पुलिस नही है, तो "आवश्यक नेता" का क्या हुआ? यह कहना रिस्कुल ठीक नही है कि "दिश में शान्ति" रखन के लिए ऐसा करना भारत के गवर्नर जनरल के विचार म बहुत आवश्यक है। परन्तु यह कहन का क्या लाभ, जब ससद इसे स्वीकार नही करगी? और निजी तौर पर म यह साबूगा कि म उन विश्वास का दुरपयोग कर रहा हू, जो ससद ने मुझमे व्यक्त किया है।

"समाचार-पत्रो के बारे म, सामान्य कानून बनाने का भूतपूर्व प्रस्ताव, जो केवल सैनिक अधिकारियों के आग्रह पर लागू किया जाना था, मर अनुमान में पिछले सौ वर्ष में किसी ब्रिटिश मंत्री का इतनी कड़ी खुराक प्रस्तावित नहीं की गई। परन्तु एव निजी बैठक को सावजनिक बैठक कर देने का विचार इसको भी मात करता है। और एक उप राज्यपाल या किसी अन्य अधिकारी को यह अधिकार दे देना कि वह किसी वक्ता को जिसके विचार उसे पसंद नहीं, किसी विशेष क्षेत्र में मुह खालने की मनाही कर दे उसे किसी गिलोटीन म तटक जान दो और खतम हो जान दो। और गाडन के कथनानुसार उसे अपने आपको किसी बदकिस्मत एस० एस० के स्थान म डालन दो जिने स्टाइडर को तल तथा चिवा नाई देनी हो।"*

बाद म उसने प्रशासकीय घोडागाडी की बात की, जो कि पिकविक वाली हास्मा स्पद और असुखद स्थिति के समान था

"हम भारत को उसी दम से समझने का प्रयत्न कर रहे हैं और अपने सामान्य कारोबार को उसी भावना से देखत है। फिर भी मामने की आवश्यकता के कारण यह इस प्रकार है और इसे इसी प्रकार होना चाहिए कि जाहे मे एव घोडा बनी दाईं ओर खीचना है और उमी समय दूसरा घोडा बाएँ ना खीचता है, या यह

*जोन शोर्ले, रिक्लमणस भाग ४) पृष्ठ 231 3"

फिर पितृविक की स्थिति के समान है—जब अगुआ मुडकर अपने से पीछे की ओर के घाड़े को देखे।”*

जब लाजपत राय के भाडले स निर्वासन से लौटने के दो वष बाद, मिठा न फिर निर्वासन के लिए (बंगाल में) अनुमति चाही, तो मौलौ ने उनका यह सुत्राब तुरत स्वीकार नही किया (9 नवंबर 1909)।

“म निर्वासन के लिये आपका अनुसरण नही करूंगा। आपने अपना पक्ष बडे जोरदार ढंग से पेश किया है, इस बात को मैं स्वीकार करता हू। परंतु आपके साथ असहमति होने के कारण अपनी बेचनी में मैं अपने आपको सातवना देता हू, यह सोचकर कि शायद नीदरलैंड में स्पेन के वायसराय, घेनिस में आस्ट्रिया के वायसराय, दोना सिसिलिया में खोरबन और पुरानी अमरीकी बस्तिया के एक या दो राज्यपालो ने, जो दसीलें दी थीं, वे भिन्न नही थी और न ही कम जोरदार थी। निरादरपूर्ण इस समानता के लिये क्षमा चाहता हू। यह उस व्यक्ति का सही उत्तर है जो अक्सर अपनी तुलना स्ट्रेफोर्ड किंग जॉन, किंग चार्ल्स, नीरो तथा टिवेरियस से करता है।”**

एक-दो मास बाद, निर्वासन-नीति की खर्चा करत हुए फिर

“27 जनवरी 1910—यह नीति रूस में शानदार ढंग से सफल नही रहो, न ही यह ट्रेपीफ की जान बचा पाई और न ही यह रूस को डूमा से बचा सकी, जिस घातकी ट्रेपीफ तथा उनके विचारा से सहमत अन्य व्यक्ति निंदा करते थे और उनसे घणा करने थे।”***

यद्यपि वह हाउस आफ कामस में बडे जोर-शोर से तथा अधिकारपुवक कहते थे कि जिन कारणा के आधार पर लाजपत राय को कैद किया गया है, उन्हें बताया जाना जनहित में नही होगा, दरअसल मौलौ की स्वयं मह घात कभी नही बताई गई थी, सिवाय संकेत रूप में, कि वे मुख्य कारण क्या थे।

बार बार मौलौ को लाजपत राय से सबद “अथ तथ्य” बताने से बचाव के लिये “नावजनिक हितो” का आशय लेना पड़ता था। कोई भी व्यक्ति वे सूत्र नही ढूढ पाया कि न बताए जाने वाले रहस्यमय तथ्य क्या थे। इनकी

* वही, पृष्ठ 234

** वही, पृष्ठ 322

*** वही, पृष्ठ 328

जानकारी न 'रिजिस्ट्रेशन' से मिलती है, तब मिट्टा के संग्रह से और न ही सरदार के पक्ष में बालो के विस, प्रमाण में। यद्यपि समय बँत जान के बाद इन भयानक घटनाओं को जानकारों दे देना बाफ़ा समय पूर्व है, सुरक्षित हो चुका है। मौलौ तो केवल इतना ही बता पाये कि एला-इडियन का बयबास बहानिया क्या थी—उत्तेजना की घडिया में एष और नाना साहब का धर्म, जिनके हुक्म की एष साप सैनिक प्रतीक्षा कर रहे थे।

एक यूरोपियन अधिकारी को, जो हमारादयो की दयालुता के कारण जेल में लाजपत राय से मिला था उसने बताया कि यह विषवास किया जाता है कि लाजपत राय ने मैनिफेस्ट का सत्राट की बफ़ाकारी से दूर किया और उन्हें दूसरा नाना साहब समझा गया।

1857-1907¹ नाना साहब लाजपत राय। फिर भी लाजपत राय न जब भारत सरकार को प्रतिवेदन भेजा, तो उसमें सत्य ही लिखा कि उन्हें सैनिका से मिलने का बभौ अवसर ही नहीं मिला। और सरकार के पास इसके विपरीत कोई प्रमाण नहीं था। परअसल, इस विचार का सुझाव उनको निर्वासन से पहले नहीं दिया गया था, बल्कि बाद में दिया गया था, जब सरकार अपने शिकार ब्यक्तियों के विरुद्ध कोई प्रमाण खूब रहा था। इस बातको पहला झलक मिट्टा मौलौ बिठठी पक्षी में मिलती है—क्याकि उस समय के भारतीय इतिहास के बारे में यह स्रोत पुस्तक है—

मिट्टा न 29 अगस्त को मौलौ को पत्र में लिखा

— " मुझे डर है कि जहाँ तक सेना का प्रश्न है, हमने स्थिति पूरी तरह स्पष्ट नहीं की। लाजपत राय की गिरफ्तारी से काफी बाद में जाकर हम इन बान का बवाल आया है कि सत्रा के स्वदेशी अधिकारियों तथा सैनिका को भ्रष्ट करने के प्रयत्न किये गये। मैं आपको बताया है कि इससे हमें बहुत आश्चर्य हुआ था। अब जितनी अधिक जानकारी हमें मिलती जाती है स्थिति उतना अधिक खराब दिखाई देता है।"²

मिट्टा का यह विशेष पत्र बहुत ही भयप्रद है—क्याकि मिट्टा यह बर्ताव कर रहा था कि मौलौ एक निन्दनीय समाचार पत्र कानून के लिये सहमत हो

¹ मेरो, साउथेस आफ मिट्टा इडिया मिट्टा एष मौलौ 1905-1910 पृष्ठ 151

जाये— इस पत्र की तथा इमने पीछे काम कर रहीं भावना अगल उद्धरण से स्पष्ट हो जाएगी

“यहा हमारे पास दैनिक जीवन का प्रमाण है, लगातार जानरीया ज। हम स्वदेशी साधनों से प्राप्त हानो है चैतावनिया जो स्वदेशी, अधिकार, दत्ते है हमारे अपने स्वदेशी मुखबिरा के बयान ह। यदि इसे समझ लिया जाये और इसका विश्लेषण किया जाये, तो हम बताया जाएगा कि यह केवल सुनी-सुनाई बातें है, जो केवल व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों पर आधारित है। पर तु हम उन सभी बाना की, जो सामान्यतार पर सुनने में आती हैं उपक्षा नहीं कर सकत। गदर से पहले की चर्चातिया की रहस्यमय कहानी एक चैतावनी ह। मन्तों थी, परतु प्रमाण नहीं। हमारे सामन जो ठास हकीकत है, वह स्वदेशी, रेजिमेटा, पत्रिकाआ तथा राजद्रोह। समाचार-पत्रों का प्रचलन है।

“यह तो हम बाद में ही पता चला है कि आदोलनकारी कितन जोरदार प्रयत्न कर रहे है, और इम उद्देश्य के लिए कम वेतन दरा, प्लेग की विनाश-लीला तथा अय वह कोई भी बात, जो स्वदेशी सैनिका में बफादारी के विरुद्ध भ्रष्टता फैलान में सहायक हो इस्तेमाल कर रहे है। हम जानते हैं कि ऐमा करने में वे कोई कार-बसर बाकी नहीं रहने देते। निस्संदेह युद्ध-कानून बहुत बड़ी शक्ति दता है, परतु इस समय मुझे इस बात पर खेप होगा कि किसी व्यक्ति को, उसके विरुद्ध राजद्रोह का आरोप पूणतया सिद्ध हो जान पर भा, गोली से उडा दिया जाये। मरा विश्वास है कि अब तक केवल दो व्यक्तियों के विरुद्ध सैनिक अदालत में मुकदमा चलाया गया है। जिन प्रकार से स्थिति बेकाबू हा रही है, यदि कोई बड़ी कार्रवाई की गई, तो इससे उत्तेजना हा फर्मा। हम तो केवल यही कर सकत है कि दृढता, ठडेदिल से आर सावधानों से काम ले। हमे पूरी तरह चैतावनी दी जा चुकी है जोर हमारा विचार है कि भ्रष्टाचार को आर बढन से रोकने के लिए कुछ सावधानिया बहुत हा आवश्यक ह। सेना में राजद्रोह का अगला कदम, यदि यह अगला कदम माना जाए गदर होगा, और फिर हम युद्ध कानूना का पूरी शक्ति से इस्तेमाल कर सकेंगे*” ।

1857-1907 ! चपातिया-पत्रिकाए ! माना साहब-साजपत राय ! बर्मा निर्वासन ! अंतिम मुगल बादशाह और अब पंजाब बेसुरी लासा साजपत राय माँद हम थुद्धा बाल इस उपनाम की प्रत्याशा कर !

परतु इस पत्र मे इस बात की कोई प्रत्यक्ष चर्चा नहीं की कि साजपत राय न बफा दार सैनिको को वरगलान का प्रयत्न किया हो, इसके विपरीत पत्र यह व्यक्त करता है कि ये प्रयत्न उनकी गिरफ्तारी तथा निर्वासन के बाद किये गये । इन प्रयत्नो का मूल्यांकन करते हुए मिटो निस्संदेह अतिशयोक्ति से काम ले रहे थे, क्योंकि 57 के गदर की अग्र-गताब्दी के कारण एग्लो इंडियन सोसा म फली बब राहट से वह भी प्रभावित था । परतु यह स्वीकार किया जा सकता है कि साजपत राय के निर्वासन के विरुद्ध भारतीयो मे सबध्यापी नाराजगी फैल गई थी आर यह नाराजगी कुछ हद तक छावनिया मे भी जा पहुची थी, जिनके धारे मे विश्वास था कि वे राजद्रोह और गर-वफादारी से बिल्कुल सुरक्षित बना दी गई थी ।

मिटो द्वारा मौलें को लिखे जिस पत्र से हम उद्धरण द रहे थे, फिर उसी की आर आत ह । इस पत्र मे हवीमुल्लाह और साजपत राय के सबध मे एक बहुत ही रोचक कहानी है

"हमे साजपत राय तथा अन्य आदोलनकारिया द्वारा अमीर के साथ किए गये पत्र व्यवहार के बारे मे कुछ असाधारण जानकारी भी मिली है । जहा तक अमीर का प्रश्न है, म इस जानकारी को कोई महत्व नहीं देता शायद ऐसे पत्रो का वह रही की टोकरी म फँक देता है, यदि उसके पास ऐसी कोई हूा, परतु इससे पता चलता है कि उसी मित्रता हमारे लिए कितनी महत्वपूर्ण है ।"*

हा, कितनी महत्वपूर्ण ! और इसी लिए ता उस बडे खच का उचित करार दिया जा सकता है, जो अमीर की याता के समय हुआ और जिस पर स्वयं कजन हैरान था ।

26. बन्द गाड़ी-अज्ञात गन्तव्य

इस बात की जानकारी दिये जान के बाद कि उह निवासन के आ अनुमार गुप्त रूप से ले जाया जा रहा है, जब साजपत राय से पूछा कि अज्ञात गन्तव्य के लिए रवाना होने से पूर्व क्या वह किसी से मिलना चाहा तो इस पक्षकक्ष को तुरत ठुकरा दिया गया। दरअसल, वह इस बात से प्र कि सारी घटनाए इतनी सफाई से हा रही हैं कि भारे घरेलू "दृश्य" आर "क के किनारे पर" रोन सिसकने का अवसर आने का प्रश्न ही नहीं, यथा प्रकार इस अजीब जोखिम के लिए रवाना होने से पहले वह घर से बिस्त्र बदलने के लिए अपन कपडा के जाडे भी नहीं ले मके थे।

जब उनसे यह पूछा गया कि क्या वह किसी का कोई पत्र देना चाहत। उहोने इस प्रस्ताव का प्रसन्नतापूर्वक लाभ उठाया। जो दो पत्र उहोने लिखे उनमे में एक अपन मित्र, द्वारकादास का लिखा, जिसम कहा गया थ कुछ मुकदमा की आर, जो वह छाडकर जा रहे ह, तुरत ध्यान जाये। उहाने दृढतापूर्वक निर्देश दिया था कि हर मुकदमे क सबष में, उनका मुकविकल्प कल्पिक व्यवस्था से सतुष्ट न हा, ता उसे उसकी फीस दी जाये। करेसी नाटा की जा गही उनकी जेब मे थी, वह उहोन पत्र के गयी कर दी, परतु जब उहे पता चला कि यह राशि वह अपने पास रख ह, तो उहान यह करेसी नाट रख लिए और पत्र की समाप्ति पर इस म लिख दिया। पत्र की समाप्ति उहाने अपने मित्र को यह कहत हुए क वह उनके बार में बिल्कुल चिंता न कर, क्याकि वह भगवान के हाथों में और जा कुछ वह कर रहे ह बहुत अच्छा है।

दूसरा पत्र उहान प्यारे लात का लिखा। उनके श्रच्चा म से उस समय के वही लाहौर मे थे। इस पत्र मे 'वेवल उमी से मैं अपनी गिरेफ्तारी के का चर्चा की थी और यह इच्छा व्यक्त की थी कि मेरी अनुपस्थिति में वह मेरे क आदेश का पालन करे, उहे सात्वना दे और उनकी सुख-सुविधा का ध रखे।' उहोने यह इच्छा भी व्यक्त की कि पुलिस के द्वारा उका विस्तरा। कुछ कपडे भेज दिए जाय।

य आरंभिक काम पूरा हुए। साजपत राय का बताया गया कि वह डिप्टी कमिश्नर के साथ उसकी मोटरकार में जाये, जो बाहर निकाल ली गई थी। डिप्टी कमिश्नर माट न चालक का स्थान संभाल लिया और पुलिस कन्तान रुडल, जो रिवाल्वर से लम था, उसकी बगल में बैठ गया। पिछला सीट पर बंदी और पुलिस का एक यूरोपियन सब-इंस्पेक्टर बैठे। यह विन्कुल अग्नेज व्यवस्था थी, किसी भारतीय पुलिस अधिकारी, यहां तक कि भारतीय ड्राइवर का भी यह गुप्त काय नहीं सापा गया। बार मालवाग में से गुजरा, अपर माल पर पहुंची तथा नहर का पुल पार करके छावनी पहुंची। बहुत ही असाधारण स्थिति के लिए व्यापक सैनिक प्रवर्ध किए गए थे। यहां तक कि तापमान भी बाहर निकाला गया था और उसका प्रदर्शन किया जा रहा था।

माटरकार एक यूरोपियन चाकी के मामले रही और बंदी से उतारने के लिए कहा गया। उसके लिए एक काठरी का ताला खोला गया जिसमें उन्हें 9 मई की रात 6 बजे तक रखा गया। काठरी के आगे ब्रिटिश सैनिक बारी-बारी से पहरा दान रहे। बंदी से खाने पीने की आवश्यकता के बारे में पूछने पर जब उन्होंने नहीं, धर्मवाद का उत्तर दिया, तो डिप्टी कमिश्नर तथा पुलिस कन्तान वहां से चले गये।

अपनी गिरफ्तारी के एक घंटे के अंदर ही वह अपने भविष्य के बारे में साचने के लिए अकेले रह गये। 'सकड़ी के तहत भी बनी जेल की 'टामा ऐंटेकिन' चार्लफोर्ड पर अपने आपको आराम से टिका लेने के बाद मैं आम निर्गोपण की प्रिया आरंभ की।' पहली बात जिसके लिए उन्होंने आभार मन्त्रोक्त किया, यह उनकी शुक्रविन्मती थी कि गिरफ्तारी के समय वह उन "दुर्ग का दर्शन से बच गये क्योंकि न जिन्ना, न बीबी आर. ए. वार्ड यन्त्रा उन समय उपस्थित था। दुर्गरी बात जिसके विषे उन्होंने परमात्मा का धर्मशास्त्र किया यह यह कि उनकी मा का दर्शन हा चुका था।

अपना पिता के बारे में यह कहा है मुझे उनका चरित्र के गंभीर ज्ञान का सुभाष्य के समय न पवरात के स्वभाव में इतना पक्का विश्वास था कि उनकी नर्तिका का विचार मेरे मन पर कभी अजिब बाधा न बना। जहां तक मेरी पत्नी और यन्त्रा का प्रश्न है इस विषय में कि वे मेरे पिता के मरण के समय मेरे मन में अजिब विचार नहीं।

इम प्रकार परिवार के प्रति सभी विचारा से अपन मन का चिंता मुक्त बन के बाद, उनका आत्म विश्वासपण जारी रहा, उन्होंने लिखा

“बचपन से ही विधाना की बुद्धिमत्ता मे विश्वास रखने के कारण, मन दया कि मुझे आपात स्थिति मे स्थिर रहने में लिये काफी शक्ति शेष थी जा सभी परिस्थितिया में भारी महायता करणी। इस प्रकार गभीर रूप से आत्म-समीक्षा करने के बाद, मे इम परीक्षा में अधिक मजबूत तथा दृढ़ हाकर निकला, जितना मैं अपने जीवन में पहले कभी नहीं था। मैंने आत्म विश्वासपण का समापन परमात्मा के आगे इम प्रार्थना से किया कि यह मुझे बल दे ताकि मैं अपने पौरुष, सम्मान तथा दृढ़ व्यवहार को इन कष्टों के दारान बनाए रख सकूँ और भगवान मुझे चेतन तथा अवचेतन दुगा में रती भर भी कमजारी दिवान से बचावे रखे, जिससे मर दश के पवित्र हित को किसी प्रकार की हानि हो आर देश का अपमान हो या जिससे उस समाज का अपमान हो जिसका मैं सदस्य हूँ।”

आर वह अपनी काल काठरी में बठ सरकार की करतूता पर हम बिना न रहे सके

“अपन लाग/ का बहुत अच्छी तरह जानने के कारण, मुझे दस घात पर हसी आई कि सरकार के मुखबिरा न उसे कितनी गलत सूचना दी थी। परंतु इन सब कुछ के बावजूद मुझे इसमें विधाता का हाथ दिखाई दे रहा था। जो फैले हुए काले घार बादला के अधियारे में एक स्पहली किरण दिखा रहा था देश के भविष्य के बारे में, जा उन शक्तियों के गतिहीन हान से और उज्ज्वल हो गया था जिन शक्तियों ने भारत का काफी सखी अवधि से दासता के बधन में बाधा हुआ था।”

शाम के छ बजे के करीब कदी न ताल में चावा धूमन की आवाज सुनी, जब दरवाजा खुला ता उ हें रुठल दिखाई दिया, उसक साथ एक अन्य यूरोपियन अधिकारी तथा एक मुसलमान इस्पेक्टर या सब इस्पेक्टर था। स्टल कैदी का अपनी हिफाजत में लेकर एक माटरगाडी में गया और मिण. मीर (उन दिना लाहौर छावनी-पश्चिम स्टेशन का यही नाम था) रेलवे स्टेशन के सनिक भाग तक पहुंचाया, वहा रेलवे लाइन पर एक विशेष गाडी उस दल की प्रतीक्षा कर रही

थी। गाड़ी खाना हान से पूव रुडल ने बताया कि उनके पत्र पहुँचा दिए गये ह। उसके बाद उमने विदा वही, गाड़ी ने गीटी दी आर खाना हो गई। लाजपत राय अपने लाहौर का अलविदा कह रहे थे, परतु जिस प्रकार उहोने लिखा है, उहें यह विश्वास बिल्कुल नही था कि 'यह लाहौर को मेरी अतिम विदा है।' किसी न किसी प्रकार वह यह महसूस कर रहे थे कि उनका भाग्य नाम-धारी गुप्त से भिन्न होगा।

कई मामूली बप्ट, जिनके बारे मे राजनीतिक बँदी बहुत सवेदनशील होत है, गाड़ी के खाना होते ही आरभ हो गये। मुख्य पुलिस अधिकारी, जो सुरक्षा का इजाज था, गाड़ी मे आया और उसकी उपस्थिति मे यूरोपियन पुलिस इस्पक्टर ने दोबारा तलाशी ली। जेब की नबदी, मोने की घड़ी तथा जजीर ले ली गई, ताकि यात्रा के जत तक उहें सुरक्षित रखा जा सके। पुलिस अधिकारी ने खेद व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया उसे 'मेरे विरुद्ध यह कारवाई मजबूर होकर आत्मरक्षा के लिए चरनी पडी है।'

पुलिस अधिकारी ने लाजपत राय का आश्वासन दिया कि सरकार का प्रस्ताव उनके साथ ठीक ढग मे बताया करन का है। उसने अपनी बात मे ऐसा सकेत भी दिया, जिसे लाजपत राय के इस अहसास की पुष्टि होती थी कि वह लाहार को सदा के लिए अलविदा नही कह रहे थे, यद्यपि महत्वपूर्ण नीति के बारे मे निणय के लिए किसी पुलिस अधिकारी का विश्वास मे लिए जान की सभावना नही हाती।

पुलिस अधिकारी ने यह भी बताया कि वह अपन खाने के व्यजना की सूची स्वयं दे सकने है, सुरक्षा कर्मचारियो मे दो हिंदू पुलिस कास्टेबल भी थे जो उनके लिए सहायक हो सकत थे और इस्पेक्टर को यह आदेश दिया गया था कि वह उनकी सुविधा का ध्यान रखें। समूचे तौर पर यात्रा मे उनका अच्छी तरह ध्यान रखा गया।

मुगन सराय म नदी का लिवाम तबदील करन के लिए नया जाडा खरीदा गया, क्यकि उनका अपना विस्तर तथा कपडे उनके साथ नही, बल्कि बाद म आने बाने थे। इस बात को आरभ से ही स्पष्ट कर दिया गया था। एक इस्पेक्टर वहा के बाजार मे ही एक दुर्ता तथा एक पाजामा खरीद लाया। फिर भी गाड़ी के ठहराय का प्रोत्साहन नही दिया जाता था और रत्ने कर्म

बंद गाड़ी-अज्ञात गतव्य

चारिया को यह बताया जाता था कि यह रेलवे बोर्ड की विशेष गाड़ी है जो जिन स्टेशनो पर गाड़ी रूकती ता पुनिस गाड के सभी बर्मचारियों को जिनमे मुसलमान सब इगपेक्टर और छ मुस्लिम वास्टेवन, एक हिंदू भाउटे वर एक हिंदू वास्टेवन थे—इस तरह कड़ी निगरानी रखी जाती थी, जैसे जैसे कैदी हा, जिसे भाग जान का सदेह हो।

“पजाय भ मार माग पर गाड़ी की खिडकिया बंद रहीं, पन्तु डर-डर हलचल रेलवे स्टेशनो के बीच मुझे खिडकिया के बाहर से बाहर की दृश्या दे दी गई।” कैदी का यह सफर अधिक कष्टमयक रंगे था, सन्धि तापमान ज्यादा था। उनके लिए एक पखे नया पन्ना-कृमों की सज्जा कर दी गई। और अब तक तो वह किसी हद तक मारवाणों का रई-उत्तम कर्म है।

“मुझे कई थप पुराना अनिद्रा रोग था। पन्तु डर-डर रंगे रंगे अवस्था का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मैं बहुत डरने वाला था और मेरे पहरेदारों को फिरीर स्टेशन पर मुझे कुछ सज्जा देना पड़ा।”

थी। गाड़ी खाना हान स पूव रडल न बताया कि उनके पत्र पहुँचा दिए गये ह। उसके बाद उमने विदा कही, गाड़ी न मीठी दी और खाना हो गई। लाजपत राय अपने लाहौर का अलविदा कह रहे थे, परंतु जिम प्रकार उहने लिखा है, उन्हें यह विश्वास त्रित्युल नहीं था कि "यह लाहौर को मेरी अंतिम विदा है।" किसी न किसी प्रकार वह यह महसूस कर रहे थे कि उनका भाग्य नाम घाटी गुरु से भिन्न होगा।

कई मामूली कष्ट जिनके बारे में राजनीतिज्ञ कंदी बहुत सवेदनशील होते हैं, गाड़ी के खाना होते ही आरंभ हो गये। मुख्य पुलिस अधिकारी, जो सुरक्षा का इंचार्ज था, गाड़ी में आया और उसकी उपस्थिति में यूरोपियन पुलिस इस्पेक्टर ने दोबारा तलाशी ली। जब की नकदी, सोने की घड़ी तथा जजीर ले ली गई, ताकि यात्रा के अंत तक उन्हें सुरक्षित रखा जा सके। पुलिस अधिकारी ने खेद व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया उसे "मेरे विरुद्ध यह कारवाही मजबूर होकर आत्मरक्षा के लिए करनी पड़ी है।"

पुलिस अधिकारी ने लाजपत राय का आशवासन दिया कि सरकार का प्रस्ताव उनके साथ ठीक ढंग से बर्ताव करने का है। उसने अपनी बात में ऐसा संकेत भी दिया, जिससे लाजपत राय के इस अहसास की पुष्टि होती थी कि वह लाहौर को सदा के लिए अलविदा नहीं कह रहे थे, यद्यपि महत्वपूर्ण नीति के बारे में निगम के लिए किसी पुलिस अधिकारी को विश्वास में लिए जान की समावना नहीं होती।

पुलिस अधिकारी ने यह भी बताया कि वह अपन खाने के व्ययना की सूची स्वयं दे सकने ह सुरक्षा कमचारियों में दो हिस्स पुलिस कास्टेबल भी थे जो उनके लिए महायक हो सकत थे और इस्पेक्टरों को यह आदेश दिया गया था कि वह उनकी सुविधा का ध्यान रखें। समूचे तौर पर यात्रा में उनका अच्छी तरह ध्यान रखा गया।

मुगल सराय में कंदी का लिवाम तयदील करन के लिए नया जाड़ा खरीदा गया, क्योंकि उनका अपना विस्तर तथा कपडे उनके साथ नहीं, बल्कि बाद में आने वाले थे। इस बात को आरंभ से ही स्पष्ट कर दिया गया था। एक इस्पेक्टर वहाँ के बाजार से ही एक कुता तथा एक पाजामा खरीद लाया। फिर भी गाड़ी के ठहराव को प्राग्गहल नहीं दिया जाता था आर रेलवे यम

चारिया ने यह बताया जाता था कि यह रेलवे बॉर्ड की विशेष गाड़ी है और जिन स्टेशनना पर गाड़ी रुकती, तो पुलिस गाड़ के सभी कर्मचारिया पर—जिनमे मुसलमान मच इसपेक्टर और छ मुस्लिम कास्टेबल, एक हिंदू मार्जेंट तथा एक हिंदू कास्टेबल थे—इम तरह बड़ी निगरानी रखी जाती थी, जैसे वे ऐसे बंदी हों, जिनके भाग जाने का मदेह हो।

“पचास म सार भाग पर गाड़ी थी खिडकिया बंद रखी गईं, परंतु अवध-रूहलपठ रेलवे स्टेशनना के बीच मुझे खिडकिया के शीशे नीचे गिराने की आज्ञा दी गई।” बंदी को यह मकर अधिब कष्टदायक नहीं लगा, यद्यपि तापमान ज्यादा था। उनके लिए एक पखे तथा पखा कुली की व्यवस्था कर दी गई। और अब तक तो वह किसी हद तक लापरवाही का रवैया अपना चुके थे।

“मुझे कई बप पुराना अनिद्रा रोग था। परंतु उन रात को मेरी मानसिक अवस्था का अनुमान इम बात से लगाया जा सकता है कि मैं बहुत गहरी नींद सोया और मेरे पहरेदारों का फिन्नीर स्टेशन पर मुझे कुछ गरम दूध वा क लिए जगाना पडा।”

प्रात काल गाड़ी की यात्रा डायमंड हाबर पहुंचन पर समाप्त हो गई। मुख्य पुलिस अधिकारी, जो इजाज था, उनके पास आया और पूछने लगा कि क्या वह बता सकते हैं कि वह कहा है? क्या वह अनुमान लगा सकते हैं कि उन्हें कहा ले जाया जा रहा है? उन्होंने बताया कि वह स्टेशन को जानते हैं, क्योंकि वह एक बार पहले यहा आ चुके हैं और संभवत उन्हें रगून या माडले ले जाया जा रहा है। यह बात सुनकर वह अधिकारी अवश्य ही आश्चर्यचकित हुआ होगा, क्योंकि अब तक उनके गतम्य स्थान को उनमें बड़ी सावधानी के साथ गुप्त रखा गया था।

डायमंड हाबर पर एक नौघाट स्टीमर में बंदी को तथा उनके पहरेदारों को सवार कराया गया। और उठे सरकारी स्टीम शिप ‘गाइड’ पर सवार करवाया गया। परंतु रेलगाड़ी से उतरने से पहले उनकी सजा के चारट पर पह चान के तीर पर उनका अगूठा लगवा लिया गया।

उन्होंने पूछा कि क्या वह अपने लोभा को तार भेज सकते हैं, परंतु आज्ञा न दी गई। परंतु उन्हें पत्र लिखने की अनुमति दे दी गई और उन्होंने अपने पिता को एक पत्र लिखा (जा किसी कारणवश नहीं मिला) और एक पत्र अपने पुत्र चमारे छाल को लिखा, जिसमें कहा गया था

“मैं तो जो बन आयी उसने लिए तैयार हा गया हू । अपने दादा और मा का ख्याल रखना । उनका बहा मानना, उन्हें मा त्वना देना और विशेष तौर पर अपनी विधवा बहन और उसने नहें पुत्र का ध्यान रखना । अपने चाचाआ के माय अच्छी तरह रहना और अपने कष्ट को माहम से महन करना ।”

पजाब पुलिस के उप मुख्य अधिवारी ने अब अपन बंदी के बयाल के बरिष्ठ पुलिस अधिवारी को मौप दिया, वह जहाज पर मवार करा दिये गये तथा उसने अलविदा कहा । उसकी अन्तिम टिप्पणी प्रश्नजनक थी “आप भारत छोड रहे हो, देखे आप कब लौटते ह ।”

यूरोपियन पुलिस इसपेक्टर तथा पजाब की पुलिस का पहरा जारी रहा । परन्तु पहरेदारो का नया प्रमुख उनके प्रति पहले प्रमुख से कम विनम्र था, क्योंकि यह व्यक्ति अपनी मारी विनम्रता और ध्यान यूरोपियन इसपेक्टरो के लिए ही आरक्षित रखता था ।

स्टीमर पर रिहाइश की व्यवस्था को लेकर एक छोटी सी समस्या खड़ी हो गई । कैप्टन ने बताया कि केवल जहाज के तलघर म स्थान खाली है । परन्तु पुलिस का यूरोपियन इसपेक्टर उसे एक ओर ले गया और उसे दो कैबिन देने के लिए सहमत कर ही लिया । एक अपने लिए और दूसरा यूरोपियन सब इसपेक्टर के लिए । बंदी, मुस्लिम सब इसपेक्टर तथा कास्टेबला मे बहा गया कि वे उस बंदबूदार तलघर मे चले जायें । उनसे कहा गया कि वे उस स्थान पर अपनी सुख का व्यवस्था-इनजाम कर लें, परन्तु लाजपत राय ने इस अयाय को स्वीकार नहीं किया । उन्होंने विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि कानून के अनुसार सरकार अपने बंदी के लिए उसकी प्रतिष्ठा और जीवन स्तर के अनुसार उचित म्यान देने के लिए बाध्य है । इसने इसपेक्टर की आखें खुन गई ।

“परन्तु उमने मुझसे कहा कि मैं कुछ समय के लिए तलघर मे चला जाऊ और तब तक वह कप्तान मे मिनकर मेरे लिए उचित म्यान की व्यवस्था करता है ।

कप्तान के पास सबमुब ही और कोई जगह नहीं थी और कोई एक घंटे के बाद इसपेक्टर वापम आया और उमने बताया कि जो कैबिन यूरोपियन सब इसपेक्टर के लिए था, वह लाजपत राय को दे दिया गया है । “परन्तु वह कैबिन मेरे लिए किमी काम का न था, क्योंकि मैं जितनी देर स्टीमर पर रहा, उसने डक पर ही बना रहा ।”

स्टीम शिप 'गाड्ड' डायमण्ड हाबर मे 12 तारीख को डाउट म पहुँचे ग्याना हूआ और 15 तारीख को दोपहर बाद अपन मन्व्य म्यात गुगा पहुँच गया । रास्ते म मौसम काफी खराब रहा था और जब जगाज न मगर टामा, टा समय वर्षा हा रही थी आर कप्तान भी मौसम क ममान ही अकतट दा । मा जानते हुए कि कौन्सी कौन था, उमने एक् टा बार कौनी क साध गजर्नाति के बाए म वानचीत मुरु कर्नी चाही ।

परन्तु जब उसन 'बन्ने मातरम्' के समयकों नया सुरङ्गाद बनर्गी का माटी भोटी गालिया देनी आरम्भ कर दी, ता मने बातचीत बीच मे ही बन्द कर दी, ताकि वह समझ सके कि म और बातचीत नहो करना चाहा ।'

कप्तान का रमोहए की मुकाम म निर्गट बन हुए गुगा दया था । निरपय ही ऐमा देखकर राजपत राय का मन नमम आर बातकन का न हजम ।

पुलिस इन्स्पेक्टर न स्टीमर पर भी कौनी पर दाग गया । इमथे मादपल राय को मजाक सूझा और उहोंने हमउ हुए कान सुरङ्गित म कहा कि उमका अपन आपका सागर म दुबोले का बार्द विचार कही कर्नाट का अदम री, वन क । अपन लिए तथा अपने लोगा के निग टमन कही कर्नाट सुरङ्गान मउमने के, निमना कि वह सरवार तथा अधिनागिया क जि के ।

“बर्मा मे मेरे मन मे निराशा की कोई ऐसी भावना नहीं थी, जो किसी पराए देश मे जाने के समय सभव हो सकती है। मैं सभी भारतीयो के चेहरो पर स्नेह की भावना मे देखता था, चाहे वे हिंदू थे या मुसलमान, पजाबी थे या बंगाली ग मद्रासी। मेरे लिए तो वे सभी मेरे अपने लोग थे, वे मेरे साथ एक बघन से बधे हुए थे, जो उम समय किसी भी अय बघन के मुकाबले अधिक प्रिय तथा मजबूत दिखाई पडना था। आगे और पीछे पूरी तरह पहरे मे पुल के नीचे से गुजरते हुए मैं एक अच्छे लिबास वाले पजाबी भद्र पुरुष के पास से गुजरा, जिहने मुझे तुरत पहचान लिया। अनजाने मे ही मुझे उनके चेहरे पर निराशा और दुख के बादल दिखाई दिये। मैंने उनकी सलाम का उत्तर आब सपका कर दे दिया।”

अपने और पहरेदार के लिए आरक्षित पहले दर्जे के डिब्बे से उन्होंने देखा कि उसमे पिछले डिब्बो मे “अनेक पजाबी सिख पुलिस की बर्दी पहने हुए सवार थे, जो मेरी ओर उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे और कुछ जोश से बातें कर रहे थे।” परतु शीघ्र ही उनके डिब्बे की खिडकिया बंद कर दी गई और यह दृश्य उनकी नजरा से छप गया। यह एहतियात प्रत्येक स्टेशन पर बरती जाती थी। उस यात्रा मे कोई घटना नहीं हुई। “सिवाय आदर सकेतो तथा दुख के जो उनके पहरे पर नियुक्त कमचारियो मे शामिल मुसलमान कास्टेबल ने व्यक्त किया था।” लाहौर से माडले तक की यात्रा के बारे मे वह लिखते हैं कि पहरे पर नियुक्त हिंदू तथा मुसलमान कास्टेबल ने बुरापाण बरताव किया। स्टीमर पर वे उनके साथ “खुलकर” बातचीत करते थे और उनके सम्बन्ध मे “भावनाओ की उम गहराई की चर्चा है, जो उस युवा मुसलमान दुर्भाग्य पर गहरा दुख व्यक्त करते हुए” इस पर लगभग रोते हुए उनमे अपनी तथा अपने देशवासियो के बेसहारा होने की भावनाओ की बडे गहरे और सही अर्थों मे बर्णना के शब्दा मे चर्चा की। रेल-यात्रा के दौरान उनके एक पहरेदार ने उन्हें पेश करने के लिए अपने पैसा से कुछ बर्मा केले खरीदे और बहुत भावावेश मे आकर कहा कि ‘शायद वह अंतिम बार उन्हें देख रहे हूँ।’ उत्तर में बर्दी ने उसमे कहा “तबदीर पर निराश नहीं होना चाहिए। मेरे मन मे कोई कह रहा है कि मैं कुछ समय बाद फिर देश लौट जाऊंगा। मेरे इन शब्दो ने अपना प्रभाव दिखाया और अपनी प्रमत्तता दिखाने के लिए उम व्यक्ति ने मेरे पाव पकड लिए।” उन्होंने कहा है, “मेरे जीवन मे पहली बार भारतीय मन की महान निमलता, जिम

पश्चिमी सभ्यता का कोई दिखावा नहीं था, मेरी आत्मा के सामने अपनी पूरी शान से व्यक्त हुई थी। वह एक भारतीय था, जिसका धर्म मेरे धर्म से भिन्न था, जा गरीब किसान बग से था, जिसे परिस्थितियों ने मजबूर करके सात-आठ रुपये महीने की पुलिस की मन्त्रिय सेवा में धकेल दिया था जो मेरे साथ सहानुभूति व्यक्त करने के लिए अपनी नौकरी तथा भविष्य को खतरे में डाल रहा था।" यह शिक्षा बेअसर नहीं रही "यदि वरिष्ठ पुलिस अधिनारियों ने मेरे ऊपर पहरा रखने के लिए मुसलमान पुलिस नमचारी इसी आधार पर चुने हैं कि उनका धर्म मेरे धर्म से भिन्न है, जिसके परिणामस्वरूप वह मेरे साथ सहानुभूति नहीं करेंगे, तो उनका यह अनुमान बिल्कुल गलत निकला है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि माडले ने उनसे अलग होते समय मेरे मन ने बहुत दब महसूस किया।"

माडले में एक सुखद आश्चर्य हुआ। रेलवे प्लेटफार्म से लोगा को हटा दिया गया था, परन्तु अब तक यह बात गुप्त नहीं रही थी कि पजाब के एक प्रमुख नेता को वर्मा लाया गया था। जब वह प्लेटफार्म पर उतरे, तो "वह देख सकते थे कि अनेक पंजाबी मित दरवाजा तथा छिड़कियाँ की ओट से उन्हें देख रहे थे।" वह मुश्किल से रेलवे स्टेशन में बाहर आये ही थे कि वह यह देखकर हैरान रह गये कि लोक सेवा सभ, पूना के जी० के० देवधर उनके पाव छू रहे हैं। बेसमय पुलिस अधिनारियाँ ने इस स्नेह और सम्मान को कंड़ी को छुड़ाने का प्रयत्न समझा, 'इसलिए इन्स्पेक्टर ने मुझे बाजू से पकड़ लिया तथा यूरोपियन साजेंट ने मुझे पकड़ते हुए उसे मेरे पास से उठाकर अलग कर दिया।"

27. माण्डले

पूर्व तथा पश्चिम दोनों में वर्मा का नाम प्रमत्ततादायक है तथा चमकदार रंगों और रोमांच का चित्र उत्पन्न करता है। माण्डले वह बदकिस्मत राजघाती है, जिसका अस्तित्व विस्तृत क्षणप्रभा रहा है और उसने नारकीय पड़्यता और जारदार भावनाओं के वे रंग देखे हैं, जो वर्तमान स्मृति में अद्वितीय हैं। गणगण अब भी रानी सुप्तायात और राजा थीबा की कहानियाँ सुनाई जाती हैं, जिन्हें राजगद्दी से उतारकर निर्वासित कर दिया गया था। यह कोई एक चौथाई शताब्दी पूर्व की ही तो बात है। यह राजमहल अब भी दुग के अन्दर एक बड़े चौक में बना हुआ है। इसका मुलम्मेदार फर्नीचर तथा सुंदर पर्दे आदि तो लूटे जा चुके हैं, परन्तु इसके राजकीय दिना की सुगंध का कुछ अंश अब भी हवा में फैला हुआ है और सायकाल की भूतही चुप्पी, इसके घाली और घुघले कमरों में फैला हुआ ठग से ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण के इतिहास के छोटे से अध्याय बता सकती है।

इस दुग में, जिसके राजकीय शासक को दो दशक पूर्व निर्वासित कर दिया गया था, अब दूर-दराज पंजाब से निर्वासित व्यक्ति आ गया। पुरानी गाड़ी, जिसमें लाजपत राम को रेलवे स्टेशन से सवार कराया गया और जिनकी सुरक्षा के लिए रंगून पुलिस का सहायक आयुक्त नियुक्त था (इसके अतिरिक्त लाहौर से आया यूरोपियन इंसपेक्टर तो था ही), टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होती हुई, माण्डले के भीड़भाड़ वाले रास्तों से बचती-बचाती अन्त में दक्षिणी द्वार से दाखिल हो गई। शाही महल तथा शाही मकबरो को पीछे छोड़ती हुई, यह गाड़ी, ईंट से बने, टाइला की छत वाले सावजनिक निर्माण विभाग के बगले के सामने आकर रुक गई।

एक यूरोपियन अधिकारी को, जो माण्डले में जेल का अधीक्षक था, पूछ सूचना दे दी गई थी और उसने अपने नये कैदी को उचित ढंग से प्राप्त किया। उसने लाहौर से आये पुलिस इंसपेक्टर को अंतिम तौर पर जिम्मेदारी से मुक्त किया और उसे कैदी तथा उसके सामान की, जिसमें 350 रुपये के करसी नोट, साने की घड़ी तथा जजीर शामिल थे, सरकारी रसीद दे दी।

धूप से सिक्की बड़ी-बड़ी ईंटों वाली ऊँची दीवार का रंग पुराने गुलाब जसा था। इसके चारों ओर खाई बनी हुई थी, जिसके शात पानी में, जो रखा हुआ नहीं था, घने वृक्षों का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था। दीवार में थोड़े थोड़े फासले पर बगूरे

तथा युज बने हुए थे, परन्तु यह कगूरे किसी विलास उद्यान के बुजों के समान दिखाई देने थे और बुजों में मामवान के बने मण्डप थे, जो ऐसे दिखाई पड़ते थे, जैसे वे किसी युद्धप्रिय मन की कल्पना नहीं, बल्कि कल्पना शोक की उपज हो। यह दुग अपने ही ढग से महान तथा सुन्दर था, परन्तु यह दुग, दुग की धारणा पर पूरा नहीं उतरता था—थोड़ा सा सिंह के समान, लेकिन ऐसा नहीं जा उदयपुर में देखा जा सकता है या शिवाजी के पुरघरपुर के दुग में। निर्वासित व्यक्ति की पहली नज़र इस दुग में देखने पर निराशा सी हुई— “यह कोई प्रमुख मजबूत दुग नहीं था, जिसकी ऊँची ऊँची दीवारें हों, बल्कि ऐसी सादा सी इमारत, जो शहर के अग्र भागों के समतल थी तथा जिसके चारों ओर ऊँची दीवार तथा गहरी खाई थी।”

इस सबके अतिरिक्त खुले मैदान थे, पास थी और बयूल के ऊँचे वृक्ष और इमली के अनेक शानदार वृक्ष थे।

अधीक्षक नये कदी को पहली मजिल पर ले गया और उसे दो बड़िया हवादार तथा रोशनी वाले, काफी खुले कमरे दिखाये, जो फिलहाल उनके इस्तेमाल के लिये रखे गये थे, जब तक उनकी स्थायी रिहाइश की व्यवस्था नहीं हो जाती। कमरों में एक मेज, दो-तीन कुर्सियाँ, निवाह की बनी एक चारपाई, दो जोड़े जैल के कम्बल और लगभग इतनी ही सख्या में सफेद चादरें, दो बर्तियाँ ‘कालीन’ कमरों की सजावट में घुड़ि कर रहे थे, मे रंग बिरंगी पट्टियाँ-सी थी, असल में वे कालीन नहीं, कतरने थी, यद्यपि वे फरा की सम्झाई से अधिक सम्बन्धी थी, पर उनकी चौड़ाई 6 इंच से भी कम थी।

रसोई की एक समस्या थी। दुर्ग के अधिकारियों ने उनके लिये “भारतीय” भोजन की व्यवस्था की थी, जो असल में एंग्लो-तमिल भोजन था, जिसे एक दक्षिण भारतीय तैयार करता था। पंजाबी कदी को यह अधिक अनुकूल नहीं था, इसलिये एक सिख रसोइए की व्यवस्था की गई। परन्तु यह प्रयोग बिल्कुल असफल रहा। सिख किसान की स्पष्टवादिता तथा निष्पटता के साथ उस कथित रसोइए ने स्वीकार कर लिया कि उसने यह नौकरी तो इस लालच में आकर स्वीकार कर ली थी कि वह इतने महान व्यक्ति के दशन कर पाएगा और उसे कोई लालच नहीं था। दूसरे रसोइए की कुशलता होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। पंजाबी भोजन का प्रयोग बहुत ही निराशाजनक असफलता थी और दो दिन के बाद उन्होंने फिर एंग्लो-तमिल भोजन खाना आरम्भ कर दिया, जो कथित पंजाबी रसोइए द्वारा बनाए गए कथित पंजाबी पकवानों के मुकाबले बहुत ही स्वादिष्ट लगता था।

अधीक्षक के बगले के दो कमरे केवल दो दिन के लिये साजपत राय का निवास बने। उसके पश्चात् वह महल की नहर के पार, सावजनिक निर्माण विभाग के बगले में चले गये, जो शाही उद्यान के उत्तर की ओर था। इस बगले तथा शाही उद्यान के बीच पक्की सड़क थी, जो सावजनिक तौर पर खुली थी। सड़क का अपना इस्तेमाल था, क्योंकि मुपरिंटेंडेंट ने उन्हें पहने ही समझा दिया था कि वह बगले में कास्टेबल की नज़रो के सामने घूम सकते हैं। सभी भारतीय राहगीर, विशेषकर पंजाबी सड़क से गुजरते समय, मादर अभिवादन करते थे, जब वह अपने पहने दो दिनों की रिहाइश में ही थे।

नया बगला एक आधुनिक इमारत थी, जो लकड़ी तथा ईंटों की बनी हुई थी— यह दो मजिला इमारत थी, जिसकी दोनों मजिला को बीच में दीवार बनाकर विभाजित किया गया था, ताकि उनमें दो परिवार रह सकें। ऊपरी मजिल का पश्चिमी भाग साजपत राय को दिया गया था। इसमें दो कमरे थे, जो एक बरामदे में खुलते थे और एक गुमलखाना था, जो सेहन में लकड़ी की सीढ़ी से मिला हुआ था। पहली सीढ़ी के पास पहरे पर नियुक्त यूरोपियन सार्जेंट के लिए एक छाट तथा मेज थी, ताकि उसकी जानकारी के बिना कोई भी व्यक्ति सीढ़ी का इस्तेमाल न कर सके। कमरे में भोजन के लिए एक मेज, मास के लिए अलमारी, पढाई की मेज, बैत की आराम कुर्सी, दफ्तरी कुर्तिया, तिपाइया, कपड़े रखने के लिए एक अलमारी और मच्छरदानी लगा पलंग था। लकड़ी का बना पंखा तथा, सिवाय बर्मी बालीन की 6 इंच चौड़ी तीन पट्टियाँ के। रात के समय कमरे में दो मोमबतियाँ में प्रनाश व्यवस्था होती थी और बाद में पढाई के लिए मिट्टी के तैल के एक लम्प की व्यवस्था कर दी गई।

उनके साथ बहा और कोई कैदी नहीं था, उनके साथी तो केवल वही व्यक्ति थे, जो उनकी सेवा आदि के लिए अधिकारियों ने नियुक्त किए थे। दक्षिण भारतीय रमोद्रया, उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखने के लिए 25 रुपये मासिक बैतन पर रखा गया। एक अन्य नौकर कपड़े धाने के लिए, भिश्ती, तथा सफाई सेवक, जो दिन में दो बार आते थे। कुछ सेवाओं तथा वस्तुओं के लिये बँदी को स्वयं घबराना पड़ता था और कुछ नौ अधीक्षक न एयांशी की वस्तुएँ वहकर अस्वीकार कर दिया था। इनकार करने की इस छेड़छाड़ के कारण कुछ सीमा तक शोक भी हुआ।

ऐसे ही छोटे छोटे अन्य कष्ट भी थे। यद्यपि बंदी ने अधीक्षक को पहने प्रभाव में सहयोग करने वाला और प्रीतिवर्क व्यक्ति समझा था। अधीक्षक ने उन्हें

विश्वास दिलाया था कि उचित ध्यान तथा महत्व दिया जाएगा। उसने अपनी पुस्तक पढ़ने के लिए उधार दी—जस्टिन मैकार्थी की 'रैमिनिसेंसिज' आर एक ऐंग्लो बर्मी पुस्तिका और यह सुझाव भी दिया कि वे बर्मी भाषा सीखने में अपना समय लगाए। वह एक डाक्टर था, इसलिए उसने उाका निरीक्षण किया। उन्हें दवाई तजवीज की, उनके साथ नम्रता का बरताव किया तथा उचित ध्यान दिया। परंतु अधिक समय के लिए स्थिति सुखद न रही। अधीक्षक पंजाब में लाजपत राय के स्तर के लागा व तौर-तरीकों के बारे में निराशाजनक हृद तक अनजान था। कंदी की देखभाल में पुलिस अधीक्षक भी भागीदार था, जो अपने आपको इस कार्य के लिए बराबर का जिम्मेदार समझता था, उसका एक रसोइया था, जो सदा ही अवसर की तलाश में रहता था कि अपना महत्व जता सके, विशेष तौर पर कंदी के लिए खच किए जाने वाले धन के मामले में। एक बड़े गभीर मामले को लेकर समस्या खड़ी हो गई, जो सवैधानिक तथा हजामत से सम्बद्ध थी, तुम पढ़ते हैं

“एक हजामत से कहा गया कि वह हर तीसरे दिन मेरी हजामत बनाया करे। पहला महीना बीत जाने पर वह हजामत मेरे पास आया और उसने मुझसे अपना घेतन मांगा। मैंने उससे कहा कि जेल के अधीक्षक ने उसे नियुक्त किया है। इसलिए वही घेतन देगा। हजामत ने कहा कि अधीक्षक का कहना है कि उसकी सेवाओं के लिए मैं घेतन दूँ। मैं उस तब तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा, जब तक इस मामले में मैं साहय के विचार में जान लूँ।” जब अधिकारी ने पूछा कि हजामत का उसका घेतन क्या नहीं दिया गया, तो उसे उत्तर मिला कि यह अदायगी सरकार का करनी है क्योंकि “1818 के अधिनियम के अधीन मेरे जीवन स्तर के अनुसार मेरे जीवन निर्वाह का खच सरकार का देना होगा।” अपने कानूनी अधिकारों पर उनकी जिद “भद्र पुरष के लिए बहुत ज्यादा घात थी और उसने रफ्तता से उत्तर दिया कि वह ऐसे किसी कानून का नहीं जानता और जहां तक मेरा प्रश्न है, उसका शब्द ही कानून है। उसने यह भी कहा कि हजामत बनवाना ऐग्राशी है, जिसके लिए सरकार खच नहीं देगी, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि मैं हजामत बनवाऊँ। देश के रिवाजों के बारे में अपने पान से प्रभावित करने के लिए उसने कहा कि वह इस बात को तो समझता है कि कोई मुसलमान समय-समय पर अपना सिर मुडवाने पर जार दे, परन्तु मेरे लिए—जो एक हिंदू है—दाढी मुडवाना क्या आवश्यक है? उसने कहा कि तुम दाढी क्या नहीं बढ़ा लेते? क्या तुमने अपने देश में दाढी नहीं रखी हुई थी? यह प्रश्न थे जो उसने लगातार और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये

बिना ही मुझ पर डाल दिये।” मुझे इस बात पर उतना दुःख नहीं जब अधीक्षक न कहा कि मेरा आदेश ही कानून है, परन्तु अधिक ठेस इस बात से पहुँची, जब उसने “मेरी इस बात पर संदेह किया कि घर पर मैंने हर तीसरे दिन हजामत बनवाने के लिए एक हज्जाम रखा हुआ था और मैं अपनी बँद के दौरान सरकारी घब पर हजामत बनवाने की ऐयाशी विशेषाधिकार के तौर पर नहीं शुरू की।”

उन्होंने आय समाज के अपने कई मित्रों की तरह कुछ समय के लिए दाढ़ी रखी थी परन्तु निर्वासन से बहुत पहले दाढ़ी साफ कर दी थी।

बँदी ने हज्जाम को स्वयं उजरत दी, यद्यपि दो-तीन महीने बाद अधिकारियाँ ने अपना मन बदल दिया और इस “ऐयाशी” का पक्ष देने लगे।

साजपत राय सदा ही अच्छे भोजन के शौकीन रहे थे—अच्छे भोजन का अर्थ था वह भोजन, जो खाने में स्वादिष्ट हो। अधीक्षक का रसोइया, जिसका साजपत राय की रसोई व्यवस्था पर बहुत नियंत्रण था और जो खान्दान्य-मामूरी खरीदने समय अधिक से अधिक धन बनाना चाहता था, कभी-कभार हाने वाली गलतफहमी में अपना योगदान देता था, साजपत राय को वे सञ्जिया न मिलती, जो उन्हें पसंद थी, क्योंकि रसोइया सञ्जिया वाले सारे पैसों सीधे अपनी जेब में डाल लेना चाहता था, उसने अधीक्षक को बताया—और उसे जो बताया गया उसने उसी पर विश्वास कर लिया—कि जो सञ्जिया साजपत राय भागते थे वे मिल नहीं रही थी और यदि मिलती भी थी, तो बहुत ही महंगे दामों पर, चाहे साजपत राय ने अपनी निगरानी करने वाले साजेंट को वही सञ्जिया खाने देखा था, यद्यपि वह रसोई पर अधिक खर्च करने की स्थिति में नहीं था।

सबसे अधिक समस्या टहलने के प्रश्न पर उत्पन्न हुई। अधीक्षक न स्वयं ही, आरम्भ से साजपत राय को साजेंट की नज़र में रहते हुए टहलने की अनुमति दे दी थी। इससे थोड़ा समय बाद उसने दुःख के अन्दर पहरेदारों के प्रमुख, यूरापियन अधिकारी के पहरे में टहलने की भी आज्ञा दे दी। साजपत राय के स्वाम्य्य क हित में वह इस बात के लिए उत्सुक था कि वह प्रतिदिन दो-तीन घंटे के लिए नियमित रूप से टहलने के लिए जाया करे। डिप्टी कमिश्नर ने, जो उन्हें देखने कभी कभार आ जाता करता था इस मुझाव की पुष्टि कर दी। परन्तु साजेंट आम तौर पर दिन में उनका दो बार जाना पसंद नहीं करता था और सैर करने के तो वह विन्तुल ही विरुद्ध था। उसके पास इस सब में काफी अच्छे आधार थे, क्योंकि उन्हें बंदों में तलवारें और भरे हुए रिवाल्वर और 24 गोतियाँ गाय लेकर

जाना पड़ता था। उस गर्मी के दिना में धूप में चलना होता था और पहरें पर आने के लिए बगले से कोई तीन किलोमीटर दूर पुलिस डिपो न० ॥ से पूरी तरह मात्र सामान से सँस होकर आना पड़ता था।

एक अर्थ "मैट्रिऑनिक" बठिनाई के कारण मामला और उलझ गया।

"कैदी के तौर पर मैं जेल अधीक्षक की निगरानी में था, परन्तु मुझ पर पहरा और निगरानी रखने के लिए पहरेंदार जिला पुलिस अधीक्षक देता था और उसका विचार था कि बगले में तथा सँस के दौरान मेरी सुरक्षा की जिम्मेदारी उसकी है। इसलिए उसने उन सड़कों पर, जिनके बारे में उसने स्वीकृति नहीं दी, सँस करने पर आपत्ति की।"

जब अजीत सिंह भी निर्वासित हाकर माण्डले दुर्ग लाये गये, तो केवल दो सड़कों ऐसी रह गईं जिन पर जाने की लाजपत राय को मनाही नहीं थी और इन सड़कों के काफी अधिक भाग पर इमली का कोई वृक्ष नहीं था, जिसकी छाव धूप से सुरक्षा दे सके। लाजपत राय ने इस बात की ओर डिप्टी कमिश्नर का ध्यान दिलाया। उस भद्र पुरुष ने काले शीशा वाला चश्मा देने की स्वीकृति दे दी, परन्तु जेल अधीक्षक ने इसे ऐयाशी की वस्तु कहकर चश्मा देने के निणय को रद्द कर दिया।

महल की नहर में मछलियां बहुत थीं और जेल अधीक्षक ने सुझाव दिया कि वह शूल के तौर पर मछली पकड़ा करें। उन्होंने आईकन वाल्टन के ग्रुप में शामिल होने की कभी भी तमना नहीं की थी, परन्तु अधिक से अधिक समय खुले स्थान पर बिताने की इच्छा के कारण उन्हें यह भी स्वीकार करना पड़ा। इसलिए उन्होंने मछली पकड़ने की डोरी, काटा खरीद लिया, जो पहरें पर नियुक्त सार्जेंट या कास्टेबल मछली पकड़ने के लिए इस्तेमाल करेंगे, और वह बैठकर केवल उन्हें देखा करें। ऊँचे हुए नदी के लिए अल्प अवधि का यह प्रयोग "न प्रसन्नता दे पाया न राहत।"

माण्डले में लाजपत राय ने डायरी रखने का प्रयत्न किया, जो पहली बार 20 जून को लिखी गई थी। यह डायरी सुरक्षित नहीं रखी गई, परन्तु इसमें से कुछ भाग उन्होंने 'स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन' में दर्ज किए हैं। डायरी से पता चलता है कि लाजपत राय का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। इसमें कई बार पेट की गड़बड़ी और नींद न आने की चर्चा है और अधीक्षक द्वारा तजवीज किये गये जुलाब के

पाउडरो तथा सलफोनल जैसी दवाइया की चर्चा है। उन्होंने अपने कष्ट के बारे में स्वनिरीक्षण के परिणाम के बारे में भी बताया है।

“कारावास की स्थिति, तहाई, बसरत का अभाव, अपमान आर अनुचित परतंत्रता के कारण पैदा हुआ रोग, मन-मसंद सगति का अभाव और ऐसी ही कई असुविधाआ ने अपना प्रभाव तो अवश्य दिखलाना था और जो पुराने रोग थे उन्हें और भी गभीर बनाना था। इसके परिणामस्वरूप कारावास में पहले तीन महीनों में मुझे इन शिकायतों से काफी कष्ट पहुंचा, परन्तु उसके बाद अपने भाव्य तथा अपने आस-पड़ोस से समझौता कर लिया और मेरी स्थिति काफी सुधर गई।” कई और रातों की नीद न आने का एक और कारण मामूली से “प्रेम का मामला था।” यह कहानी उनके अपने शब्दों में अधिक् अच्छी तरह बणन की गई है, क्योंकि ‘डिपोटेशन’ पुस्तक के पात्र छ बढिया पन्ने इसी की चर्चा से भरे हुए हैं।

“मेरे निर्वासन में मेरी सबसे बड़ी कठिनाई मेरा अकेलापन था। मेरे पहरे के लिए नियुक्त कुछ यूरोपियन सार्जेंट मेरे प्रति बहुत दयालु थे, पर उनकी सगति मुझे कहां तक प्रसन्नता दे पाती? पहली बात तो यह थी कि मेरी शिक्षा तथा सामाजिक स्थिति तथा उनके स्तर में अन्तर इतना अधिक था कि मेरे लिए उन्हें अपनी भावनाआ तथा मनोभावों में समझीदार बनाना कठिन था। इसके अलावा हमारी रुचियों में भी तो बहुत अन्तर था। वे ब्रिटिश चरित्र का पार्श्विक पक्ष पेश करते थे जबकि मेरी रुचिया हिंदू स्वभाव का आध्यात्मिक पहलू पेश करती थीं।”

अन्त में उन्होंने ब्रिटिश बवं शेर का प्रतिनिधित्व करने वाले मानवों के स्थान पर शेर की नसल के दो बर्तित प्राणियों को प्राथमिकता दी और इन दो पालतू जीवों के बारे में ही ‘स्टोरी आफ डिपोटेशन’ का मानवीय पन्ना भरा पड़ा है।

“मुझे अपने बगले में दो बिल्लियां देखकर बहुत सात्वना मिली। वे बहुत सुंदर थीं। एक अदरक जैसे रंग की शेरनी जैसी थी और दूसरी पर काले घब्बे थे। मैंने उन्हें खिलाना आरम्भ कर दिया और वे मुझसे हिल गईं। इस प्रकार उनकी सगति एक अच्छा परिवर्तन थी। परन्तु शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि यह विशुद्ध कृपादान नहीं था क्योंकि रात को वे उसी बिस्तर पर सोने के लिए जिक करती, जिस पर मैं सोता। इससे मुझे बहुत परेशानी हुई और कई रातों में लिए सघप चलता रहा—एक तरफ उनके प्रति मेरा स्नेह था और दूसरी ओर उनके कारण

मुझे हाने वाली बेचनी थी। वे दिन-रात मेरे साथ रहना चाहती थी, जब कि मैं चाहता था कि वे केवल दिन के समय मेरे साथ रहें। आखिरकार, उन्हे रात के भोजन के बाद बाहर के एक कमरे में बन्द करना शुरू कर दिया।" अपनी बिल्लिया को देखकर वह कैसे आनन्दित हात थे, इसके बारे में उन्होंने लिखा है

"कई बार मैं एक घंटे का अधिक भाग उन्हें आपस में खेलने, एक दूसरे का चाटते तथा एक दूसरे का बाजुआ में लेते हुए देखता रहा, जैसे वे जुड़वा बहनें हैं। उनका आपसी मोह कमाल का था। कम-से-कम मेरे लिए तो यह नया अनुभव था।"

बिल्लिया को इतना मनोरंजक पान पर उन्होंने अपनी घर गृहस्थी में आर विस्तार करने के बारे में सोचा। उन्होंने एक पिल्ला लिया, परन्तु सफाई-सेवक ने बडिया नहत का पिल्ला लाने का वायदा किया, तो उन्होंने वह पिल्ला उसके मानिस को लौटा दिया। प्रसन्नता का एक और कारण (मनुष्य नहीं) भी आया, परन्तु शीघ्र ही यह निराशा का कारण बन गया।

"सीडिया की छत के शहतीरा, बडिया के बीच मैनाआ का एक परिवार रहता था जो मुझे अपने संगीत से आनन्दित करता था, परन्तु एक साजेंट का उनमें अधिक रुचि हो गई। मैना की मां तो बहुत चानाक थी, इसलिए वह उसे तो न पकड़ पाया, परन्तु दो बच्चा को पकड़कर वह अपने घर ले गया। उसने यह कारवाई मां की अनुपस्थिति में की और वापस आने पर जब उसे अपने बच्चे न मिले, तो वह बहुत ही निराश हो गई और उसने भीख-चीखकर तथा करुण विलाप करके सारे घर का सिर पर उठा लिया। कई दिन वह अपने घासले के आम पास मडराती रही और फिर निराश होकर चली गई, फिर कभी न आने के लिए। इस प्रकार मैं उन पक्षिया की संगति से वंचित हो गया, अपने एक पहरेदार की निदयता से, जिसने अग्रेजा तथा भारतीयों का घुरा स्वभाव ग्रहण किया था और जिसमें इन दाना की कोई भी अच्छी बात नहीं थी।"

- उनका कारावास उनके लिए एक प्रकार से उनका "दूसरा घर" बन गया था और माडले के कैदी का, जब मुक्त किया जा रहा था, तो उन्हें भी लगभग वैसे ही अनुभव हुआ, जिस प्रकार चिल्लो के दुग से रिहाई के समय बौनिवाड ने अनुभव किया था। माडले में उनके अध्ययन की पुस्तकों में वायरन की पुस्तकें भी शामिल थीं और 'स्टोरी' में अपनी भावनाएं व्यक्त करते समय उ होने 'प्रिजनर आफ चिल्ला की पक्षिया का हवाला दिया, जब वह अपने 'दूसरे घर को' विदा कह रहे थे,

“और अन्त में जब वह आए,
मेरे सभी बंधन उहाने हटाए ।
ये मोटी और ऊची दीवारें,
लग रही थी आश्रम सी, अपनी सी ।
मेरे मन में ऐसे ख्याल आ रहे थे
वह इस “द्वितीय घर” में मुझे नाच ले जा रहे थे ।”

बायरन का बौनिवाड मकडिया के साथ “उनके सूखे व्यापार” में अपनी मर्ती की चर्चा करता है और चादनी रात में “पेलते हुए चूहों” की भी, दरअसल “मेरी तथा मेरी जजीरा की मंत्री हो गई है ।” बायरन का पैरा उचित ढंग से ही समाप्त होना है । “मैंने अपनी मुक्ति भी ठीकी सास भर कर प्राप्त की ।” माडले का कंदी अपनी मुक्ति ठीकी साम लेकर प्राप्त करने का एक और कारण भी बताता है ।

“11 (नवंबर) को मेरी दोना ब्रिटिशिया मटरगश्नी के लिए गई हुई थी, जब मुझे साज-सामान समेत रेलवे स्टेशन पर पहुंचा दिया गया । उनको प्रतीक्षा करने का अवसर नहीं था, क्योंकि कमिश्नर ने मुझे बताया था कि विशेष रेलगाड़ी तैयार है । अधीनस्थ तथा उच्च अधीनस्थ चाहते थे कि मैं जल्दी वरू । इसलिए उस मकान को छाड़ने समय मेरे मन में केवल यही दृढ़ था कि मुझे उन दो ब्रिटिशिया में जबरन अलग किया जा रहा था ।”

ये पालतू जानवर तो केवल राहत देने का एक कारण थे । उहान माडले में आराम का समय पढ़ने तथा लिखने में लगाया । वह प्रतिदिन औसतन सात आठ घंटे गभीर अध्ययन लेखन का काम करते थे, पत्रिकाएँ तथा उपन्यास पढ़ने का काम इसमें अतिरिक्त था, जो वह “समय काटने” के लिए ही किया करते थे । उन्होंने बर्मा, वहल, कंसागा तथा इतिहास के बारे में अनेक पुस्तकें पढ़ीं और बाद में उदें में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम था ‘अफ़साना-ए-बर्मा’ । इसमें कुछ भाग में बर्मा के सामाजिक तथा धार्मिक व्यवहार का विवरण था और कुछ भाग में आधुनिक बर्मा की, आर्थिक, शक्ति, सामाजिक, तथा राजनीतिक समस्याओं की चर्चा की गई थी और आरम्भ के कुछ अध्यायों में आवश्यक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी गई थी । माडले दृग में उन्होंने, जो सामान्य अध्ययन किया (इन पुस्तकों की सूची स्टोरी आफ़ मार्टि डिपार्टेशन में दी गई है) उद्योग इतिहास की उच्च बाटि की पस्तों शामिल थी—हैलम लिखित हिन्दी आफ़ मिडिल एजिड, माडले लिखित ‘राइड आफ़ टच रिफॉर्म,’ ग्रैंथ तथा मानव लिखित

'हिस्ट्री आफ इंडियन स्पूटनी इतिहास' की पुस्तक का बाद सूची में दशम शाल की पुस्तकें थीं — लैकवी, हरबट स्पेंसर, फील्डिंग हाल रचित। उपन्यासों की सूची में धैकरे तथा डिवन्ज प्रमुख थे, परन्तु उनमें टालस्टाय और वाल्टेयर भी शामिल थे। समय बिताने के लिए एथनी हाप, मेरी वॉरेल और चर्चिल अच्छे थे, परन्तु हाफिज की फारसी कविता ने उनके दिल के तारों का कुछ झुंझ प्रवार से छुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। मांडले में उहोन, जा उर्दू साहित्य पढा उसमें जोक की कविताएँ तथा उनके भूतपूर्व अध्यापक मुहम्मद हुसैन आज़ाद की गदय रचना ती थीं ही।

मांडले की उनकी रचनाओं में वर्मा के बारे में उर्दू पुस्तक, जिसकी पहले कर्वा की जा चुकी है, आत्मकथात्मक उर्दू उपन्यास का एक भाग, जिसके कोई 150 पृष्ठ उन्होंने लिखे थे, परन्तु उसे कभी मुकम्मल नहीं किया। यह पाण्डुलिपि उनके पिता तथा मित्रों ने नष्ट कर दी (यह बात उन्होंने अपनी आत्मकथा के 1915 के भाग की भूमिका में बताया)। मांडले दुग में उन्होंने कुछ समय भगवत गीता के अध्ययन में लगाया, उसने परिणामस्वरूप अंग्रेजी निबंध 'द भरोज आफ भगवत् गीता' लिखा। पहले यह कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'मांडन रिप्यू' में मार्च 1908 में प्रकाशित हुआ और बाद में यह पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ।

बारावास के दिनों में गीता तथा हाफिज ने उनकी सहायता की, क्योंकि जा व्यक्ति मन की शान्ति की आदत डालना चाहे, ये पुस्तकें उसकी अच्छी मित्र ह। लाजपत राय इन पुस्तकों की प्रेरणा को स्वीकार करते हैं

"कृष्ण, मेरे साथ व्यावहारिक बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों में बातचीत करते थे, जिनका स्वर अमर होता था, और शीराज के प्रसिद्ध कवि ने भर साथ प्रेम के बारे में बातचीत की तथा उन कष्टों के बारे में बताया, जो ऐसे प्रेम के साथ आते हैं। मैंने अपने बारावास के दिनों में हाफिज से इतना ज्ञान प्राप्त किया, जितना अपना जीवन में पहले कभी नहीं किया था, जब उन्हें मैंने अपने पिता की सगति में पढ़ा था।"

गीता के अनावा वह उपनिषदों में से कुछ पाठ करते थे और इन धर्म प्रथा के पाठ का वह अपना धार्मिक कर्तव्य समझते थे। प्रातः की प्रार्थना करने में वह बहुत नियमित थे और मध्याह्न करने में नियमित न होने के लिए वह क्षमा याचना करते

है, यद्यपि डमका अथ यह नहीं कि वह सध्या की प्राथना करने में विलकुल उपेक्षा करते थे, बात केवल इतनी थी कि वह सध्या के लिए निर्धारित कुछ वेद-मंत्रों या औपचारिक रूप से पाठ नहीं किया करते थे।

‘द स्टोरी आफ माई डिपॉटेशन’ के एक अध्याय का शीर्षक, ‘कारावास में मन की स्थिति,’ रखा गया, इससे अन्त में उन्होंने लिखा

‘यद्यपि मैं अपने निर्वासन के दौरान कभी कभी उदासी या गंकाकीपन महसूस करता था, परन्तु सामान्य तौर पर मैं परिस्थितियों के प्रति विलकुल सतुष्ट था और समय का सदुपयोग करने का प्रयत्न करता था।’

इस आत्म-विश्लेषण के बाद एक टिप्पणी दज है, जिसमें मन की शान्ति बहाल होने और परिस्थितियों से सतुष्ट होने की भावना की चर्चा है।

निस्संदेह, उनकी संवेदनशीलता को घाट पहुँचने के कारण, जो उनके साथ होने वाले बर्ताव के कारण हाती थी, उनके मन का कष्ट तथा नाराजगी होनी थी। जेल का अधीनत्व, जिसके बारे में आरम्भ में उन्होंने बड़ी अच्छी राय बनाई थी, मदा उदार तथा लिहाज करने वाला नहीं था, हमने हज्जाम वाली घटना की चर्चा पहले ही कर दी है।

‘द स्टोरी आफ माई डिपॉटेशन’ से हमें उनकी संवेदनशील आत्मा और चिडचिडेपन का पता चलता है, जब लोग अपने व्यवहार में सिष्टाचार का ध्यान नहीं रखते थे। यह कोई शहीद मत की वार्ता नहीं और जो कोई पाठक किसी ऐसी कथा के लिए उत्सुक अध्ययन करता है, उसे केवल निराशा ही नहीं होगी, बल्कि इसमें दी गई छोटी-छोटी बातों के विवरण से चिड भी महसूस होगी। फिर भी, सभा जानते हैं कि यह परिणाम निकालना भूयतापूर्ण मलती होगी कि इस पुस्तक का लेखक कष्ट झेलने या बलिदान देने के लिए तैयार नहीं था। उन्होंने जो बलिदान दिए उनके बारे में कभी खेद व्यक्त नहीं किया और पल भर के लिए भी नहीं साचा कि जो रास्ता उन्होंने अपन लिए चुना था, उसमें हट जायें। जब उन्होंने उन मामूली चीजों के बारे में लिखा, जो उन्हें चोट पहुँचाती थी, तो वह कोई करणात्मक व्यक्ति नहीं थे, जो योग से दया भागत थे। जब उनके भाग्य असम्य या मुस्ताखापूर्ण ढंग में बदलाव होना था, तो उनकी आत्मा का बहुत कष्ट महसूस होता था—दैन्य स्थिति को—जिसे जन्दराज पाठक बड़ी आसानी से कमजारी या हिचकिचाहट

ह वसवता था—उन्होंने स्वाभाविक निष्पटता से ध्यान किया है। कम संवेदनशील व्यक्ति के लिए ये बातें बहुत ही मामूली हो सकती थीं। कम निष्पट व्यक्ति के लिए इनका वर्णन गैर ज़रूरी होता। उन्होंने बहुत ज्यादा और अवसर सोचा था और 'स्टोरी' में पाठकों को यह व्यक्तिगत तथा निजी घटनाएं देखने की अनुमति है। इमना परिणाम 'मनोवैज्ञानिक' के चित्रा का एक सफु चले चित्र है। इस प्रकार 'यह (अधीक्षक)' एक दिन मेरे साथ विशेष तौर पर गुस्ताखी से पेश आया, क्योंकि मैं एक मित्र को लिखा था कि मैं अस्वस्थ हूँ, उसका कहना था कि ऐसा करने में चाहता हूँ कि मेरे लोग मेरी रिहाई के लिए आंदोलन करें, क्योंकि मैं बीमार हूँ, उसने स्पष्ट तौर पर मुझ पर आरोप लगाया था कि बीमार होने का बहाना कर रहा हूँ। एक अर्थ अवसर पर वह मेरे साथ और भी गुस्ताखी से पेश आया, जब उसने हज़ामत की उजरत देने से इन्कार कर दिया। एक प्रकार से वह मेरी बात पर विश्वास नहीं कर रहा था कि मैं घर पर हर तीसरे दिन हज़ामत धनवाता था। मेरे प्रति उसका व्यवहार जान-बूझकर असभ्य होता जा रहा था। मेरा नाम लेकर पुकारते समय, मेरे लिए दवाई लिखते समय या मुझे पत्र भेजते समय, वह आम तौर पर विनम्रता के शब्द इस्तेमाल नहीं करता था।"

एक दिन अधीक्षक ने उनसे पूछा कि उनका कोई भाई है, जिसका नाम धनपत राय है और क्या भाई ने मुलाकात करनी चाही है? लाजपत राय ने उत्तर दिया कि वह उनका सबसे छोटा भाई है।

"जब वह चला गया, तो मैंने उसे लिखा कि उसके प्रश्न ने मुझे साब में डाल दिया है। शायद उसने मेरा कार्टे पत्र राक लिया है, जिसमें मेरे भाई की अर्जी के बारे में कोई जानकारी है, मैं कृतज्ञ हूँगा यदि पूरे व्यवहार के अनुसार मुझे पत्र लिखने वाले के नाम की ही सूचना दे दी जाये। अगली सवेरे, जब वह उधर जाया मैं बरामदे में सीढिया के ऊपर खड़ा था और इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसकी इच्छा क्या है और यूरोपियन सर्जेंट तथा अन्य पुलिस कमचारी उसे संप्लूट दे रहे थे, तब उसने मुझे भरी आवाज में चिल्लाकर कहा कि यह मेरा काम नहीं है कि जब वह कोई प्रश्न करे तो मैं उसे जलटकर प्रश्न करूँ।"

उन्होंने बड़े दुखी मन से अधीक्षक द्वारा कहे गए शब्द फुटनोट में दिए हैं
उसके द्वारा कहे गये शब्द इस प्रकार हैं

“उस समय मुझे वाई प्रश्न मत करा, जब मैं तुम से कोई प्रश्न करूँ। मुझे ऐसे गुस्ताखाना प्रश्न मत पूछो। मैं जिरह नहीं चाहता।” उसने फिर कहा, “मैं इस मामले पर आपसे दलीलवाजी नहीं चाहता,” परन्तु आप ऐसी बात फिर बिल्कुल नहीं करना। उसके ज्ञान के तुरन्त बाद मैंने ये शब्द लिख लिए।”

प्रत्यक्ष है कि ये शब्द उस समय भी उनकी आत्मा का चुभ रहे थे, जब उन्होंने इन्हे फुटनोट में लिखने के लिए स्मरण किया। कुछ पाठका का शायद यह लगे (जिस प्रकार बिलफड ब्लट को लगा) कि यहाँ सवेदनशीलता सम्मान से भी बढ़ गई, परन्तु शायद ही ऐसा फुटनोट होगा, जिसने केवल पाच पक्तियाँ ही किसी आत्मा को इतने स्पष्ट ढंग से व्यक्त किया हो—यह एक अन्य सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्र था, जो “असल शब्दों” के बिना संभव नहीं हो पाएगा।

अधिकारी का वर्तमान संक्षिप्त रूप में 'स्टोरी' में स्पष्ट किया गया है

“सरकारी नैदियों से सम्बद्ध हर बात को इतना गुप्त रखने के कारण कुछ हद तक परेशानी तो होती ही है। वह अपने अधीन कर्मचारियों से कोई सहायता भी तो नहीं ले सकता। परन्तु मेरे विचार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात जिसने उसके स्वभाव को प्रभावित किया, वह यह भी थी कि वह जेल का अधीक्षक था। इस स्थिति में उसे हज़ारों अपराधियों से निपटना पड़ता था, जिन पर वह व्यापक अधिकार इस्तेमाल कर सकता था और जिनके प्रति उसे शिष्टाचार दिखलाने की कोई आवश्यकता नहीं होती थी। एक नैदी की आवश्यकताओं के बारे में उसकी धारणा सामान्य जेल जीवन के अनुभव पर आधारित थी।”

‘द स्टोरी आफ माई डिपार्टेशन’ की गीण बातें कई बार बहुत मामूली दिखाई पड़ती हैं, परन्तु इनसे हमें उसके लेखक की सवेदनशीलता की जानकारी मिलती है। जब आरम्भ में जेल अधीक्षक उनके साथ अच्छी तरह पेश आया, तो इस सवेदनशील आत्मा ने इन बातों को उत्सुकतापूर्वक व्यक्तिगत ढंग में लिया

‘पहले कुछ दिनों के लिए वह बहुत ही दयालु तथा लिहाजदार था, प्रत्यक्ष था कि वह इस बात के लिए चिंतित था कि उस ज़्यादती के लिए क्षतिपूर्ति कर सके, जो उसकी सरकार ने पाषाणिक ढंग से मुझे मेरे देश से भगवा करके, मुझ पर कोई मुद्दमा चलाए बिना और मेरे विरुद्ध आरोप लगाए बिना की थी।”

प्रत्यक्ष तार पर यह अयाम्त्विक बात थी, क्याकि यह विश्वास करना कठिन है कि अधीशान की लिहाजदारी तथा शिष्टता का उस भावना में कोई मवघ था जो लेखक न उम आत्मवेदित पत्र में बही थी ।

जिस बात का यह "सलाम का भय" कहते हैं, वही बात उनको सब बातों में अधिक गहरा आघात पहुंचाती थी । उन्हें प्रतिदिन सैर की बहुत आवश्यकता थी, ताकि उनका खराब ज़िगर जरा ठीक ढंग में काम कर सके और अधिक शांत नौद आ सके । फिर भी, उन्हें यह सैर छोड़न पर बाध्य होना पड़ा, क्योंकि इससे कुछ उलझने पैदा होती थी, जिनके कारण उनकी भावुकता को बर्ष्ट पहुंचता था । शुरू में सैर के समय उनके साथ एक सशस्त्र युरोपियन सार्जेंट होता था और बाद में उनके पहरेदारों में दो और बर्दीघारी बान्देबल शामिल कर दिए गए । सादा कपड़ा में कोई व्यक्ति मकान के आस-पास तथा निकट की सड़क पर घूमते रहते थे । अधिकारियों ने ऐसी असाधारण एहतियात की आवश्यकता इमलिए समझी थी क्योंकि माण्डले में भारतीया की संख्या बहुत ज्यादा थी । सड़क पर किसी को भी उनसे बात करने की आजा नहीं थी । मकान के सामने भी सड़क से गुजरने वाले भारतीय राहगीरों को कई बार बहुत बर्ष्ट का सामना करना पड़ता था —कई बार तो उन्हें सड़क से गुजरने की बिल्कुल मनाही कर दी जाती थी । फिर भी, राहगीरों द्वारा भाषा छूवर दूर से ही अभिवादन करना साठ (अंग्रेजा) का लाल कपड़ा नज़र आने में समान होता था और कई बार इसी कारण ही काफी समस्या खड़ी हो जाती थी ।

लाजपत राय का प्रतिदिन अपने देशवासियों से जो सस्नेह श्रद्धा-सुमन प्राप्त होते थे, उम प्रकार के आदर से किसी भी बंदी का गव से सिर ऊंचा हो सकता था । पजाबी औरतें कभी-कभी उनके दशन करने आती थी, परन्तु दूर से ही और कंठी बड़ी आसानी से उन्हें देख सकता था । कभी-कभार भारतीय ग्रामीण युवकों की टोली उस रास्ते से गुजरती और वह उन्हें बड़े विपादपूर्व स्वर में, उनमें निर्वासन के बारे में बातें करते सुन सकते थे ।

अन्य अवसरों पर वर्षा ऋतु जैसे मौसम में वह और ही प्रकार की टोली देखते, जिनकी निगाहें मेरे घर के बरामदे की ओर उठी हुई होती थी । जिनके शाख लिबास से मालूम पड़ जाता कि वे बम्बई के समृद्ध बोहरा हैं ।" जो कोई भी भारतीय मांडले जाता था, वहा के दुग की यात्रा तथा उसमें बन्दी महान बंदी

के दमन की झलक उसके लिए अनिवाय बात होती थी, चाहे ऐसा करने के बाद या ऐसा करके उसे किननी भी परेशानी क्यों न उठानी पड़े ।

दुग म 'गोपनीयता' उस समय ह्याम्यास्पद बात बनकर रह गई, जब अधिनियम के अधीन उनके समान बंदी बचाये गये अजीत सिंह माडले पहुँचे । कई सप्ताह, यत्कि बई मास तक यह दिखावा किया गया कि उनमें से किसी को भी एक दूसरे के दुग में फँद हाने की जागकारी नहीं थी । परन्तु गोपनीयता के कारण वश जा सावधानी बरती गई थी, उसी से ही इस भेद का पता चल जाता था ।

यद्यपि लाजपत राय "सरकारी" बंदी थे, फिर भी उन्हें डफरिन कोट में बाफ़ी पड़ी पाव बंदी के अधीन रखा गया था । उन्हें कोई समाचार पत्र न दिया गया, इस मामले में उनकी ओर से भारत सरकार को पत्र लिखने के बावजूद, दरअसल "यूरोपियन पहरेदारों को भी, जब वे ड्यूटी पर हा, समाचार पत्र अपने पास रखने की अनुमति नहीं थी ।" पुस्तकें उनके पास पहुँचाने से पूर्व उनकी अच्छी तरह जाच पड़ताल की जाती थी भी और जैसा कि हमने पहले देखा है, उन्हें "राजनीतिक कारणों से" बर्मा भाषा सीखने की भी आज्ञा नहीं दी गई थी । माण्डले में छ मास ठहरने के दौरान उनके साथ किसी मित्र या सवधी की भेंट नहीं हुई । उनके भाई धनपत राय ने उनके साथ मुलाकात करने के लिए आजा मागी, परन्तु डेडवुड इन्वटसन की सरकार ने उसके लिए अनुमति न दी । "इस कारण भविष्य में इस प्रकार की अजिया का मिलसिला ही बन्द हो गया ।"

उन्होंने डफरिन कोट के बाहर गाडी में सवार होकर घूमने की आज्ञा मागी, परन्तु इसकी भी आज्ञा न दी गई । दरअसल, दुग के अन्दर भी उनकी रात दिन बड़ी निगरानी की जाती थी ।

उनकी सारी डाक संसर की जाती थी, "केवल मेरी कुछ चिट्ठिया ही मुझ तक पहुँचाई जाती थी ।" जिन पत्रों में उनकी गिरफ्तारी का कोई उल्लेख, निर्वासन की कोई चर्चा या लाहौर, पिण्डी या किसी अन्य स्थान पर उग्र घटनाओं का उल्लेख होगा, तो उन्हें अकमर ही रोच लिया जाता था, यद्यपि एव पत्र में 'यजान सिंह एंड कंपनी के बारे में पूछा गया प्रश्न संसर की नजर में नहीं आया—यजान सिंह पिण्डी के उन बकीला में से थे, जिन्हें राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया गया था ।

यह तब कि सालिसिटरो की एक फम का घालिस व्यापारिक पत्र भी रोक लिया गया। इसमें केवल इस सबध में निदेश देने को कहा गया था कि 'डेली एक्स-प्रेस' के शिमला सवाददाता ने अपने पत्र में जो निराधार बात कही थी, उससे विरुद्ध मान हानिपूर्ण लेख के लिए मुकदमा दायर किया जाए या नहीं? सालिसिटरो ने लाजपत राय से केवल एक बवालतनामे पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा था। इस प्रकार का शत प्रतिशत व्यापारिक पत्र भी आपत्तिजनक समझा गया था, क्योंकि 'सामान्य राजनीतिक आधार पर' यह बात अनुचित थी, जो जेल अधीक्षक के सरल मिदधान्त के अनुसार, किसी राजनीतिक बन्दी को उसके विरुद्ध ब्रिटिश समाचार-पत्रों में प्रकाशित उल्लेखों के विरुद्ध इस प्रकार मान-हानि का मुकदमा करके अपना पक्ष स्पष्ट करने की अनुमति नहीं हो सकती थी। फिर भी, 'ईमानदार जान' ने 9 जुलाई 1907 को हाउस आफ कामन्स में विलियम रेडमण्ड का उत्तर देते हुए कहा था

"लाला लाजपत राय और अजीत सिंह को अपने मित्रों के साथ पत्र-व्यवहार करने की अनुमति है, परन्तु उनके पत्रों की जांच कर ली जाती है, ताकि ऐसा संदेश रोके जा सके, जिनसे गडबडी का प्रोत्साहन मिलने की आशंका है। अब तक केवल एक पत्र रोका गया है। मुझे भारत से जा सूचना मिली है, उसके अनुसार अब तक किसी न बँदी के साथ मुलाकात के लिए इच्छा व्यक्त नहीं की है, मेरा अनुमान है कि यदि मुलाकात के लिए इस प्रकार का कोई प्रतिवेदन किया जाएगा, तो ऐसी मुलाकात करत पर कोई आपत्ति नहीं होगी, जो उचित निगरानी में हो, ताकि इस बात को यकौनी बनाया जा सके कि कोई शरारतपूर्ण या अनुचित ढंग से संदेश न पहुँचाया जाये।" मेकानैस के पूरक प्रश्न के उत्तर में कि "क्या बंदी अपने कानूनी सलाहकार के साथ पत्र व्यवहार कर सकता है?" माले ने उत्तर दिया, 'मेरा अनुमान है कि ऐसा हो सकता है।'

कारावास के दिनों में उन्हें अक्सर अपने घर का ख्याल आता था। शायद उनके पास अपनी घरेलू समस्याओं के बारे में विचार करने के लिए अधिक मूर्सत थी, उसने मुकाबले जब वह अपने घर पर थे। कोट से जो पत्र उन्होंने अपने पिता अथवा पुत्रा को लिखे, उनसे उनकी घरेलू योजनाओं की झलक मिलती है। इन पत्रों में उन सभी बातों की चर्चा नहीं करनी होती थी, जो राजनीतिक हों। सामान्य तौर पर उनमें इस बात का विवरण होता था कि जेल में उनका समय कैसे व्यतीत होता था, मौसम कैसा है, उनका स्वास्थ्य और उनका लिखना पढ़ना कैसा

है। कभी कभार इन पत्रों में घर से वह वस्तु भेजने की चर्चा होती है, जो स्थानीय तौर पर उपलब्ध नहीं थी और कई बार इनमें उनके मामला के प्रवचन के लिए निर्देश दिए होते थे या घरेलू मामला की व्यवस्था के बारे में लिखा होता था।

पिता ने अपने पुत्र की बंद की विलुप्त धँस से सहन किया

“वह मेरे बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का बड़े साहस के साथ निभा रहे थे तथा अपने दुर्भाग्य को बड़े धैर्य से सहन कर रहे थे। परन्तु मेरे पास यह जानने के लिए कोई साधन नहीं था कि परिवार का ध्यान रखने के अलावा उन्होंने अपना अनुभव की कलम मेरे समय में उठा लिया है और उसे प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल कर रहे हैं, जिसके कारण मेरे हम्बतनों में जो बुरा करने वाले हैं, उन्हें घबराहट हो रही थी। मुझे यह जानकर बहुत ही लज्जा आयी कि एक भारतीय डिप्टी कमिश्नर ने ब्रिटिश मजिस्ट्रेट के रूप में अपने कर्तव्य निभाने के सिलसिले में, उस बृद्ध व्यक्ति की गतिविधियों पर नियमित रूप से पूरी तरह निगरानी की व्यवस्था कर दी थी, जैसे मेरी राजनीतिक विचारधारा के लिये और मेरी कारवाइयों के लिये वह किसी तरह जिम्मेदार है। परन्तु, उस बृद्ध व्यक्ति ने पल भर के लिये भी, अस्थिरता नहीं दिखाई और मेरी बेगुनाही में अडिग विश्वास रखा। अपने पुत्र की अनुपस्थिति के कारण, अपने गहरे दुख के कारण, उनके मन में कभी निराशा पैदा नहीं हुई, उस पुत्र की अनुपस्थिति के कारण जिसने अपने पिता प्रेम और आदर को अपने स्नेह और सम्मान के मुकाबले गौण स्थान नहीं दिया।”

28. जॉन मौलें की अग्नि परीक्षा

अभी लाजपत राय को माण्डले के कैदी के रूप में बिना मुकदमा चलाये तथा बिना सजा दिये नजरबन्द हुए कुछ सप्ताह भी नहीं हुए थे, जब उन्हें पता चला कि "संसद में गृह मंत्री (सैक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया) से प्रश्न पूछा गया था कि क्या मैंने अपने निर्वासन के विरुद्ध विरोध व्यक्त किया है और यदि किया है, तो इस विरोध का सारांश क्या है।" इस जानबूरी से उनके मन में विचार पैदा हुआ कि "ब्रिटिश संसद में भेरे मिल शायद यह जानना चाहते हैं कि बिना मुकदमा चलाये निर्वासित करने की सरकार की इस ज्यादाती भरी कारवाई के विरुद्ध मुझे क्या कहना है।" उस समय तक उन्होंने अपनी रिहाई के लिए याचिका पेश करने का कोई निणय नहीं किया था। हाउस आफ कामन्स में पूछे गए इस प्रश्न ने उन्हें निणय पर पहुँचा दिया। उन्होंने पहले ही उस आदेश की एक प्रति की मांग की थी, जिसके अधीन उन्हें गिरफ्तार किया गया था तथा यह भी कि इस आदेश का आधार क्या था। उचित समय में ही उन्हें 7 मई 1907 को सजा देने का वह वारण्ट पढ़ने की प्रसन्नता प्राप्त हो गई, जो इस प्रकार था

गृह विभाग, भारत,

सेवा में, जेल अधीक्षक, माण्डले।

चूँकि महा राज्यपाल, सपरिषद् को उचित और पर्याप्त कारणों से यह निणय करना उचित महसूस हुआ है कि लाजपत राय, पुत्र राधाकिशन, को माण्डले में व्यक्तिगत रूप से बंदी रखा जाये, इसलिए आपसे यह कहा जाता है और आदेश दिया जाता है कि इस निणय के अनुसार आप उपयुक्त व्यक्ति को अपनी जेल में रखें और उसके साथ महा राज्यपाल, सपरिषद् के आदेश और 1818 के अध्यादेश III के अनुसार व्यवहार करें।

महा राज्यपाल, सपरिषद् के आदेशानुसार

(हस्ताक्षर)

एच० एच० रिज्वाली
सचिव, भारत सरकार
गृह विभाग।

तिथि 7 मई 1907

इसलिए इस दस्तावेज में कोई आधार नहीं बताया गया—इसका अनुमान तो केवल अध्यादेश के शब्दों से ही लगाया जा सकता था कि उन्हें “महामहिम के शासन में गडबडी फैलाने से रोका जा सके।” अधिनियम III की प्रति उन्हें पहले ही प्राप्त हो चुकी थी, जो उन्होंने घर से मगवाई थी और अधीक्षक ऐसी सन्दिग्ध मामली उस समय तक उन्हें देने के विरुद्ध अडा रहा था, जब तक उसने स्थायी सरकार से सलाह नहीं कर ली। आदेश की प्रति प्राप्त हो जाने पर लाजपत राय ने एक याचिका अथवा ज्ञापन तैयार किया, जो श्रीमान वाइसराय और भारत के महा-राज्यपाल, गिमला को संबोधित था और उन्होंने 29 जून 1907 को यह जेल अधीक्षक के हवाले कर दिया। कोई तीन सप्ताह के बाद जेल अधीक्षक ने एक और प्रति देने को कहा, जो बर्मा सरकार के लिए चाहिए थी। लाजपत राय ने अपने पास कोई प्रति नहीं रखी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्मरणशक्ति से ही प्रति तैयार की, जो उनके विश्वास के अनुसार “मूल प्रतिवेदन की सही प्रति थी,” इसकी एक प्रति रख लेने के कारण ही वह उसे ‘द स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन’ में भक्ति कर पाये थे।

इस ज्ञापन में लाजपत राय ने रोप व्यक्त करते हुए अपनी निर्दोषिता पर बल दिया था और “सम्मानपूर्वक, परन्तु जार देकर” इस बात से इन्कार किया था कि “अपनी गिरफ्तारी के समय से तुरत पूर्व या तुरत बाद महामहिम, भारत सम्राट के शासन क्षेत्र में किसी प्रकार की ‘गडबडी’ की कोई उचित आशंका थी” और इतने ही जोरदार शब्दों में और सम्मानपूर्वक ढंग से उन्होंने इस बात से भी इन्कार किया था कि उन्होंने कभी कोई ऐसी बात भी हो या करने का प्रयत्न किया हो, जिससे महामहिम के शासन में किसी प्रकार की कोई गडबडी हो सके या जिसके कारण उनके विरुद्ध 1818 का अधिनियम III लागू करने का कोई औचित्य हो सके। उन्होंने निवेदन किया था कि वह सदा ही शान्तमय वाय करते रहे हैं और अपना अधिकतर समय अपने देशवासियों में शिक्षा का प्रसार करने, अनाथा, विधवाओं तथा अकाल पीड़िता के लिए सहायता एवम् करने तथा बाटने तथा 1905 के भूकम्प के बाद बागडा घाटी तथा अन्य क्षेत्रों के लोगों की सहायता करने में व्यस्त रहे हैं और वह तीन वर्ष से नगरपालिका के सदस्य रहे हैं और 25 वर्ष से बकायत कर रहे हैं और अपने मातृजनिक जीवन में, जिसकी अवधि लगभग 25 वर्ष है उन पर ऐसी कोई कारवाई करने का सदेह नहीं किया गया, जिससे महामहिम के शासन में गडबडी फैलाने का सदेह हो। उन्होंने इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया

कि वह "बड़े हुए जिगर तथा पेट की बीमारियां मे लगातार ग्रस्त रहे हैं।" अन्त में उन्हें निवेदन किया था कि यदि उन्हें सुरत रिहा करना सम्भव नहीं, तो वे आधार बताये जायें, जिनके कारण उनके विरुद्ध यह कारवाही की गई है और ऐसी याचिका महामहिम, भारत के महाराजाधिराज को भेज दी जाये। याचिका का निणय हान तक उन्होंने कुछ सुविधाओं की माग की—(क) "मुझे भारतीय तथा अग्रजी समाचार-पत्र पढ़ने की अनुमति दी जाये, क्योंकि इन्हें पढ़ने से वञ्चित किये जाने पर मैं बहुत ही एकाकीपन महसूस करता हूँ" और (ख) "मेरी सेवा-परिचर्या के लिए मेरे अपने घर स नौकर भेजा जाए।" अन्तिम परिच्छेद में उन्होंने इच्छा व्यक्त की थी कि "उनके कारावास की समाप्ति अवधि बताई जाये।"

॥ अगस्त को जेस अधीक्षक ने उनकी याचिका के बारे में भारत सरकार का आदेश पढ़कर सुनाया और बाद में उन्हें बागज का एक टुकड़ा दिया, जिस पर सरकार के निर्णय का यह शापन लिखा हुआ था

"भारत सरकार ने निणय किया है कि आप फोट डफरिन से आगे गाड़ी में घूमने नहीं जा सकते। न ही पुलिस की चौकसी कम की जा सकती है (निवेदन की शर्तें अस्पष्ट)। जहां तक आपके विरुद्ध आरोपों के ब्योरे का प्रश्न है, भारत सरकार का आदेश है कि जो कारण आपको पहले बताये जा चुके हैं, उनके अतिरिक्त और ब्योरा नहीं दिया जा सकता। आप अपने ज्ञापन स्थानीय सरकार द्वारा सम्राट को भेज दें। आपको अपना नौकर नहीं दिया जा सकता और न ही समाचार पत्र (इनसे पहले इन्कार किया जा चुका था)।

"कारावास की अवधि भी नहीं बताई जा सकती। आपके अपने सबधिया से मिलने पर कोई रुकी आपत्ति नहीं, परन्तु मुलाकातें तथा व्यक्ति पंजाब सरकार की सहमति से सीमित हाने।"

यह "ज्ञापन" का समाहित उत्तर था और अधीक्षक द्वारा ऊपर भेजे गये कुछ निवेदन का भी।

अधिनियम की जो प्रति लाजपत राय के लिए मिली थी, उससे अधीक्षक को पता चला था कि कानून के अनुसार उसे अपने कैदी के बारे में पहली जुलाई को रिपोर्ट भेजनी थी। उसने लाजपत राय से पूछा कि क्या वह उनके लिए कुछ विशेष रियायतों की सिफारिश करे। उत्तर में लाजपत राय ने कहा कि वह चाहेंगे कि उन्हें आजा दी जाये "कि वह दुग के बाहर गाड़ी में घूम सकें, पुलिस की चौकसी कुछ कम कर दी जाये और मित्रों से मिलने दिया जाये।"

उन्होंने इस संकेत का लाभ नहीं उठाया कि वह स्थानीय सरकार द्वारा महा महिम सम्राट को याचिका भेज सकते हैं। उन्हें इस बात पर हसी आई कि सरकार टैक्नीकल कारणों को अपने व्यवहार का आधार बना रही है और याचिका महामहिम को भेजने से इसलिये इन्कार कर रही है कि यह उचित प्रणाली द्वारा नहीं भेजी गई। "मुझे यह बात बहुत ही हास्यास्पद लगी कि एक बंदी से, जिसे कानूनी तथा किसी अन्य सलाह का अवसर नहीं दिया गया, यह कहा जाए कि जो याचिका उसने जेल अधीक्षक को दी है, जो एकमात्र व्यक्ति उसकी पहुंच में है, उचित प्रणाली द्वारा क्यों नहीं भेजी गई।" फिर भी, उन्हें "इतना विवेक तो है कि महामहिम एक साविधानिक प्रमुख है और वह भारत सरकार की कार-वाइयो में, जिन्हें जान मौलें जैसे राजनीतिक सिद्धांत वाले नीतिज्ञ की स्वीकृति प्राप्त है हस्तक्षेप नहीं करेंगे।" इस सबके बावजूद वह महामहिम को इस बात से अवगत कराना चाहते थे कि "उनकी भारत सरकार कितनी निदयी है कि मेरे जैसे स्तर और शिक्षा वाले राजनीतिक बंदी को समाचार पत्र देने से इन्कार कर दिया है।" उन्होंने यह संदेह भी व्यक्त किया कि भारत सरकार महामहिम को उनके मामले के तथ्यों से अवगत नहीं कराना चाहती और इस बीच वह अभी भी "मेरे विरुद्ध प्रमाण जुटाने में व्यस्त हैं। लाहौर और रावलपिण्डी में हुई गडबडी के अभियुक्तों को यातनाएं दी जा रही हैं और उन पर दबाव डाला जा रहा है कि वह इन दलों में मेरा नाम शामिल कर दें और भारत सरकार को आशा है कि उसे मेरे विरुद्ध काफी ठोस प्रमाण मिल जाएंगे।"

जेल अधीक्षक ने उन्हें बार-बार स्मरण करवाया कि क्या वह महामहिम सम्राट को उनके सुझाव के अनुसार शापन भेजने के बारे में विचार करेंगे, परन्तु साजपत राम ने उसकी परवाह न की और सदा ही यह उत्तर दिया कि वह जब चाहेंगे ऐसा करेंगे।

"इतिहास का जितना थोड़ा बहुत पान मुझे था, उसके अनुसार मुझे निरबुश शासकों से न्यायोचित व्यवहार की आशा न थी और मैंने यह निश्चय कर लिया था कि दासता के जिस जीवन में मुझे निरबुश सरकार के निष्पक्ष के अनुसार डाटा गया है मैं उसी में टिक जाऊँ। मैंने सोचा कि इतना ही काफी है कि मैंने लिखित विरोध व्यक्त कर दिया है और मेरे विरुद्ध जो सामान्य आरोप था, उससे इन्कार कर दिया है।"

परन्तु अपनी स्मरणशक्ति पर जोर डालन का कष्टकारी काय उन्हें कुछ महीन वाद फिर बरना पडा ।

“सितंबर में एक अंग्रेजी पत्रिका में, जा जेल अधीक्षक न पढ़ने के लिये मुझ तक पहुंचाई थी, मैंने पढा कि मेरे विरुद्ध एक यह आरोप भी है कि मैंने स्वदेशी सेना की वफादारी बिगाडने का प्रयत्न किया था ।” उन्होंने इस बिल्कुल निराधार आरोप को “अत्यधिक अपमानजनक” महसूस किया और इसके बारे में अपना पक्ष स्पष्ट करना चाहा । जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, उन्होंने अपनी रिहाई के बाद कुछ समाचार-पत्रों के विरुद्ध मान हानि के मुकदमों भी दायर किये । 22 सितंबर को माडले से उन्होंने अपना दूसरा ज्ञापन प्रस्तुत किया । शायद उस समय ही वह इस मुकदमेबाजी के बारे में विचार कर रहे थे । यह दूसरा ज्ञापन उन्होंने सेनेटरी आफ स्टेट फार इंडिया, लंदन को संबोधित किया था । इसमें फिर रोप व्यक्त करते हुए कहा था कि वह निर्दोष है और उन्होंने कोई ऐसी कारवाई नहीं की, जिससे गडबडी हो, जिसके कारण, उन पर 1818 का अधिनियम III लागू हो । उन्होंने यह रोप भी फिर व्यक्त किया कि उन्हें अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों के बारे में बिल्कुल नहीं बताया गया । उनकी सझेप में पुनरोक्ति के अलावा, जो उन्होंने पहले ज्ञापन में कहा था, उन्होंने कहा कि मुझे समाचार पत्र बिल्कुल नहीं दिए जाते, “आपका प्रार्थी ता इस स्थिति में भी नहीं है कि वह अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों का खंडन कर सके, जो भारत सरकार ने अपन निणय के लिए आधार बनाए है ।” इसके बाद के अनुच्छेदों में उन्होंने एक प्रकार से इन “तथाकथित आधारों” की चर्चा की है । “आपका प्रार्थी आगे निवेदन करना चाहता है कि उसने लाहौर और रावल-पिण्डी की गडबडी में कोई भाग नहीं लिया, न ही उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यक्ति को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहन दिया है, उसने राजद्रोह के समथन में कोई भाषण नहीं किया और गिरफ्तारी से पूर्व तथा तुरत बाद जिन बाता पर सोगो में रोप फैला हुआ था, सरकार की उन कारवाइयों की आलोचना करते समय वह कानून और सविधान की सीमाओं के बाहर नहीं गया, न ही उसने उन लोगों का समथन किया था, जो उसके विचार में ऐसी कारवाइयों का समथन करते थे और उसके विरुद्ध यदि यह संदेह किया जाता है कि उसने महामहिम की स्वदेशी सेना में गलत प्रचार करने की काशिश की तो यह भी निराधार है, क्योंकि आपके प्रार्थी को इन सनिकों के साथ मिलन तथा उनमें प्रचार करने का अवसर ही नहीं मिला ।’

ज्ञापन में कानूनी तथा सांविधानिक दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण मामला उठाने का प्रयत्न किया गया। "प्रार्थी के लिये यह सोचने का कारण है कि उसके विरुद्ध जो अधिनियम लागू किया गया है वह, भूतपूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक असंवैधानिक कानून है, जो चार्टर द्वारा उसे दिये गये अधिकार के बाहर है। वह ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश कानूनों की भावना के अनुसार नहीं, इसलिए वह अवैध है। इसे ब्रिटिश संसद ने कभी स्वीकृति नहीं दी कि उक्त अधिनियम द्वारा कायकारी सरकार को सदा के लिये यह अधिकार देना, ब्रिटिश प्रजा को अदालत में मुकदमा चलाए बिना व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करना है, जो प्राकृतिक न्याय तथा कानून द्वारा स्थापित सरकार की भावना के विपरीत है।"

अधिनियम के अवैध होने का विचार उन्हें (स्टोरी के अनुसार) ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास की एक पुस्तक 'लैंजर एंड स्वोड' से मिला, जिसका अध्ययन हाल में आरम्भ किया था। कुछ योग्य वकीलों ने इस प्रश्न पर ध्यान देकर विचार किया और इस विचार से सहमति व्यक्त की कि अधिनियम अवैध था।

समाचार-पत्र न दिये जाने का उन्हें सबसे अधिक कष्ट था। उसके बिना वह रह ही नहीं सकते थे। बाद के वर्षों में जब वह "सरकारी" कैदी होने का दावा नहीं कर सकते थे और न ही उन्हें विशेष रियायतें प्राप्त थीं और जेल के बेहूदा नियमों के अधीन उनको समाचार पत्र देना बन्द कर दिया गया था, तो इसके लिए कुछ अनधिकृत ढंग इस्तेमाल किये जाते थे। फिर भी कभी-कभार यह व्यवस्था असफल हो जाती थी और जेल की बहुत कम घटनाएँ ऐसी होती थीं, जिनके कारण वह इतना बेचैन होते थे, खीझते थे जितना दैनिक समाचार-पत्र न मिलने से। समाचार-पत्र न देने के बारे में दूसरे ज्ञापन में भी वैसे ही चर्चा की है, जिस प्रकार पहले ज्ञापन में की थी।

"प्रार्थी सम्मानपूर्वक निवेदन करता है कि "व्यक्तिगत प्रतिबंध", जिनकी अधिनियम में चर्चा की गई है, इसकी प्रस्तावना में दिये गये उद्देश्य की पूर्ण आवश्यकता से अधिक नहीं हो सकते, अधिनियम का प्रबल उद्देश्य निवारण है, किसी व्यक्ति पर बिना मुकदमा चलाये सजा देना नहीं।"

और, यदि इस रोगी में देखा जाये, तो भारत सरकार द्वारा समाचार पत्रों की मनाही करना, प्रार्थी को अपना निजी सेवक न देना या अपना सहधर्म रसोइया न देना "यामोचित तथा आवश्यक नहीं, न ही इस बात का बार्द औचित्य

हा सकता है कि उन्हें अपने किसी मित्र से न मिलने दिया जाये और यह निश्चित कर दिया जाये कि वह केवल उन सबधियों से मिल सकते हैं, जिनकी अनुमति पंजाब सरकार से पहले ली गई हो और वह भी इस स्थिति में कि उनकी यातचीत एक अधिकारी सुन पाए ।

“कि ये प्रतिबंध उस व्यवहार के प्रतिबन्ध है, जो ब्रिटेन में राजनीतिक क्रांति के साथ या संसद के विशेष कानूनों के अधीन, बिना मुकदमा चलाए गजरबन्द किये जाने वाले व्यक्तियों के साथ होता है ।”

अन्त में “प्रार्थी पूरी उत्सुकता से आशा करता है कि उसके साथ न्यायाचित तथा न्यायपूर्वक व्यवहार किया जाएगा, जिसके लिए ब्रिटिश कौम तथा सरकार प्रसिद्ध हैं ।” उन दिना भारत के राजनीतिक नेताओं में यह फार्मूला आम तौर पर माना जाता था ।

यदि इस सारी याचिका को मिलाकर पढ़ा जाये, तो यह दया के लिए निवेदन नहीं है । इसमें स्पष्ट तौर से जोर दकर अपने कानूनी अधिकारों का पक्ष लिया गया है । यह एक विरोध, एक चुनौती है, कानून लागू किए जाने के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि इसकी वैधता के विरुद्ध भी ।

इस दूसरे ज्ञापन का उत्तर दिए जाने की आशा नहीं थी—सिवाय इसके कि आप उनकी रिहाई में यह उत्तर दूँगे जो, जैसा आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे, उस समय मीलें और मिण्टो के पत्र-व्यवहार का विषय थी और सम्भवतया मिण्टो और पंजाब सरकार के पत्र व्यवहार का भी । कुछ भी हाँ, अधीक्षक न इस बार न तो उन्हें कोई “निर्णय” पढकर सुनाया, और न ही किसी निर्णय पर आधारित लिखा हुआ कोई “ज्ञापन” ही दिया ।

किस प्रकार मुलम्मा चढ़ाया गया है। “सगातार आशा और भय के घात प्रति घात के कारण उनका मत अस्थिर था।”

अनिश्चय की यह स्थिति 11 नवम्बर का सबेर सवा दस बजे समाप्त हो गई, जब माण्डले डिवीजन के कमिश्नर और पुलिस अधीक्षक तथा उप-अधीक्षक उनसे मिलने आए और बताया कि उन्हें रिहा किया जा रहा है। कमिश्नर न बाइसराय की ओर से चेतावनी भी दी कि यदि उन्हें फिर राजद्रोह की कोई कार्रवाई करते पकड़ा गया, तो गिरफ्तार करके तुरत निर्वासित कर दिया जाएगा।

सालाजी को तुरत सामान बांधने का कहा गया, क्योंकि विशेष रेलगाड़ी उनका प्रतीक्षा कर रही थी। कार्यक्रम के अनुसार गाड़ी को पीने म्यारह बजे छूटना था। उन्हें आधे घंटे में ही उस स्थान को छोड़ना था जो उनके लिए “दूमरा घर” बन चुका था।

पुलिस अधीक्षक रेलवे स्टेशन तक उनके साथ गया, जहाँ एक प्लेटफार्म के साथ वह “विशेष रेलगाड़ी” तैयार खड़ी थी। जेल अधीक्षक न उनके साथ हाथ मिलाया और कहा, “मुझे आपसे छुटकारा पाकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है और मैं आपके लिए शुभकामना करता हूँ।” उसने अपने भूतपूर्व कैदी को सलाह दी कि वह फिर “बेवकूफी” नहीं करेंगे। पुलिस अधीक्षक न उन्हें प्रथम श्रेणी के डिब्बे में, जो उनके लिए आरक्षित था, पहुँचाकर मैत्रीपूर्ण ढंग से उनके साथ हाथ मिलाया।

यात्रा में उन्हें एक सार्जेंट दिखाई दिया, जिसके बारे में उन्हें जानकारी थी कि वह उस दिन सरदार अजीत सिंह के साथ नियुक्त था। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि सरदार अजीत सिंह भी उसी गाड़ी में हैं। सायंकाल से पूर्व ही उन्हें पता चल गया कि सरदार अजीत सिंह द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में उसी गाड़ी में सवार थे और एक यूरोपियन पुलिस इन्स्पेक्टर तथा एक यूरोपियन सार्जेंट उनकी हिफाजत के लिए साथ थे।

इन निर्वासित व्यक्तियों की रिहाई के सबंध में सरकारी मशानरों किस प्रकार कार्य कर रही थी, उसकी झलक मिण्टा मॉर्ले पत्र-व्यवहार से मिलती है जो प्रमुख तौर पर मॉर्ले की पुस्तक ‘रिकलेक्शंस’ में और मेरी मिण्टो द्वारा संप्रदित अपने पत्रों के पत्रों से मिलती है।

25 अक्टूबर का मौलें न मिण्टो को लिखा

'—मरी इच्छा है कि आप इस बात पर गभीरता से विचार करें कि साजपत राय के साथ कैसे निपटा जाये। मेरे मन में आता है कि जब बैठकी के बारे में आपके नये कानून का लागू करने का समय आया, तो उस अवसर पर यह कहना चाहिए, हमने अब नये अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, हम शायद इससे भी आगे जाएंगे, इस नये बिल के साथ और यह सोचत हुए कि निर्वासन ने अपना पूरा काम किया है। 'साजपत चाहे चले जायें'—मुझे पूरा यकीन है कि आप उस कठिनाई को महसूस करते हैं—जा साजपत राय को बिना किसी आरोप के अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द करके हमें हाउस आफ कामन्स में पेश आती है। उनकी रिहाई 'मीटिंग एक्ट' का स्वीकार करवाने में एक प्रकार से सहायक होगी, इसके अलावा अय दमनकारी उपाय स्वीकार कराने में भी, जो आप करना चाहोगे।'*

यह पहला पत्र था, जिसमें निश्चित रूप से रिहाई का संकेत दिया गया था, इस प्रकार रिहाई के लिए पहली कारवाई सदन से शुरू हुई, सम्राट की ओर से नहीं, जैसा कि उस समय कुछ लोगो ने सोचा था, यद्यपि इसके बाद यह साधना आवश्यक नहीं कि यह वाइसराय की इच्छा के विरुद्ध कलकत्ता पर धापी गई थी। स्पष्ट तौर से मौलें के लिए "बिना आरोप के अनिश्चित काल के लिए नजरबन्दी" की कारवाई का स्पष्टीकरण प्रतिदिन सदन में दना आसान नहीं था और वह इससे ऊब गये थे।

जब मिण्टो ने राजद्राही बैठकी पर प्रतिबन्ध लगाने के कानून और संभव है अन्य दमनकारी कानूनों की स्वीकृति मागी होगी, तो मौलें ने प्रतिभार के रूप में सहायक दिया होगा कि दूसरी गलती करने से पूर्व पहली गलती को सुधार लिया जाये। इससे मौलें के लिए अपने उदारवाद को बनाए रखने के निर्भीक प्रयत्न में सहायता मिलेगी, उस उदारवाद को, जो अब तक फटकर पीघड़े बन चुका था। अपने मुहरबन्द आदेशों के शिकार व्यक्तियों की रिहाई का आदेश द दिन के बाद वह अपना सिर एक बार फिर ऊंचा कर सकते थे और यह दावा कर सकते थे कि उन्होंने प्रतिक्रियावादियों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी हुई है। इससे साथ ही यह एंग्लो इन्डियन अपसरशाही के साथ मिण्टो की सहायता भी कर सकती

यी, जिन्हें दमनकारी उपाय यह विश्वास दिला देंगे कि निर्वासितों की रिहाई का यह अर्थ नहीं है कि सुदृढ़ शासन के मिदघात छोड़ दिये गये ।

अपने मीटिंग्ग एक्ट के लिए बहुत उत्सुक होने के कारण, मिण्टो तुरन्त ही मोर्ले के सुझाव से सहमत हो गये । परन्तु इन्वेटसन सहमत हुए, यह नहीं जान पड़ता । मोर्ले के पत्र के उत्तर में मिण्टो ने 5 नवंबर का लिखा

‘जहां तक लाजपत राय और अजीत सिंह का प्रश्न है, मुझे लक्ष्मात्र भी सदेह नहीं कि सामान्य न्याय के अनुसार उन्हें अवश्य रिहा किया जाना चाहिए, और जितना शीघ्र यह हो जाए, उतना ही बेहतर है । अब जब हम यह घोषणा कर चुके हैं कि पंजाब शांत है, हम उन्हें और बंदी बनाये रखना किसी भी ढंग से तर्कसंगत और उचित नहीं कह सकते । नि सदेह रिहाई की पंजाब सरकार की आर से बड़ी आलोचना की जाएगी और अन्य क्षेत्रों की आर में भी, जो बिना सोचे-समझे दमन-चक्र को ही एकमात्र शस्त्र समझते हैं । मुझे अपन तौर पर कोई सदेह नहीं है कि सही क्या है । मन मारे प्रबन्ध कर लिए हैं और आपका तार द्वारा सूचना भेज रहा हूँ ।”*

इन्वेटसन ने आपत्ति की । परन्तु मिण्टो अब अधिक समझदार थे

“भरी जानकारी में अब ऐसी कोई बात नहीं, जिसके कारण मैं उनके इस कथन में सहमत हो सकूँ कि लाजपत राय का एक प्रमुख उद्देश्य भारतीय सेना की वफादारी का भ्रष्ट करण है । मुझे इस बात के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं मिला है । मुझे लगता है कि इन्वेटसन सारी स्थिति को ठीक ढंग से नहीं समझ रहे हैं । ऐसा दिखाई पड़ता है कि वह यह समझते हैं कि हम अशान्ति को दबा सकते हैं । हम ऐसा कदापि नहीं कर सकते । यह तो रहेगी ही, नये विचारों, नयी आकांक्षाओं के रूप में, जिसने भी इस विषय के बारे में गंभीरता से सोचा है और जिसकी उसे जानकारी है, वह इस राजद्रोह को समझने की गलती कर रहा है जिसे हम निश्चय ही दबता से दबाना है ।”**

*वही पृष्ठ 163

**सपद राजीवरास्ती द्वारा उद्धृत—लाज मिण्टो पृष्ठ ६ इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेंट 1905, पृष्ठ 105-

बुद्धिमत्ता की डम मनादशा म मिण्टो ने लिया

"साजपत राय निम्सदेह बहुत उच्च-चरित्र वाले हैं और उनके देशवासी उनका बहुत आदर करते हैं और जत्र मुझे उन्हें गिरफ्तार करने के लिए वहाँ गया था। यदि उम समय यह जानकारी होती जितनी अब है, तो मैं गिरफ्तारी के लिए महत्तम होने से परहे और ज्यादा प्रमाण चाहता।"†

परन्तु यह नहीं चाहते थे कि उनकी यह प्रशंसात्मक टिप्पणी साजपत राय के निर्वासित साथी पर लागू की जाए

"अजीत सिंह का स्थान उनके मुकामने में हर प्रकार से बहुत छोटा है और मुझे उनकी रिहाई म उसे साथी बनाने पर खेद हागा।"††

मौलें द्वारा फिर मिण्टो का

'8 नवंबर—आपने साजपत राय के बारे में जो खबरा अपनाया है उससे मुझे बहुत राहत हुई है। मन्निमडल ने, जिसे मैंने मारा मामला आपकी भाषा म बताया, इस निणय से पूण सहमति व्यक्त की कि आपको इस महत्वपूर्ण बँदी को इस आधार पर रिहा करने का जो अवसर मिल रहा है, जब कि आपने दमनकारी अधिकार प्राप्त कर लिए ह, फिर यह अवसर आपको कभी नहीं मिल पाएगा। इब्बटसन की दलील के अनुसार यह शक्ति क्षणभंगुर है और साजपत राय को सब तक बँदी रखना है जब तक यह क्षणभंगुरता स्थायी नहीं बन जाती, फिर ता यह सदा के लिए ही भाण्डने में रहेंगे। इससे अधिक बचकानापन और क्या हो सकता है।"*

यदि राजद्रोही बठको से सम्बद्ध कानून की सरकारी अधिकारा में बद्धि से उनकी रिहाई का औचित्य है तो साजपत राय का कभी भी निर्वासन नहीं होना चाहिए था। उन्होंने कभी भी असध्य सावजनिक सभाआ म भाषण नहीं किये थे, और मौलें को उनके भाषणा की दो से अधिक रिपोर्टें प्राप्त नहीं हो पाई, जिनमें उन्हें राजद्रोह की झलक दिखाई पडी हो, निश्चय ही यह मामला अदालत में निपटाया जा सकता था।

† सयद रजीवास्ती द्वारा उद्धृत—पृष्ठ 105

†† वही पृष्ठ 105

*मैरी वाउडेस आफ मिण्टो इण्डिया मिण्टो एण्ड मौलें 1905-1910, पृ० 163

शायद मिण्टो को स्वयं भी सहदह था, जब उ हान निर्वासित की स्वीकृति ली थी, तब कि म्यति सचमुच ही इतनी गभीर हो गई थी, जितनी कि सार्वा गई थी। 15 मई 1907 का उन्होंने अपनी पत्नी का लिखा (जा उस समय इग्लंड म थी)

"यद्यपि निजी तौर पर मैंन कभी नहीं साचा कि स्थिति सचमुच ही इतनी खतरनाक है, हालांन पहले भी और अब भी नाजुस ह।"†

नाजुस, हा—यह उनका अपना अन्दाजा था, परन्तु धबराहट वाले उपाय ता अन्दाजे (या अन्दाजा न हाने) के कारण थे, जो "यूरोपियना तथा यूरेशियनों" का था और उनके बारे में उन्होंने उमी पत्र में लिखा

"यूरोपियन तथा यूरेशियन हर स्थान से शस्त्र खरीद रहे हैं और मन सुना है कि मैदानी क्षेत्रों में सैनिक अपनी राइफलें अपने साथ बिस्तर में लेकर सोत हैं और तोपची अपनी तापा की जोतें अपनी थगल में रख कर। मैं आपको यह गप्प के तौर पर बता रहा हूँ, एक सच्ची गप्प के तौर पर, मेरा विश्वास है आपको वातावरण का अहसास करवाने के लिए ही यह कह रहा हूँ। गदर की स्मृति न यूरोपियना तथा स्वदेशिया दोनों को बहुत प्रभावित किया है, परन्तु के० और मैं, तथा अन्य लोग जिन्हें अच्छी तरह जानकारी है, उनका यह विचार नहीं कि जहा तक वर्तमान खतरे का प्रश्न है आन्दोलन इतना गहरा है।"††

ऐसा दिखाई पड़ता है कि निर्वासित के शीघ्र बाद ही मिण्टो को यह मालूम हो गया था कि लाजपत राय के विरुद्ध कोई ठोस प्रमाण नहीं है। लेडी मिण्टा को लिखे उमी पत्र में, जिससे पहले उद्घरण दिया गया है, उन्होंने लिखा है

"लाहौर में पुलिस ने गिरफ्तारी में गड़बड़ कर दी, उन्होंने लाजपत राय के घर से एक भी कागज उठाने का प्रयत्न नहीं किया, उन्हें दूसरे व्यक्ति को भागन का अवसर नहीं देना चाहिए था, जैसा कि उन्होंने किया।"†††

हा, लाजपत राय के घर की तलाशी नहीं ली गई थी, परन्तु यह बात निश्चित रूप से स्वीकार कर लेनी चाहिए कि यदि तलाशी ली जाती, तो मिण्टो को सख्त निराशा का मुह देखना पड़ता। लाजपत राय ने "विद्रोह" करवाने का प्रयत्न नहीं किया था और उनके पास सही अर्थों में खतरनाक दस्तावेज नहीं हो सकते थे—अफगानिस्तान के अमीर के पत्र या ऐसी ही चीजें।

†वही पृष्ठ 136

††वही पृष्ठ 136

†††वही पृष्ठ 137

क्या सचमुच ही उनके पास ऐसे काल्पनिक कागज थे ? यह स्पष्ट है कि उन्हें पूरा चैतावनी दे दी गई थी और आसानी से ही वह इससे विरुद्ध तैयार हो सकते थे, ऐसा मिण्टो को विश्वास था। "लाजपत राय की गिरफ्तारी का वारंट जारी होने की, गिरफ्तारी होने से बहुत पहले सारे बाजार को जानकारी थी।"† परन्तु मिण्टो की, निराशा से यह सचेत मिलता है कि पुलिस ऐसे प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकी, जिनमें लाजपत राय पर आरोप सिद्ध होता।

मिण्टो न इन्वेटसन पर, जो स्थानीय तौर पर उपस्थित व्यक्ति थे, निर्विवाद निम्बरता से आरम्भ किया। अजीत सिंह की गिरफ्तारी के वारंट को कार्यान्वित करने में विलम्ब—जब कि दोना गिरफ्तारिया में 25 दिन का अन्तर था—स्पष्ट तौर से इस बात को व्यक्त करना है कि पत्राव के अधिकारियों को उनके पते ठिकाने का ज्ञान नहीं था और उनके गैरचौकस तथा अयोग्य तौर तरीका ने इस विश्वास को जोरदार झटका दिया। उ हे यह समझन में अधिक देर नहीं लगी कि इन्वेटसन कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकते और उहाने अफवाहों तथा पुलिस की रिपोर्टों पर निर्भर किया, जिन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता था।

आम तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि लाजपत राय की ओर से गोखले द्वारा किये गये प्रयत्नों ने कुछ हद तक सरकारी मनोवृत्ति को प्रभावित किया। आन्तरिक तौर पर इसमें कोई असंभव बात नहीं। मिण्टो के बारे में कहा जाता था कि वह मिताचारी नेताओं से मैत्री की नीति पर चलते थे। गोखले ने लाजपत राय की रिहाई के लिए केवल समाचार-पत्रों द्वारा ही माग नहीं की, बल्कि उन्होंने इस उद्देश्य के लिए अधिकारियों के साथ अपने निजी प्रभाव का भी इस्तमाल किया। विशेषतौर पर गोखले ने मिण्टो तथा डनलप स्मिथ (मिण्टो के निजी सचिव) के साथ बातचीत में इस बात पर जोरदार विरोध व्यक्त किया कि लाजपत राय को अजीत सिंह के बराबर रखा जाये। उन्होंने 10 जून 1907 को डनलप स्मिथ को लिखा

"लाजपत राय को अजीत सिंह के बराबर रखना, लाजपत राय के साथ घोर अन्याय है। पिछली परवरी में जब मैं लाहौर गया था, तो अजीत सिंह ने पहले ही लाजपत राय का कायर तथा सरकार का पिट्ठू कहकर उनकी आलोचना

† मोर्ले द्वारा मिण्टो को 21 मई 1907, मोर्ले-नायडाल, लयव रजिवास्ती द्वारा उद्धृत लाजपत राय एण्ड दि इन्वेटसन नेशनलिस्ट मूवमेंट 1905-1910, पृष्ठ 143

करनी आरम्भ कर दी थी, क्योंकि लाजपत राय अजीत सिंह के प्रचार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे।”*

‘गोखले ने इनलप स्मिथ के साथ बात भी की। इस बातचीत का सार यह था कि गोखले ने लाजपत राय को शीघ्र रिहा करने का निवेदन किया—जहाँ तक अजीत सिंह की बात थी, वह चाहे जहन्नुम में सड़े। गोखले ने इस बात पर फिर जोर दिया कि लाजपत राय को उस शरारती अजीत सिंह के बराबर नहीं रखा जाना चाहिए था, जिसे भले ही अडमान भेज दिया जाना चाहिए था।”**

समय है कि लाजपत राय के निर्वासन के दौरान कीर्त हाईकी की भारत यात्रा में भी कुछ सहायता की हो। उसने स्वयं भारतीय स्थिति का अध्ययन किया था और कुछ निष्पन्न निवाले थे जो एक ‘वेवल’ में दिए गए थे, जो उसने 21 अक्टूबर को बडौदा से ‘डेली एक्सप्रेस’ सदन को भेजा था

“म सयुक्त प्रांत व पंजाब का भ्रमण करके लौटा हू। आपने पाठकों को पिछली बसत ऋतु में पंजाब से मिली वह रिपोर्ट याद होगी, जिसमें कहा गया था कि वहाँ राजद्रोह, हत्या, आगजनी और अव्ययस्था फैली हुई है। अब जानकारी मिल गई है कि वह हद से अधिक जाश और ईर्ष्यापूर्ण पत्रकारिता की कल्पना थी।

‘लाहौर और रावलपिण्डी के आसपास के जिला में विराये में 25 प्रतिशत की वृद्धि, आकियान में भारी वृद्धि तथा भूमि जब्त करने से सम्बद्ध कानून के कारण रोप था। आंदोलन उसने घाद हुआ। नहरी आकियाना वापस ले लिया गया और कालोनी बिल रद्द कर दिया गया। आंदोलन समाप्त हो गया। वेवल यही राजद्रोही आंदोलन था। 55 प्रमुख व्यक्तियों का चार मास के लिए बिना जमानत जेल में रखा गया। मुकदमा चला और वे बरी हो गये, जज ने अभिप्राय पक्ष के गवाहा को कूटसाक्षी घोषित किया और प्रमाणों को गढ़े गये बताया। इतना कुछ तो था राजद्रोही आंदोलन के बारे में, जिसका मुझे कोई निशान भी नहीं मिला। स्वदेशी पुलिस का वेतन बहुत ही अल्प है, पुलिस कमचारी अज्ञानी और घूसखोर हैं। इसमें वृद्धि करते हैं बेशक़र दण्डनायक अधिकारी, सनसनीखेज खबरें फलाने वाले, जो अधिकतर गठबन्ध के लिए जिम्मेदार हैं।

*नयद रजीवास्ती द्वारा उद्धृत-नाम मिष्टी एड द इन्डियन नेशनल मूवमेंट 1905 से 1910 पृष्ठ 10’

** नयद रजी वास्ती-वही, पृष्ठ 103

“सरकारी अधिकारिया का गला जानकारी दी गई है। उनका लागू के माय रिपट सम्मन नहीं और वं पूरी तरह पुलिस की रिपोर्टों पर निर्भर करत है, जिन पर उपर की अदालतें व्यापक तौर पर विश्वास करती है” ।

इसी दौरान हर्द ए० ट्यू० नैविमन की भारत-यात्रा की चर्चा भी यहां पर दी जानी चाहिए। उसन ‘डेली प्रॉब्लम’, ‘द मान्चेस्टर गार्डियन’ तथा ‘ग्लोसिंग हेरल्ड’ का समाचार भेजे, उनम भी सरकार की बड़ी आलाचना की गई।

निवासन के बाद पंजाब म एग प्रकार की शांति अवश्य थी। इन शान्ति के पारणा म इन्वेटमन के वात्सोनाईजेशन जिल का रद्द किया जाना, जिसे मिण्टो ने गुण दाप के आधार पर रद्द करना उचित समझा, तथा रावलपिण्डी के नेताओं की बाइजात रिहाई, तथा यह सच्य कि पंजाब म भााही की घापणा कर दी गई थी। सावजनिक सभाएं करने की आगा नहीं थी। साजपत राय के निर्वासन के विरुद्ध रोप व्यक्त करने के लिए दिल्ली म एग बैठक की गई थी और उसके बाद वहा भी “प्रतिबध” लगा दिया गया था। पूर्वी बंगाल म भी मनाही कर दी गई थी। वहा कनेक्टर की अनुमति से एग सम्मेलन फरीदपुर में आयोजित करने का कायम था, परन्तु यह सम्मेलन करने का विचार छोड़ दिया गया, पयोकि कलेक्टर ने साजपत राय के बारे म एग प्रस्ताव रखन पर आपत्ति की थी।

“शांति” का केवल यही अर्थ था कि सावजनिक सभाओं पर रोक लगा दी गई थी। नहीं तो, हम पहले ही देख चुके हैं कि निर्वासन के चार मास पश्चात भी, अगस्त के अन्त में मिण्टो स्थिति के और अधिक गभीर होने के बारे म रिपोर्ट भेज रहे थे। और पुलिस की सूचनाओं के अनुसार सावजनिक सभाएं न होने की कमी, पंजाब और उत्तर पश्चिमी प्रांत में हुई निजी बैठकों से पूरी हो गई थी— ये अनौपचारिक सभाएं हाती थी, ये केवल पुरुषों की ही नहीं अक्सर महिलाओं की भी हाती थी, ये निर्वासन के विरुद्ध रोप से उत्पन्न हुई थी, इनमें आंदोलन तथा सगठन के लिए धन इकट्ठा किया जाता था और कभी कभार इनका उद्देश्य बंगाल और महाराष्ट्र में काय करना भी होता था। ये सभी, जिनके बारे म पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं थी, सदेह बढ़ाती थी और अधिकारियों का सिर दद भी।

रिहाई के निणय से गोखले और कीर हाडी का कोई सबध सम्भव हो सकता है, परन्तु इस बात पर जार देना अनुदेयता होगी कि मिण्टो तथा मोर्ले नजर

बंदी के कारण हुए घोर अन्याय के प्रति विलकुल अनभिज्ञ थे। जैसा मिष्टो ने कहा है, उन्हें लाजपत राम को "सामान्य न्याय" की खातिर रिहा करना पडा। छ मास की अवधि में वह लेशमात्र भी प्रमाण नहीं जुटा पाये, जिनसे यह सिद्ध हो जाए कि किसी गुप्त काय में उनका दखल था, इसने विपरीत वे प्रमाण मिले थे कि मुखबिर अधिकारियों को गुमराह करते रहे हैं और ये मुखबिर अधिकारियों की घबराहट तथा भालेपन का लाभ ले रहे हैं। अधिनियम के अधीन इस मामले पर छ मास के बाद फिर से विचार करना था और जब मोर्ले ने कलकत्ता में अपने पत्र में रिहाई पर जोर दिया, तो उस समय छठा मास चल रहा था।

सरकारी तौर पर गोपनीय रखने के प्रयत्न के बावजूद समाचार 1 नवम्बर को ही फल गया था। 'द स्टेट्समैन' के रगून वाले पत्रकार ने तार द्वारा ब्यौरा भेज दिया था और उसे सही मान लिया गया था।

घर की ओर यह यात्रा छ मास पहले की माइले की यात्रा के विलकुल विपरीत सिलसिला था। इसमें अन्तर यह था कि सभी ओर अधिकारी अब अधिक शिष्टाचार दिखा रहे थे और रसद की उपलब्धि तो बहुत थी, यहा तक कि खाद्य-पदार्थ फिजूल जात थे। गोपनीयता के वही सरकारी प्रयत्न जारी रहे, परन्तु फिर भी लोगों को किसी न किसी तरह से जानकारी मिल ही जाती थी और जहा कही भी यह 'बंद गाडी ठहरती जन समूह एकत्र हो जाता। गाडी ठहरने वाले सभी स्टेशन पर खिडकिया तथा द्वार बन्द रखन का सिलसिला पहले जमा ही था। लाजपत राम और अजीत सिंह एक दूसरे को न देख सके, विशेष-पर स्टीमर पर यात्रा के दौरान। इसके कारण कई बार हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो गई। कैदियों को रगून की उपनगरीय बस्ती के उसी स्टेशन 'पूजोनडौंग' पर उतारा गया, जहा से उन्हें माइले के लिए रेलगाडी पर सवार किया गया था। उन्हें उसी घाट से जहाज पर सवार कराया गया, जहा छ मास पूर्व उन्हें माइले जाते समय उतारा गया था। फिर वह एस० एस० 'गाइड' में सवार हुए। रगून से यह 12 तारीख को सबेरे 7 10 पर चना और 15 तारीख सायंकाल इसने हुगली के दहाने में प्रवेश किया और सागर-प्रवाश स्तम्भ के दूसरी ओर लगर डाल दिया। अगले दिन प्रात 5 30 पर उसने लगर उठाया और 8 30 के करीब स्टीमर डायमण्ड हाबर से गुजरा, वापसी पर भी सागर में तूफान था, यद्यपि अन्तिम दिन खुशगवार था। मामले को गोपनीय रखने के कारण अनुचित परिभ्रमण करना पडा। प्रात 10 बजे स्टीमर ने कलकत्ता से 40-50 किलोमीटर दूर रामपुर में लगर डाल दिया।

यहां वे लोग दोपहर बाद 4 30 तक रहे। मूर्ध्नि वे करीब वह बज्रज के निकट उतरे—“एक बार फिर मैं भारत भूमि पर था।” विशेष रेलगाड़ी तैयार थी और उसे एक अलग लाइन पर खड़ा किया गया था, ताकि लोग को दिखाई न पड़े। अब बगान पुलिस के एक इंस्पेक्टर ने पहरेदारी का दायित्व सभाल लिया था। दोनों बंदियों को अलग रखा गया था। एक को प्रथम दर्जे में और दूसरे को द्वितीय दर्जे में। रेलगाड़ी चक्करदार भाग से खान हुई, जो तदर्थ भाग था। बिलासपुर से यह ब्राच-लाइन द्वारा बटनी गई, वहां से अपने दक्षिण-पश्चिम रेलवे का भाग लिया और भटिंडा के रास्ते लाहौर गई। गाड़ी झूठे नाम से चलाई जा रही थी और इस बात का ध्यान रखा गया था कि प्लेट फाम पर भारतीय न रहें।”

पुलिस के पहरे के अतिरिक्त बगाल—गगपुर रेलवे के ट्रफिक मैनेजर क्लार्क तथा सहायक ट्रफिक मैनेजर भी बलबलता से उनके साथ गये। “क्लार्क ने अपने सैलून में मुझे रात का भोज दिया और वह बहुत ही विनम्र तथा दयालु थे।” अधिपतर उन्हें डिब्बाबंद पदार्थों पर निर्भर करना पड़ा, परन्तु क्लार्क ने इस बात को आश्वस्त किया कि सभी कुछ पर्याप्त हो और सुविधाजनक रहे।

वापसी-यात्रा पर भाज-सामान उपलब्ध कराने में काफी उदारता दिखाई गई, परन्तु बहुत ही कीमती वस्तुओं की लालाजी ने छुआ तक नहीं, क्योंकि वह इस केवल सामाजिक धन का अपव्यय समझते थे।

आखिर यात्रा समाप्त हुई। वह लाहौर के मुख्य रेलवे स्टेशन पर नहीं, बल्कि मियामीर बस्ट (अब लाहौर छावनी) रेलवे स्टेशन पर 18 नवंबर 1907 का प्रातः 5 30 पर उतरे। तुरत ही लालाजी और सरदार अजीत सिंह का एक सैलून में ले जाया गया, जहां सैडन जेल लाहौर के अधीक्षक मेजर सी० एच० बासले ने पहले उन्हें माइले जेल में लाहौर जेल में तब्दील करने तथा उसके पश्चात् रिहा करने का आदेश पढ़कर सुनाया। यह बारबाई समाप्त होने पर एक मोटर गाड़ी उन्हें दे दी गई और एक टमटम सामान के लिए दी गई। लाहौर जिले का पुलिस अधीक्षक स्पेंडेल उत्तरी गाड़ी के आगे एक अथ गाड़ी में चला गया। जब राजपत राय अपने बगले के आगे में प्रवेश कर गये, तो वह चला गया।

इस प्रकार छ मास नौ दिन की अनुपस्थिति के बाद वह पर लौटे थे।

त्रिवेणी बहती रही

30. निर्वासन का परिणाम

माडले से लाजपत राय उन दिना की भारतीय राजनीति के नायक बनकर लौटे। निर्वासन शीघ्र ही उनके जीवन की विशेष घटना बन गया। उनकी ख्याति की ओर बढ़ाने में हम देखते हैं पहली महत्वपूर्ण घटना उनका वह भाषण था जो उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के निधन पर दिया था। तब उनकी उम्र बीस बरस से कुछ ही ऊपर थी। इन्होंने सिद्ध कर दिया कि सावजनिक वक्ता कं तौर पर वह जादू कर सकत है और इस प्रकार वह सीधे ही आय समाज के आतंरिक क्षेत्र में प्रवेश कर गये। दूसरी महत्वपूर्ण घटना के लिए हम सर सैम्युअल अहमद खा को लिये गए "खुले पत्रों" की ओर ध्यान देना होगा। इनके कारण उनका नाम और चर्चा समाज और पत्रों से बाहर जा पहुँची, इसलिए जब वह इन पत्रों के बाद कांग्रेस अधिवेशन में पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि वह पहले ही ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनके बनारस भाषण का संदेश, जिसमें उन्होंने आत्मनिर्भर और आप्रही राष्ट्रवाद के लिए आह्वान किया था, कांग्रेस के तथा उनके अपने जीवन में एक और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। नई शक्तियों ने एकदम लोगों का ध्यान आकर्षित कर लिया और प्रचलित राजनीतिक मिताचार घटिया बकालत, भिन्नमतापन, यथायथादी लगा, जो उनके भाषण की उपज नहीं था, परन्तु ऐसा ही दिखाना था। उनका आगमन, कांग्रेस की नीरस कारवाइयों में, जो शांत शैली में और निश्चित हाती थी, एक परिवर्तन था। स्वयं लाजपत राय के लिए यह इंग्लैंड में हुए अनुभव तथा मानवीय मामला में उस समय कायरत शक्तियों का, विशेषतौर पर पूव में, परिणाम था जो जोरदार आवाज के रूप में व्यक्त हुआ। उनका निर्वासन चौथी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, यह पिछली ऐसी घटना का शिखर बिंदु थी। मिताचारी नेताओं के परिष्कृत भाषण युवा दिलों को छूते तो थे परन्तु स्वराज, स्वदेशी और बहिष्कार की नई शिक्षा को अपनाने के लिए वे अभी सहमत न थे। कांग्रेस पर चाह किसी का भी नियंत्रण था, परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं था कि नई पार्टी ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। नये संदेश से जनसमूह के दिल की धड़कने तेज हो गई—उस जनसमूह की, जिस पर मिताचारी विचारधारा वाले नेताओं के नेपेतुने शब्दों वाले भाषणों ने कोई बाट नहीं की थी। नायक पूजा ने शीघ्र ही नई त्रिवेणी—नाल, बाल, पाल—के साथ स्वर सामंजस्य कर लिया—ये ये

लाला साजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल । ये नेता पंजाब, महाराष्ट्र और बंगाल से थे, जो नये आन्दोलन के तीन महत्वपूर्ण गढ़ थे । इन तीनों नेताओं की लोकप्रिय तस्वीरें असंख्य घरों को सजा रही थीं और इस प्रकार अपने राजनीतिक समयन का परिचय दे रही थीं । उस समय जो पीढ़ी बड़ी हो रही थी और जिसने आगे चलकर भारत की स्वतंत्रता के लिए बलिदान दिये, उन्हें लाल, बाल तथा पाल अब भी याद होंगे । तीन चेहरों वाला प्रकाश-स्तम्भ जिसने उन्हें माग तथा ध्येय की पहली स्पष्ट झलक दिखालाई । “बदे मातरम्” तथा लाल-बाल-पाल के लोकप्रिय चित्रों ने उनकी युवा आँखें एक नये सप्ताह में खोल दी जिसमें “सत्याग्रह” तथा “सविनय अवज्ञा” के बाद तत्संगत और स्वाभाविक कदम 1907 का स्वराज, स्वदेशी तथा बहिष्कार का उपदेश था ।

“बाल” तथा “पाल” दलगत बफादारी के लिये पूणतया निश्चित थे, परन्तु “लाल” को तो उपदेश में विश्वास था, मठ में नहीं, इसके अतिरिक्त वह गोखले से अपनी व्यक्तिगत बफादारी छोड़ने को तैयार न थे, जा विरोधी मत के प्रमुख थे, परन्तु वह कट्टर पक्षधर थे या नहीं, उनकी पिछली शासदार सेवा तथा बलिदानों, उनके महान् चरित्र और बेदाग बफादारी तथा इसके साथ इस सब जनिक् विश्वास ने कि वह पूणतया स्वच्छ और बेदाग है और उनका उन गुण तथा बुरी योजनाओं के साथ कोई वास्ता नहीं, जो उनके शत्रु उनके नाम के साथ जोड़ते हैं, उनके निर्वासन को शहीदों का दर्जा दे दिया । इसके कारण नये आन्दोलन में रुचि रखने वाले सभी लोगों तथा आन्दोलन के समर्थकों के दिलों में उनका सम्मान एकदम बहुत बढ गया, और कुछ ही लोग ऐसे थे जिन्हें राजनीतिक सूक्ष्म रूप थी और जिनकी आन्दोलन के साथ सहानुभूति न थी । इसके अतिरिक्त विदेशी सत्ता के विरुद्ध उग्रवादियों की नाराजगी सदा के लिए और गहरी तथा गभीर बना दी गई, इसने उग्रवादियों को और अधिक उग्र बना दिया और जो लोग जोशीले तथा सिरफिरे थे, उनकी भावनाएँ और उत्तेजित कर दी । जब ऐसा हुआ तो यह स्वाभाविक था कि नियंत्रण और प्रभाव रखने वाली शक्तियाँ दुबल होती गईं । इसका विश्लेषण करते हुए मोटे तौर पर तथा बिल्कुल निष्पक्ष तौर पर निर्वासन के बाद की घटनाओं के बारे में साजपत राय ने ‘यंग इंडिया’* में लिखा *

“मई 1907 में साजपत राय के निर्वासन ने विचार और व्यवहार की भारी धारा ही बदल दी। राष्ट्रवादियों ने निश्चय किया कि सत्याग्रह के आंदोलन के लिये गुप्त प्रचार तथा बल का उत्तर बल से देना की आवश्यकता है। आदरणीय श्री जी० वे० गोखले के शब्दा में, जो उन्होंने साजपत राय के निर्वासन के बाद गवर्नर जनरल की परिपत्र में भाषण देते हुए कहे कि साजपत राय ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें उग्र राष्ट्रवादी अपना व्यक्ति समझते हैं और मिताचारी राष्ट्रवादी भी सम्मान देते थे और जिन्हें आम लोग उनकी दानवीरता तथा शक्ति गति विधियाँ के लिये चाहते हैं। इनकी अचानक गिरफ्तारी न, वह भी बिना मुकदमा चलाए, बिना आरोप और जिना सूचना के युवा राष्ट्रवादियों का जनून की सीमा पर पहुँचा दिया। यहाँ तक कि राष्ट्रवादियों में, जो गभीर तथा विचारवान भी थे, वे भी हताश थे।

परन्तु देश भर में एंग्लो इंडियन समाचार पत्र खुशियाँ मना रहे थे। प्रमुख अखबारकारी समाचार-पत्र ने जो साजपत राय के मुख्यालय, लाहौर से प्रकाशित होता था, उन्हें गहरे आतिकारी आंदोलन का नेता बताया, जिसकी प्रत्येक जानकारी उनके हाथ से गुजरती थी। बताया गया था कि “एक लाख आत-सायी” उनके साथ हैं। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले ‘द इंग्लिश मैन’ ने उन पर आरोप लगाया कि उन्होंने भारतीय सेना की बफादारी में गडबडी की और अफगानिस्तान के सम्राट को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। निर्वासन के जखम के साथ अपमान करने से, जैसा कि वह करते ही थे, सारे देश में नाराजगी की लहर दौड़ गई। विचारधारा के सारे मतभेद भुला दिए गये और सारा देश प्रतिवाद में शामिल हो गया। परन्तु राष्ट्रवादियों के उग्र गुट ने अगला कदम उठाने का निणय किया। उन्होंने बल प्रयोग का निणय किया और व स्थापित तानाशाही के विरुद्ध बम, रिवाल्वर तथा छापामार लड़ाई के बारे में सोचने लगे। बड़ी उम्र के लोग, यद्यपि उन्हें सहानुभूति थी, शारीरिक शक्ति इस्तेमाल करने वाले आंदोलन में भाग लेने के लिए तयार नहीं थे, न ही वे यह भाग अपनाए जाने को अपनी स्वीकृति देते थे।”

विश्लेषण के साथ युक्ति-युक्त घटना चक्र का तिथिवार व्यौरा भी दिया गया

“यह समझ है कि 1906 में बंगाल में किसी प्रकार का गुप्त संगठन था, परन्तु उनके वायज्यम में मई 1907 से पूर्व बल प्रयोग का दखल नहीं था, अर्थात् साजपत राय के निर्वासन के बाद तक। इसका निणय निर्वासन न किया। फिर

31. सूरत का विच्छेद

‘जिस प्रकार गेटे १ वान्मी की सड़क म बहा था, मैं भी वह सपता था । आज का दिन नये युग का प्रारंभ है और तुम कह सकते हैं कि तुम इस अंधगदर पर उपस्थित थे ।’*

“नालाजी केंद्रीय व्यक्ति थे, जिनके चारा आर 1907 की घटनाएँ घूमती थी ।”**

“इतिहास में व बातें वभी-वभार ही अंकित होती हैं जा निर्णायक ता हाती हैं, परन्तु पदों के पीछे हाती हैं, इसम ता केवल वही बातें अंकित होती हैं, जा पदों के सामने होती हैं । बहुत कम सांग जानत है कि यह मैं ही था, जिसने तिलक से सलाह किये बिना आदेश दिया था, जो कांग्रेस के विभाजन का कारण बना और जिसके कारण नये मितागारी सम्मेलन म शामिल होने से इन्कार कर दिया, यही दा निर्णायक घटनाएँ थी, जो सूरत म घटी ।”—थी अरविंद, अपने बारे में ।

अभी उनके लिए एक और परीक्षा शेष थी—अधिक बड़ी परीक्षा शायद उससे भी बड़ी जिसम में निकलकर वह राष्ट्रीय नायक बने थे । अपनी गिरफ्तारी से पहले ही वह देख रहे थे कि दोना गुटों के बीच खाई बड रही थी—मिनागारी विचारधारा वाले ननावा तथा उन सागा के बीच जिनकी राजनीति में अधिक शक्ति थी और जा अपन आपकी राष्ट्रवादी कहते थे, अक्सर उन्हें उग्रवादी, तिलक पथी या नई पार्टी के कहा जाता था । वैसे उन्हें वामपथी कहना अधिक उचित होगा, परन्तु 1907 म भारतीय राजनीति की विचारधारा म अभी ‘दक्षिण-पथी’ और ‘वाम पथी’ की धारणा नहीं चली थी, परन्तु यदि इम शक्तिशाली गुट के लिये बढन पूलन के लिए शकुन अच्छे थे । इस बात में काफी सदेह था कि इनके अभाव म लाजपत राय राजनीति की आर या इंडियन नेशनल कांग्रेस की ओर अधिक आकृष्ट हुए होते । कांग्रेस का प्रारंभिक दौर उन जोश ‘भरने’ में बिन्कुल असफल रहा था, और उस स्थिति में मंजिनी

*हन्री ३३०० नेविनमन (२ वू गिरिट इन इंडिया—पृष्ठ 258)

**पट्टाभि सीता रामया—हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस भाग I, पृष्ठ 10२ ।

भी पहली गाली दिसम्बर 1907 तक नहीं चलाई गई और पहला बम अप्रैल-मई 1908 से पूव नहीं फँका गया। दिसम्बर 1907 में सूरत में हुए विच्छेद न राष्ट्रवादियों को अटल रूप से दो दला में बाँट दिया और युवा गुट का बल प्रयोग के कार्यक्रम में दब कर दिया।"

"बल प्रयोग" के बारे में आगे की टिप्पणी में हम यहाँ स्मरण करवाते हैं कि जब तिलक को साजपत राय के निर्वासन का समाचार मिला, बताया जाता है कि उनकी सहज भाव प्रतिक्रिया थी—'क्या मिष्टो जीवित है?' स्वयं तिलक ने केवल सांजनिक् आन्दोलन का शस्त्र ही इस्तेमाल किया। परन्तु "युवा पार्टी" ने स्वाभाविक तौर पर प्रतिक्रिया दिखाते हुए अन्य साधनों के बारे में सोचा। सेनापति बापट ने, जो तिलक के बहुत निकट था और जिसे यह श्रेय जाता है कि वह यूरोप से बम तैयार करने की विधि सीखा था, इस बात की पुष्टि की है कि साजपत राय का निर्वासन एक निर्णायक घटना थी।

निर्वासित साजपत राय ने एंग्लो-इंडियन मन को भी काफी अधिक प्रभावित किया, जिस प्रकार भारतीय उपवादियों को प्रभावित किया था—अलबत्ता, यह प्रभाव विभिन्न दिशाओं में था। यह तथ्य कि वह बहुत उच्च चरित्र के स्वामी थे, जिसे उच्च-स्तरीय व्यक्तियों ने भी स्वीकार किया है और इस बात का लेशमात्र भी प्रमाण नहीं था जिसे उस दुष्टतापूर्ण सदेह की पुष्टि हो सके जिसके कारण उन्हें सरकारी मुहर वाले आदेश के अधीन गुप्त रूप से उड़ा लिया गया था, इस सबसे उन लोगों के मन पर बहुत दबाव पड़ा था जिनके "गौरव" ने उन्हें यह दिखाते रहने पर मजबूर किया था कि वह अबूक हैं या गलत नहीं हो सकते। यदि इस वार्ता के अन्त में आप इस स्वच्छतम और अति निष्कपट व्यक्ति के बारे में, जो शत्रु तथा मित्र के लिए समान था, ब्रिटिश अधि कारियों द्वारा बार बार यह सदेह ध्वस्त करते हुए पाए कि वह किसी न किसी प्रकार से किसी गहरे पडेयत और महत्वपूर्ण गुप्त कार्यक्रम सम्बद्ध है तो यह केवल एंग्लो इंडियन मन की मनक है, जो 1907 की घटना के लिए जिम्मेदार है। यदि उन्हें कुछ सा प्रमाण भी मिल जाता जिससे वह अपने अन्याय को उचित ठहरा पाते तो यह घटना न होती। या फिर वे इतना साहम जुटा पाते कि यह स्वीकार कर सकें कि उन्हें गमराह किया गया है, तो उनके मन से वह तत्त्व निकल जाता जो बार बार उनके अचेतन मन में दुराग्रह से उभरते रहते थे, तब सम्भवत इसका परिणाम बहुत ही भिन्न होता।

31. सूरत का विच्छेद

“जिम प्रकार गेटे न वाल्मी की सहाई म कहा था, मं भी कह गवना था । आज का दिन नये युग का प्रारम्भ है और तुम कह सवत हो कि तुम इम अथमर पर उपस्थित थे ।”*

“सात्ताजी केंद्रीय व्यक्ति थे, जिनके चारा आर 1907 की घटनाए घूमती थी ।”**

“इतिहास म व बात कभी-कभार ही अंकित हाती है जा निर्णायक ता हाती है, परन्तु पदों के पीछे होती है, इगमे तो केवल वही बातें अंकित होती ह जो पदों के सामने होती है । बहुत कम लोग जानत है कि यह मै ही था जिसने तिलक स सलाह किये बिना आदेश दिया था, जो कांग्रेस के विभाजन का कारण बना और जिसके कारण नये मिताशारी सम्मेलन म शामिल हाने से इन्कार कर दिया, यही दा निर्णायक घटनाए थी, जो सूरत मे घटी ।”—श्री अरविंद अपन बारे थे ।

अभी उनके लिए एक और परीक्षा थोप थी—अधिक बड़ी परीक्षा शायद उससे भी बड़ी जिसमे से निवृत्तकर वह राष्ट्रीय नायक बने थे । अपनी गिरफ्तारी से पहले ही वह देख रहे थे कि दोना गुटा के बीच छाई बढ रही थी—मिताशारी विचारधारा वाले नेताओ तथा उन लोगो के बीच जिनकी राज नीति मे अधिक शक्ति थी और जा अपने आपको राष्ट्रवादी कहन थे, अक्सर उह उग्रवादी, तिलक पथी या नई पार्टी के कहा जाता था । वैसे उन्हें कामपथी कहना अधिक उचित हागा, परन्तु 1907 मे भारतीय राजनीति की विचारधारा मे अभी “दक्षिण पथी” और “वाम पथी” की धारणा नहीं खली थी, परन्तु यदि इम शक्तिशाली गुट के लिये बढन फूलन के लिए शकुन अच्छे थे । इस बात मे काफी सदेह था कि इनके अभाव मे लाजपत राय राजनीति की ओर या इंडियन नेशनल कांग्रेस की ओर अधिक आकृष्ट हुए होते । कांग्रेस का प्रारम्भिक दौर उन जोश “भरन” मे विल्कुल असफल रहा था, और उस स्थिति मे मैजिनी

*हेंदरी डबरवू० त्रिभुवन (२ वू ग्लोबल इन इंडिया—पृष्ठ 258)

**पट्टाभि सीता रामया—हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग I, पृष्ठ 102 ।

तथा गैरिबाल्डो पर उर्दू में लिखी गई उनकी पुस्तक ने राष्ट्रीय जागरण में कांग्रेस के मंच के मुकामले अधिक योगदान किया था। परन्तु 1904-05 से उन्होंने वातावरण में परिवर्तन आता भाप लिया था और उन्होंने इस परिवर्तन के प्रति बड़ी तेजी से प्रतिक्रिया दिखाई। बनारस कांग्रेस में उन्होंने जा भाषण दिया उसने वामपंथी गुट की अभिव्यक्ति में निश्चय ही योगदान किया। परन्तु जैसा कि हमने देखा है बनारस में भी उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि व्यक्तिगत रूप से गोखले को नाराज न करें। उनका वह बहुत आदर करते थे। गोखले के प्रति इस सम्मान भावना के कारण ही समझौते का फार्मूला संभव हो सका, जिसके कारण कांग्रेस पण्डाल में जो "तमाशे" अटल महगूस हो रहे थे, वे टल गये, यद्यपि उन्होंने तिलक का पक्ष लिया था। पर समझौते से उन्होंने निश्चय ही गोखले को आभारी बनाया। जब उन्होंने मध्यस्थ का कार्य भी सफलतापूर्वक किया तब भी उनका अपना मत सामान्य तौर पर तिलक के मत के समान ही माना जाता था।

साजपत राय को नवंबर में रिहा किया गया था और अगले ही मास यह स्पष्ट हो गया था कि कांग्रेस के अगले अधिवेशन में वाम तथा दक्षिण पंथी गुटों में सघर्ष होगा। यद्यपि साजपत राय साहसी नीति के पक्ष में थे, फिर भी वह अल्प लोगों के मुकामले इस बात के लिए अधिक चिन्तातुर थे कि विच्छेद टाला जा सके। संभवतः सतुलन बनाये रखने के बारे में सोचते हुए उन्होंने अधिक तेजी के साथ होने वाली हानियाँ के बारे में सोचा। यह भी संभव है कि गोखले के प्रति व्यक्तिगत आदर के कारण (शायद कुछ सीमा तक मालवीयजी के लिए भी हो) यह कुछ रुके, कुछ हिचकिचाये। कारण चाहे कुछ भी हो, यह एक तथ्य है कि वह पूर्णतया पार्टी के व्यक्ति बनने को तैयार नहीं थे।

सामान्य लोग, जिन्हें राजनीति की कुछ सूझ थी, उन्हें तिलक के गुट का आदमी समझते थे, विशेषकर उनके निर्वासन के बाद और आशा करते थे कि वह उसी धारणा के अनुसार कारवाइ करेंगे। उन्होंने साल, बाल, पाल की नई विमूर्ति को अटूट तौर पर अपन राजनीतिक मंदिर में स्थापित कर लिया था।

इसी प्रकार कांग्रेस के अन्दर राष्ट्रवादिया (या वाम पंथिया) का विचार था, जो उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए अपना उम्मीदवार गड़ा करना चाहता था।

नवारात्मक ङग से मिताचारियो ने भी उन्हें पार्टी का लेबल दे दिया, उस हद तक कि उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी कि वे उन्हें अध्यक्ष नहीं बनाएंगे ।

यह सत्य है कि गोखले के मन में उनके प्रति सही अर्थों में सम्मान था । बहुत से लोगो के लिये यह एक पहली ही थी कि लाजपत राय एक ही समय में तिलक और गोखले के मित्र तथा प्रशंसक कैसे हो सकते हैं । सामान्य लागो का मन चाह तिलक के बंदी बनाए जाने के लिए आशिक तौर पर उन्हें जिम्मेदार ठहराता था, परन्तु लाजपत राय की रिहाई के प्रयत्ना का श्रेय गोखले का देता था, चाहे यह उनके उचित भाग से भी अधिक था । तब भी यह मामला उस समय बिल्कुल स्पष्ट था, जब प्रश्न मिताचारी और उप्रवादिया में आपसी विरोध का था । लाजपत राय गोखले के लिये उसी राजनीति मत के समर्थक नहीं थे, जिसके गोखले स्वयं थे । इसलिये उनके साथ, उसके अनुसार ही व्यवहार किया जाना था ।

इस प्रकार जनमत, तिलक समर्थको तथा मध्यमागिया—सभी के लिए लाजपत राय कट्टर वाम पक्षी थे और फिर भी लाजपत राय स्वयं यह भूमिका अपनाने के लिए सहमत नहीं थे, यदि इसका अर्थ विच्छेद था । उन्होंने यही पर सीमा निर्धारित कर दी । वह राष्ट्र की आर से उपहार के रूप में सर्वोच्च सम्मान लेने को भी तयार नहीं थे, यदि यह सम्मान लेने अथवा स्वीकार किये जाने से गोखले अप्रसन्न होते और कांग्रेस लड़ने वाले दो गुटा में बंटती । वह बड़ी आसानी से प्रतीक्षा कर सकते थे ।

यह निश्चय ही प्रतीक्षा कर सकते थे । परन्तु उनका इन्कार वाम पक्षी गुट की संभावनाओं पर क्या प्रभाव डालेगा ? शायद उस पक्ष का वह कोई अधिक महत्व नहीं देते थे । शायद कट्टरपक्षी हाते हुए भी वह एकता को बहुत मूल्यवान समझते थे । उन्होंने यह खतरा भोल लिया, चाहे इससे उनके मित्र महसूस कर कि वह उन्हें छोड़ गये हैं । निस्सन्देह यह पलायन ब्राउनिंग के 'लौस्ट लीडर' से भिन्न था—'एक सम्मान या पद के लिए वह हमें छोड़ गये हैं' । क्योंकि एकमात्र 'रिवन' जिसकी लाजपत राय आशा कर सकते थे उन लोगो की ओर से उपहार था, जिन्हें वह "छोड़ते हुए" समझे जाते थे । उन्होंने रिवन से इन्कार कर दिया और उन्हें छोड़ गये । ब्योरे तथा विश्लेषणात्मक टिप्पणी न दते हुए सूरत-अधिवेशन की पूर्वसंध्या पर जो तथ्य थे, वे लाजपत राय न कई वष बाद लिखे

“हमें नवम्बर में रिहा किया गया और मेरे भारत लौटने के तुरन्त बाद श्री तिलक ने आगामी कांग्रेस अधिवेशन के लिए मेरे नाम का प्रस्ताव कर दिया। मिताचारिया ने विरोध किया और मेरे खड़े होने से इन्कार कर दिया। मेरी इस कारवाई से गोखले खुश हुए, परन्तु तिलक नाराज हो गये। इसलिए यह बताया गया कि खुले अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए तिलक के नाम का विधिवत प्रस्ताव किया जाएगा, जो रासबिहारी घोष के मुकाबले में होगा, जिसे स्वागत समिति ने चुना था।”

परन्तु सूरत में वास्तविक घटनाओं ने बिल्कुल भिन्न रूप लिया और जब आप इसने ब्यौरे में जायें, तो पता चनेगा कि तथ्या के बारे में भी विभेद था, विशेषकर प्रारम्भिक वातों के बारे में, जिसका दोनों गुटों के अलग-अलग दावा में पता चलता है।

सूरत अधिवेशन के बाद “उग्रवादियों” के विवरण के अनुसार (जो अधिवृत्त विवरण के उत्तर में जारी किया गया था) जो तिलक, फ़ापट्टे, अरविंद घोष, एच० मुखर्जी और वी० सी० चटर्जी के हस्ताक्षरों से जारी किया गया, गोखले पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने लाजपत राय का नामांकन पत्र रद्द किया था। गोखले पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने लाजपत राय का नामांकन-पत्र इस आधार पर अस्वीकार किया था कि “हम इस स्थिति में सरकार की अवज्ञा नहीं कर सकते, अधिकारी हमारे आंदोलन को चुटकिया में मसल कर रख देंगे।” स्वाभाविक तौर पर इसे जनता के अहसास का अपमान समझा गया तथा डाक्टर घोष को देश के विभिन्न भागों से कम से कम सौ तारे मिली होगी, जिनमें आप्रह किया गया था कि वह उदारता से लाजपत राय के पक्ष में चुनाव से हट जायें। वक्तव्य में आगे कहा गया था कि “यद्यपि लाजपत राय ने सावजनिक तौर पर इस सम्मान से इन्कार कर दिया है, इससे वे लोग सतुष्ट नहीं होंगे जो उपयुक्त आधार पर कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव के सिद्धांत पर विचार करना चाहते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि सरकार की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध रोष व्यक्त करने का सबसे असरदार ढंग यही होगा कि अध्यक्ष-पद के लिए लाजपत राय को चुन लिया जाये।”

गोखले ने विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि यह विवरण “गर ईमानदारी से निजी बातचीत के कुछ वाक्यों को उसके सदम से अलग करके और तोड़ मरोड़ कर पेश किये गये हैं।” उन्होंने कहा कि यह वार्तालाप सूरत के उग्रवादी भद्र

पुरप के साथ, स्वागत समिति की 24 नवम्बर की बैठक से पहले हुई बातचीत म हुआ था और उन्होंने उस मद्र पुरष्य को बता दिया था कि अध्यक्ष पद के लिए लाला लाजपत राय का नाम लाना बुद्धिमत्ता नहीं होगी, क्योंकि इतना बर की स्थिति में "सूरत में कायवर्ताशा में किसी भी प्रकार का विभाजन बहुत अनुचित बात होगी। निश्चित तौर पर इससे उनके काम में र्नावट पड़ेगी, और चूंकि स्वागत समिति की बैठक में लाला लाजपत राय के नाम का प्रस्ताव पास हान की कोई संभावना नहीं है, "लाला लाजपतराय का नाम रह होता उनके लिए दुखदायी तथा अत्यधिक अपमान की बात होगी।"

इसके अतिरिक्त गोखले ने कहा कि उन्होंने यह दलील भी दी थी कि "मद्यपि लाला लाजपत राय को व्यक्तिगत तौर पर स्वतंत्र कर दिया गया है, उनके निर्वासन में सम्बद्ध सिद्धांत के बड़े प्रश्न के निणय के लिये तो अभी लडा जाना है और यह सघय अच्छी तरह तभी हो सकता है, जब सारा देश एकाता की भावना को बनाए रखे। यह एकाता की भावना अवश्य ही विभाजित होगी, यदि कांग्रेस का एक बग उन्हें पार्टी के अध्यक्ष पद के लिए खडा करना चाहेगा।" सरकार की 'अवज्ञा' करने के बारे में गोखले का विवरण था, "आगे मैंने कहा था कि अय ढग भी है जिनसे हम श्री लाजपत राय का सम्मान कर सकते हैं और फिर मैंने कहा, यदि आपका उद्देश्य केवल सरकार की अवज्ञा करना ही है मैं आपके प्रस्ताव को समझ सकता हूँ।" इसके उत्तर में एक सज्जन ने कहा, "हां, यदि हम और कुछ न भी करें, हम सरकार को यह दिखा देना चाहते हैं कि हम सरकार की अवज्ञा करने को तैयार हैं।" इस पर मैंने कहा, "मैं ऐसी अवज्ञा में विश्वास नहीं रखता। निस्संदह कांग्रेस को अवश्य ही सरकार की कारवाइया की निंदा करनी चाहिए, जब भी वह आवश्यक समझे, परन्तु इसके पाम और आवश्यक काम भी करने के लिये है। हमारी वर्तमान स्थिति में हम सरकार की सहायता तथा सहयोग के बिना काम नहीं कर सकते।"

यह कांग्रेस के पूण अधिवेशन से एक महीना पहले की बात है।

प्रारम्भिक बातचीत के बारे में अपना विवरण देते हुए गोखले ने एक और चकत्तय म कहा

"लाला लाजपत राय ने, जो उस दिन (25 दिसंबर को) प्रात सूरत पहुंचे, दोपहर बाद तिलक और खापर्डे से मिलने गये और उनसे सम्बन्धित प्रश्न पर विचार विमर्श किया। वे जब सहमत हो गए, तो वह गोखले के पास गये

तार्किक यदि मभव हो गये तो समिति की बैठक की जाये और तिलक तथा पापड़ें राष्ट्रवादियों के सम्मेलन में लौट गये, जो उम्मी शाम (25 दिगम्बर) को हुआ। इस सम्मेलन में राष्ट्रवादियों की एक समिति, जिसमें प्रत्येक प्रांत में एक राष्ट्रवादी प्रतिनिधि शामिल था नियुक्त की गई, जो दूसरे पक्ष के नेताओं के साथ बातचीत करेगी। और यह निष्पत्ति बिया गया कि यदि राष्ट्रवादी समिति कांग्रेस के जिम्मेदार अधिकारियों से वर्तमान स्थिति बनाए रखने के बारे में कोई आश्वासन प्राप्त करने में असफल रहे, तो राष्ट्रवादी अध्यक्ष के चुनाव में ही विरोध आरम्भ कर दें। लाजपत राय से उम रात या अगले दिन प्रात वाई सूचना नहीं मिली।

“उम दिन (25 वा) दोपहर बाद लाला लाजपत राय, जो उग्रवादी शिबिर देखने के लिए जाने वाले थे, मुझसे पूछने लगे कि क्या मैं व्यक्तिगत तौर पर उस ओर के नेताओं को आश्वासन दिला दू कि वह प्रस्ताव के बारे में गलतफहमी में है और यह सभी उसे वायमूची में पायेंगे जब वह प्रेस से भायेंगी। मैं सहमत हो गया और लाजपत राय चने गये उन्होंने शाम को यह आश्वासन दिया।

“उग्रवादियों के बयान में कुछ सज्जनों द्वारा समझौता करवाने के प्रयत्न करने की चर्चा की गई है। बयान में जिन तीन भद्रपुरिया की ओर से मेरे साथ बातचीत करने की चर्चा है—वे हैं लाला लाजपत राय, बाबू सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और चुनीलाल डी० सूर्या। उनमें से चुनीलाल ने इस संबंध में कभी भी मेरे साथ बातचीत नहीं की थी। यह 25 दिसंबर की शाम को, जब हम रेलवे स्टेशन पर अध्यक्ष के स्वागत के लिए गये थे, हुई थी, जो तिलक द्वारा रखी गई इस तब बीज के बारे में थी कि दोनों ओर से पांच पांच व्यक्ति इकट्ठे मिल बैठें और प्रस्तावों की भाषा के बारे में निष्पत्ति कर लें। मैंने लाजपत राय को बताया कि प्रस्तावों की भाषा का निष्पत्ति करना 'विषय समिति' का काम है और उस प्रकार की समिति, जिस प्रकार की समिति का तिलक ने सुझाव दिया है, पहले कभी नहीं बनाई गई। इससे अतिरिक्त तिलक के लिए, जिनके अनुयायी प्रति दिन सम्मेलन कर रहे थे, पांच व्यक्ति मनोनीत करना सामान्य था जो उनके गुरु का प्रतिनिधित्व करते। परन्तु जो जोश तथा भावना की कटुता उस समय थी, उसे देखते हुए मैंने कहा कि मैंने पांच व्यक्ति इस अधिकार का दावा कर सकते थे या यह जिम्मेदारी ले सकते थे कि वे अन्य प्रतिनिधियों की ओर से निष्पत्ति ले सकते हैं। मैंने कहा, 'कल विषय समिति की बैठक हो लेने दीजिए। हम

अधिकतर समय विचार विमर्श में बीत जाता था। उनके संदेशों तथा आशवासनों में साथ, तथा अपने तौर पर, मैं हर रोज कई बार राष्ट्रवादियों के शिबिर में गया और तिलक के अध्यक्ष के चुनाव का विरोध करने का विचार उचित न होने तथा इसके बुद्धिमत्तापूर्ण बंदन न होने पर बार-बार बल दिया। हमने इस मामले पर विचार किया, दलीलों दी और हर बार मैं यह प्रभाव लेकर आया कि यह मुझसे सहमत थे। परन्तु बात यह नहीं थी।”

यद्यपि कांग्रेस में विच्छेद के लिये निर्णायक सहाई अध्यक्ष के चुनाव पर हुई, राजनीतिक मामला पर मतभेद पहले ही आरम्भ हो चुके थे और साजपत राय अध्यक्ष पद के चुनाव के लिये अपना नाम वापस लेकर इन राजनीतिक मामलों में समझौते का प्रयत्न कर रहे थे। कोई समझौता न हुआ और राष्ट्रवादियों ने असाधारण तौर-तरीके अपनाएँ के लिए अपने आपको मजबूर समझा। हमने देखा है कि राष्ट्रवादियों के लिये पिछले बलवत्ता अधिवेशन में अपनी सफलताओं पर सतुष्ट होना उचित था और वे अपनी प्राप्ति का सचित करना चाहते थे। परन्तु इस प्रकार की छवरे गरम थी कि बलवत्ता के प्रस्ताव को नरम किया जा रहा था और इन समाचारों का उचित समय पर और दृढ़तापूर्वक कोई खंडन न किया गया। सूरत-अधिवेशन की एक विशेषता यह थी कि, राष्ट्रवादियों अपना अलग शिबिर लगाया था। केवल इसी बात से ही यह आभास होता था जैसे दोनों गुट एक दूसरे के लिए विरुद्ध डटे हुए हों। राष्ट्रवादियों ने अधिवेशन से पूर्व दो दिन के लिये अपनी भरपूर बैठकें की, जिनमें तिलक तथा अरविन्द ने भाषण किये। प्रत्येक शिबिर में, हैनरी डब्ल्यू० नेविनसन के अनुसार, “संदेश का बोलचाल था और अफवाहों के आधार पर रोप बढ़ रहा था।”¹⁴

बातचीत का कोई परिणाम न निकला, निश्चित घड़ी आ पहुँची। नेविनसन के शब्दों में

“मंच के लोग पहुँचने आरम्भ हो गये, सबसे पहले आने वालों में डाक्टर ह्वरफोर्ड थे। फिर एक श्राव, श्वेत पगड़ी वाली आकृति ने जिसके चेहरे से उदास दृष्टा झलकती थी एक ओर से प्रवेश किया। एक व्यक्ति के सामने दस हजार लोग उठकर खड़े हो गए। तालियों के बाद तालियाँ, ऐसा दिखाई पड़ता था कि मैं

तालिया समाप्त ही नहीं होगी। उस व्यक्ति को कौन नहीं चाहता, जिसने उद्देश्य के लिये बचट झोले हो ? यह लाजपत राय थे।”†

स्वागत समिति के अध्यक्ष का भाषण समाप्त होने के बाद जैसे ही डा० रास बिहारी घोष के नाम का प्रस्ताव किया गया, हो हल्ला आरम्भ हो गया। “हंगामा शुरू हो गया तथा अन्य वार्ड भी शब्द सुनाई न पडा।”††

वैठक स्पगित करनी पड़ी। शाम को तथा रात भर दूत ध्यस्त रहे—परन्तु वार्ड सफलता प्राप्त नहीं हुई।

अगले दिन जब जुलूस न पडाल म प्रवेश किया, तो तिलक ने अध्यक्ष के चुनाव के प्रस्ताव में सशोधन के लिये एक पर्ची भेजी। वह बोलने के लिये उठे ता उसे नियम के विरुद्ध करार दिया गया—उन्होंने यह निग्रह स्वीकार नहीं किया, घोष अभी अध्यक्ष नहीं थे इसलिए नियम नहीं दे सकते थे—मालवी। (स्वागत समिति के अध्यक्ष) “सभापति नहीं थे।” हंगामा आरम्भ हुआ और होता रहा—इसकी धरम सीमा उस समय आई जब लाल चमडे का एक महाराष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्र हुवा म लहराता हुआ आया और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी को लगा, फिर फिराजशाह महता का। उस पल से ही नये युग का आरम्भ हो गया।

वई वप पश्चात् अपने मन की आखों के सामने सूरत के उस दृश्य का स्मरण करत हुए, लाजपत राय ने लिखा

“उसके (सूरत-अधिवेशन) साथ, हमारे राष्ट्रीय अ-दोलन का एक युग समाप्त हो गया तथा दूसरा अ रम्भ हो गया।” (इन युगों के बारे में) उ-हाने कहा, “ये युग स्वर्गीय श्री तिलक की देन थे।”

तिलक के व्यक्तित्व न, जो उन्होंने सूरत में देखा, लालाजी के मन पर अमिट छाप छोड दी

“जो बात उस समय मेरे मन में जम गई थी और जिसे म अब भी अपन मन से नहीं हटा पाया, वह थी तिलक की आद्वतीय शक्ति। जिस समय वह सशोधन प्रस्ताव पेश करने के लिए उठे, उन पर सभी आर में आवाजें कसी गई तथा सीटिया बजाई गई, वह मन पर एक बड़ी भीड में खडे रहे, उस भीड में, जो उनके

†वही पृष्ठ 245-46

†वही, पृष्ठ 247

विरुद्ध थी तथा उन्हें हराया चाहती थी। मंच पर जो नेता बैठे थे, उनमें से शायद बहुत कम, यदि थे भी, तो तिलक समर्थक थे। उनके दृढ़ तथा न झुकने वाले निश्चय की झलक उनके चेहरे की हर रेखा से स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उनकी निडरता ने उन सभी लोगों के मन में, जो उनके विरुद्ध नहीं थे, प्रशंसा की भावना पैदा कर दी। अधिवेशन के दौरान उनके सारे व्यवहार ने स्पष्ट तौर पर व्यक्त कर दिया कि वह भाग्यवान व्यक्ति है, जो अपने इरादे को नार्पान्वित करने के लिये सारे ससार की शक्तियाँ का विरोध करेगा।”

संस्मरणशील मनोदशा में लालाजी शुरू की घटनाओं को अकसर याद किया करते थे। उनके संस्मरण में पूर्ण अधिवेशन के पडाल की वह तस्वीर छाई हुई थी (जो हम देख चुके हैं), जिसमें तिलक विरोधी भीड़ में वह अविचलित खड़े थे, जब कि चारों ओर हंगामा मचा हुआ था। उग्रवादी शिविर में समझौते के प्रयत्नों के लिए शान्ति मिशन के बारे में उन्हें विशेषरूप से स्मरण किया गया था क्योंकि अध्यापक के नाते उनकी भूमिका तो दलगत विवादा से ऊपर उठकर थी। श्री अरविंद ने उत्तर दिया था “तुम प्याले को तब तक नहीं भर सकते, जब तक उसे खाली नहीं किया जाता।” और लालाजी कहते थे अरविंद के इन शब्दों के अनुरूप ही उनके हाथा की मुद्रा भी होती थी। और जब कभी लालाजी उस पल का स्मरण करते तो अपने हाथा से वैसे ही करते, जिस प्रकार अरविंद न प्याला भरने से पूर्व खाली किया था।

* * * *

1907 में साजपत राय के पास राजनीतिक क्षितिज का आकर्षण बिन्दु बनने के सिवा और कोई चारा नहीं था। वह असह्य जाखा के केंद्र बिन्दु थे। इस बात की किमी को परवाह नहीं थी कि अध्यक्ष कौन है और पार्टी के कर्ता धर्ता कौन हैं, वह लोगों के नायक थे और उनकी बहुत ही जोरदार जय-जयकार की गईं। ऐसा जान पड़ता था कि उन्होंने सभी गुलदमस्त तथा प्रशंसा उनके लिये सुरक्षित रख दी थी। यदि कोई झगडा भी होना था, तो वह भी उन्हीं के नाम पर, यद्यपि यह सारा समय स्वयं शान्ति का प्रचार कर रहे थे और उनके लिये यह बात बहुत ही उत्प्रेरणापूर्ण थी कि उनका नाम ही झगडे का कारण था। ऐसा था मूर्त का विरोधाभास। जब बातचीत अन्तिम रूप में असफल हो चुकी थी और कांग्रेस का गुटा में विभाजित हो चुकी थी, फिर भी उन्होंने शान्ति के लिए अन्तिम अरील की। मूर्त से उनका अन्तिम सदाश स्वदेशी सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में था

“म अपन मिताचारी मित्रा से निवेदन करूंगा कि वे हमारे शत्रुआ के हाथो म न खेलें। हा सवता है तथाकथित उग्रवादिया के कुछ तीर तरीके उन्हें पसद न हा, परन्तु इसी कारण से उन्हें शत्रु के हाथ म दे देना और अपमान करके उहे इस यात के लिए विवश कर देना कि वे सदा के लिए विरोधी बन जायें या उन्हें गरकार के अन्याचार तथा एग्लो इडियन लोगा के उपहास का कारण बनाना बुद्धिमत्ता नहीं है। म अपन उग्रवादी मित्रा से आदरपूर्वक अनुरोध करूंगा कि वे बडी उम्र के सागो की मुस्त रफ्तारी और व्यावहारिक अनुभव की बाता पर अधीर न हा।”

ऐसा दिखाई पडता था कि यह विवाद मिताचारिया द्वारा लाजपत राय को अध्यक्ष बनाने से इन्कार करने पर हुआ। और जब बातचीत चल रही थी, तो तिलक की ओर से एक प्रमुख शत यह थी कि लाजपत राय का “सादर उल्लेख” किया जाये। बातचीत असफल रही और डॉक्टर रास बिहारी घोष को वह भाषण पढने का अवसर ही न मिला, जो उन्होंने इस अवसर के लिये लिखा था, परन्तु जैसा कि बाद मे पता चला, उस भाषण मे लाजपत राय का “सादर उल्लेख” था। यह “उल्लेख” निस्संदेह अध्यक्ष पद के लिए उनके दाव से सबद्ध नहीं था, बल्कि इसमे उनके कारावास की खर्चा थी। यह उल्लेख अध्यक्ष के मुकुट का नहीं, बल्कि “काटो के मुकुट” का था।

अध्यक्षीय भाषण में कहा गया था कि “जा वष शीघ्र ही समाप्त होने जा रहा है उसम हुई घटनाआ न देश को बहुत गहराई तक हिला दिया और यह सचमुच नाटकीय वष रहा। इसका पहला अक लाजपत राय और अजीत सिंह के निर्वासन से आरम्भ हुआ। इसके बाद सावजनिक सभाआ पर प्रतिबध लगाने का अध्यादेश आया और फिर रावलपिण्डी का मुकदमा और फिर पंजाब और बंगाल मे समाचार-पत्रों के मुकदमे।”

“1818 के अधिनियम तीन के पुस्त्यान के समथन मे यह कहा गया है कि यह स्थायी कानून है। यह कोई स्थायी कानून नहीं, बल्कि हमारी आजादी के लिये स्थायी खतरा है, हमारे कानून की पुस्तक की स्थायी भत्सना है। नार्गारिक नायशास्त्र मे यह उतना ही अप्रचलित है, जितना शिक्जा या पेच। एक व्यक्ति को निर्वासित करने की उनकी कारवाई, जिसका कारण बताने का उनमे साहस नहीं, गैर-कानूनी, असवधातिक, पाशविक, पक्षपातपूर्ण, निलज्जतापूर्ण, वेद्ददा

और असगत है। ये सब विशेषण मेरे नहीं। मैंने ये सभी हसाड से लिए हैं और एक कट्टर उदारवादी ने एक स्मरणीय अवसर पर इस्तेमाल किये थे। और क्या श्री मौलें द्वारा हाउस आफ काम्स में दिया गया उत्तर साइमन डी मॉंटफाड द्वारा ससद की स्थापना के बाद से अब तक का सबसे अधिक अमर्यादित और अराजक उत्तर नहीं था।" उन्होंने लाजपत राय को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहा था

"और इस मनमानी शक्ति के इस्तेमाल के लिये सबसे पहला शिकार कौन चुना गया था? एक ईमानदार, धार्मिक तथा समाज सुधारक व्यक्ति, जिसका चरित्र हर किस्म की भत्सना से ऊपर था। वह व्यक्ति जो केवल अपने लिये नहीं, बल्कि दूसरों के लिए जिया—पजाव के श्रद्धा पात्र। और यदि लाजपत राय को उनके देशवासी सामान्य तौर पर शहीद समझते हैं, तो यह सरकार की, केवल सरकार की जिम्मेदारी है कि उसने उस व्यक्ति को इस दर्जे तक पहुँचा दिया है और उनके सिर पर काटा का अमूल्य मुकुट रख दिया है। यदि माण्डले के दुग को अब पवित्र स्थान माना जाता है, तो यह सरकार की, और केवल सरकार की कारवाही है कि उसने उस स्थान को धार्मिकता का दर्जा दे दिया है।"

इसके बाद असतुष्टता के कारणों की एक सूची दी गई थी जिसका उद्धरण लाजपत राय द्वारा 'पजाबी' में लिखे गए एक लेख में दिया गया था, जो उनकी गिरफ्तारी से कुछ घंटे पूर्व लिखा गया था, और उसके बाद यह टिप्पणी

"यह राग-निदान बिल्कुल सही था, क्योंकि ज्यों ही अत्यावश्यक शिकायतें दूर कर दी गईं, पजाव पूरी तरह शांत हो गया। यद्यपि अफसर शायद यह बात साचकर अपने आपको प्रसन्न कर लें कि यह सुखद परिणाम पूणतया लाला लाजपत राय और अजीत सिंह के निर्वाचन के कारण था और इस प्रकार एक और गदर केवल उनकी दूरदर्शिता तथा उचित समय पर किये गये प्रतिबन्धों के कारण टल गया था।"

*

*

*

लाजपत राय सूरत के एक बड़े विरोधाभास थे। उन्हीं ने शान्ति के लिए पूरा जोर लगाया और उन्हीं के नाम पर लड़ाई हुई। जब शान्ति के लिए बातचीत टूटी और विच्छेद को टाला न जा सका तो वह उन लोगों के साथ बैठे जिन्होंने उच्च-सम्मान के लिये उनके निर्वाचन में बाध डाली थी, उन

तागा व साथ नहीं, जो उनके नाम पर लड़े थे। और विराधाभासा का विरोधाभास यह था—जब कांग्रेस-अधिवेशन हुआमा वे दूसरे के साथ समाप्त हो गया और कांग्रेस का परस्पर विरोधी गुटों में बंट गई। आप इसे गूह-मुद्द कह सकते हैं—ता वह सूरत में ही ठहर गया, मुद्द-स्थल पर ही—शांत, रचनात्मक कार्य करने के लिए, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

सूरत के विच्छेद के कारण कांग्रेस का जोरदार घटना पहूचा और साजपत राय इसके प्रभाव से न बच सके। अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं के मुकाबले उन्हें जो उस समय कांग्रेस के एक प्रमुख नेता या बाद में नेता बने, विच्छेद ने विशेष तथा विनाश कठिनाइया उत्पन्न की। वह कांग्रेस से पूरी तरह अलग गही होना चाहते थे और न ही वह मुकाबले का संगठन स्थापित करने में राष्ट्रवादियों के साथ सहयोग करना चाहते थे फिर भी उन्हें जानकारी थी कि मिताचारिया की संगति न वह सदा परेशान रहेंगे। इसने अतिरिक्त उन्हें यह डर भी था कि राजनीति शीघ्र ही भ्रष्टाचार हो जाएगी।

* * *

इसी बीच उह एक अन्य स्थान से बहुत ही आवश्यक तथा दुपदायी बुलावा आया—यह बहुत ही आवश्यक था, इसमें किसी प्रकार की डील नहीं हो सकती थी। 1906 में ध्वज न भयानक विनाश किया था। अब अकाल अपना बुरा सिर उभार रहा था और इस बात की आशंका थी कि उसकी विनाशलीला पिछली बार की तबही का मात कर देगी। ऐसे कष्ट की साजपत राय उपक्षा नहीं कर सकते थे—चाहे राजनीति हो या न हो। इसके अतिरिक्त साजपत राय के लिए राजनीति का कोई अर्थ नहीं था, जब उसमें जनसेवा का कार्यक्रम न हो। वह अपनी शक्ति किसी अन्य झगड़े में नष्ट करने के लिए तैयार न थे। आगामी कुछ मास के लिए उन्हें सहायता अभियान संगठित करने में व्यस्त रहना था। उन्होंने सूरत में ही यह निर्णय ले लिया। स्वदेशी कार्यक्रम में अपना अध्यक्षीय भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने कहा

देश इस समय भयानक अकाल की चपट में है। जिस राष्ट्र की हम सेवा करने की आकांक्षा रखते हैं, वह अधिकतर झांपडिया में रहता है और बहुत कष्ट में है। सरकार अपना कतव्य पूरा कर रही है या कह लीजिए कि ऐसा करने का दिखावा कर रही है। क्या हम जो उस रक्त का ही एक भाग हैं उससे पीछे

रह सकते हैं ? मैं अपने मित्रों तथा सहयोगी कार्यकर्ताओं से निवेदन करता हूँ कि वे इस काम में पूर्ण सहयोग दें और अकाल पीड़ित प्रांत में गैर सरकारी अकाल पीड़ित सहायता-अभियान आयोजित करें। मैं जानता हूँ कि काय बहुत बड़ा है और कठिनाइयाँ इससे भी बड़ी हैं, परन्तु इससे निष्काम देशभक्त जीवन के लिये बहुत ही लाभकारी तथा बहुत ही प्रभावशाली प्रशिक्षण प्राप्त हो सकता है।”

नेविंसन ने लिखा है, “यह उनके चरित्र-बल की विशेषता और लोकप्रियता की अपेक्षा ही थी कि सूरत कांग्रेस में विच्छेद होने के पश्चात् उन्होंने मिताचारी दल को अपना व्यापक प्रभाव दिया और घोषणा की कि वह पुराने झण्डे के अधीन ही सघन करेंगे। परन्तु इसके अतिरिक्त एक और विशेषता यह थी कि जब कांग्रेस अधिवेशन समाप्त हो चुका था, वह सामाजिक तथा स्वदेशी सम्मेलनों के लिए सूरत में ही रहे और उन्होंने वहाँ अकाल सहायता कोष स्थापित किया, जसे कुछ भी न हुआ हो।”*

नेविंसन, ने सूरत की घटनाएँ देखी थी, स्वाभाविक था कि उसने सूरत में लाजपत राय को निकट से देखा था। उसने लिखा

“ बड़े सादे और उदार जीवन वाले व्यक्ति, जिन्होंने बहुत बड़ी सांसारिक सफलता गरीबों तथा निरक्षर लोगों की सेवा के लिए त्याग दी थी। लाजपत राय उन लोगों में से थे जिनकी आत्मा में उनके अपने लोगों की गलतियाँ प्रवेश कर जाती हैं। स्वाभाविक तौर पर वह राजनीति से विमुख थे, उन्होंने अपना जीवन उन गहरे प्रश्नों में लगा दिया, जो अच्छी या बुरी सरकार की पहुँच से बाहर होते हैं और उनमें यह परिवर्तन चालीस वर्ष की आयु हो जाने के बाद ही आया। यह सत्य है कि वह 1888 में कांग्रेस-आंदोलन में शामिल हो गये थे, जब इस संगठन को स्थापित हुए दो-तीन वर्ष ही हुए थे, परन्तु किसी अन्य व्यक्ति ने कांग्रेस और उसके तौर-तरीकों की उनसे अधिक आलोचना नहीं की—इसके अनियंत्रित आकार, छूट्टी जैसा दृष्टिवाण, भारत की गरीबी तथा अज्ञानता की ओर ध्यान देने में उसकी असफलता, राजनीतिक गलतियों को ठीक करवाने के लिए अपने भाषणा तथा प्रस्तावों के बार में उसकी गलतफहमी।”**

* वही पृष्ठ 296

** वही पृष्ठ 295 ॥

नेविसन को वह, "एव उदास, धके हुए स्पष्टमन के आदमी लगे, जा न लाभ न यश प्राप्त करना चाहते थे" * और सक्षिप्त विवरण देते हुए उसने कहा, "जो बातें सरकार तथा भाषणा से गहरी थी उनके जीवन का लक्ष्य बन गई थी।" **

1

* वही, पृष्ठ 302

** वही, पृष्ठ 206

32. सूरत का परिणाम

सूरत की घटनाओं का न कांग्रेस व दोनों गुटों को फोड़कर अलग कर दिया। उन लोगों का जिनका उनके साथ सामान्यतः पर मतभेद रहता था, बहुत आश्चर्य हुआ और जा साग उन्हें अपने शिविर का नेता मानते थे उन्हें बहुत ही निराशा हुई, जब लाजपत राय ने खुले आम यह घोषणा कर दी कि वह पुराने झण्डे के नीचे ही सघन जारी रखेंगे उन झण्डे के जो अब तक केवल मिताचारिया के बन्ने में था। उन्होंने पयकतावादिया का साथ देने से इन्कार कर दिया, यद्यपि अपनी राजनीतिक विचारधारा में उनके साथ उनकी अधिक समानता थी, उन लोगों के मुकाबले जिनका कांग्रेस पर अविभाजित कब्जा था। बाहर से तां दिखाई देता था कि सूरत-अधिवेशन के बाद मिताचारी नेताओं द्वारा बुलाए गये सम्मेलन में भाग लेकर उन्होंने मिताचारी सेबल स्वीकार कर लिया, पर असल में वह मिताचारिया के साथ विचार विनिमय कर राष्ट्रवाद्या के दृष्टिकोण पर बल दे रहे थे। इस अप्रत्याशित व्यवहार के कारण उनके सावजनिक सम्मान को मामूली हानि भी हुई। इसका परिणाम सूरत कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात भारत भर में इसकी विजय यात्रा के दौरान मालूम हुआ। परन्तु राजनीतिक नेताओं के एक बग के साथ उनका मिल्कुल बिच्छेद हो चुका था। मिताचारिया का मालूम था कि वह अधिक समय के लिये उन्हें अपने साथ नहीं रख सकते, न ही उनकी इच्छा थी कि वह मिताचारियत में ही खा जाए। राष्ट्रवादिया को भी गिला था, क्योंकि उनके विचार में वह उन्हें छोड़ गये थे।

शायद उहान 'परित्याग' का आराप उतना महसूस नहीं किया जितना उन जैसे वफादार और भवेदनशील स्वभाव के व्यक्ति को सामान्यतः पर महसूस करना चाहिए था। एक बात थी कि कांग्रेस से प्रभावित पंजाब में उनका साथ दिया। दुतीचन्द, रामभज दत्त, हरकिशन लाल और पंजाब के अन्य कांग्रेसियों ने यह जरूरी समझे बिना सम्मेलन में भाग लिया कि वे मिताचारिया के साथ हैं। उनके अपने प्रात में उनके आलाचक अधिकतर अलग किस्म के थे। उनमें सबसे प्रमुख हरदयाल थे, जो उन दिना कई मता के तज तर्रार उपदेशक बन रहे थे। वह किसी समझौते को सहन नहीं करते थे, परन्तु यह एक तकसगत बात थी कि

वह कांग्रेस की समूची नीति तथा इतिहास की निन्दा करत था कि यह घटिया मिताचारियत का उदाहरण थी।

पंजाब के प्रतिनिधि मंडल ने सूरत सम्मेलन में भाग लिया। अय प्रान्तास भी बहुत मे लाग इसमें शामिल हुए, जिनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता था कि वे पूरी तरह मिताचारी थे। इनमें म.तो.साल घ.ग. तथा अश्विन कुमार दत्त भी शामिल थे। कई बट्टर राष्ट्रवादी इसमें शामिल होना चाहते थे। परन्तु समाजको ने उन्हें अनघिष्ट व्यक्ति ममत्तकर लौटा दिया। जब अप्रैल 1908 में इलाहाबाद में दुबारा सम्मेलन हुआ, उसमें फिर बहुत से ऐसे व्यक्ति शामिल हुए, जो "मिताचारी" विचारधारा के समर्थक नहीं थे और जो बाद के वर्षों में प्रमुख तौर से सविनय अवज्ञा के सहयोगी थे—उत्तर प्रदेश में पुरपोत्तम दास टंडन और बिहार में दीप नारायण सिंह आदि।

सूरत का सम्मेलन रास बिहारी घोष की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ, परन्तु शीघ्र ही यह अखिल भारतीय सम्मेलन में बदल गया, जिसकी अध्यक्षता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने की। एक संक्षिप्त बैठक में उसमें दस नियमों के प्रस्ताव पास किये गये जिनमें से चार प्रमुख विवादास्पद विषया—स्वराज, स्वदेशी, विभाजन तथा बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और एक निर्वासन के बारे में था, जो इस प्रकार था

(क) यह सम्मेलन सामान्य शान्ति तथा व्यवस्था के समय लाला लाजपत राम और सरदार अजीत सिंह की अचानक गिरफ्तारी तथा निर्वासन की जोरदार निन्दा करता है, उस कारवाई की, विशेषकर जब उन्हें अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए कोई अवसर नहीं दिया गया तथा न उन पर मुकदमा चलाया गया, उस कारवाई की, जो अप्रचलित कानून के अधीन की गई जा किसी आर समय पर किसी अन्य वर्ग के लोग के साथ निपटने के लिए बनाया गया था और ब्रिटिश शासन की स्थापित परम्पराओं के प्रतिभूल है।

(ख) यह सम्मेलन जोरदार आग्रह करता है कि अब जब कि लाला लाजपत राम और सरदार अजीत सिंह को आजाद कर दिया गया है, सरकार ने पिछले कई मास में जिन कारणों के आधार पर उन्हें गिरफ्तार किया था वे सूरत प्रकाशित कर दिये जायें।

(ग) इस तथ्य का दखत हुए कि 1818 का अधिनियम तथा ऐसे ही अन्य नियम गैर जिम्मेदार कायपालिका का छतरनाक सीमा तक व्यापक अधिकार दत्त है और इस प्रकार निर्दोष लागू की स्वतंत्रता के लिए गभीर छतरा पदा करते हैं, इसलिए यह सम्मेलन आग्रह करता है कि ये अधिनियम तुरंत समाप्त किये जायें।

सम्मेलन ने प्रान्तीय सचिव नियुक्त किये और पञ्जाब के लिये लाजपत राय तथा हरकिशन साल चुने गये। उससे पश्चात् अप्रैल में इलाहाबाद में फिर सम्मेलन हुआ। इससे पहले विपिन चन्द्र पाल ने कलकत्ता में एव भाषण में समझौते के लिये राष्ट्रवादियों की शर्तों की घोषणा कर दी थी। वह चाहते थे कि स्वीकृत किया गया कांग्रेस अधिवेशन फिर बुलाया जाये, जिससे अध्यक्ष रासबिहारी घोष हा, और वह यह भी चाहते थे कि जिस "मत" को लेकर इतना विवाद हुआ है वह कांग्रेस पर न धोपा जाये। उन्होंने कहा कि इन शर्तों पर ही राष्ट्रवादी कांग्रेस में लौटने के लिए सहमत हाने। सूरत में उन्होंने यह स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था कि डाक्टर घोष विधिवत निर्वाचित हो गये थे। यद्यपि वह अभी भी सतुष्ट नहीं थे, फिर भी समझौते के लिए पाल डाक्टर घोष का मान्यता देन का तैयार थे, यदि मिताचारी अपनी आर से "मत" वाली शर्त समाप्त कर दें। सम्मेलन में लाजपत राय उन लोगों में शामिल थे, जिन्होंने यह दोना माग स्वीकार कराने के लिए प्रयत्न किया। परन्तु मिताचारी इस बात के लिये अधिक चिन्तातुर नहीं थे कि राष्ट्रवादी लौट आये। हो सकता है कि गोखले विच्छेद नहीं चाहते थे, परन्तु वह चाहते थे कि उन्हें परेशान न किया जाये और शायद कांग्रेस में शांति संभव नहीं थी, यदि उन्हें राष्ट्रवादियों के साथ काय करना पड़ता। अधिकतर नहीं तो बहुत से मिताचारी नेता राष्ट्रवादियों के अलग होन पर खुश थे, यद्यपि इसके परिणाम स्वरूप राजनीतिक आन्दोलन कमजोर हाता था। इलाहाबाद में समझौते के प्रयत्नों में कोई उल्हाहजनक समयन न मिला और न ही मिताचारी नताआ से कोई सहानुभूति ही मिली। जब "मत" के बारे में गोखले का सशाधन अस्वीकार कर दिया गया, सर फिरोजशाह मेहता बहुत गुस्से में आये और उन्होंने गुस्म भरी कई धमकिया दी और उन्होंने इस बात में कोई सदेह न रहने दिया कि वह केवल ऐसे लोगों का स्वागत करेंगे, जो केवल हा में हा मिलाने वाले हाने। जब कांग्रेस अधिवेशन दोबारा बुलाने का प्रश्न आया, तो मिताचारी नताआ ने विपिन चन्द्र पाल द्वारा रखा गया समझौता प्रस्ताव स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, यद्यपि यह प्रस्ताव उसी नीति के अनुसार था, जो सूरत में सत्कार

गुट ने अपनाई थी, पृथक्तावादियों की नीति के अनुसार नहीं। सत्तारूढ़ गुट शायद यह इसलिए नहीं चाहता था कि वह राष्ट्रवादियों के लौटने के पक्ष में नहीं था। उनकी इच्छा यह भी थी कि वे अपने बच्चे (सम्मेलन) पर स्नेह जताए। डॉक्टर घोष को, जिन्हें उन्होंने मुरन-अधिवेशन में अध्यक्ष चुना था, बैठक दोबारा बुलाने का अधिकार देने के स्थान पर उन्होंने सम्मेलन के सचिवा, गोयले तथा याचा का प्रांशु का नया अधिवेशन बुलाने का अधिकार दे दिया। लाजपत राय ने राष्ट्रवादियों के प्रस्ताव के समान ७० चौधरी के प्रस्ताव का समर्थन किया कि अधिवेशन दोबारा बुलाया जाये, परन्तु मिताचारी नताभा ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपना ही प्रस्ताव अपनाया। अपने अन्तरतम विचारों में उन्होंने नया अधिवेशन फिर से बुलाये जाने के तत्कालीन अन्तर की ओर ध्यान दिए जाने का बिल्कुल महत्व न दिया। यदि उनका बस चलता तो राष्ट्रवादी प्रांशु के उस अधिवेशन में भी पहुंचते, जिसे गोयले और याचा ने बुलाया था। वह राष्ट्रवादियों को इस बात के लिये राजामद न कर पाये कि वे इस तत्कालीन बात से ऊपर उठकर यह रास्ता अपनाए। इतनी ही असफलता उन्हें मिताचारियों को सहमत करने में मिली कि वह राष्ट्रवादियों के सुभाव से सहमत हो जाए और स्पष्ट किया गया अधिवेशन फिर से बुला लें।

एकता की भावना बिल्कुल दिव्याई नहीं देती थी। मध्यस्थ की भूमिका पर जोर देना बिल्कुल मुखतापूर्ण था दिखाई देता था। फिर भी, वह किसी एक गुट में पूरी तरह सम्मिलित न हुए जो अब स्थिर हो गये थे और अधिक से अधिक सख्त हात जा रहे थे और सागा को एक दूसरे से अधिक से अधिक दूर करते जा रहे थे। माण्डले से हाल ही में लौटने के कारण यह संभव था कि उनकी अधिक से अधिक जय जयकार हाती थी, परन्तु राष्ट्रीय राजनीति में वह अपने आपको बिल्कुल अलग थलग पा रहे थे। इसी दौरान एक राजनीतिक सम्मेलन में बोलते हुए रवीन्द्रनाथ टागोर ने कहा कि "जन साधारण के बीच विवाद तथा मतभेद इस कारण थे कि उनके उत्साह को इस्तमाल करने के लिए काफी लाभकारी काम नहीं था, न ही उनकी भावना के सावजनिक उपयोग के लिए उचित अवसर थे। एक उद्धरण के तौर पर उन्होंने संकेत किया कि उठने वाले सभी गुटों ने विभिन्न प्रकार उस समय सहयोग किया था, जब ट्रांसवाल के प्रश्न जैसे लाभकारी कार्य न उनका ध्यान आकर्षित किया था।" रवीन्द्रनाथ ने आगे कहा, "हम आशा करनी चाहिए कि बाबू बिपिन चन्द्र पाल स्थिति से निपटने के लिये अपना ध्यान

का उपयोग में लायेंगे और मतो तथा सिद्धांतों, नामों तथा शब्दों, तकनीकी बातों तथा व्यक्तियों के लिये लड़ने की व्यर्थता स्पष्ट करेंगे, क्योंकि अच्छा परिणाम तो काम और वेबल काम में ही प्राप्त हो सकता है। लाजपत राय कभी पीछे न रहे, परन्तु उनका निदानीय रवैया उन्हें उस प्राकृतिक स्थिति से घबराया गया, जो उनकी प्रतिभा तथा बलिदान न राष्ट्रीय आन्दोलन नीति की रूपरेखा तैयार करने के लिए बतला दी थी। पार्टी के झगडा में वह अप्रसन्न तो थे ही उन्होंने अपना ध्यान अधिक लाभकारी और कम विवादास्पद कार्यों की ओर केंद्रित कर दिया, विशेषकर अकाल पीडिता की सहायता के काम में उन्हें आगामी कुछ महीना के लिये व्यस्त रखा।

बर्मा में उन्हें लगानार निमंत्रण आ रहे थे, जिनमें जोरदार अनुरोध होता था। उनके मन में भी उस सुंदर और रहस्यमयी भूमि को देखने की उत्कण्ठा थी कि वह स्वतंत्र घुमक्कड़ के रूप में उस भूमि को देखें। उन्होंने बर्मा से निमंत्रण स्वीकार कर लिया था और सम्मेलन समाप्त होने के तुरंत बाद इलाहाबाद से ही वहां जाना चाहते थे। परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्हें आराम के लिये घर लौटना पड़ा और जब वह स्वस्थ हुए तो वह इतना अधिक व्यस्त थे कि उस काम में बिल्कुल दगी नहीं कर सकते थे। उत्तर प्रदेश के अकाल पीडिता को राहत पहुंचाने का काम तुरंत करना जरूरी था।

33. अकाल

सूरत के राजनीतिक परिणाम, परम्पराओं तथा विवादों से निपटने की हमारी चिन्ता ने कुछ घटनाओं का पूर्वानुमान कर दिया था। असल में सूरत के बाद विवरण बम्बई से आरम्भ होना चाहिये, जो यात्रा का आरम्भ बिन्दु था, जो असल में विजय-यात्रा बन गई, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर लोग इस यात्रा के लिये उत्सुक थे कि निर्वासन से अभी-अभी लौटे नायक को देख तथा सुन सकें। उन्होंने लाहौर लौटने से पूर्व बम्बई, कलकत्ता, वानपुर और दिल्ली की यात्रा की।

बम्बई में वह आय समाज शताब्दी के लिये समय पर पहुँच गये। माण्डले दुर्ग के नायक के लिये बहुत ही उत्साहपूर्ण स्वागत प्रतीक्षा कर रहा था, जिसमें केवल आय समाज से सम्बद्ध व्यक्ति ही नहीं, बल्कि बम्बई के सारे नागरिक उत्सुक थे। बम्बई में राजपत राम की गतिविधियाँ सूरत-अधिवेशन के बाद के जीवन का प्रतीक समझी जा सकती थीं—दो सावजनिक भाषण एक आय समाज के बारे में, जिसमें आत्माओं को डी० ए० डी० कालिज की और राष्ट्रीय शिक्षा के महत्व की जानकारी देना हाती थी। दूसरा स्वदेशी के बारे में और फिर अकाल-पीडित कोष के लिए धन एकत्र करने के लिए चक्कर। बम्बई से वह कलकत्ता चले गये, हावड़ा में बहुत ही भव्य स्वागत हुआ, दो अभिनन्दन समारोह हुए—एक नागरिकों की ओर से और दूसरा पूर्वी महानगर के छात्रों की ओर से, जो उन दिनों भारतीय युवकों का नेतृत्व कर रहे थे। टाउन हाल में खचाखच समा, जिसमें उन्होंने आय समाज के बारे में भाषण दिया (जिस प्रकार बम्बई में उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में दिया था) और अकाल पीड़ियों की सहायता के बारे में तथा “जनसमूह के कर्ण के लिये” अगले दिन सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता में समा हुई, ताँ सारा कलकत्ता माण्डले के नायक को सुनने के लिए उमड़ पड़ा था, यद्यपि सारा समय बूढ़ावादी होती रही थी। वानपुर में उन्होंने लोगों का स्वदेशी का उपदेश दिया और भूख से मर रहे लोगों की सहायता के लिए आवश्यक रूप से धन देने का आग्रह किया। इस विजय यात्रा के अन्तिम पड़ाव, दिल्ली में भी

वही कहानी दोहराई गई। भारी मात्रा में पुष्प-वर्षा तथा पुष्पमालाएँ भेंट हुईं, प्रणामा में कविताएँ पढ़ी गईं, जुलूस निकाले गये और अभिनन्दन-पत्र पढ़े गये। उन्हें उनके भोजवान के घर से 'पत्नी मल की हवेली' एक गाड़ी में ले जाया गया, जिसे उनके जाशीले प्रणामवर्षा चक्र ले गये, हवेली में उनके श्रोता उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अपन उत्तर में वहाँ भी उन्होंने यही कहा कि पड़ोस के जिला में व्यापक सख्या में भूख से मर रहे लोग की सहायता की आवश्यकता है, उसके लिए धन चाहिए, इस काम में कोई विलम्ब नहीं हो सकता। लाहौर लौटकर भी उन्होंने उसी काय के लिये धन की अपील की—पहले रविवार प्रात होने वाली आय समाज की साप्ताहिक सभाओं में और फिर सभा चारपत्ता के कालमा द्वारा।

वह अधिक समय के लिये लाहौर नहीं ठहरे। फरवरी 1908 के दूसरे अर्ध में हम उन्हें सयुक्त प्रात में अकाल सहायता के लिये दौरा करते देखते हैं। आगरा नगर तथा जिला बहुत बुरी तरह प्रभावित थे और उनकी ओर से उन्होंने विशेष ध्यान दिया। आगरा में उन्हें आय मिलन सभा की ओर से अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया तथा शैली भी और स्वदेशी बाजार में उनके श्रोताओं ने उनकी अपील पर वही एक हजार रुपया जमा कर दिया—यह राशि उन दिनों एक काफी बड़ी रकम होती थी। सयुक्त प्रात की बारह दिन की यात्रा के बाद उन्होंने समाचारपत्रों को अपने हस्ताक्षरों से विवरण भेजा जिसमें जो उन्होंने देखा था उसकी जानकारी थी। वह लोगों को बता रहे थे कि सरकारी एजेंसी चाहे जितनी भी अधिक कुशलता से काम करे, काफी काम नहीं कर पाती। यह काम बहुत बड़ा है और इसके अतिरिक्त उनके विचार में व्यापक आधार पर, सावजनिक तौर पर संगठित किया जाना चाहिए। राहत काय लोगों को आत्म निभरता तथा एकता के लिये अमूल्य प्रशिक्षण दे सकता है। असल में अपसरशाही एजेंसी अधिक कुशलता का दावा भी नहीं कर सकती थी। उन्हें सरकारी ढांचे में इस काम के लिये काफी लुटिया देखने का बहुत अवसर मिला। आगरा में उन्होंने देखा कि एक निधन परिवार में 47 व्यक्ति सरकारी सहायता पर जी रहे थे, जिनके भोजन आदि का मासिक खर्च 120 रुपये से अधिक नहीं था, परन्तु सरकारी कर्मचारी—एक निरीक्षक, एक अस्पताल सहायक, एक लेखाकार, दो सेवादार, एक चौकीदार, एक रसोइया तथा एक भिखारी—

कई स्थानों पर उनके नायकतावा को सरकारी तत्व से काफी सहायता तथा सहयोग मिला। उत्तर-पश्चिम रेलवे ने आरम्भ में ही घोषणा कर दी थी कि अकाल पीड़ित क्षेत्रों के लिये जाने वाला सामान और जिनके बारे में लाजपत राय प्रमाण दे देंगे, उसके लिए आधा भाड़ा लिया जाएगा। इसी प्रकार की रियायत (लाजपत राय द्वारा प्रमाण पत्र देने की शर्त पर) बाद में ईस्ट इंडियन रेलवे ने भी घोषित कर दी।

बाद में जाकर सहायता यू०पी० की सीमा से बाहर भी दी गई। शायद जब दान देने का सिलसिला समाप्त कर दिया गया था, तो कुछ फालतू सामान बच गया था। इसलिए उन्होंने उन स्फूली बच्चा से प्राथनापत्र मागे, जो सहायता चाहते थे। एक अग्र विज्ञप्ति में उन्होंने अपने कुछ दानवीरा से धन का इस उद्देश्य के लिये इस्तेमाल करने की आज्ञा देने का आग्रह किया था।

सबसे भुखमरी के इस सघष ने लाजपत राय को भारत की सबसे अधिक गंभीर और विकट समस्या—लोगों की दरिद्रता की भयंकर जानकारी दी, जो आकड़ों की पुस्तिका तथा उनमें छपे हुए ब्योरा से किसी भी राजनीतिज्ञ को प्राप्त नहीं हो सकती। कई बार यह जानकारी उन्हें बिल्कुल ही ताड़ देती और वह निराशा हो जाते। अकाल के दशकों के बारे में उनके एक लेख से उद्धरण इस प्रकार है

‘ऐसा दिखाई पड़ता था कि उनमें से बहुत से लोग मौत के किनारे पहुंच गये हैं। हम चुने हुए लोगों को सहायता देना चाहते थे और हमने कुछ लोगों को ही दान दिया। जब हमें ऐसा करते हुए देखा गया, तो बच्चा तथा अन्य लोगों की पूरी फौज हम पर चढ़ आई और सहायता के लिए चिल्लाने लगी। कुछ स्वयंसेवकों ने मुट्ठी-भर सिक्के उनकी ओर उछाल दिये और उसके बाद जो दृश्य देखने में आया, वह इतना वरुणात्मक और हृदय विदारक था कि मुझे उन्हें ऐसा करने से रोक देना पड़ा।

“इसी शिविर में मेरे मन में यह विचार गंभीरता में आया कि क्या यह अधिक मानवीय न होगा यदि उन्हें मरने दिया जाये, क्योंकि उनमें अधिकतर तो आखिरकार मरेंगे ही।”

वई बार इस निराशा मे प्रकाश फैन जाता है, सामान्य "आशा की विरण" के कारण या "हर बुराई मे अच्छाई की शलक" की बात के अनुसार नही, बल्कि अत-पान मन स्थिति के कारण—जा सामान्य तौर पर दान देते समय उत्पन्न नही होती थी । दरअसल, उनम से जो अधिक बठोर भी हो उन्हें भी विस्मृग्ध कर दे । लाजपत राय ने अनास के बारे मे लिखे एक लेख म इसकी चर्चा करते हुए इसे "दिव्य दशन" कहा है, यद्यपि इस प्रकार के दश्य अठ मे विपाद म वृद्धि ही करने थे ।

"इस सारी दुदशा म मने एक ऐसा दृश्य देखा, जिसन मेरे मन पर और ही प्रकार के प्रभाव डाला । दम-बारह वष की एक बालिका, बहुत ही छोटी भी, जो मिर से पाय तक नगी थी निवाय एक चीयडे के जा उसन शील वापने के लिये कमर पर बाधा हुआ था, मिट्टी की एक टोकरी उठाए हुए थी और बराबर मुसकरा रही थी । ऐसा दिखाई पडता था कि अपनी आत्मा मे वह अपने चारो ओर सारे ससार पर हस रही हो—इस परम्परागत बेहूदे मसार पर जिममे विपमताए और मतभेद भरे पड है—उस ससार पर जिसम मामूली तथा अस्थाई वस्तुओ की जातिर भगडे तथा सघप होते है और वह बालिका आमपास की दुर्दशा के प्रति उदासीन रहते हुए प्रसन्न है ।

"ज्योहि मेरी आख निष्पटना के देवदूत पर पडी, मेरे प्राव उस जगह पर जकड गये । मैन उसकी ओर दखा और मुसकरा दिया । बिना शिक्क, प्रेम के आवेग से विवश, मैं उस बालिका की ओर बढ़ा और स्नेह से अपना हाथ उसके सिर पर रख दिया । मेर मन मे अगला आवग था कि मैं उसे घूम लू और उसे कुछ पैसे दे दू । पहले आवेग से तो मैं इसलिए हक गया कि आसपास खडे लाग मरी इस कारवाई को हास्यास्पद समझेंगे और हमारे आवेग मे म इसलिए हक गया कि उसकी सौम्यता वा इस प्रकार मूल्य आकने मे वह पवित्र आत्मा हतात्साहित होगी । यह सब कुछ चंद एक मिनटा मे ही हुआ । वह छोटी बालिका अपनी टोकरी लेकर चली गई और म भारी मन लेकर वहा स चल दिया ।

"दोपहर के बारह बज चुके थे जब हम उस स्थान से रवाना हुए । उस दृश्य ने मेरे मन पर निराशाजनक प्रभाव डाला, जिसे म सारा दिन दूर न कर सका ।

"ऐसे दशन" उन्हें नेकी करने वाला के काम से अलग करता है, चाहे वे कैसे ही अच्छे उद्देश्य वाले क्यों न रहे हो ।

34. फिर इंग्लैंड में

23 अगस्त 1908 को उनके भित्ती ने, जिनमें से कई नगरेतर स्थानों से थे, उन्हें लाहौर रेलवे स्टेशन पर विदाई दी। 29 अगस्त को लाला लाजपत राय चुपचाप एस० एस० मार्मोरा द्वारा बम्बई से इंग्लैंड के लिये रवाना हो गये।

उस समय तक तिलक को छ वष की बड़ी कैद की सजा हो गई थी, अरविंद घोष को अपने समाचारपत्र व लेखों के लिये गिरफ्तार कर लिया गया था और उनकी बहन ने मुकदमा लड़ने के लिए धन एकत्र कराने के लिए सावजनिक अपील की थी। पंजाब तथा अन्य कई स्थानों पर राष्ट्रीय समाचारपत्रों के विरुद्ध राजद्रोह तथा अन्य कई आरोपों के सबूतों में मुकदमों चल रहे थे। लाल-बाल-पाल की त्रिमूर्ति में से बाल का दर्मा निर्वासित कर दिया गया था—छ वष के लिए, अपनी प्रसिद्ध रचना 'गीता रहस्य' लिखने के लिए—जहां से बाल अभी पिछने वष ही निर्वासन से लौटे थे। लाल फिह्राल दलगत राजनीति से अलग थे, यद्यपि आम लोगों के लिये त्रिमूर्ति अभी कायम थी। कई लोग समझते थे कि अरविंद वह व्यक्ति हैं जो तिलक के साथ मिलकर राष्ट्रवादी नीतियों के लिये काय करते तथा रूप-रेखा तैयार करने के लिये जिम्मेदार हो सकते हैं, वह भी अब स्वतंत्र नहीं थे। पाल ने सूरत अधिवेशन के बाद दक्षिणी प्रेसीडेंसी की घड़िलेदार विजय यात्रा की थी, परन्तु उस यात्रा की समाप्ति के बाद उन्होंने भी यूरोप चले जाने का निणय कर लिया था, ताकि "ब्रिटिश लोग तथा यूरोप और अमरीका के विश्व-यात्री महत्व के नेताओं को बताने कि "भारत में प्राति अवश्य आएगी यह प्राति शान्तिमय ढंग से आएगी या और ढंग से, यह बात बहुत हृद तक उनकी अपनी नीति पर निर्भर करती है।" तिलक के प्रथम महायत्न, जी० एस० खापट्टे, भी लगभग उन्ही दिनों यूरोप चले गये।

लाजपत राय के लिये राजनीतिक स्थिति की अच्छी तस्वीर लेकर जाने की सामायना नहीं थी। विच्छेद ने आदालत को बमजार कर दिया था, जैसा

कि उन्हें आशका थी कि सरकार न दमा की नीति आरम्भ कर दी थी— और विच्छेद न उनकी सहायता की। राष्ट्रीय उत्साह की लहर अभी समाप्त नहीं हुई थी, परन्तु इसके लिये दिशा की बहुत आवश्यकता थी। उत्साही युवक, जिन्हें खुले आन्दोलन में अपने उत्साह को सतुष्ट करने के लिये कोई मार्ग न मिला, वे आतङ्कवादी गुप्त संगठन के आन्दोलन के लिये नई भर्ती के लिये उपलब्ध हात थे। आतङ्कवादियों के एक महत्वपूर्ण मामले में बंगाल में मुकदमा चल रहा था। जहाज पर ही साजपता राय को पता चला कि इस मुकदमे में अचानक नाटकीय मोड़ से लिया था और वायदा माफ़ गवाह नरेंद्र गोमाई की बन्हाई खाल दत्त और सरयेंद्रनाथ बोस ने हत्या कर दी थी।

1905 में यह निश्चय ही कांग्रेस प्रतिनिधि के तौर पर यूरोप गये थे। इसके अतिरिक्त वह वहाँ कई चीजें देखना तथा उनका अध्ययन करना चाहते थे। इस बार न तो कोई निश्चित मुलाकात थी और न ही निश्चित उद्देश्य। उन्होंने दूसरी यात्रा का निणय क्या और किस मन स्थिति में किया, इसके बारे में ब्यौरेवार जानकारी उन्होंने जहाज पर से जसबन्त राय के निम्ने एक पत्र में दी जो 'द पंजाबी' में प्रकाशित किया गया (जैसा कि प्रत्यक्ष तौर पर इसका उद्देश्य था)।

उन्होंने बताया कि किस प्रकार "कुछ प्रमुख मित्रों ने बीत चुकी अप्रैल में उन पर इंग्लड की यात्रा करने के लिये जोर दिया" और किस प्रकार उन्होंने इन्कार कर दिया, क्योंकि वह अकाल पीड़ितों की सहायता के काम में व्यस्त थे, तथा बाद में इसलिए कि "अफवाहें गरम थी कि बम फेंकने के सिलसिले में तलाशियाँ अवश्य हाती थी और राजद्रोह के सिलसिले में गिरफ्तारियाँ की जा रही थी, विशेषकर उन लोगों की जिनके बारे में मुझे कुछ रुचि थी।"

फिर उनके पत्र में—जसबन्त राय तथा उनका समाचारपत्र के पाठकों को— यह जानकारी दी गई थी कि किन कारणों से वह विदेश जा रहे थे और उन्हें यह जानकारी कुछ अधिक विस्तार से दी थी

'खर, हकीकत यह है कि मैं लाहौर के जीवन से ऊबता जा रहा था। मुझे उस उत्साह भंग का, जो जीवन में आ गया था, कोई ख्याल नहीं था।

जब से निर्वासन का आदेश हुआ था, तब स्पष्ट होने लगे। एक एक करके उन प्रमुख व्यक्तियों के बारे में घटनाओं का पूरा सिल सिला स्पष्ट होता गया, जिन्होंने निर्वासन के लिये तथा उसके बाद के उत्साह भंग के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। कोई भी व्यक्ति किसी गुट के ईमानदार वफादारों, स्पष्टवादी और सच्चे मिताचारियों, और नेकनीयत उग्रवादियों को तो सहन कर सकता है, परन्तु किसी भी गुट के ढोंगिया, दभियों और देशद्रोहियों को सहन नहीं किया जा सकता। क्या ईमानदार लोगों के लिये उन लोगों के साथ काम करना संभव है, जो वफादार, मिताचारी और उग्रवादी होने का दिखावा करे और इससे अधिक मुखबिरी भी करे, जैसा उनके हितों तथा उनकी जेबों के लिये उचित हो ?

“अब, यदि हम उन घातों के जो लाहौर में हो रही हैं, पचासवें भाग पर भी विश्वास करे कि कुछ लोगों ने पिछले सप्ताह में अपने आपको वफादार और मिताचारी नेता व्यक्त किया तो हम यही कह सकते हैं, “भगवान हमारे देश को ऐसे देशभक्ता से बचाये।”

परन्तु मिताचारिया और मिताचारियों में भी निस्संदेह अन्तर था, मालवीय और बाबू सुरेन्द्रनाथ जैसे अपवाद भी थे। उनके मन में उनके विरुद्ध कुछ नहीं था। परन्तु —“आप उन लोगों के बारे में क्या सोचेंगे जिनकी वफादारी, मिताचारियत और उग्रवाद, उस धन की मात्रा के साथ बदल जाता है जो वे एक से या दूसरे से पैदा कर सकते हैं, जिनमें इतना भी नतिक संकोच नहीं कि वे जासूसी और मुखबिरी का काम न करे, यदि ऐसा करने से उनके जीवन का कोई उद्देश्य पूरा होता है या उनके दर्जे में वृद्धि होती हो तो वे दंड-मुक्ति की भावना से अपनी सख्या में वृद्धि कर लेंगे। ऐसा दिखाई पड़ता था कि लाहौर में ऐसे लोगों की भरमार है। आप यह भी नहीं जान सकते थे कि किस व्यक्ति के साथ विश्वास के साथ बात करे तथा किस पर भरोसा करे। कुछ लोग ऐसे हैं जो सम्मानित पदा पर हैं, बहुत आदरणीय लिबास पहनते हैं, उनका एकमात्र या मुख्य घाघा यही दिखाई पड़ता है कि वे अधिकारिया तक कहानिया पढ़वाए, मञ्ची अथवा झूठी या मामूली बातों को बढ़ा चढ़ाकर। पिछले दो तीन मास में अचानक यही हुआ है कि मुझे इस बात पर धेद हुआ है कि आय समाज में अधिक सौम्य वातावरण

म जा मुखद काम में बर रहा था, मन अपने आपको उससे हटा लिया है। आय समाज, ब्रह्मो समाज या किसी अन्य सभा या समाज में बिल्कुल सामाजिक तथा धार्मिक कार्य करने वाले लोग तो कम से-कम विश्वसनीय होन ही हैं। लाहौर से बाहर के लोग यह सोच भी नहीं सकते कि पिछले राजनीतिक सकट में लाहौर के समाज ने अपना कितना नैतिक पतन कर लिया है। यू लगता है कि उम्र भर की मित्रता का बिना किसी खेद के धोखा दे दिया गया है। जीवन भर की शत्रुता की भी उचित ढंग से तुष्टीकरण की गुजाइश पैदा हुई है। हममें आप यह चिन्ता भी शामिल कर लीजिए जो मैं अपने विरुद्ध लगातार जामूसी के कारण महसूस करता हूँ, फिर आप तथा अन्य मित्र यह जान जाएंगे कि मैंने अपने आपको अपने परिवार तथा अपने कार्य से कुछ समय के लिए अलग करने का निर्णय क्या किया, इस आशा के साथ कि शायद भारत में मेरी अल्प अनुपस्थिति से मेरे मन का सतुलन कुछ ठीक हो जाये और मैं अपना कार्य अधिक आशावादी मन स्थिति में फिर से आरम्भ कर सकूँ।”

यही दुःख थी जिसने उन्हें बाहर जाने पर मजबूर किया, वह इसे और अधिक सहन न कर पाए “जामूसी” की छेड़ छोड़ सागर यात्रा के दौरान भी जारी रही — जिसकी अक्सर अपनी ही विनोदशीलता होती थी। समाचारपत्र के उस पंरे में, जिसमें लाजपत राय की लाहौर से खानगी की खबर दी गई थी, लिखा गया था “बताया गया है कि लाला लाजपत राय के लिये जो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा आरक्षित था, उसके साथ का प्रथम श्रेणी का डिब्बा पुलिस के एक मुसलमान उप-अधीक्षक को दिया गया था।” ऐसा जान पड़ता है कि मुसलमान पुलिस अधिकारी लाजपतराय के साथ जहाज पर नहीं गया—परन्तु वहाँ एक यूरोपियन था और उसके लिए काफी कठिनाई भी हुई, जब मासेल्स में भारतीय छात्रों की जोशीली भीड़, जो भारतीय युवकों के उस नेता के स्वागत के लिए एकत्र हुई थी, रेलगाड़ी पर चढ़ गई और उसे डिब्बे से बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया। उसे अपना स्थान बदलना पड़ा और वह किसी-न किसी तरह लंदन पहुँच गया, ताकि लाजपत राय की गतिविधियाँ पर नज़र रख सके। जसवंत राय को लिखे पत्र में आगे लिखा गया है और इस बारे में विचार किया गया है कि पंजाब में राजनीतिक कार्य किस प्रकार चलना चाहिये, किस प्रकार पंजाब

को मिताचारी और उग्रवादी नामों के नीचे लडते हुए गुटा में नहीं बटना चाहिए और किस प्रकार का राजनीतिक नेता तथा कायकर्ता बूझना और प्राप्ताहित किया जाना चाहिये।

पत्र के अन्तिम पंरे में जहाज पर अपनी सगति के बारे में उन्होंने कुछ चर्चा की है और हमें पता चलता है कि जहाज पर कोई दस-बारह पंजाबी छात्र थे, जो ब्रिटिश विश्वविद्यालय में जा रहे थे, कुल मिलाकर 30-40 भारतीय जहाज पर सवार थे, जिनमें टैंगोर परिवार की एक बंगाली महिला भी थी और श्री ए० चौधरी भी थे। "हमने आज चपातिया, सब्जी तथा कढ़ी प्राप्त करने की व्यवस्था कर ली थी। लडके रोटी को तरस गये थे और उन्होंने इस परिवर्तन की सराहना की।"

वह बिना किसी निश्चित उद्देश्य के गये थे, और जैसा कि उन्होंने कहा है कि वे देश से बाहर जाने पर मजबूर हुए थे, क्योंकि उनकी आत्मा निराशा से द्रवित हो गई थी। उस निराशा से जो आसपास के समूचे सामाजिक जीवन में आई गिरावट को देखकर पैदा हुई थी, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने देश के हित के लिए जब भी अवसर मिला काय नहीं किया। हम पहले ही देख चुके हैं कि वह बहुत ही साधन सम्पन्न प्रचारक थे, जिन्हें प्रचार के लिए अवसर पैदा करने की पूरी जानकारी थी। जो भी अवसर मिलता उसे प्रचार के लिए इस्तेमाल करने का उन्हें ज्ञान था। उन्होंने समाचारपत्रों के लिये लिखा तथा मंच से भाषण भी दिये। यदि भारतीय आंदोलन के शत्रुओं ने ब्रिटिश समाचारपत्रों में गलत तथ्य दिये या गलत बयानी की, तो उन्होंने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया।

महत्वपूर्ण ब्रिटिश समाचारपत्रों जैसे 'मास्टर गार्डियन' और 'डेली यूज', ने उनके साथ भटवार्ता प्रकाशित की। ब्रिटिश पत्रकारिता के क्षेत्र में उच्चतम स्थान प्राप्त व्यक्तियों ने उनके साथ भेंट की—उनमें नेक्सन तथा स्टीड शामिल थे। 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' के लिये उनके साथ भेंट में स्टीड ने उन्हें शानदार अवसर दिया—उसने भारतीय नेता से पूछा कि यदि वह भारत में ब्रिटिश वाइसराय हों, तो वह क्या करेंगे। साजपत राय ने शायद अपने आपको इस स्थिति के लिए तैयार नहीं किया था, परन्तु

फिर हाल में

उन्हें "यह विन्बुल अस्थायी नियुक्ति अन्य प्रवर्ध हानि ~~तब विचार करनी~~ थी" और जब उन्होंने केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडल ~~तथा सरकार~~ के बारे में अपने विचार विनम्र ढंग से व्यक्त कर दिए, तो भेटवाती करने वाले न जा निष्पन्न निश्चालता, उसका सार इस प्रकार है दूसरे शब्दों में आप बाइगराय के पद का भारत में ब्रिटिश सरकार की वज्र छोड़न के लिये इस्तेमाल करेंगे।" हम हैरान होने की आवश्यकता नहीं यह अस्थायी नियुक्ति" तुरत समाप्त कर दी गई। नेक्शन न स्वयं भारत की समस्या तथा भारतीय आन्दोलन का मौका पर जाकर स्वयं अध्ययन किया था और उनका बारे में उसके अपने विचार थे, इसलिए वह लाजपत राय से छूटे मामला—फारी समस्या — के बारे में पूछना चाहता था। इसलिए लाजपत राय ने उसे गुप्तचर्या के बारे में तथा राजनीतिक बढ़िया के साथ साधारण महापराधिया के समान व्यवहार करने के बारे में बताया।

बिस्मिल व्यक्ति ने — बिस्मिल भारतीय ने — 'डेली यूज' को लिखा कि हैदराबाद में व्यक्ति के जीने के लिये एक पेंनी मूल्य की घुराक काफी है इसका लाजपत राय ने उपयुक्त उत्तर दिया, जिसमें भारत की कीमती के बारे में आकड़े दिये गये। "पंजाब के एक प्रचारक" ने उसी समाचार-पत्र को लिखा, जिसमें बेगार अथवा जबरन मजदूरी लेने को उचित ठहराया, उसे भी करारा उत्तर तुरत मिला। स्वासी में बोलते हुए श्री लायड जाज ने "लिवरल युवकों को जो लिवरल निर्वाचन क्षेत्रों में थे" से दोबारा प्रेरित होने की आवश्यकता पर बल दिया और कहा कि "विशेषाधिकार प्राप्त जाति राष्ट्र में साहस तथा पीठ्य को कमजोर करती है। लोग में दासता की भावना को समाप्त करने का निरंतर विरोध ही एकमात्र उपाय है। 'लाजपत राय को चक्की के लिये इससे और बढ़िया मसाला मिल गया, उन्होंने तुरत ही 'डेली यूज' को एक पत्र लिखा और कहा कि उदारवाद के सिद्धांत बिल मंत्री ने प्रतिपादित किये हैं। उन्हें मवव्यापी मय क्या न मान लिया जाये और भारत के सदन में भी लागू किया जाये। इससे लाजपत राय की प्रचार के लिए उपाय कुशलता स्पष्ट हो जाती है।

उन्होंने व्यापक तौर से भ्रमण किया। नलेपहैम में एस० के० रेडविलफ ने उनकी बैठक की अध्यक्षता की, वस्टबॉन पाक चपल समद सदस्य जी० पी० गूच ने तथा अन्य स्थानों पर रमसे मैकडोनेल्ड तथा जालिवर ने बठका

की अध्यक्षता की। अपने भाषण में अन्त में वह ऐसे प्रश्न का स्वागत करत जा तुरत और सटीक हात, क्याकि उनके उत्तर उनके भाषणा स अधिक लाभकारी हात थे। एक बार उनस कहा गया कि "वह अनुमान बताए कि जिन करोडा लागी की आर से वह बाल रहे हैं कि हमें प्रतिनिधि सरकार दी जाये और उन सस्याना के बारे में कुछ आकडे भी दें जिन्होंने याचिकाए भेजी है, या वह कोई ऐसी विश्वमनीय जानकारी भी दें कि वह कुल आबादी के पाच प्रतिशत से अधिक लोगी की ओर में बोल रहे हैं। उनका सगिप्त परन्तु निर्णायक उत्तर था कि स्वयं ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन के यथाय को प्रमाणित किया है। निर्वासन तथा दमन की क्या आवश्यकता हो सकती है, यदि कुल आबादी के केवल पाच प्रतिशत से निपटन की आवश्यकता हो।" उन्होंने बड़ी हाज़िरजवाबी तथा आकडा में प्रवीणता का प्रदर्शन किया। एक श्री पर्सीवल लडन डेली टेलीग्राफ को 'भारतीय असतोय के बारे में पत्र लिखा करता था, इससे साजपत राय को इस आरोप का खडन करने का बढिया अवसर मिला कि राष्ट्रवादी आन्दोलन ब्राह्मण प्रमुख का आन्दोलन है, तथा इस बेहूदा बयान का भी कि आयसमाजियो ने सिखों की कफादारी छुट्ट कर दी है। स्वयं साजपत राय के विरुद्ध आरोप थे, परन्तु उन्होंने इतना कहने तक ही सताय किया

"यह आरोप इस समय कलकत्ता उच्च न्यायालय के विचाराधीन है ताकि मैंने अपने विरुद्ध समाचारपत्रों में अपलेख लिखन वालों के विरुद्ध जो मुकदमा दायर किया है उसका निणय हो सके। (साजपत राय बनाम 'द इंगलिशमैन') न्याय तथा औचित्य के नियमों के अनुसार चाहिये ता यह था कि आपका सवादिदाता मेरे विरुद्ध इन आरोपों की उस समय तक चर्चा न करता, जब तक इनका मुकदमा समाप्त न हो जाता। परन्तु उसके मन में मेरे विरुद्ध ब्रिटिश जनता के मन में भ्रांति पैदा करने की जा सालसा पैदा हुई थी, उससे वह बच नहीं पाया।"

हिन्दुआ के गैर मनिक् चरित्र के बारे में तिरम्कारपूर्ण चर्चा करत हुए श्री लडन ने अफगाना में खतरे की बात की। इसका साजपत राय ने बहुत असरदार उत्तर दिया।

“श्री सदन को अपना इतिहास और अधिक ध्यान से पढ़ना चाहिए था, ताकि स्मरण हो सके कि पंजाब के हिन्दुआ के मन से अफगाना का हीवा ब्रिटिश के वहाँ जाने से बहुत पहले ममाप्त हो चुका था। अफगान सीमा के बारे में जाच करवान से स्पष्ट हो जाएगा कि एक दक्षिण जनरल का नाम दक्षिण— जिन्हे अब केवल रपया उधार देन वाला बग ही समझा जाता है — लेकर अफगान औरते अपने छोटे बच्चा का डराया करती थी। हकीकत ता यह है कि सैनिक स्वभाव समय तथा परिस्थियो की उपज है। यह किसी बग विशेष या जाति का एकाधिनार नहीं हाती।”

सदन में रहने वाले भारतीयों ने 16 अक्टूबर 1908 का राष्ट्रीय दिवस समारोह आयोजित किये। उन्होंने बेक्सटन हाल में एक सभा आयोजित की। लाजपत राय और बिपिन चंद्र पाल बक्ताबो में प्रमुख थे। पाल ने कवितमय गद्य में एक “भाह बान” किया। लाजपत राय ने कहा कि भारत में राष्ट्रवाद का जन्म 16 अक्टूबर 1905 में हुआ और वह आज उसकी तीसरी वषगाठ मना रहे हैं।

हम लाजपत राय के प्रथम पत्र जो ‘सेटस फ्राम अन्नाड’ से ‘द पंजाबी’ में प्रकाशित है की पहले चर्चा कर चुके हैं, कुछ पत्र तो मुख्य तौर पर उन स्थानों तथा घटनाओं का विवरण मात्र थे, जो लाजपत राय ने विदेश यात्रा के दौरान देखी। उदाहरण के तौर पर, दूसरे नंबर का पत्र मुख्य तौर पर एंग्लो फ्रेंच कला तथा उद्योग प्रदर्शनी का विवरण था। यह प्रदर्शनी उन दिनों लगी हुई थी। उससे अगले पत्र में प्रमुख तौर पर समाचारपत्रों का विस्तृत विवरण था, जो श्रीमती पैकहर्स्ट तथा उनकी सहयोगी मताधिकार आंदोलनकारियों की सनसनीखेज कारवाइया के बारे में था जो उन्होंने इंग्लैंड में महिला मताधिकार आंदोलन के जोश भरे दिनों में की थी।

इंग्लैंड में ठहरने के दौरान वह एक बार फिर श्यामजी के खंडिया हाउस में ठहरे। इस यात्रा के दौरान उनके जो नये सम्पर्क अतिवादी तथा क्रांतिकारी क्षेत्रों में बन उनमें रूस का अराजकतावादी राजकुमार प्रोपोटकिन भी था, जिसे उन दिनों यूरोप का सर्वोच्च क्रांतिकारी नेतृत्व तथा दासनिव समझा जाता था।

गांधी के साथ वह विल्फ्रेड स्वेविन ब्लैट से मिलन गये। उसने इन दो भारतीय नेताओं के बारे में अपनी 'डायरीज' में चर्चा की है। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा (आटात्रायाशास्त्री)* में उसकी चर्चा की है, जो ब्लैट ने लिखा है (1909 में) "उसका रवैया दोनों के प्रति बहुत कड़ा है, यानी वह दोनों को हकीकत का सामना करने से डरने वाले और अत्यधिक सावधान महसूस करता है। फिर भी, साजपत ने इन परिस्थितियों का अन्य भारतीय नेताओं की तुलना में अधिक मुकाबला किया," इससे जवाहरलाल नेहरू ने निष्पत्ति निकाली, "ब्लैट का यह प्रभाव हम अहसास करवाता है, कि हमारी राजनीति की गति कितनी धीमी थी तथा एक योग्य तथा अनुभवी विदेशी न उनसे जिस प्रकार प्रभाव ग्रहण किया।"

"एक दशक" (और एक विश्व युद्ध) में क्या अन्तर आया, निस्संदेह यह बात इसका सही मूल्यांकन करने के लिए काफी है कि हम महात्मा गांधी के युद्धपूर्व तथा युद्धोत्तर रवियों के अन्तर को देखें, जिसमें उन्होंने सविनय अवज्ञा की भावना जगाई, यह ब्लैट की राय से अधिक महत्वपूर्ण है। यह घड़ी रोचक बात है कि यह "योग्य तथा अनुभवी विदेशी" खापड़ों से बहुत प्रभावित हुआ था, जिसके बारे में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था कि "बाद के वर्षों में वह फाक्ता के समान सौम्य और मिताचारिया के लिये भी बहुत ही मिताचारी हो गया था।" शिमला में रासबिहारी घोष द्वारा दिये गये रात्रिभोज के अवसर पर खापड़ों के साथ हुई भेंट में, जवाहरलाल ने बताया कि खापड़ों ने "गोखले की आलोचना शुरू कर दी (जिनका कुछ वर्ष पूर्व देहात हो चुका था) उसने कहा था कि वह एक ब्रिटिश एजेंट थे जिन्होंने लण्डन में उसकी मुखबिरी की थी। हमें विश्वास करना चाहिये कि उन्होंने योग्य तथा अनुभवी विदेशी का मनोरंजन किया। ब्लैट की 'डायरीज' में खापड़ों की चर्चा से हमें भारतीय राजनीति का "स्वभाव" शायद सतोषजनक लगे। गोखले तो भारतीय राजनीति में केवल एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे — परन्तु वह इसका बढिया नमूना थे। ब्लैट ने मिताचारी मत के प्रति अपनी घृणा को छुपाया नहीं। साजपत राय के लिये गोखले की सगति में ऐसे व्यक्ति से मिलना कठिनाईपूर्ण ही रहा हागा जबकि (मुख्यतौर पर मौलें मुघारा के कारण) उनकी राजनीति के माग अलग हो चुके थे। फिर भी साजपत राय

को यह विचार अधिक अच्छा नहीं लगा हागा कि एक विदेशी के साथ पहली ही मुलाकात में मार्ग अलग होने की चर्चा की जाये। यह दुर्भाग्य की बात है कि ब्लंट के साथ उनकी पहली मुलाकात गाग्रले की उपस्थिति में हुई, जब यह गाग्रले के प्रति व्यक्तिगत आदर के कारण लगभग चुप ही रहे और इस प्रकार उन्होंने राजनीतिक दृष्टिकोण में "अस्पष्ट" हान का प्रभाव दिया। ब्लंट की 'डायरीज' में साजपत राय और खापड़ों के उत्सर्ग की यदि ध्यानपूर्वक जांच की जाये, तो इससे बहुत कुछ पता चलेगा। यह एकदम निश्चित जान पड़ता है कि ब्लंट ने अपनी 'डायरीज' में तिथि प्रम का बहुत ध्यान नहीं रखा और उसने साजपत राय के बारे में जो लिखा है वह पांच मास बाद खापड़ों के साथ भेंट होने के पश्चात् उससे प्राप्त हुआ। निस्सन्देह, खापड़ों ने ब्लंट का बताया था कि साजपत राय किसी खास महत्व का व्यक्ति नहीं। सभ्य है ब्लंट 'स्टारी आफ माई डिपॉटेशन' की री-नेगोवोराना शैली से प्रभावित न हुआ हो, परन्तु उसने कुछ पत्रों पर भी कई टिप्पणी में यह लिखा गया है कि 'लेखक' ने यह स्वयं उसे भेंट की थी, पढ़ने में शर्वापूर्ण लगती है। यह पुस्तक पढ़ने के बाद टिप्पणी कर सकता था—ऐसा दिखाई पड़ता है कि उसने यह खापड़ों द्वारा बताया गई बातों की राशनी में लिखा। यह अधिक सभ्य दिखाई पड़ता है कि ब्लंट ने जब यह टिप्पणी की कि अच्छा यही होता कि भारत किसी तर्ज तरार प्रतिनिधि का भेजता, जिसके होठों पर मेरे मित्र के समान गालियाँ होती, ताकि अतिवादिया को पता चल पाता कि भारत में ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनसे डरना चाहिए, तो दरअसल वह खापड़ों की चर्चा करता है जिनमें आगामी अक्टूबर में उनसे भेंट की थी और हाइडमैन ने उसका परिचय कराया था।

35. लाहौर अधिवेशन में भाग न लेना

माच 1909 में लाजपत राय भारत लौट आये, लाहौर के उही पुरान गुटा तथा विवादा में। लाहौर के नेता कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिये बड़े जोश में थे, यद्यपि अधिवेशन में अभी कई महीने बाकी थे। एक गुट स्वागत समिति के प्रवधा का आगे बढ़ा रहा था, जबकि दूसरा गुट कांग्रेस अधिवेशन के पक्ष में नहीं था—पजाय में तो वदोपि नहीं।

सारे आवश्यक पहलुआ में राष्ट्रवादिया के राजनीतिक मत का अपना कर, वे एग की खातिर मिताचारिया के सम्मेलन में शामिल हुए। परन्तु उन्हें यह समझने में अधिक समय न लगा कि मिताचारिया के सुराख में राष्ट्रवादी खूटी बिन्दुल ही अनुचित बात थी। एकता के लिये उनके प्रयत्न बिन्दुल असफल हुए। यदि कोई उम्मीद बची थी, तो वह तिलक का माइले भेज देन के साथ समाप्त हो गई। तिलक को तो यह सहमत कर सकते थे, परन्तु तिलक समझना को वदोपि नहीं कर सके। उन्होंने यह भी दख लिया था कि मिताचारी अपने गलत ढंग से सोचे गए सक्रिय विरोध को किस प्रकार व्यक्त करते हैं—वह भी उनकी “आशा का प्याला खाली” कर रहे थे और अपने इस जोश में इस बात से भी अनजान थे कि इस लगातार सघप में वही प्याला स्वय ही टूट न जाये, राष्ट्रवादिया के प्रति इस विरोध के कारण सरकार इस योग्य हो गई थी कि दमन की नीति अपना सके, ताकि वामपंथी गुट को कुचला जा सके और इसके परिणामस्वरूप समूचा राजनीतिक आंदोलन कमजोर पडा और राष्ट्रीय कांग्रेस बेजान हो गई।

उन्होंने सूरत के विच्छेद तथा उसके परिणाम के बारे में बहुत ही स्पष्ट तौर पर ‘द पजाबी’ में प्रकाशित एक पत्र में लिखा (जुलाई 1909) जो इस विवाद से उत्पन्न विचार के कारण लिखा गया कि दिसंबर 1909 में कांग्रेस अधिवेशन लाहौर में होना चाहिए या नहीं? इस शानदार पत्र के आरंभ में ही उन्होंने उस प्रतिबंध की चर्चा की जो उन्होंने स्वयं अपने आप पर लगाया था

“सावजनिक जीवन का जो थोडा बहुत अनुभव मुझे था, उसने मुझ पर यह बात स्पष्ट कर दी थी कि मैं उस विवाद से अलग ही रहूँ।

दिसबर 1907 मे सूरत मे कांग्रेस मे जो विच्छेद हुआ था और कांग्रेस मे जा विवाद छिडा था, उसवे प्रति यही मेरा खयाल था, और है। अकाल सहायता के लिये अपनी यात्राआ के दौरान मने बार-बार उन प्रश्ना के उत्तर देने से इन्कार कर दिया, जो मेरे विचार जानने के लिये थे कि इस विच्छेद के लिये कौन सा गुट जिम्मेदार था और कहा तक ?”

परन्तु अब कुछ बदली हुई परिस्थितिया मे वह अपन ऊपर लगाया प्रतिबन्ध किसी हद तक नम करते जा रहे थे। अब उहाने लिखा

“सर फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले के लिये मेरे मन मे उच्चतम आदर तथा प्रशंसा है। मे समझता हू कि मेर महता बहुत ही योग्य, बहुत ही मुमयत और अपनी परिस्थितियो के अनुसार बहुत ही साहसी भारतीय राजनीतिज्ञ हैं। श्री गोखले की देशभक्ति तथा उच्च विचारा पर सदेह नहीं किया जा सकता। उनकी निष्कपटता पर सदेह करना सारे देश मे निष्कपटता के अस्तित्व पर सदेह करना है। परन्तु यह विचार रखते हुए भी इस नीति की बुद्धिमत्ता पर ईमानदारी से सदेह किया जा सकता है, जो 1907 के दुर्भाग्यपूर्ण विच्छेद के बाद लगातार अपनाई जा रही है। सूरत की घटनाओ की मुझसे अधिक कोई निन्दा नहीं कर सकता। मेर लिए यह साधन का कारण है कि कोई भी व्यक्ति उन घटनाओ की उम व्यक्ति से अधिक निन्दा नहीं कर सकता, जो दश मे इनके लिये सीधा जिम्मेदार समझा गया था। श्री तिलक की मुख्य गलती (जिसके लिये वे निर्वाचन की सजा भुगत रहे हैं) यह थी कि पार्टी का नेतृत्व करने की बजाय उहाने पार्टी के कुछ अनियंत्रित व्यक्तियों का अपना नेतृत्व करने दिया। सूरत मे दो बार मेरे अनुरोध पर वह रासबिहारी घोष के निर्वाचन का विरोध छोड़ देने के लिए तैयार हो गये और उहोन बलकत्ता के चार प्रस्तावा का मामला विषय समिति पर छोड़ देना भी मान लिया था, परन्तु जैसे ही मे उतमे अलग हुआ, उन्होंने चारो ओर के बहुमत के सामने, जिमसे वे घिरे हुए थे अपन आपको असहाय पाया। परन्तु जहा यह सत्य है कि तिलक की पार्टी सूरत की घटनाओ के लिये प्रत्यक्ष तौर पर जिम्मेदार थी, क्या कोई व्यक्ति इस बात से इन्कार कर सकता है कि दूसरे गुट के नेता भी विच्छेद के लिये चिन्तित थे और यदि उनकी मन स्थिति भिन्न होती, तो वह अपनी साधन

सम्पन्न उपयोगिता से इन घटनाओं को टाल सकते थे ? मेरी राय यह है कि यह बात देश के अधिक हित में है कि जिस पार्टी को 'मिताचारी' कहते हैं वह कांग्रेस के प्रबन्ध पर नियंत्रण रखे, परन्तु दूसरा गुट भी कांग्रेस में ही रहे और अपने प्रभाव को उसी ढंग से इस्तेमाल करे, जिस प्रकार सभी शक्तिशाली अल्पसंख्यक गुट करते हैं। इसी राय के प्रभाव के अधीन, सम्मेलन में शामिल होकर मैंने समझौते के लिये काय करने का इरादा बनाया था, परन्तु मुझे यह समझने में अधिक देर न लगी कि इस आशय के लिये मेरे प्रयत्न को गलत समझा जाता था, इसलिए प्रारम्भिक अवस्था में ही यह प्रयत्न छोड़ देना पड़े। उस समय से ही दाना ओर से कई शुभचिन्तक मित्रों द्वारा समझौता कराने के प्रयत्न को घणाभरे ढंग से ठुकरा दिया गया और इस समय इन प्रयत्न के फिर से शुरू किये जाने की कोई संभावना नहीं है। मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को ऐसा दिखाई पड़ता है कि मिताचारी "राष्ट्रवादी" अपनी राजनीति में गलती कर रहे हैं, जिसके कारण विच्छेद एक "दृढ़ तथ्य" बन रहा है।

मेरी जोरदार राय है कि भारतीय राष्ट्रीय पार्टी के अति वामपंथी गुट को खत्म करना स्वयं कांग्रेस के लिए गंभीर खतरा है। मिताचारी नेताओं को शायद इसकी जानकारी तब हो, जब बहुत देरी हो चुकी हो। मेरी सोच का आशय यह है कि इंग्लैंड में सरकार बदल जान के साथ, भारत में उपनिवेशी सरकार के समयका के तौर पर उनकी स्थिति अपुक्तिपुक्त हो जाएगी। हवा का रुख पहले ही उस ओर हो चुका है। "26 फरवरी को हाउस आफ लाडस में इडिगन कौंसिलस बिल के दूसरे वाचन के लिये पेश करत हुए अपने द्वितीय भाषण में लाड मीलें ने इस ओर हलका सा संकेत भी दिया था। वह चाहे कुछ भी हो, एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इस समय दोनों गुटों के एक ही राजनीतिक मंच पर इकट्ठे होना की कोई संभावना नहीं है। दोनों के मन में आपसी अविश्वास प्रबल होने के कारण, अतीत का भुला देना और फिर एक हो जाना बहुत ही कठिन है।"

इलाहाबाद के सम्मेलन में लिये गये निर्णयों के संवैधानिक पहलुओं के बारे में लाजपत राम इस पत्र में लिखते हैं

"मिताचारी गुट द्वारा 'इडिगन नेशनल कांग्रेस' का नाम अपनाकर चलन के अधिकार तथा स्वामित्व के बारे में गंभीर संदेह है। उपर्युक्त

जिस प्रकार यह 1887 से 1907 तक अस्तित्व म थी, अब नहीं रही। सम्मेलन का इस बात का कोई अधिकार नहीं और न ही स्वामित्व है कि वह पुरानी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिये सविधान बनाए वह तो प्रस्ताव की केवल सिफारिश कर सकता था जिसे कांग्रेस द्वारा बहुमत से पारित किये जाने के बाद उसे अपना पुराना जीवन जारी रखने का अधिकार होता। व्यक्तिगत तौर पर म इस राय को गुप्त नहीं रखता कि इलाहाबाद सम्मेलन द्वारा जिन सिद्धान्तों का निणय किया गया केवल उन पर ही कांग्रेस चल सकती है, परन्तु मैं इस ज्यादाती की मिसाल को स्वीकार नहीं कर सकता कि उन लाभा पर सविधान चाप दिया जाये जिनका इस बनाने म कानूनी तौर पर कोई हाथ नहीं और वह भी पुराने सगठन के नाम पर।”

उहोने तो यह सुझाव भी दिया कि कांग्रेस की वार्षिक बैठक कुछ समय के लिए स्थगित कर दी जाये।

“माच 1909 मे इंग्लड से लौटने पर मुझे कांग्रेस के एक महासचिव का निजी पत्र मिला, जिसमे पजाब की स्थिति के बारे में जानकारी दी गई थी। गोपनीय पत्र मे मैंने उन्हें अपने विचारों से अवगत करा दिया और उन्हें अधिकार दिया कि वह सर फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले को इससे अवगत करा दें। यह बात स्मरण रखी जाये कि पजाब का वर्तमान विवाद मेरे लौटने से पूर्व आरंभ हुआ था और मेरा उमम बिन्दुल हाथ नहीं था। मेरी यह पक्की राय है कि पजाब के प्रमुख हिंदू नेताओं द्वारा जोरदार विरोध के बावजूद कांग्रेस का आगामी अधिवेशन लाहौर म करने का निणय बुद्धिमत्ता नहीं और न ही ऐसा करना देश, प्रात तथा कांग्रेस के हित म है।”

इसके बाद उहोने विभिन्न नगरों के विभिन्न नेताओं के विचारों से उद्धरण दिये है तथा उन पर विचार किया है। इन नेताओं के साथ उन्होंने वर्तमान स्थिति के रख के बारे मे सलाह मशविरा किया था। पत्र के अन्त मे लिखा है

“तो क्या फिर कांग्रेस को समाप्त कर दिया जाए? कदापि नहीं। कुछ समय के लिये वार्षिक प्रदर्शन बंद कर दिये जायें और स्थायी भारतीय समिति बनी रहे या प्रदर्शन केवल उन्ही प्रात म किये जाय, जहा एकमत है, विशेषकर

पढ़े लिखे हिंदुओं में। अपने घरवै निकट हम देखते हैं कि इस प्रात के हिंदुओं में अपनी पराजय पर उचित नाराजगी है। उन्हें सोचन और अध्ययन करने का अवसर दिया जाये। यदि वे चाहें तो उन्हें अपनी छोई स्थिति प्राप्त करने के लिये अन्य ढंग अपनाते का अवसर दिया जाना चाहिए। उन्हें विरोध करने के लिये उत्तेजित न करो और विच्छेद न करो, स्थिति को जो पहले ही कटु हो चुकी है और कटु न बनाओ, सार्वजनिक जीवन जिन स्थानों पर कमजोर और नाजुक पौधे के समान है और असाधारण बल का सामना नहीं कर सकता, इसे नरक न बनाया जाये। राष्ट्रीय आपात स्थिति में यही उचित है कि कारणों को भावनाओं से ज्यादा प्राथमिकता दी जाये। राष्ट्रवादी बनाम मिताचारी ही केवल एकमात्र क्वाक्ट नहीं थे। पंजाब में हिंदू मुसलमानों के बीच जा विपमता पैदा हो चुकी थी, उसके कारण साजपत राय के विचार में धार्मिक अधिवेशन के लिये जिस स्थान का चुनाव किया गया था, वह बिल्कुल अनुचित धन गया था।

“पिछले दिसम्बर में जब पंजाब के कुछ प्रतिनिधियों ने अधिवेशन लाहौर में करने का निमन्त्रण दिया था, स्थिति भिन्न थी। उसके बाद इसमें बहुत परिवर्तन हो गया है। स्थिति में परिवर्तन का ध्यान में रखत हुए अधिवेशन के लिये स्थान तयदील करने में कोई अपमान की बात नहीं है। समय सबसे बड़ा रोगहर है। राष्ट्रीय जीवन में यह कोई तिरस्कारणीय बात नहीं है। हमें इसके लाभकारी हस्तक्षेप पर ठंडे दिल में निभर करना चाहिये और इसके साथ ही राष्ट्र के निर्माण के लिये उन क्षेत्रों में जारदार प्रयत्न करने चाहिए, जहां सरकार कम अशुद्ध निष्पक्ष निकाल सके। गलत मिदधान्त निश्चित करने के स्थान पर नरम भावना से काय करना अच्छा है। जब एकता न हो और उही न सक्ती हो तो दोना गुटा में जबरदस्ती एकता करने के प्रयत्न करने जारदार विरोध पैदा करता उचित नहीं। वर्तमान स्थिति में हिंदुओं तथा मुसलमानों के नाम पर संयुक्त रूप से सांचने का हिन्दुओं द्वारा केवल जारदार विरोध ही नहीं किया जाएगा, बल्कि हिंदुओं के बहुमत के नाम पर बात करने का भी जारदार छण्डन किया जाएगा।”

इन विचारों तथा मौलें के सुधारों में साजपत राय तथा कांग्रेस के मिताचारी नेताओं के बीच, जिनमें गोखल भी शामिल थे, अन्तर और व्यापक कर दिया। उन्होंने मिताचारियों की तथानयित रियायतों का, जो मापते न

भी दी लेकिन उन्होंने मुसलमानों को सालाब देने के लिये लागू किये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत जिसे मिटा ने लागू किया था, बिन्कुल अस्वीकार कर दिया। मिताचारिया का गठन—मुसलमानों का गठन। यही मिटा—मौलें स्वीम का सार था।

नि सदेह कांग्रेस के कणधारों ने लाजपत राय की सलाह नहीं मानी। वापिक बैठकें स्पष्ट नहीं की गयीं और प्रतिनिधि दिसंबर के अन्तिम मन्ताह में लाहौर में एकत्र हुए। सारे तमाशा की व्यवस्था हरकिशन लाल के गुट ने की, पर आम समाज के अधिकतर नेता उसमें शामिल न हुए। लाजपत राय और हरकिशन लाल एक दूसरे से और दूर हो गये। अल्फ्रेड नदी के सपादन पाल में 'द ट्रिब्यून' लाजपत राय के ज्यादा से ज्यादा विरुद्ध होता गया, जो कट्टा तथा अश्लील था और इस समाचार-पत्र पर हरकिशन लाल का नियंत्रण मममा जाता था। क्योंकि इसके ट्रिस्टियों में से वही सबसे अधिक प्रभावशाली थे। अधिवेशन से कुछ समय पूर्व अफवाहें फैली थी कि मनोनीत अध्यक्ष सर फिरोजशाह मेहता अध्यक्षता करने से इन्कार कर देंगे। अधिवेशन में छ दिन पहले यह अफवाह सत्य हो गई और उनका स्थान प० मदन मोहन मालवीय ने ग्रहण किया। पंडित मालवीय के प्रति बहुत अधिक व्यक्तिगत आदर रखने के बावजूद लाजपत राय ने कांग्रेस अधिवेशन में भाग न लिया। दरअसल, जिन दिनों कांग्रेस अधिवेशन था, वह लाहौर में ही न थे।

मुसलमानों को एकत्र करने और नये संविधानिक सुधारों के अन्तर्गत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने की मौलें मिण्टो नीति के विरुद्ध जिसे यद्यपि गोखले का आशीर्वाद प्राप्त था, पंजाब के हिन्दुओं ने बहुत नाराजगी व्यक्त की। कुछ बड़े पदों पर नियुक्तियों के मामले को लेकर साम्प्रदायिक विस्म का विवाद समाचार पत्रों में पहले ही आ चुका था। शीघ्र ही बई लोया के मन में एक और विचार आया कि हिन्दुओं का अपना अलग संगठन बनाना चाहिए। डी०ए०वी० ग्रुप के एक प्रमुख नेता, लाला लाल चन्द ने (चाव में चीफ कोर्ट के जज, जो उस समय तक केवल हिन्दू वकील थे, जिनके स्थान पर शाह दीन का जज बनाने में प्राथमिकता दी गई थी) इस प्रस्ताव में बहुत रुचि ली। पंजाब हिंदू महासभा स्थापित हो गई। पहला हिंदू सम्मेलन 21 और 22 अक्टूबर 1909 को लाहौर में हुआ, अर्थात् लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन में कुछ ही समय पूर्व। लाजपत राय ने इस सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया

पढे-लिखे हिंदुओं में। अपने घरके निवट हम देखते हैं कि इस प्रात के हिंदुओं में अपनी पराजय पर उचित नाराजगी है। उन्हें सोचने और अध्ययन करने का अवसर दिया जाये। यदि वे चाहें तो उन्हें अपनी छोई स्थिति प्राप्त करने के लिये अथ ढग अपनाते वा अवसर दिया जाना चाहिए। उन्हें विरोध करने के लिये उत्तेजित न करो और विच्छेद न करो, स्थिति को जो पहले ही कटु हो चुकी है और कटु न बनाओ, सावजनिक जीवन जिन स्थानों पर कमजोर और नाजुब पौधे के समान है और असाधारण बल का सामना नहीं कर सकता, इसे नरब न बनाया जाये। राष्ट्रीय आपात स्थिति में यही उचित है कि नारणों को भावनाओं में उषादा प्राथमिकता दी जाये। राष्ट्रवादी बनाम मिताचारी ही केवल एकमात्र एकावट नहीं थे। पंजाब में हिंदू मुसलमानों के बीच जो विपमता पैदा हो चुकी थी, उसके कारण लाजपत राय के विचार में वार्षिक अधिवेशन के लिये जिस स्थान का चुनाव किया गया था, वह यिल्कुल अनुचित बन गया था।

“पिछले दिसम्बर में जब पंजाब के कुछ प्रतिनिधियों ने अधिवेशन लाहौर में करने का निमन्त्रण दिया था, स्थिति भिन्न थी। उसके बाद इसमें बहुत परिवर्तन हो गया है। स्थिति में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए अधिवेशन के लिये म्यान तवदील करने में कोई अपमान की बात नहीं है। समय सबसे बड़ा रोगहर है। राष्ट्रीय जीवन में यह कोई तिरस्कारणीय बात नहीं है। हमें इसके लाभकारी हस्तक्षेप पर ठडे दिल में निभर करना चाहिये और इसके साथ ही राष्ट्र के निर्माण के लिये उन क्षेत्रों में जोरदार प्रयत्न करने चाहिए, जहां सरकार कम अशुद्ध निष्पक्ष निवाल सके। गलत मिद्धान्त निश्चित करने के स्थान पर नम्र भावना से काय करना अच्छा है। जब एवता न हो और न ही हो सक्ती हो तो दोना गुटों में जबरदस्ती एक्ता करने में प्रयत्न करने जोरदार विरोध पदा करना उचित नहीं। वतमान स्थिति में हिंदुओं तथा मुसलमानों के नाम पर समुक्त रूप से सोचने का हिंदुओं द्वारा केवल जोरदार विरोध ही नहीं किया जाएगा, बल्कि हिंदुओं के बहुमत के ताम पर बात करने का भी जोरदार खण्डन किया जाएगा।”

इन विचारों तथा मोर्चों के मुखारो न लाजपत राय तथा वाम्रेत के मिताचारी नेनाओं के बीच जिनमें गोखने भी शामिल थे, अन्तर और व्यापक कर दिया। उन्होंने मिताचारियों की तथान्वित रियायत का, जो गायत न

भी दी लेकिन उन्होंने मुसलमानों का सामक़ा दान के लिये सामू विये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत जिसे मिंटो ने सामू किया था, बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। मिताचारिया का गठन—मुसलमानों का गठन। यही मिंटो-मोलै स्टीम का सार था।

जि सदह काप्रेस के कणधारा न लाजपत राय की सलाह नहीं मानी। काप्रेस बैठकें स्पष्ट नहीं की गयीं और प्रतिनिधि दिसंबर के अन्तिम महीने में साहौर में एकत्र हुए। मारतमाशा की व्यवस्था हरविशान लाल के गुट न की, पर आप समाज के अधिकतर नेता उसमें शामिल न हुए। लाजपत राय और हरविशान लाल एक दूसरे से और दूर हो गये। अल्फ्रेड नदी के मपादन पाल में 'द ट्रिब्यून' लाजपत राय के ज्यादा से ज्यादा विरुद्ध होता गया, जो बहुत तथा अश्लील था और इस समाचार पत्र पर हरविशान लाल का नियंत्रण मममा जाता था। क्योंकि इसके ट्रिस्टिया में से यही सबसे अधिा प्रभावशाली थे। अधिवेशन से कुछ समय पूर्व अफवाहें फैली थी कि मनोनीत अध्यक्ष सर फिरोजशाह मेहता अध्यक्षता करने से इन्कार कर देंगे। अधिवेशन में छ दिन पहले यह अफवाह सत्य हो गई और उनका स्थान प० मदन मोहन मालवीय ने ग्रहण किया। पंडित मालवीय के प्रति बहुत अधिक व्यक्तिगत आदर रखने के बावजूद लाजपत राय ने काप्रेस अधिवेशन में भाग न लिया। दरअसल, जिन दिनों काप्रेस अधिवेशन था, वह साहौर में ही न थे।

मुसलमानों को एकत्र करने और नये संविधानिक सुधारों के अन्तर्गत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने की मौर्ने विन्टो नीति के विरुद्ध जिसे कदापि गोखले का आशीर्वाद प्राप्त था, पंजाब के हिन्दुओं ने बहुत तारतम्यी व्यक्त की। कुछ बड़े पदा पर नियुक्तिमा के मामले का लेकर साम्प्रदायिक विन्स का विवाद समाचार-पत्रों में पहले ही आ चुका था। श्रीप्र ही बड़े लोग के मन में एक और विचार आया कि हिन्दुओं का अना बराग गणतंत्र बनाना चाहिए। १०००वी० सुप के एक प्रमुख नेता, माना मान बंदी (बाद में बंदी कोट के जज, जो उस समय तक बेचन हिन्दू बर्द-न थे, जिनके स्थान पर रई दीन को जज बनाने में प्राथमिकता दी गई थी) इस प्रस्ताव में बहुत रुचि ली। पंजाब हिन्दू महासभा स्थापित हो गई। पंजाब हिन्दू सम्मेलन 21 अक्टूबर 1909 को साहौर में हुआ, अर्थात् पंजाब के काप्रेस अधिवेशन के ही समय पूर्व। लाजपत राय ने इस सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में भाग

और हिंदू राष्ट्रवाद पर एक भाषण दिया, जो सम्मेलन में गेजिट में पढ़ने प्रस्ताव का अनुमोदन करते समय दिया गया था (यह वाकपट्ट ब्रह्मण दीनदयाल शर्मा ने रखा था)। यह प्रस्ताव इस प्रकार था

“कि यह सम्मेलन हिन्दू समाज के सभी वर्गों तथा जातियों को भाईचारे की आपसी भावनाएँ बढ़ान और समान राष्ट्रीयता की भावना को मजबूत बनाने की अपील करता है, ताकि (क) विश्व के राष्ट्रों में यह उचित स्थान पा सके, (ख) मानवता की सामान्य प्रगति में योगदान दे सके, (ग) अपने साम्प्रदायिक हिता की रक्षा कर सके और (घ) पीढ़ी दर पीढ़ी तथा मानवता के कल्याण के लिये प्राचीन हिन्दू सभ्यता तथा सस्कृति का जो दमालुता या बुद्धिमत्ता पूर्वजा में मिली है, का प्रचार कर सके।”

साजपत राय ने प्राचीन हिन्दुस्तान के बारे में उद्धरणों से भरपूर भाषण दिया। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक दृष्टिकोण तथा नये राजनीतिक संदर्भ ‘साम्प्रदायिक’ दृष्टिकोण से चर्चा की। हिन्दू समाज का उन्होंने जो मलाह दी, वह इन शब्दों में कही जा सकती है

“मेरे मन में अत्यन्त अविश्वस्यता के प्रति कोई बुरी भावना नहीं है। मैं उनकी प्रसन्नता तथा प्रगति की कामना करता हूँ। अपने समुदाय के लोगों की दशा सुधारने और उनके लिये लाभकारी स्थान दिलाने के उनके प्रयत्न पर मुझे कोई आपत्ति नहीं। भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति में अपने समुदाय के हिता की रक्षा करने में वे बिल्कुल उचित हैं, जब तक वे गैर भारतीयों के साथ अपवित्र सहयोग करने हिन्दुआ के हिता को हानि न पहुँचाएँ। भरा हिन्दुआ से गैर हिन्दुआ के विरुद्ध तथा भारतीयों से गैर भारतीयों के विरुद्ध अनुरोध युधिष्ठिर द्वारा उस समय कहे गये शब्दों में कहा जा सकता है— दुर्योधन के शत्रुओं ने पांडवों से अनुरोध किया था कि वे दुर्योधन के विरुद्ध सपथ करने में उनका साथ देना तैयार हैं। तब पांडवों ने कहा

“हम पांच हैं और वे सौ हैं। परन्तु जब हम दूसरा से युद्ध करते हैं, तो हम एक ही पांच हैं।”

शायद पंजाब हिन्दू सभा के सभी समय एक सौ पाच की इस भावना से प्रेरित नहीं हुए—यदि पलमर के लिये आप भूल जाये कि हिन्दू पाच नहीं परन्तु सौ है और हिन्दू तथा हिन्दुस्तान का नारा असल में 'ब कुछ है और आप कई हो' हो सक्ता है। दो साल बाद शादी लाल (बाद में पंजाब उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा तत्कालीन प्रिवी कौंसलर) ने हिन्दू सभा की एक बैठक में भाषण किया और अपने भाषण का समापन महा-भारत की बात से किया—उन्होंने केवल हिन्दुआ के गैर-हिन्दुआ के विरुद्ध एकीकरण पर बल दिया और भारत के अन्य समुदायों का दुर्योधन जैसा सम्बन्ध का स्थान भी न दिया।

यद्यपि लाजपत राय ने पंजाब हिन्दू सभा के मामला में कुछ रुचि ली और हिन्दू राष्ट्रवाद के बारे में जोश भी दिखाया, परन्तु वह नये प्रस्ताव के साथ पूरी तरह सहमत दिखाई नहीं देते जो समय बीतने के साथ केवल छोटी छोटी बातों के लिये सपप बनकर रह गया—पदा की लालसा सीमित, जब कि उनकी रुचि बड़े मामला में थी।

यह बड़ी विचित्र बात है कि पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना के थोड़ी देर बाद, हरकिशन लाल जिनके बारे में विचार था कि वह कांग्रेस का प्रतिनिधि होने चाहिए और जिनके विरोध के तौर पर पंजाब हिन्दू सभा बनाई गई थी—उनकी काय समिति में शामिल थे, जब कि लाजपत राय अलग थे। राजनीति में विरोधाभास ही स्थायी प्रवृत्ति रही है। कुछ बातों में लाजपत राय मैत्रीपूर्ण समयन देते रहे, तो दूसरे मामला में एक असहमत मित्र के समान चेतावनी भी। परन्तु कई मामला में वह सभा को सहयोग ही देते रहे। चौथे वार्षिक सम्मेलन में, जो अक्टूबर 1912 में दिल्ली में हुआ, उन्होंने हिन्दुआ की शिक्षा सम्स्याओं के लिए सहायता की अपील की और मुनाब दिया कि एक हिन्दू शिक्षा बोर्ड स्थापित किया जाए। इस अपील के कारण दिल्ली के हिन्दू कॉलेज के लिए 5,500 रुपये प्राप्त हुए। परन्तु उन्होंने देख लिया था कि निर्वासन के बाद उप-राज्यपाल से जो प्रतिनिधि मंडल मिले थे, उन्होंने कितना नैतिक पतन ला दिया था। वह इस पहलू की उपेक्षा कदापि नहीं कर सकते थे।

36. देश में प्रतिक्रिया : विदेश में प्रचार

उन पाच छ वर्षों में से, जिनकी ऊपर चर्चा की गई है, कम से कम एक—1910—की विशेष चर्चा की आवश्यकता है। 1909 के अन्त के करीब पुलिस ने भाई परमानन्द के घर पर छापा मारा और उनके विरुद्ध अदालत में मुकदमा शुरू किया गया, जिसके परिणामस्वरूप नेक चलन के लिये उन्हें बाध्य कर दिया गया। तलाशी में पुलिस कई दस्तावेज ले गई और इनमें साजपत राय के दो पत्र भी थे। बाद में ये पत्र अदालत में पेश किये गये और पत्र लिखने वाले से इन पत्रों के बारे में पूछताछ की गई। राजद्रोह तथा आतिकारी पद्यत्र (1917-18) के बारे में रीलेट समिति ने इन "विशेष" पत्रों का प्रमुख तौर पर उल्लेख किया है। समिति की रिपोर्ट में लिखा है

"उसी वर्ष (1910) से भाई परमानन्द नामक एक व्यक्ति के विरुद्ध, जो बाद में लाहौर के पद्यत्रकारियों में से एक थे और जिन्हें आजीवन कारावास की सजा हुई, जायदा फौजदारी के अधीन मुकदमा चलाया गया और उन्हें नेक चलनी के लिये बाध्य किया गया। उनके कब्जे से अलीपुर के पद्यत्रकारियों द्वारा इस्तेमाल की गई बम नियम-मुस्तक की प्रति तथा कुछ अन्य दस्तावेज पकड़े गये। इनमें साजपत राय के दो विशेष पत्र भी थे। ये पत्र 1907 की गडबडी के दौरान परमानन्द को लिखे गए थे, जो उन दिनों इंग्लैंड में थे। पहले पत्र की तिथि 28 फरवरी 1907 और दूसरे की उस वर्ष की 11 अप्रैल थी। ये दोनों पत्र लाहौर से भेजे गये थे। पहले पत्र में साजपत राय ने प्राप्तकर्ता को लिखा था कि वह कुख्यात कृष्ण वर्मा से कहें कि वह अपना कुछ धन और कुछ पुस्तकें यहां छात्र वर्ग को भेजने पर राज करें, जिनमें राजनीति पर सही विचार दिये गये हों। उन्होंने परमानन्द से यह पता लगाने के लिए भी कहा था कि कृष्ण वर्मा अपने दस हजार रुपये के उपहार में स कुछ राशि राजनीति प्रचारका के लिये भी दे।"

दूसरे पत्र में लाजपत राय ने लिखा था "लोग नाराज हैं। कृष्ण वर्ग भी आंदोलन के रास्ते पर चल पड़ा है। मुझे केवल यह आशंका है कि यह घमाका कहीं समय से पूर्व ही न हो जाये। जब अदालत में परमानन्द के विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई आरम्भ हुई, लाजपत राय ने बताया कि उपर्युक्त कथन से उनका अर्थ और कुछ नहीं था, बस केवल इतना था कि कृष्ण वर्ग राजनीतिक आंदोलन से अपरिचित है और शायद यह संभव न हो कि शांत ढंग से अपना आंदोलन चला सके।" वह उस स्थिति में कृष्ण वर्ग के बीच राजनीतिक आंदोलन चलाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने यह भी कहा कि "जिन पुस्तकों के बारे में उस पत्र में भाग था, उनका ब्यौरा एक अर्थ पत्र में दिया गया था, जो उस दिन पेश किया गया, जिनमें प्रमाणित पुस्तक की सूची थी। उनमें क्रांतिकारी, राजनीतिक और ऐतिहासिक उपन्यास थे।" उन्होंने ये शब्द भी कहे, "निर्वाचन से लौटने के बाद तक मुझे यह जानकारी नहीं थी कि श्यामजी कृष्ण वर्मा के राजनीतिक हिंसा तथा अपराध के बारे में ऐसे विचार थे, जिस प्रकार के विचार उठाने अथवा व्यक्त किये हैं। उसके पश्चात् उनके साथ मेरा कोई वास्ता नहीं रहा।"

ये "विशेष पत्र" कोई विशेष महत्व के नहीं थे, जब तक आप उनमें से असाधारण अर्थ न निकालें। परन्तु लाजपत राय के लिए इस घटना के कई महत्वपूर्ण परिणाम रहे। भाई परमानन्द के घर पर पुलिस के छापे और तलाशी में "मिले" दस्तावेजों में उन पत्रों के शामिल किये जाने पर लाजपत राय के कुछ मित्रों ने उनसे कहा कि वह अपने घर पर भी उसी प्रकार के छापे के लिए तैयार रहें। दरअसल, उन्होंने इस घात के लिये जोर दिया कि उन्हें खुली छूट दी जाये। और उन्होंने जो पत्र अथवा पुस्तकें असुरक्षित समझी, उन्हें वहाँ से हटा दिया और उनसे पूछे या बताये बिना उन्हें नष्ट भी कर दिया। उन पत्रों, पत्रिकाओं, कागजों तथा पाण्डुलिपियों के ढेर में, जो अग्नि की भेंट हुए, वह आत्मकथा शैली का उर्दू उपन्यास भी था, जिसे लाजपत राय ने माण्डले में लिखना आरम्भ किया था। उस समय उन्होंने विश्वास किया कि उसे केवल सुरक्षित रखने के लिए हटाया गया है, परन्तु

वाद में उठे दुख तथा आश्चर्य हुआ, जब यह बताया गया कि अन्य कागजा के साथ वह पाण्डलिपि भी आम की भेंट हो गई है। वह दात्रारा अपनी जीवन कथा उपयाम के रूप में लिखने के लिये अपना मन फिर न बना सके। उनके सग्रह से कुछ पुस्तकें भी गायब थीं। कई वर्ष बाद तक वह प्रितुवर की पुस्तक 'रशियन हीरोज एण्ड हीरोइन्स' की कभी कभार घर्चा किया करते थे और बहा करते थे

“आप जानते हैं कि उन दिना यह मेरी बहुत मनपसंद पुस्तक हुआ करती थी और मैं युवका से इसे पढ़ने की सिफारिश किया करता था। परन्तु जब मेरे मित्र मेरी सुरक्षा के लिये घबरा गये, उन्होंने कई चीजें नष्ट कर दी थी, वे मेरी पुस्तक 'हीरोज एण्ड हीरोइस' भी ले गए।”

भाई परमानन्द के विरुद्ध मुकदमे का एक और महत्वपूर्ण परिणाम (तथा ऐसी ही अन्य घटनाओं का) यह निकला कि पजाव के नेताओं पर उत्साह भग करने वाला प्रभाव पडा। “जो हमारे साथ नहीं, वे हमारे विरुद्ध हैं”, यह अजीब सिद्धांत अपनाया गया और डी० ए० वी० कालिज के अधिकारियों ने, जो इसके हानिकर परिणामों के आगे झुक गये, भाई परमानन्द को नौकरी से निकाल दिया, जिन्होंने अपना जीवन कालिज को अर्पण कर दिया था और समाज की बहुत ही योग्यता से सेवा की थी। उन्होंने इस सम्बन्ध में मुकदमे के निणय की भी प्रतीक्षा न की। इससे पूर्व 1907 में कई लोगों ने नेताओं का लेखा जोखा लिया और उनमें बहुत सी त्रुटियाँ पाई थीं। साजपत राय ने उदारता से उनका जायजा लेने का फैसला किया, ताकि कहीं ऐसा न हो कि कडाई के साथ लेखा जोखा करने में वह स्वयं भी दोषी हो, जहाँ तक उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध था। जब वह लौटे, तो उन्होंने आलोचकों के विरुद्ध उनका पक्ष लिया और उन्हें सम्भावित कठिन परिस्थितियों से बचाने के लिए उस समय, कुछ नेताओं के खीझने के बावजूद, वह आगामी चुनाव में आय समाज के अध्यक्ष चुने गए, परन्तु उन्होंने यह सम्मान स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

अब वह हालात का सामना करने के लिये विवश थे और बचाव का रास्ता ढूँढने के लिये वह एक बार फिर इंग्लैंड जाने के लिए जहाज पर सवार हो गये, उनका मन निराशा के बोझ से बहुत दबा था।

इंग्लैंड में ठहरने के दौरान लालाजी ने 1910 में पराधीन राष्ट्रों तथा जातियों के सम्मेलन में, जो जून के अन्त में वैंसटन हाल में हुआ, भारत का प्रतिनिधित्व किया। प्रोफेसर गिल्बर्ट मुर ने अपने आरम्भिक भाषण में साजपत राय की चर्चा की

“मुझे विश्वास है कि भारत में उन आन्दोलनों में अपना सबसे अच्छा योगदान दिया है, जिनमें साजपत राय एक नेता है। मैं यह जिक्र करना चाहूंगा कि एक उच्च अधिकारी न, जिसने साजपत राय के निर्वासन की स्वीकृति दी थी, मुझे बताया है कि भारत में बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनका मैं इतना अधिक सम्मान करता हूँ।”

इस सम्मेलन में (साजपत राय के अतिरिक्त) भारत के प्रतिनिधियों में विपिन चन्द्र पाल, दुर्गे तथा सर हनरी वाटन थे। भारत मिला मारका बँटव की अध्यक्षता फ्रैंड्रिक मैकनॉस ने की और भारत की ओर से प्रमुख योगदान साजपत राय का भाषण था, जिसका विषय था “भारत में वर्तमान स्थिति”। बकना न मालों के नये सुधारों पर आधारित भारत के नये संविधान की आलोचना की थी परन्तु उनके भाषण का मुख्य भाग इन सुधारों के साथ जो “उदार” शासन ने लागू किये थे, पैदा हुई अपमान-नाक नागरिक स्वतन्त्रताओं का उल्लेख करने में लगा। “स्पष्ट भारतीयों को नाम मात्र का भी मुकदमा घसाये बिना भारत में निवासित करना, विचार व्यक्त करने की आजादी छीनना और यावज्जीव सश्राप करने के अधिकार की मनाही, राजनीतिक कैदियाँ व गाय पागबिष व्यवहार तथा जामूसी के लिये सावजनिक तथा गुप्त नये ढंग।” नागरिक आजादियाँ स वंचित करने के लिये ब्रिटिश सरकार की आग्रहना करने के अलावा, उन्होंने विदेशी अपमरणाही और मूमि पनि श्रवादा शाही में अपवित्र गठबधन का भी उल्लेख किया, जिनके साथ पूनीपति भी शामिल थे, जो पड़े लिखे वग के विरुद्ध थे। नये सुधारों की याचना तथा नये प्रेस एक्ट की ये विशेषताएँ थीं, और उन्होंने “शून्य तौर पर तथा सुनियोजित ढंग से देश के प्रशासन में ज़रूरी तथा माध्यमदायिक भेदभाव को प्रोत्साहन देने की भी आग्रहना की, जो प्रशासन की ओर से माध्यमदायिक पदोन्नति द्वारा दिया जा रहा था।”

इस व्यवस्था का माराग देते हुए उन्होंने कहा

‘दरअसल, हर प्रकार की मावजनिक गतिविधि का, राजनीतिक, शक्ति, धार्मिक, सामाजिक अथवा लोकोपकारक चतरे का कारण बना दिया गया है और इस प्रकार देशभक्ति का ही एक अपराध बना दिया गया है।’

उन्होंने मीलों के सुधार का खोखलापन उजागर कर दिया, जिनमें बंगाल, बम्बई तथा मद्रास की कायकारी परिपदा में एक एक भारतीय को मनानीत करने तथा वाइसराय की परिपद में एक भारतीय के शामिल करने की व्यवस्था थी। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में मिण्टो के योगदान के संबंध में उन्होंने कहा “देश का दो गुटा—हिंदू और गैर हिंदू में, उच्चतर स्वीकृति से विभाजन करने की योजना ने इन सुधार का सारा गौरव ही समाप्त नहीं कर दिया है, बल्कि इसे आज तक की सबसे अधिक शरारती योजना बना दिया है, जिसका उद्देश्य उस देश में, जो एक होना चाहता है, स्थायी तौर पर धार्मिक विरोध पैदा करना है, ताकि राजनीतिक उद्देश्य पूरा हो सके।”

उन्होंने मीलों कानून के झूठे “प्रजातंत्र” का श्राताआ के समझ नगा कर दिया, जब उन्होंने बताया कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसा व्यक्ति अपन प्रात की स्थानीय परिपद के सदस्य बनने के अयोग्य हैं। “बहुत ही हल्सा किये जाने पर उनके मामले में छूट दे दी गई, जिससे उन्होंने लाभ न उठाने का उचित निणय लिया।” लाजपत राय ने आगे कहा कि “जायदाद की शत श्री गाखले और श्री दादाभाई नौरोजी जैसे व्यक्तियों को प्रातीय परिपदों के चुनाव के लिए अयोग्य ठहराती है।” अपने प्रात पजाब के बारे में उन्होंने कहा

“परिपद में 14 गैर सरकारी तथा 11 सरकारी सदस्य हैं इन 14 में से केवल पाच निर्वाचित हैं, फिर मजे की बात यह है कि परिपद की सारी कार्रवाई अंग्रेजी में की जाती है जब कि कई मनोनीत सदस्य इस भाषा के ज्ञान से त्रिकुल कोरे हैं।”

उनके भाषण का सबसे उग्र भाग वह था, जिसमें तथाकथित उदार शासन के अधीन व्यापक जासूसी का आतक फैला हुआ था, “जो कम

वेतन, कम शिक्षा और निश्चय ही छ्रष्ट पुस्तक कमचारियों द्वारा स्कूला तथा कालिजा तक फैला हुआ है।”

उहान वहा कि “मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर एक पूरी पुस्तक लिख सकता हूँ। इस नीति का कोई औचित्य नहीं हो सकता जिससे अधीन व्यक्ति की घटिया प्रवृत्ति को उभारकर पिता को पुत्र के विरुद्ध, भाई को भाई के, पत्नी को पति के और मित्र को मित्र के विरुद्ध पडा कर दिया जाये, यही वस नहीं, अध्यापक को शिष्य के तथा शिष्य को अध्यापक के विरुद्ध लडाया जाये। यह तो मानवता के स्रोत का ही गढा करना है।”

श्रीमती एन० एफ० ड्राईहस्ट, जो आयरिश थी, न क्रोपीटकिन की कुछ रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया था और जो सम्मेलन का आयोजन करने वाली समिति की उत्साही महासचिव थी, गिलबट मुरे, फ्रैंड्रिक मेकानैस द्वारा लाजपत राय और मिश्र के फरीद बेग की प्रशंसा में बही गई बातों से उनमें बहुत उत्सुकता पैदा हुई। श्रीमती ड्राईहस्ट ने कहा, “स्वभाविक ही मुझे मिली तथा हिन्दू नेताओं को देख तथा सुनकर बहुत उत्सुकता हुई और ये दोनों मेरे व्यक्तिगत मित्र बन गये हैं।” फरीद बेग ने फ्रांसीसी में भाषण किया, वह पश्चिमी यूरोपियन निवासी दिखाई पड़ते थे, परन्तु लाला लाजपत राय ने सुदूर पूर्व को हमारे सामने साक्षात्कार कर दिया। छोटे बदन के बहुत ही गौरवपूर्ण तेज नाक-नक्श थे, जिससे मलिन न हो सकने वाला गौरव झलकता था, जो सामान्य तौर पर दयालु तथा निष्कपट स्वभाव से ही आता है, सिर पर अपना मूल राज्य शिरोवस्त्र पहने, उहोंने विशाल धाता-भमूह को अपनी स्पष्ट और सुदूर अंग्रेजी से लगभग एक घंटे के लिए मंत्र मुग्ध किए रखा।

श्रीमती ड्राईहस्ट लाजपत राय की बहुत अच्छी मित्र बन गईं और कुछ वष बाद जब वह अमरीका गईं, तो उहान शिकागो में अपनी सहेलिया का लाजपत राय के बारे में लिखा, “जहाँ उन्होंने उहें बहुत महत्व दिया और बाद में उनके बारे में उड़ी प्रशंसा लिखी।” इस प्रकार वह महिला उनके लिए आगे सम्भव तथा मंत्री का साधन बनीं। लाजपत राय

ने अन्तिम बार उ हे कोई पद्वह वष वाद देखा, जब उनके आग्रह पर उ होने उनक साप्ताहिक पत्र 'द पीपुल' के लिये एक लेख लिखा, जिसमे जाजिया के प्रति सावियत नीति की आलोचना की गई थी। 1910 मे वह कई बार उनके घर गये और डाईहस्ट अनेक बार उनके 'आनन्दमय भारतीय भोजों' मे सम्मिलित हुइ, जहा उ होने लदन की अपनी सहेलिया को पूव की रसोई-बिद्या के बारे मे आनन्दित किया। एक दिन दोपहर बाद वह श्रीमती डाईहस्ट के घर पर अतिथि थे। तब एक भारतीय सैनिक अधिकारी की पत्नी उनसे मिलने आई। लाजपत राय का नाम सुनते ही आगन्तुक महिला ने मेजबान महिला को अलग ले जाकर 'अपने चेहरे पर भय साते हुए' कहा "क्या तुम्हें पता है कि तुम सारे भारत मे सबसे खतरनाक ब्यक्ति का अतिथि सत्कार कर रही हो?"

इत अवधि मे लाजपत राय के साथ एक दुखद घरेलू घटना हुई। उनका दूसरा पुत्र, प्यारे कृष्ण, जिनके बारे मे उन्होने बहुत आशाएं बाध रखी थी, इग्लंड भेज दिये गये और उ होने औपधि रसायन विज्ञान का अध्ययन आरम्भ कर दिया, ताकि वह भारतीय जडी-बूटियो तथा दवाइया के सम्बन्ध मे मौलिक काम कर सकें, जिसकी उस समय बहुत आवश्यकता थी। अभी उन्हें छात्र बने अधिक समय नही हुआ कि वह बीमार पड गये और उ हें डेविनशायर के एक सेनिटोरियम मे भर्ती करवा दिया गया। 1908 की इग्लैंड यात्रा के दौरान पिता शैफोर्ड मे बीमार पुत्र को देखने गये। उन्हें बेटे के स्वस्थ होने की बहुत आशा मिळ हुआ। पिता का एक प्यारा पुत्र भरपूर जवानी मे उनसे छिन गया, जिसे वह बहुत प्रेम करत थे और अपने सब बच्चा मे सबसे अधिक होनहार समझे थे। एक देशभक्त की वे आशाएं टूट गई कि एक दिन वह अपनी मृत्यु शय्या पर जेठे ही परिवार के होनहार बच्चे को उनकी ओर मे शुरू किये गये नाय जारी रखने और सागो के लिए महान युद्ध करने की वसीयत करेगा।

निराशाजनक राजनीतिक प्रतिक्रिया की उम अवधि के कुछ समय बाद भी न उनका एक बहुत प्यारा मित्र तथा सहयोगी उनसे छिन लिया,

जिस मित्र की स्मृति का उन्होंने अपनी पहली महत्वपूर्ण पुस्तक 'यंग इंडिया', जो भारतीय राजनीतिक आन्दोलनों के बारे में थी, समर्पित की थी, गहरी भावनाओं के साथ द्वारा दास की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा, "मेरा बहुत प्रिय मित्र जो अक्टूबर 1912 में पंजाब में सावजनिक जीवन विफल हो जाने के कारण दिल टूट जान से मर गया।" उसकी स्मृति में यह पुस्तक "विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित की गई, जिसमें सावजनिक जीवन के महान सिद्धांतों और महानता की कीमत पर किसी बात से समझौता नहीं किया।"

विभाजित कांग्रेस तिलक के माण्डने स लौटने के काफी समय बाद तक पूर्ण न बन सकी। तब तक यह अधिकतर मिताचारिया का सगठन रही और लाजपत राय उसमें लगभग अलग ही रहे। 1909 में यूरोप से लौटने पर उन्होंने अपना व्यवसाय फिर से शुरू कर लिया और सावजनिक जीवन में प्रत्यक्ष तौर पर राजनीतिक कार्य करने की बजाय अपने लिये और रास्ते ढूँढ लिये। जैसा कि हमने देखा है, पंजाब हिंदू सभा की स्थापना में उनका हाथ था। एक बार लाहौर (अनारकली) आय समाज की वार्षिक बैठक पर, उन्होंने डी० ए० बी० कालिज में आयुर्वेदिक तथा तकनीकी विभाग स्थापित करने के लिये धन एकत्र किया। राष्ट्रीय शिक्षा के लिये अपने ही ढंग से काम करने का यह भी एक रास्ता था। उन्होंने डी० ए० बी० हाई स्कूल में अपने मित्र प्रिंसिपल (महात्मा) हसराम के नाम पर लैक्चर हॉल बनाने के लिये धन एकत्र करने के लिये भी सहायता की। 1909 में उन्होंने "दलित" जातियाँ—अछूता—के बारे में एक भाषण माला दी। दरअसल, अब वह "दलित" वर्गों में कार्य करने की ओर अधिक ध्यान देते थे। इसने परिणाम स्वरूप नवंबर 1913 में आय समाज की शताब्दी के अवसर पर यह घोषणा की गई कि लाजपत राय राजगुमारा के तुल्य राशि—कम से कम उन दिनों के स्तर के अनुसार वह इस प्रकार की ही थी—50 हजार रुपये दलित वर्गों में कार्य के लिये दे रहे हैं। इस में से आधी राशि रावी के पार भूमि का एक टुकड़ा खरीदने के लिये खर्च की जा रही थी, जहाँ दलित वर्गों के परिवारों के लिये आदश बस्ती बनाने की योजना थी। इसका उद्देश्य था कि इन वर्गों के शैक्षिक तथा आर्थिक उत्थान

के लिये काय किया जाये। जालंधर जिले में "दलित" वर्गों के लिये कई स्कूल तथा केंद्र खोले गये। शहीद भाई बाल मुनुद, जमा हमने देखा है, लाजपत राय की देखरेख में इन केंद्रों का चलाते थे।

उसी वर्ष 1913 में उन्होंने अपने पैतृक गांव जगराव में एक हाई स्कूल स्थापित किया, जिसका नाम उनके पिता के नाम पर राधाकिशन हाई स्कूल रखा गया।

इस बीच उन्हें नगरपालिका की संवस्यता पेश की गई। लाजपत राय को उम्मीदवार बनाना अपने आप में एक घटना थी। मतदान के समय इससे पूर्व वभी भी इतना नैसर्गिक उत्साह देखने में नहीं आया था और उन्हें इतने मत प्राप्त हुए, जो एक रिकार्ड था। वह मनोरंजन के तौर पर याद किया करते थे कि एक दिन जब अपने चुनाव अभियान के सिलसिले में उन्होंने एक सभा में भाषण समाप्त किया, तो नगरपालिका का सदस्य बनने के इच्छुक एक अन्य व्यक्ति—जो विन्कुल ही अलग किस्म की राजनीति वाले थे—दोनों हाथ जोड़ उनसे कहने लगे कि वह उनकी ओर से भी कुछ शब्द कह दें, क्योंकि "वाहे गुरु ने उन्हें यही बल दिया है"—बल, लोगों को मुग्ध करने का, वह भद्र पुरुष स्वयं अवैतनिक मजिस्ट्रेट थे और इसलिए उन्हें "ठोस" बल प्राप्त था। "एक घटना जो कई दशक बाद तक याद रही एक अनपराध मतदाता के एक मतदान केन्द्र पर आने की थी, जिसने अपने उम्मीदवार का चयन दिखाने के लिए अपने हाथ में लाजपत राय का एक चित्र लिया हुआ था।"

इस समय तक उन्होंने एक प्रारंभिक शिक्षा संघ स्थापित कर दिया था, जिसका उद्देश्य देवनागरी के माध्यम से अशकालिक अध्यापक नियुक्त करने, कम खर्च पर साक्षरता का प्रचार करना था। ये अध्यापक मोहल्ला में जाकर पढ़ाते थे। वह स्वयं भी गलियों में मोहल्लों में जाते थे, ताकि साक्षरता का अभियान चला सकें तथा उसकी प्रगति की निगरानी कर सकें।

नगरपालिका में लाजपत राय के कार्यों ने सरकारी तथा एम्ला इंडियन क्षेत्र में उनके शत्रुआ से भी प्रशंसा करवाई । आखिरकार उन्होंने उनके नात्पनिक चित्र में, जो उन्होंने अपने मन में बनाया था, मशाघन शुरू कर दिया जिसे तहत उन्हें ऐसा "उत्साही" समझ लिया गया था जो राजनीतिक अपराधा में मभी बुरे मनों का प्रेरणा देता है । लाजपत राय के नगरपालिका की मदस्यता के कायकाल में 'नाहीर की गलियों में पहली बार बिजली की रोगनी की व्यवस्था हुई । परन्तु उनके सहयोग से नगरपालिका क्षेत्र में जो प्रमुख सुधार हुआ, वह हीरामण्डी की वंश्याभा के क्षेत्र को अलग करने का था । अलग किये जाने से पूर्व उनमें से कई अतारकली क्षेत्र में होती थी ।

ध्यापारिक तथा औद्योगिक प्रगति में उनकी हृषि बढ़ रही थी । पजाब नेशनल बैंक के निदेशक के तौर पर उनके काय से उस सस्था को बहुत सहायता मिली । उन्होंने लघु उद्योग शुरू करने के लिए भी प्रयत्न किये । शायद इन प्रयत्ना के फनस्वरूप पजाब में होजरी उद्योग प्रचलित हुआ । सहकारी जीवन बीमा कम्पनी (काआप्रेटिव लाइफ इगोरेंस कम्पनी) शुरू करने में भी उनका हाथ था ।

'द पजाबी' तथा प्रेस लाभ लेकर बेच दिय गये और उनकी योजना अब इस धन से राजनीतिक कामकर्ताओं को प्रशिक्षण देने की थी ।

परन्तु उनके यूरोप चले जाने के कारण ये सभी योजनाए स्थगित हो गई । इसके परिणामस्वरूप वकील के तौर पर उनका काम भी ठप्प हो गया । 1909 में 'इंग्लिशमें' के मुकदमे में गवाही देते हुए उन्होंने बड़े सकोच से कहा था कि उनका दर्जा पजाब चीफ कोर्ट के चौटी के छ-सात वकीला में है । और अब यदि वह वकालत करना चाहें तो वह पहले नबर पर बड़ी आसानी में आ सकते हैं । जैसा वह स्वयं कहत है

"वकालत के व्यवसाय में मैं काफी अच्छा धन कमा रहा था और इस व्यवसाय में चौटी पर आने की समावनाए बहुत उज्ज्वल थी । चीफ कोर्ट के जजा ने भी (पजाब की उच्चतम अदालत का अभी उच्च

न्यायालय का दर्जा नहीं दिया गया था), जा किसी समय मुझे अच्छा नहीं समझते थे, क्योंकि मेरे राजनीतिक विचार अतिवादी थे और इसी कारण कभी-कभार मेरे साथ पम्पात करत लेते थे, उन्होंने भी अपना व्यवहार बदल लिया है और अब मेरे साथ नरमी से बात करत हैं। मेरे मुवक्किन भुञ्ज पर गहरा विश्वास रखते हैं और मुझे अच्छी फीम देत हैं। नगरपालिका मे मेरे काम न अधिकारियों के व्यवहार म एक विशेष परिवर्तन ला दिया है और अब के इस विचार मे महमन हो रह हैं कि आखिरकार म भी उचित व्यक्ति हूँ और बसना ठोस जातिवारी नहीं, जसा वह सोचते थे।”

निर्वासित दूत

37. नीरस लक्ष्य को लाभप्रद बनाया

चौथी बार इंग्लैंड की यात्रा—और वह भी पहली यात्रा के समान कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में ।

इंडियन नेशनल कांग्रेस ने दिसम्बर 1913 में कराची में अपने वार्षिक अधिवेशन में निम्नलिखित कृपा की कि एक शिष्ट मण्डल इंग्लैंड भेजा जाये, क्योंकि सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया लाड थ्यू 1914 की बसत श्रद्धु के आरम्भ में ससद में एक बिल पेश करना चाहते थे, जिसका उद्देश्य 'इंडिया आफिस' में सुधार करना था । कराची-अधिवेशन ने शिष्ट मण्डल की स्वीकृति ता दे दी, परन्तु उसके खर्च के लिए धन की स्वीकृति न दी और यह कठिन काय प्रातीय सगठनों पर छोड़ दिया । यह खर्च इन सस्थाओं या स्वयं सदस्यों का उठाना था । इस व्यवस्था के साथ यह अधिकार भी प्रातीय सगठना को दे दिया गया कि शिष्ट मण्डल के सदस्यों के नामों का प्रस्ताव भी वही करें । पंजाब में इस काय के लिये लाजपत राय को चुना, अथ प्रांतों से जो लोग चुने गये, उनमें भूपेंद्र नाथ बसु (बंगाल), एम० ए० जिप्सा तथा समथ (बम्बई) और कृष्ण महाय (बिहार) थे । लाजपत राय ने यह मनोमन्यन तुरत स्वीकार कर लिया, क्योंकि उनका अनुभव था कि कभी-कभी यूरोप की यात्रा "बहुत शिम्नाप्रद तथा प्रेरक थी । इसने अतिरिक्त यह राजनीतिक तौर में भी लाभकारी थी ।"

कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिये जो सद्राम में करन का प्रस्ताव था, उनका नाम कांग्रेस अध्यक्ष के तौर पर भी लिया जा रहा था । परन्तु यह अति-वाय था कि वह इंग्लैंड में भारत का प्रतिनिधित्व करें, जिस समय भारत के संवध में वानून ब्रिटिश ससद में विचाराधीन हो । ये कुछ असम्बद्ध बातें थी, जिनका उन्होंने लाड थ्यू के बिल, उसकी व्यवस्था तथा उसके शब्दों और वाक्या से अधिक महत्व दिया । बिल तथा उसके मसौदे का मामला भूपेंद्र नाथ बसु पर छोड़ा जा सकता था, जो कलकत्ता के वरुण साच विचार करन वाले मिताचारी थे, जो अपने घर में बहुत गभीर थे

और वैधानिक "इसके आगे" आर "बिस कारण" जैसे शब्दों का और भी अधिक गम्भीरता से नेते थे ।

साजपत राय अपन साथी प्रतिनिधियों के साथ न जा सके, क्योंकि उस समय बम पड़्यत्र के एक मुकदमे की अभी सुनवाई हो रही थी । कई बार तो ऐसी बुरी अफवाहें भी सुनाई पड़ती थीं कि सम्भवत किसी प्रकार साजपत राय को भी इस मामले से जोड़ दिया जाये, शायद उनके घर की तलाशी ली जाये और उन्हें एक पड़्यत्रकारी के तौर पर या आतंकवादी कारवाहियों को प्रोत्साहन देने के लिये गिरफ्तार कर लिया जाये । साजपत राय को इस बात की पूरी जानकारी थी कि इस प्रकार के मामले से सबूत कोई मामूली-सा प्रमाण भी उनके बिना नहीं मिलेगा, परन्तु वह जानते थे कि पुलिस उनकी मित नहीं है और उन्हें यह भी मालूम था कि कई बार पुलिस वालों में ईमानदारी तो बिल्कुल होती ही नहीं । 1914 के उन दिनों की चर्चा करते हुए साजपत राय ने लिखा है, "उस समय के पूरी तरह उज्जवल दिनों में केवल एकमात्र काली छाया यह आशंका थी कि कहीं पुलिस मुझे साहीर बम कैसे मे किसी न-किसी तरह उलझा न दे, जो उन दिनों दिल्ली में विधायकीन था ।" खैर, उन्हें दो अभियुक्तों में बहुत गहरी दिल चस्पी थी और जो सहायता उनसे सम्भव हो सकती थी, उन्होंने की । उनके लिए वह रुके हुए थे । उनसे एक प्रसिप्त हसरत के पुत्र बलराज के जो उनके प्रिय पुत्र प्यारे बृष्ण के, जो बहुत ही पुवावस्था में मर गये थे, बहुत प्रिय मित्र थे । बलराज की साजपत राय के घर, उनकी पुस्तकों तथा कागजात तक पूरी पहुच थी । दूसरे व्यक्ति बत्याण की योजना तैयार करने के लिये साजपत राय ने साथ काय कर रहे थे । भाई बाल मुकदमे, जो अछूता के अश में साजपत राय ने भाई बाल मुकदमे की स्मृति को भरपूर श्रद्धाजलि अर्पित की है, "अपने जीवन में मुझे बहुत से पत्र लिखे और बहुत से अद्द पत्र लिखे भारतीय युवक मिले हैं, जिन्होंने मातृभूमि के लिये आत्म बलिदान तथा सेवा के लिये लगन की उच्च शक्ति की भावना दिखाई

है । बाल मुकद, जो उम समय केवल 20 वर्ष की उम्र के थे, अपनी किस्म के इन साया में सर्वोच्च थे । उनका व्यक्तिगत चरित्र विस्तृत मुद्दे आर निष्काम था, जिसका उदाहरण कम ही मिलता है । उनका मेरे साथ बहुत स्नेह था और वह मेरे कहन पर किसी भी समय जीवन 'योद्धावर' कर सकते थे । मन उनके मन का रचनात्मक सामाजिक काय करने की आर प्रेरित किया, राजनीतिक भाग-दौड़ की आर नहीं । उन्होंने यह राय मान ली और अधूता में काय करना आरम्भ कर दिया । केवल एक धार, वह भी उम एक वर्ष के अन्त में करीब जा उन्होंने मेरे पास बिताया, मुझे यह संकेत दिया कि उनका मन रचनात्मक काय की ओर अधिक नहीं है, वह तो देश की राजनीतिक स्वाधीनता के लिये कोई मजबूत तथा प्रातिकारी कदम उठाने के पक्ष में अधिक है । एक गुप्त प्रातिकारी संगठन के साथ उनके गवघा की कहानी का पता 1914 के एक मुकदमे के दौरान चला । मुझे इन गवघा के आरम्भ होने की सही तारीख ता याद नहीं, परंतु यह बात उनकी प्रशंसा के तौर पर कही जा सकती है कि जब "कारवाड" का समय आया, वह स्वयं ही मेरी सेवा छोड़कर चले गये । बाल मुकद गभीर और ईमानदार युवक थे, जो धार्मिक आवेगों में बह जाने वाले नहीं थे । अब यह बात जिन्कून स्पष्ट हो गई थी कि उन्होंने प्रातिकारी संगठन में शामिल होने का निणय बड़े माय विचार के पश्चात् किया । मेरे पास नौकरी ता केवल एक बात थी । मैं तो उन्हें बहुत ही उच्चाशय वाला समझता था जा मेरे माय धाखा नहीं कर सकने थे और कुछ अवसरों पर हुए वार्तालाप की जो एक वर्ष की नौकरी के दाराने उन्होंने कभी कभार मेरे माय किया, स्मरण करते हुए मेरे लिए यह सोचने का कारण है कि मेरे साथ धाखे का रवैया अपना कर वह प्रसन्न नहीं थे ।

"एक बात जिसमें मुझे पूरी तरह असावधान कर दिया, वह यह थी कि मेरे माय एक वर्ष की सेवा के दाराने उन्होंने एक युवती से शादी कर ली और वह उनके प्रति बहुत स्नेह दिखाते थे ।

"हा तब मुझे याद है, अभियोग पत्र यह बात प्रमाणित नहीं कर पाया कि 'तारेंस' गार्डन, लाहौर में कम पेंकने की जा क्रूर घटना हुई

थी, उसमें उनका हाथ था। अभियुक्ता ने विरुद्ध यही मुख्य आरोप था। परन्तु अदालतों ने यह बात जान ली कि जिन उद्देश्यों के लिये 1911 में बम पैदा किया गया, उनमें लिये जाय करने वाले गुप्त गणक के पीछे जो व्यक्ति जाय कर रहे हैं, वह उनमें से एक थे। उन मुकदमों के अभियुक्ता के बारे में यह संदेह भी था कि दिसम्बर 1912 में लाई हाइंग की हत्या के लिये जो हमला किया गया था, उनका उससे भी सम्बन्ध था।

‘बाल मुकद को फासी दे दी गई और उसी दिन साहौर में उनकी पूजा पत्नी का देहात हो गया।

‘मुझे भाई बाल मुकद की गिरफ्तारी से पूर्व इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि उनका नातिकारी आंदोलन से सम्बन्ध है। यदि मुझे इसके बारे में पहले जानकारी होती, तो मैं उन्हें इस आंदोलन से अलग करने के लिये प्रयत्न करता और सम्भव था कि मैं उनकी जान बचा सकता, ताकि उन्हें देश की अच्छी सेवा तथा अधिक सामकारी कार्यों में इस्तेमाल किया जा सकता।”

इस प्रकार साजपत राय उस समय तक जहाज पर सवार न हुए, जब तक अभियोग पत्र ने अपना खेल पूरा न कर लिया और उनके मित्रों ने, जिनमें प्रिंसिपल हसराम भी थे, उन्हें यह सुझाव दिया कि अब उन्हें अपनी खानगी और स्थगित नहीं करनी चाहिए।

भूपेंद्र नाथ बसु तथा अन्य प्रतिनिधि तब तक साइ क्यू के साथ मुलाकात कर चुके थे और उन्होंने उनके साथ बिल की व्यवस्थाओं के बारे में बातचीत भी कर ली थी, जब साजपत राय 17 मई 1914 को उनके साथ शामिल हुए। बलकत्ता के उस मिताचारी ने अपने आपको श्यावहारिक तौर पर प्रतिनिधिमंडल का प्रमुख बना लिया था।

साजपत राय कहते हैं, “बाबू भूपेंद्र नाथ बसु अनौपचारिक रूप से हमारे सिष्टमंडल के प्रमुख थे। उन्होंने इंडिया आफिस के अधिकारियों तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के साथ निकट सम्पर्क बना लिया था, और स्वभाव तथा प्रशिक्षण की दृष्टि से बातचीत जारी रखने के लिये वह बहुत उपयुक्त व्यक्ति थे। वह समय-समय पर हमें बताते कि

अधिकारी की इच्छा है कि क्या किया जाये, वह कहा तक रियायत देंगे और क्या व्यावहारिक है और क्या नहीं है। उनके मार्गदर्शन में हम विवरण तैयार करते और उन्हें सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इंडिया के विचार के लिये उन्हें देते। वह उन पर कितना विचार करते वह बात केवल भूपेद्र चावू को ही मालूम होती।”

और बिल के बारे में

“लाड क्र्यू ने जो बिल पेश किया, वह ज़िंह बिल था, जिससे कोई भी सतुष्ट न हुआ और जिसका सभी ओर से विरोध हुआ। जब प्रतिनिधि मंडल भारत से रवाना हुआ था, उस समय बिल की व्यवस्थाएँ प्रकाशित नहीं हुई थीं, इसलिए उसके बारे में भारतीय राय व्यक्त नहीं की गई थी। जब व्यवस्थाओं का पता चल गया, तो भारतीय समाचारपत्रों ने बहुत असंतोष व्यक्त किया। अधिक-से-अधिक जो किया गया, वह अनमना-सा समर्थन और वह भी बहुत ही सीमित। शिष्ट मण्डल के सदस्य भी इस बारे में एक मत नहीं थे। व्यक्तिगत तौर पर मुझे कोई ऐसी बात दिखाई नहीं थी कि बिल का स्वागत किया जाये, परन्तु हमारे प्रमुख इस बात का समर्थन करने पर बाध्य थे और सबसम्मति की खातिर हमने अपने विवरण सेक्रेट्री आफ स्टेट को दे दिये, जिनमें आमूल परिवर्तन सुझान के बाद हमने बिल को सामान्य समर्थन दे दिया। परन्तु टोरी पार्टी ने बिल का जोरदार विरोध किया और टोरी समाचार-पत्रों ने तो उसके विरुद्ध एक हमला खड़ा कर दिया।”

लाड क्र्यू का बिल अस्वीकार कर दिया गया और लाजपत राय का कहना था कि “किसी को भी इसका अधिक खेद नहीं था, सिवाय भारतीय शिष्टमण्डल के नेता के।”

इस बिल का ध्यान रखना तो लाजपत राय की इंग्लैंड यात्रा का उपयुक्त वहाना था। इसलिये इसके साथ-साथ उन्होंने कई अन्य बातों में भी रुचि ली, विशेषकर उन्होंने यह अवसर अपने समर्थ और व्यापक तथा गहरे करने के लिये इस्तेमाल किया, जो उस लक्ष्य के लिए साभकारी हो सकें, जिसे उन्होंने अपनाया हुआ था। वह कीर हार्डी ने उस समय नहीं मिल पाये, जब थमिन्ग नेता भारत की यात्रा पर

थे। उस समय वह माण्डले में सरकारी कदी थे। 1909 में मंत्री के लिये पूरे अवसर मिल गये। 1914 में लंदन पहुंचने पर उनके स्वागत के जो पत्र मिले, उन पहले पत्रों में कीर हार्डी का पत्र भी था, "हाउस आफ कामंस में दोपहर के भोज के बार-बार ग्योने के साथ।"

फिर वह फ्रैंड्रिक मैकानैस थे, जिन्होंने, जैसा कि हमने 'निर्वासन' के अध्यायी में देखा, कामन्स में लड़ी गयी लड़ाई में मौलें को बिल्कुल न बर्खा। स्वाभाविक तौर पर साजपत राय और उनके बीच गहरी मैत्री स्थापित हो गई थी।

साजपत राय ने लिखा है कि "मैकानैस एक अन्य अग्रज थे, जिनकी मैत्री और अतिथि सत्कार के स्रोत से मैंने जीभर कर लिया। 1907 में उन्होंने मेरे हित को अपनाया और मेरे निर्वासन के बारे में लगातार प्रतिदिन प्रश्न उठाकर जान मौल तथा लिबरल पार्टी के अन्य नेताओं की मैत्री खो दी थी। 1907 में उन्हें बहुत अच्छा समझा जाता था। उनकी परिपक्व विद्वता, उनकी कानूनी योग्यता, उनकी गभीर तथा ठोस दलीलो, उनके सतुलित भाषणों के कारण उनके बारे में महत्वपूर्ण बातों के लिये सोचा जाता था। उस समय तो उन्हें उभरता हुआ मूल परिवर्तनवादी समझा जाता था। परन्तु अफमोस। मेरे निर्वासन ने उनका पतन कर दिया।

"बिना मुकद्दमे के निर्वासन "उदारवादी" सिद्धांतों का ऐसा मूलभूत उल्लंघन था, जिसके साथ मैकानैस बिल्कुल समझौता न कर पाये। विलक्षण जान मौलें की कोई दलील या स्पष्टीकरण उन्हें सदन में मेरे निर्वासन के बारे में प्रश्न करने से न रोक सके। उनकी मेरे साथ कभी मेंट नहीं हुई थी, न ही उन्हें मेरे बारे में कोई जानकारी थी। वह तो केवल सिद्धांत की खातिर लड़ रहे थे। वह इसी सिद्धांत को पूजते थे। इस सिद्धांत की बकालत के कारण वह पार्टी के नेताओं के मन में सम्मान गया बढे। जान मौलें की भारतीय नीति पर तेज हमले करने के कारण उनसे इतनी घृणा की जाती थी कि सांसिमिट्टर ने उन्हें मुकद्दमे भेजने बन्द कर दिये और जोरदार बकालत

वाले वह थोड़ा बरील शीघ्र ही बिना मुकदम के कनिष्ठ वकील बनकर रह गये ।

‘श्रीद्विक मवानर्म किसी भी तरह से प्रातिवारी विचार तथा प्रवृत्ति के व्यक्ति नहीं थे। वह बड़े शम्भु के प्रयाग से मिले हुए पसद नहीं करते थे और न ही प्रातिवारी तार-नरीका का। वह शांति पसद व्यक्ति थे और सदा ही आन्दोलन के लिये सांविधानिक तरीका का समर्थन करते थे। उनकी पत्नी भी उतनी ही नव दिल महिला थी और उनकी भारतीय दशन तथा माहिल्य में बहुत रचि थी। उनका साथ मरा परिचय 1908-09 में हुआ तथा अन्त तक उनकी मित्रता तथा विश्वास मुझे प्राप्त रहा” ।

एक और बहुमूल्य मित्रता वैश्व दम्पति के साथ थी। उनका धारण मैं यह लिखते हूँ

“एक अथ अंग्रेज दम्पति जिनकी मैत्री तथा महि वानी मेरे लिये बहुत लाभकारी रही, वह वैश्व दम्पति थे। उनकी विद्वता तथा ज्ञान और शानदार रचनाएँ विश्व प्रसिद्ध ह, परन्तु शायद बहुत कम लोग जानते हैं कि मित्रा के तौर पर वे कितने भले और अच्छे हैं। वे समाजवादी हैं, परन्तु प्रातिवारी समाजवादी नहीं। ब्रिटिश फेमियन सामा यटी, फेमियन मनावृत्ति और फेमियन माहिल्य पूणतया उनकी देन ह। लेबर पार्टी के संगठन में उनका योगदान शाब्दिक रहा है। 1914 में इंग्लड में ठहरने के दारान श्री सिडनी वैश्व मरे लिये बहुत लाभप्रद रहे।”

निस्सन्देह कमोदक सर विलियम बडरबन के बारे में ता उन्हें बहुत कुछ दखना-जानना ही था

“दरअसल सर भारतीय राजनीतिक कार्यकर्ताओं में सभी वर्गों के भारतीयों के लिये, स्वर्गीय सर विलियम बडरबन एक मित्र दामनिक तथा मागदशक थे। वह अवकाश प्राप्त आई० सी० एम० थे। वह उच्चवाटि के अंग्रेज नेशभक्त थे, परन्तु उनके बारे में यह कहना निरदुल उचित था कि वह भारत से प्रेम करते थे। उनकी पेंशन के रूप में भारतीय निधि से मिलने वाला प्रत्येक पैसा भारत के कल्याण

थे, उस समय वह माण्डले में सरकारी कैंदी थे। 1909 में मंत्री के लिये पूरे अवसर मिल गये। 1914 में लदन पहुँचने पर उनके स्वागत के जो पत्र मिले, उन पहले पत्रों में कीर हार्डी का पत्र भी था, "हाउस आफ कामस में दोपहर के भोज के बार-बार ग्योत के साथ।"

फिर वह फ्रैंड्रिक मैकानैस थे, जिन्होंने, जसा कि हमने 'निर्वासन' के अध्यायो में देखा, कामस में लड़ी गयी लड़ाई में नीलें को बिल्कुल न बर्शा। स्वाभाविक तौर पर लाजपत राय और उनके बीच गहरी मैत्री स्थापित हो गई थी।

लाजपत राय ने लिखा है कि "मैकानैस एक अन्य अंग्रेज थे, जिनकी मैत्री और अतिथि सत्कार के स्रोत से मैंने जीभर कर लिया। 1907 में उन्होंने मेरे हित को अपनाया और मेरे निर्वासन के बारे में लगातार प्रतिदिन प्रश्न उठाकर जान मौल तथा लिबरल पार्टी के अन्य नेताओं की मैत्री खो दी थी। 1907 में उन्हें बहुत अच्छा समझा जाता था। उनकी परिपक्व विद्वता, उनकी कानूनी योग्यता, उनकी गंभीर तथा ठोस दलीलो, उनके सतुलित भाषणों के कारण उनके बारे में महत्वपूर्ण बातों के लिये सोचा जाता था। उस समय तो उन्हें उमरता हुआ मूल परिवर्तनवादी समझा जाता था। परन्तु अफमोस। मेरे निर्वासन ने उनका पतन कर दिया।

"विना मुकद्दमे के निर्वासन "उदारवादी" सिद्धांतों का ऐसा मूलभूत उल्लंघन था, जिसके साथ मैकानैस बिल्कुल समझौता न कर पाये। विलक्षण जान मौल की कोई दलील या स्पष्टीकरण उन्हें सदन में मेरे निर्वासन के बारे में प्रश्न करने से न रोक सके। उनकी मेरे साथ कभी भेंट नहीं हुई थी, न ही उन्हें मेरे बारे में कोई जानकारी थी। वह तो केवल सिद्धांत की खातिर लड़ रहे थे। वह इसी सिद्धांत को पूजने थे। इस सिद्धांत की बहालत के कारण वह इसी सिद्धांत के नेताओं के मन में सम्मान गवा बढे। जान मौल की भारतीय नीति पर तेज हमले करने के कारण उनमें इतनी घृणा की जाती थी कि सालिमिटरो ने उन्हें मुकद्दमे भेजने बन्द कर दिये और जोरदार बहालत

वाले वह थोड़ा वकील शीघ्र ही बिना मुकदमों के वनिष्ठ वकील बनकर रह गये ।

“क्रौडिक मर्नर्स किसी भी तरह से श्रांतिकारी विचार तथा प्रवृत्ति के व्यक्ति नहीं थे । वह कड़े शब्दों के प्रयोग को बिल्कुल पसंद नहीं करते थे और न ही श्रांतिकारी तीर नरीका का । वह शांति पसंद व्यक्ति थे और सदा ही आंदोलन के लिये सांविधानिक तरीका का समर्थन करते थे । उनकी पत्नी भी उतनी ही नरक दिल महिला थी और उनकी भारतीय दशन तथा साहित्य में बहुत रुचि थी । उनके साथ मेरा परिचय 1908-09 में हुआ तथा अन्त तक उनकी मित्रता तथा विश्वास मुझे प्राप्त रहा” ।

एक और बहुमूल्य मित्रता वैब्व दम्पति के साथ थी । उनके बारे में वह लिखते हैं

‘एक अन्य अंग्रेज दम्पति जिनकी मैत्री तथा महत्तानी मेरे लिये बहुत लाभकारी रही, वह वैब्व दम्पति थे । उनकी विद्वता तथा ज्ञान और ज्ञानदार रचनाएँ विश्व प्रसिद्ध हैं, परन्तु शायद बहुत कम लोग जानते हैं कि मित्रता के तौर पर वे कितने भले और अच्छे हैं । वे समाजवादी हैं, परन्तु श्रांतिकारी समाजवादी नहीं । ब्रिटिश फेमिनियम सोसायटी, फेमिनियम मनोवृत्ति और फेमिनियम साहित्य पूणतया उनकी दान हैं । लेबर पार्टी के संगठन में उनका योगदान ज्ञानदार रहा है । 1914 में इंग्लैंड में ठहरने के दारान श्री मिडनी वैब्व मेरे लिए बहुत लाभप्रद रहे ।’

निस्संदेह क्यावद्ध सर विलियम वीडरबन के बारे में तो उन्हें बहुत कुछ देखना-जानना ही था

“दरअसल, सारे भारतीय राजनीतिक कार्यकर्ताओं, सभी वर्गों के भारतीयों के लिये, स्वर्गीय सर विलियम वीडरबन एक मित्र, दायनिक तथा भागदशक थे । वह अवकाश प्राप्त आई० सी० एस० थे । यह उच्चकोटि के अंग्रेज देशभक्त थे, परन्तु उनके बारे में यह कहना बिल्कुल उचित था कि वह भारत में प्रेम करते थे । उनका पेंशन के रूप में भारतीय निधि से मिलने वाला प्रत्येक पैसा भारत के कल्याण

के लिये खच होता था । वह इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति के अध्यक्ष थे और उनके साप्ताहिक समाचार पत्र 'इंडिया' के लिये अधिकतर धन उन्हीं से मिलता था । जो भी भारतीय राजनीतिक राजनीतिक कार्यों के लिए इंग्लैंड जाते थे, व उनसे सहाह-मणविरा करने और वह उनके कार्य तथा स्थिति को सुखद ब्यान के लिए हर सम्भव प्रयत्न करते । उनकी सहाह तथा सहायता हमारे लिए लगभग अनि-वाय थी ।”

जब लाजपत राय मदन पट्टे, उन दिना सर विलियम विची (फ्रान) गये हुए थे । परंतु जैसे ही वह लौटे (मध्य जून में) वह कांग्रेस के सभी प्रतिनिधियों से मिले । विची से उन्होंने लाजपत राय का लिखा था कि वह प्रतिनिधिमंडल प्रात से-11 बजे मुलाकान करेंगे, परंतु उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि वह (लाजपत राय) 10 15 पर आ जायें क्योंकि "अब प्रतिनिधियों से बातचीत करने से पूर्व वह उनके साथ कुछ वार्तालाप करना चाहते हैं ।" बातचीत के दौरान मुख्य विषय इंडिया आफिस के बारे में लार्ड क्यू का बिल था । सर विलियम न लाजपत राय का बार बार "मैरेडिथ" से अपने शीघ्र निवाम स्थान पर आमंत्रित किया । "पंजाब में असतोप की स्थिति" बार बार उनकी बातचीत का विषय था । यह सुझाव दिया गया कि सर विलियम इस विषय के बारे में एक टिप्पणी लिखें और उसे इंडिया आफिस को पेश करें पर शायद ऐसा हुआ नहीं ।

लाजपत राय न ब्रिटेन के श्रमिक तथा व्यापार मगठना के आन्दोलन में रुचि भी और 1914 में ही उन्होंने भारत में एक श्रमिक मगठन आन्दोलन शुरू करने के बारे में विचार किया ।

'व्यवस्थापति न उहे फेब्रियन समर स्कून' में आमंत्रित किया । इंग्लिश लेक जिले के सुंदर क्षेत्र में इस यात्रा में एक साथ ही "राहत और शिक्षा" दी ।

इस स्कूल के अनुभव का स्मरण करन हुए उन्होंने बाद में लिखा कि 'जुलाई के अन्तिम दस दिन इंग्लैंड के उच्च कोटि के सामाजिक कार्यकर्ता और दार्शनिकों के साथ आनन्दमय वार्तालाप में गुजरे । उनमें

श्रीमती और श्री वैश्व, श्री वर्नाड शा, श्री काल तथा श्री वबिट शामिल थे। वोल के नेतृत्व में युवा दल विद्रोह विघ्ने हुए था। उन्होंने घुले आम वैश्व दम्पति की आलोचना की, उन पर आक्षेप किया तथा उनका भजाव उड़ाया। परन्तु उपर्युक्त ने कभी नाराजगी व्यक्त नहीं की और आक्षेप तथा आलोचना को विनोदशीलता से लिया।”

लाजपत राय मद्रा चौकाने रहे आर उहोन विदेश मे शिक्षा सस्याभा के काय के अध्ययन का कई भी अवसर बहुत कम खाया। इस बार उन्होंने इंग्लैंड में भारतीय छात्रा की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दिया। इस उद्देश्य के लिये उन्होंने इंडिया आफिस के टी० डब्ल्यू० आनल्ड के साथ कई बार भेट की और जब 'न्यू स्टेट्समैन' के सम्पादक ने वैश्व के मुझाव पर, जो उस समय उनका मागदशन तथा नियंत्रण करते थे, भारतीय विषया पर कुछ लेख रबीकार करने के लिये सहमति व्यक्त की, तो लाजपत राय ने उहे कई लेख दिये, जिनमें 'भारतीय छात्रा की समस्याए' नख भी था। यह लेख लिखने के 15 वष बाद भी वह उन्हे बिल्कुल प्राप्तगिव तगा और उहनि इमे अपनी आत्मकथा के अश में शामिल किया।

*

*

*

कामागाटा मारु की घटना का मामला एक बहुत उलझी हुई समस्या थी, जो उन दिनों के समाचारपत्रों में मोटी खतरा में प्रकाशित हुई। इसने मई-जून, जुलाई 1914 में ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र में आमतौर पर कनाडा में रहने वाले भारतीयों के प्रश्न को गरमा गरम प्रश्न का रूप दे दिया और लाजपत राय ने इंग्लैंड में अपने निवास के दौरान, विशेष तौर पर समाचार-पत्रों में प्रकाशन के माध्यम से यथायोग्य योगदान दिया। लंदन में 'न्यू स्टेट्समैन' के अलावा पत्रकारिता का उनका मुख्य सम्पर्क 'देली यूज' के साथ (जिसका सम्पादन ए० जी० गार्डिनर करते थे) तथा 'वस्ट मिन्सटर्' के साथ था (जिसके सम्पादक जे० ए० स्पैडर थे)।

कामागाटा मारु की दुखद घटना के सबंध में अपने वाय के बारे में अपनी आत्मकथा के अश में लिखते हुए वह कहते हैं

“इस प्रश्न का जवाब गुर्गुदिन सिंह ने प्रमुखता वा रूप दे दिया, जिन्होंने हिंदुस्तानिया से भरा एक जहाज लेकर कनाडा के तट तक पहुंचान की चेष्टा की और इस उद्देश्य के लिए विशेष तार पर एक जहाज किराये पर लिया, ताकि ब्रिटिश कोलम्बिया के प्रवासी कानूना को आजमाया जा सके, जिन्होंने भारतीया के वहा आन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जा और कहा था कि वे जिस जहाज पर भारत ने आये हैं, सीधे उमी स कनाडा पहुंचे, यह एक अमभव वान थी, जो साधारण जहाज यात्रिया को पश्चिमी कनाडा के तट तक पहुंचात थे, वे ही भारतीय यात्रिया को ले जाते थे, क्योंकि इसके लिए उन्हें दंडस्वरूप उन यात्रियों को निशुल्क उसी स्थान पर पहुंचाना पडता था, जहा से वे जहाज पर चडे थे। बहुत धन खच करके तथा बडे आत्म विश्वास के साथ पजाब के निवासी गावा गुर्गुदिन सिंह ने, जो चीन में ठेकेदार रहे थे और कुछ धन कमा चुके थे, एक जापानी जहाज किराये पर लिया और उसमें पाच सौ सिखा को सवार करके कनाडा के तट तक ले गये। इन सिखा को जहाज से नहीं उतरन दिया गया और सागर में तथा तट पर उनके ऊपर कडा पहरा लगा दिया गया। उनमें से एक यात्री ने अपने वकील की माफत अदानत में वदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पेश की, जा अस्वीकार कर दी गई। उच्चतम न्यायालय में भी उसकी अपील मजूर न हुई और आखिरकार जहाज के मवारियों समेत वहा से लौटने पर मजबूर कर दिया गया। मई में इंग्लैंड पहुंचने पर मैंने इस मामले में रुचि लेनी शुरू कर दी और जडर सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इंडिया तथा कुछ अन्य लागा के साथ मुलाकात करन और उनसे इन मामला में हस्तक्षेप करन के अतिरिक्त मैंने महत्वपूर्ण सम्पादकों के मेट की और समाचार पत्रा का भी लिखा और इन नीति के खतरा के बारे में जनाया।

साजपत राय ने प्रमुख कनेडियन राजनीतिज्ञ हेनरी बारासा से भी मुलाकात की

“हेनरी बारासा उस समय कनाडा की ससद में फ्रेंच कनेडियन लिबरल पार्ट के नेता थे। वह बडे मध्य, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे और मांट्रियल में प्रकाशित होने वाले एक समाचार पत्र के सम्पादक थे। मैंने

साथ भेंट करन की उनकी इच्छा का कारण कुछ और था, वह नहीं था जो चालम गबट न सांचा था। मैंने उनके साथ नदन में काफी नम्बी चौड़ी बातचीत की और उनके बाद मैं अमरीका में भी उतरी मिला। उन्होंने उपनिवेशों में एशियाई विरोधी नीति की सारी जिम्मेदारी ब्रिटिश पर ढाल दी। उनकी अधिक रुचि विश्व भर में नाकराज का सामान्य विराम करने में थी, विशेषकर भारतीयों के लिए कनाडा आन की छूट की नीति के मुकाबले। उनसे भेंट वही प्रसन्नता की बात थी, परन्तु मेरे साथ वह उस सवध में सुरत सहायता देने का इकरार न कर सके, जिस मामले में मेरी सुरत रुचि थी।”

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकार कामागाटा मारु के लोगो का राहत देने में सभी प्रयत्न विफल हो गये। जिन प्रवासियों को वहाँ जाना से रोका गया था, अपने देश लौटने पर जब वे बज बज घाट पर (कलकत्ता के निकट) उतरे, तो हमदम गोलियों ने उनका स्वागत किया।

38. साथी प्रतिनिधियों के साथ मतभेद

घर में यात्रा पर रवाना होते समय उन्होंने सोचा था कि वह छ मास के लिए यात्रा पर रहेंगे। अब उन्हें इंग्लैंड में आए हुए दम सन्ताहू वीत चुने थे और कांग्रेस प्रतिनिधि मंडल का अधिवृत्त कार्य पहले ही समाप्त हो चुका था। उन्होंने महाद्वीप की यात्रा का कार्यक्रम बनाया—जिसमें सामान्य तौर पर फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जरलैंड और आस्ट्रिया शामिल थे, बाद में बल्गारिया और तुर्की और इनके पश्चात् मित्र होते हुए घर वापस। उन्होंने इन देशों के प्रमुख व्यक्तियों के साथ परिचय प्राप्त कर लिए थे। वेब्स न इस कार्य में विशेष तौर से सहायता दी थी। उन्होंने यह सारी व्यवस्था उस समय की, जब वह जुलाई के अंत में फेबियन समर स्कूल में भाग लेने के लिए गये थे। स्कूल की समाप्ति पर उन्हें इंग्लैंड से विदा होना था, परन्तु वेब्स से विदा होने से पूर्व ही सेराजेवो हत्याकांड का समाचार वहां पहुंच गया था, जिससे विषय पुनः भड़क जाना था।

वह 31 जुलाई को इंग्लैंड लौटे और उन्होंने देखा कि सभाविन विपत्ति के संदेह से वातावरण तनावपूर्ण था—वे जटिल अस्पष्ट भावनाएँ, जो विवेक शून्यता में डूब जाती हैं। यात्रा कार्यालय उन्हें उस समय तक महाद्वीप की यात्रा की मलाह देने को तैयार नहीं था, जब तक यह स्पष्ट न हो जाए कि स्थिति का परिणाम क्या होने जा रहा है। अगले दिन ही आस्ट्रिया और जर्मनी में विधिवत युद्ध की घोषणा हो गई।

ब्रिटिश सरकार द्वारा फ्रांस का पक्ष लेने के निणय से ब्रिटेन में रहने वाले भारतीयों के लिए भयंकर प्रश्न उठ खड़े हुए। उनके स्वाभाविक मनोवृत्तियाँ तथा सीधे समझे व्यवहार, आत्मविरोध तथा ब्रिटिश का लाजपत राय ने शान्त चिन्तित्व की छुरी के वीरल से विश्लेषण किया, जब उन्होंने आत्मकथा का छण्ड लिया

'मंत्रिमंडल द्वारा निणय लेने के 24 घंटे के अंदर ही मैंने अनेक भारतीयों में बातचीत की, जो नेशनल लिबरल क्लब के तम्बाकू पीने

वे कमरे में बैठे थे और इस प्रकार यातचीत कर रहे थे जैसे यह कोई उत्सव का अवसर था। इनमें कई उच्च स्तर के भारतीय थे— हिन्दू तथा मुसलमान। उनकी प्रसन्नता तथा आम दोस्तव इतना बेतुका हो गया कि श्री जिन्ना को उन्हें उनके अनुचित व्यवहार के लिए डाटना पड़ा, यह बात सोचते हुए कि क्लब के अग्रेज सदस्य स्थिति के द्वार में इतने निराश तथा चिंतित थे। उमर 24 घंटे के अन्दर स्थिति बिम्बुल बदल गई। सभी प्रमुख भारतीयों में, जिनमें बनब में उपस्थित व्यक्ति भी शामिल थे, एक प्रकार की होड़ लग गई कि वे साम्राज्य के प्रति कफादारी व्यक्त करने में एक दूसरे को भात दे दें और इस बात का श्रेय ले सकें कि उन्होंने नेतृत्व किया है। कांग्रेस प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों में भी मतभेद पैदा हो गए।

“इन दिनों में से एक अवसर पर मुझे इडिम्न नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति के कार्यालय जाने का अवसर मिला और मैंने देखा कि मेरे दो सहायी कांग्रेस की ओर से कफादारी व्यक्त करन का एक वक्तव्य जारी करने के द्वार में विचार कर रहे थे। उन्होंने प्रमुख ब्रिटिश राजनेताओं से विचार-विमर्श किया था और उन्होंने मशविरा दिया था कि वे बिना देरी के ही ऐसा कर दें। उन्हें केवल एक विचार बेचैन और परेशान कर रहा था कि शायद इसमें मैं उनका साथ न दूँ। इसलिए उन्होंने मुझे देखते ही प्रहार आरम्भ कर दिया। वे चाहते थे कि वही और उसी समय यह वक्तव्य जारी कर दिया जाए, क्योंकि हम तीनों बहुमत में थे, इसलिए अन्य सदस्य उनके अनुमान के अनुसार, स्वयं हस्ताक्षर कर देंगे। परन्तु जिस प्रकार उन्हें आशा थी वे मुझे तुरत सहमत न कर सकें। मैंने कई कारणों से उनके प्रस्ताव पर विरोध व्यक्त किया।

1 इस प्रश्न पर विचार करने के लिए प्रतिनिधि मंडल की कोई औपचारिक बैठक नहीं बुलाई गई थी।

2 प्रतिनिधि जिस काम के लिए आये थे, वह पूरा हो चुका था और बिल अस्वीकार हो जाने के पश्चात् प्रतिनिधि मंडल विधिवत् भंग कर दिया गया था।

3 स्वदेश म भारतीय नेताआ ने इम सबध मे अपने विचार व्यक्त नही किए थे और न ही इम मबध मे हम कोई निर्देश भेजे थे ।

मेरे महयोगी मेरे इम वाधन विराध के लिए बहुत नाराज थ । उनमें मे एक, श्री मामथ, ने मुझे गालिया दी और हमारे बीच कुछ गरमागर्मी भी हुई । अखिरकार, यह पता चला कि एक अन्य प्रतिनिधि, श्री एम० ए० जिना नेगनल लिबरल क्लब म उपस्थित थे और उन्हें बुलाया जा सकता था । ऐसा ही किया गया । वह आये और उहोने मेरे साथ सहमति व्यक्त की । इसलिए यह मामला स्थगित करना पडा । यह निर्णय किया गया कि प्रतिनिधियों की एक औपचारिक बैठक अगले दिन प्राण बुलाई जाए और उमके लिए पाचवें सदस्य को, जो अनुपस्थित थे सूचना भेज दी जाए । अगले दिन औपचारिक बैठक हुई और बहुमत मे यह निर्णय किया गया कि अभी कोई जल्दी नही है और हमें भारत मे समाचारों की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

“इसी बीच, अय भारतीया न अभियान आरभ कर दिया कि एक आम धोपणा बरवाई जाए जिस पर उस समय ब्रिटेन मे उपस्थित सभी भारतीया के हस्ताक्षर हो । इस अभियान को चलाने वाले मे प्रमुख तौर पर सर एम० भावनगरे तथा पंडित भगवान दीन दुबे शामिल थे । इंडियन नेशनल कांग्रेस के पराजित प्रतिनिधि उन लोगो की अपील सर विलियम वैडरवन के पास ले गए, जो उन दिना मंत्रीय मे थे और उनका तैयार किया हुआ एक प्रान्प मे आए ।

“मुझे इस वक्तव्य की प्रथम जानकारी ‘टाइम्स’ पढने से मिली, जिसमे वक्तव्य का साराण प्रकाशित हुआ और साथ मे यह टिप्पणी भी थी कि उस पर सभी प्रतिनिधियों ने, जिनम म भी शामिल था, हस्ताक्षर किए हैं ।

‘ऐसा दिखाई पडता है कि किसी ने इस विश्वास के साथ मेरे हस्ताक्षर कर दिए थे कि समय आने पर मैं सर विलियम वैडरवन द्वारा तैयार किए गए मसौदे को स्वीकार कर लूंगा । देश और मेरे अपने हित मे उस वक्तव्य पर मेरे हस्ताक्षर आवश्यक समझे गए थे ।

“7 अगस्त को मुने हैम्पस्टीड मे पंडित भगवान दीन दुबे की ओर मे एक तार मिला

“लाड क्र्यू को भजे वफादारी का विश्वास दिलाने वाले पत्र पर सभी वयोवृद्ध भारतीया तथा प्रतिनिधि मंडल के सदस्या के हस्ताक्षर हो गए है । यदि आप भी हस्ताक्षर करना चाहते है, तो तुरत 3 मिडल टैम्पल लेन पहुंचें ।” उसके पश्चात् क्या हुआ, उसका विवरण लाजपत राय ने इस प्रकार दिया है ।

“मैं वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने के लिए पंडित दुबे के यहां न गया परन्तु एक दो दिन बाद मैंने नेशनल लिबरल क्लब में उस पर हस्ताक्षर कर दिए । शायद मेरे हस्ताक्षर अंतिम थे । इसलिए मैं साम्राज्य के हित के लिए युद्ध में सहयोग देने के लिए वफादारी की नीति पर निश्चित तौर से बाध्य था । लगभग सभी राष्ट्रवादी नेता साम्राज्य के प्रति वफादारी और निष्ठा की घोषणा में शामिल हो गए थे । बाइसराय की विधान परिषद् में सबसेअंतिम से एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें कहा गया था कि उस समय तथा युद्ध के दौरान भारतीय सैनिका का खर्च भारतीय खजाने की ओर से वहन किया जाएगा । यह स्वाभाविक ही था कि ब्रिटिश जनता संसद तथा समाचार पत्र भारत तथा भारतीय वफादारी की भरपूर प्रशंसा कर रहे थे । 10 सितंबर को ‘द टाइम्स’ ने सर बेलटाइन सिरोल का एक पत्र प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि युद्ध न यह बात सिद्ध कर दी है कि पठे-लिखे नेताओं का राजकुमारों तथा भारतीय जनता पर कोई प्रभाव नहीं है, यहां तक कि वे नहीं चाहते कि भारत से ब्रिटिश राज गायब हो । उसी अंक में बाबू भूपेद्र नाथ बसु का एक पत्र भी प्रकाशित हुआ ।

‘इंग्लैंड में बहुत प्रसन्नता व्यक्त की गई और भारत की पेशकश को स्वीच्छित, स्वाभाविक, उत्साहपूर्ण, सव्यापी आदि कहा गया । आम तौर पर यह दलील दी गई कि ऐसा इसी कारण है कि ब्रिटिश शासन याचोचित है ।

‘सर फिरोजशाह मेहता का एक भाषण जो उन्होंने बम्बई में दिया था ब्रिटिश समाचार पत्रों में बहुत उद्धृत किया गया । डेली मेल’ ने एक मुख्य सपादकीय लिखा, जिसका शीर्षक था ‘जीन गाय एक दिन ।

‘अब हमारे लिए यह बहुत लज्जापूर्ण स्थिति थी, जो छता पर चढ़ कर गला फाड़कर कह रहे थे कि भारत में ब्रिटिश शासन अप्रावृत्तिक, अनुचित तथा गलत है और भारत का ‘लहू बूसने’ की इस नीति के कारण भारत आर्थिक तौर पर कमजोर होता जा रहा है, वफादारी की यह ‘लहर’ ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हमारे वक्तव्यों के उत्तर में हमारे मुंह पर दे मारी गई थी। इन परिस्थितियों में मने वेब्ले दम्पति से ‘यू स्टेट्समैन’ के लिए ‘भारत और युद्ध’ विषय पर एक लेख लिखने की आज्ञा मांगी। स्वाभाविक तौर पर उन्होंने यह लेख देखने की इच्छा व्यक्त की। जब यह लेख संपादक के पास पहुंचा, तो उन्होंने इसे प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उसमें झलक के प्रति गैर वफादारी तथा शत्रुता की भावनाएँ व्यक्त होती थी।”

“उन्होंने दूसरा प्रयत्न किया और वेब्ले की सिफारिश के साथ संपादक ने उसे स्वीकार कर लिया। यह लेख उनके अपने नाम से नहीं था, बल्कि ‘एक जानकार’ के नाम से था।”

“सर विलियम वैडरबन का लेखक के बारे में पता नहीं था, परन्तु उन्होंने ‘एक जानकार’ द्वारा दिए सुझावों की पुष्टि करते हुए एक अधिक लम्बा पत्र भेज दिया, इसने अतिरिक्त उ होने लाजपत राम को भी लिखा जिसमें कहा गया था ‘द यू स्टेट्समैन’ में ‘भारत और युद्ध’ शीर्षक में एक बहुत बढियाँ लेख पढ़ने पर (क्या आपको जानकारी है कि यह किसने लिखा है) मैंने निणय किया है कि संपादक के नाम एक लम्बा पत्र ही मेरा सदेश अधिक अच्छे ढंग से पहुंचा सकता है। कृपया अगला अंक देखिए, शायद यह उसमें प्रकाशित होगा।’

जब सर विलियम को यह मालूम हुआ कि ‘एक जानकार’ राम के भलावा कोई और व्यक्ति नहीं, तो उन्होंने लिखा

“जमा कि आपका अपन शब्दा में यह पक्ष पक्ष करने के औचित्य में सदेह था, मैं यह मोचता हूँ कि मैं ‘वैस्टमिस्टर’ को या ‘द यू स्टेट्समैन’ का एक पत्र लिखूँ (आप जिसको उचित समझें), जिसमें ब्रिटिश सरकार के एक शुभचिन्तक और सुविन भारतीय मित्र के तौर पर आपने विचार लिखूँ। यदि आपकी यह योजना पसंद हा, तो आप मुझ

उस पत्र की एक प्रति भेज दें, जो आपने 'वैस्टमिस्टर' को लिखा था, फिर मैं एक मसौदा तैयार करूँगा, जो स्वीडिश के लिए आपका भेज दूँगा।"

परन्तु लाजपत राम का कहना है

"अंग्रेजी समाचारपत्रों में भारत की बफादारी के बारे में, जो सही महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ, वह अनाम लेखक का लेख था, जो पहली अक्टूबर को 'यू एज' में 'एक आक्रमणकारी भारतीय' के नाम से छपा।

"जब बफादार भारतीय समाचारपत्रों ने भारत में युद्ध के नाम पर चढ़े जमा करन और युद्ध ऋणों की मांग के बारे में शिकायतें शुरू कीं, तो मैंने, 'द यू स्टेट्समैन' में एक अम लेख लिखा, (इस बार हस्ताक्षरों के साथ था) जो भारत पर युद्ध के आर्थिक प्रभाव के बारे में था। कुछ अंग्रेजों ने उम्मे गैर-बफादारी की बातें कहकर बटु आलाचना की।"

"अब चौदह वर्ष बाद इस मामले पर फिर से विचार करने पर मैं महसूस करता हूँ कि 1914 के युद्ध में भारत के राष्ट्रीय नेताओं का व्यवहार बहुत ही अनुचित और गैर-देशभक्तिपूर्ण था। मैं यह मानने से इन्कार करता हूँ कि वह या उनके देशवासी इंग्लैंड से प्रेम करते थे और उसकी केवल उसी की खातिर रक्षा करने का चिन्तातुर थे। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि बफादारी और निष्ठा की बहुत सी घोषणाएँ केवल ढाँग थीं, छल था। परन्तु जो बात स्वीकार की जा सकती है, वह शायद यही है कि केवल वही नीति थी, जो अपनाई जा सकती थी। वे किसी और बात के लिए तैयार न थे और उनमें से कुछ का विश्वास था कि युद्ध और युद्ध का अनुभव बुरा नहीं होगा। न्याय के तौर पर यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि केवल दो व्यक्ति ही ऐसे थे, जिन्होंने युद्ध के लिए भारतीय धन तथा भारतीय आदमी देने के विरुद्ध मामूली-सी आवाज उठाई, वे थे—स्वर्गीय बाल गंगाधर तिलक और पंडित मदन मोहन मालवीय। सावजनिक व्यक्तियों के लिए लाखों आदमी और रुपये देने का प्रस्ताव स्वीकार करना और वह भी बिना किसी शर्त के, विशाल हृदयता और उदार भावना कही जा सकती है परन्तु यह केवल उनकी राजनीतिक अयोग्यता ही सिद्ध हुई।"

39. बंधन-मुक्त छोर पर

उनके भारत लौटने में काफी विलम्ब हो गया था। कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन, जिसके लिए वह बहुत सभावित अध्यक्ष समझे जा रहे थे, निकट आ रहा था। क्या वह मद्रास में अध्यक्ष पद संभालने के लिए उचित समय पर स्वदेश लौट पाएंगे ?

परंतु, सवप्रथम प्रश्न तो यह है कि क्या उन्हें अध्यक्ष-पद पेश किया जाएगा ? इस बारे में उस समय तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, जब तक वह निर्वाचित नहीं हो जाते। बम्बई से एस० एस० मार्मोरा द्वारा चुपचाप विदेश चले जाने के बाद से कई बातें हो चुकी थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि युद्ध जारी था—बड़ा युद्ध, जिसने कई बड़े-बड़े व्यक्तियों को डावाडोल कर दिया था। कुछ व्यक्ति, जो सामान्य परिस्थितियों में शायद उन्हें अध्यक्ष के तौर पर महान कर सकते, युद्धकाल में इस पद के लिए उनके निर्वाचन को ठीक न मानते, क्योंकि कांग्रेस पर अभी भी मिताचारियों का कब्जा था।

देश से मिलने वाली सूचनाओं के अनुसार, नौ में से छः प्रांतीय कांग्रेस समितियों ने उनके पक्ष में मत दिया था। सामान्य तौर पर यह बात निश्चित मान ली जाती थी कि स्वागत समिति प्रांतीय सत्याओं के बहुमत के नियम पर अपनी मुहर लगा देगी। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'द लीडर' ने, जो भारत के अग्र समाचार-पत्रों के समान कांग्रेस के मामला की जानकारी रखता था, बड़े विश्वास के साथ यह भविष्यवाणी कर दी थी। यद्यपि उसे स्वयं सारे मामले में सश्रव हो सकती है कि उन्हें वह पद संभालने के लिए आमंत्रित किया जाए जो कई वर्ष पूर्व तिलक तथा कई अन्य नेताओं ने उठाए हैं सौंपन की इच्छा की थी। उस समय इस प्रस्ताव ने उन्हें बहुत उल्लेख में डाल दिया था, क्या अब स्थिति भिन्न होगी ? उन्होंने सोचा और परिस्थितियों के अनुसार उनकी राय में भी मर्ममन के मुकाबले विराधी तब, अधिक पुष्ट नजर आए। यही बात हुई भी, मंगम के मिताचारी कांग्रेस नेताओं ने स्वयं यह महसूस किया कि लाजपत राय, जिन्हें वे अभी भी अपन में से एक नहीं समझ पाए थे, युद्ध के कारण पैदा हुई असाधारण

परिस्थिति में बहुत उचित अध्यापन मिश्रण न होगा और इस प्रकार स्वागत समिति ने सपटन इत्यादियों के बहुमत के निर्णय को रद्द कर दिया। 'द सीडर' के सपादक, सी० याई० गिन्तामणि ने साक्षात्की का इस सारी कारवाही के बारे में एक मापनीय रिपोर्ट भेजी।

इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि यह 'अवधि' नितनी देर रहेगी, इलैड में भी माहौल अधिक मुश्किल नहीं था—यह उनके अपने हमसतना की कृपा-दृष्टि थी (जिनमें उनके साथी प्रतिनिधि भी शामिल थे)—इसलिए उन्होंने अद्य महासागर पार करने का निणय किया।

'एग० एस० फिनडलिया 14 नवंबर का लिवरपूल से रवाना हुआ। उस पर केवल एक ही बग के यात्री थे, उस पर अनेक भारतीय थे जिनमें साजपत राय, बनारस के बाबू शिवप्रसाद गुप्त (जो मात्रा कायस्थम में साजपत राय के अमली साथी थे), वल्लभिन प्राप्तर (बाद में सर) जगदीश चंद्र बाम और उनकी पत्नी और प्रा० विद्या के० सरकार भी थी। अनेक अन्य व्यक्ति भी थे (विभिन्न गण्टा के), जिन्हें ब्रिटेन छोड़ने पर मजबूर किया गया। काफी समय से बहा रहने के बावजूद, युद्ध शुरू हो जाने पर इन व्यक्तियों को 'विदेशी शत्रु' घोषित कर दिया गया था।

अद्य महासागर यात्रा (जसे 1905 की) बिना किसी घटना के नहीं थी। उन्हें 48 घंटे से भी अधिक समय के लिए खराब मौसम का सामना करना पड़ा था। इस समय में, साजपत राय ने लिखा है, "हम अपने कैबिनो से बाहर न निकल, भोजन के लिए भी नहीं।" फिर भी उन्होंने कहा है "कुल मिलाकर मैं यात्रा का आनन्द लिया।"

21 नवम्बर को हमें गगनचुम्बी भवन दिखाई देने लगे और उसके शीघ्र बाद हम 'मूषाक' में उतर गए। साजपत राय ने लिखा है, "हमारे पंजाबी मित्रों का बदरगाह की गानगी में उनके मित्रों ने स्वागत किया, जिसे सूचना थी हुई थी", परन्तु स्वयं उन्हें (और बनारसी मित्र को) 'हाटल में स्थान पाने में कुछ कठिनाई हुई क्योंकि रंगभेद इसमें स्कावट था।" उनका कहना है कि इस प्रकार का उनका यह पहला अनुभव था - स्पष्ट है 1905 की सक्षिप्त यात्रा के दौरान उन्हें रंगभेद का ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हुआ था। आखिरकार, उन्हें होटल में कमरे से लेन में सफरता प्राप्त हो गई और 'मूषाक' में कोई चार सप्ताह बिताने

के पश्चात् वे अमरीका भ्रमण पर निकल पड़े जिसमें बोस्टन, वाशिंगटन, एटलाटा, यू आलिएस, शिकागो और साल्ट लेक सिटी की यात्रा शामिल थी। 2 मार्च 1915 में वह सास एजिल्स पहुंच गए। उन्हें अमरीकी श्रोताओं का सबा धित करने के कई अवसर प्राप्त हुए, जहां उन्होंने अधिकतर भारतीय विषयों पर भाषण किए, परन्तु "यात्रा का मुख्य उद्देश्य अध्ययन तथा मनोरंजन था।"

वह हमेशा ही चाहते थे कि उनकी यात्राएँ "शैक्षिक महत्व की हों और वह बिना जल्दबाजी के अपनी आंखों को हमेशा खुला रखें हुए, जाना पसंद करते थे। अमरीका भ्रमण के दौरान उन्होंने जिन बातों की ओर विशेष ध्यान दिया उनमें रंगभेद का प्रश्न, शिक्षा संस्थाएँ, दानशीलता द्वारा सौव हितकारी कार्यों और इस सत्रके अतिरिक्त "उस प्रक्रिया की ओर जिससे विभिन्न नस्लों के मेल मिलाप से एक राष्ट्र न जन्म लिया, शामिल थे"—जिसे अमरीकी सांग 'द मैलिटिय पाट' कहते हैं। इन अध्ययनों के परिणाम 'द यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका द इम्प्रेशंस आफ द हिंदू' में दिए गए हैं। इन्हें कलकत्ता की पत्रिका 'द माउन्ट रिव्यू' ने धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया और बाद में इसी संस्था ने इसे पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया। (उप शीर्षक में 'हिंदू' शब्द व्यापक 'भारतीय' के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया गया। अमरीका में इस शब्द का यही अर्थ उस समय तक लिया जाता था, जब तक भारत के विभाजन की योजना नहीं बनी।

अमरीका का यह भ्रमण कोई छ मास चलता रहा। उन्होंने अपना काफी समय निखने में खर्च किया। 'यंग इंडिया' इस अवधि की उत्पत्ति है परन्तु हम इस पुस्तक तथा अन्य पुस्तकों की कहानी की चर्चा किसी अन्य अध्याय में करेंगे। वह प्रशांत महासागर के तट पर भारतीय समुदाय के साथ संपर्क में आए और उन्होंने उन लोगों में जाति का उफान देखा। इस विषय के बारे में इससे सम्बद्ध अध्याय में अच्छी तरह चर्चा की गई है। छ मास के बाद वह जापान के लिए रवाना हो गए और कुछ मास वहाँ ठहरने के बाद फिर अमरीका लौट आए जहाँ वह कुछ और समय के लिए ठहरे। हमारे विवरण में जापान के विराट के बारे में अलग से उचित ढंग से चर्चा की जाएगी और अमरीका में ठहरने के बारे में, जापान यात्रा से पूर्व और उसके पश्चात् के दिनों का एक ही विषय के रूप में विवरण होगा।

40. जापान यात्रा का कार्यक्रम

युद्ध लगभग एक वर्ष से चल रहा था और हमने शीघ्र समाप्त होने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं दे रही थी। क्योंकि आप सभी जानते थे कि यह शायद वर्षों तक जारी रहे। वह युद्ध विराम होने तक सार वर्ष कहाँ बिताएंगे? सात मास अमरीका में रह लेने के पश्चात् वह यह नहीं जान सके थे कि वह स्वदेश लौट पाएंगे या इस अवधि में निर्वासित ही रहेंगे। सात मास इण्डिया में रहने के पश्चात् वह अर्ध महासागर पार करके अमरीका आये थे, सात मास अमरीका में बिताने के बाद उन्होंने प्रशांत महासागर पार करके जापान की यात्रा करने का निश्चय किया था। उन्होंने अपने देश को छोड़ कोई अन्य एशियाई देश नहीं देखा था। बर्मा को भी, जो उस समय ब्रिटेन के भारतीय साम्राज्य का भाग था, सही अर्थों में देख लेने का वह दावा नहीं कर सकते थे, वहाँ तो वह केवल एक सरकारी बंदी के रूप में ले जाए गये थे। जापान को, जो पूर्वी देशों में आधुनिक तौर पर सबसे अधिक उन्नत देश था, तन्दीली के लिए देख लेना कोई बुरा विचार नहीं था। यह निर्वासन जारी ही रहना था, ता जापान, उदय होते सूर्य की धरती, को उस अवधि के लिए देखने में शायद अमरीका देखने के समान ही भला हो।

जापान की यात्रा का निश्चय हो जाने के पश्चात् शिवप्रसाद गुप्त ने मैं में प्रशांत महासागर का पार किया, लाजपत राय भी कुछ महीने बाद जापान पहुँच गये। उन्हें दो पाण्डुलिपियाँ मुकम्मल करनी पड़ी, 'यंग इंडिया' तथा 'इंग्लैंड डैट' (इंग्लैंड का श्रृण), इसके अतिरिक्त महात्मा मुशी राम ने (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) उन्हें सूचना दी थी कि उनका सबसे बड़ा पुत्र, हरीशचन्द्र, राजा महेन्द्र प्रताप के साथ इंग्लैंड चला गया है और वहाँ से उसके अमरीका जाने तथा उनसे मिलने की सम्भावना है। लाजपत राय को हरीशचन्द्र में दिलचस्पी थी और वह महेन्द्र प्रताप की योजनाओं के समाचार के बारे में उत्सुक थे। परन्तु हरीशचन्द्र के आने में काफी विलम्ब हो गया।

साजपत राय 3 जुलाई 1915 को सान फ्रांसिस्को से जहाज पर सवार हा गये। उन्हें यह निश्चय नहीं था कि यह अगली मॉंट तक के लिए विदाई थी या अमरीका को अन्तिम विदा थी, वह भारत लौटने को तरस रहे थे, परन्तु उनकी योजना अनिश्चित थी। दो सप्ताह के लिए उनका जहाज प्रशांत महासागर पर तैरता रहा। वह सुंदर हवाई द्वीप समूह में ठहरे, जहां वह सुंदर सागर के दृश्य देखकर मुग्ध हो गये, वहां उन्होंने अद्भुत समुद्री जीव, झाड़िया और वन भी देखे।

19 जुलाई को वह याकोहामा में उतरे, जहां वह बिल्कुल अजनबी थे, बंदरगाह की गोदी में उनके स्वागत के लिए कोई भी नहीं था। यात्रा में शायद यह पहला अवसर था कि वह अपना सामान जहाज में ही छोड़कर स्वयं ही टोकियो के किसी होटल में रिहाइश की व्यवस्था के लिए निकल पड़े। यह स्थान योकोहामा से 27 किलोमीटर दूर था।

परन्तु उन्होंने भाषा के विपरीत शीघ्र ही अपने आपको परिचित कर लिया और यह काफी सख्या में अपने हमवतनों के कारण ही नहीं, अमरीका में अपने सहयात्रियों के सहयोग से भी हुआ, शिवप्रसाद गुप्त तथा प्रोफेसर विनय के० सरकार पहले ही वहां पहुंच चुके थे। किमोनो में सज्जित, काठ के जूतों में, परन्तु आश्चर्य जनक ढंग से चुस्त अपनी दिनचर्या में व्यस्त, लोग उन्हें अपने देशवासियों के समान लगे।

अध्ययन या सैर सपाटे के लिए जुलाई का मास बिल्कुल उपयुक्त नहीं था — तापमान एकदम बढ गया था, जिससे उन्हें प्रिय लाहौर के गर्मी के दिनों की याद आ गयी। जापान के विश्वविद्यालयों की काय पद्धति देखना और विश्वविद्यालय के लोगों तथा छात्रों से मिलना उनकी मुख्य रुचि थी — और उन्हें विश्वविद्यालय बढ मिले। इसलिए उन्होंने कुछ समय, गर्मी के पयटन स्पल चील हैकोने, पर बिताया।

टोकियो में वह इम्पीरियल होटल में ठहरे हुए थे, परन्तु क्योंकि उनकी योजना अधिक दिनों के लिए ठहरने की थी, इसलिए उन्हें मुयाव दिया गया कि किराये पर मकान लेकर ठहरना अधिक मस्ता रहेगा। इसलिए वह इम्पीरियल होटल से जापानी विस्म के दा

मजिदा मकान में घले गए जो उस समय के इम्पीरियल विश्वविद्यालय के निक्ट, तीसरे हाई स्कूल के पीछे, काआमिचो में हागा वाड में था। लालाजी ऊपर की मजिल में रहते तथा साथ करते थे और नीचे की मजिल एक युवा साथी, पेशावर के बेशोराम सब्बरवाल को दे दी थी, जो कुछ वर्ष पूर्व लालाजी से भारत में मिले थे और उनसे कुछ ही समय पूर्व जापान पहुंचे थे। यह निष्ठावान युवा साथी कई प्रकार से लालाजी के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ और लालाजी के जापान से रवाना होने तक उनके साथ रहा। जापान में रिवाज के अनुसार एक नौकरानी रसाई का काम करने तथा घर की देखभाल के लिए रखी गई थी।

लालाजी के जापान आन का कुछ कारण यह था कि वह बधन-मुक्त छोर पर थे। परन्तु उनका यह इरादा बिल्कुल नहीं था कि उनकी जापान यात्रा केवल सैर सपाटा ही रहे। उनकी असल उत्सुकता तो यह जानने में थी कि पूर्व का यह देश किस प्रकार आधुनिक प्रगति में फिर से महान बना है। रूस-जापान युद्ध के शीघ्र बाद, उन्होंने जापान के पुनरुत्थान के बारे में एक पजाबी वकील की उर्दू पुस्तक की भूमिका लिखी थी। उन्होंने डी० ए० बी० कालिज में जापानी भाषा की शिक्षा के लिए एक जापानी अध्यापक भी नियुक्त किया था, उत्तर भारत में उस समय ऐसी व्यवस्था और कहीं नहीं थी। इंग्लैंड से अमरीका के लिए यात्रा की व्यवस्था करने से पूर्व ही, उन्होंने जापान की यात्रा के बारे में सोचा हुआ था, इस बात का पता उनके पत्र व्यवहार से लगता है। निस्संदेह उनका उद्देश्य स्वयं जापान के उस रहस्य का अध्ययन करना था, जिसके कारण उस देश ने शान्ति प्रगति की। परन्तु उनके मन में एक और उद्देश्य भी था

‘मैंने यह निश्चय किया था कि भारत और जापान के बीच सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया जाए, जो दोनों देशों के लिए स्थायी महत्व का हो सके। इसलिए इसी उद्देश्य को सामने रखकर मैंने विभिन्न व्यक्तियों से मिलना तथा सस्थाओं को देखना शुरू कर दिया।’

भाषणा के लिए उन्हें लगभग सभी विश्वविद्यालयों से (इम्पीरियल विश्वविद्यालय को छोड़कर) तथा टोकियो के महत्वपूर्ण स्कूलों से आमंत्रण प्राप्त हुए। 'वासेदा' तथा 'क्यू' विश्वविद्यालयों तथा हायर कमिशियल स्कूल का विणेश उल्लेख करना आवश्यक है। काउंट (बाद में मार्क्स) ओकुमा जो उस समय प्रधान मंत्री थे, वासेदा के अध्यक्ष थे। विश्वविद्यालय के डीन, प्राफेसर शियाजावा, जिन्होंने सालाजी के भाषण समारोहों की अध्यक्षता की, सालाजी के एक बहुत अच्छे मित्र बन गये और वह अक्सर सालाजी को 'निप्पन क्लब में आमंत्रित करते। यह क्लब विश्वविद्यालय का ही भाग था।

'क्यू' में सर्वोच्च व्यक्ति, प्राफेसर कामादा ने सालाजी के भाषण समारोहों की अध्यक्षता की (सालाजी अंग्रेजी में बोलते थे और अंग्रेजी भाषा जानने वाले प्राफेसर उनका जापानी भाषा में अनुवाद किया करते थे)। यहाँ भी क्लब सम्पन्न स्थापित हुए, प्राफेसर कामादा ने सालाजी को विश्वविद्यालय क्लब 'कोजुशा' में आमंत्रित किया। हायर कमिशियल स्कूल बाद में कमिशियल विश्वविद्यालय बन गया। स्कूल के गवर्नर, बैरन कादा, ने सालाजी के भाषणों की अध्यक्षता की। एक युवा छात्र तत्सुनोमुके युयेदा, जो बाद में ख्याति प्राप्त प्राफेसर बना, सालाजी को मिलने अक्सर उनके घर आता था। दरअसल, सालाजी के बारे में जापानी समाचार पत्रों में, जो कुछ भी प्रकाशित होता, वह उसका अनुवाद सालाजी को बताने में सहायता देता था— यह मत्र कुछ वह निशुल्क करता था। सालाजी उसे अक्सर दोपहर या रात के भोज के लिए आमंत्रित कर लेते थे।

जापान के प्रधान मंत्री ओकुमा के साथ डेढ़ घंटे की एक बैठक के बारे में वासेदा ने एक प्राफेसर प्रधान मंत्री को बताया था—
 वही गई बात के लिए
 मैं वही बातें वह स्वयं
 यद्यपि जापान के बारे में
 है, वह हमें बात से बड़े

वे, जबकि
 वे। वह

जापानी में
 अंग्रेजी में
 है कि
 जापानी

के माप भीषण युद्ध में उलझी हुई थी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि यह युद्ध उत समय तक जारी रहे जब तक दाना पशा की कमर न टूट जाए (अमरीका तक तक युद्ध से अलग था)। आकूमा न वासुदा विश्वविद्यालय में भी छात्रों के समक्ष धारा प्रवाह भाषण किया और जिस प्रकार उन्होंने जापानी छात्रों को राजनयिक मामला में विश्वास में लिया, उगते सालाजी बहुत प्रभावित हुए।

टाकिया के पत्रद्वारा 7 सालाजी के सम्मान में भाग दिया, जिसमें उन्होंने एक महत्वपूर्ण भाषण किया। उसमें सुझाव दिया गया कि एक प्रकार का एशियाई संधि बनाया जाए। इस सुझाव को समाचार पत्रों में तो बहुत महत्व दिया, परन्तु उसके आगे कोई प्रगति न हुई।

सालाजी ने 'याम्योरी शिम्बून' के कार्यालय में आयोजित एक समारोह में भी भाषण किया, यह उम समय एक नवोदित समाचार पत्र था। अब यह वहाँ के तीनों प्रमुख महानगरीय समाचारपत्रों में से एक है, जिसकी बिन्नी पाच लाख प्रतियाँ से अधिक होने का दावा किया जाता है। सालाजी का 'यामातो शिम्बून' में बहुत अच्छा प्रचार हुआ। उनके कुछ लेख 'कुबुमिन शिम्बून' में भी प्रकाशित हुए, यह समाचार-पत्र अब बन्द हो चुका है, परन्तु उन दिनों इसका बड़ा जोर था। 'आसाही शिम्बून' के कुछ पत्रकार भी सालाजी से मिलने आया करते थे। यह समाचार पत्र अब विश्व भर में सर्वाधिक प्रसार सख्या वाले समाचार पत्रों में से एक है। भाषा की बाधा होने के बावजूद सालाजी का जापानी समाचार-पत्र बहुत ही अनुकूल महसूस हुए।

राजनयिका तथा राजनीतिज्ञ नताजा के साथ सम्पर्कों में सालाजी का महत्वपूर्ण सम्पर्क प्रधान मंत्री काउट आकूमा के साथ था। परन्तु आधिकारिक स्थिति के कारण आत्मसमय और राजनयिक कौशल आवश्यक था। कई बार सालाजी का 'निप्पन क्लब' में प्रधान मंत्री के साथ मंत्रीपूण बातचीत करने के लिए उनकी मज स्थिति की जानकारी लेनी पड़ती थी। उसके लिए वह प्राफेसर शियोजावा के साथ, जो यामेदा में डीन और ओरूमा के बहुत निकट थे, बातचीत करते थे।

सालाजी ने कई मंत्रिया तथा राजनयिक व्यक्तियों से भी बातचीत की। कुछ मिलाकर यह बातचीत निराशाजनक ही रही। 'एशियाई मघ' के प्रस्ताव के बारे में उन्हें धीरे धीरे अहसास हुआ कि वह जापानी राजनीति के दावे में फिट नहीं बैठता था। जापान के राजनीतिक नेता ऐसी कोई बात करने को तैयार न थे, जो चीन का शक्तिशाली बनाए—उन्हें तो केवल इसी बात की चिन्ता थी कि उसका शोषण करने की जापान का 'खुनी छूट' हा। जहाँ तक भारत का प्रश्न था, वह ब्रिटिश-जापान समझौते के आढ्यो का इसकी प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक सीमाओं से उठते आगे तक खींच रहे थे। सिंगापुर में भारतीय सैनिकों का विद्रोह ब्रिटेन की खातिर जापानी नौसेना के कर्मचारियों ने दबा लिया था, इस प्रकार जापानी अधिकारियों ने बड़ी सफादारी से समझौते को व्यापक बनाकर उस मामले के लिए काम किया था, जो पूर्ण तरह ब्रिटिश साम्राज्य का 'घरेलू' मामला था। जापान के समाचार-पत्रों में कुछ लेखकों ने इसकी आलोचना भी की थी। दरअसल, समाचार-पत्र इस समझौते के बारे में कुछ नाराज थे, परन्तु उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि इस समझौते के अनुसार विदेशी शक्तियों को चीन में प्रवेश के अवसर प्राप्त थे और जापान को 'खुली छूट' नहीं थी—यह बात सम्राज्यपत राय की एशियाई एकता की धारणा से बहुत दूर थी, जिस दृष्टि से यह इस समझौते के बारे में मौलत थे।

सालाजी का एक महत्वपूर्ण तथा सम्पक, महान चीनी नेता डा० सन यात सेन थे, जिन्होंने जुलाई 1913 में दूसरी असफल चीनी क्रांति के बाद से जापान में शरण ली हुई थी। सम्राज्यपत राय की एशियाई धारणा सन यात सेन के विचार से बहुत कुछ मिलती जुलती थी और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि दोनों में अन्तर्ग मुलाकात हाती और इस सम्पर्क ने मित्रता का रूप ले लिया। श्रीमती मेन ने अपनी अमरीकन पृष्ठभूमि के साथ दुभाषिण का काम किया। दुर्भाग्य की बात है कि इन नेताओं की इन बैठकों की कोई अधिकृत जानकारी हमें उपलब्ध नहीं है।

हमने जापान में भारतीय समुदाय के बारे में बहुत कम खचा की है। पी० ए० ठाकुर तथा अथ ज्ञानिकारियों के साथ सालाजी के

सम्पन्न विशेष चर्चा का महत्त्व रखने है — इस विषय की अगले अध्याय में चर्चा की गई है ।

एक छात्र के तौर पर लालाजी ने जापान से, जो जानकारी एकत्र की, उन्होंने वह अपने देशवासियों को 'माइन रिव्यू' मसकता के माध्यम से भेंट कर दी, जिसने यह सारी लेखमाला (कुछ अन्य बातें जोड़कर) एक पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशित की, इस पुस्तिका का नाम था 'द एवोल्यूशन आफ जापान एंड अदर पेपस । इन 'पत्रों' का क्षेत्र बहुत व्यापक था, जिनमें जापान की "राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक" स्थिति की चर्चा की गई थी ।

उनके लिए "जापानिया की दो बहुत ही आश्चर्यजनक बातें थी— उनकी जोरदार देश भक्ति तथा पिछले पचास वर्ष के थोड़े समय में यानी 'मेजीवाल' के बाद की गई आश्चर्यजनक प्रगति । लालाजी ने उनकी सफलता के कारण का अध्ययन करने को बहुत उचित समझा वे गुण जानने के लिए जिनका कारण उनका खरिद युरोपियन सगठन का शिकार होने में बच गया और इनके साथ ही उन्हें सुसगठित और सुयोग्य कौम बनाने में मदद मिली जिसका प्रमाण उन्होंने इस और जापान के बीच बड़े युद्ध के दौरान दिया ।"

जापान में लालाजी के ठहरने के दौरान वहाँ की प्रमुख घटना सम्राट तार्इशी का मिहासनारोहण थी । भारतीय समुदाय ने उस अवसर पर अपनी आरसे एक भोज की व्यवस्था करने का निणय किया और लालाजी से इस समारोह की अध्यक्षता करने को कहा । अपनी स्वीकृति से पूर्व उन्होंने दो शर्तें रखी — पहली यह कि अपने हमबतनों की ओर से केवल वही बालेंगे और दूसरी यह कि कोई जाम तजवीज नहीं किए जाएंगे और न ही कोई 'राजनीतिक' भाषण किया जाएगा । 27 नवंबर 1915 उईनो सेस्वन हाटल में दिया गया यह भारतीय भोज बहुत ही शानदार रहा, जिसमें बहुत से लागे ने हिस्सा लिया । गैर भारतीय प्रमुख व्यक्तियों में (कुछ अमरीकी तथा अंग्रेजा के अतिरिक्त) 70 जापानी थे, जिनमें अधिकतर प्रमुख शिक्षाशास्त्री थे — सभी विश्वविद्यालयों तथा टोकियो के प्रमुख बालियों के प्रतिनिधि

इनमें थे — और अय प्रमुख व्यक्तियों में व्यापार, उद्योग, राजनीति तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में व्यक्ति शामिल थे। 'द जापान एडवर्टाइजर' (जिसके मालिक एक अमरीकी यहूदी थे) के ब्रिटिश सम्पादक 'ह्यूग ब्यास' ने अगले दिन के अपने अंक में लिखा कि साजपत राय के भाषण को सुनकर मुझे लायड जाज की याद आ गई। निस्संदेह उन्होंने इस अवसर पर राजनीति बीच में लाने पर स्वयं प्रतिबन्ध लगा दिया था, पर उन्हें अपने हमवतनों की ओर से धन्यवाद तथा, शुभकामनाएँ तो भेंट करनी ही थी।

इस भोज के बाद कुछ घटनाएँ हुईं, यद्यपि ये घटनाएँ इस भोज का परिणाम नहीं हो सकती थीं। इनसे भारतीय समुदाय में हलचल अवश्य हुई। इसकी चर्चा अगले अध्याय के लिए रख ली गई है।

गृहविद्योगी निर्वासित को देश लौटने में पेश आने वाली कठिनाइयों के बारे में पूरी तरह सोचना था। अपनी आशिव स्मृतियों में, जो लालाजी अपने अन्तिम दिनों में लिए रहे थे, हम पढ़ते हैं "अमरीका से रवाना होते समय मैंने लौटने का इरादा नहीं किया था, यदि मुझ भारत आने में अपनी सुरक्षा को कोई खतरा न होता। मुझे अभी जापान आए एक सप्ताह से अधिक् नहीं हुआ था। मैं यह निगम्य नहीं कर सका कि मेरा भारत लौटना खतरे से खाली होगा या नहीं।"

'व्यक्ति की सुरक्षा' बड़ी लचीली अभिव्यक्ति है और संभव है इसे उन्होंने जान बूझकर चुना हो। युद्ध में प्रत्येक बात उचित दिखाई देती है और निस्संदेह उन्होंने अपने आपको ब्रिटिश शासकों के लिए अस्वीकार्य व्यक्ति बना लिया था। उनके व्यक्तिगत खतरों में गिरफ्तारी तथा कैद ही नहीं, जो संभवतः बिना मुद्दमे के हो सकती थी, अन्य प्रकार की गलत बारवादया भी थी — जिस प्रकार से उन्होंने आयरिश देशभक्त सर रोजर बेसमैट के साथ किया, जो स्व विदित हैं और जिसके बारे में एम० एन० राय ने अपनी स्मृतियों में उनका अपहरण कराने के लिए बार-बार लिए गए प्रयत्नों की चर्चा की है।

मुद्द-माल में भारत रसा बानून के अधीन वातावरण, पत्राव में भो डायर का शासन, युद्ध के प्रति उनका अपना व्यवहार, जिसकी जानकारी

ब्रिटिश समाचार-पत्रों ने दी, जमन रामयण गदर पार्टी के लोगों के साथ उनके खुलआम मेल-जोल के बारे में गलत-सलत सूचनाएँ दिए जाने की संभावना—ये सभी वे तथ्य थे, जिनके कारण उनके लिए भारी खतरा ही बनता था। विशेषकर सिंगापुर में विद्रोह के पश्चात् बहुत अधिक परेशान किए जाने की कहानियाँ सुनने में आईं। भारत लौटने का अपना विचार शायद उन्हें जापान में एक सप्ताह ठहरने के अन्दर ही छोड़ देना पड़ा, शायद इस कारण कि जो लोग चीन मार्ग के रास्ते भारत लौटते थे, उन पर बहुत अत्याचार होता था, लोगों को गिरफ्तार कर, उनकी तलाशी लेने, उन्हें नजरबंद करने तथा हागकांग और सिंगापुर में उन्हें अन्य कई तरीकों से परेशान करने की बहानियाँ भी सुनने में आई थीं। (उनके मित्र शिव प्रसाद गुप्ता इस प्रकार परेशान किए गए लोगों में थे)।

भारत लौटने की योजना छोड़ देनी पड़ी थी। मद्यपि सर्वोच्च जापानी अधिकारी उनके साथ सम्मानपूर्वक पेश आ रहे थे, परन्तु राष्ट्रीय नीति के हिस्से के तौर पर समझौते का अधिक महत्व दिया जाता उनके मन में कुछ शकएँ पैदा करता था। प्रोफेसर शियाजावा ने उन्हें बताया था, “उनके लिए जापान में ठहरना बिल्कुल उचित होगा” और ‘निजी गम’ के तौर पर यह भी कह दिया था कि यह नहीं कहा जा सकता कि जब ब्रिटिश अधिकारी उनकी वापसी के लिए जापान पर दबाव डालना आरम्भ कर दें।

इसके अतिरिक्त उनके लिए जापान में करने के लिए कोई विशेष बात नहीं थी। अमरीका में अपने देशवासियों के राजदूत के तौर पर वह अपने देश के लिए काफी कुछ कर सकते थे। ब्रिटिश शासक द्वारा जापान पर दबाव डालने के मुकाबले में अमरीका पर दबाव डाले जाने की संभावनाएँ न के बराबर थीं, और अमरीका का अब तक निष्पक्ष रहना निर्णायक बात थी।

भोज से काफी समय पूर्व, लालाजी ने अमरीका लौट जाने का मन बना लिया था और उसके अनुसार उन्होंने दिसंबर के लिए जहाज पर सीट आरक्षित करने के लिए कह दिया था। भाषा की बाधा के कारण अधिक समय के लिए वहाँ ठहरना नीरस बन सकता था और जिस ढंग से ब्रिटिश-जापान समझौता लागू किया जा रहा था वह खतरनाक था। अमरीका अभी भी युद्ध से अलग था—यही एक निर्णायक वजह थी कि उन्होंने अमरीका को समझौते के दबाव वाले एशियाई देश के मुकाबले प्राथमिकता दी।

4 दिगवर का त्या विस्मन कायशा न सूचित किया कि उनके लिए एम० एम० तेनिया मानू पर बेचिन आरम्भित कर दिया गया है और उत्तर एक सप्ताह बाद (12 डिसेंबर को) मित्रा न उन्हें योकोहामा से विदाई दे दी।

लालाजी को आशा थी कि उनके युवा साथी, बेशोराम सब्बरवाल उस यात्रा में उनका साथ देंगे। दरअसल, जब जापान में उनकी पहली भेंट हुई थी, तो उस युवक ने उन्हें बताया था कि वह शिदा प्राप्त करने के लिए अमरीका जाएगा और इस उद्देश्य के लिए वह घर से धन की प्रतीक्षा कर रहा है। इस प्रकार जब लालाजी ने उन्हें अपने साथ मवान में सहयोगी बना लिया, तो उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर उस युवक को वित्तीय सहायता देने का आश्वासन भी दिया। जब लालाजी को उनके प्रातिकारी पार्टी के साथ मध्या की जागरूकी मिली, तो लालाजी ने यह बात लगा दी कि वह युवक अमरीका पहुंचने पर कुछ समय के लिए प्रातिकारी पार्टी से अलग ही रहेगा। परन्तु राम जिहारी की इच्छा थी कि सब्बरवाल उनके पास रहें, इसलिए वह उन्हें जाने नहीं देना चाहते थे। नौजवान उलझन में था और अन्त में रास विहारी का दबाव काम कर गया, शायद इसलिए (जिस प्रकार आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे) वह महान प्रातिकारी नेता उस समय विशेष प्रकार की कठिनाइया से दो-चार था।

सब्बरवाल ने लालाजी की बहुत सेवा की थी और यह स्वाभाविक ही था कि लालाजी को उनसे बहुत स्नेह हो गया था, जिसके परिणामस्वरूप लालाजी का अन्त तक उनमें दिलचस्पी रही और लालाजी के अमरीका निवास के दौरान उनमें काफी पत्र व्यवहार चलता रहा।

यद्यपि सब्बरवाल लालाजी के साथ अमरीका न जा सकें, फिर भी उन्होंने अपनी वैकल्पिक व्यवस्था कर दी और लालाजी के साथ एक और युवक को भेज दिया, जो अमरीका में वृषि के अध्ययन के लिए जाना चाहता था। यह था एस० एस० सरना जो बाद में यूयाक में एक मफल व्यापारी बने। यह समभव है कि किसी प्रकार की शरारत का सन्देह करते हुए लालाजी अपने साथ एक विश्वास पात्र व्यक्ति रखना चाहते थे। इस प्रकार बेशोराम सब्बरवाल ने उनके मन की बात जान ली और लालाजी द्वारा "खतरा व्यक्तिगत सुरक्षा" के बारे में बात करने का अर्थ था भी यही।

41. युद्ध के दौरान भारतीय क्रांतिकारी

इंग्लैंड से जाना राजपत राय के लिए वहाँ अपने हमवतनानों के 'वफादारी' के दिखावे के बीमल पाखंड में दूर भागने के समान था। अमरीका में भारतीय समुदाय में यह रोग देखने को भी नहीं था। उनके विपरीत, विशेषकर जब वह प्रशांत महासागर के तट पर बेल्जियम में अपने हमवतनानों से (जो अधिकतर पंजाबी थे) मिलने गए, तो उन्होंने देखा कि वहाँ तो इंग्लैंड के शत्रुओं के साथ सहयोग करने के लिए एक आन्दोलन शुरू किया जा रहा था, ताकि भारत में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लड़ाई शुरू की जा सके। यहाँ तो उनके अपने स्वयं के भी, जो तिलक के समान ब्रिटेन को लगातार ऐसी सहायता देने का, जिससे भारत का सम्मान तथा हित सुरक्षित रहे, कामरता समझा जाता और भारतीय स्वाधीनता संग्राम के विरुद्ध बहुत बड़ा द्रोह समझा गया। यद्यपि इंग्लैंड में सावधान भारतीय राजनयिकों को वह राजद्रोही दिखाई देते थे, तो यहाँ क्रांतिकारी आतिशबाजी के घुलने में जोशीले, परन्तु अपरिपक्व युवकों को एक कमजिल दशाद्रोही। वहाँ यह मूलभूत सिद्धांतों की अनदेखी करने की शैली की बात थी, यहाँ देशभक्ति के क्षणिक जोश में व्यावहारिक सावधानी की जैसे धिक्किया उड़ा दी जाती हो। जमनी भारत का भला चाहता था या नहीं, इतनी बात ही बहुत थी कि वह भारत के साथ युद्ध कर रहा था। भारत में विद्रोह के लिए आह्वान हाना ही चाहिए—और इस घड़ी यह जमनी के लिए उचित था। भले ही यह आह्वान ऊँचे बगार से अथाह खाई में छलाग लगाने के बराबर ही क्यों न हो। राजपत राय ऐसी योजनाओं की मूर्खता और तबाही का भली भाँति समझते थे। परन्तु भारतीय क्रांतिकारी, विशेषकर गदर पार्टी के कुछ नेता, उनसे शामिल होने और यहाँ तक कि उनसे नेतृत्व करने का अनुरोध कर रहे थे। गदर पार्टी की स्थापना हरदयाल ने युद्ध आरम्भ होने से कुछ समय पूर्व की थी। राजपत राय ने इसने लिए नहीं, धन्यवाद कहकर उसी प्रकार इन्कार कर दिया जिस प्रकार उन्होंने महात्मा गांधी के अहानिकर एम्बुलेंस कोर का नेतृत्व करने के निमन्त्रण के लिए किया था।

उल्लेखन में डाल देने वाले ये आह्वान, अनुरोध के तौर पर, विनती के तौर पर, फुनलाहट के साथ तथा निन्दा के साथ अमरीका स्थित भारतीय क्रांतिकारियों

ने जापान के लिए रवाना होने से पूर्व तथा जापान से लौटने के बाद किए तथा जापान में ठहरने के दौरान वहां रहने वाले भारतीय प्रातिकारियों ने किए।

प्रातिकारियों के साथ यह भेंट कई बाग चौक दर बान बग में और अचानक ही हो जाती थी। जिस युवक ने जापान में उनके साथ इकट्ठा किया था कि वह उनके मरिच, मागदशक और दुभापीए का कार्य करेगा और जिम्बी इस कार्य के लिए प्रोफेसर विनय के० मरकार न मिफारिग की थी, उसका बारे में पता चला (दा सपनाह के अन्दर ही) कि वह प्रातिकारी गतिविधियों के साथ जुड़ा हुआ है और फिर वह अचानक ही गायब हो गया। वह जाते समय एक पत्र छोड़ गया, जिसमें कहा गया था कि वह अनिश्चित काल के लिए जा रहा है। बाद में लाजपत राय को पता चला कि उमबी पार्टी ने उसे किसी काम के लिए चीन भेजा है।*

अधिक उलझनपूर्ण एक भेंट उनके जापान पहुंचने के एक पत्रवाड़े के अन्दर ही हुई। गमियों के एक पमटन स्थल की यात्रा के दौरान उन्होंने होटल में ठहरे हुए लोगों की सूची पर नजर डाली, तो अचानक ही उमबी नजर कुछ ऐसे नामों पर पड़ी, जो उनके लिए परेशानी का कारण हो सकते थे। वह जापान की पुलिस द्वारा परेशान किए जान को निमंत्रण नहीं देना चाहते थे इसलिए उन्होंने तुरंत ही वे कमरे छोड़ देने का निर्णय कर लिया, जो थोड़ी देर पूरा ही लिये थे। मद्यकि उनकी पहले मुनाकात नहीं हुई थी, फिर भी उस अनुविधानक व्यक्ति का जब लाजपत राय के वहां पहुंचने की सूचना मिली, तो उनसे मिलने चला आया। लाताजी ने स्पष्ट शब्दा में उसे बताया कि वे होटल छोड़कर जा रहे हैं। परन्तु उस अनुविधानक व्यक्ति ने लाताजी पर कृपा करने हुए विश्वास दिलाया कि "वह उसी पल होटल छोड़कर जा रहा है—और वह चला भी गया।" बाद में उन्होंने टोकियो में (समय निश्चिन्त करके) मुलाकात की, और उनमें ममझौता हुआ गया कि 'उनमें से प्रत्येक अपने रास्ते पर जायगा और वे एक दूसरे पर आशेष नहीं करेंगे।' लाजपत राय का कहना है कि

* शायद यह नाम भारत की सागर माय स शब्द भिन्नज्ञान का था। युवक का नाम प्रबन्ध मूर्धनी था। उस विवाह में निम्नतार कर लिया गया था और कुछ समय बाद छोड़ दिया गया था। उसने डॉ० शहीर के भेष में मास्को की यात्रा की। वह एक विवाहपत्र स्थिति था जिस पर कुछ लोगों की संदेह था। लाहौर में लाताजी की बच्ची बच्ची उमम पत्र प्राप्त हुआ करने था। कहते हैं वह 1922 में भारत आया था परन्तु उस समय लाताजी जल में थे।

“मैंने समझते का अपना पक्ष निभाया, परन्तु दूसरा पक्ष अपने वचन पर कायम न रहा।” शीघ्र ही उन्होंने देखा कि उनकी बहुत निकट से निगरानी की जा रही है। वह जहाँ कहीं भी जाते जापान की पुलिस रात दिन उनका पीछा करती। यह जानते हुए कि उनकी गतिविधियाँ पर नजर रखी जा रही है, उन्हें गमियों के पर्यटन स्थल वाले व्यक्ति या उसने किसी सहयोगी से मिलना पसंद नहीं था।

लाजपत राय ने लिखा है “परन्तु एक दिन वही जवान जान बूझकर और शरारत करने के उद्देश्य से मिलने चला आया। उसके साथ पुलिस के दो कामचारी भी थे। वे मेरे आगमन में न आए, परन्तु सारा समय सामने के मुख्यद्वार के बाहर उपस्थित रहे। मैंने उस आगाह किया कि वह मुझे उलझन में न डाले और काफी बठिनाई से मन उसे चले जाने के लिए सहमत किया। कुछ ही दिनों के बाद यह घापणा की गई कि वह अपने पहरेदारों की चकमा दे गया है और देश छोड़ गया है। परन्तु दूसरा भद्र पुरप अभी भी जापान में था और शीघ्र ही अमरीका से उसका एक अन्य सहयोगी उसके साथ आ मिला। यह पूर्वोक्त के लिए प्रशंसा की बात है कि उसने मुझे परेशान नहीं किया और कभी भी मेरे घर मिलने न आया, यद्यपि हम एक समान मित्त के घर पर मिलते रहे, क्योंकि काफी समय तक मुझे उसके सही नाम तथा व्यक्तित्व के बारे में जानकारी नहीं थी परन्तु अमरीका से जो उसका साथी आया था, वह मुझे अकेला नहीं छोड़ता था। वह मुझसे बार-बार मिलते रहने पर बहिद था। वह बड़ी धान से रहता था और उसने जापानी अधिकारियों के मन में सदेह पैदा कर दिया था।”

थोड़ा बहुत अशभे में पड़ना उचित ही था। वह, जिनका नाम तथा व्यक्तित्व लालाजी की उलझन में डाल रहा था, रास बिहारी घोष के अतिरिक्त और कोई नहीं थे, जो हाडिंग बम पड्यत्र के नेता थे। वह जापान चले गये थे और पी० एन० ठाकुर का नाम धारण करके बहा रूट रहे थे। गर्मी के पर्यटन केंद्र के उनके सहयोगी थे, भगवान सिंह ज्ञानी। केशोराम सम्बरवाल की एक बार भारत में राम बिहारी घोष के साथ भेट ही चुकी थी और उन्होंने अन्त में ‘ठाकुर’ के बारे में लालाजी के सदेह दूर किए थे।

जापान की ये घटनाएँ मुलाकात के सिलसिले का आरम्भ नहीं थी। दरअसल, यह तो उनके न्यूयार्क पहुंचने के शीघ्र बाद नवम्बर 1914 के बाद

ही आरम्भ हो गई थी। उनके एक साथी, प्रोफेसर विनय के० सरकार, डाक्टर चक्रवर्ती के घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किए जाने के लिए जिम्मेदार थे, जहाँ कई जमन-ममयक भाषण किए गए। लाजपत राय को भोजन, संगति और मारा वातावरण ही असुविधाजनक लगा और यह बात उन्होंने प्रोफेसर सरकार से स्पष्ट कर दी, जिनके साथ वह अन्य लोगों के जाने से पूर्व ही वहाँ से चले गये थे। एक जमन एक अप्रेज की मिट्टी की घनी हुई मूर्ति अपने साथ लाया था, जो उसने बहुत जोश के साथ भाषण करते हुए चबनाचूर कर दी। उस जगह से जाने से पूर्व लाजपत राय ने साफ-साफ कह दिया था कि उस जमन की गैर जिम्मेदार बातों तथा उसके भद्दे काय के साथ उनका कोई वास्ता नहीं था। उन्होंने अपने रवैये के बारे में किसी का सदेह म नहीं रहने दिया था। उन्होंने कहा

“मैं एक भारतीय देशभक्त हूँ और अपने देश के लिए स्वाधीनता चाहता हूँ। मुझे जमनो के साथ कोई सहानुभूति नहीं है और न ही मैं उनके विरुद्ध हूँ। बतमान हालात पर विचार करते हुए हम इसे बेहतर समझेंगे कि हम ब्रिटिश साम्राज्य में रहते हुए स्वशासित हों, न कि उस साम्राज्य से अलग हो और किसी अन्य राष्ट्र के अधीन हो जाए।

“मेरी सदा से ही यह कट्टर धारणा रही है और मैं इस सिद्धांत को मानता हूँ कि विदेशी सहायता से प्राप्त की गई आजादी प्राप्त करने योग्य नहीं होती।”

कुछ दिन पश्चात और फिर वी० के० सरकार द्वारा उन्हें मोपाल के मौलवी बरकत-उल्ला में मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, जा टोकियो विश्वविद्यालय में फारसी के अध्यापक थे और जिनके बारे में विचार था कि उ होने हरदमान के साथ मिलकर गदर पार्टी की स्थापना की है। इस भेंट और व्यक्ति के बारे में लाजपत राय ने लिखा है

‘थोड़े समय बाद प्रोफेसर सरकार ने बरकत उल्ला के साथ भेंट की व्यवस्था की। हमने उनके साथ कई बार भेंट की और उन्होंने मुझे बताया कि उन्हें भारत में भारी विद्रोह होने की आशा है, एक तिथि निर्दिष्ट कर दी गई है और हर चीज पूरी तरह तैयार है। उन्होंने यह भी बताया कि बाबल के अमीर उनके साथ हैं और मुझे उनसे माय सहयोग करने हुए इरान की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि भारत तीन महीना में स्वतंत्र हो जाएगा। मैं

उहें 'बगलोल' कहता था, जिसका अर्थ था कि वह व्यक्ति बहुत अधिक आशावादी और एक प्रकार का भ्रूष था। मैं उहें बताया कि जा कुछ उन्होंने कहा है उसमें मुझे रती भर विश्वास नहीं है और यह भी कि मैं भारत में न अमीर का शासन चाहता हूँ और न जमनो का। और ब्रिटिश शासन के साथ मुझे कितनी भी घृणा क्यों न हो मुझे इन हालात में यह विश्वास नहीं है कि यदि ये शक्तियाँ ब्रिटेन को पराजित कर दें, तो भारत उन विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करने योग्य है। उन्होंने मुझे वापस बताया और भेद की अन्य बातें बताने से इन्कार कर दिया। फिर भी हम मित्रों के समान वहाँ से रवाना हुए। उनकी सूझ के बारे में मरी कोई अच्छी राय नहीं थी, परन्तु उनकी देश भक्ति तथा चरित्र बहुत उच्च कोटि का था। बाद में हम कई बार मिले, परन्तु उन्होंने मुझे और कुछ नहीं बताया।"

भोपाल के उन मौलवी की दयालुतादारी और पक्की देशभक्ति की उन्होंने बाद में सदा ही बदर की और उनके मन में उनके प्रति बड़ा आदर था, और जब उनके देहावसान की सूचना मिली, तो उन्होंने 'द पीपुल' में उन्हें हार्दिक श्रद्धाजपि अर्पित की।

उहें कुछ जमनो से मिलने का अवसर भी मिला। प्रोफेसर सरकार के सहयोग से एक जमन प्राफेसर के साथ एक भोज के अवसर पर भेंट हुई, जिसने बाद में बातचीत के दौरान शिकागो में बताया कि उनके कई जमनो के साथ सम्पर्क है। परन्तु लालाजी को प्रोफेसर सरकार की भूमिका सदा ही बहुत रहस्यमयी लगी।

हेरम्ब लाल गुप्त ने लगातार प्रयत्न किए कि भारत-जमन योजनाओं के लिए लालाजी का सहयोग प्राप्त किया जाए। उनकी मुलाकात फरवरी 1915 के आरम्भ में यूवाक में हुई थी।

"अन्तिम दिन प्रातः ही जब मैं वाशिंगटन जान के लिए रवाना होने का था, एच० एल० गुप्त मुझसे मिलने आये, मेरे पास अपने कमरे में बात करने के लिए समय नहीं था, इसलिए वह टैक्सी में मेरे साथ ही बैठ गये और हम इकट्ठे ही पैसिलवेनिया रेलवे स्टेशन चले गए। उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि वह जमन सरकार के विश्वास पात्र हैं और उहोंने यह जानना

चाहा कि क्या मैं उनके साथ सहयोग कर सकता हूँ। मैंने इसका उत्तर न दे दिया। उन्होंने मेरे साथ फिर किमी स्थान पर भेट करने का वायदा किया।"

एच० एल० गुप्त उन्हें फिर शिकागो में मिले

"उन्होंने मेरे साथ बहुत लम्बी मन्त्रणा की, शायद दो बार। उन्होंने मुझे उनके साथ सहयोग करने के लिए सहमत करने का प्रयत्न किया और यह बताया कि यह अवसर बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने मुझे बताया कि जमन उत्सुक है कि मैं उनका साथ दूँ और वह मेरी सलाह मानने को तैयार हैं, उन शर्तों पर जो मैं रखना चाहूँ। मैंने उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी और उस आन्दोलन के साथ किसी प्रकार का संबंध रखने से इन्कार कर दिया। मैंने उन पर इस इच्छा के लिए बल दिया कि जो धन उन्हें जमनो से प्राप्त होता है, उसमें से कुछ धन शिक्षा पर और अमरीका के दक्षिणी राज्यों में भारतीयों के लिए बस्तियाँ बसाने पर खर्च किया जाए, जो मुख्य तौर पर भारतीय राजनीतिक शरणार्थियों के लिए हो।"

दृढ़ रहने वाले उस क्रांतिकारी के साथ अन्तिम भेट

"गुप्त के साथ मेरी अगली भेंट लास एंजिल्स में शिकागो की बैठक के कुछ दिन पश्चात् हुई। वह विशेष तौर पर मुझसे भेंट करने आये थे। अपने पक्ष के लिए मेरा समयन प्राप्त करने का यह उनका अन्तिम यत्न था। वह चाहते थे कि मैं स्वाधीनता की एक घोषणा पर हस्ताक्षर कर दूँ, जिसे वे लोग जारी करना चाहते थे और जिसमें उनका प्रस्ताव उन भारतीय सैनिकों का उपसाने का था, जो फ्लैडस में लड़ाई लड़ रहे थे कि वे विद्रोह कर दें। एक बार फिर उन्होंने मुझे सारे सगठन का नेता बनाने की पेशकश की और मुझे बताया कि जमन नेताओं ने अपने दूतावासों को विशेष निर्देश दिए हैं कि वे मेरा समयन प्राप्त करने का प्रयत्न करें और यह कि वे लोग वही सब करने को तैयार हैं, जो मैं चाहूँगा। एक बार फिर मैंने इन्कार कर दिया और अंत में वही सुझाव दिया, जो भविष्य में प्रचार के लिए तथा उन्हें और अन्य लोगों के लिए शरण की व्यवस्था करने के लिए दिया था। उन्होंने वायदा किया कि यदि संप्रवृत्त हो सका, तो इस उद्देश्य के लिए कुछ धन अलग से रखा जाएगा और सबत दिया कि शायद वह मुझे सौंप दिया जाए। कुछ दिन बाद उन्होंने फर्जी नाम से तार दिया कि ऐसा समय

नही हो पाया। गुप्त के साथ वह मेरी अन्तिम भेंट थी। बाद में अमरीका से जापान के लिए रवाना हो गया।

“मेरे लिए यह विश्वास करने का कारण है कि राम चन्द्र ने उन्हें मेरे मुझाव के विरुद्ध राय दी थी।”

हरम्ब साल गुप्त का जापान में हुई उन कई घटनाओं के साथ सबंध था, जो नए सम्राट के राज तिलक के पश्चात् दिए गए भारतीय भोज के बाद वहाँ घटी थी। लाताजी की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुई उनकी आत्मकथा के अन्त में हम पढ़ते हैं

‘जस ही भोज समाप्त हुआ, दो भारतीय क्रांतिकारियों को, (दोना ही बगाली थे) जो मुख्य तौर पर भोज की व्यवस्था करने के लिए जिम्मेदार थे नोटिस दे दिया गया कि वे पाँच दिन के अन्दर जापान में चले जाए। दो पुलिस कास्टेबल उनकी हर समय निगरानी करने पर नियुक्त कर दिए गए। इससे भारतीय तथा जापानी लोगों, दोना में ही भारी रोष उत्पन्न हुआ। लगभग मार जापानी समाचार पत्रों ने इस आदेश की निंदा की और उन राजनीतिक शरणार्थियों द्वारा शरण लेने के अधिकार का उल्लंघन किए जाने की बड़ी आलाचना की जिनका यूरोप के लोग बहुत आदर और सम्मान करते थे। प्रमुख जापानी समाचार-पत्र तथा अन्य प्रमुख लोगों का एक प्रतिनिधि मण्डल पुलिस प्रमुख से मिला, परन्तु उसने यह कहकर पिण्ड छुड़ा लिया कि यह आदेश विशेष विभाग द्वारा जारी किया गया है। प्रधान मंत्री काउंट ओकूमा उस समय बीमार हान के कारण अपन कमरे में ही थे। उन्होंने कहा कि मुझे इस आदेश की कोई जानकारी नहीं है और मैं इसे रद्द नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना विदेश मंत्री का अपमान होगा। इस प्रकार जापानी राजनीतिज्ञ ने इस आदेश से प्रभावित होने वाले भारतीयों के बचाव के लिए एक और तरीका ढूँढ लिया। अन्तिम दिन सायंकाल व भारतीय जिनका दो कास्टेबल पीछा करते थे, जापान की ससद के एक प्रमुख सदस्य से मिलने उनके पास गए। वे तो अदर चले गए, परन्तु पुलिसवाले बाहर ही रहे। कुछ समय के बाद पता चला कि दोना भारतीय किसी और द्वार से बाहर निकल गए थे और गायब थे। वे कभी गिरफ्तार न हो पाए। उनमें से एक तो कुछ समय बाद अमरीका पहुँच गये और दूसरे जापान

में ही रहे और यदि मेरी जानकारी ठीक है, उ हाने सम्मानित जापानी महिला से शादी करली है।”

जो व्यक्ति जापान में ही रह गये थे और गुप्तवास में रहे, परन्तु जिन्होंने बाद में जापान में निश्चल जीवन बिताया, वह राम बिहारी उफ ठाकुर थे। शीघ्र ही उन्होंने जापान के लोगों में काफी रसूख पैदा कर लिया था। दूसरे व्यक्ति हेरम्ब सात गुप्त थे, जो अमरीका लौट आये, परन्तु वह अपना महत्व छोड़ बड़े और भारत जमन योजना तथा जमन काय के लिए विश्वास पात्र प्रतिनिधि न रहे, उनका स्थान डॉक्टर चन्द्रवर्ती न से लिया। राम बिहारी के पास भी काफी धन था और जब वह छिपे हुए थे, उन्हें यह कानिबारी धन सकट टल जाने तक सुरभापूवक रखना था। इसके लिए उन्होंने लालाजी तथा सब्बरवाल दोनों से सहायता मागी तथा दोनों ने ही उनकी सहायता की। काफी अच्छी रकम—साढ़े उन्नीस हजार येन—लालाजी के पास सुरक्षित रही, जो उन्होंने अमरीका से ठाकुर को भेजी, जब यह विश्वास हो गया कि वह कुछ लोगों की माफत यह धन सुरक्षित रूप से प्राप्त कर लेंगे।

लालाजी ने स्पष्ट तौर पर मञ्चे मन से त्रातिकारियों की वे याजताए स्वीकार न की, जो जमन या किसी अन्य विदेशी सहायता पर निर्भर करती थी। उन्होंने कई सच्चे त्रातिकारियों की सकट के समय सहायता की। ठाकुर सकट के समय अपने धन के लिए सुरभा चाहते थे। कुछ समय पश्चात एक अय त्रातिकारी एम० एन० राय को यमिमको में सहायता की आवश्यकता थी, क्योंकि वह उन दिना नगभग वेसहारा थे और यह लालाजी ही थे, जिन्होंने उनकी सहायता की, जिन प्रकार उन्होंने अन्य कई त्रातिकारियों की कठिनाई के समय की थी और उन्हें वह धन दिया जिस की उन्हें आवश्यकता थी।

यह है त्रातिकारियों के साथ लालाजी के मबध की सक्षेप की कहानी, इसका उद्देश्य केवल यह बताना है कि युद्ध और युद्ध के दौरान भारतीय त्रातिकारियों की योजनाओं के प्रति लालाजी का दृष्टिकोण क्या था। इसका उद्देश्य इन मम्पकों का पूण ब्यौरा देना नहीं। लालाजी त्रातिकारी आन्दोलनो तथा गोपनीय सगठना का गूढ और सावधानीपूवक अध्ययन करते थे। उनकी

पुस्तक 'रिप्लेवशंस आन रिवाल्यूशन'* म, जा उन्होंने अपनी पत्रिका व लिए लिखी थी, उनके ध्यवितगत सम्पर्कों और आंतरिक ज्ञान का सारगर्भित संक्षिप्त वर्णन दिया गया है, वह आज भी अध्ययन के उपयुक्त है। उन्होंने अपन इस्तेमाल के लिए मादलाशत के तौर पर कुछ विवरण भी लिखा, जा प्रकाशन हेतु नहीं था। यह विवरण उनके प्रकाशक मित्त श्री डब्ल्यू० बी० ह्यूदाख के पास मुहरबंद लिफाफे में सुरक्षित रहा। यह विवरण भारतीय क्रांतिकारियों के बारे में था। इसमें कई भारतीय क्रांतिकारियों के बारे में स्पष्ट टिप्पणी प्राप्त होती है, जा सारी की सारी सराहना करने वाली नहीं है।**

*यह भाग 'रीप्लेव' व 'साजपत राय अक' स लिया गया है।

**ह्यूदाख पाण्डु-लेख को श्री बी० एम० चोगी ने सन्धारित तथा प्रकाशित किया है और पुस्तक का नाम है—आटा कायाथॉफिस राइटिंग्स आफ साजपत राय।

42. निर्वासित राजदूत

उन्हें घर छोड़े बीम महीने हा चुके थे, जब कि मूल याजना छ मास की यात्रा की थी। युद्ध लगभग डेढ़ वष से चल रहा था और कोई भी नहीं कह सकता था कि यह युद्ध कितने महीने या कितने वष और जारी रहेगा। वह एक बार फिर अमरीका पहुंच गये थे। इस बार थोड़े समय के लिए नहीं, बल्कि काफी समय के लिये ठहरने का कार्यक्रम था। भारत लौटना सभव दिखाई नहीं देता था। बाद की घटनाए स्पष्ट तौर पर यह व्यक्त करती हैं कि यदि उन्होंने भारत लौटने का प्रयत्न भी किया हाना, तो सभव था कि उन्हें लौटने की आज्ञा न दिलाई जाती, क्योंकि 'युद्ध विराम' के कई माम बाद भी उन्हें प्रवेश-पत्र (वीसा) प्राप्त करने में काफी कठिनाई हुई थी। दरअसल, शांति स्थापित होने के बाद भी यह कठिनाई हुई थी। उन्होंने देखा कि वस्तुतः वह निर्वासित थे और राजनीतिक शरण के लिए वह जापान के मुकामसे अमरीका को प्राथमिकता दे रहे थे।

इस प्रकार 1915 के अन्त में युद्ध काल का यह निर्वासित अमराका लौट आया और उन्होंने उस परिस्थिति के अनुसार काम करने के लिए तैयारी आरम्भ कर दी। अमरीकना तथा अमरीका में भारतीय अधिको की विशेष समस्याओं के अध्ययन की चर्चा तो वह अमरीका के बारे में लिखी गई अपनी पहली पुस्तक में जापान जाने से पूर्व ही कर चुके थे। अब उन्होंने अपनी शक्तिविधि का रुख भारतीय समस्या के बारे में अमरीकी लोकमत को जानकारी देने की आर भोड दिया, ताकि वह अमरीकी महानुभूति प्राप्त कर सकें, जो यथासभव भारत के हित के लिए इस्तेमाल हो सकें। अब वह अमरीका में उसी प्रकार थे, जैसे कुछ समय पूर्व हंगरी का नेशमकन-निर्वासित सूई बौसय था, जिनका अपन देग के हित के लिए अपना जीवन अपण कर दिया था। वह अपने पराधीन लागी की ओर से अमरीका के स्वाधीनता पक्षद लागी में दूत के तौर पर कार्य कर रहे थे।

अमरीका के नगरों में विवेकानन्द न आ हलचल पन्ना की थी, उमक भ्रतावा ऐसा जा पटना था कि अमरीका के अच्छी तरह पड़े लिये तथा

उदारचित्त सागा ने लिए भारत का कोई अस्तित्व नहीं था। एक अमरीकी स्कूल की एक हिंदू छात्रा न लाजपत राय को बताया कि भारतीय इतिहास उनके पाठ्यक्रम में शामिल है, परन्तु अध्यापिका की आर से उस विषय को छोड़ दिया जाता है। छात्रा द्वारा यह पूछे जाने पर कि वह भारतीय इतिहास के बारे में एक शब्द भी क्यों नहीं कहती, तो अध्यापिका ने उत्तर दिया कि भारतीयों में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं की, इसलिए इतिहास में उनके वर्णन का कोई अधिकार नहीं। यह विशेष बात थी, यद्यपि अमरीका में हिटनी तथा लैनमन जैसे सस्कृत विद्वान भी हुए हैं।

ऐसी स्थिति का समाधान करने के लिए और विशेषकर भारत की स्वाधीनता की समस्या के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए लाजपत राय ने अपने आपको व्यस्त कर लिया। अमरीका अभी भी निष्पक्ष था, चाहे ब्रिटेन आजादी और प्रजातंत्र के नाम पर अमरीका का समर्थन प्राप्त करने के लिए पूरा प्रयास कर रहा था। भारत विरोधी प्रचार, जिसका उद्देश्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के शासन को जारी रखने को उचित बनाना था, इस प्रचार का अंग था। भारत में ईसाई प्रचार की गतिविधियाँ बहुत हद तक अमरीकी वित्तीय सहायता पर निर्भर करती थी और यह कार्य करने वाले कुछ प्रचारकों के लिए भारतीय इतिहास तथा सस्कृति का बहुत ही गलत ढंग से पेश करना और भारतीय लोगों को विधर्मी व्यक्त करना बहुत लाभकारी था। ऐसे स्वार्थी लोग अमरीकी लोगों के सामने भारत के बारे में नहीं तस्वीर पेश करने के रास्ते में बाधक थे। विशेषकर युद्ध काल में अमरीका में ब्रिटिश प्रचार को देखते हुए भारतीय दृष्टिकोण पेश करने की आवश्यकता पहले से अधिक थी और चूँकि ब्रिटेन हर स्थान से समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था, लाजपत राय ने इस अवसर को उचित समझा कि भारतीय प्रश्न का आगे लाया जाए। निर्वासित नेता ने बहुत शीघ्र सम्पर्क पदा कर लिया। भारत के इस राष्ट्रवादी नेता में कोई ऐसी सबव्यापक अथवा महानगरीय बात थी, जिसमें वह विभिन्न राष्ट्रीय तथा भसला के लोगों में अपने को घुला मिला लेने थे। उनके प्रजातान्त्रिक तथा यथायथादी ढंग में वह विशेष अपील थी, जो खासकर अमरीकन जैसी ही थी जिनकी महायत्ना वह डढ़ रहे थे। यहाँ तक कि वह कभी हृदय से कोई असुखद बात उनके मुँह पर बह देते और उनके

गोरव की धज्जिया उड़ा दन, वे उस व्यक्ति की ईमानदारी का ताड जान और उनके धुंधल कर दन वाले व्यवहार के कारण उन्हें और अधिक पसंद करते और उनकी आरसे सचे उग म नम, परम्परागत झूठी बाता का अलग किए जाने का अच्छा समझते। सुयोग्य आपरिग पत्रकार फ्रान्स हैकिट, जो उन दिना अमरीका के बुद्धिवादी साप्ताहिक 'द यू रिपब्लिक' के एक कमचारी थे स्मरण करते हुए कहते हैं कि उनका परिवय हान के घाडी देर पश्चान, साजपत राय ने कहा —

आप जानत हैं कि भारत मे आपरिग भोग ता हमार लिए भ्रंशज मे भी बुरे हैं।”

श्री हैकिट का कहना है, “मुझे यह सुनकर आश्चय नही हुआ, क्योंकि जिन लोगो को नई नई सत्ता प्राप्त होती है, वे निरकुश हो ही जाने हैं, परन्तु उन्होने जो बात कही थी, उसमे मजे की बात यह थी कि उन्होने किस प्रकार बिना लाग-सपेट के यह बात कही थी। साजपत राय सच बहने से टलते नही थे।”

साजपत राय ने विमोपकर अतिवादी नेताओ, प्रगतिशील पत्रकारो और विश्वविद्यालयो के व्यक्तियो के साथ मैत्री बनाई। शीघ्र ही सावजनिक बकना के तौर पर उनकी माय बहुत बढ गई और उन्होने समाचार पत्रा के लिए भी काफी लिखा। जैसा कि हम देखेंगे, इसका प्रमुख कारण भारत के स्वाधीनता आंदोलन के बारे में उनकी पुस्तक थी, जिमे वह 'गण इडिया' कहते थे। बुद्धिवादी, उदारचित्त तथा अतिवादी पत्रिकाओ के लिए वह भारत तथा अन्य एशियाई देशो के बारे मे लिखी गई पुस्तको की समीक्षा करते थे या उन पुस्तको की जो पूर्वी दशा से मशधित विषयो के बारे मे होती थी—इन समीक्षाओ के कारण उन्हें सम्पक बनाने मे सहायता मिली और उनके बारे मे काफी खेत्तो की जानकारी हो गई।

जब साताजी पूरी तरह व्यवस्थित हो गए और उन्होने भारतीय स्वाधीनता के लक्ष्य को लेकर सुनियोजित तथा विधिवत काय आरम कर दिया तो सहायता के लिए उन्हें कुछ महायका की तलाश हुई और उन्हें एन० एम० हाडिबर जमे वफादार और निष्ठावान सहयोगी मिले, जो उस समय डाक्टरी के छात्र थे।

अक्टूबर 1915 में राजपूत राय ने अमरीका में इंडियन होम रूल लीग की स्थापना की और स्वयं उसके अध्यक्ष बने। भारत के लिए अधिक मर्पण करने वाले जे० टी० सडरलैंड उस लीग के अध्यक्ष थे (सडरलैंड ने लालाजी के अमरीका से आ जाने के बाद भी कार्य जारी रखा)। इस संगठन के अन्य महयोगियों में वे० डी० शास्त्री, एन० एस० हार्डिंकर सचिव के तौर पर और आर० एल० बाजपेयी पाषद के तौर पर थे।

जनवरी 1917 से लीग ने अपनी एक छोटी सी मासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'यंग इंडिया'। पत्रिका के कार्यालय से भारत की घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत से लग 1400 डाकवे आने लगे, इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लालाजी ने वहाँ एक सूचना केंद्र स्थापित कर दिया और उसके बाद एक सहायक संगठन के तौर पर 'यक्स यूनियन' की स्थापना कर दी।

लीग, यंग इंडिया तथा सूचना केंद्र, भारत का पक्ष संगठित ढंग से विश्व जनमत के समक्ष पक्ष करने का पहला प्रयत्न था, इसलिए विदेशों में भारत के प्रचार के इतिहास में यह विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे पूर्व विदेशों में भारतीय प्रचार थोड़ा बहुत इंग्लैंड तक सीमित था, जहाँ इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति, बँडरन के नेतृत्व में कांग्रेस के दृष्टिकोण का प्रचार करती थी और वह भी प्रमुख तौर पर अपनी पत्रिका 'इंडिया' के माध्यम से। 'यंग इंडिया' का सम्पादन राजपूत राय स्वयं करते थे और उसके प्रबंध में एन० एस० हार्डिंकर उनकी सहायता करते थे। यह बहुत छोटा सा प्रयत्न दिखाई पड़ता था, परन्तु इसका प्रभाव बहुत व्यापक था। बहुत बड़े निडर पोल के समान नहीं, परन्तु छोटे आकार के तथा किरायती युद्धपोत के समान।

लीग तथा 'यंग इंडिया' अधिकृत तौर पर इंडियन नेशनल कांग्रेस से सम्बद्ध नहीं थी, यद्यपि ऐसा सहायक उस स्थिति में जब कि कांग्रेस के दोना गुन 1916 के लखनऊ अधिवेशन में फिर से एक हो गए थे, राजपूत राय के लिए कठिन न होता। अमरीका में उनका कार्य अनधिकृत रहा, परन्तु भारत में यदि किसी बड़े नेता ने उनके साथ जबानी सहानुभूति में बढ़कर कुछ किया, तो वह थे बाल गंगाधर तिलक, जो 1918 में ब्रिटिश गवर्नर के

गौरव की धज्जिया उड़ा देते, वे उस व्यक्ति की ईमानदारी का ताड़ जाते और उनके शुद्ध कर देन वाले व्यवहार के कारण उन्हें और अधिक पसंद करते और उनकी ओर से खूबे ढंग से नम्र, परम्परागत झूठी बातों का अलग किए जाने को अच्छा समझते। सुयोग्य आयरिश पत्रकार फ्रांसिस हैकिट, जो उन दिनों अमरीका के बुद्धिवादी साप्ताहिक 'द यू रिपब्लिक' के एक कर्मचारी थे, स्मरण करते हुए कहते हैं कि उनका परिचय होने के थोड़ी देर पश्चात्, लाजपत राय ने कहा —

"आप जानते हैं कि भारत में आयरिश लोग तो हमारे लिए अजेजों से भी बुरे हैं।"

श्री हैकिट का कहना है, "मुझे यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि जिन लोगों को नई-नई सत्ता प्राप्त होती है, वे निरकुश हो ही जाते हैं, परंतु उन्होंने जो बात कही थी, उसमें मेरे की बात यह थी कि उन्होंने किस प्रकार बिना लाग लपेट के यह बात कही थी। लाजपत राय मच कहने से टलते नहीं थे।"

लाजपत राय ने विशेषकर अतिवादी नेताओं, प्रगतिशील पत्रकारों और विश्वविद्यालयों के व्यक्तियों के साथ मैत्री बनाई। शीघ्र ही सावजनिक वक्ता के तौर पर उनकी मांग बहुत बढ़ गई और उन्होंने समाचार पत्रों के लिए भी काफी लिखा। जैसा कि हम देखेंगे, इसका प्रमुख कारण भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के बारे में उनकी पुस्तक थी, जिसे वह 'एन इंडिया' कहते थे। बुद्धिवादी, उदारचित्त तथा अतिवादी पत्रिकाओं के लिए वह भारत तथा अन्य एशियाई देशों के बारे में लिखी गई पुस्तकों की समीक्षा करते थे या उन पुस्तकों की जो पूर्वी दशा से संबंधित विषयों के बारे में होती थी—इन समीक्षाओं के कारण उन्हें सम्पर्क बनाने में सहायता मिली और उनके बारे में काफी धोला की जानकारी हा गई।

जब लालाजी पूरी तरह व्यवस्थित हो गए और उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के नए को लेकर मुनियोजित तथा विधिवत रूप आरम्भ कर दिया तो सहायता के लिए उन्हें कुछ सहायकों की तलाश हुई और उन्हें एन० एम० एडिक्टर जेम्स बफादार और निष्ठावान सहयोगी मित्र, जो उस समय डॉक्टरों के छात्र थे।

नवम्बर 1915 में लाजपत राय ने अमरीका में इंडियन होम फ्ल लीग की स्थापना की और स्वयं उसके अध्यक्ष बने। भारत के लिए अथवा सघर्ष करने वाले जे० टी० सडरलैंड उस लीग के अध्यक्ष थे (सडरलैंड ने लालाजी के अमरीका से आ जाने के बाद भी कार्य जारी रखा)। इस संगठन के अन्य सहायियों में क० डी० शास्त्री, एन० एस० हार्डिंकर सचिव के तौर पर और आर० एल० बाजपेयी पाठक के तौर पर थे।

जनवरी 1917 से लीग ने अपनी एक छोटी सी मासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'यंग इंडिया'। पत्रिका के कार्यालय से भारत की घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत से लोग 1400 श्राइवे आने लगे, इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लालाजी ने वहाँ एक सूचना केंद्र स्थापित कर दिया और उसके बाद एक सहायक संगठन के तौर पर 'बक्स यूनिजन' की स्थापना कर दी।

लीग, यंग इंडिया तथा सूचना केंद्र, भारत का पथ संगठित ढंग से विश्व जनमत के समक्ष पेश करने का पहला प्रयत्न था इसलिए विदेशों में भारत के प्रचार के इतिहास में यह विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे पूर्व विदेशों में भारतीय प्रचार बोझ बहुत इग्नड तक सीमित था, जहाँ इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति, बंडरन के मतत्व में कांग्रेस के दृष्टिकोण का प्रचार करती थी और वह भी प्रमुख तौर पर अपनी पत्रिका 'एशिया' के माध्यम से। 'यंग इंडिया' का सम्पादन लाजपत राय स्वयं करते थे और उसके प्रबंध में एन० एस० हार्डिंकर उनकी सहायता करते थे। यह बहुत छोटा सा प्रयत्न दिखाई पड़ता था, परन्तु इसका प्रभाव बहुत व्यापक था। बहुत बड़े निडर पौर के समान नहीं, परन्तु छोटे आकार के तथा विफायती गुद्धपोत के समान।

लीग तथा 'यंग इंडिया' अधिष्ठित तौर पर इंडियन नेशनल कांग्रेस से सम्बद्ध नहीं थी, यद्यपि ऐसा सहयोग उस स्थिति में जब कि कांग्रेस के दोना गुट 1916 के लखनऊ-अधिवेशन में फिर से एक हो गए थे, लाजपत राय के लिए कठिन न होता। अमरीका में उनका कार्य अनधिष्ठित रहा, परन्तु भारत में यदि किसी बड़े नेता ने उनके साथ जबानी सहानुभूति से बढकर कुछ किया, तो वह थे बाल गंगाधर तिलक, जो 1918 में बर्लिन-मिचिगन के

विषय मानहानि का मुकदमा लड़ने तथा हारने झलक गये थे। लाकमान्य तिलक का व्यक्तित्व हिमालय के समान बहुत ऊँचा था और सागर के समान गहरा जैसा कि गांधीजी न उन्हें पाया, फिर भी उनमें वही सबव्यापकता और विश्व-जागरिकता रही थी, जो लाजपत राम में थी और न ही उनको लाजपत राम जैसा अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव था। ब्रिटन की अपनी यात्रा के दौरान लाकमान्य को ब्रिटिश समाचार पत्रों द्वारा प्रचार सहायता प्राप्त करने में बहुत बड़ी गाँधाजा का मामला करना पड़ा था। शायद इसी अनुभव के बाद ही उन्हें लाजपत राम द्वारा किए जा रहे शानदार काय के महत्व का पता चला था। इंग्लैंड से लाजपत राम को भेजे गए पत्रों में तिलक ने उन्हें बहुत प्रोत्साहन दिया था और आपा सहायता देने का पक्का इस्तेमाल भी किया था।

डाक्टर एन० एम० हाट्टिकर स्मरण करते हुए कहते हैं कि अपने लोगों का लिखे गए कुछ पत्रों में उन्होंने कहा था कि धन की कमी के कारण लालाजी को अपने काम में काफी कठिनाई आ रही है और लाकमान्य न उनमें से कई पत्र देखे थे।

लाकमान्य में मिली सहायता बहुत ही उचित अवसर पर थी और यह कहना एक बहुत बड़ी समस्या है कि लाकमान्य से सहायता न मिलने की सूरत में अफ्रीका में इंडियन हाम ब्ल लीग अपना काम जारी रख पाती। एन० एम० हाट्टिकर इस बात का स्मरण करते हैं कि लालाजी लाकमान्य की कितनी कृतज्ञता महसूस करते थे।

लाकमान्य ने पहली बार पाँच हजार डॉलर भेजे थे (उस समय यह राशि लगभग 17 हजार रुपये के बराबर थी) युद्ध कालीन सेंसरशिप के कारण इस प्रकार पैसे भेजने में विशेष कठिनाई होती थी। इसी लिए ऐसा जान पड़ता है कि लाकमान्य न थीमती एनी वेस्ट से सहायता ली। अभी भी उनका मन सदेह-मुक्त नहीं था, इसलिए 1919 के आरंभ में उन्होंने लंदन से एक पत्र लिखा, जिसमें तिलक ने इच्छा व्यक्त की थी कि वह 'सुरत सूचना दे कि उन्होंने जो पाँच भेजे थे क्या वे तुम्हें मिल गए हैं।' सेंसर भी पत्रों से बचने के लिए 'पाँच' में 'पाँच हजार' का अर्थ निया गया था। जब उन्हें निश्चय हो गया कि 'पाँच' गुप्त नहीं हुए, तो उन्होंने एक हजार डॉलर और भेजे।

भारतीय हित के लिए एक और महत्वपूर्ण बात अमरीका में भारत की साख के लिए 1918 में टैंगोर की अमरीका की भाषण-यात्रा थी। यद्यपि स्पष्ट तौर से यह राजनीतिक मामला नहीं था, फिर भी इसमें अमरीकी चेतना में भारत का पहले के मुकाबले अधिक स्थान मिला। यदि तथा देशभक्त में भ्रेंट तो न हुई, परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं कि टंगोर की अमरीका यात्रा में लाजपत राय द्वारा सुनियोजित ढंग से किए जा रहे काय का सहायता अवश्य मिली।

लाजपत राय के होम रूल नीति प्रचार का परिणाम यह हुआ कि शांति सम्मेलन के अवसर पर अमरीकी सीनेट की विदेशी संबंध समिति ने समस्त भारत का पक्ष विधिवत पेश किया गया। सीनेटर डडले फील्ड मैलोन ने उस विवरण की सीनेट के ममक्ष प्रस्तुत किया। अन्य लोगों के साथ साथ सीनेटर नौरिस इस काय से सम्बद्ध थे। निस्संदेह, विवरण मुख्य तौर से लाजपत राय ने तैयार किया था। अगर लाजपत राय अमरीका में न होते तो ऐसा कभी न हो पाता।

एन० एस० हार्डिंकर ने बताया है कि भारत का पक्ष 'विदेशी संबंध समिति' में किस ढंग से पेश किया गया। ऐसा दिखाई पड़ता है कि लालाजी का समिति में अधिक विश्वास नहीं था और वह किसी ऐसे द्वार पर दस्तक देने का तैयार न थे, जिसके बारे में उन्हें विश्वास था कि वहाँ से सहानुभूति नहीं मिलेगी। परन्तु उनके कुछ सहयोगी, जिनमें स्वयं हार्डिंकर भी शामिल थे, सोचते थे कि इस अवसर को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।

ऐसा जान पड़ता है कि जब समिति की ओर से निमंत्रण कार्यालय में पहुँचा, हार्डिंकर वहाँ उपस्थित नहीं थे। लालाजी मौजूद थे और उन्हें यह जानकारी न थी कि समिति ने इस सम्बन्ध में निवेदन किया गया है। इस प्रकार अजीब स्थिति उत्पन्न हो गई थी और चूँकि वह अपने सहायको द्वारा किए गए काम से इन्कार नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें इसे स्वीकार करना पड़ा। निस्संदेह, युवा मित्र अच्छी तरह जानते थे कि इस मामले के माध्य केवल लालाजी ही निपट सकते थे, उनका कोई सहायक नहीं। समिति चाहती थी कि उसने सामन भारत का जो पक्ष पेश किया जाना है, वह दो दिन के बाद ही उस सुनेगी। इतनी कम अवधि में

भारत का समूचा पक्ष लिखना था तथा उसकी छपाई होनी थी। इसलिए लालाजी को मजबूरी में इस स्थिति में हस्तक्षेप करना पड़ा और ज्ञापन लिखने के लिए उन्हें केवल एक दिन दिया गया। वह मारी रात बठे यही काम करते रहे और अगले दिन बारह पन्नों का ज्ञापन छपकर तयार हो गया था।

पांडुलिपि प्रकाशक को सौंप दिए जाने के पश्चात् लालाजी ने अपने वकील मित्र डब्ले फीटड मैलोन में सम्पर्क किया और समिति के समझ पेश होने के लिए अपने साथ चलने के लिए सहमत कर लिया। इस प्रकार जिन लोगो ने यह स्थिति पैदा की थी कि लालाजी उसका सामना करें, उनमें उनके शरारती मुख्य सहायक हाडिकर के शब्दों में—“समिति के सामने यह काय श्री मैलोन की सहायता से आप पेश कर लीजिए”, कहकर वे स्वतंत्र हो गए, “ताकि यकान दूर करने के लिए शाम को नाटक देख सकें” और इसलिए वे यूयाक लौट गए।

अमरीका में भारत के पक्ष का बहुत व्यापक प्रचार हुआ तथा उसे बहुत समर्थन मिला जो उन परिस्थितियों के कारण संभव था। भाग्य की बात थी कि उनका पक्ष पेश करने के लिए अमरीकी लोगो में लाजपत राय भारत के दूत थे—बहुत ही योग्यता और आकर्षक व्यक्तित्व वाले दूत, जो केवल निर्वासित ही नहीं थे उन्होंने अपने विश्वास की खातिर बड़ी दृढ़ता से कठिनाइयां झेली थी।

सन् 1918-19 में प्रेसिडेंट विल्सन की आवाज सबसे शक्तिशाली थी। उनका नाम उन सच्ची तथा साहसी आत्माओं के लिए प्रकाश स्तम्भ था जो नए मशकन समारथी तलाश में थे, जहां व्यक्ति अधिक स्वतंत्र जीवन बिताए और अलग-अलग राष्ट्र अधिक शांति तथा मेल जाल से रह सकें। भारत से उन्हें एक विस्तृत पत्र भजा गया, जिसमें एम० गुणहृण्य अय्यर ने भारत का पक्ष काफी व्यापक रूप में पेश किया था। भारतीय समाचार पत्रों में अमरीका के उस स्वतंत्रता दूत द्वारा भेजे गए पत्रोत्तर की प्रतिध्वनि यूजती रही, यह स्वतंत्रता दूत, जो एक समय पर अमरीका में बड़े नामों को जिनमें अब्राहम लिंकन का नाम भी शामिल था, पीछ छोड़ने की स्थिति में हा गया था। शायद भारत के अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ताओं को अमरीकी परिप्रेक्ष्य में इस सारे मामले का युन महत्व का एहसास नहीं था।

परंतु इस पत्र का अमरीकी समाचार पत्रों में कुछ प्रचार हुआ, इसका श्रेय निश्चय ही राजपत राय द्वारा इसके लिए तथा भारतीय हित के लिए किए गए उनके काय को जाता है ।

हाडिकर इसी प्रकार के एक अय अवसर की चर्चा करते हैं जब एक सीनेटर ने जो भारत के हित में बोलना चाहते थे, लालाजी से सहायता मागी थी ।

लालाजी अमरीकी लोगों के बीच दूत थे, इसलिए उनकी गतिविधि का केंद्र वाशिंगटन नहीं था मकता था । उन्होंने सोचा कि उनके लक्ष्य के अधिक हित में यही था कि वह उदारवादी तथा अतिवादी और वामपंथी क्षेत्रों या विश्वविद्यालय के लोगों, पत्रकारों और ऐसे बुद्धिजीवियों में कार्य करे, जो उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवया अपना सकें और जिनमें लोकमन तैयार करने की कुछ क्षमता हो । उन्होंने मत्ताधारी लोगों में सफल करने का कोई प्रयत्न न किया । उन्होंने सोचा कि इसके लिए उपयुक्त समय नहीं आया था ।

भारत सरकार ने यह बात पक्की तरह मान ली थी कि राजपत राय न अमरीका में जा भी प्रकाशित किया है—पत्रिका, पुस्तिका अथवा पुस्तक—उसे भारत में आने की बिल्कुल आज्ञा नहीं देनी है । क्या ब्रिटिश प्रचारकों ने यह आरोप नहीं लगाया था कि वह एक जर्मन एजेंट थे ? ब्रिटिश सरकार ने उनकी पुस्तक 'यंग इंडिया' पर प्रतिबंध लगा दिया । इस मूखतापूर्ण प्रतिबंध का कमाण्डर जोशिया सी० वैजवुड ने हाउस आफ कामंस में बड़े नाटकीय ढंग से उल्लंघन किया । 'यंग इंडिया' विजयी रही, परन्तु प्रतिबंध और पुस्तक के बीच इस संधप में महत्वपूर्ण इस कहानी की चर्चा हम उस अध्याय में करेंगे, जो राजपत राय द्वारा इस अवधि में लिखी गई पुस्तक के उल्लेख के लिए है—वह विशुद्ध मानवीय स्वधो का जोखिम था—जिनमें दा मादृश्य आमाआ के बीच मैत्री संबंध पैदा कर दिए । राजपत राय तथा वैजवुड के बीच कई वर्षों की घनिष्ठ मैत्री की तो दोनों देशों में चर्चा थी, परन्तु इस बात का बहुत कम लोगों को पता था कि यह मित्रता कमांडर वैजवुड द्वारा भारतीय देशभक्त लेखक के लिए, जिन्हें उन्होंने देखा भी नहीं था, डटकर संधप करने से आरंभ हुई । उसके थोड़ी देर बाद वैजवुड अमरीका गये और वाट्टीमार, यूयाक में दाना की पहली भेंट हुई । इस मुलाकात से पूर्व भी ('यंग इंडिया' की घटना के बाद) उनके बीच पत्र-व्यवहार हुआ था । उसके बाद से उन्होंने पत्रा द्वारा एक दूसरे के कुशल-स्वैम, विचारा तथा कार्यों का पूरी

तरह ध्यान रखा। इस प्रकार एक अग्रेज के साथ उनकी उच्च वाटि की मित्रता अमरीका में हुई।

वैजवुड के साथ पत्र व्यवहार में हम एक नया सुझाव देघते हैं, जिम्मे लाजपत राय के पशिमा (ईरान) जाने की बात नहीं गयी है। वैजवुड का लिखे एक पत्र में हम देखते है कि लाजपत राय पशिमा जाने के प्रस्ताव से सहमत हैं, यदि कुछ शर्तें पूरी कर दी जाए। लाजपत राय के इस पत्र से शायद यह स्वत मिलता है कि युद्ध के प्रति व्यवहार में यह परिवर्तन उनका ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्ना में सहयोग देने के लिए महत्त जाना है। परन्तु 'रारपनिव' पत्र इस परिवर्तन का एकमात्र सकेत है, उनके सामजनिक भाषणा तथा लेखों में ऐसी कोई बात नहीं लिखाई देता। लाजपत राय के साथ पत्र व्यवहार में वैजवुड ने अपने इस सुझाव के बारे में क्या किया और ब्रिटिश विदेश विभाग तथा इंडिया आफिस के व्यक्तियों ने, जिनके साथ उन्होंने इस प्रस्ताव के बारे में अवश्य चर्चा की होगी, क्या रवया अपनाया, यह हमें पता नहीं है। हम तो केवल यही जानकारी है कि यह बात नहीं हुई। वैजवुड के प्रस्ताव के बारे में मैं लानाजी से कभी कुछ न सुना, मुझे तो इसके बारे में जानकारी उनकी मृत्यु के बाद उनके कागजातों से ही मिली। परन्तु एक बात मुझे अच्छी तरह याद है कि लानाजी एक बार बता रहे थे कि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद आगा खा ब्रिटिश विदेश विभाग से कह रहे थे कि उन्हें पशिमा में राजपत नियुक्त कर दिया जाए। इस प्रकार शायद उन्हें इस राजनयिक पद के लिए पत्रों के पीछे हुई गतिविधियों के बारे में जानकारी अवश्य थी।

भारत में वाइसराय नियुक्त होने से तुरन्त पहले मार्क्विम रीडिंग वाशिंगटन में ब्रिटिश राजदूत थे। जब रीडिंग ने वाशिंगटन में पद संभाला, तो वैजवुड ने उन्हें भारत के निर्वासित राजदूत का परिचय देते हुए निखा था।

इस वनात के दौरान अमरीका में लाजपत राय के अनेक मित्रों की बचा हो चुकी है। आदरणीय जे० टी० सडरलैंड वह व्यक्ति थे, जिन्होंने इस काम में उनकी सबसे ज्यादा मदद की थी। वह भारत आये थे और लाजपत राय से भेंट की थी, एक विवरण में, जो उन्होंने हस्ताक्षर के लिए, (मार्च 1916 के आरम्भ में) जा 'मग इंडिया' का प्रकाशक थे, तैयार किया (पुस्तक के लिए, साप्ताहिक के लिए नहीं), वह 'दलित बग' के उत्थान के लिए लाजपत राय के कार्यों का स्मरण

करते हैं, यानी चार कराड अछूनों अर्थात् 'दलित वर्गों' के बल्याण काय की ओर, वह कहते हैं

“दा वय पूव येने एक राष्ट्रीय सम्मेलन म भाग लिया, जो इस उद्देश्य से बुलाया गया था। उन्होंने इसकी अध्यक्षता की और एक जोरदार भाषण किया।”

यह उत्कृष्ट गतिविधि एक विशेष वर्ग के ईसाई प्रचारकों को अच्छी न लगी, क्योंकि वे इसे अपने अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप समझते थे और इसी कारण लाजपत राय के प्रति उनका व्यवहार अमैत्रीपूर्ण रहा। परन्तु आदरणीय जे० टी० सडरलैंड जो उन ईसाई लोगों से अधिक नेक ईसाई थे, यूनायटेड स्टेट्स के दिनों में लाजपत राय के बहुत ही पतिष्ठ मित्रों में से थे।

सडरलैंड स्वयं कई वर्षों से इस प्रश्न के उत्तर के लिए काय कर रहे थे कि “क्या भारत का स्वराज मिलना चाहिए?” परन्तु उन्हें कोई प्रकाशक मित्रों का यकीन नहीं था। उनके सामान्य प्रकाशक केवल धार्मिक साहित्य ही प्रकाशित करते थे, जो राजनीतिक दिलबस्पी का नहीं होता था और उनके विचार में अब कोई ऐसा साहित्य प्रकाशित करने का तैयार न होता क्योंकि उन पर अमरीका में ब्रिटिश प्रचार का प्रभाव था। उन दिनों अमरीका में सबसे अधिक गरमागरम प्रश्न यह था कि क्या अमरीका का यूरोप के युद्ध में हस्तक्षेप करना चाहिए और सडरलैंड के व्यवहार न उन्हें प्रभावशाली वर्गों में अप्रिय बना दिया। उनकी पुस्तक ‘इंडिया इन बांडेज एक ऐसा समकाल दस्तावेज थी, जो भारत में तीसरे दशक में प्रकाशित हुई।

एक अन्य अच्छे ईसाई, जि हान भारत के लिए लाजपत राय के काम में सहानुभूतिपूर्ण रुचि ली, आदरणीय जान हेनेस होम्स थे, जो यूनिटेरियन चर्च के एक प्रमुख व्यक्ति थे। वह शिकागो से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक ‘यूनिटी’ को सम्पादित करते थे। संभव है लाजपत राय की उनके साथ भेंट यूनायटेड स्टेट्स में अपना कार्यालय स्थापित करने के पूर्व उन दिनों हुई हो, जब वह शिकागो में रहते थे। ‘यूनिटी’ ने बाद में गांधी के नेतृत्व में आयोजित सामुदायिक आंदोलन के समय जो सेवा की, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

प्रकाशक बी० डब्ल्यू० ह्यूबार्ड, लेखक के साथ एक व्यावसायिक प्रबंध के अधीन ही काय नहीं कर रहे थे, वह एक विश्वसनीय मित्र भी थे और यही कारण है कि हमें उन भारतीय नातिकारियों के बारे में, जो खालाजी को

जाया तथा अमरीका में मिने थे, कुछ विस्तृत ज्ञान, जो प्रकाशन हेतु नहीं, बल्कि याददास्त व तो. पर लालाजी ने अपन हाथ से लिखे थे, एक बंद लिफाफे में उन विश्वसनीय मित्र के पास रहे। लालाजी के देहांत पर जो सावजनिक शोक समारोह हुआ, उसमें ह्यूवाय ने भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की और 1943 में वह पाहुलिपि जो उन्हें सौंपी गयी थी, जब किसी न उमकी मांग न की तो उन्होंने यह मुहरबंद लिफाफा यूयाव पब्लिक लाइब्रेरी का सौंप दिया, जिसे बाद 15 वर्ष बाद भारत के राष्ट्रीय पुरालेख विभाग ने प्राप्त कर लिया। ह्यूवाय का साप्ताहिक 'फ्रीमैन' उन अमरीकी साप्ताहिकों में से एक था, जिसे लालाजी विशेषतौर पर पसंद करते थे, परन्तु उमका प्रकाशन लालाजी के भारत लौटने के बाद आरंभ हुआ था।

लालाजी की मित्रता बहुत से पत्रकारों से थी, इनमें उदारवादी, अतिवादी तथा वामपंथी विचारों वाले व्यक्ति शामिल थे। ओस्वाल्ड गैरिसन विलाड उन बुद्धिजीवी, उदारचित्त पत्रकारों में थे, जो उन दिनों अमरीका में थे। अमरीका से लौट आने के पश्चात् भी लालाजी उनके साप्ताहिक 'द नेशन' की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे और शोक के साथ पढ़ते थे। 'द नेशन' के बाद एक अन्य साप्ताहिक था 'द यू रिपब्लिक', जिसके संपादकीय सदस्यों में अवश्य ही उनके कई मित्र थे। वाल्टर लिपमैन, फ्रांसिस हेव्किट, वह प्रतिभावान आयर्लिश, जिनकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है, आदि का पूरा उल्लेख करना आवश्यक है। हेव्किट परिवार के साथ लालाजी के सबंधों के परिणामस्वरूप साप्ताहिक के कार्यालय के बाहर भी उनमें भेट होती थी और वह अपनी डेनिश पत्नी, जना तावसाविग, की चर्चा किया करते थे, जो महिला स्वतन्त्रता की कट्टर समर्थक थी और इसी कारण उन्होंने अपने पति का नाम नहीं अपनाया था। 'देखिए, जब कभी किसी ने उन्हें श्रीमती हेव्किट कहकर संबोधित किया, तो आम तौर पर बड़ा तमाशा बनता था—क्या मेरा अपना नाम नहीं है, श्री राय?' वह रोप व्यक्त करती हुई कहा करती थी।

जान हेनेस होम्स और उनके साप्ताहिक की पहले ही चर्चा की जा चुकी है और यहाँ अपनी सूची में हम एक और साप्ताहिक का नाम जोड़ते हैं, जो इन सब में अधिक वामपंथी था—'द मासेज'। लालाजी का इन साप्ताहिक पत्रिकाओं के कार्यालयों में सदा स्वागत होता था और वहाँ उनके व्यक्तिगत संपर्क थे, जिनकी वह कदर करते थे और कभी-कभार उनके संपादकीय भोज में भी शामिल होते थे।

भारत के लागे के निर्वागित राजदूत के सबध थर्मिक सगठनो के क्षेत्रा तथा नीग्रो नेताओ से भी थे । वह राजनीति तथा मरखार के नेताओ के साथ सबध रखने के लिए बाई विशेषतौर पर उत्सु नही थे । परन्तु हमने सीनेटर मैलोन तथा सीनेटर नौरिस का उल्लेख पहले ही कर दिया है । डब्ले फील्ड मैलोन व्यवसाय से बकील थे और सभ्रवत भालाजी ने उनगे कई बार कानून के अपन पान के लिए सलाह भी ली हो । हाडिकर उनका नाम लते हुए कहते हैं "अमरीका मे हमारे बकील" । एक अन्य बकील मित्र थे—जान क्विन, जिनसे लालाजी ने अपनी बसीयत लिखत ममय सलाह ली थी । अमरीका मे प्रवास के दौरान उन्होने तीन बार बसीयत लिखी, पहली बसीयत 1916 मे तथा अन्तिम 1919 मे लिखी थी । जुलाई 1921 मे राष्ट्रीओ को लिखे पत्र मे विदेश मे रहने के दिना मे प्राप्त हुए सावजनिक धन के बारे मे उन्होने लिखा । लालाजी ने उस बसीयत की बर्चा भी की, जो उन्होने भारत के लिए खानगी की तैयारी के समय लिखी थी और जो उन्होने "जॉन क्विन, 31, नैसाऊ स्ट्रीट न्यूयार्क के पास जमा करवा बा है, जो मेरे एक मित्र तथा न्यूयार्क के विशेष योग्यता प्राप्त योग्य बकील है ।"

लालाजी वाशिंगटन मे अमरीकी सरकार के कणघारा से सपक बनाने के लिए अधिक प्रयत्न नही करते थे, परन्तु उन्हें अमरीका मे रहने वाले भारतीयों की समस्याओं की जानकारी थी और इन कारण आवश्यक था कि वह कभी-कभार अधिकारियों के द्वारा भी खटखटाए । इस प्रकार हमें उनके वागजात मे थर्म विभाग की कुछ छिट्ठिया मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि उन्होने भारतीय समुदाय के लोगों को कुछ क्षेत्रों मे बसाने के लिए प्रस्ताव भेजे थे और इन प्रस्तावों के बारे मे अन्तिम उत्तर हमें एक पत्र मे मिलता है (सहायक सचिव के कार्यालय मे), जो 15 मई 1916 का है, जिसमे उन्हें सचिव विल्सन के उत्तर के बारे मे बताया गया है ।

"आपके प्रस्तावों की, जिसे अमरीका द्वारा दी गई भूमि मे हिन्दुओं को बसाने की योजनाए भेजी गई हैं, कानूनी व्यवस्था किए बिना लागू करना संभव नहीं है और ऐसी कानूनी व्यवस्था करने की फिनहान कोई गुआइश नहीं है ।"

लागा के इस राजदूत के विश्वविद्यालयों तथा ज्ञान केन्द्रों में कई अच्छे सबध थे । इस दशक के नामों की सूची में जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, हम कोलम्बिया विश्वविद्यालय के विख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर र्. आर. ए. सैलिंगमैन का नाम जोड़ते हैं । भारत छोड़ने पर जब लाजपत राय के पुत्र, अमृत, ने

उच्च शिक्षा के लिए विदेश जान की इच्छा व्यक्त की, सालाजी ने उह सबसे पहले कोलम्बिया विश्वविद्यालय में मैलिगर्मेन के काम जाने के लिए कहा, मन्थपि बाद में अमृत जर्मनी चले गये। यह अनिवाय था कि वह राजनीति शास्त्र व कट प्रमुख लक्ष्मी से मिले। हम देखते हैं कि जे० ए० होउसन इस बात के लिए संद व्यक्त करते हैं कि वह "31 सारीय का आपके साथ अन्तर्राष्ट्रीय भाज में सम्मिलित नहीं हो सकते, क्योंकि मैं उस दिन यूयाक में उपस्थित नहीं हूँगा।" और उ हमें कहा है

"मुझे आशा है कि आप इस देश में प्रजापतिव नैति के पक्ष में नाकमत का प्रभावित कर रहे हैं, यद्यपि अमरीका में नाकमत का तात्पर्य कुछ अजीब सा है।"

के० वे० कावाकामी था, जो अन्तर्राष्ट्रीय संघदा के बारे में एक विशेषज्ञ थे और अमरीका में रहते थे, यहाँ उल्लेख किया जाना आवश्यक है। उसने हम विषय पर कई पुस्तकें लिखी थीं विशेषकर जापान की विदेश नीति पर। ये सभी पुस्तकें अमरीका में प्रकाशित हुई थीं। उनके युवा सहयोगी तथा प्रशासकों में एक एग्नेस स्मैडले भी थी, जिन्हें भारतीय क्रांतिकारियों के गहरी रुचि हा गई थी और भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के बारे में वह बहुत उत्सुक थी। बाद में उन्हें बीरेन्द्र चट्टोपाध्याय से बहुत स्नेह हा गया था (श्रीमती सरोजिनी नायड के भाई, जो बलिन में रहते थे) जो पहले विश्व-युद्ध में जर्मनी के सहयोगी और प्रमुख भारतीय क्रांतिकारी थे। एग्नेस स्मैडले ने बाद में चीन की क्रांति पर कई पुस्तकें लिखी तथा एक आत्मकथा भी उपन्यास 'डाटर आफ अर्थ' लिखा जिसमें राजपत राय, रणजीत सिंह के नाम से नायक थे। उनके जिन्दादिली के स्वभाव के कारण, सालाजी स्नेह में उहें पछी कहा करते थे। जब उहोंने भारतीय समाचार पत्रों के लिए लिखना आरम्भ किया, वह पक्कर अपने लक्षों के नीचे 'ए० (एलिस) बर्ड' लिखा करती थी।

उनके अन्तर में बैठे चिरम्याय, छात्र ने उहें इस ओर प्रवृत्त किया कि वह अपने निर्वासन का अच्छा प्रयोग करे। 'यूयाक' में उनकी आदत थी कि वह अपना काफी समय दो पुस्तकालयों में बिताते थे — न्यूयाक पुस्तकालय तथा कोलम्बिया पुस्तकालय। ये दोनों पुस्तकालय उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान करते थे और वह अक्सर उन्हें पुस्तकों के बारे में सुझाव दिया करते थे कि 'ऐसी नई पुस्तकें मागवाएँ, जो विशेषकर भारतीय इतिहास तथा राजनीति के बारे में तथा भारतीय हित

ने बारे में है। लाजपत राय का मुहरबद लिफाफा 'यूवाक पब्लिक' लाइब्रेरी का सौंपत समय निस्सदेह वी० डब्लू० ह्यूबाय के मन में वे सबध थे, जो उनके मित्र न 'यूवाक' में ठहरने के दौरान इस सस्या के साथ बना लिए थे।

अमरीका में उनके अनवरु हमवतना का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, विशेष कर भारतीय प्रातिगमियो वाले अध्याय में।

उनके निकट महयोगिया में निस्सदेह एन०एम० हार्डिकर थे, जिनके सस्मरणा के आधार पर हमने लाजपत राय के अमरीका के दिना का इतना विस्तृत बणन किया है। एक युवा महयोगी थे डी०एस०वी० राव, जो लाजपत राय के भारत लौटने के कुछ मास बाद ही भारत आ गये और उन्होंने अपने आपको उनकी सेवा के लिए समर्पित कर दिया। उम होनहार युवक की उस समय मृत्यु हुई, जब लाजपत राय जेल में थे।

अमरीका में उस समय रहने वाले गहन में भारतीय बुद्धिजीवी जो बुद्धिजीवी-व्यवसायो तथा उच्च अध्ययन में सगे हुए थे, स्वाभाविक ही उनके पास आते थे या ता अपने देश के एक महान नेता के लौर पर प्रशंसका के रूप में या उनसे सलाह या मागदशन पाने के लिए। डॉक्टर तारकनाथ दास, जो राजनीति विज्ञान के अध्यापक थे और जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता के अन्तर्राष्ट्रीय महत्व पर जार देत हुए बहुत कुछ लिखा, लालाजी के साथ बहुत निकट सम्पर्क में रहे। जब लाहौर में लालाजी ने माप्ताहिक पत्रिका 'द पीपुल' आरम्भ की, तो डॉक्टर तारकनाथ दास के लेख उममें नियमित रूप से प्रकाशित होत रहते थे। उनकी पत्नी अमरीकी थी और उ हात बाद में अमरीकी नागरिकता ले ली, परन्तु इसके कारण भारत की आजादी के बारे में उनका उल्साह कम न हुआ।

लालाजी ने यह बात बहुत गहराई से महसूस की कि भारत विज्ञान तथा टेक्नाजजी के क्षेत्र में बुरी तरह पिछडाता जा रहा है और उन्हें इस बात से विशेष सतोष हुआ, जब उन्होंने देखा कि उनके कई हमवतना ने इन क्षेत्रों में काफी योग्यता का परिचय दिया। इस सूची में हम डॉक्टर कोकटनूर, एन० बिस्सी और चीनी के टेक्नाजिस्ट आरगधर दाम का उल्लेख कर सकत हैं, जिनकी जमन पत्नी फेडा तीमर दशक के उत्तरार्ध में मुख्य तौर पर लालाजी के समर्थन के सहारे ही भारत आई थी। वह एक चित्रकार थी और लालाजी ने उन्हें कई चित्र बनाने का काम लेकर दिया, परन्तु उनका मन भारत में न टिक पाया और वह शीघ्र ही यूरोप लौट गईं। यहा जाकर उन्होंने अपनी कहानी एक पुस्तक के रूप में लिखी, जिसका

शीपक था 'मैरिड टू इडिया'। आर० वे० खेमका ने, जिन्होंने कलकत्ता में अपना व्यापार स्थापित कर लिया था, नालाजी के लौटने पर उनके साथ पत्र संपक रखा। एक और विशिष्ट नाम, जिसका उल्लेख हमें अवश्य करना चाहिए, वह है डा० आनंद के० कुमारस्वामी, जो भारतीय कला के विशेषज्ञ थे। वह केवल कला आलाचक्र ही नहीं थे, उन्होंने भारतीय कला के अपने ज्ञान को भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण और सही भावना के साथ अन्तरावलोकन के लिए इस्तेमाल किया। इस कार्य में उन्होंने सिस्टर निवेदिता का सहयोग लिया, जिनके लिए नालाजी के मन में सदा ही प्रणता थी।

इस प्रकार नाम गिनाते जाने में कोई त्रुटि नहीं। इन नामों से तो यह जानकारी अवश्य मिलती है कि नालाजी का सम्पर्क कैसे लोगों से था और वह किस प्रकार के सम्पर्कों की कदर करते थे। प्रत्येक व्यक्ति जिसको भारत की स्वाधीनता में रुचि थी, उनके पास आता था और वे सभी लोग, जो उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होते थे या उनकी स्पष्टवादिता से और कभी कभी घबरा देने वाली सरलता से या उनके स्वाभाविक प्रजातांत्रिक ढंग से, जिससे वह बड़े-छोटे सभी लोगों से पेश आते थे और जिनसे वेग तथा जाति के सभी भेद दूर हो जाते थे और सारे ससार को सगा बना लेते थे या उन उच्च आदर्शों के लिए जो बलिदान से भरपूर उनके जीवन की कहानी से। ऐसे सभी लोग अवश्य ही उस लक्ष्य के लिए उनके मित्र बन जाते थे, जिनकी खातिर वह सघन कर रहे थे। वह उस प्रजातंत्र की प्रतिमूर्ति थे, जिसे राबर्ट बन्स ने अपने एक गीत में गौरव दिया था और उनके प्रचारक थे वाल्ट व्हिटमैन। वे लोग उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे, जिन्होंने वाल्ट व्हिटमैन को ऊपर उठाया था और अभी भी उठा रहे थे, उनके नाम को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए, चाहे उनके तीर-तरीका में कई आन्तरिक विरोध थे। इस प्रकार वे लोग उनकी ओर आकर्षित होते थे, जिनकी भावनाएं उनके समान होती थी। उन्होंने उच्च सरकारी या वित्तीय क्षेत्रों में संपक पैदा नहीं किए परन्तु उन लोगों के साथ सम्पर्क पदा किए, जिन्हें प्रगतिशील नेताओं के रूप में मान्यता दी जा सकती थी और जो स्थापित व्यवस्था के साथ नहीं, बल्कि अधिकतर असहमता के साथ थे।

एक प्रगतिशील शिक्षा संस्था (धरुवा के लिए) विशेषकर जिसने उन्हें आकर्षित तथा प्रभावित किया परन्तु जिसके बारे में उन्होंने अमरीका के बारे में अपनी पुस्तक में उल्लेख नहीं किया, शायद उन्हें इस संस्था के बारे में जानकारी पुस्तक

प्रकाशित होने के बाद मिली थी वह थी 'यूवाक' की रइ स्कूल आफ सोशल साइंसेज। अपनी यात्राभा के आरंभ में उन्होंने छात्र तथा अध्यापक की जा दोहरी भूमिका अपनाई थी वह अमरीका में भी जारी रही। रंड स्कूल में उन्होंने इतिहास और राजनीति के बारे में अनेक भाषण सुने और अनक बार भाषण दिए। उदाहरण के तौर पर उन्होंने 'एशिया इन वर्ल्ड पालिटिक्स' विषय पर एक शृंखला में छ भाषण दिए।

इसी प्रकार की एक भाषण माला उन्होंने एक अ्य प्रगतिशील सभ्या के तत्वावधान में सम्पन्न की— वह थी अमरीकी महिला संघ।

अमरीका में प्रवास के दौरान उन्होंने एक भाषा सभ्या में नियमित छात्र के तौर पर अपना नाम दर्ज करवा लिया, ताकि प्रारंभिक स्पेनिश भाषा सीख सकें। यह अमरीका में रहने वाला के एक विशाल समुदाय की भाषा है। परन्तु उन्होंने कोई विशेष प्रगति न की और अतः अब उन्हें यूरोपियन भाषा के तौर पर अंग्रेजी का ही ज्ञान था।

भारतीयों के समान आयरलैंड निवासी भी ब्रिटन से स्वाधीन होने के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनके आन्दोलन को अमरीका में सहज ही सहानुभूति मिली और काफी ठोस समर्थन भी मिला, क्योंकि कई पीढ़ियों से काफी आयरलैंड निवासी सागर पार करके अमरीका आ बसे थे और वहाँ की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उन्हीं के समान शिकार होने के कारण आयरिश लोग को भारतीय उद्देश्य के साथ सहानुभूति थी। इसी बीच ईमोन डी बेलोरा जेल से भागकर मागर पार कर गये। साजपत राय की इन महान आयरिश नेता के साथ भेंट एक महत्वपूर्ण घटना थी और जिस प्रकार एन० एस० हार्डिंकर अपने सम्मरण में बताने हैं, दोनों नेताओं ने अपने अपने देश का आजादी दिलाने के उपायों के बारे में विचार-विमर्श किया।

की ओर स लेखा के लिए निमन्त्रण आए, यह 'यंग इंडिया' के कारण था, और यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी।

ब्रिटेन तथा भारत की सरकारों ने इस पुस्तक पर पाबन्दी लगाने में कोई समय न बचाया। परन्तु अन्तिम निणय उनका नहीं था—विनायक इन्द्रेन्द्र ने। वहाँ, कमांडर जे० सी० बैजवुड के मागदर्शन में इंडिया होम रुल लीग की मुद्रण-अनुमति से चुपचाप एक अंग्रेजी सम्बरण प्रकाशित कर लिया गया और उसकी प्रतियाँ सतत के सभी सदस्यों में बाँट दी गईं। स्वयं बैजवुड ने अंग्रेजी सम्बरण का प्राक्कथन लिखा, हाउस आफ कॉमन्स में पुस्तक की छपी प्रति अपने हाथ में सहस्रत हुए उठाने पुनिम को चुनौती दी कि यह जा अधिक-अधिक कर मरती है, कर स। इसके पक्ष में स्ट्राटफोर्ड याह व्यस्त हो गया और उनमें बारी-बारी प्रतियाँ बँटने में लगे।

उस समय बैजवुड लिबरल पार्टी के सम्म्य थे और कुछ ही समय बाद वह सेवर पार्टी में शामिल हो गए। परन्तु फिर भी वे इन्द्रेन्द्र के सम्म्य के बड़े समर्थक माने जाते थे, जिनके विचार कुछ मामला में अंग्रेजी के और गढ़ बढ़ा ही ब्यवहार विचारों के मांगते थे। उसी क्षण ही स मैगाओरिया आयोग का अपना काम समाप्त किया था, उस काम में उन्हें था स गहरी रुचि पैदा कर दी और उनकी अग्रगण्यता की स्थिति में ब्यवहार का उसी प्रगति में रुचि पैदा कर दी।

मुनाई थी। कई कारणों से लेखक ने अपना नाम गुप्त रखा और यह पुस्तक प्रकाशित हान तक वह इस निणय पर कायम रहे। प्रकाशक को प्याल आया कि भारत जैसे सुदूर विषय पर लिखी गई पुस्तक की, जिसके लेखक को उनके व्यक्तिगत भिन्न के अलावा बहुत कम लोग जानते थे, बित्री करना कठिन बात होगी। श्री ह्यूबाख ने इसलिए एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का इस पुस्तक से संबंध पैदा करने के बारे में सोचा। यह प्रमुख व्यक्ति इसकी भूमिका के लेखक की सामान्य भूमिका में था। श्री ह्यूबाख ने प्रोफेसर ए० यू० पोप को लिखा (जो लाजपत राय के घनिष्ठ मित्र थे, और जिन्हें आंदोलन में सहानुभूतिपूर्ण रुचि थी और वह एक जान माने लेखक थे जिन्होंने इस्लामी बला के बारे में कई कीमती पुस्तकें लिखी थी, जो बहुत अधिकृत मानी जाती थी) और सुझाव दिया कि बिस्टन चर्चिल से भूमिका लिपन के लिए कहा जाए। प्रोफेसर पोप इस सुझाव से सहमत हो गये और उन्होंने इसमें अनुसार चर्चिल का पत्र लिख दिया, परन्तु चर्चिल ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और कहा कि “वह भारत के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं रखते।” पुस्तक आखिरकार प्रकाशित हो गई जिस पर लेखक का अपना नाम था और इसकी भूमिका भारत के अमरीक, मित्रों में सर्वाधिक सच्चे तथा जोशीले मित्र आदरणीय डा० जे० टी० सजरलैंड ने लिखी। यह पुस्तक “मेरे परम प्रिय मित्र, पञ्जाब के श्री देवारका दास, एम० ए० को समर्पित है, जो अपने प्रात में (अक्टूबर 1912 में) सावजनिक जीवन का पतन हो जाने पर बिल टूट जाने से स्वगवासी हो गए। यह पुस्तक सावजनिक जीवन के प्रति अटल रवैये, उनके ऊँचे सिद्धांतों तथा उनके शानदार प्रचार के प्रति एक तुच्छ सी श्रद्धाजलि है।”

लेखक के परिचय की तिथि नकने, केल् फानिया, माच 1916 की है। अगस्त 1916 तक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी। उसे समाचार पत्रों में उचित स्थान दिया। अन्य लोगों के अलावा श्री एच० डब्ल्यू० नेविनसन ने पूरी लम्बाई की जोशीली समीक्षा लिखी जो उनके अमरीकी साप्ताहिक यू रिपब्लिक के लिए थी। छ मास से भी कम अवधि में पुस्तक के दूसरे संस्करण की मांग हो गई और यह अप्रैल 1917 में प्रकाशित हुआ, इसकी भूमिका नई थी। आरम्भ में अमरीकी प्रतिभिया बड़ी उत्साहजनक रही, यद्यपि पुस्तक का नाम भारत भेजा जा सका, न ब्रिटेन। लेखक को परिचित बनाने में भारत के उद्देश्य की महायत्ना मिली। कई सामाजिक तथा विश्व-विद्यालयों की ओर से भाषणा के लिए और समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं

43. 'यंग इंडिया'

लालजपत राय द्वारा अमरीका में लिखी गई अनन्व पुस्तको में से 'यंग इंडिया' सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर, पुस्तक के नाम के नीचे लिखा 'राष्ट्रीय आन्दोलन की आन्तरिक व्याख्या तथा इतिहास'—इस पुस्तक के विषय-अर्थ का सूचक है। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की एक व्याख्या (जिस बात के बारे में यह है) के तौर पर यह इसके प्रकाशन से चौथाई शताब्दी बाद तक जारी रही और इस विषय पर अन्य व्यापक साहित्यिक रचनाओं में इसका स्थान श्रेष्ठतम रहा। लेखक का इस आन्दोलन का आन्तरिक ज्ञान इसके विभिन्न चरणों तथा क्षेत्रों में, कांग्रेस के अन्दर तथा इसके बाहर और दला के प्रति निष्पक्ष रचना और उनके साथ गहरा सान्निध्य विचार, बस्तुनिष्ठ जाच, जिसके अनुसार उन्होंने भारतीय समस्या का अध्ययन किया, इस सबके कारण वह इस काम के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थे। सविधानवाद के प्रति कट्टर दृष्टता अहिंसक सत्याग्रह, आ कवादियों के बम तथा रिवाल्वर, सशस्त्र विद्रोह के प्रयत्न, इन सबकी अलग-अलग दृष्टिकोणा से व्याख्या और विश्लेषण—यह सब इतने उत्कृष्ट ढंग से किया गया है कि यह अद्वितीय बन गई है। कई प्रकार से 'यंग इंडिया' लालजपत राय द्वारा रचित सर्वोत्तम पुस्तक है। इस पुस्तक का नाम ही उनके विचार के सशक्त पहलू को व्यक्त करता है, जहाँ यंग इंडिया बार बार व्यक्त होने वाला अभिप्राय है। कुछ समय पश्चात् उन्होंने एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसका नाम 'यंग इंडिया' * रखा गया और बाद में भारत नौटन पर उनके भाषणा तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित पत्रों के संग्रह का नाम 'ए काल टू यंग इंडिया' रखा गया।

इस पुस्तक का इतिहास वर्णन योग्य है। 'यंग इंडिया' की कल्पना तथा रचना लालाजी के युद्ध काल के निर्वासन के पहले भाग में मुकम्मल हुई। यद्यपि पाण्डुलिपि लालाजी के कैलीफोर्निया के दिना में पूरा हुई, इतने कुछ भाग जापान में लिखे गये थे।

बी०डब्ल्यू० ह्यूबार्ड ने जा प्रकाशक थे यह कहानी सम्पन्न रूप में 30 नवम्बर 1928 को सिविल बलक, 'यूनायटेड स्टेट्स' में लालजपत राय के निधन पर शांति समारोह में

* यह मन्गलम गंधी द्वारा इस नाम की पत्रिका आरम्भ करने में १९३३ समय पूर्व की बात है।

मुनाई थी। कई कारणों से लेखक ने अपना नाम गुप्त रखा और यह पुस्तक प्रकाशित होने तक वह इस विषय पर बयान नहीं दिया। प्रकाशक का ध्यान आया कि भारत जैसे मुद्रा विषय पर लिखी गई पुस्तक की, जिसके लेखक का उनसे व्यक्तिगत मित्रों के अलावा बहुत कम लोग जानते थे, विपरीत करना कठिन बात होगी। श्री ह्यूबोर्न ने इसलिए एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का इस पुस्तक में सवध पैदा करने के बारे में साक्षात्। यह प्रमुख व्यक्ति इसकी भूमिका के लेखक की सामान्य भूमिका में था। श्री ह्यूबोर्न ने प्राप्ति १९०० यू० पी० को निम्न (जा लाजपत राय के घनिष्ठ मित्र थे, और जिन्हें आन्दोलन में सहानुभूतिपूर्ण रचि थी और वह एक जान मान लेखक थे जिन्होंने इस्लामी कला के बारे में कई कीमती पुस्तकें लिखी थी, जो बहुत अधिकृत मानी जाती थी) और सुझाव दिया कि विस्टर चर्चिल से भूमिका लिखने के लिए कहा जाए। प्राप्ति १९०० पाप इस सुझाव से सहमत हो गये और उन्होंने इसके अनुसार चर्चिल को पत्र लिख दिया, परन्तु चर्चिल ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और कहा कि "वह भारत के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं रखते।" पुस्तक आखिरकार प्रकाशित हो गई जिस पर लेखक का अपना नाम था और इसकी भूमिका भारत के अमरीकन मित्रों में सर्वाधिक सच्चे तथा जाशील मित्र आदर्शनीय डा० जे० टी० सैण्डर्स ने लिखी। यह पुस्तक 'मेरे परम प्रिय मित्र, पंजाब के श्री दवारका दास, एम० ए० का समर्पित है, जो अपने प्रात में (अक्टूबर १९१२ में) सावजनिक जीवन का पतन हो जाने पर दिल टूट जाने से स्वर्गवासी हो गए। यह पुस्तक सावजनिक जीवों के प्रति अटल रहिये, उनके ऊंचे सिद्धांतों तथा उनके शानदार प्रचार के प्रति एक सुष्ठु सी श्रद्धाजलि है।"

लेखक के परिचय की तिथि बर्कले, कैलिफोर्निया, मार्च १९१६ की है। अगस्त १९१६ तक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी। उसे समाचार पत्रों में उचित स्थान दिया। अन्य लोगों के अलावा श्री एच० डब्ल्यू० नेविनसन ने पूरी लम्बाई की जाशीली समीक्षा लिखी, जो उनके अमरीकन साप्ताहिक 'यू रिपब्लिक' के लिए थी। छ मास से भी कम अवधि में पुस्तक के दूसरे संस्करण की मांग हो गई और यह अप्रैल १९१७ में प्रकाशित हुआ इसकी भूमिका नहीं थी। आरम्भ में अमरीकन प्रतिक्रिया बड़ी उत्साहजनक रही यद्यपि पुस्तक का न भारत भेजा जा सका, न ब्रिटेन। लेखक को परिचित बनाने में भारत के उल्बेन का सहायता मिली। कई साप्ताहिकों तथा विश्व-विद्यालयों की ओर से भाषणों के लिए और समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं

1927 के अंत के करीब इस पुस्तक पर से प्रतिवध उठा लिया गया और लोक सेवा सभ (सर्वेंट्स आफ द पीपुल सासायटी) ने इसे पुन प्रकाशित किया, यद्यपि भारतीय सस्करण के लिए प्राक्कथन की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी गैरकानूनी अंग्रेजी सस्करण का वंजबुड द्वारा लिखा गया प्राक्कथन, जो 'यग इंडिया' के इतिहास का भाग बन चुका था, रहने दिया गया।

यह सस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया, परन्तु लालाजी ने सोचा कि नया सस्करण प्रकाशित करने से पूर्व इसमें सशोधन कर दिया जाए ताकि 1916 के बाद का काल भी इसमें शामिल हो सके। मुझे याद है उनके साथ अन्तिम रेल यात्रा में उन्होंने मुझसे इस काम में सहायता देने को कहा था, जिस प्रकार मने उनकी अन्तिम पुस्तक, 'अनहैप्पी इंडिया' के सबध में किया था, हमने एक-दो अन्य प्रस्तावित पुस्तका के बारे में भी विचार किया। इनमें पार्नेल का जीवन (उर्दू आत्मकथाओं की श्रृंखला के लिए) के बारे में पुस्तक थी, जिनके बारे में हम सहयोग कर सकते थे। 'यग इंडिया' के बारे में उन्होंने दूसरे भाग के बारे में विचार किया था, जिसमें बाद का काल शामिल हो, जो (उन्होंने सुझाव दिया) हम मिलकर लिखें ताकि पहला भाग जैसे-का-तैसा ही रहे। परन्तु इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह जीवित न रहे।

'यग इंडिया' की एक साथी पुस्तक लगभग एक वर्ष के अन्दर ही तैयार हो गई। इसमें भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रभावों का उल्लेख किया गया था। इसके प्रथम पन्ने पर जो घोषणा दी गई थी, वह थी 'ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास'। परन्तु जब यह पुस्तक प्रकाशित होकर आई, तो इसका आकषक शीपक था 'भारत पर ब्रिटेन का भ्रूण' (इंग्लिस डेट टू इंडिया), इस पुस्तक की अतर्निहित धारणा की आकड़ों तथा दस्तावेजों से पूरी तरह पुष्टि की गई थी। दरअसल, इस पुस्तक में एक विशेष बात यह थी कि इसमें लेखक ने विशेषतौर पर ब्रिटिश लोगों के कथन ही उद्धृत किए थे। जैसा कि उन्होंने परिचय में लिखा था। रोजमर्रा के जीवन में वेकल्प उसी व्यक्ति को कष्ट का पता हो सकता है जिसे यह कष्ट भुगतना पड़ता हो, परन्तु राजनीति में सामान्य ज्ञान का यह भिद्यन्त उल्टा हा गया दिखाई पड़ता है।

की आर स लेखा के लिए निमन्त्रण आए, यह 'यंग इंडिया' के कारण थे, और यह कोई छाटी उपलब्धि नहीं थी।

ब्रिटेन तथा भारत की सरकारों ने इस पुस्तक पर पाबंदी लगाने में कोई समय न गवाया। परन्तु अन्तिम निष्पत्ति उनका नहीं था-विशयकर इंग्लैंड में। यहाँ, कमांडर जे० सी० वैंजवुड के मार्गदर्शन में इंडिया होम रूल लीग को मुद्रण अनुमति में चुपचाप एक अंग्रेजी सरकार प्रकाशित कर दिया गया और उसकी प्रतिपा ससद के सभी सदस्यों ने बाट दी गई। स्वयं वैंजवुड ने अंग्रेजी सम्बरण का प्राक्कथन लिखा, हाउस आफ कॉमन्स में पुस्तक की छपी प्रति अपने हाथ से लहराते हुए उन्होंने पुलिस को चुनौती दी कि वह जो अधिक से अधिक कर सकती है, कर ले। इसके परवान स्कॉटलैंड याइ व्यस्त हो गया और उसने बाकी सभी प्रतिपा कब्जे में ले ला।

उम समय वैंजवुड निबरल पार्टी के सदस्य थे और कुछ ही समय बाद वह लेबर पार्टी में शामिल हो गए। परन्तु फिर भी वे इकट्ठे टुकड़ों के कड़े समर्थक जाने जाते थे, जिन्के विचार कुछ मामला में अतिवादी थे और यह बहुत ही स्वतंत्र विचारा के सासद थे। उन्होंने हाल ही में मैसोपोटेमिया आयोग का अपना कार्य समाप्त किया था, उस काम में उनके मन में गहरी रुचि पैदा कर दी और उनकी असहमति की टिप्पणी 1 भारत में उनकी प्रगति में रुचि पैदा कर दी।

वैंजवुड तथा लाजपत राय व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे को नहीं जानते थे, परन्तु 'यंग इंडिया' की इस सद्भावना ने दोनों के बीच गहरी और घनिष्ठ मित्रता का नीव डाल दी। शीघ्र ही दोनों एक दूसरे को नियमित रूप से पत्र लिखने लगे, चाहे उनकी पहली मुलाकात तब तक न हुई, जब तक वैंजवुड अमरीका की यात्रा पर न गये। लाजपत राय ने वैंजवुड से आप्रह किया कि वह ब्रिटिश गृह मंत्रालय से पता करे कि 'यंग इंडिया' के दिन विनाय भागा पर उसे आप्रति है, ताकि पुनर्विचार करके उनमें सगाधन कर दिया जाए या उन्हें बाट दिया जाए। वैंजवुड ने तुरत ही यह मुझाव अस्वीकार कर दिया।

भारत में इस पुस्तक पर प्रतिषेध उम समय तक जारी रहा जब तक लाजपत राय स्वयं विघायक नहीं बन गए और इस स्थिति में नहीं गए कि गृह मन्त्रालय तथा अन्य सांगा पर दबाव डालने की स्थिति में नहीं पहुँच गए।

1927 के अंत के करीब इस पुस्तक पर से प्रतिवध उठा लिया गया और लोक मेवा सघ (सर्वेंट्स आफ द पीपुल मासायटी) ने इसे पुन प्रकाशित किया, यन्पि भारतीय मन्वरण के लिए प्राक्वचन की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी गैरबालूनी अंग्रेजी मन्वरण का र्जवुड द्वारा लिखा गया प्राक्वचन, जो ‘यग इंडिया’ के इतिहास का भाग बन चुका था, रहने दिया गया।

यह सस्करण शीघ्र ही ममाप्त हा गया, परन्तु लालाजी ने सोचा कि नया सस्करण प्रकाशित करने से पूव इसमे सशोधन कर दिया जाए, ताकि 1916 के बाद का काल भी इसमे शामिल हा सके। मुझे याद है उनके साथ अन्तिम रैन यात्रा म उन्होंने मुझे इस काम म सहायता देने को कहा था, जिस प्रकार मन उनकी अन्तिम पुस्तक, ‘अनटैपी इंडिया’ के सबध म किया था, हमन एक-दा अन्य प्रम्नावित पुस्तका के बारे मे भी विचार किया। इनमे पार्नेल का जीवन (उर्दू आत्मकथाओं की शृखला के लिए) के बारे म पुस्तक थी, जिसके बारे मे हम सहयोग कर सक्ते थे। ‘यग इंडिया’ के बार मे उन्होंने दूसरे भाग के बार मे विचार किया था, जिसमे बाद का काल शामिल हो, जो (उन्होंने सुझाव दिया) हम मिलकर लिखें ताकि पहला भाग जैसे-ना-तसा ही रहे। परन्तु इस योजना को कार्यान्वित करन के लिए वह जीवित न रहे।

‘यग इंडिया’ की एक साथी पुस्तक लगभग एक बष के अंदर ही तैयार हा गई। इसम भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रभावो का उल्लेख किया गया था। इसके प्रथम पन्ने पर जा धोपणा दी गई थी वह थी ‘ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास’। परन्तु जब यह पुस्तक प्रकाशित हाकर आई, ता इसका आकपक शीपक था ‘भारत पर ब्रिटेन का ऋण’ (इंग्लडस टैट टू इंडिया), इस पुस्तक की अतनिहित धारणा की आकडो तथा दस्तावेजो से पूरी तरह पुष्टि की गई थी। दरअसल, इस पुस्तक मे एक विशेष बात यह थी कि इसम लेखक ने विशेषतौर पर ब्रिटिश लोगो के क्यन ही उदधत किए थे। जैसा कि उन्होंने परिचय मे लिखा था। राजमर्ग के जीवन म केवल उसी व्यक्ति को कष्ट का पता हो सक्ता है जिसे यह कष्ट भुगतना पडता हो, परन्तु गजनीति म सामान्य ज्ञान का यह सिदधान्त जलूट हो गया दिखाई पडता है।

“सरकारों तथा शासकों को आगत समय उन्हें के शब्द स्वीकार किए जाते हैं, शासित लोगों तथा प्रजा के नहीं। इमी लिए मैं पुद्द अंग्रेजों द्वारा नहीं गद्द जाने ही चुनी ह।”

पुस्तक के मौलिक हान का कोई दावा नहीं किया गया, फिर भी अतर्हित विचारों की दृष्टि में यह पुस्तक अपन मौलिक हान में इन्कार करने में ही मौलिक थी।

‘पट्टे के नीचे मेंडक का बच्चा है यह जानना
दुलबन का हर बंदम है रहा पहुँचना
मध्य पर घूमती हुई तितली
उसे सबक देती है सत्र का।’

इस प्रकार मुख-पृष्ठ पर यह दावा किया गया था। परन्तु उस प्रकार के पाठक जिन्हें मेंडक के पट्टे के नीचे टराने से चिढ़ है या बहुत उपेक्षा के शीघ्र ही इस प्रभावशाली ढंग में आकर्षित हो गए थे, जिसे यत्न करने वाली घटनाओं का वर्णन करने के लिए इस्तमाल किया गया था और यह बात मध्य के मेंडक की भाषा में नहीं स्वयं दबाव डालने वाला या उनके भाई बंदा की भाषा में कही गई थी। बहुत ही औचित्य के साथ यह पुस्तक उन बहादुर, ईमानदार तथा नेकदिल अंग्रेज पुरुषों तथा महिलाओं के नाम लिखी गई थी, जिनके प्रमाणों पर यह सद्घातिक और पर आधारित थी। ‘इलैडस डट टू इंडिया’ में उन मूल पुस्तकों तथा अन्य प्रामाणिक पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं से उद्धरण एकत्र किए गए थे जो इतर उद्धरण विखर पड़े थे। ये स्रोत आम व्यक्ति की पहुँच में नहीं थे। यह आर्थिक अनुसंधान की उस उच्च परम्परा के अनुसार थीं जो दा प्रमुख भारतीय राजनीतिक नेताओं, दादा भाई नौरोजी और आर० सी० दत्त, ने स्थापित की थी और इसके साथ (तथा विलियम डिग्वी की रचना भी) ब्रिटिश शासन के अधीन भारत का प्रामाणिक आर्थिक इतिहास दिया गया है।

पुस्तक के आरम्भ में भारत में ब्रिटिश लोगों के आने से पूर्व वहाँ के आर्थिक इतिहास का संक्षेप में अनुद्धान दिया गया है और उससे पश्चात् यह दिखाया गया है कि विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति

में भारत का क्या योगदान था, एक अध्याय बहुत ही जटिल विषय 'प्रशमा या निवास के बारे में था और उसने पश्चात दो उद्योग—बपटा तथा जहाज और जहाज-मार्जी—का नेवर भारत में तथा भारत के प्रति ब्रिटिश नीति की व्याख्या की गई है। उसने बाद के अध्याय कृषि तथा लोहा की आधिक्य दशा के बारे में है और एक अध्याय अवाल तथा उसने कारणों के संबंध में है। रनवे सिचार्ड और शिक्षा—ब्रिटिश शासन को बहुत प्रचारित लाभ—इस मभी की बाद में चर्चा की गई है। पुस्तक के अंतिम पृष्ठों में एक अध्याय में धरा तथा सरकारी खर्च की चर्चा की गई है तथा एक अन्य अध्याय में भारत की प्रगति के बारे में कुछ धारणाएं धारणाएं' विषय की चर्चा की गई है।

यह पुस्तक वी० एच० यूसू० द्वारा अमरीका में प्रकाशित की थी। समाचार-पत्रों ने इसकी बहुत प्रशंसा की। यह पुस्तक ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा कही गई बातों पर आधारित होने के कारण, अमरीका में युद्धकाल के दौरान ब्रिटिश प्रचार का मुहताब उत्तर मिथ्य हुई, जिन प्रचार में यह व्यक्त किया गया था कि भारत में ब्रिटिश शासन के कारण वहाँ बहुत ही प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त जो शोषण किया गया, उसे दानवीरता के रूप में व्यक्त किया गया था।

इस पुस्तक की तयारी के लिए पुस्तकालय सुविधाओं की आवश्यकता थी, जो लाजपत राय का केलीफोर्निया में नहीं मिल सकती थी। वह पहले ही यूनाइटेड चने गये थे और वहाँ केलीफोर्निया विश्वविद्यालय पुस्तकालय ने उन्हें आवश्यक सुविधाएं प्रदान कर दीं। विश्वविद्यालय के दो प्रोफेसरों ने उनकी पाण्डुलिपि का अध्ययन किया। वे प्रोफेसर थे ए० आर० मुसी और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ई० आर० ए० मलिंगमन।

इस पुस्तक का विशेष सामयिक महत्व था, केवल अमरीका में ब्रिटिश प्रचार के कारण ही नहीं, बल्कि इसलिए भी कि अंग्रेज समर्थक समाचार-पत्रों में प्रस्ताव प्रकाशित किए जा रहे थे कि युद्ध के बाद भारत ब्रिटेन के विदेशी ऋण के एक भाग की अदायगी का भार अपने ऊपर ले ले। दूसरे शब्दों में यह चाहत थी कि भारत ब्रिटेन के युद्ध का खर्च दे।

लाजपत राय ने प्रस्तावना में कहा है, "भारत ने बहुत शानदार ढंग से ब्रिटेन का समर्थन किया और कुछ राष्ट्रवादी नेताओं को तो ग्रेट ब्रिटेन के शत्रुओं के

आक्रमणों का मुकाबला करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। हमें इस बात की आशा करनी चाहिए कि वे झूठी आशाओं के अधीन कूट नहीं खेल रहे और ग्रेट ब्रिटेन इस प्रस्ताव के प्रति सच्चा है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में औचित्य और न्याय के पक्ष में है।”

प्रस्तावना में न सिर्फ ऐसी युद्धोत्तर आशाओं का उल्लेख था, परन्तु उसमें गभीर सदेह भी ध्वनित किए गए थे।

“ग्रेट ब्रिटेन ने युद्ध में बहुत हानि उठाई है। जैसे ही युद्ध समाप्त होगा इस हानि को पूरा करने के लिए शोर मचेगा। साम्राज्य के किसी अन्य भाग से इस सम्बन्ध में इतनी आशा नहीं है, जितनी भारत में। उसकी अपनी सरकार में कोई आवाज नहीं और वह इतना बेसहारा है कि अपनी आवाज भी नहीं सुना सकता। न वह रोक सकता है और न ही जवाब दे सकता है। इस बात से आसान और क्या होगा कि उसे युद्ध का खर्च सहन करने को कहा जाए ?”

यह सदेह आने वाले वर्षों में भारतीय मुद्रा की विनिमय दर में किए गए फेरबदल को देखते हुए आवश्यकजनक नहीं।

भारत में इस पुस्तक पर कई वर्ष प्रतिबन्ध रहा। अन में जब यह प्रतिबन्ध उठाया गया, तब तक करीब दस वर्ष का समय बीत चुका था। लालाजी का विचार था कि इसे फिर से जारी करने से पूर्व वह पुस्तक में सशोधन करके इसे अद्यतन बना देंगे या किसी अन्य व्यक्ति में ऐसा करने को कहेंगे पर यह विचार कार्यान्वित न हो सका।

राजनीतिक स्थिति के बारे में लाजपत राय की अगली पुस्तक 1919 में प्रकाशित हुई। इसका नाम था ‘द पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ इंडिया’। भारत में संविधानिक सुधारों के बारे में माट्टेयू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट कुछ महीने पूर्व ही (जुलाई 1918) प्रकाशित हुई थी और मरमागरम बहस का विषय थी। ‘द पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ इंडिया (यह भी वी० डब्ल्यू० एल० बाबू द्वारा प्रकाशित हुई थी) मुख्य तौर पर इस रिपोर्ट की ही आलोचना थी।

पुस्तक में दिए गए विचार और सर्वेक्षण का परिणाम प्रभावशाली ढंग से अन्तिम पंरे में दिया गया है।

“गणवादी चीन उत्तर-पूर्व में, साम्यवादीक पश्चिम (ईरान) उत्तर-पश्चिम में और बाल्शेविक रूस सुदूर उत्तर में, इन हालात को देखते हुए भारत में निरकुश शासन अत्यधिक मूखता की बात है। देवता भी ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा करना तब भी संभव नहीं, यदि विधान सभा अपनी मारी बैठकों दमाकारी कानून बनाने और पाम करने में लगा दे। विश्व शांति, अन्तर्राष्ट्रीय मेलजोल तथा सद्भावना, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की नेकनामी, साम्राज्य की सुरक्षा, यह सभी मांग करते हैं कि भारत में शान्तिपूर्ण प्रजातंत्र लागू किया जाए तथा उसका विकास किया जाए।”

यह पुस्तक अमरीकी पाठकों तथा ब्रिटिश राजनयिकों के लिए लिखी गई थी। अमरीकी प्रजातंत्र और आत्मनिर्णय के मित्र देशों के लक्ष्य के रूप में अभिभूत कर दिया गया था। यदि इस बात को मन में रखा जाए तो यह पुस्तक भारत के मामले की आदर्श प्रस्तुति मालूम पड़ेगी। प्रायः प्रत्येक अध्याय का सारांश डेविड लायड जार्ज के भाषणों से लिया गया। इन भाषणों से तो लेखक को भारतीय शक्तिवादी पार्टी के अध्याय के लिए भी उपयुक्त उद्धरण मिले, जो ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा प्लासो में ‘युद्ध के कारण तथा उद्देश्य’ विषय पर दिया गया था।

शान्ति वह बुखार है, जो किसी देश की सरकार द्वारा स्वास्थ्य के नियमों की लगातार और हानिकारक ढंग से उपेक्षा करने से आता है।”

इससे रोलैंट सिफारिशा का सारा ढांचा तहस नहस किया जा सकता था। ऐसा होना आवश्यक भी था, क्योंकि यह पंजाब में माणसल ला के घुरत बाद प्रकाशित हुई थी और माणसल-ला रोलैंट एक्ट के कारण हुए आंदोलन की वजह से लागू किया गया था।

लाजपत राम न, भारत के अग्र राष्ट्रवादी नेताओं के समान, उस स्थिति में सुधारों के प्रस्तावों के प्रति बहुत आशावादी रवैया अपनाया था। इसे सदारवादी कहा जा सकता है। यह वह प्रभाव है, जो ‘द पोलिटिकल पयूचर’ में मिलता है। परन्तु बाद में जेम्स मार्टिन्स द्वारा बनाए गए खाने को भरा गया, हर कदम पर प्रतिश्रियावाद की ध्वनिया सुनाई पड़ी और सारी याजना का इतना बदल दिया गया कि उसकी पहचान कठिन हो गई। तब ‘द पोलिटिकल पयूचर’ में जो अपनी उद्घोषणाओं में सुनिश्चित नहीं था, इसके प्रति शकाने व्यक्त की गई। प्रस्तावना का अंत इस प्रकार होता है

बिल के साथ निराशावादी का एक सिलसिला आरम्भ हुआ, सिफारिशों से आगे की कार्रवाई, क्या वे कुछ कम कर देंगे ? श्री माटेग्यू का बिल, जिसे हाउस आफ कॉमन्स में जून के आरम्भ में पेश करने का प्रस्ताव है, इस प्रश्न का उत्तर देगा ।

बिल ने निराशावादी का एक सिलसिला आरम्भ कर दिया, जिसमें आगे की कार्रवाई समुक्त समिति द्वारा करने की व्यवस्था थी और बाद में उन लोगों द्वारा जिन्होंने बिल के अधीन विभिन्न नियम तथा सूचियां तैयार की थीं ।

इस अध्याय में जिन तीन पुस्तकों की चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त लाजपत राय ने अपने अमरीकी पाठकों का कई पुस्तिकाएँ भी दी, जिनमें से तीन का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है । उनमें से एक थी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डेविड लॉयड जॉर्ज के नाम खुला पत्र (एन ओपन लटर टू डेविड लॉयड जॉर्ज) और दूसरी आदरणीय एडविन सेमुअल माटेग्यू के नाम, जब उन्हें सेनेटरी आफ स्टेट फार इंडिया नियुक्त किया गया ।

इन साप्ताहिक पत्रों में से पहले के लिए तुरत उत्तेजना उन समाचारों से उत्पन्न हुई, जिनमें कहा गया था कि भारत के शासकों ने जर्मनी के विरुद्ध अपने युद्ध के लिए भारत को डेढ़ सौ करोड़ रुपये का योगदान देने के लिए कहा है । इस प्रकार निदयतापूर्ण ढंग से भारत जैसे पराधीन देश का उन साम्राज्यवादी शासकों द्वारा शोषण हृदयविदारक था । भारत का खून "बूम लिया गया", यह बात स्वयं माटेग्यू ने कही थी । एन०एस० हार्डिकर का कहना है कि लालाजी को यह सब बहुत ही बुरा लगा था और उन्होंने लगातार सात घंट बँठकर यह पत्र मुकम्मल किया ।

इस पत्र को अमरीकी समाचार पत्रों में बहुत प्रचार मिला ।

एन०एस० हार्डिकर ने दूसरा पत्र माटेग्यू को लिखे जाने की कहानी बतायी है ।

भारत के अनेक राजनयिकों ने माटेग्यू का अपने मुक्तिदाता के रूप में उसी तरह स्वागत किया, जैसे 1906 में उन्होंने जान मौरों के गुण गाए थे, जिसके अधीन माटेग्यू ने इंडिया आफिस में पहला अनुभव प्राप्त किया था । यह प्रारम्भिक समूह स्तुति और इसका निराशावादी अन्त—इनकी लाजपत राय ने इस खुले पत्र में चर्चा की है । भारत के भविष्य के बारे में प्रचारित कई विरोधी प्रस्तावों के बारे में टिप्पणियाँ हुई थीं, विभापकर इन्डिगटन प्रस्तावों, कांग्रेस

लीग योजना और जी० के० गोखले के शापन के मसौदे के बारे में, जो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ था। अन्त में इन सबकी समीक्षा करते हुए लाजपत राय ने लिखा है :

“गोखले की योजना का लेखा-जोखा करते समय यह बात याद रखनी चाहिए कि यह उस समय तैयार की गई, जब (क) वह गभीर रूप से बीमार थे (ख) युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में, जब 1915, 1916 और 1917 की घटनाएँ नहीं घटी थी। उस समय के बाद दुनिया बहुत आगे चली गई है, जिसकी गोखले ने कल्पना भी नहीं की थी। इस योजना पर उनकी अति सावधानी की छाया है, यह अधिक-से अधिक एक हिचकिचाहट भरा समझौता है, उनकी इच्छा का रूप नहीं। मैं गोखले का सम्मान करता हूँ, परन्तु इन बातों को स्वीकार नहीं करता। मेरा विचार है कि उनसे अधिक गहरी देशभक्ति वाला, देश के प्रति इतने सच्चे प्रेम वाला और सम्मान की कामल भावनाओं तथा आत्म सम्मान वाला कोई और व्यक्ति ब्रिटिश शासनकाल में पैदा नहीं हुआ। वह निष्काम भाव और भ्रष्टाचार से इतने ऊँचे थे कि उन पर सदेह भी नहीं हो सकता। परन्तु अपनी सम्भावनाओं की धारणा के बारे में वह कुछ भीरु तथा अत्यधिक सावधान थे। उन्हें यह डर था कि उन्हें स्वप्नद्रष्टा न कहा जाए। उन्हें इस आरोप से अधिक भय लगता था कि उन्हें वही कल्पनाजीवी न कहा जाए। इसलिए उनका मन उचित भागे करते समय भी रुक जाता था। वह एक कमजोर वार्ताकार थे।”

शापन में वित्तीय स्वायत्तता के मामले में अधिक शिक्षक दिखाई गई थी और वित्तीय स्वायत्तता के बिना भारतीय समस्या का समाधान नहीं हो सकता था।

जिस पुस्तिका पर हमें अभी विचार करना है—रिपब्लिकन आन की पोलिटिकल सिचुएशन इन इंडिया—उसका इतिहास बड़ा रोचक है। तिथि के अनुसार यह पुस्तिका इस अध्याय में विचार की गई अन्य पुस्तकों से पहले की है। दरअसल यह मूल रूप में युद्ध के आरम्भिक महीनों में लिखी गई थी, जब धालाजी जापान में थे। बाद में जमनो ने इसे पा लिया और इसका सम्पादन करके इसे ‘इंडियन नेशनलिस्ट कमेटी’ (यूरोपियन सेंटर) द्वारा प्रकाशित किया और इसे ‘वरलैंग वान औटो विगैड, लिपजिग’ के साथ लगाकर जारी किया। बड़े उपकार के साथ उन्होंने इसकी अपनी प्रस्तावना

लिजी और बड़े ही रहस्यमय ढंग से "अधिकार सुरक्षित" कर लिए। परिचय में हम बताया गया है कि 'रिप्लैवशस' की इस पुस्तक में (लेखन द्वारा) "भारम्भिक तौर पर ब्रिटेन की जनता को इस विश्वास के साथ संबोधित किया गया, जिसे भारत की मिताचारी पार्टी ने बड़े ऊंचे स्तर से व्यक्त किया था कि अंग्रेज लोग 'याम तथा औचित्य प्रिय' हैं और ब्रिटिश जनता, की आत्मा सुप्तावस्था में ही है जो भारत के उन करोड़ों लोगों द्वारा जाग्रत की जा सकती है, जो ब्रिटिश सत्ता के अधीन कराह रहे हैं।"

लेखक के बारे में हम बताया गया है

"वह मिताचारियों और प्रातिकारियों के मध्य खड़े हैं। अपने सारे जीवन में उन्होंने सावजनिक तौर पर मिताचारियों का व्यवहार अपनाया, यद्यपि उनका मन, दृष्टिकोण तथा आकांक्षा प्रातिकारियों के साथ रही। वर्तमान पुस्तिका उनके राजनीतिक व्यवहार का विशेष उदाहरण है। ब्रिटिश राजनयिकों को एक मत्कीपूर्ण चेतावनी के रूप में उठाते अपना ढंग बदलने के लिए कहा, यह हकीकत है इससे भारत में प्राति का खतरा छुपा हुआ है और ऐसा दिखाई देता है कि लाजपत राय का इसके प्रकाशन से यह उद्देश्य था कि वह एक मिताचारी नस्ल के तौर पर ब्रिटेन को अन्तिम चेतावनी देने का अपना पवित्र कर्तव्य निभा दे।"

परिचय के लेखक ने यह बात स्पष्ट कर दी कि वह सावजनिक रवये में लाजपत राय के साथ सहमत नहीं, परंतु यह पुस्तिका अपने गुणों के आधार पर प्रकाशित की जा रही है क्योंकि यह "काफी उचित ढंग तथा स्पष्टता से भारत की वर्तमान स्थिति की व्याख्या करती है। इसी कारण से हम यूरोपियन जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं।"

पुस्तिका में उस समय भारत में ब्रिटिश शासन तथा पंजाब में ओ'हायर शासन के जोरदार दमनचक्र के बारे में लाजपत राय के अपने स्पष्टवादी ढंग से कई तथ्य कहे गए हैं। कहा नहीं जा सकता 'यूरोपियन जनता' ने इस पुस्तिका की ओर ध्यान दिया या नहीं, भारत सरकार ने तुरत ही इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया और पंजाब चीफ काउंट से इसके लेखक का वकालत का लाइसेंस रद्द करने को कहा और उसके पश्चात् सामान्य कारवाई के तौर पर उनकी सभी रचनाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। चीफ

कोर्ट ने शायद हम ज्यादाती से किसी अन्य वकील का साइंस रद्द नहीं किया होगा, अर्थात् उमे किसी अपराध के लिए सजा दिए बिना अपना मुनवाई किए बिना ।

हमारे सर्वेक्षण में लालाजी की बहुसजक लेखनी द्वारा रचित अनेक छोटी रचनाओं की चर्चा नहीं हुई । हम 'फाइट फार कट्टी' और 'ए काल टू यग इंडिया' का उल्लेख कर सकते हैं । ये दोनों उनके अपने देशवासियों को, अमरीका में भारतीय छात्रों को, संबोधित थी और 'सल्फ डिटर्मिनेशन फार इंडिया' अमरीका में यूरोपियन लोगों का संबोधित थी । इन छोटी रचनाओं में से कुछ यद्यपि धार्मिक थी, फिर भी उनकी ऐसी रचनाओं ने राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर काफी प्रभावशाली काय किया । एन० एस० हार्डिंकर ने एक पुस्तिका 'इंडिया ए ग्रेवयाड' का विशेषतौर से उल्लेख किया है, जिसने बहुत ध्यान आकर्षित किया । "इसकी एक लाख से अधिक प्रतियां प्रकाशित की गईं ।" इसे विश्व के समाचार-पत्रों में भी बहुत प्रकाशित किया गया, इटैलियन, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी तथा फारसी भाषाओं में तथा भारतीय भाषाओं में भी ।

इस अध्याय में अब तक केवल उन पुस्तकों का उल्लेख हुआ है, जो लालाजी ने अमरीका में निवास के दिनों में अपने विदेशी पाठकों, विशेषकर अमरीकी पाठकों, के लिए लिखी थी ।

'यग इंडिया' और 'इग्लंड्स डेंट टू इंडिया' निश्चय ही इस देश के पाठकों के लिए बहुत अधिक रुचि वाली पुस्तकें थी, परन्तु इस देश में उनके प्रवेश पर प्रतिबंध था । इसलिए ये अमरीका में निर्वासित राजदूत के काय का प्रमुख भाग बन गई । परन्तु देशभक्त ने निर्वासन-काल में अपने देश के लोगों की उपेक्षा नहीं की । इसलिए हम इस अध्याय को समाप्त करने से पहले कुछ अन्य पुस्तकों का उल्लेख करेंगे, जिनमें से कुछ का तो पहले ही इस अध्याय में नाम आ चुका है ।

युद्धकाल का सिलसिला लालाजी की रचना 'आय समाज' से आरम्भ हुआ, जिसकी सक्षेप रूप में हम पहले चर्चा कर चुके हैं । यह विशेष या सामान्य तौर पर स्वदेशी पाठकों के लिए नहीं थी, परन्तु निश्चय ही उन लोगों में इसकी मांग थी । उसके बाद 'प्राब्लम आफ नेशनल

एजुकेशन इन इंडिया' आई, जिसे इंग्लैंड में 'एसन एंड अनविन' ने प्रकाशित किया था। यद्यपि यह पुस्तक आधी शताब्दी पहले लिखी गई थी, फिर भी भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने इसे फिर से प्रकाशित किया। इसकी प्रस्तावना स्वर्गीय राष्ट्रपति डा० जाविर हुसैन ने लिखी थी, जो एक प्रमुख शिवाशास्त्री थे और जिन्हें लालाजी की टिप्पणियां तथा मुझाब बहुत ही उपयुक्त और प्रासंगिक लगे। इनके पश्चात् केवल भारतीय पाठकों के लिए दो पुस्तकें हैं, एक जापान के बारे में और दूसरी अमरीका के बारे में। उनका इस विवरण में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। ये चार पुस्तकें और उर्दू में आत्मकथा रूप में कृतांत, जिसकी हम अभी चर्चा करेंगे, उन तीन पुस्तकों में शामिल की जानी हैं, (कुछ पुस्तिकाओं के अतिरिक्त) जिनका इस अध्याय में विशेष उल्लेख किया गया है। ये निर्वासन काल में लिखी उनकी पुस्तकों की सूची में शामिल की जानी हैं। समाचार-पत्रों के लिए उनकी रचनाओं पर तो एक पूरी पुस्तक लिखी जा सकती है। साहित्यिक रचना तो उनकी गतिविधियों का केवल एक भाग थी। फिर भी इस क्षेत्र में उनके काम से काफी पता लग जाता है कि इस काल में उन्होंने कितना कठिन परिश्रम किया। उन दिनों के उनके अनुयायी सचिव एन० एस० हार्डिंकर के इस कथन में बहुत अतिशयोक्ति नहीं कि चाहे लीग का कार्यालय हो या कोई अन्य स्थान, उहाने लालाजी को पढ़ने या लिखने की सामग्री के बिना कभी नहीं देखा था।

लालाजी के जीवनी-लेखक के लिए उस काल की लालाजी की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना और प्रकाशित पुस्तकों की शृंखला में कुछ पहले लिखी एक उर्दू पाण्डुलिपि थी, जो उन्होंने यूनाइटेड में (नवम्बर 1914 में) लिखी, जिसमें उन्होंने 1907 में निर्वासन के समय तक की अपनी आत्म-कथा लिखी। यह पाण्डुलिपि—लालाजी के अपने हाथ से लिखे एक सौ कागज—इंग्लैंड में बैस्ट्रुक परिवार के पास सुरक्षित रही। वह तीसरे दशक में यूरोप की यात्रा के समय यह पाण्डुलिपि अपने साथ ले आए परन्तु इसे उनकी मृत्यु के बाद ही बाहर निकाला गया और धारावाहिक रूप में उनके अपने पत्रों में प्रकाशित किया गया—उर्दू रूप दैनिक 'बन्दे मातरम्' में, अंग्रेजी रूप 'द पीपुल' में तथा हिंदी रूप पंजाब केसरी' में प्रकाशित हुआ।

लालाजी द्वारा भारतीय समाचार पत्रों को दिए गए लेखों से, अमरीका में छपी उनकी पुस्तकों पर प्रतिबन्ध के कारण पैदा हुआ अभाव किसी हद तक कम हो गया। रामानन्द चटर्जी की मासिक पत्रिका 'द माइन रिव्यू' उस समय बहुत ही सम्मानित पत्रिका थी और लालाजी के विचार तथा शिक्षापूर्ण रचनाएँ इस पत्रिका में अक्सर प्रकाशित होती रहती थी। जापान तथा अमरीका के बारे में उनके अध्ययन पहली बार इसी पत्रिका में प्रकाशित हुए। अक्सर लालाजी भारतीय राजनीति के विषयों पर भी लिखते रहते थे, एक स्मरणीय विषय महात्मा गांधी के साथ राजनीति में अहिंसा के स्थान के बारे में उनका विवाद था, जिसने काफी दिलचस्पी पैदा की। इस विवाद में वाद विवाद का एक भाग अमृत सिद्धांत के बारे में था। जब उन्होंने 1919 में भागलौर में अंधीन पंजाब की कठिनाइयों के बारे में सुना, तो उनके मन की वेदना कुछ और ही किस्म की थी। दूरी के कारण उनका दुःख और अधिक तीव्र हो गया और इसकी अभिव्यक्ति प्रभावशाली ढंग से उनकी कलम ने की, जिससे उस देशभक्त का सहस्रसुहान हृदय उसके देशवासियों को दिखाया।

44. झांकियां

“मे खाली बैठने का बुरा समझता हूँ। मैंने अपना खाना स्वयं बनाया है, मैंने अपने कपडे खुद धोए हैं। मैंने अपना कमरा साफ किया। कई बार शाम को भोजन के स्थान पर पाच सेट की डबलरोटी खाई है। इसलिए नहीं कि मेरे पास पैसे नहीं थे। मेरे पास सावजनिक धन के हजारों रुपये हैं। परंतु इसमें मैं अपने लिए एक पसा भी खच नहीं सकूंगा।”

—लाजपत राय

इस बात में राजद्रुती वाली कोई शान शोबत नहीं थी। परन्तु निर्वासित देशभक्त के सादा, सरल जीवन का अपना गौरव था। जब उन्होंने देखा कि उनका प्रवास काफी लम्बा होगा, तो उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह अधिक खच वाले हाटला से सबध नहीं रखेंगे। यद्यपि बाद में अमरीकी समाचार पत्रों के लिए उनकी रचनाओं से आर्थिक तौर पर उनका व्यक्तिगत खच पूरा होने लगा था उन्होंने यह पूर्वानुमान सया लिया था कि उन्हें अनिश्चित काल के लिए अपनी बचत पर निर्भर करना पड़ेगा। कई बार उनका घरेलू खच बहुत कम होता था और यह बहुत सादा था। इस प्रकार वह और उनके साथी भारतीय देशभक्त, जो उनके पास एकत्र हो गए थे, रहत तथा काय करते रहे और उन्होंने रसोई का प्रबध भी बिना नौकर के चलाया। डाक्टर हाडिंकर हमारे लिए ‘यूयाक’ के उन दिनों की बहुमूल्य झांकियां प्रस्तुत करते हैं।

एन० एस० हाडिंकर ने सालाजी के पूणकालिक सचिव की आवश्यकता पूरी करने के लिए डॉक्टरों की अपनी शिखा बीच में ही छोड़ दी। दरअसल वह कुछ और ही थे—गुरु से शिखा तथा निर्देश लेने वान मुवा अनुयायी, गुरु वं काय सहायक, गुरु के साथ रहने तथा उनकी सेवा करने वाले पूणकालिक साथी।

लाजपत राय अपनी निजी सुविधाओं के लिए सावजनिक धन खच करने में पूरी ईमानदारी से गुरेज करते थे, उम ममय भी जब वह अपनी पूरी शक्ति तथा ममय देश हित में लगा रहे थे और अपनी आजीविका कमाने के लिए कोई काम नहीं करते थे। उन्हें जो धन मिलता था वह आमतौर पर

निजी तौर पर भेट किया हुआ होता था, किसी सस्या के कोप के लिए नहीं होता था और वह धन किसी विशेष उद्देश्य के लिए निर्धारित नहीं होता था। फिर भी लाजपत राय इस सारे धन को अमानत समझते थे, जो पूरी कड़ाई से उसी उद्देश्य के लिए खर्च किया जाना था, जिसके लिए वह कायरत थे। इन वर्षों में उन्होंने बार-बार अपनी वसीयत लिखी और उसमें अपने पास अमानत के तौर पर पड़े इस धन का पूरा ब्यौरा दिया। वह एक या दो सावजनिक व्यक्तियों को (जैसे पंडित मालवीय) इन मामला के बारे में अग्रगत रखते थे, ताकि यदि उनकी मृत्यु हो जाए तो अमानत के इस धन में कोई गड़बड़ी न हो। यह उनकी विशेषता थी कि भारत लौटने पर उन्होंने इस लेन-देन का पूरा हिसाब किताब महात्मा गांधी को भेज दिया। 9 जुलाई 1921 का उनका पत्र (महात्मा गांधी को), जिसमें उन्होंने वह पूरा ब्यौरा दिया था, उस सवभ के साथ शुरू होता है, जो उन्होंने काई एक वष पहले मौखिक रूप से दिया, पत्र इस प्रकार शुरू होता है

“पिछले वष अगस्त में जब मैं बम्बई में था, मैंने आपको कुछ धन के बारे में बताया था, जो अमानत के तौर पर जापान और अमरीका में रहने वाले राष्ट्रवादियों ने मुझे सौंपा था और मैंने उसका क्या किया था।” इस धन की कहानी बताने से पहले उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी कि “जब मैं विदेश में था मैंने अपने निजी खर्च के लिए अपना ही धन खर्च किया था। इसमें उन मदों का खर्च भी शामिल है, जो मैंने देश के हित के लिए खर्च किया।”

नवम्बर 1914 में जब वह यूनाइटेड स्टेट्स (हम उनके पत्रों से पता चलता है) उनके पास उनके अपने दस हजार रुपये थे। समय समय पर उनका बड़ा पुत्र पैसे भेजता रहा था। पत्र में उनका ब्यौरा भी दिया गया है और यह रकम 27 हजार रुपये बनती है। समाचार पत्रों के लिए दी गई रचनाओं तथा भाषणों से उन्हें (चार वष की अवधि में) 12 हजार रुपये की आय हुई। लगभग तीन हजार रुपये उनकी पुस्तकों की रायल्टी में प्राप्त हुए। इस प्रकार “मेरे अपने धन का कुल जोड़ 52 हजार रुपये बनता है, जो मेरे खर्च के लिए, जिसमें मेरी यात्रा का खर्च भी शामिल है, पर्याप्त है। मैं बहुत मादगी में रहता था और अपने वपडे (स्वदेशी) घर से मगवाता था। मेरा व्यक्तिगत खर्च

कभी भी 100 डालर प्रतिमास से अधिक नहीं हुआ। कई बार तो यह इससे भी कम होता था। शेष धन मैंने देशहित के लिए खच किया।”

महात्मा गांधी को लिखे इस लम्बे पत्र के कुछ और अंश उद्धृत किए जाने चाहिए—लाजपत राय के जीवन की छावि्या देने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि वह अमानत के तौर पर उन्हें सौंपे गए धन की किस प्रकार से व्यवस्था करते थे। विभिन्न साधनों से विभिन्न कार्यों के लिए प्राप्त धन का पूरा ज्यौरा देने के बाद और उसे खच करने या लगाने के बारे में जानकारी देते हुए वह लिखते हैं

“इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि ऋण-पत्रा में लगाई गई राशि मुझे अमानत के तौर पर सौंपे गए धन तथा उसके ब्याज से काफी अधिक थी। 23 दिसम्बर 1919 को जब मैं भारत के लिए जहाज पर सवार होने वाला था, मैंने ये ऋण पत्र सुरक्षा के लिए ‘इन्विस्टेबिल ट्रस्ट कम्पनी, न्यूयार्क’ को सौंप दिए थे और उसके साथ ही मैंने एक नयी वसीयत तैयार की और उसे थी जान क्विन, 31 नत्साऊ स्ट्रीट, न्यूयार्क के पास जमा करवा दी, जो एक प्रिय मित्र तथा न्यूयार्क के एक प्रमुख वकील हैं। इस वसीयत में मैंने कहा कि ये ऋण पत्र मेरी सम्पत्ति नहीं और यदि भारत पहुँचने से पहले या भारत पहुँचने के छ मास के अन्दर मेरी मृत्यु हो जाए, तो यह धन पञ्जाब में राजनीतिक प्रचार के लिए तीन न्यासिया को सौंप दिया जाए। पंडित भदन मोहन मालवीय को एक न्यासी नामजद किया गया था। पहली वसीयत 1916 में तथा अन्तिम 1919 में तैयार की गई थी। इसका अर्थ है कि 1916 से लेकर अब तक हमेशा ही कोई न-काई वसीयत तैयार रही है।”

दुर्भाग्य की बात ही है, “1919 के बाद ऋण पत्रा का मूल्य काफी गिर गया है—कुछ की कीमत तो बहुत ही अधिक गिरी है।” यद्यपि एक स्थान पर लगाई पूजी ने लाभ दिया है, परन्तु कुल मिलाकर काफी घाटा रहा है। अन्तिम निष्पत्ति इस प्रकार है

“सभी ऋण पत्रा का वर्तमान मूल्य मोटे तौर पर लगभग छ हजार डालर या इससे कुछ अधिक होगा, जो वर्तमान विनिमय दर पर 24 हजार रुपये के बराबर हाते हैं। मैंने न्यूयार्क में इन्विस्टेबिल ट्रस्ट कम्पनी तथा

अपने पुत्र से कह दिया है कि वे उन हिस्सा को बेच दें और यह राशि भारत भेज दें। और मैं इस पुत्री का इस प्रकार खर्च करना चाहता हूँ।”

महत्वपूर्ण बात यह है कि जो अन्तिम मद दी गई है, वह है — “एक हजार रुपया खिलाफत कोष के लिए।”

पत्र के अन्तिम पर भी यहाँ उद्धृत किए जाने चाहिए

“आपकी जानकारी के लिए मैं यहाँ लिख देना चाहता हूँ कि अमरीका में मिनटो में मेरे धन कमाने की जो कहानियाँ कही जाती हैं, वे सत्य नहीं। दरअसल मैंने मूखतापूर्ण सौदों में सात सौ डालर गवाए हैं।

यह विवरण अमरीका और जापान में मेरी ओर से प्राप्त तथा खर्च किए धन की पूरी कहानी है। यह न्यूयार्क याददास्त से तैयार किया गया है। और संभव है कि इसमें आने पाइयो की कोई गलती हो। आपको इस बात की स्वतंत्रता है कि आप इस विवरण को जिस तरह चाहें इस्तेमाल करे। मैं इसकी एक प्रति जानकारी हेतु पंडित मदन मोहन मालवीय को भेज रहा हूँ।”

भारत में राजनीतिक राय यह समझने में बहुत सुस्त थी कि धीरे-धीरे अमरीकी राय को प्रभावित करने का क्या महत्व है। इसलिए लाजपत राय ने जो काय आरम्भ किया था, उसके लिए स्वदेश से धन प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती थी (राजनीतिक नेताओं में केवल तिलक ही ऐसे थे, जो इस काय के महत्व को समझ सकते थे—जसा कि इस वृत्तांत में उचित स्थान पर उल्लेख किया गया है)। इसके बावजूद ऐसा जान पड़ता है कि लाजपत राय ने कुछ लोगों को कोई अपील या ‘परिपत्र’ भेजे थे। हमें इसकी जानकारी लालाजी के कागजों में मुशीर हुसैन किदवई के पत्रों से मिलती है (लखनऊ के मुशीर हुसैन किदवई अन्त तक लालाजी को पत्र लिखते रहे)। ऐसा दिखाई पड़ता है कि अपील का कोई परिणाम न निकला, परन्तु पैन इस्लामी के पत्र का अध्ययन बहुत दिलचस्प है और शायद असाधारण रुचि की बात लगे

“प्रिय मित्र,

“मुझे आपका परिपत्र मिला और मैं इस बहुत रचि से पढ़ा। जैसा कि शायद आप जानते होंगे, मैं जीवन भर राष्ट्रवादी तथा विश्व-इस्लाम एकता का ममयक रहा हूँ। यही कारण है कि मैंने आपका सारा पत्र बहुत दिलचस्पी से पढ़ा है।

“जहाँ तक भारतीय राजनीति में तथा इस्लाम के बारे में आपके सुझाव हैं, मैं आपके बहुत से सुझावों में सहमत हूँ।

“हमारी ओर से सगठन में घुटि रही है और दुर्भाग्य से यह घुटि अभी भी जारी है, परन्तु जिस प्रकार आपका इस बारे में कोई भ्रम नहीं है कि विदेशी हस्तक्षेप से कोई भला हो सकता है मेरा भी यही विचार है। शायद अन्तर केवल यही है कि आपको किसी विदेशी सैनिक हस्तक्षेप से कोई आशा नहीं और मुझे किस भी प्रकार के विदेशी हस्तक्षेप से। विदेशों में मैं भारत को छोड़ अन्य सभी देशों को—जिस में इंग्लैंड तथा अमरीका भी हैं—को भी शामिल करता हूँ।

“हमें जो शिक्षा दी गई है वह यही है कि केवल शक्ति का ही महत्व है और हममें इस समय इसका अभाव है। यही कारण है कि हमारी तरफ घणा की दृष्टि से देखा जाता है।

“सीनेटर रीड का यह कथन अधिक गलत नहीं था, जब उन्होंने कहा था कि हम ग्रेट ब्रिटेन की चल सम्पत्ति हैं। भौतिकवादी यूरोप के लिए भारत की पुरातन सस्कृति कुछ भी नहीं और न ही इस्लाम की अद्वितीय सम्पत्ता कुछ है। पूर्वी कीमों में यूरोप केवल जापान का सम्मान करता है। वह केवल इसी लिए कि जापान तलवार उठा सकता है।

‘इस विचारों के लिए आप मुझे दोष नहीं दे सकते, यदि मैं सदैव कहूँ कि विदेशों में अखबारी प्रचार पर इतना अधिक ध्यान देना उचित नहीं है। परन्तु मैं केवल मेरे व्यक्तिगत विचार हूँ। मैं आपके पत्र के बारे में भारतीय नेताओं के साथ विचार करूँगा विशेषकर मुस्लिम नेताओं के साथ और बाद में आपका बताऊँगा कि वे क्या सोचते हैं।

“मुझे यह पत्र भेजने के लिए आपको एक बार फिर धन्यवाद।”

अगले महीने विश्व-मुस्लिम एकता समर्थक मित्र ने लाजपत राय को अपना कुछ साहित्य भेजा, मुख्य तौर पर एक पुस्तक की 'गोपनीय' प्रति, "जो वैसे यूरोप तथा अमरीका में सावजनिक तौर पर प्रकाशित करने के लिए है" और अलग से भेजे गए अपने पत्र में उन्होंने लाजपत राय के काम के बारे में ये टिप्पणियां की हैं

"मैं उस काम के लिए आपका हार्दिक आभारी हूँ, जो आप अमरीका में कर रहे हैं। कृपया आप मुझे भारतीय राजनीति के बारे में पुस्तिकाएँ तथा अन्य प्रकाशन भी भेजें। आप जानते हैं कि मैं भारतीय राष्ट्रवाद तथा मुस्लिम विश्व एकता का समर्थक हूँ। मैं जीवन भर यही रहा हूँ—सारे भारत में केवल एक व्यक्ति, जो एक ही समय पर इन दोनों सिद्धान्तों पर कायम है।

"मैं सदा ही राजनीतिक, यहाँ तक कि शैक्षिक पृथक्तावाद की नीति का विरोधी रहा हूँ।

"मुझे अभी के पत्र नहीं मिले, जिनकी आपने चर्चा की है। जब वे आ जाएंगे, तो मैं उन्हें श्री जिन्ना तथा हुसैन इमाम को दिखाऊँगा।"

1916 के अन्त में वह यूयाक चले गये, क्योंकि जो काम उन्होंने आरम्भ किया था, उसके लिए वही अच्छा मुख्यालय था। वहाँ उन्हें साहित्यिक काम के लिए पुस्तकालय की अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध थीं। यूयाक अपने में ही मानव समुदाय के विभिन्न रूपों के अध्ययन के लिए तथा इसके अतिरिक्त अमरीकी जनमत को प्रभावित करने के कार्यक्रम के निर्देशन के लिए भी उचित स्थान था। विशेषकर जब कि अमरीका भी सुदृढ़ हो गया था। भारत के हित में रुचि लेने वाले सभी लोगों के लिए 1400 आड़वे एकत्र होने का केंद्र बन गया था।

यूयाक जाने के कुछ समय बाद, कुछ समय के लिए लालाजी न मातियों के एक गुजराती व्यापारी श्री दवे के अतिथि सत्कार का आनंद लिमा। वह स्वयं तो मदाग्नि ग्रस्त थे, परन्तु उनकी रसोई पकाने वाली सेविका बहुत कुशल थी और उसने पकवानों के साथ न्याय करने के लिए, अच्छा खाना खाने के शौकीन और भर पेट खाने वालों का सदा स्वागत रहता था।

बहुत कड़े संसर, तथा जासूसी आदि के कारण कई कठिनाइया उत्पन्न हो गई थी। तब तक अमरीकी सरकार युद्ध से अलग थी, ब्रिटिश जासूस उन लोगो को परेशान कर सकते थे, जिनके बारे में अनुमान था कि वे ब्रिटेन के मित्र नहीं। ऐसा दिखाई पड़ता है कि लाजपत राय की ओर उनका विशेष ध्यान था। इसका एक उदाहरण, फ्रांसिस हैकिट द्वारा उस विवरण से मिलता है, जो उन्होंने 'द पीपुल' के लाजपत राय अंक के लिए लिखा और जिसमें लाजपत राय के 'यू रिपब्लिक' के कार्यालय में एक बार आने का ब्योरा दिया गया है

“एक दिन वह इक्कीसवीं गली में ऐसे ही हंगामे के बीच हमारे कार्यालय में आये। उनके हाथ में एक छोटा सा पुराना डिस्क (चक्कर) था, यह एक माइक्रोफोन था, जो 'खुफिया सेवा' वालो ने बाइबे कार्यालय की उस इमारत में लगा दिया था, जहां वे और उनके निर्वासित साथी मिला करते थे। उन्हें पता चल गया कि तहखाने में खुफिया सेवा वालो ने एक गुप्तचर तैनात कर दिया था। लाजपत राय ने हसते हुए बताया कि ट्राफी के तौर पर यह डिस्क हटाने से पहले उस बदकिस्मत गुप्तचर पर भारतीय भाषाओं में खूब बौछार हुई थी। मुझे विश्वास है कि उन्हें देखकर हम में से बहुत अधिक शिकवा करने वालों को विश्वास हो गया था कि लाजपत राय खुफिया सेवा के जोरदार आकषण के कारण है, जिस प्रकार उन्होंने कहा था।”

खालाजी कभी कभार ब्रिटिश अखबारों के लिए लिखा करते थे और सिडनी बैब ने अपने एक पत्र में कुछ बातों के बारे में उन्हें समझाया था

“प्रिय लाजपत राय,

‘मुझे आपने दो पत्र मिले हैं। डाक सेवा की जो वर्तमान स्थिति है, वह पत्र-व्यवहार जारी रखने योग्य नहीं। मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि सभी पत्र खोले जाते हैं इसी लिए कोई निजी बात लिखने की आवश्यकता नहीं। आपने जो सामग्री समाचार-पत्र सम्पादन के लिए भेजी है, मैं उसे पहुंचा दूंगा, परन्तु आपने लेख अधिक सुरक्षित रहेंगे, यदि उन्हें सीधे ही सम्पादन को भेज दिया जाए। मैं समझता हूँ

कि उस देश में, जिसका आपने नाम लिया है, या दरअसल सभी देशों में सरकार के लिए वह काम करना आवश्यक समझा जाता है, जो सामान्य बाल में बिन्दुल मनमर्जी का या वैरकानूनी समझा जाएगा, परन्तु युद्ध की स्थिति में न्यायपूर्ण ढंग से इसकी आलोचना नहीं की जा सकती और न ही इसका असर हो सकता है। मैं इस या किसी और सरकार के कार्यों को उचित ठहराने का बहाना नहीं करता, परन्तु शिनायत करना व्यर्थ है। विश्व के विभिन्न भागों में बहुत से लोगो द्वारा जो बड़ा ही कठिन दमन सहन किया जा रहा है, वह बहुत ही चिंताजनक है मेरे ध्यान में यह स्मरण रखने की बात है कि यह समय तो भीत ही जाएगा और जो लोग बच्यत हो रहे हैं उन्हें यह भी विचार कर लेना चाहिए कि शान्ति स्थापित हो जाने पर उनकी स्थिति क्या होगी। मुझे विश्वास है आप इस पत्र को गलत नहीं समझेंगे, जिसमें उन लोगो के प्रति गहरी सहानुभूति का कोई अभाव नहीं, जो बच्यत उठा रहे हैं। इस समय तो हम केवल यही कर सकते हैं कि जो भयानक विपत्ति हमारे विश्व पर आई है, उसमें जो भी अच्छा कर सकें कर लें। विपत्ति में भूतकाल की सभी बुरी प्रवृत्तियाँ अस्थायी तौर पर और प्रबल हो गई हैं। मुझे आशा है कि वह समय अधिक दूर नहीं जब हम फिर मिलेंगे।'

भारत के प्रति अमरीकी लोकमत को ठीक रखने के लिए यह आवश्यक था कि ब्रिटिश प्रचार का खंडन किया जाए। परन्तु कई बार तो लालाजी की टक्कर उन लोगो से हो जाती थी, जो ब्रिटिश एजेंट नहीं बह्ये जा सकते थे। ईसाई प्रचारक विस्म के लोग, जिन्होंने अकाल पीड़ित क्षेत्रों के अनाथा के लिए आश्रम बनाने की लालाजी की कारवाई का बुरा माना था, क्योंकि ईसाई धर्म का प्रसार करने वाला के लिए ऐसे अनाथ "लूट का माल" ही थे और फिर विधर्मियों की "भलाई" करने वाले ईसाई प्रचारक का लालाजी के कार्यक्रम कभी पसंद नहीं आ सकते थे। उन्होंने यह बात भी महसूस की कि भारत की पुरातन सस्कृति की जो तस्वीर वह अमरीकी लोगो के सामने पेश कर रहे हैं, वह उनके हितों के विपरीत है, क्योंकि अमरीका से धन बटोरने के लिए यह आवश्यक था कि भारत को मूर्तिपूजकों की भूमि बताया जाए जहाँ अज्ञानता का अधेरा फला हुआ है। ऐसा करके ही उन्हें ईसाई धर्म का प्रसार करने के लिए धन

उपलब्ध हो सकता था। लालाजी त्रिचिवन कालिज, लाहौर से सम्बद्ध एक प्रचारक के साथ हुए मुकाबले का विवरण मुनाया करते थे। वह व्यक्ति एक बार लालाजी के थोताआ में बैठा था और उसने लालाजी के कुछ आकडा को चुनौती दी। जब उसे इस बात में सफलता न मिली, तो उसने कहा, "श्री राय, क्या आप यह नहीं सोचते कि हम भी आपके समान भारत से प्रेम करते हैं?" सुरत उत्तर मिला। "म अपने देश में उस प्रकार प्रेम करता होता जिस प्रकार आप करते हैं, तो सुरत जाकर निकट की नदी में डूब जाता।"

शक में कई बार ऐसे पत्र आते, जिनकी आशा भी नहीं होती थी और उन पत्रों में अजीब अनुरोध हाते थे। ऐसा एक पत्र लिफाफे समेत उनके कागजों में सुरक्षित था, क्योंकि उनमें उर्दू हसी का अवसर मिला था। हम उस पत्र को यहाँ उद्धृत करते हैं

"लाजपत राय,

"मेरे प्यारे लाजपत राय।

"मेरे मित्र तथा शुभचिंतक श्री पी० वी० शुक्ल ने मुझे बताया है कि संभवतः आप मेरी आध्यात्मिक प्रगति की इच्छा तथा उत्सुकता की पूर्ति में सहायता कर सकते हैं। आप मुझे जो भी सलाह देंगे या कोई निर्देश देंगे, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उम्मा अधयन किया जाएगा और उम्मा की कदर की जाएगी।"

(आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में हिंदुओं की हालीवुड में भी मांग थी)

लालाजी के कागजों में मेरे लिए मामूली में आश्चर्य का कारण यह पत्र था, जिससे पता चलता है कि वह स्पेनिश भाषा की शिक्षा प्राप्त करने के लिए दाखिल हुए थे। हमें मालूम है कि उन्होंने स्वल्पी दिना में जो भाषाएँ सीखी थी, उनमें और कोई वृद्धि न हुई थी, परन्तु इस पहेली का समाधान नहीं हो पाया कि उन्होंने स्पेनिश भाषा सीखने की आवश्यकता क्या महसूस की। यह ठीक है कि स्पेनिश विश्व की एक महत्वपूर्ण भाषा है, परन्तु जो काम लालाजी कर रहे थे, उसके लिए स्पेनिश भाषा सीखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। क्या यह किसी स्पेनिश-भाषी मित्र की प्रेरणा के

कारण किया गया ? यदि ऐसा था, तो वह बौन था ? स्पेनिश भाषा का मयुक्त राज्य अमरीका के मुवाबले मध्य तथा दक्षिण अमरीका में बहुत अधिक महत्व है। क्या लालाजी ने किसी अवसर पर उन देशों में सम्भव स्थापित करने का प्रयत्न किया था ? हम जानते हैं कि लालाजी ने अपने प्रातिकारी मित्रों को सुझाव दिया था, जो कार्यान्वित न हो सका। इस सुझाव में उन्होंने कहा था कि उन्हें (कान्तिकारी मित्रों को) जो धन मिल रहा है या जो धन वे एकत्र कर रहे हैं, उनका कुछ भाग वे दक्षिण अमरीकी राज्यों में ऐसी आवासीय वस्तियाँ बसाने पर खर्च करें, जिनमें आवश्यकता पड़ने पर भारत के राजनीतिक शरणार्थी शरण ले सकें। यद्यपि जमनी से प्राप्त होने वाले धन पर नियंत्रण करने वालों ने इस सुझाव पर अमल न किया, तो क्या स्वयं उन्होंने अपने तौर पर अपने मन में ही इस प्रस्ताव पर कारवाई जारी रखी थी ? क्या उन्होंने सोचा था कि स्पेनिश भाषा का गान इस काम में सहायक हो सकता था ? इस बात की हम जानकारी नहीं। परंतु हम स्पेनिश कक्षा में दाखिल होने के कारणों के बारे में और कोई अटकल नहीं लगा सकते और सबके बाद निर्वासित दशभक्त की अपनी आत्मा की एक झलक। 'यंग इंडिया' में प्रकाशित 'एट द मदम फीट' के शीपक से प्रकाशित एक लेख से कुछ अंश—यह लेख अनाम छपा था।

“मा, आपको मैं क्या भेंट करूँ ? मेरे पास आपको अर्पित करने के लिए कुछ नहीं। मैं दीन हूँ, अतिदीन। परंतु मेरे पास एक वस्तु है जो आपको कभी भी तथा कहीं भी भेंट की जा सकती है, और वह है मेरा असीम प्रेम। ओ मा ! मैं आपसे प्रेम करता हूँ, मैं आपका आदर करता हूँ। क्या आप मुझे क्षमा कर देंगी, यदि मैं यह कहूँ कि मैं आपका श्रद्धालु हूँ ? मैं जानता हूँ कि ऐसा कहना निलज्जता तथा दिग्घात है। परंतु आप मेरी आत्मा को पवित्र करने वाली देवी हों। आप इसमें अवगत हों, इसलिए मुझे विश्वास है कि आप मुझे मना नहीं करोगी। ओ मातृ भूमि ! आप ऐसी माताओं की माँ हों, इसलिए आपका स्थान सर्वोच्च है, सर्वोपरि है। इतना ही नहीं आपने 'जगत जननी' का नाम प्राप्त किया है। हे भारत माँ ! यह केवल आप ही हैं, जिनका मैं इतना अधिक सम्मान करता हूँ।”

यह सरासर भावप्रवणता थी—शायद कुछ बचकानापन भी, उन लागा के लिए जो प्रौढ़ और गभीर हैं और यह गुमनाम क्या प्रकाशित किया गया ? शायद इसलिए कि उनका अपना निष्पक्ष अनुमान भी इसी प्रकार का रहा होगा। परन्तु शायद निर्वासन की पीड़ा न अपने मनावगा की पीड़ा का बच्चा की भाषा में व्यक्त करने पर विवश किया हो। उनकी आन्तरिक मजबूरी ने मन की वेदना व्यक्त करने पर विवश किया हो और फिर भी सावजनिक तौर पर उन्हे इस दशा को स्वीकार करने का साहस न हो। यह एक दशभक्त ही है, जो अपने देश की एक देवी के समान और मा के समान आराधना करता है और इतना भावुक हो सकता है। किसी कवि की स्तनी ही शक्तिशाली भावना शायद किसी और ही रूप में अभिव्यक्त हो। परन्तु लाजपत राय कवि नहीं थे। यद्यपि कुछ लोगो का ये वाक्य बचकाने से लगे होंगे परन्तु इनमें भावनाओं की बहुत तीव्रता है। मुझे इसका निर्णायक प्रमाण उस समय मिला, जब इसने भगतसिंह को बहुत प्रभावित किया। उ होने इसे उतार लिया और पढा बार बार पढा और अपत माधिया का पढकर सुनाया।

लालाजी के निर्वासन से लौटने के पश्चात् मने उन्हें बहुत निकट से अलग अलग मनोवेगा में उनके अन्तिम समय तक देखा था, मुने उनके भाषणा या रचनाओं में कोई ऐसी बात दिखाई नहीं देती, जो इतनी अधिक प्रबल भावुकता दर्शाने वाली हो। ऐसी स्थिति उनके साथ केवल निर्वासन में ही हो पाई। तीव्र भावुकता तो उनमें उती समय नजर आ सकती थी, जब वह बहुत ही ददनाक दृश्य से प्रभावित हात थे—उदाहरण के तौर पर जब उन्होंने अकालपीडित क्षेत्रों में लोगो को बहुत अमहाय स्थिति में और भारी सज्या में मरते देखा, परन्तु इनमें मदेह नहीं कि 'यग इटिया' के इस अग जैसी भावुकता बिल्कुल अलग बात है।

45. भारतीय स्थिति के बारे में चिंतन

जमनी की हार हो गई तथा मित्र राष्ट्र अपन पच-वर्षीय विश्वयुद्ध में विजयी हो गए 'ताकि विश्व को प्रजातन्त्र के लिए सुरक्षित बनाया जा सके।' भारतीय मनिषा न यूरोप तथा एशिया में विभिन्न युद्ध क्षेत्रों में अपनी वीरता का शानदार जौहर दिखाए थे और मित्र राष्ट्रों की विजय निश्चित बनाने के लिए भारत के साधनों का खुले हाथों खर्च किया गया था। विडम्बना की बात है कि उसके शमनका न भारत के लोगो का दबाए रखन तथा अपनी साम्राज्यशाही का और सुरक्षित रखन के लिए नए दमनकारी कानून बनाए। रोलट एक्ट और उसके बाद गांधी के नेतृत्व में घन आंदोलन, विदेशी शमनका द्वारा जलियावाला बाग कांड के रूप में इसका उत्तर भारत के लोगो के नता के रूप में गांधी का उभरना—यह सुविदित कहानी है। ब्रिटिश शासनो द्वारा समाचारों का दवान की अनतिक कार्रवाई के परिणामस्वरूप विदेशों में लोगो की जलियावाला बाग कांड के बारे में सही और पूरी जानकारी कई महीनों के बाद मिली। जब लाजपत राम ने अपन देशवासियों के कष्ट तथा निरादर की बातों सुनी, तो उनके लिए निर्वाचन सहन करना कठिन हो गया। सम्बद्ध ब्रिटिश अधिकारी (अमरीका में) कोई सहायता नहीं दे रहे थे। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भारत के लिए उनकी यात्रा की मनाही की जा रही थी या उसकी व्यवस्था में विलम्ब किया जा रहा था। उन्होंने अपने मन की बेदना एक 'सदेश' में बर्णन की है, जो उन्होंने भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित करन के लिए भेजा।

‘पंजाबियों के नाम सदेश’ शुरू होता है

“प्रिय मित्रो! मैं आपको कैसे बताऊँ कि पंजाब की वर्तमान स्थिति के बारे में मैं इस समय कैसा महसूस करता हूँ? मेरा जिल्ला भरा हुआ है, परन्तु मेरी जवान गूगी है। मैंने आपके पास पहुँचने का पूरा प्रयत्न किया है परन्तु मैं सफल नहीं हो पाया। मैं शहीद नहीं बनना चाहता, परन्तु मैं चाहता हूँ कि आपकी कठिनाइयों में मैं आपके काम आ सकूँ।”

उसके पश्चात् इस स्थिति में उनका चिन्तन आरम्भ हुआ, जिस ढंग से वह स्थिति को इतनी दूर से अनुभव कर सकते थे, वह अपने हमवतनता से कहते हैं, "मुनो, विचारो, निणय करो तथा दुःख हा जाओ।" वह अति कटुतापूर्ण ढंग से ब्रिटिश शासकों के बारे में शिकावा नहीं करते, बल्कि अपने देशवासियों के बारे में शिकायत करते हैं, जिन्होंने अपनी मातृभूमि का अपमानित किया है।

"मेरा हृदय बहुत बड़ु है, मेरी आत्मा बहुत दुखी है, अफसरशाही की कारवाहियाँ पर मेरा मन गुस्से से भरा हुआ है और इससे भी अधिक मुझ अपने देशवासियों के चरित्र तथा व्यवहार पर गुस्सा आता है। यह ऐसे देशवासियों के कारण ही है कि आप लोग का इतना कष्ट हुआ है आपका इतना निरादर हुआ है। बताया गया है कि पंजाब मत और उत्साहहीन है। सारा भावजनिक जीवन ठप हो गया है और प्रत्येक व्यक्ति भयभीत है। वकीलों ने 'राजनीतिक अपराधियों' के मुकदमों लड़ने से इन्कार कर दिया और समाचार पत्रों का प्रकाशन बंद कर दिया है। मित्रता, प्रेम, महानुभूति, बहुत्व तथा भाईचारे की भावना सब गायब हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी पड़ी है, चाहे बाकी सभी जहनुम में जाएं। मैं इस स्थिति की कल्पना कर सकता हूँ। मन इस प्रकार की स्थिति का कुछ रूप 1907 और फिर 1910 में देखा था। परन्तु इस बार तो चोट बहुत जारदार पड़ी है और इसने परिणामस्वरूप हम पूरी तरह पछाड़ दिए गए हैं।"

उन्होंने पंजाब के युवकों से आग्रह किया कि वे कष्ट झेलने वाले नेताओं का "साहस, नेकदिली और सन्धी आत्मा" से माथ दें।

उनके चिन्तन के फलस्वरूप सत्याजा के बारे में यह टिप्पणी आई

"फिर हमारे बीच कई ऐसे लोग हैं, जो नए और देशभक्त हैं और सत्याजी से सम्बद्ध हैं। यह बात याद रखिए कि सत्याए केवल उद्देश्य पूर्ति के लिए माघन मात्र हैं। वे हमारे लिए हैं, हम उनकी खातिर नहीं जो लोग नैतिक पक्ष से उच्च, जिम्मेदारी की भावना के प्रति जागरूक, आत्म-बलिदानी सिद्धांतों तथा उद्देश्यों के लिए बलिदान करने का तैयार

ह, वे सस्याए स्थापित कर सकते हैं, परन्तु जिन लोगों का नैतिक पतन हो चुका है, जिनमें बहुत्व की भावना लोप हो चुकी है और जिनमें मित्रो, सहयोगियों के प्रति शिष्टाचार और वफादारी नहीं है, जो समझौता करने तथा अवसरवादिता के लिए सदा तैयार रहते हैं और आपातस्थिति में सिद्धांत तब्दीन करने का तैयार रहते हैं, वे लम्बी अवधि तक सस्याओं की सेवा नहीं कर सकते। सस्याए तब तब न जान डाल सकती हैं, न प्रेरणा का स्रोत बन सकती हैं, जब तब जीवत और हिम्मत वाले व्यक्ति उनका नेतृत्व न करे। अपनी सस्याओं के साथ डटे रहो। उन्हें कायम रखो, बनाए रखो और जिस प्रकार भी दमको हर स्थिति में उनका साथ दो, परन्तु उन्हें हर कीमत पर बचाने के लिए कभी भी अपना सम्मान और उच्च प्रकृति को चिन्ता के सागर में न डुवाओ। इन सस्याओं, सख्याओं तथा व्यक्तियों की खातिर अपने साहस तथा उत्साह को न गिरने दो। अपनी हिम्मत को बुलंद रखो और उसे किसी भी ढंग से खराब तथा भ्रष्ट न होने दो।

जब उन्होंने ये वाक्य लिखे होंगे, तो उनके मन में कितना दब उठा होगा, क्योंकि जब हम यह स्मरण करते हैं कि जब से वह सावजनिक जीवन में दाखिल हुए थे, उन्होंने अपनी अधिकतम क्षमता से इन सस्याओं की सेवा की थी।

इस चिन्तन का परिणाम साम्प्रदायिक सस्याओं के बारे में इन टिप्पणियों के रूप में आया

“आप अपनी हिंदू सभाओं तथा मुस्लिम लीगा को अपना ध्यान आप करने दो। आपकी मुसीबतों के लिए वे बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। उनका आधार मिथ्या है। उनका प्रचार झूठा है, उनके उद्देश्य विपरीत हैं और उनकी सगति निरुत्साहित करने वाली है। धर्म, नस्ल और सम्प्रदायों के बारे में सभी विवादों को कुछ समय के लिए छोड़ दो।”

साम्प्रदायिक संगठनों की निन्दा के लिए लाजपत राय द्वारा कहे गए ये सबसे कड़े तथा कटु शब्द थे। निस्तदेह यह विशेष मंत्र बिताए गए उनके पाच वर्षों का बढ़ता हुआ प्रभाव था।

अमरीकी नारा व, पद्धति में, जो उन्होंने किसी हद तक अपना ली थी, अपने देशवासियों का संगठित होना शिक्षा देने तथा आन्दोलन करने का आह्वान किया। उन्होंने अपना उपदेश, इन शब्दों के सूत्र में दिया 'अनुप्या के समान व्यवहार करो।'

गांधीजी का श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा कि उनके ह्याल में 'गांधीजी इस समय आपके सर्वश्रेष्ठ नेता हैं।' यह चाहत थी कि उनके देशवासी उनकी (गांधीजी की) भावना अपनाएँ। अन्त में उन्होंने फिर भारत से अपनी अनुपस्थिति पर खेद व्यक्त किया।

"मुझे इस बात का खेद है कि मैं सीधे आपकी सहायता नहीं कर सकता, परन्तु मैं जबान, कलम तथा धन से जो भी कर सकता हूँ करूँगा, यद्यपि शारीरिक तौर पर मैं आपके साथ नहीं हूँगा। आपकी खातिर मैं भीख माँगूँगा, उधार माँगूँगा तथा चोरी करूँगा। मैं आपकी खातिर काम करूँगा और जो कुछ भी अर्जित करूँगा, आपका भेज दूँगा। बीसवीं शताब्दी के पजाबियों के लिए यह बात कहने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए कि उनकी आत्माएँ इतनी दुबल थी कि वे एक ही चोट में पूरी तरह कुबल दिए गए तथा इतने उत्साहहीन हो गए कि फिर से उनमें उत्साह पैदा न हो सके।'

इस संदेश पर हस्ताक्षर की जगह ये शब्द थे

'यह जा गम और दुःख में आपके साथ है।'

यूरोपियन युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही पजाब में स्थिति भड़कन लगी थी। प्रातः में अहिंसावाद प्रधान था। 26 मई 1913 को माईकल आंडायर जो प्रातः में 15 वर्ष के बाद लौटा था और पहले मूल रूप में जो छोटे पदा पर कार्य कर चुका था, सरकार के प्रमुख के रूप में आया था।

ब्रिटिश शासकों के व्यवहार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला था कि स्वयं गांधीजी जो युद्ध में ब्रिटिश लोगों की अपन दृष्टि से सहायता करते रहे थे, हताश हो गए थे। साजपत राय ने इस बात का स्पष्ट तौर से महसूस किया। एन० एस० हार्डिंगर ने लालाजी की गांधीजी के बारे में जो टिप्पणियाँ दी हैं वे इसी अवधि से सम्बद्ध हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बारे में उन्होंने कहा है

“वह एक उभरते हुए सितारे हैं। यह बात बार्ड नहीं कह सकता कि वह क्या प्राप्त करेंगे और कब। कुछ समय के लिए तो उस नायकम की दृष्टता होगा जो, वह आरम्भ करेंगे। वह जो भी शब्द कहेंगे या लिखेंगे, उनकी उचित ढंग में व्याख्या करनी होगी। उचित यह है, कि प्रतीक्षा की जाए और देखा जाए।”

भाहे वह घटाम्यन से बहुत दूर थे और अधिकतर उन्हें अमरीकी समाचार पत्रों में भारत के बारे में मंगित समाचारों से प्राप्त जानकारी पर निर्भर करना पड़ता था, फिर भी उन्होंने अवश्य ही गांधीजी के क्रिया कलापा का बहुत गभीरता से अवलोकन किया होगा और जब यह इस संदेश को लिखने बैठे होंगे, ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने नए नेता के बारे में पत्रों अनुमान लगा लिया होगा, जिस नए नेता को उन्होंने युद्ध के आरम्भ के दिनों में लड़ने की नोट के समय देखा था।

अपने लोगों में उनका सम्पर्क काफी लम्बी अवधि के लिए टूटा रहा था। यह ‘अवधि’ भी अन्त समाप्त हो गयी थी। उन्हें अवश्य अपने लोगों में आना ही चाहिए था। अमरीका में उन्होंने जो संस्थाएँ स्थापित की थीं, उनका जो प्रबंध यह कर सकते थे, कर दिया। परन्तु ब्रिटिश अधिकारियों ने उनका रास्ता रोक दिया और उन्हें पामपोट लेने के लिए बाकी संधर्ष करना पड़ा।

अंत में पामपोट प्राप्त करने का यह संधर्ष कठिन समाप्त हुआ, इसके बारे में फ्रांसिस हैविल ने बहुत रोचक प्रकाश डाला है

“यूनाइटेड में इन्ड के पासपोट कार्यालय में बीमा प्राप्त करने का उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ा। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं कि उनका नाम काली सूची में था। बाहरी कार्यालय में उनकी उपस्थिति में यथा-संभव क्लिप्त किया गया, क्योंकि ऐसा दिखाई पड़ता था कि उन्होंने ए. ए. अग्रज द्वारा पान को बहुत नाराज कर दिया था, जिसकी शक्ति का वर्णन शक्तिशाली ने अति व्यंग्यात्मक ढंग से अमर कर दिया है। जब भी लाजपत राय नामने जाने, वह महान अधिकारी जब तक उन्हें टकरोता रहता जब तक वह गुस्से से भरकर हवाश नहीं जात। यह ब्रिटिश साम्राज्य

द्वारा छेड़छाड़ करने का नीच घधा था और इससे बारे में वह दापहर के भोज के समय अपने आपको मित्रों के बीच गुस्से से फट पडने से न रोक सके। और फिर एक ऐसी बात हुई, जिससे उनके लिए सारा मामला मुलज्न गया। उम भोज में एक महिला भी उपस्थित थी, जिनका एक अग्रेज अधिकारी बहुत अधिक प्रशंसक था। अपने मित्र साजपत राय का इस प्रकार अपमानित किए जाने पर वह क्रोध से बिफर उठी और उन्होंने अपने प्रशंसक अधिकारी को बुलाकर यह बदतमोजी बन्द करने के लिए कहा। यह परेशानी तुरत समाप्त हो गई और वीसा जारी कर दिया गया। कुछ ही सप्ताह में साजपत राय इग्लड में थे और सफ्रेटरी फार इडिया से बात कर रहे थे।”

किस प्रकार एक अनधिष्ठित राजदूत, अमरीका में इतनी लम्बी अवधि के लिए इस स्थिति में रहने के बाद राजनयिक तौर-तरीकों से अलग रह सकता था।

एक लम्बी अनुपस्थिति के बाद 20 फरवरी 1920 को साजपत राय स्वदेश लौट आये।

अन्तिम जिनके लिए प्रथम बना था

.

46. कांग्रेस अध्यक्ष

लोगरी चार यह प्रश्न उनका सामना आया—क्या कांग्रेस अध्यक्ष पद का नाम अपन नाम के प्रचार की अनुमति दें? पुरानी समस्या अब नहीं रही थी, उनकी मिताचारिया से अलग न हाने की इच्छा और मिताचारिया का यह प्रयत्न कि उन्हें किसी-न किसी प्रकार अलग रखा जाए। कांग्रेस बड़ी तजी से एक सावजनिक आदालत बन रही थी। मिताचारिया की अब कोई खास गिनती नहीं थी। अमनगर-अधिवेशन ने यद्यपि कोई अतिवादी कार्यक्रम तयार नहीं किया, फिर भी उनके स्वभाव के अनुकूल ही यह एक जनप्रिय खेल था। गांधी के निघन के कारण उस गुट के साथ राजपत राय के संबंध का समान राजनीतिक दृष्टिकोण की बजाय व्यक्तिगत आदर के अधिक धे, टूट गए थे। 1907 के अनुपात का उन्हें कोई कष्ट नहीं था—कि मिताचारी उन्हें स्वीकार करेगे या नहीं, या उनकी नामजदगी से गांधी के लिए उलपन हागी। उनका 1914 के समान चिन्ता रही थी कि मिताचारी साठगाठ करके चालवाजी कर लेगे और उनके विदेश में हाने के कारण अपन गुट का कोई व्यक्ति आगे से आएगे—क्याकि अब किसी मिताचारी को कांग्रेस पर धापे जान की सम्भावना नहीं थी। अब यह आशका भी नहीं थी कि यह उस गुट का प्रतिनिधि माना जाएगा, जा दूसरे गुट के विरोधी के मुकाबले में खड़ा हा।

मिताचारी यद्यपि कांग्रेस की राजनीति में समाप्त होते जा रहे थे, फिर भी कुछ नई समस्याए उत्पन्न हो रही थी। अभी उन्हें भारत आए मुश्किल से तीन महीने हुए थे कि महात्मा गांधी ने अपना पहला घोषणा पत्र प्रकाशित कर दिया जिसमें मविनय अवज्ञा कार्यक्रम प्रतिपादित किया गया था। इस कार्यक्रम के लिए खिलाफत नलाआ ने गांधीजी के साथ मशविरा करके अपने आपका बचनतद्ध कर लिया था। एक प्रकार से मविनय अवज्ञा उनकी अपनी भावनाआ को, उनके अपन राजनीतिक दशन का, बहुत प्रशसनीय ढंग से व्यक्त करता था। परन्तु कार्यक्रम की कुछ बातों का अनुमोदन करने में उन्हें बहुत कठिनाई हो रही थी। इन सभी बातों से महत्वपूर्ण प्रश्न था—क्या लाग महात्मा गांधी के इस धुआंधार जन कार्यक्रम के प्रति महत्ता याग देंगे? दूसरे शब्दा में, क्या इसके लिए उपयुक्त समय जा गया था? व्यक्तिगत

बाता वा इतना अधिार महत्व नही था, परन्तु प्रत्येक बात व्यावहारिक गति के पक्के अनुमान पर निर्भर करती थी। वीत समय में उनके अपने संबन्ध उन्हें महाराष्ट्र तथा बंगाल के राष्ट्रवादियों के बहुत निकट लाते थे, परन्तु यह गांधी का एक नई शक्ति थे। गांधीजी के सत्ता जैसे व्यक्तित्व, उनके साहस, सादगी और सच्चाई के कारण, सात्ताजी उनका बहुत आदर करते थे और उन्हें भारत के सात्ता के लिए आदर्श नेता मानने लगे थे। ऐसा नेता जो व्यक्तिगत जीवन में जनता के समान हो और पैगम्बर के समान उनका मार्गदर्शन कर सके, जैसे भूमा ने अपने लोग का उन्हें मिस्र से निकालने के लिए किया था। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के उभरने पर गहरी उत्सुकता से नजर रखी थी और स्वदेश लौटने पर उनकी गतिविधियाँ का ध्यान से देखा था। जब युद्ध आरम्भ हुआ था तो सात्ताजी ने उन्हें इंग्लैंड में वापस देखा था तथा प्रतिभाशाली लोगों का संगठन करने के उनके उत्साह तथा लगन की प्रशंसा की थी, यद्यपि गांधीजी की राजनीति में वह भागीदार नहीं थे। बाद में गांधीजी के साथ सावजनिक तौर पर समाचार पत्रों में उनका मतभेद प्रकट भी हो गया था जो गांधीवादी राजनीतिक दशन के मूलमंत्र अहिंसा के सिद्धांत के बारे में था। परन्तु दृष्टिकोण में मतभेद होने के बावजूद वह गांधीजी के व्यक्तित्व तथा कार्य की सदा प्रशंसा करते थे। विशेषकर रोलट एक्ट के दिनों के बाद में वह गांधीजी की ओर अधिक आकर्षित महसूस करने लगे थे और अमरीका के लिए रवाना होने से पूर्व यह बात उन्होंने देशवासियों के नाम अपने मदेश में स्पष्ट शब्दों में कही थी। "वह (गांधीजी) हमारी इच्छा के अनुसार सही नेता हैं", ऐसा उन्होंने कहा था। फिर भी गांधीजी के नेतृत्व की किसी बड़ अभियान में परख नहीं हुई थी, जिसके आधार पर उन्हें उस युद्ध का फील्ड मार्शल नियुक्त किया जा सकता जिस शुरु करने की उन्होंने बात की थी। गांधीजी इस बात को जानने के लिए दब दिखाई देते थे कि जो अधिक अनुभवही हैं वे महयोग्य देते हैं या नहीं इस बात का भी संकेत था कि यदि बयोवृद्ध नेताओं ने सहमति व्यक्त नहीं की तो शायद उन्हें भविष्य में कठिनाई का सामना करना पड़े। यह चयन करना निश्चय ही आसान बात नहीं थी, और उनके लिए जो पांच वर्ष के लिए भारत से बाहर रहे थे यह कठिनाई विशेषतः पर थी। साजपत राय दल के गुटों से अलग रहने की पुरानी नीति पर कायम रहे। फिर भी ऐसा दिखाई देता था जैसे नए गुट बन रहे हैं। अंग्रेजों के तीसरे मफ्ताह में गांधीजी ने घोषणा-पत्र जारी कर दिया, जिसमें उन्होंने हमें मूल लोग के अध्यक्ष के तौर पर अपने वायक्रम की घोषणा की थी और तिलक ने नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी की ओर से एक अन्य घोषणा पत्र जारी

कर दिया। साजपत राय का इनमें एक या दूसरे गुट के साथ सम्बद्ध हान की कोई जरूरी नहीं थी।

मई 1920 के अंत में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक बनारस में हुई और उसने पहली बार अमृतसर के बारे में विचार किया। तिलक यद्यपि बनारस में थे, वह बैठक में शामिल न हुए। बनारस की बैठक ने निणय किया कि इस काय क्रम पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में कलकत्ता में विचार किया जाए।* दरअसल, अमृतसर में यह समझा गया था कि पंजाब को घटनाओं की जांच करने वाली कमेटी द्वारा तयार की जा रही रिपोर्ट पर विचार करने के लिए एक विशेष अधिवेशन की जरूरत होगी। यह रिपोर्ट तो पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उप-समिति की रिपोर्ट भी—और सरकार ने अपना निणय भी घोषित कर दिया था। इस बीच सेवन की शान्ति संधि पर हुस्ताफर हा गए थे और खिलाफत के बारे में मुसलमानों की आशंकाएँ सत्य सिद्ध हुई थीं। परन्तु पंजाब की घटनाओं तथा खिलाफत की ज्यादतियों का मिलाकर असहयोग आन्दोलन का जन्म हुआ था। अमृतसर अधिवेशन के बाद सुधार कानून (रिफॉर्म एक्ट) के अन्तर्गत नियम बनाकर प्रकाशित कर दिए गए थे और कई लोगों के विचार में इन नियमों ने माटेम्यू सुधारों का काफी बड़ा भाग छीन लिया था, जिसे अमृतसर अधिवेशन पहले ही "असलापजनक" तथा "निराशाजनक" घोषित कर चुका था। इन सब बातों पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में विचार किया जा सकता था और यह विशेष अधिवेशन मितम्बर 1920 के पहले सप्ताह में कलकत्ता में बुलाया गया था।

कांग्रेस की सांविधानिक मशीनरी ने शीघ्र ही काम आरम्भ कर दिया, ताकि उस अधिवेशन के लिए कांग्रेस अध्यक्ष चुना जा सके, जो उन असाधारण परिस्थितियों के कारण आवश्यक हो गया था, जो भारत तथा उसकी राष्ट्रीय कांग्रेस के सामने आई थीं। स्वाभाविक ही था कि कई लोगों के सामने लालाजी का नाम आया, क्योंकि लम्बी सेवा तथा बलिदान के जीवन को ऐसी मान्यता काफी समय पहले

* कुछ ही दिन बाद एक औपचारिक सम्मेलन असहयोग पर विचार करने के लिए इलाहाबाद में आयोजित किया गया जिसमें भारत के सभी प्रांतों का प्रतिनिधित्व था। गांधीजी ने मुसलमानों से व्यावहारिक रूप से समझौता कर ही लिया था तथा अपने अमृतसर कायक्रम को अंतराल का विषय बना लिया था। कांग्रेस चाहें तो कुछ भी निणय करे उनके लिए अब पीछे हटने का कोई पूजाइस नहीं बची थी।

ही दी जानी उचित थी। और भाग यह दृष्टा चाहत थे कि निर्वाचन के इतने वर्षों में उठती जा अनुभव प्राप्त किया है, उम्र में यह उन्हें क्या दन है। इसके अतिरिक्त हम विशेष अधिवेशन का पत्राचार के साथ हुई ज्यादातया व प्रश्न पर विशेष तौर से विचार करता था और इसलिए "महात्मा पत्राची" अध्यक्षीय पद के लिए बहुत ही उपयुक्त रहता।

अपना नाम का प्रस्ताव भी किया गया—उनमें स्पष्ट तिरक का नाम भी था। 24 जुलाई का उम्र पत्र के कांग्रेस अध्यक्ष माती लाल नेहरू की आर से जायदाद तार मिला 'तिलक न निश्चित रूप में मना कर दिया है। आपके अलावा और कोई उपयुक्त नहीं'। 27 जुलाई को नेहरू ने शंकराचार्य से फिर तार दिया (जहाँ एक बड़े मुकदमे में वह तथा प्रतिपक्ष के वकील के रूप में सी०आर० दास स्पष्ट थे) 'आप विधायक विशेष कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गए हैं। यहाँ'। परन्तु वह अब भी अनिश्चित थे, क्योंकि चुनाव में कोई सर्वसम्मति और न ही स्पष्ट बहुमत का संकेत दिया था। परन्तु किसी भी आर में उनके नाम का विरोध न हुआ, जिस प्रकार 1907 या 1914 में देखा गया था। उद्देश्य कई मित्रों से सलाह ली और फिर भी कई रोज तक निर्णय न किया। उनके कांग्रेस में 'ट्रिप्लिन लाहौर के सम्पादन कालीनाथ राय तथा उनके पुराने मित्र मूलराज के पत्र हैं—दोनों पर 28 जुलाई की तिथि है और दोनों में उहाँ स्वीकार करने के लिए जायदाद दिया था।

'स्पष्ट बहुमत के दिन समाप्त होने जा रहे हैं और वर्तमान स्थिति में, जो साथ पूणतया आपके चुनाव के पक्ष में है, शायद वे भी और ही विचारों के कारण रुक गए हों, जिनका आपके दावा से मिलुल सम्बन्ध नहीं'। यह बात राय ने कही थी। और मूलराज ने कहा कि अध्यक्ष का नाम दायित्वहीन नहीं होगा और उद्देश्य सक्षिप्त रूप में उन बड़ी शक्तियों की चर्चा की जो उन्हें (कांग्रेस को) चुनने के लिए तुली हुई थी, परन्तु उद्देश्य विभिन्न तौर पर सलाह दी, 'शायद हमारे मित्र लाला हरविशान लाल के शब्दों में सबसे उपयुक्त यही है कि हम यह मामला उच्च शक्तियों के हाथों में छोड़ दें'। इन सबसे अधिक, बंगाल के राष्ट्रवादियों की इच्छाओं को, जिनके प्रति उनके मन में बहुत आदर था और वे ही मेजबान थे, 29 जुलाई को एक तार द्वारा सूचित किया गया

“बंगाल का बहुमत पूरी तरह आपने चुनाव का समर्थन करता है। स्वीकार कर लो—बौधरी।” (यह सर आशुतोष बौधरी थे, जो कुछ समय पहले बनबत्ता हाई कोर्ट के जज के पद से मुक्त हुए थे और बलबत्ता में कांग्रेस की गतिविधियों में विशिष्ट भाग ले रहे थे)।

इस प्रकार वह बलबत्ता में एक मास के अंदर होने वाले विशेष अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए सहमत हो गए।

इस अवसर पर तिलक के देहात में (1 अगस्त 1920) उठाया और बढ़ा दी। इससे भारत का शोकाकुल हो गया, परन्तु यह जन सागो के लिए विशेष आघात था, जो अमर्याद के नए कार्यक्रम में अभी भी अलग थे। वे उभरे मुक्तियुक्त विचारों तथा नतृत्व की आवश्यकता का बहुत बुरी तरह महसूस करते थे। लोकमान्य के स्तर के नेता के बिना किसी भी समय बहुत बड़ी शून्यता उत्पन्न हो सकती थी, ऐसे ताजुक अवसर पर यह शयता अवश्य ही राजनीतिक स्थिति का बहुत महत्वपूर्ण तत्व थी। लाहौर में कांग्रेस के एक अधिवेशन के अवसर पर प्रथम भेद में लेकर, जो कोई भी मध्यम पहले हुई थी, लाजपत राय तिलक की आर आकर्षित महसूस कर रहे थे। समय बीतने के साथ यह अदृश्य मध्यम, जो किसी शक्तिशाली व्यक्ति के कारण पैदा हुआ था, और अधिक मजबूत हो गया था। उनके राजनीतिक मत का मूल शायद समान था, परन्तु समय की नीतियों में कभी कभी मतभेद होता आवश्यक था और कई धार में मतभेद बहुत तीव्र हात थे, जग 1907 में मूरत में हुए। विशेष बात तो यह है कि उनके प्रति तिलक का आकर्षण कभी कम नहीं हुआ, चाहे मतभेद बहुत ही तीव्र दिखाई देते रहे हों। मूरत में कांग्रेस का मतभेद पक्षपात करने से इंकार कर दिया था तो वह तिलक के कुछ अन्यायियों के मत से उतर गये थे परन्तु मूरत एक अमिट चित्र की छाप छोड़ गया जिससे कांग्रेस का घात बनी रही और जिसे वह बड़ी प्रभावता से माह बनाये—वह थी। मूरत के दृश्य पर तिलक का छाये रहना। अपनी आर ग विचारों के साथ ही उन्होंने ही अद्वितीय मदभावना दिखाई और लालाजी साहनी महसूस करने पर ही मूरत में सबका मे कभी भी किरति न जाई है। अमर्याद प्रथम में ही 1915 1916 की 43 किसी अन्य भारतीय नेता से उतना समर्थन न मिले, जिससे ही मूरत में ही था। उन्होंने किसी गुट के साथ औपचारिक मौर पर मूरत में ही मौर 1916 में मूरत किया, परन्तु उनका राजनीतिक मत निराले ही मूरत में ही था। विशेष गोखले के निधन के बाद वह तिलक के मूरत में ही मूरत में ही मूरत में ही

हो गए थे, लेकिन प्रमुख की मृत्यु के बाद भी क्या उम गुट के साथ उनके स्नेह और वफादारी के संबंध बने रहने वाले थे ? गुट के अन्दर भी अपन तौर पर यह प्रश्न उभरा कि उसका नेता कौन होगा और कुछ का विचार था कि महाराष्ट्र से बाहर का कोई नेता हा और उनका मनेत पंजाब के नेता की ओर था जिसका राज नीतिव दृष्टिकोण के जानते थे और जो अय किसी भी प्रमुख भारतीय नेता की तुलना में उनके नेता के दृष्टिकोण से अधिक मिलता था । तिलक के दहान्त के कुछ समय बाद यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि यद्यपि महात्मा गांधी जाद देकर यह कहत थे कि यदि लोकमाय जीवित होते, ता वह उनके आदोलन का आशीर्वाद देते । फिर भी तिलक गुट गुजरात के इस नए नेता के साथ ठीक तरह व्यवहार नहीं कर रहा था और न ही उनके नए उपदेश के प्रति, जिसका वह प्रचार कर रहे थे । इसमें साजपत राय के लिए गांधीजी तथा उनके असहयोग आदोलन के प्रति निश्चित रूप से बाध्य होने में कठिनाई और बढी थी । अभी उनके लिए परिस्थिति को कुछ और समय के लिए निकट से देखना था ।

कलकत्ता में अपन अध्यक्षीय भाषण में भी उन्हाने अपन आपको असहयोग कायन्त्रम के पक्ष या विरोध के लिए बाध्य न किया और भविष्य में आने वाले अध्यक्षता को भी यही सलाह दी कि किसी प्रकार के विवाद में तटस्थ रहने का क्या लाभ है ।

“किसी ऐसे प्रश्न के बारे में जिस पर सारा देश स्पष्ट तौर से बटा हुआ हा, जिस प्रकार हमारे समक्ष उपस्थित मुद्दे पर है अध्यक्ष का कांग्रेस के निणय का पूर्वानुमान लगाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये ।

‘असहयोग कायन्त्रम के प्रश्न के बारे में मरी अपनी राय है परंतु कांग्रेस अधि वेशन के दौरान मैं निष्पक्ष रहकर कारवाई का संचालन करूंगा ।”

(‘विशेष अधिवेशन’ के अध्यक्ष के रूप में उनके लिए इस कथा के अनुसार चलना आता था, क्याकि इमका कायकाल अधिवेशन के साथ ही समाप्त हो गया) ।

यद्यपि बहुत कम समय रह गया था—भुक्ति से एक महीना—जब उहान इम पद के लिए स्वीकृति दी, अध्यक्षीय भाषण काई 50 हजार शब्दों का जोरदार भाषण था । यह एक बहुत लम्बा काम था और अपने ढंग में उत्कृष्ट भी । वह तैयार भाषण देन वाला म नहीं थे क्याकि, वह अपने याताजा के साथ लगातार परिसवाद की स्थिति बनाए रखत थे । खुशकिस्मती से उनकी स्मरण शक्ति न

उनकी इस समस्या का समाधान कर दिया। उन्होंने 50 हजार शब्दों का यह भाषण दते समय छपे हुए भाषण का बहुत ही कम सहारा लिया, इस प्रकार की वक्तुता शक्ति से बहुत से श्रोता आश्चर्यचकित रह गए।

इस भाषण का तीनों चौथाई भाग पंजाब के कण्ट की लम्बी दास्ता के बारे में था, जो उसने ओ'डायर के शासन में झेले थे और जिसके परिणामस्वरूप माशल ला का दमन चढ़ चला था। जबसे उन्होंने पंजाब के अपमान तथा कण्ट की खबरें सुनी थी, उनके मन में जा पीड़ा उठ रही थी, वह उन्होंने अपने भाषण में उड़ेल दी। उन्होंने भाषण का आरम्भ ओ'डायर शासन के शुरू की कुछ घटनाओं की चर्चा से किया। उन्होंने याद दिलाया कि जब बका का सकट उत्पन्न हुआ था, तो पंजाब नेशनल बैंक के निदेशक के तौर पर उनका व्यक्तिगत अनुभव क्या था।

“यूरोपियन सस्याभा को सुरत तथा उदारता से सहायता दी गई थी, परन्तु भारतीय सस्याभा को समय पर सहायता न देकर डूब जाने दिया गया—ऐसा शायद नतिक प्रभाव के लिए किया गया था। बको के सकट ने हमें अहसास दिलाया, शायद इससे पूर्व ऐसा अहसास नहीं था कि वर्तमान शासन प्रणाली ने हमें बहुत ही असहाय स्थिति में पहुँचा दिया है। हम उस स्थिति को बहुत गहराई से महसूस करते थे, जिसके कारण विदेशी पूजीपतियों के लिये यह सम्भव हो गया था कि वे हमारे ऊपर अपनी पद्धति लागू करने के अलावा अपनी शक्तें तथा व्यापार भी हम पर लागू कर सकें, उसी घन में, जो सरकार ने राजस्व के रूप में हमसे ही वसूल किया था। जब औद्योगिक आयाग ने पंजाब का दौरा किया, लाला हरकिशन लान ने अपनी गवाही में यह सारे तथ्य उसके सामने रखे और जब आयाग के एक सदस्य ने उनसे यह पूछा कि क्या वह जानते हैं कि वह क्या कह रहे हैं, तो उन्होंने ज़ारदार 'हाँ' में उत्तर दिया।”

अपने श्रोताओं के सम्मुख इसी तान में उन्होंने ओ'डायर के सारे शासन-काल की चर्चा की, ताकि यह दिखाया जा सके कि 'यह आरम्भ से अतः तब आतङ्कवाद और भय का शासन था और अप्रैल मई 1919 में उसे अपनी चरम स्थिति तक पहुँचा दिया गया था।' माटेग्यू के शब्दों में (जनरल डायर के बारे में) जो विचार सर माईकल ओ'डायर ने अपने समक्ष रख लिये थे, वे थे—“आतङ्कवाद, निरादर, अधीनता और माशल-ला की घोषणा करने तथा इसे लागू करने के बारे में वे चरम सीमा पर पहुँच गए थे।” उन्होंने माशल-ला की कारवाइयों

का अध्ययन किया और यह निणय दिया कि "पजाव मे जो भी व्यक्ति माशल-नां लागू किए जाने के लिए तथा इसके दौरान तथा बाद मे होने वाली घटनाओं के लिए जिम्मेदार थे, सर माईकल उनम से प्रमुख दोषी थे ।" "असल म मैं तो यह कहने का साहस बर्णा कि भारत मे सारे ब्रिटिश शासन के दौरान इतिहास मे किसी भी व्यक्ति ने ब्रिटिश साम्राज्य को इननी हानि नहीं पहुंचाई और ब्रिटिश कौम की नेकनामी को दाग नहीं लगाया, जितना सर आं'डायर ने किया ।"

उन्हान ओ'डायर के विरुद्ध वाक्यायदा आरोप पत्र तैयार किया, जिसमे लगभग बारह आरोप थे— जानबूझकर 'भेदनीति' अपनाई, साम्प्रदायिक, शहरी तथा देहाती लोगो मे मतभेद को बढावा दिया, भर्ती और युद्ध-कोष के सबध मे अपन अभियान के लिए अपने अधिकारो का दुरुपयोग किया और जा व्यक्ति उस के 'पाशविक तथा भयकर' कार्यों मे उसकी कठपुतलिया बनने के दापी थे, उन्हें संरक्षण दिया, ऐसी स्थिति पदा करन के लिए कि माशल ला लागू करने की प्रापणां हो । उन्हाने ओ'डायर पर आरोप लगाया कि उसने भारत सरकार को गुमराह किया तथा जान-बूझकर घोषा दिया ताकि इसके लिए स्वीकृति ली जा सके और माशल लों जारी रखन के लिए उसन जान बूझकर हेरा-फेरी की । आरोप-पत्र म उसे पाशविक आदश लागू करने तथा माशल ला आदशा के अधीन पाशविक सजाए देने के लिए भी जिम्मेदार ठहराया गया, जिसके लिए उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्वीकृति दी । उन्हाने यह आरोप भी लगाया कि वह "जलियावाला कत्लेआम की घटना के लिए भी जिम्मेदार था", क्योंकि उसन इसके लिए बिनLशत स्वीकृति दी थी । आरोप पत्र की अन्तिम वात यह थी कि जो डायर ने अपना पद छोडने से पूर्व 'गरकानूनी ढग से तथा जवरी प्रशसा पत्र प्राप्त किए कि उसकी सेवाए शांनदार थी—ये प्रमाण पत्र उसने अपनी सफाई के लिए इंग्लैंड मे गैरकानूनी ढग से इस्तेमाल किए । लाजपत राय ने जा आरोप लगाए, उनके समबन मे प्रमाण भी जुटाए । उनके भाषण का बडा भाग म प्रमाण ही थे, जिसके लिए उन्हाने ओ डायर के अपने बयना स ही उद्धरण दिए । जो डायर के कायनास के आरम्भिक समय के बारे मे प्रमाणा के लिए उन्हाने अपनी निजी जानकारी का आधार बनाया । बाद के काल के लिए उन्हाने ये प्रमाण उन तथ्या से लिए कि किस प्रकार ओ' डायर न युद्ध के लिए भर्ती की तथा किस तरह 'स्वेच्छा' से चदा लिया । जारशाही ढग से 'घटुयत के मामले बनाए तथा उनका निपटारा किया । इसके अतिरिक्त उन्हाने हटर रिपाट तथा कांग्रेस उप् समिति की रिपोट का, जो माशल लों की

गडबड से सम्बन्ध थी, तथा दा प्रमाणिक स्रोत पुस्तकों का इस्तेमाल किया, जो प्रमाणा से भरपूर थीं।

बाद में ओ'डायर न सर शकरन नायर के विरुद्ध मानहानि का मुकदमा जीत लिया और दावा किया कि इस तरह उसका पक्ष ठीक सिद्ध हुआ है। असलियत यह थी कि शकरन नायर के पक्ष में एक बहुत बड़ी बाधा यह थी कि वह आ डायर के गलत दावों में अप्रत्यक्ष तौर से भागीदार रहे थे, क्योंकि वह भारत सरकार के सदस्य थे। भारत सरकार ओ'डायर के सामने बहुत कमजोर सिद्ध हुई और हकीकत यह है कि सर शकरन निराश होकर नौकरी छोड़ गये थे और इस प्रकार उस विवाद में एक पक्ष बन गये थे, जो ओ'डायर के लिए लाभप्रद ही था। बने इस सारी बात का अर्थ इतना ही था कि भारत सरकार ने कभी भी उसका हाथ नहीं रोका था। परन्तु यदि वह अपने आप को सही अर्थों में ठीक सिद्ध करना चाहता था तो उस कांग्रेस उप समिति के विरुद्ध मानहानि का दावा करना चाहिए था, या शायद हुटर समिति के अधिकांश सदस्यों के विरुद्ध मुकदमा चलाने की आज्ञा लेनी चाहिये थी और इस सबसे अधिक उसे लाजपत राय पर मुकदमा दायर करना चाहिये था, जिन्होंने अन्य सभी लोगों के मुकदमों और अधिक जोरदार शब्दों में उसके विरुद्ध गभीर आरोप लगाए थे। पंजाब ने, जिसे ओ'डायर ने आतंकित किया था, लालाजी के माध्यम से, उसके विरुद्ध उसकी गलत कारवाइयों के लिए आरोप लगाए थे और इन आरोपों को कभी चुनौती नहीं दी गई थी।

पंजाब के साथ की गई ज्यादतियों के अतिरिक्त विशेष अधिवेशन को दो अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना था—तुर्की की शांति संधि तथा माटेग्यू सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए बनाए गए नियमों पर। सुधारों के बारे में उन्होंने अपनी योजना को संक्षेप में, किंतु स्पष्ट रूप से, एक वाक्य में समाप्त कर दिया।

“1918 में यह आंशिक तौर पर उल्लास की बात थी, 1919 में यह विवाद बन गई और 1920 में इसने निराशा का रूप ले लिया।”

जो कुछ 'उल्लास' उनके मन में उत्पन्न हुआ था, जब मैक्रेटरी आफ स्टेट और वाइसरॉय की संयुक्त रिपोर्ट आई थी, वह रिपोर्ट द्वारा कानून का रूप लेने पर बिल्कुल भाव्य हो गया और जब इस कानून को लागू करने के लिए नियम बनाए गए तो यह और अधिक निराशा का विषय बन गया। उन्होंने अपने लोगों से यह निश्चय करने को कहा कि “वह पूरी रोटी चाहते हैं, उसका आधा टुकड़ा नहीं।

आज मुझे यह विश्वास होता कि इस आधे भाग का चयन अफसरशाही ने नहीं किया, ता मैं उस आधे भाग को लेने से भी इकार न करता। यह अफसरशाही मिलावट और पकाने में इतनी दक्ष है कि जो आधा भाग वह रखना चाहती है, उसी में सारे पौष्टिक तत्व हैं और बाकी का आधा भाग भूसे से भी बुरा है। वे इतनी कौशल से व्यवस्था करते हैं कि आटा गूँघते समय उस आधे भाग में रोग के कई कीटाणु डाल देते हैं, जो आपको देने का प्रस्ताव है।

इसे सौभाग्य ही कहा जाना चाहिए कि हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, शहरी और वंहाती, ब्राह्मण तथा गैर ब्राह्मण, स्वदेशी तथा विदेशी, ब्रिटिश नागरिक तथा देशी रियासतों के रहने वाले सैनिक तथा असैनिक का जो भेद नियमा तथा अधिनियमों में रखा गया है, उसके हात हुए भी, हम एक राष्ट्रीय भावना उत्पन्न कर सकें और एक स्वतंत्र राष्ट्र के तौर पर जीने और प्रगति करने योग्य हो सकें।”

तुर्की की सधि के बारे में वह बहुत जोरदार ढंग से तथा बुद्धिमत्ता से बोले। इस प्रश्न के धार्मिक पक्ष ने उनका अधिक समय नहीं लिया।

“श्री लेलैंड वक्सटन के शब्दों में यह कोई विशेष महत्व की बात नहीं कि यह प्रोफेसर या वह डाक्टर इस बारे में क्या सोचता है कि मुसलमानों का क्या विश्वास है। महत्व की बात तो यह है कि सुनी मुसलमानों की बहुसंख्या यह सोचती है कि तुर्की का सुल्तान उनका खलीफा है और मुसलमानों का हित इसी में है कि वह बड़े, शक्तिशाली और स्वतंत्र देश का प्रमुख हो। मुस्लिम कानून की पुस्तकें इस राज्य की सीमाएँ निर्धारित करती हैं।”

केवल धार्मिक पहलु के धार में अन्तिम निष्पत्ति उस मत के अनुयायियों का होना चाहिए

“तब हम यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि इस मामले में केन्द्रीय खिलाफत समिति ने जो निष्पत्ति दिया है, वह सही है। यह मामला हमारे मुसलमान हमवतनों को निपटाना है और इस बारे में उन्होंने निष्पत्ति कर दिया है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने भारतीय मुसलमानों से जो इकारार किए थे, शान्ति-सधि का समय आने पर उन वायव्यों का रद्दी की टाकरी में फेंक दिया गया, इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि भारतीय मुसलमानों

म "तुर्की शांति संधि इस्लाग के मूलभूत सिद्धाता का धार उल्लघन करती ह, उनके धार्मिक दायित्व निमाने म बाधा डालती है और उस राष्ट्र के साथ मैत्रीपूर्ण सन्ध बनाए रखना अगभव करती है, जो उमका कारण है।"

शांति संधि क राजनीतिक परिणाम और भारत की समस्या पर उमके अप्रत्यक्ष प्रभाव (केवल भारतीय मुसलमाना पर ही नहीं) के बारे म उन्हें बहुत कुछ कहना था

'परंतु मेर अनुमान म तुर्की शांति संधि म कई और मामले भी शामिल है, जिन पर विचार करने की आवश्यकता है। म तो यह कहता हू कि एशिया म ब्रिटिश शासन का और विस्तार भारत के हिता के लिए हानिकर है और मानवजाति की स्वाधीनता के लिए घातक है। ब्रिटिश शासकों ने एशिया और अफ्रीका के कई क्षेत्रों को जीतने के लिए बार बार भारतीय सैनिकों का इस्तेमाल किया है। बहुत समय के लिए यह अलिखित कानून रहा है, जिसका यूरोप के सभी शासकों ने पालन किया कि यूरोप के किसी भी युद्ध में गैर-यूरोपियन सैनिक इस्तेमाल नहीं किए जाएंगे। पिछले युद्ध म इस कानून को समाप्त कर दिया गया। मित्र राष्ट्रा द्वारा युद्ध से पूर्व तथा बाद म अफ्रीकी तथा भारतीय सैनिक इस्तेमाल किए गए। काले सैनिकों ने जमनी पर बच्चा किया और कुछ समय के लिए आयरलैंड म भी रहे। निम्नदेह म घृणाजनक सामाजिक प्रतिबंध हटाए जान के विरुद्ध नहीं। उम दृष्टि से तो मैं उमका स्वागत करता हू, परन्तु उससे निश्चय ही सँयवाद की गभावना बडती है।"

विस्तृत सभावनाए शायद कई व्यक्तियों की समक्ष म न आई हो।

"यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादिया को भारतीय सना मिल, ईरान, अरब, मसा-पाटेमिया, सीरिया आर मध्य-एशिया म इस्तेमाल करने मे कई सकोच नहीं, तो उन्हें इन देशों से भर्ती की गई सेना का हमारे विरुद्ध इस्तेमाल करने मे क्यों मकाव होगा? यदि यह सत्य सिद्ध हो जाए ता हिंदू मुस्लिम समस्या दम गुनी अधिक गभीर तथा खतरनाक हा जाएगी।"

इसके विपरीत, "यदि इन देशों की मुस्लिम जनमख्या ब्रिटिश बच्चे का विराध जारी रखे, जो समभव है कई वर्षों तक जारी रहेगा, तो इन क्षेत्रों मे उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिए भारतीय सेना लगातार बहा रखी जाएगी। इसका अर्थ है कि हमारे मानवीय तथा आर्थिक साधना पर समाप्त न होने वाला व्यय होता रहेगा।"

उहें इस बारे में कोई भ्रम नहीं था कि लीग आफ नेशंस अलग अलग देशों के बीच नया सौहार्द पैदा करेगी — "सज्जनी लीग आफ नेशंस जैसी कोई वस्तु नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ही लीग ह।"

उन्होंने खिलाफत के साथ अत्याचार की बात दृढ़ता से की और पंजाब में साथ हुई ज्यादती की बात पूरे जोर से कही, परन्तु जैसा हमने कहा है, वह इन दाना के परिणाम के बारे में चुप रहे, वह था इन ज्यादतियों को दूर करने के लिए महात्मा गांधी का असहयोग कार्यक्रम। गांधीजी का अली भाइया तथा कई अन्य मुस्लिम नेताओं ने समर्थन किया और आखिरकार अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पण्डित मोती लाल नेहरू ने भी। मोती लाल छोटा सा परिवर्तन चाहते थे—कि स्कूलों तथा अदालतों का बहिष्कार धीरे धीरे किया जाए—और यह सशोधन करवाने के बाद, असहयोग प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, जो स्वयं गांधीजी ने रखा था। विपिन चंद्र पाल ने एक सशोधन रखा, जिसका सी० आर० दास ने समर्थन किया। दरअसल, गांधीजी के कार्यक्रम का विरोध करने का नेतृत्व दास ने हिस्से में आया। तिलक का देहावसान हो चुका था। साजपत राय अध्यक्ष की निष्पक्षता से ही संतुष्ट थे। इस प्रकार दास ने बंगाल और महाराष्ट्र के राष्ट्रवादियों का इस कार्यक्रम का विरोध करने में नेतृत्व किया। विपक्ष समिति में यह प्रस्ताव बहुत कम बहुमत से, अर्थात् केवल सात मतों के अन्तर से, पास हुआ, परन्तु पूरा अधिवेशन में गांधीजी ने भारी बहुमत से विजय प्राप्त की। मतदान व्यापक रूप से हुआ। इस उद्देश्य के लिए पण्डाल खाली करवाया गया और मतदान को, जो स्वयं अध्यक्ष की निगरानी में हुआ, छ घंटे लगे। कुल 1,855 मत गांधीजी के प्रस्ताव के पक्ष में तथा 873 सशोधन के पक्ष में आए। समापन अधिवेशन में साजपत राय ने कुछ शकआए व्यक्त कीं, शेष अधिवेशन से वह वीस ही निष्पक्ष आए जैसे गए थे।

असहयोग के सिद्धांत से वह हृदय से सहमत थे। बलकला कार्यक्रम के साथ भी एक प्रकार से उनका कोई विरोध नहीं था। यह तो जिसे ब्यौरा कहा जा सकता है उसी पर ही वह अड गए। परन्तु उन्होंने यह आवश्यक समझा कि अपने अनुनायकों के बारे में स्पष्ट कर दें। 'बफादार' लोग सरकार की आर से दिए गए खिताब तथा अवकरण तौटाने को तैयार न थे, परन्तु यह बात अच्छाई में ही थी कि अन्य लोग इस भीड़ से निकल जाए और लागों की आपा में इसकी साथ गिने जाने दें। यदि बनीला की भारी मझ्या अदालतों का बहिष्कार कर दें, तो लागों का जाएगा कुछ नहीं, बल्कि उन्हें बहुत बड़ी प्राप्ति होगी। उनका अपना भी फिर

से बकावत आरम्भ करने का कोई इरादा नहीं था और अपन अनुभव से उन्हें पता था कि ब्रिटिश न्याय प्रणाली ने क्या हानि की है। राष्ट्रवादी गुट ने गांधीजी के वाद्यत्रम के अय आलाचको के लिए विधान मण्डला का बहिष्कार सबसे दडी बाधा थी, परन्तु यह मुझाव स्वय साजपत राय न दिया था और गांधीजी ने इसे शामिल कर लिया था। कलकत्ता अधिवेशन के बाद उन्हें अपना विचार बदलने का कोई औचित्य दिखाई न दिया। शिक्षा के बहिष्कार को वह आसानी से स्वीकार न कर सके। राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य के लिए वह अपनी दृष्टि के अनुसार काय करत रहे थे, उसी समय से जब से वह एक युवक के तौर पर सावजनिक जीवन में शामिल हुए थे। भारत में तथा विदेश में उन्होंने बहुत-सा समय राष्ट्रीय शिक्षा से सम्बद्ध समस्याओं का सावधानी से अध्ययन करने में लगाया था। चोटी के बहुत ही कम नेताओं ने इन समस्याओं के अध्ययन में जो समय लगाया था, वह साजपत राय द्वारा इस उद्देश्य के लिए लगाए समय से आधा भी नहीं था। अपने अनुभव तथा अध्ययन को उन्होंने 'द प्राब्लम आफ नेशनल एजुकेशन इन इंडिया' में प्रस्तुत किया था जिसकी पाण्डुलिपि वह भारत सौटने से पूर्व अग्नेज प्रकाशक को सौंप आए थे। उन सस्याओं से, जिन्हें धनान में उन्होंने बडी सगन से सहायता दी थी, जो निराशा तथा बट्टु अनुभव उन्हें हुए, उसे देखत हुए कोई व्यक्ति उस हानि को गहराई तथा गभीरता से नहीं समझ सकता था, जो गलत शिक्षा, प्रणाली ने लोगो का पहुचाई थी। फिर भी वह स्कूली शिक्षा से राष्ट्र के लागा को होने वाले लाभ को देखत हुए इसे समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे।

वाद्यत्रम के विभिन्न गुणा के अतिरिक्त उह जिम बात की चिन्ता थी वह थी— क्या इसके लिए उपयुक्त समय है? गलतिया का कोई महत्व नहीं, यदि बगुले के समान अभियान, लागा के सही तथा ऋड समथन व साथ मफन हो जाए, कागजो पर बनाई गई पूरी तरह सफन योजना बिल्कुल असफल हो सकती है, यदि उसे लागा का मन स्वीकार न करे। इसलिए वह इस बात का उचित समझते थे कि घटनाचक्र की प्रतीक्षा की जाए तथा उसका अध्ययन किया जाए। वह आंदोलन में न बूदे, परन्तु जो लाग इसमें शामिल हुए न उनकी आलोचना की और न निन्दा। "मुझे आत्म त्याग के इस निणय में देश से समथन प्राप्त होने के बारे में संदेह है। मैं आंदोलन की प्रगति में बाधा डालने वाली कोई बात नहीं करूंगा। मैं आपके लिए सफलता की कामना करता हूँ और यदि आपके लोगो का समथन प्राप्त हो जाता है, तो मैं आपका उत्साही समथक हूँगा।" यह बात

गांधीजी ने (तिलक की मृत्यु के बाद) असहयोग आन्दोलन के बारे में तिलक के व्यवहार के बारे में कही। उस समय लाजपत राय का रवैया भी कोई भिन्न नहीं था। एक बात के बारे में वह अपने मन में पूरी तरह स्पष्ट थे—'एक घण्टे के अंदर स्वराज' संभव न होने की बात। वह उन आशावादी लोगों में से नहीं थे, जिनका यह विश्वास था कि यदि वह कलकत्ता-कायक्रम को एक घण्टे के लिए कार्यान्वित कर दें, तो सरकारी तन्त्र ठप्प हो जाएगा और भारत पर शासन करने की ब्रिटिश दृढ़ता टूट जाएगी। वह भली भांति जानते थे कि स्वराज के लिए सघन काफी सख्त और लम्बा होगा और कलकत्ता-कायक्रम अधिक से अधिक प्रारम्भिक चरण हो सकता है। 'स्वराज तर्क आप प्रतीक्षा करें' का नारा जनोत्तेजक नेताओं के लिए आकषक हो सकता था, परन्तु उनके विचार में राष्ट्रीय नेताओं के लिए बुद्धिमत्ता की बात नहीं थी कि वे राष्ट्रीय राजनीति को ऐसे नारों पर आधारित करें, जो ऐसी आकांक्षाएँ उत्तेजित करें, जिनके पूरा होने की संभावना कम ही हो।

47. असहयोग

साहोदर सोटकर यह घुपचाप उम नाय म जुट गये, जाँ उन्होंने अमहयाग अधिवेशन म पहले अपन हाथ म निया था । वह अपन उद दैनिक 'बन्द गातरम्' के लिए काय करत थे और उन्होंने 'राजनीति की तिलक विचारधारा' (तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स) की याजना आरम्भ कर दी, जिमकी धायणा उन्होंने पहले ही कर दी थी । वह उन स्कूल के लिए धन एक्कन करन जान थे, यद्यपि वह छात्रा को बालिज छाड दन के लिए नहीं बहका रहे थे, बल्कि मह साचते थे कि यदि उनम से कुछ ने 'असहयोग' किया, ता गभव ह उन्हें ठास राजनीतिक प्रशिक्षण देन के लिए स्कूल को अच्छा अवसर मिल जाए ।

पञ्जाब म अमहयोग अभियान मही अर्थों म शुरू होता दिखाई नहीं दता था । पञ्जाब कांग्रेस समिति ने इसके लिए काफी उत्साह न दिखाया, इसलिए संपुद्दीन विचनू, के० सधानम आर सारदूस सिंह बबीश्वर ना सखि बनाकर एक तदर्थ असहयोग समिति गठित कर दी गई । ये तीना व्यक्ति तथा रामभज दत्त चौधरी और सरला देवी असहयोग अभियान के प्रमुख नेता थे । कुछ समय बाद कुछ बालिज छात्रो न भी उनकी महायत्ता करती आरम्भ कर दी । सधानम आर बबीश्वर ने लाजपत राय और हरकिशन साल का समर्थन प्राप्त करन का जारदार प्रयत्न किया, यथाकि न जानते थे कि इन उभे नेताओ के बिना पञ्जाब म मही अर्थों म जोरदार अभियान चनाया जाना सम्भव नहीं था । हरकिशन साल, जा उभे जारदार उपहास करन वाले थे, उनमे जोरदार अनुरोध मुनत रहते और उह हसी मजाक म टान देने जिसके कारण वे यही अनुमान लगात रहत कि उसना अर्थ 'हा' से है या 'न' मे । वह सभी गभीर दलीला को हसी म उडा दते आर 'हा' या 'न' दाना ही अनुमानित हुए रहते । लाजपत राय आदालन के लिए शुभ कामना करत, परन्तु वह अभी इसम शामिल हान का सहमत न हात थे ।

महात्मा गांधी पञ्जाब आए, कुछ दिना के लिए बालिज छात्रा म बहुत उत्तेजना फैली और उनकी हृदताला ने प्रबध समितिया का चितित कर दिया । महात्मा गांधी को देखने तथा सुनन के लिए लोगो की भारी भीड भी एकत्र हुई । परन्तु यह यात्रा लालाजी का आदोलन मे शामिल करवाने मे असफल रही । गांधीजी के चले जाने के पश्चात भारी सख्या मे छात्रा न, जिन्होने हृदताल म भाग लिया

था, अपनी सामान्य पढाई फिर आरम्भ कर दी, केवल मुठ्ठी भर छात्र कालिज न गए। उनकी मात्रा का परिणाम कुल मिलाकर कोई विशेष न हुआ। पंजाब अब भी स्थिति का जायजा लेता हुआ दिखाई देता—और लाराजी की स्थिति ता निश्चय ही यही थी।

छात्र—अभ्यक्तिगत रूप में (या छोटे गुट में), सामूहिक रूप में बिल्कुल नहीं—लालाजी से भ्रष्टाचार लेन आते कि क्या वे असहयोग में शामिल हो जाए। उनकी सामान्य उतर यही होता था कि छात्रों को अपनी लाभ-हानि का जायजा स्वयं लेकर निणय करना चाहिए। वह कालिजा में दी जा रही उदार शिक्षा को अधिक महत्व नहीं देते थे, परन्तु उनका विचार था कि किसी छात्र को इस शिक्षा का त्याग तभी करना चाहिए, जब वह उनके बहुत विरुद्ध हो और इस सबध में दृढ़ हो, केवल क्षणिक मनोवेग के अधीन ऐसा न कर रहा हो। यदि राय लेने वाला डाक्टर या इंजीनियरी का छात्र हो या ऐसे छात्र के पिता हो, तो वह निश्चित तौर पर असहयोग करने के विरुद्ध सलाह देते। केवल स्नातक होना बेकार था, परन्तु देश का अधिक डाक्टर, इंजीनियरों तथा तकनीशियनों की जरूरत थी। कानून के छात्रों का वह खुले दिल से असहयोग करने की सलाह देते थे।

कभी कभार उनके पास वे लोग भी आते, जिन्होंने निश्चित रूप से अपनी कालिज शिक्षा से 'असहयोग' किया था। वे उनके पास आशंकाएं लेकर आते, क्योंकि वह आंदोलन के साथ नहीं थे। परन्तु उन्हें इस बात से आश्चर्य होता कि साजपत राय का रवैया मंत्रीपूण होता और वह उन्हें सलाह देते और इसके लिए तिलक स्कूल उनका स्वागत करता। वह उन्हें सलाह देते कि वे हर शिक्षा से असहयोग न करें। वह जानते थे कि आम तौर पर छात्रों ने अपने माता पिता की इच्छा के विरुद्ध शिक्षा में असहयोग किया है। उनके लिए उन्होंने विरायत पर एक हास्टल की व्यवस्था कर दी और उनके निर्वाह के लिए बगीचे बन के बास्त वह उदारता से 'स्कूल' के कोष से धन की व्यवस्था करते थे। इस स्कूल में केवल उनके अपने राज्य से ही असहयोग करने वाले छात्र नहीं आते थे, कुछ उत्तर प्रदेश से कुछ के द्रीय प्रांत और महाराष्ट्र से और एक या दो दक्षिण में भी आए।

इस प्रकार नागपुर में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन तक यह स्थिति इस तरह धीरे धीरे चलती रही। अब समय आ गया था कि या तो वह सक्रिय रूप से आन्दोलन में शामिल हो जाए या निश्चित तौर पर इससे अलग हो जाए।

यद्यपि पत्रार्थ में आन्दोलन पूरी तरह तज नहीं हुआ था, वह देख सकते थे कि इसकी सभावना काफी थी। दो अन्य प्रान्ता में आन्दोलन के प्रति उत्साह उन के लिए प्रसन्नतापूर्ण और आश्चर्यजनक था।

एक प्रकार में वह आन्दोलन की ओर आकर्षित हो रहे थे और उनकी निष्पक्ष मैत्री की अपनी मौज थी। कांग्रेस अधिवेशन के साथ साथ नागपुर में अखिल भारतीय छात्र सम्मेलन भी आयोजित किया जा रहा था। उन्होंने सम्मेलन की अध्यक्षता करने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। फिर कलकत्ता वाली स्थिति बन गई, कांग्रेस द्वारा असहयोग प्रस्ताव पास किया जाना, जिसे वह स्वीकार नहीं कर सकते थे—अन्तर केवल इतना था कि छात्र सम्मेलन आयोजित करने वाले यह पहले से जानते थे कि वे क्या करने जा रहे हैं और यह भी जानते थे कि यह बात उनके अध्यक्ष के अनुकूल नहीं होगी।

परन्तु उन्होंने छात्रों के साथ बिल्कुल स्पष्ट तार संचार करने से कभी नहीं काटी, ऐसा जान पड़ता था कि वह इस सम्बन्ध में गहराई से साच रहे थे।

कलकत्ता में विशेष कांग्रेस अधिवेशन में अपने भाषण के अन्त में मन कहा था कि "असहयोग की उस बात के विरुद्ध हूँ, जो स्कूला तथा कालिजा का बहिष्कार करने से सम्बद्ध है।" कांग्रेस अधिवेशन में लौटने के तुरन्त बाद मन एक सावजनिक मभा का संबोधित किया और मैने छात्रों तथा अन्य लोगों को बताया कि मैं आर्ट्स तथा कानून के सभी कालिजों को समाप्त करने का स्वागत करूँगा। जब भी छात्र मेरे पास सलाह लेने के लिए आते थे, मैं निम्नलिखित शीपका के अधीन मलाह देता था

"कानून के कालिज तुरन्त छोड़ दो। डाक्टरी, इंजीनियरी और तकनीकी कालिज बिल्कुल न छोड़ो। आर्ट्स कालिज स्थिति पर अच्छी तरह विचार करो।"

हम सभी इस बात पर सहमत थे कि 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अफसरशाही का मजबूत करने की प्रवृत्ति है। हम इसके लिए कम से कम कार्य करना चाहिए, हमें अपनी वर्तमान राजनीतिक जिम्मेदारियाँ को महसूस करते हुए ऐसी संस्थाएँ स्थापित करनी चाहिए जो सरकार के वित्तीय तथा शैक्षिक नियंत्रण से मुक्त हों।

परन्तु मैं यह नहीं जानता कि हम इस बात के लिए सहमत हैं कि जो राष्ट्रीय मूल्य तथा वाचित्र अथवा व्यापित विषय गा हैं दण्ड म राजनीति प्रचार करने का अधिकार मन्त्रालय काय भी करेगा । हम ऐसा नहीं कर सकते । हम तो कम-म-कम समय में स्वयं प्राप्त करना है और हम अपना समय तथा शक्ति ऐसी समयों के समझाते हैं कि वह नष्ट हो सके । हमें बार्ड ऐसी विद्यमानगी नहीं मानी चाहिए जो न बार्ड ऐसा वाच्य समझता चाहिए जो किसी भी प्रकार में उग बाध के प्रतिबन्ध है, जो हमें लाभ में लब्ध है । यदि हम ऐसा करते हैं तो हम अपनी प्रतिबन्ध कायों में लब्ध करेंगे, जिनका परिणाम जीवन प्राप्त होने की सम्भावना नहीं । हम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बिना राष्ट्रीय विद्या मीति तैयार नहीं कर सकते । यह बात स्पष्ट करने के लिए मैं हर छात्र में पूछता हूँ और उन प्राप्ति करने के लिए तैयार हूँ कि प्रत्येक छात्र जो किसी भी भाग में तथा वाच्य के वाचित्र में है वह वाचित्र छात्र के वाच्य के आचान को महत्त्व देना है और उन इस बात के बारे में बार्ड भय नहीं उठती कि उन्हीं विद्या के लिए राष्ट्रीय प्राथमिक या माध्यमिक तोर पर व्यवस्था की जा रही है । समय है कुछ स्थानों पर व्यवस्था की जाए जिस प्रकार की जा रही है परन्तु उन सभी भागों में नहीं पाएँगे ।

छात्रा ने उनके चेतावनी देने वाले शब्दों की ओर कोई ध्यान न दिया और "बिना शत" सभी सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त कालिजा और सरकार की ओर से अधिकार प्राप्त विश्वविद्यालयों का "बहिष्कार" करने का निणय किया। प्रस्ताव में आशा की गई कि "राष्ट्रीय नेता प्रत्येक प्रांत में भी ही राष्ट्रीय कानिज स्थापित करें जा राष्ट्रीय प्रणाली पर राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध हों तथा वे भारतीय युवकों की मामा-य शिक्षा तथा औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए शिक्षा सम्याए स्थापित करें।"

उ होंने चेतावनी के ये शब्द कहकर अपना वक्तव्य पूरा कर दिया था और सम्मेलन से चले गये, ताकि जो निणय वे उचित समझे वे लें। उनकी कांग्रेस नेताओं को मलाह मशविरों के लिए जहरत थी।

खुशकिस्मती से कांग्रेस में भी उस समय समझौते की भावना थी। पिछले तीन महीना में सभी ने महसूस कर लिया था कि उह गांधीजी का स्वीकार करना ही होगा और गांधीजी न भी महसूस कर लिया था कि यदि लाजपत राय और सी० आर० दाम ने उनके साथ सहायग न किया, तो वह बितने नि सहाय हाने। वह उनका सहायग प्राप्त करने के लिए चिंतातुर थे, क्योंकि वह चाहते थे कि सयुक्त मार्चा बनाया जाए। दोनों पक्ष ईमानदारी तथा सच्चे दिल से एकता चाहते थे और इस बात के लिए सहमत थे कि केवल ब्योरे के प्रश्न पर ही वे शर्तें नहीं रखेंगे।

कलकत्ता प्रस्ताव में लालाजी ने शिक्षा के बहिष्कार के बारे में जा आपत्तियां की थी, उनकी ओर ध्यान दिया गया था और आपत्तियां दूर करने के लिए नया फामूला तयार किया गया था। कलकत्ता के प्रस्ताव में कहा गया था

"सरकारी, सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले तथा सरकारी नियंत्रण वाले स्कूलों तथा कालिजों से धीरे-धीरे बच्चा का हटा लेना और विभिन्न प्रांतों में राष्ट्रीय कानिज तथा स्कूल स्थापित करना।"

नागपुर में इसे विस्तार दिया गया

"16 वष या इससे अधिक आयु के छात्रों से सरकारी, सरकार से सहायता प्राप्त तथा किसी प्रकार की सरकारी नियंत्रण वाली संस्थाओं से तुरत हट जाने का आग्रह और बिना इसके परिणाम के बारे में सोचे, यदि वे महसूस करें कि इन

सत्याग्रहों में रहता उनके जमीर के विरुद्ध है क्योंकि उनकी प्रणाली पर सरकार का प्रभाव है, जिसे राष्ट्र ने समाप्त करने का निश्चय किया हुआ है और ऐसे छात्रों को सलाह देना कि या तो वे असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में कोई विशेष सेवा करें या राष्ट्रीय सत्याग्रह में अपनी शिफा जारी रखें।

“सरकार से सम्बद्ध या सहायता प्राप्त स्कूलों के यात्रियों, प्रबंधकों तथा अध्यापकों को तथा नगर पालिकाओं और स्थानीय बोर्डों से आह्वान करना कि वे उनके राष्ट्रीयकरण में सहायता करें।”

लालाजी इस घात से सतुष्ट थे कि स्कूली शिक्षा को समाप्त करना टल गया है और स्कूल जाने वाले छोटे बच्चा तथा कालिज जाने वाले लड़कों में आवश्यक विभेदीकरण किया गया है और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली आरम्भ करने की जिम्मेदारी जो कलकत्ता प्रस्ताव में दिखाई देती थी, वह जल्दबाजी में नहीं की गई। यदि केवल डॉक्टरी तथा तकनीकी शिक्षा को स्पष्ट तौर से अलग कर लिया जाता तो उनकी नीति का पूरी तरह समर्थन हो जाता, परन्तु ऐसा होना आसानी से सम्भव दिखाई नहीं देता था जैसा कि उन्होंने स्वयं छात्र सम्मेलन को बताया था। वह जानते थे कि डॉक्टरी और इंजीनियरी शिक्षा ब्रिटिश सैनिकवाद के साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल हो रही है। उन्होंने जो प्राप्त किया, उसी से पूरी तरह सतुष्ट थे।

सी० आर० दास विधान मण्डल का बहिष्कार करने का सैद्धांतिक तौर पर विरोध करते थे। नागपुर-अधिवेशन से पूर्व आम चुनाव समाप्त हो गए थे। बहिष्कार की कृपा से 80 प्रतिशत से अधिक मतदाताओं ने मतदान में भाग नहीं लिया था। नागपुर में जब रात को देर तक समझौते तथा संयुक्त मोर्चा बनाने की बात चल रही थी, सी० आर० दास ने मुहम्मद अली को बताया कि उन्होंने असहयोग को स्वीकार करने का निणय कर लिया है। इस बात से मुहम्मद अली को इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने बंगाल के नेता के दोनो गाल धूम लिए। अगले दिन प्रमुख प्रस्ताव, जिसमें कलकत्ता का प्रस्ताव दोहराया गया था और समझौते के बाद अंतिम रूप से संशोधित असहयोग कार्यक्रम शामिल किया गया था, सी० आर० दास ने पेश किया और लाला लाजपत राय ने उसका अनुमोदन किया। यह महात्मा गांधी की बहुत बड़ी जीत थी—ऐसी जीत जिसका श्रेय दास, गांधी और लाजपत राय को समान रूप में जाता था। कांग्रेस के अधिकृत इतिहासकार से इस अवसर का वर्णन कुछ विवृत ढंग से चित्रित किया है

“बलवत्ता में असहयोग का स्टूल केवल एक टांग के सहार खड़ा था। नागपुर में यह चारों टांगों पर पूरे सतुलन के साथ खड़ा हुआ गया, गांधी तथा नेहरू, दास एवं लालाजी सभी उसके समर्थक थे।”

आश्विन तीर पर इन मामलों को पढ़ें के पीछे रूप दिया गया था, क्योंकि धुस्तकान् बला से सभी शक्ती को दूर नहीं किया जा सकता था। पञ्जाब के प्रति निष्ठा मण्डल ने, जैसी कि आशा थी, उनके साथ विचार विमर्श किया और इसमें भी महायत्ना मिली। फिर भी यह सा हुआ, मुख्य बात यह हुई कि पुनः एकता हो गई थी और यह एवना केवल कच्चा काम नहीं, बल्कि हादिक एवता थी।

असहयोग प्रस्ताव के अतिरिक्त लालाजी से एक अन्य प्रस्ताव का अनुमोदन कराया गया, इससे भी उतना ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ क्योंकि इससे कांग्रेस के सिद्धान्त पर प्रभाव पड़ा। 1908 में लेकर बार्ड व्यक्ति तब तक कांग्रेस पार्टी का सदस्य नहीं बन सकता था, जब तक वह ब्रिटिश साम्राज्य का समर्थन न करे—यह एक प्रकार की शपथदारी की शपथ थी, जो मिताचारी नेताओं ने निश्चित की थी। मुख्यतः पर उन उपवादियों का कांग्रेस में बाहर रखने के लिए, जो स्पष्ट तौर से ब्रिटिश साम्राज्य से सबंध विच्छेद के समर्थक थे। अब जब कि मिताचारी कांग्रेस से बाहर हो गए थे, इनके जारी रखने का कोई औचित्य नहीं था। असहयोग के कार्यक्रम के साथ यह सब भी ठीक नहीं बैठता था। इस क्षुब्ध को हटाने का प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया और लाजपत राय ने उसका अनुमोदन किया। अब कांग्रेस का सिद्धान्त था “स्वराज, सभी शांतिमय और जायज साधना से,” पहले यह था “ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर सांविधानिक साधनों से जिम्मेदार सरकार की स्थापना”। केवल साधन ही नहीं बढ़ने थे, नक्ष्य भी बदल गया था।

जायद्वार भाषण में लालाजी ने इस सिद्धान्त का इतिहास बताया और स्पष्ट किया कि किस प्रकार इस मामले पर मतभेद की सूरत में विच्छेद होने का कुछ कारण था। उन्होंने कहा कि उस समय भी मुझे यह बात अनुचित लगी थी कि श्री अरविंद जैसे सच्चे और आदर्शवादी देशभक्त कांग्रेस से बाहर रखे जाएं।

“यह बात नहीं कि उस समय मुझे यह विश्वास था कि हमारे पास पूर्ण स्वराज प्राप्त करना या इस उद्देश्य में कार्य करने के लिए साधन हैं, परन्तु मेरा विचार था कि हम में से किसी को यह अधिकार नहीं कि कांग्रेस की कारवाही में किसी ऐसे व्यक्ति को भाग न लेने दिया जाए, जिसके आदर्श इतने ऊँचे हैं।”

सत्साधो मे रहना उनके जमीर के विरुद्ध है क्योंकि उनकी प्रणाली पर सरकार का प्रभाव है, जिसे राष्ट्र ने समाप्त करने का निश्चय किया हुआ है और ऐसे छात्रा को सलाह देना कि या तो वे असहयोग आंदोलन के सिद्धसिले में कोई विशेष सेवा करें या राष्ट्रीय मस्थाओं में अपनी शिक्षा जारी रखें ।

“सरकार से सम्बद्ध या सहायता प्राप्त स्कुलों के यासिया, प्रबंधकों तथा अध्यापकों का तथा नगर पालिकाओं और स्थानीय बोर्डों से आह्वान करना कि वे उनके राष्ट्रीयकरण में सहायता करें ।”

लालाजी इस बात से मतुष्ट थे कि स्कुली शिक्षा का समाप्त करना टल गया है और स्कुल जाने वाले छोटे बच्चा तथा कालिज जाने वाले तरणों में आवश्यक विभेदीकरण किया गया है और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली आरम्भ करने की जिम्मेदारी जा कलकत्ता प्रस्ताव में दिखाई देती थी, वह जल्दबाजी में नहीं की गई । यदि केवल डाक्टरी तथा तकनीकी शिक्षा को स्पष्ट तार से अलग कर लिया जाता तो उनकी नीति का पूरी तरह समर्थन हा जाता, परन्तु ऐसा होना आसानी से संभव दिखाई नहीं देता था जैसा कि उन्होंने स्वयं छात्र सम्मेलन को बताया था । वह जानते थे कि डाक्टरी और इंजीनियरी शिक्षा ब्रिटिश सैनिकवाद के साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल हो रही है । उन्होंने जो प्राप्त किया, उसी में पूरी तरह मतुष्ट थे ।

सी० आर० दास विधान मण्डल का बहिष्कार करने का सैद्धान्तिक तौर पर विरोध करने थे । नागपुर अधिवेशन से पूर्व आम चुनाव समाप्त हो गए थे । बहिष्कार की कृपा से 80 प्रतिशत से अधिक मतदाताओं ने मतदान में भाग नहीं लिया था । नागपुर में जब गान को देर तक समझौते तथा मयूकन मोर्चा बनाने की बात चल रही थी, सी० आर० दास ने मुहम्मद अली का बताया कि उन्होंने असहयोग को स्वीकार करने का निणय कर लिया है । इस बात से मुहम्मद अली का इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने बंगाल के नेता के दोना गान चूम लिए । अगले दिन प्रमुख प्रस्ताव, जिसमें कलकत्ता का प्रस्ताव दोहराया गया था और समझौते के बाद अंतिम रूप से सशोधित असहयोग कार्यक्रम शामिल किया गया था, सी० आर० दास ने पेश किया और लासा लाजपत राय ने उसका अनुमोदन किया । यह महात्मा गांधी की बहुत बड़ी जीत थी—ऐसी जीत जिसका श्रेय दास, गांधी और लाजपत राय का समान रूप से जाता था । कांग्रेस के अधिवृत्त इतिहासकार से इस अवसर का वर्णन कुछ विस्तृत ढंग से चित्रित किया है

‘बलकृता म असहयोग का स्टूल केवल एक टांग के सहार छडा था । नागपुर म यह चारो टांगा पर पूर सतुनन के माय छडा हा गया, गांधी तथा नहरू, दामे एव सात्ताजी सभी उमने समथक थे ।’

आशिव तौर पर इन मामला को पदे के पीछे रूप दिया गया था, क्याकि चुस्त याक् कला से सभी शवाजा का दूर नही किया जा सक्ता था । पजाय के प्रति निधि मण्डल न जैमी कि आशा थी, उनुके माय विचार-विमश किया और इसमे भी सहायता मिली । फिर भी यह ता दृढा, मुख्य बात यह हुई कि पुन एवता हा गई थी और यह एवता केवल कच्चा काम नही, बल्कि हादिक एवता थी ।

असहयोग प्रस्ताव के अतिरिक्त सात्ताजी से एव अन्य प्रस्ताव का अनुमादन कराया गया, इससे भी उतना ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ क्याकि इससे कांग्रेस के सिद्धान्त पर प्रभाव पडा । 1908 मे लेकर बोर्डे व्यक्ति तब तक कांग्रेस पार्टी के मद्दम्य तहा बन सकता था, जब तक यह ब्रिटिश साम्राज्य का समथन न करे— यह एक प्रकार की कषादारी की शपथ थी, जो मिताचारी नेताआ न निश्चित की थी । मुख्यतौर पर उन उग्रवादिया का कांग्रेस मे बाहर रखने के लिए, जो स्पष्ट तौर से ब्रिटिश साम्राज्य से सबध विच्छेद के समथक थे । अब जब कि मिताचारी कांग्रेस से बाहर हा गए थे, इसके जागी रखन का कोई औचित्य नही था । असहयोग के शायसम के साथ यह बैने भी ठीक नही बैठता था । इस सुटि का हूदान का प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया और साजपत राय न उमका अनुमादन किया । अब कांग्रेस का सिद्धान्त था ‘श्वरराज, सभी शातिमय और जायज साधना से,’ पहले यह था ‘ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर भाविधानिक साधना से जिम्मेदार सरकार की स्थापना’ । केवन साधन ही नही बदने थे, लभ्य भी बदल गया था ।

जारदार भाषण म लालाजी न इस सिद्धान्त का इतिहास बताया और स्पष्ट किया कि किस प्रकार इस मामले पर मतभेद की सूरत म विच्छेद होने का कुछ कारण था । उहानि कहा कि उम समय भी मुझे यह बात अनुचित लगी थी कि श्री अरविन्द जैमे सच्चे और आदशवादी दशभक्त कांग्रेस से बाहर रखे जाए ।

“यह बात नही कि उस समय मुझे यह विश्वास था कि हमारे पास पूण स्वराज प्राप्त करने मा इस उद्देश्य मे काम करने के लिए साधन हैं, परन्तु मेरा विचार था कि हम म स किसी का यह अधिकार नही कि कांग्रेस की कारवाई मे किसी ऐसे व्यक्ति को भाग न लेने दिया जाए, जिसने आदश इतने ऊचे हैं ।”

जा लाग 'सांघाज्य' तथा "राष्ट्रमण्डल" में भिन्नता की बात करत थे, उनका उत्तर देने हुए पूछा कि क्या वादे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल है? ब्रिटिश सेवर के तीन प्रतिनिधिया म म एव हल्फर्ड नाइट ने उत्तर दिया था, "जमी तब नही", ब्रिटिश राजनयिका क वचना की चर्चा करत हुए लालाजी 1 कहा —

"हम अग्रज मज्जन व्यक्तिगत न मर्मा शक्य पर पूरा विश्वास पर मर्मा है, परंतु हम ब्रिटिश राजनयिका के शत्रु पर विश्वास नहीं कर सकते।"

जायजा लेन हुए उहाने ब्रिटिश-मन्त्रिमण्डल के बड़े नामा—लायड जाज, विमटन बचिल, मिटानर आर माटैंगू के नाम लिए और कहा, 'वर्तमान ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के किसी एक सदस्य का नाम ला जिमकी बात या किसी पुजडे की बात में अधिक महत्व है।' उहोन कहा कि कांग्रेस के सिद्धान्त में परिवर्तन का यह जरूरी अर्थ नहीं कि ब्रिटन म सबंध विच्छेद होगा, बल्कि इसका अर्थ यह है कि यदि यह सबंध बनें तो यह तभी रहेंगे, यदि भारत के भागा की इच्छा होगी और यह भी उनकी शर्तों पर ही।

'साधना' म परिवर्तन की चर्चा करते हुए उहाने कहा

"मैं उन लोगों म से हूँ जिनका यह विश्वास है कि हर राष्ट्र को, समय आ जान पर, यह अन्तर्भूत अधिकार है कि वह दमनकारी निरंकुश सरकार में विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करे, परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि हमारे पास उस समय ऐसी सशस्त्र विद्रोह के लिए साधन या इच्छा शक्ति भी है। म भविष्य की सभावनाओं की चर्चा नहीं करता, परन्तु मैं चाहता हूँ कि मेरे देशवासियों के मन म कोई गलतफहमी अथवा शका पैदा न हो कि 'राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता यह नहीं चाहते कि उनके सामन जा नश्य निर्धारित किए गये ह, उनकी प्राप्ति के लिए वे हिंसा पर उतार दिए जाए।"

लालाजी यह भली प्रकार जानत थे कि उनकी ओर से असहयोग की स्वीकार करने का अर्थ बहुत बड़ा दायित्व है। पंजाब का इस सबंध में पूरा जोर लगाना होगा और यह सम्भव पूरी तरह उसी का दायित्व होगा, इसके अतिरिक्त उसे अपने सहयोगियों के साथ राष्ट्रीय स्तर पर भी जिम्मेदारी निभानी होगी। ब्रिटिश काय का समय आ गया था, परन्तु यह कठिन कार्य ऐसा था जिसे उहें प्रसन्नता होती थी।

नागपुर-अधिवेशन से लौटते ही वह पंजाब में स्थिति का सुधारन में व्यस्त हो गये। पहली बात जो उन्होंने की, वह थी कालिज छात्रों का एक सम्मेलन बुनाने की, क्योंकि इन छात्रों से ही अपने उस आन्दोलन के लिए कायकर्ता लेने थे, जो 'अभियान' वह शुरू करते जा रहे थे। उनके साथ सम्भव रखने वाले छात्र कायकर्ता के तौर पर और उस छात्र के तौर पर जो उनके आह्वान पर आगे आया, मुझे बुलाया गया और पंजाब में एक छात्र सम्मेलन की व्यवस्था करने का निर्देश दिया गया।

एक स्वागत समिति बनाई गई, जिसने विधिवत अपने कायकर्ताओं का चुनाव किया (मैं इस समिति तथा सम्मेलन का सचिव था)। अध्यक्ष पद के लिए लालाजी न सैफुद्दीन किचलू के नाम का सुझाव दिया। लाहौर जिले में निषेधाज्ञा लागू कर दी गई, इसलिए सम्मेलन का स्थान बदलकर गुजरावाला कर दिया गया। निस्संदेह लालाजी ने छात्रों को संबोधित किया। उन्होंने समाचार-पत्रों में जारदार अभियान आरंभ कर दिया और डी० ए० वी० कालिज अधिकारियों पर आक्षेप करने से भी न झिझके। पहली बार तथा अंतिम बार उनका समाचार पत्रों में सावजनिक तौर पर अपने पुराने मित्र तथा सहयोगी महात्मा हसराम के साथ मतभेद हुआ और एक बार जब यह शुरू हो गया, तो उन्होंने इसे बड़ी दक्षता से चलाया।

कालिज बंद न हुए, परन्तु उन्हें अपना संदेश गावों तक पहुंचाने के लिए छात्र कायकर्ता मिल गए। असहयोग के दिना में व्यवहार के अनुसार छात्रों ने एक आश्रम स्थापित किया और वहाँ आरंभिक तयारी के लिए थोड़ी देर ठहरने के बाद खादी के कपड़े पहन और सभी ओर गावों में फैल गए।

कांग्रेस काय समिति ने तिलक स्वराज कोष के लिए एक कराड स्पष्ट जमा करने तथा कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य भर्ती करने का व्यापक कार्यक्रम बनाया था। लालाजी ने पंजाब में इस संघ में कमी नहीं रहनी चाहिए थी, उनकी छात्र सेना ने इस संघ में शानदार कर्तव्य निभाया। उन्होंने स्वयं भी असहयोग करने वाले बकीला की मर्यादा में वृद्धि की। राष्ट्रीय उत्साह की एक अद्वितीय लहर उत्पन्न हो गई। ऐसा दिखाई देता था कि यह अधिक से-अधिक बलवान होती जाएगी और जो कुछ भी उसके सामने पड़ा उसे बहा ले जाएगी। माच में रावलपिंडी में हुए प्रांतीय सम्मेलन में बहुत उत्साह देखने में आया और फिर

अनेक प्रांतीय तथा क्षेत्रीय सम्मेलन हुए। कुछ मास पहले जहां सभी ओर उपक्षा तथा निरक्षरता दिखलाई देता था, सभी कुछ ढलकर एक नई तथा जोगदार स्थिति में बदल गया था।

लाहौर में लालाजी ने नगरपालिका चुनाव के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किए और कांग्रेस के लिए सगमग सभी हिंदू सीटें जीत लीं। यह विजय पुराने सदस्या के विरुद्ध, जो अपने आपका अजेय समझते थे, भारी बहुमत से प्राप्त हुई। लाहौर नगरपालिका में कांग्रेस सदस्या का दल अफसरशाही के लिए बहुत बल्ल का कारण बन गया। अन्य स्थानों पर भी लाहौर का अनुकरण किया गया।

जो छात्र कालिजा को छोड़ आए थे, उनके पीछे कई विवट समस्याएँ भी आईं। कुछ समय के लिए तो गांवों का काम ठीक रहा, परन्तु उसके बाद उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी करने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने अपनी शिक्षा की व्यवस्था करने पर जोर दिया। अस्थायी तौर पर एक कौमी महाविद्यालय स्थापित किया गया, जो कालिज छात्रों का शिक्षा देगा जिन्हें शिक्षा पूरी करने पर कौमी विद्यापीठ से डिग्री दी जाएगी, लालाजी इसके कुलपति थे। एक स्कूल विभाग जिसमें हस्तशिल्प पर अधिक बल दिया गया था, स्थापित किया गया (लालाजी का नाती—उनकी पुत्री का इकलौता पुत्र—इस स्कूल में दाखिल होना वाले पहले छात्रों में था)। कुछ अन्य स्थानों पर भी कई स्कूल स्थापित हो गए। जगराव में लालाजी के अपने म्मून—गद्याविशन हाई स्कूल का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और शीघ्र ही इसने छात्रों की संख्या कम हो गई।

इन सभी समस्याओं का जय था—कठिन परिश्रम और इनमें से कठिनतम काम था तिलक स्वराज कोष के लिए एक करोड़ रुपये जमा करने का। इनके लिए पंजाब न अपना हिस्सा जरूर जुटाना था चाहे कुछ भी हो।

इस उद्देश्य से लालाजी न लगातार दौरे किए, कई बार तो एक ही दिन में दूर के कई कस्बों में सभाओं में भाग्य लिए और उनके लिए इस कोष के वास्ते हिस्सा निर्धारित किया तथा इसे वसूल किया। जो लाख रुपये की राशि पंजाब के लिए बहुत बड़ी थी, परन्तु लालाजी शाही भिखारी थे और वह तब तक आराम से न बैठे, जब तक उन्होंने यह रकम इकट्ठी न कर ली।

सालाजी न धुआघार काय किया । निस्मदह सामान्य कार्यों की भी, उपेक्षा नहीं की जा सकती थी—पंजाब के सवश्रेष्ठ दैनिक समाचार पत्र के सम्पादन के नाते तथा अन्य सामान्य छोटे-बड़े काम और भी थे । इससे अतिरिक्त उन्हें पंजाब से बाहर के अक्सर बुलावे आते रहते थे । पांच छ राष्ट्रीय नेताओं में से एक होने के नाते, उन पर अन्य प्रांतों का भी दायित्व था और राष्ट्रीय वाय समिति की बैठक भी थोड़ी थोड़ी अवधि के बाद होती रहती थी और ये बैठकें सारे भारत में होती थी । इनमें एक यात्रा में असी बंधु सालाजी के साथ थे । किसी प्रकार उनके धुलाई में आए कपड़े आपस में बदल गए और बड़े भाई की बहुत बड़ी सलवार जो पूरी तरह खोलन पर पहनने के एक कपड़े की बगाम एक तन्बू के समान दिग्गई देती थी, उस यात्रा की स्मृति के तौर पर काफी दूर तक उनके पास रही—यह उस समय हिंदू-मुसलमान नेताओं के सहयोग की भी याद थी ।

48. हास्यास्पद गीत नाटिका

नवंबर 1921 के आरम्भ तक सभी दल सचमुच ही तुरत निर्णायक सघर्ष के लिए 'उत्तम' होत दिखाई दे रहे थे। आंदोलन के नेता ने 'एक वष के अंदर 'स्वराज' का वायदा किया था और स्थानीय नेताओं तथा स्वयमेवका ने यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचा दिया था। वष का अन्त होत वी था। ऐसा 'संकेत' था कि यदि कोई संयत्न बात नहीं, तो कोई उग्र बात अवश्य होगी। सविनय अवज्ञा बहुत ही निश्चित दिखाई पड रही थी, गांधीजी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति वी मुख्य चिन्ता प्रारम्भिक अभियान का व्यौरा निश्चित करने की थी।

लाड रीडिंग का भी खुले राजद्रोह का मुकाबला करने के लिए अपेक्षाकृत नरम उपाय जारी रखने का दरादा नहा था। मध्यस्थता करने वालो (पण्डित मदन मोहन मालवीय और शबरन नायर जैसे) के प्रयत्न असफल हा चुके थे, लाड रीडिंग की गांधीजी तथा अन्य कांग्रेस नेताओं के साथ भेंट बातचीत वा कोई परिणाम नहीं निकला था। लाड रीडिंग को इस बात की विशेष चिन्ता लगी की जब इयूक आफ कनाडा आए, तो उनका बहिष्कार न हा (अमल में प्रिंस आफ वेल्स न आना था, परंतु बाद में कार्यक्रम बदलकर इयूक का उनका प्रतिनिधित्व करने को कहा गया)। वाइमराय न पहले पूरी शक्ति से प्रहार न किया, क्योंकि वह चाहता था कि इयूक के आने के अवसर पर स्थिति ठीक रह। परंतु तब तक स्पष्ट हो गया था कि दोनों पक्षों में समझौता नहीं हो पाया, कांग्रेस नेताओं न अपने सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रति पूरी ईमानदारी के साथ यह दंड निणय किया था कि इयूक का पूरी शक्ति से बहिष्कार करेंगे। इसलिए लाड रीडिंग द्वारा पहने में अपनाई दमनकारी नीति वी, जो अली बंधुओं का रैंड निण जान में स्पष्ट हो चुकी थी, और बदा न करने का कारण ममाप्त हो चुका था। ऐसा दिखाई पडता था कि दाना ओर से स्थिति पूरी तजी से सक्क वी आर बड रही थी।

बम्बई में दगा ब रूप में एक अप्रत्याशित उत्पन्न हो गई। 17 नवंबर को भीड़ ने अपना गुस्सा निकाला जा अधिकतर उन पारसियों के विरुद्ध था, जो वहिष्कार के विरुद्ध थे। असहयोग आंदोलन के नेताओं ने सागा से शान्तिपूर्ण वानावरण बनाए रखने का जा अनुरोध किया था, उसे बहुत जोरदार आघात पहुंचा। जब बम्बई में गडबड आरम्भ हुई, उस समय गांधीजी स्वयं बम्बई में थे। घटनाओं पर बहुत दुःख होकर उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। लालाजी तथा आंदोलन के अग्र प्रमुख नेता तुरंत उनसे पास पहुंचे। शीघ्र ही बम्बई में सामान्य स्थिति बहाल हो गई। महात्माजी को अनशन समाप्त करने के लिए सहमत कर लिया गया। कांग्रेस की कार्य समिति ने स्थिति पर विचार किया और अहिंसा तथा अनुशासन व महत्व पर बल देने के लिए उसने सविनय अवज्ञा के बारे में अपनी नीति में कुछ परिवर्तन कर दिया। प्रांतीय कांग्रेस समितियों से कह दिया गया कि कार्य-समिति की पूव सहमति के बिना उन्हें सामूहिक अभियान आरंभ करने की आज्ञा नहीं होगी। अनुशासनहीनता को दबाने के उद्देश्य से स्वयंसेवकों की प्रतिज्ञा और बड़ी कर दी गई।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि शक्ति घीमी कर दी गई है। इनके विपरीत पूरी शक्ति से आगे बढ़ने की पूरी दृढ़ता के संकेत दिखाई दे रहे थे। ऐसी स्थिति में दोगा पक्षा ने अपना-अपना अनुमान लगाया और अपनी योजनाओं पर बारबाई की। जब आदेश मिल गया कि 'बडाई' से बारबाई की जाए, तो निस्संदेह पंजाब के अधिकारियों पर निर्भर किया जा सकता था।

बम्बई के फमला के घाट लाजपत राय लाहौर सीटे। उनकी राजनीतिक समझ प्रांत के अधिकारियों के बदले हुए रुख का अहसास कर सकती थी। बम्बई की घटनाओं ने भी उनके विचारों को विषय दे दिया था। अनुशासन का अभाव तथा इनके प्रति आंदोलन के नेता की अजीब, अप्रत्याशित और बहुत तेज प्रतिक्रिया में यह मालूम हो गया कि सत्याग्रह के कवच में बलजोर स्थान है। असफलता की इतनी बात नहीं, परन्तु यदि ऐसी घटनाएं बार-बार हो, तो क्या नेता पीछे हट जाएगा या आत्मसमर्पण कर देगा? संदेह उत्पन्न हुए और पलभर के लिए दगा दिए गए, कार्य समिति से सभी बातें बिल्कुल सतापजनक ढंग से हुईं। बम्बई में यह बात भी उनके दिमाग में बैठ गई कि कुछ विश्वासपात्र सहायक भी इतने स्पष्ट नहीं थे, जिनकी उनसे आशा की जा सकती थी और उन्हें यह आश्चय हो रहा था कि क्या प्रमुख सही तौर पर इससे बिल्कुल अनजान है।

साताजी अपने प्रात में बम्बई में लिए गए निणयो को ईमानदारी से लागू कराने में व्यस्त हो गए। अपने सहयोगियों को सारी बातें पूरी तरह समझाने के लिए उन्होंने प्रांतीय कांग्रेस मंत्रिण की बैठक बुलाई। परन्तु अधिकारियों का बदला हुआ हृद्य देखते हुए, उन्होंने अहसास कर लिया कि शायद उन्हें अधिक समय के लिए स्वतंत्र तौर पर काम न करने दिया जाए। क्या उन्हें डटकर विरोध करते हुए जेल चले जाना चाहिए, या उचित रहेगा कि आंदोलन को सही ढंग से दिशा निर्देश देने के लिए वह कुछ और समय के लिए उपलब्ध रहें? तब भी उन्हें इस बात का विश्वास नहीं था कि उन्हें कुछ और समय के लिए छोड़ा जाएगा, जब कानून और व्यवस्था की मशीनरी ने आनामक ढंग से अपना जाल फैला दिया था। उन्होंने महसूस किया कि यही उचित रहेगा कि प्रमुख को इस प्रकार बदली हुई परिस्थिति से अवगत करा दिया जाए और उनकी इच्छा जान ली जाए। संसदियों के जोर के कारण, संचार के सामान्य साधन डाक तथा तार शायद विश्वसनीय और तुरत न होते। मुझे विशेष दूत के तौर पर साबरमती भेजा गया। इस बात की व्यवस्था की गई कि कम से-कम एक बात के बारे में महात्मा गांधी की इच्छा की जानकारी तार द्वारा रनी जाए—क्या साताजी तुरत गिरफ्तारी दे दें या अभी कुछ समय के लिए ऐसा न करे। संसद का धोखा देने के लिए संदेश को एक व्यापारिक रूप बन के तरीका अपनाया गया, जिससे यह संदेश विन्कुस अहानिकर दिखाई दे—प्रकट रूप से यह चले या क्याम की परीद के बारे में हागा। यह तार साताजी के नाम पर नहीं, बल्कि एक कल्पित राय पर भेजा जाना था, सम्भवतः जसवत राय के नाम पर।

मैं साबरमती चला गया—वहाँ पहुँचने पर मुझे पता चला कि महात्माजी कुछ घंटे पूरुत के लिए रवाना हो गए थे, जहाँ से वह बाग्दोली जाएंग ताकि उस स्थान पर शुरू किए जाने वाले सविनय अवज्ञा आंदोलन की निगरानी कर सकें। सूरत के लिए रवाना होने से पहले मैंने डॉ. मती कस्तूरबा गांधी के आतिथ्य आदर का आनन्द लिया और पहली बार भाखडी (वेहू की गुजराती टिकिया) बटनी जसी बस्तु के साथ छान। सूरत में मैंने अनादिन आथम में महात्माजी के साथ भेंट की और उन्हें अपना संदेश दिया। उन्होंने धैर्य से सुना और फिर अपनी राय तथा निर्देश दिए। अन्त में उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं ठीक तरह से उनकी बात समझ गया हूँ तथा उनकी सदेश ठीक ढंग में साताजी तक पहुँच जाएगा। मैंने हाँ में उत्तर दिया। परन्तु उनकी काम करने का ढंग बहुत सुव्यवस्थित था और वह इतने पर ही बात

नहीं छोड़ते थे। उन्होंने मुझे हमारी बातचीत का सारांश लिखने का कहा, मने वैसा ही किया। वह मेरी रिपोर्ट से सहमत हो गए और स्वीकृति दे दी और उनके एक सचिव ने (मेरा ख्याल है उनके पुत्र देवदास ने) अपनी फाइलों के लिए उसकी प्रति उतार ली। मेरे मसौदे में महात्मा गांधी ने केवल एक सशोधन किया, उचित स्थान पर उन्होंने सात शब्द जोड़े, जो उनके संदेश का सारांश थे -- "लालाजी गिरफ्तारी दें और उससे न टले।" उनका विचार था कि उस अवसर पर "गिरफ्तारी देने" से संभव है आंदोलन के नए नेताओं के लिए आवश्यक तथा सहायक हो, जिन्हें अभी परीक्षा तथा परिचय प्रमाण की आवश्यकता है। उनसे आज्ञा लेने से पहले महात्माजी ने मुझे साथ चलने का कहा, ताकि मैं स्वयं देख सकूँ कि किस प्रकार बारदोली सामूहिक सविनय अवज्ञा की कठिन परीक्षा के लिए तैयार हो रहा था। फिर बातचीत चलते-चलते देश के सामने पेश व्यापक तथा बड़े मसलो पर पहुंच गई और कुछ गंभीरता से साचते हुए महात्माजी ने कहा कि मैं तो पहले ही इस बात से अचभित हो रहा हूँ कि क्या सविनय अवज्ञा (या क्या यह सत्याग्रह था?) को सौम्य 'विष्णु' का रूप दिया जा सकता है, क्योंकि जैसा कि उन्होंने कहा, इस आंदोलन के 'रुद्र' रूप की कल्पना की हुई थी। मैंने स्पष्टीकरण चाहा परन्तु जो झलक मैं प्राप्त कर चुका था मुझे उसी से सतुष्ट होना पड़ा, क्योंकि महात्माजी ने कहा कि वह स्वयं स्पष्टीकरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह विचार ता अभी मद्धिम रूप में उनके मन में आया है, यदि स्पष्ट हो गया तो इसे निस्संदेह 'यंग इंडिया' के कालमों में प्रकाशित किया जाएगा।

बारदोली जाने का निमतण मुझे अस्वीकार करना पड़ा, क्योंकि मैं इस बात के बारे में निश्चित नहीं था कि लालाजी को वह और कितने दिन स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में रहने देते हैं और यदि संभव हो सके मैं उनकी गिरफ्तारी से पूर्व उनके पास रहना चाहता था। जिस गुप्त भाषा में हमने योजना बनाई थी, उसी के अनुसार मैंने सूरत तार घर में उपज-व्यापार का संदेश दे दिया और वापस रहाना हो गया। जब मैं दिल्ली स्टेशन पर उतरा, जहाँ से मुझे गाड़ी बदलनी थी तथा डा० एम० ए० असारी से मिलना था, मैंने समाचार पत्र बेचने वालों को आवाज लगाते सुना, 'लाला लाजपत राय गिरफ्तार कर लिए गए।'

तो मेरे संदेश के बावजूद कि वह अभी ऐसा न करे, उन्होंने सौदा कर डी लिया था।

य था। इसलिए समिति की यह बैठक जिनमें मद्रम्या के अनिरीखा वाइ भाग में से सबना था, मायजनिक समझी जाएगी, जब कि सावजनिक म्याड, जहा घाट के नाम पर गुन आम चाय बाटा जा रहा था—क्याकि ब्रिटिश कानून। व्यवस्था है कि न्याय निजी रूप में नहीं दिया जा सकता, निजी स्थान समझ रहे थे। पञ्जाब में कुछ कांग्रेस कार्यकर्ताओं पर इस दौरान इसलिए मुकदमा लाया गया था क्योंकि उन्होंने एक अज्ञात में 'अनधिकार' प्रवण किया जहा राजनीतिक मुकदमें की सुनवाई हो रही थी।

कांग्रेस सचिव ने डिप्टी कमिश्नर के पत्र का उत्तर तुरत दिया। अगले दिन कुछ और पत्राचार हुआ। डिप्टी कमिश्नर यह आश्वासन चाहता था कि जब मैं केवल उन्हीं बातों पर विचार किया जाएगा, जो पहले ही भेजे जा के गजेट में दज ह। उनमें और मामलों भी उठाए, उनका बैठक में कोई संबंध नही थी, परंतु यदि ईसप की क्या को स्मरण रखा जाए, तो संबंध था।

जो कुछ अधिकारिया ने निर्धारित किया था, उस कांग्रेस अपने आपको मूख नाए बिना स्वीकार नहीं कर सकती थी। लालाजी की काय समिति ने अपनी बैठक में तथा मजिस्ट्रेट की आपत्तियों की परवाह न करने का निणय किया। इस लक्षण के परिणाम निस्संदह पूरी तरह से स्पष्ट थे। लालाजी ने सदस्यों का देने ही संदेश भेजने की व्यवस्था कर ली थी, ताकि वे निर्धारित समय में काफी हने उपस्थित हो जाए और गिरफ्तारी से पूर्व अपनी कारवाई पूरी कर लें। कारवाई को पूरी तरह से तयार कर लिया गया था, ताकि किसी प्रकार का लम्ब न हो। अगले दिन प्रात महात्मा गांधी का उनका पत्र तथा दशवासिया नाम उनका संदेश, दोनों ही उनकी गिरफ्तारी से पूर्व ही तयार कर लिए थे।

अंतिम आदेश, जिसमें राजद्रोही बैठक कानून के अधीन बैठक करने की निश्चिनप में मनाही की गई थी, दोपहर बाद दो बजे से थोड़ी देर पहले मिला, जिस समय तक चल रही थी। दो बजे से पूर्व ही समिति ने अपनी मारी कारवाई समाप्त कर ली थी, सिवाय मजिस्ट्रेट को यह बताने कि वे उससे आदेशों को क्या मानते हैं और किस प्रकार गिरफ्तार ह। उन्हें अधिक समय के लिए प्रतीक्षा ही करनी पड़ी।

यह गडबड 2 दिसबर 1921 को प्रातीय कांग्रेस समिति की बैठक बुताने के प्रश्न पर हुई, जो अगले दिन होने वाली थी। ऐसा जान पड़ता था कि अधिकारी तो केवल रहाना दूढ़ रहे थे, और यह बहाना काफी अच्छा हो सकता था। 1908 के राजद्रोह सभा कानून के अधीन—1907 में निर्वासन के समय का लाल कितार का, उपहार—नाहौर में इसकी घोषणा कर दी गई। दरभमल, उन्होंने तीन जिलों—नाहौर, अमृतसर और शेखूपुरा में घोषणा कर दी थी। उन्होंने स्वयंसेवी सगठन को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया।

पञ्जाब में कांग्रेस ने इस चुनौती का स्वीकार कर लिया। प्रातीय कांग्रेस समिति की कार्यकारी परिषद ने 27 नवंबर की अपनी बैठक में राष्ट्रीय कांग्रेस समिति द्वारा बम्बई बैठक में तैयार निर्देशों के अनुसार कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवकों का पुनर्गठन किया। अनुशासनहीनता तथा हिंसा की सभी शकाओं का समाप्त करने के लिए यह फैसला भी किया गया कि केवल बहुत छोटी सभाएं की जाएं और नियम के तौर पर उपस्थिति पर इस ढंग से नियंत्रण किया जाए कि कोई भी ऐसा व्यक्ति बैठक में शामिल न हो, जो कांग्रेस के अहिंसा के अनुशासन का पालन करने और जेल जाने को तैयार न हो।

डिप्टी कमिश्नर मंजर फेरर बहाने दूढ़ने में व्यस्त हो गया। इसकी प्रसिद्धि बाल कथा के उस भेदिके के समान जिसने ममने को खान से पहले उससे बातलाप किया था। सावजनिक शान्ति भंग होने की तो कोई आशंका नहीं थी, क्योंकि यहाँ तो केवल समिति की बैठक हीनी थी। पहले भी इस प्रकार की कोई गडबडी या उत्तेजना नहीं हुई थी और स्थिति को पूरी तरह ठीक रखने के लिए सयोजका द्वारा विशेष व्यवस्था की जा रही थी। परन्तु इसमें सयोजका को उसी प्रकार कोई सहायता नहीं मिलने वाली थी, जिस प्रकार कथा के मेयने का नदी के बहाव के नीचे की आर पानी पीने या एक घण पहले पैग न होने के कारण नहीं मिली थी।

बैठक से एक दिन पूर्व डिप्टी कमिश्नर के पत्र के रूप में ईंगप की कथा के समान वार्तालाप आरम्भ हुआ। ऐसा दिखाई देता था कि वह समिति की बैठक को जो समिति के कार्यालय में द्वार बंद करके हानी थी और जिसमें सिवाय सदस्या के और किसी ने भाग नहीं लेना था, एक सावजनिक सभा मान रहा था जो राजद्रोही बैठक कानून के अन्तर्गत आती थी। दमन की हाडी के इर्द बिद जादू का नृत्य आरम्भ हो गया था और इस बात की आम चर्चा थी कि याय अयाय था और अयाय

‘याय था। इसलिए मर्गिति भी यह बठक जिसमे सदस्या के अतिरिक्त थोड़े भाग नहीं से सवना था, मावजनिन समधी जाण्गी, जब कि मावजनिन म्यान, जहा मझाट के गाम पर खुने आम न्याय पाटा जा रहा था—क्याकि ब्रिटिश कानून की व्यवस्था है कि ‘याय निजी रूप म नहीं दिया जा सवना, निजी स्थान समझे जा रहे थे। पजाब मे कुछ काप्रेस कायवताआ पर इस दौरान इसलिए मुकदमा चनाया गया था क्याकि उन्हाणे एक् अदालत म ‘अनधिभार’ प्रवम किया जहा एक् राजनीतिक मुकदमे की गुनवाई हा रही थी।

काप्रेस मचिव ने डिप्टी कमिश्नर के पत्र का उत्तर तुरत दिया। अगले दिन प्रात कुछ और पत्राचार हुआ। डिप्टी कमिश्नर यह आशवागन चाहता था कि बठक मे केवल उन्ही बाता पर विचार किया जाएगा, जा पहले ही भेजे जा चुके एजेंड, मे दज ह। उगने और मामने भी उठाए, उनका बैठक ॥ कोई सबध या तुक नहीं थी, परतु यदि ईसप की क्या को स्मरण रखा जाए, तो सबध जरूर था।

जा कुछ अधिकारिया न निर्धारित किया था, उसे काप्रेस अपन आपको मूख बनाए बिना स्वीकार नहीं कर सकती थी। लालाजी की काय समिति ने अपनी बैठक करन तथा मजिस्ट्रेट की आपत्तिया की परवाह न करने का निणय किया। इस उल्लघन के परिणाम निस्मदह पूरी तरह से स्पष्ट थे। लालाजी ने सदस्या को पहले ही सदेश भेजने की व्यवस्था कर ली थी, ताकि वे निर्धारित समय स काफी पहले उपस्थित हा जाए और गिरफ्तारी से पूव अपनी कारवाई पूरी कर ले। ‘कारवाई’ का पूरी तरह से तयार कर लिया गया था, ताकि किसी प्रकार का विलम्ब न हा। अगले दिन प्रात महात्मा गाधी को उनका पत्र तथा दशवासिया के नाम उनका सदेश, दाना ही उनकी गिरफ्तारी स पूव ही तयार कर लिए गए थे।

अन्तिम आदेश, जिसमे राजद्रोही बठक कानून के अधीन बैठक करन की निश्चित रूप से मनाही की गई थी, दोपहर बाद दा बजे से थोडी देर पहले मिना, जिस समय बठक चल रही थी। दो बजन से पूव ही समिति ने अपनी सारी कारवाई समाप्त कर ली थी मिवाय मजिस्ट्रेट को यह बताने के कि वे उसके आदेशा को क्या समझत हैं और किस प्रकार गिरफ्तार हा। उन्हें अधिन समय के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पडी।

तो बर सी थी, परन्तु इनके लिए कोई उचित कारण तलाश बरा के लिए अब उन्होंने सिर खुजान आरम्भ कर दिए। ऐसा कारण ढूँढना आसान बात नहीं थी, यह हमसे स्पष्ट हो गया कि अभियाग पक्ष ने मुनवाई स्थगित करने का बार बार अनुरोध किया। यद्यपि मुकदमे के तथ्य बहुत सरल थे कि उनकी व्यापक जाच-पड़ताल की आवश्यकता हो, फिर भी अदालत ने पुलिस का अनुरोध स्वीकार कर लिया। जैसा कि साजपत राय ने अपने एक बयान में लिखा, जो उन्होंने मुनवाई के दौरान दिया, जिसका वचन हम थोड़ी देर बाद करेंगे।

‘प्रत्यक्ष तौर पर यह एक ऐसा मुकदमा था, जिसमें कोई रिमांड न आवश्यक था और न ही उचित। जिला मजिस्ट्रेट ने राजद्रोही बैठक कानून के अधीन कारवाई की थी, उसने स्वयं हम गिरफ्तार किया था और यदि यह कानून लागू किया था, तो हम दोषी थे। यह मुकदमा कोई एक घंटे में समाप्त किया जा सकता था।’

इस सारे मामले के कानूनी तौर पर उचित होने के बारे में गिरफ्तारी के शीघ्र बाद ही मदेह उत्पन्न हो गए थे और साजपत राय ने तार घर में ही हो रहा लम्बा चौड़ा विचार-विमर्श देखा था। “मजिस्ट्रेट जिसने हमारे मुकदमे की बाद में मुनवाई की, पूरे समय के लिए उस स्थान पर उपस्थित रहा और हम कुछ भी माँगे, सम्भवतः उसने सलाह मशविरे में भाग लिया होगा।” ‘बदलते आधार’ का सिलसिला भी तार घर में ही आरम्भ हो गया था। जिला मजिस्ट्रेट दरअसल उन्हें राजद्रोही बैठक कानून दिखा रहा था, परन्तु अब उसे ममिति की बैठक पर लागू किए जाने के बारे में सदेह उत्पन्न हान सगे थे। जिस मजिस्ट्रेट ने उनका पुलिस रिमांड दिया था, उन्हें बताया था कि उनके विरुद्ध भारतीय धड़ विधान की धारा 145 के अधीन कारवाई की जा रही है और यदि वे चाहें तो जमानत पर रिहा किए जा सकते हैं। मजिस्ट्रेट ने उदारता से अभियाग पक्ष को दो सप्ताह के लिए रिमांड दे दिया था, ताकि वह केस तयार कर सकें।

7 दिसंबर 1921 को उन्हें अदालत में ले जाया गया और एक और रिमांड स्वीकार कर लिया गया।

“प्रत्यक्ष तौर पर अधिकारी अपने कानून के बारे में निश्चित नहीं थे और इस मुकदमे के सबंध में कानून ढूँढने के लिए समय दरकार था। जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस को यह यकीन नहीं था कि उन्होंने हम पर आरोप लगाने के लिए अपराध कानून की सही धारा का प्रयोग किया था। इसलिए हमें जल में बंद कर दिया

भी तरह से 'जनता या जनता के किसी भाग के लिए सावजनिक बैठक नहीं थी' — "बैठक की सूचना केवल प्रांतीय कांग्रेस समिति के सदस्या का दी गई थी — जा कि प्रांत की विभिन्न कांग्रेस समितियां के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं और इन सदस्या द्वारा निर्वाचित सदस्या को — जो नाम से निर्वाचित हुए हैं।" डिप्टी कमिश्नर को इस तथ्य की जानकारी दे दी गई थी (कार्यालय के क्लर्कों तथा सपरासिया को भी बैठक में शामिल न करने की सावधानी बरती गई थी) और जब मेजर फेरर बैठक में आया, तो उसने उन्हें यह नहीं बताया कि उनकी सभा किसी प्रकार से गैरकानूनी है या उमन बैठक की मनाही की हुई है, उसने ता चिल्लाकर बेचन पतना ही कहा था "मैं इस बैठक को सावजनिक बैठक घोषित करता हूँ। मैं आदेश देता हूँ कि आप तत्पर बितर हा जाओ।" जिनका कोई अर्थ नहीं था और न ही ऐसा कोई कानून था।

"मैं किसी कवनीकी दलील का लाभ नहीं लेना चाहता। मेरा तो यह कहना है कि आदि से लेकर अंत तक मारी कारवाई गैरकानूनी थी और यह एक और कारण है कि मैं सरकार का मान्यता नहीं देता — मैं यह स्वीकार नहीं करता कि यह कानून के अनुसार स्थापित की गई है।"

इस अवसर पर सरकारी वकील, श्री हरबट ने आपत्ति दी कि अभियुक्त तथ्य बयान नहीं कर रहा, तो तुरत उत्तर मिला, "श्री हरबट यह एक तथ्य है। यह सरकार की पार्श्विक शक्ति है, जिसे श्री फेरर मूर्तिमान करत हैं।" श्री हरबट ने अपनी आपत्ति पर जोर दिया और अदालत ने वक्तव्य का यह भाग दज करन में इन्कार कर दिया। "आपने मुझे वक्तव्य देने को कहा है और यह मेरा काम नहीं कि यह देखू कि आप इसे दज करत है या नहीं" अभियुक्त ने भावहीन स्वर में उत्तर दिया और तुरत ही कहा

मैं चालीस बयानकत की है और मुने ऐसा कोई कानून नहीं देखा कि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त का बयान देने से रोका हो।'

मजिस्ट्रेट मैं ऐसा बयान सुनने का तैयार नहीं हूँ।

सा० राम तब मैं विरोध के तौर पर बठ जाना हूँ। कृपया आप यह लिखेंगे कि आपने मुझे एक वक्तव्य देने से रोका? कृपया आप यह तथ्य भी लिख लीजिए

मजिस्ट्रेट यदि यह तथ्य है तो ?

गया और मानू की तलाश का मिश्रण जारी रहा। 13 दिसंबर को जैसे ही हम मचहरी में दाखिल हुए, हम बताया गया कि जिलाधीश ने परिवादी के रूप में 1911 के कानून 10 की धारा 11 के अधीन एक शिवायत की है। मजिस्ट्रेट ने बताया कि पहले वह शिवायत का पिपटारा करेगा यद्यपि यह समन का मामला है और दूसरा चारण्ट का मामला है। मेरे मन में यह बात स्पष्ट थी कि यह कारवाई सत्राट के विधि अधिकारी, जिलाधीश और सम्भवत सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट ने सलाह मशविरों के बाद की है। इस प्रकार अभियोग पक्ष को यह निणय करने में 9 दिन लग गए कि हम मुकदमे में कौन-सा कानून लागू करना है। और खुनि के कोई खतरा माल लेने का तयार न थे, उन्होंने दोहरी कमान इस्तमाल करने का निणय किया, ताकि मजिस्ट्रेट भारी सजा द सकें।”

ऐसा दिखाई पड़ता था कि यह विजय्व समाप्त नहीं होगा। आखिरकार अभियोग पक्ष ने अपना पक्ष 19 दिसंबर को पेश कर दिया, 21 तारीख को लालाजी का अपना बयान देने के लिए बुलाया गया। अगले दिन सरकारी वकील ने 'बहस' की आरंभ मजिस्ट्रेट ने 4 जनवरी 1922 तक अपना आदेश सुरक्षित रखा। दरअसल यह निणय सात तारीख का घोषित किया गया, पांच सप्ताह के लिए उन्होंने उन्हें जेल में कैद कर रखा, क्योंकि वे अपयोग तथा बुद्धिहीन थे।

जब मजिस्ट्रेट ने आगप निर्दिष्ट कर लिए, तो प्रत्येक अभियुक्त ने पूछा कि वह अपने को 'दोषी' मानता है या 'निर्दोष'। असहयोग के दिनों की सामान्य परम्परा के अनुसार किन एक ही उत्तर दिया गया "हम कुछ नहीं कहते"। लालाजी ने कहा कि वह सरकार के अधिकार को मान्यता नहीं देते और न ही उसकी अदा लतों का और उन्होंने अदानत की कारवाई में भाग न लिया। उनकी आरंभ से कोई बकील पेश न हुआ, न ही उन्होंने कोई गवाह पेश किया और न ही अभियोग पत्र के गवाहा से कोई जिरह की गई। असहयोग आन्दोलन की परम्परा के अनुसार मुकदमे की सुनवाई के अंत में लालाजी ने एक सक्षिप्त वक्तव्य दिया। वक्तव्य में कहा गया था कि प्रांतीय कांग्रेस समिति को लिख गए पत्रों में मेजर फेरर ने बैठक का मनाही का कोई आदेश नहीं दिया था यह पत्र तथा अंतिम पत्र, जिसमें बैठक की मनाही की गई थी, मेजर फेरर ने लाहौर के डिप्टी कमिश्नर के तौर पर भेजे थे, जिला मजिस्ट्रेट के तौर पर नहीं। और डिप्टी कमिश्नर की हैसियत से उसका राजदोही बैठक कानून में कोई वास्ता नहीं और बैठक किता

भी तरह से "जनता या जनता के किसी भाग के लिए सावजनिक बैठक नहीं थी" — "बैठक की सूचना केवल प्रांतीय कांग्रेस समिति के सदस्यों का दी गई थी — जो कि प्रांत की विभिन्न कांग्रेस समितियों के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं और इन सदस्यों द्वारा निर्वाचित सदस्यों को — जो नाम से निर्वाचित हुए हैं।" डिप्टी कमिश्नर को इस तथ्य की जानकारी दे दी गई थी (कार्यालय के क्लर्क तथा चपरासियों को भी बैठक में शामिल न करने की सावधानी बरती गई थी) और जब मेजर फेरर बैठक में आया, तो उसने उन्हें यह नहीं बताया कि उनकी सभा किसी प्रकार में गैरकानूनी है या उसमें बैठकों की मनाही की हुई है, उसने तो चिल्लाकर केवल इतना ही कहा था "मैं इस बैठक को सावजनिक बैठक घोषित करता हूँ। मैं आदेश देता हूँ कि आप तितर बितर हो जाओ।" जिसका कोई अर्थ नहीं था और न ही ऐसा कोई कानून था।

"मैं किसी तकनीकी दलील का लाभ नहीं लेना चाहता। मेरा तो यह कहना है कि आदि से लेकर अंत तक सारी कारवाई गैरकानूनी थी और यह एक और कारण है कि मैं सरकार को मान्यता नहीं देता — मैं यह स्वीकार नहीं करता कि यह कानून के अनुसार स्थापित की गई है।"

इस अवसर पर सरकारी वकील, श्री हरबट ने आपत्ति की कि अभियुक्त तथ्य बयान नहीं कर रहा, तो तुरंत उत्तर मिला, "श्री हरबट यह एक तथ्य है। यह सरकार की पार्श्विक शक्ति है, जिसे श्री फेरर मूर्तिमान करत है।" श्री हरबट ने अपनी आपत्ति पर जोर दिया और अदालत न बक्तव्य का यह भाग दख बन से इन्कार कर दिया। "आपने मुझे बक्तव्य देने को कहा है और यह मेरा काम नहीं कि यह देखू कि आप इसे दख करते हैं या नहीं," अभियुक्त न भावहीन स्वर में उत्तर दिया और तुरंत ही कहा

"मैंने चालीस बय बवालत की है और मैंने ऐसा कोई कानून नहीं देखा कि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को बयान देने से रोका हो।"

मजिस्ट्रेट मैं ऐसा बयान मुझने को तैयार नहीं हूँ।

ला० राय तब मैं विरोध के तौर पर बैठ जाता हूँ। कृपया आप यह लिखेंगे कि आपने मुझे एक बक्तव्य दन से राका? कृपया आप यह तथ्य भी लिख लीजिए

मजिस्ट्रेट यदि यह तथ्य है तो ?

ला० राय हा, वह यह है कि बैठा म मेर बिना जिगी न बाई टिप्पणी नहीं की और न ही भाषण दिया। म बठक की मारी जिम्मेदारी अपन उपर लेता हू कि मैंन बैठक बुनाई इमकी अध्यक्षता की ओर उमका मचानन किया।

7 जनवरी 1922 का मजिस्ट्रेट न अपना निणय मुना दिया और घारा 115 के अधीन सालाजी को एक बष के बठार परिश्रम की मजा मुनाई और दूसरे आरोप के लिए 6 महीने कारावास और पाच मो रुपये जुमनि की मजा मुनाई गई।

गिरफ्तारी, मुबदमा और सजा सभी एक ही चीज थे—और इस बुरे उदाहरण न भारत म ही नहीं, ब्रिटेन में भी ध्यान आकर्षित किया। सामान्य समिति की बठक को रोबन के लिए राजद्रोही बैठक कानून का इस्तमाल करना अपने तौर पर काफी नई बात थी, जिम पर अधिब जानकार पत्रिकाओं ने ध्यान आकर्षित किया जते मागेन्टर गाडियन तथा 'द नेशन' और उन्हान मुबदमे की मुनवाई से पूब ही उस पर टिप्पणी भी की। 'द नेशन' ने सालाजी के बारे म कहा कि वह उत्तर-पश्चिम भारत म श्री गांधी के सबसे मजबूत ममयब हूँ। उन्हें इंग्लड तथा अमरीका में उनके ममकालीन बिनी भी भारतीय राष्ट्रवादी के मुकाबले अधिब लोग जानते हैं, उसने लिखा था 'उन्हें प्रातीय कांग्रेस समिति की एक बैठक के लिए गिरफ्तार किया गया था, जो प्रिसमम सप्ताह में होने वाले राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधि-बैठक के प्रारम्भिक बय के सबध में एक सामान्य बठक थी।'

'द नेशन' की टिप्पणी ने आगे बहा गया था, "अनुमान है श्री लाजपत राय पर बाबायदा मुबदमा चलाया जाएगा, जो उस व्यक्ति के लिए एक नया अनुभव होगा, जिसे चौदह वर्ष पूब ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक पुराने अध्यादेश के अधीन निर्वासित करने से भारत तथा ससद म एक तूफान उठ खडा हुआ था। भारत में ऐसा कोई अय व्यक्ति नहीं है, जिसका व्यक्तित्व तथा इतिहास अपसरगाही सरकार को इतने गभीर रूप से दोषी करार देता है। गांधी के समान वह भी बेईमान सिद्धात के व्यक्ति नहीं" — जैसा कि श्रीमती ब्राऊनिंग ने मैजिनी के बारे में कहा था। स्वभाव से वह एक उदारवादी राजनीतिक हूँ, व्यवसाय से एक वकील, काम से वह लोकहितैषी तथा शक्ति सुधारक, जिनका समाज सेवा तथा आत्म बलिदान का सम्बा इतिहास है। और इस बात का क्या कारण है कि वह आज असहयोगी हूँ और भारत सरकार उन्हें गांधी के बाद दूसरा खतरनाक व्यक्ति समझती है, बजाय इमने कि वह अपने उचित स्थान पर पंजाब के जिम्मेदार वकील होते, वह कारण कन्याकुमारी से खबर तक प्रत्येक पढ़ा लिखा भारतीय जानता है।'

उन पर 'बाकायदा' मुकदमा चलाया गया और यह अनुभव 'नया' ही नहीं था 'अनोखा' भी था जिसने सरकार को भी बदनाम कर दिया। उन्होंने तुरत हस्तक्षेप किया और भारतीय दंड विधान की धारा 145 के अधीन दी गई सजा तुरत माफ कर दी गई। दूसरे आरोप के अधीन दी गई सजा के बारे में भी उन्होंने अपने विधि अधिकारियों का भरोसा लिया और जनवरी समाप्त होने से पूर्व ही उन्होंने जल्ता फौजदारी की धारा 104 के अधीन सजा के आदेश भी वापस ले लिए। एक सरकारी सूचना भी जारी की गई, जिसमें स्वीकार किया गया था कि जिस प्रकार की बैठक के लिए लाजपत राय तथा उनके साथियों को गिरफ्तार किया गया था, सावजनिक बैठक नहीं थी और वह राजद्रोही बैठक कानून के अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

इस प्रकार महामहिम की प्रजा के चार व्यक्ति गिरफ्तार किए गए, उन पर मुकदमा चलाया गया, उन्हें सजा दी गई और पूरे 59 दिन जेल में रखा गया, तब जाकर पंजाब सरकार को पता चला कि उनके प्रतिनिधि जा कुछ कर रहे थे, वह सारा गैरकानूनी था।

पंजाब सरकार का अपने मजिस्ट्रेटों द्वारा की गई इन भीषण गलतियों को ठीक करते हुए भी लाजपत राय को स्वतंत्र करने का कोई इरादा नहीं था। उनके तीन साथी तो रिहा कर दिए गए परन्तु उन्हें नहीं छोड़ा गया। 30 जनवरी की आधी रात के बाद उन्हें जगाकर जेल अधीक्षक के कार्यालय में ले जाया गया और 'रिहा' कर दिया गया। जैसे ही वह जेल के द्वार से बाहर निकले, उन्हें एक और 'आदेश' दिखाया गया जो उन्हें केवल पांच मिनट पहले दी गई स्वतंत्रता का मुद्दा चिन्ता रहा था। इस आदेश पर भी जिला मजिस्ट्रेट मेजर एम० एल० फरर के हस्ताक्षर थे और इसमें कहा गया था

शुक्ति लाला लाजपत राय के विरुद्ध 1911 के कानून 10 की धारा 7 और 1908 के कानून 14 की धारा 17 के अधीन आरोप है, इसलिए आपको आदेश दिया जाता है कि आप उन्हें गिरफ्तार करके 31 जनवरी को सट्टल जेल में मेरे सामने पेश करें।

तिथि 30 जनवरी 1922

हस्ताक्षर—एम० एल० फरर

जिला मजिस्ट्रेट—लाहौर

जेल का द्वार उन्हें दोबारा प्रवेश देने के लिए फिर खुला। उनका विस्तर तथा अन्य सामान फिर से जेल कोठरी में पहुँचा दिया गया, जो दो मास से उनका

घर था। किसी भी मताधिकार प्राप्त व्यक्ति को चूहे बिल्ली के समान इस खेल में इतने शीघ्र स्वतंत्र और दोगारा बंदी बनाने की कार्रवाई इतनी गुप्त ढंग से कभी नहीं हुई थी। अगले दिन विश्व ने उनकी आधी रात को दाबारा गिरफ्तारी की खबर सुनी और उनकी रिहाई का किसी को पता ही नहीं चला।

गैरकानूनी कारवाइयों को ठीक करने का प्रयत्न विफल हो गया था। दरअसल अब तो बहुत अधिक गैरकानूनी कारवाइयाँ थी, जबकि पहले केवल दो या तीन ही थी। एक बात है कि उस अपराध के लिए दोगारा मुकदमा चलाना सभी कानूनों के विरुद्ध था, क्योंकि तबनीकी तौर पर उनकी पहली मज्जा अभी भी मौजूद थी। उनकी रिहाई का आदेश देते समय सरकार ने जाना पौड़दारी की धारा 104 के अधीन उनकी सजा माफ कर दी थी परन्तु (भूठी मर्यादा की खातिर) उनकी सजा को समाप्त नहीं किया था। इस आधी कार्रवाई ने कई प्रश्नों को जन्म दिया जिनका सामना करना सरकार के लिए आसान नहीं था। यह उन प्रश्नों की बौछार है जो लालाजी ने बाद में भेजे गए एक वक्तव्य में की

“(क) क्या पञ्जाब सरकार इन गिरफ्तारियाँ तथा मुकदमों में एक पक्ष थी? क्या उसने इनकी स्वीकृति दी थी या अधिकार दिया था?”

“(ख) यदि उसने स्वीकृति अथवा अधिकार दिया था तो क्या उसने इन मुकदमों के बारे में अपने विधि अधिकारियों से मशविरा किया था?”

“(ग) यदि किया था और विधि अधिकारियों ने इन मुकदमों की स्वीकृति दी थी, तो उन्होंने भारतीय दंड विधान की धारा 145 के अधीन दी गई सजा या इसलिये कि उन्होंने सजा को गैरकानूनी पाया था? यदि यह सजा गैरकानूनी थी तो उन्होंने सजा सुनाने की स्थिति तक पहुँचने से पहले ही सरकारी वकील को मुकदमा वापस लेने के लिए आदेश क्यों न दिया? यदि वह राज्य-क्षमा का मामला था तो आदेश में इसकी चर्चा क्यों न की गई?”

“(घ) यदि उन्होंने अपने विधि अधिकारियों से मशविरा नहीं किया, तो यह किसकी गलती थी? सरकार की या जिला अधिकारियों की?”

“(ङ) यदि यह गलती जिला मजिस्ट्रेट की थी तो सरकार न इस भारी गलती के लिए अपनी नाराजगी व्यक्त करने के लिए क्या कार्रवाई की, जो जिला मजिस्ट्रेट और मुकदमों की सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट ने की थी?”

(घ) उसने अभियुक्त का हुई उस परेशानी, चिन्ता, कष्ट और खच के लिए जो इस अवधि नज़रबन्दी के कारण उसे उठानी पड़ी, क्या मुआवजा दिया ?

(छ) जिन लोगों के विरुद्ध सरकार ने ३ दिसंबर को पंजाब प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक तितर बितर करत समय शक्ति का प्रयोग किया था उनसे क्षमा याचना करने तथा उन्हें मुआवजा देने के लिए सरकार ने क्या कार्रवाई की ?

(ज) के अधीन हम देखते हैं कि जिस मजिस्ट्रेट ने हमें सजा दी थी उसकी पदावधि कर दी गई है और जिला मजिस्ट्रेट अब भी लाहौर जिने का इंचार्ज है।

(घ) के संबंध में मुझे उन्हीं दस्तावेजों के आधार पर भारतीय दंड विधान की धारा १४५ के अधीन लगाए गए आरोपों के लिए, रिहाई के पांच मिनट के अंदर ही दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया। यह समस्त सेना चाहिए कि तबनीकी तौर पर यह दोनों सजाए अभी भी वायम है। और सरकार जब चाहे उन्हें अभियुक्त के विरुद्ध इस्तेमाल कर सकती है।”

मुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट न—वह काई जी० एच० हैरिस, प्रथम वर्ग का मजिस्ट्रेट था—१३ फरवरी का उनके विरुद्ध आरोप निश्चित कर दिए—

“कि तुमने ३ दिसम्बर १९२१ या इसके आसपास लाहौर में पंजाब प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष के नाते एक घोषणा पत्र जारी किया, यह घोषणा-पत्र ३ दिसंबर १९२१ के ट्रिब्यून में प्रकाशित हुआ। इस घोषणा पत्र में तुमने प्रत्येक कांग्रेस कार्यकर्ता को, जिसे परिणामा की काई चिन्ता नहो, राष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठन में भर्ती होने का आह्वान किया, जिस संगठन का सरकार सरकारानुता घोषित कर चुकी थी। इस प्रकार तुमने १९०८ के फौजदारी कानून संगोधन एक्ट १४ की धारा १७(१), जो भारतीय दंड विधान की धारा ११७ के साथ पढ़ी गई, दृष्टनीय अपराध किया, जो मेरे विचाराधिकार में है।”

एक बार फिर अभियोग पक्ष तथा अदालत को कानूनी बेंचनी का दौरा पडा। अब तब जिला मजिस्ट्रेट ने कानून के साथ काफी खिलवाड कर लिया था। वक्त मान मामले में उसने जो सरकारानुता कारवाइया की थी वह लाजपत राय द्वारा दिए गए दानों परों में दर्ज हैं जिसमें से हम पहले उद्धरण दे चुके हैं और जिनके बारे में हम फिर चर्चा कर रहे हैं —

‘इन दो अपराधों में से एक समन का मामला है और उसके लिए जमानत हो सकती है। दूसरा भी समन का मामला है यदि अपराध १९०८ के कानून

14 वीं धारा 17(1) के अधीन है, परंतु वारण्ट में बड़े आराम से इस धारा का उल्लेख नहीं किया गया। 31 तारीख को मुंबई जिला मजिस्ट्रेट के मामले पेश किया गया और उसने जाबता फौजदारी की धारा 167 के अधीन मेरा रिमांड दे दिया, जो प्रत्यक्ष तौर पर इस मामले पर लागू नहीं होता। उसने मुझसे यह नहीं पूछा कि क्या मैं जमानत पर रिहा होना चाहता हूँ। 31 तारीख को जब मैंने जिला मजिस्ट्रेट से अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों के बारे में पूछा, तो उसने केवल वारण्ट में दज धाराओं का नाम लिया। 1908 के कानून 14 वीं धारा 17 के बारे में मेरे प्रश्न के उत्तर में जिला मजिस्ट्रेट ने कहा कि यह कुछ नहीं कह सकता, परंतु इम्पेक्टर ने उपधारा (2) का नाम लिया।

‘जाबता फौजदारी की धारा 167 लागू ही नहीं होती थी क्योंकि यह मुकदमा तो जिला मजिस्ट्रेट की आर से स्वयं जिला मजिस्ट्रेट ने शुरू किया था। जब रिमांड स्वीकार हो गया तो पुलिस ने जाबता फौजदारी की धारा 154 के अधीन प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज की (प्रारम्भिक रिपोर्ट का खाना न० 1 और अन्तिम टिप्पणा देखिए) ताकि धारा 167 के अधीन कारवाई का बंध बनाया जा सके। अभियोग पक्ष ने मेरे प्रोपणा पत्र को आधार बनाया था इसलिए किसी रिमांड की आवश्यकता नहीं थी।’

परंतु मजिस्ट्रेट द्वारा कानून के साथ खिलवाड़ करने तथा इस मुकदमे में लाजपत राय के अनोखे अनभव का अभी अन्त नहीं हुआ था।

आरोप पत्र तैयार होने और 13 तारीख का उसे लाजपत राय को पढ़कर मुतान के बाद (लाजपत राय ने कोई बयान देने से इन्कार कर दिया था) सरकारी वकील दलीला के लिए अदालत को मनीषित करना चाहता था, परंतु अदालत ने उस मामूली-सी औपचारिकता को भी समाप्त कर दिया क्योंकि मामला इतना स्पष्ट और सीधा था कि दलीलों की आवश्यकता ही नहीं थी केवल एक चीज शेष थी, वह था निर्णय और उसके लिए अदालत ने 15 फरवरी निश्चित कर दी।

15 तारीख को कोई फैसला न सुनाया गया। इसके स्थान पर नई चालबाजी शुरू की गई। स्पष्ट तौर पर उन्हें पता चल गया था कि उस मामले को, जिसमें कुछ भी दम नहीं है, वे कुछ बनाकर हास्यास्पद स्थिति पैदा कर रहे हैं। लाजपत

राय के वक्तव्य से एक उद्धरण "ऐसा दिखाई पड़ता है कि 13 और 15 तारीख के बीच मजिस्ट्रेट तथा अभियोग पक्ष का पना चला

(1) कि 3 और 6 दिसंबर का राष्ट्रीय स्वयमेवम् मगठन स्थापित ही नहीं हुआ था ।

(2) और उसे 18 दिसंबर तक गैरकानूनी घोषित नहीं किया गया था जिम्मेवारे में 12 दिसम्बर का एक आदम पजाब सरकार के गजट में प्रकाशित किया गया था ।

(3) 3 दिसम्बर और उसके पश्चात जेल में होने के कारण में इस मगठन की स्थापना तथा उसकी गतिविधियों के लिए जिम्मेदार करार नहीं दिया जा सकता था । इस बात की जानकारी मिलने के बाद मजिस्ट्रेट तथा अभियोग पक्ष ने मलाह मशविरा शुरू कर दिया और ये कृतियां दूर करने के लिए फैसले की घोषणा स्थगित कर दी, ये सभी बातें अभियुक्त के पीठ पीछे हुई और मेरे लिए यह विश्वास करने का कारण है कि जिला मजिस्ट्रेट, कानूनी अधिकारी तथा मुनवाई करने वाला मजिस्ट्रेट—सभी, इस मामले के पक्ष हैं । "

जिम्मेव यह था कि 15 तारीख को फसना न मुनाया गया, उस दिन मजिस्ट्रेट ने 20 तारीख के लिए मामला स्थगित कर दिया क्योंकि

'सरकारी घकील श्री हरबट मुकदमा स्थगित करना चाहते हैं क्योंकि वह एक अर्जी देना चाहते हैं । उनका कहना है कि मुकदमे में गलती हो गई है निस्संदेह यह गलती अभियोग पक्ष की है जिसने इस मामले का शुरू में अदालत में सही ढंग में पेश नहीं किया । वह चाहता है कि यह मुकदमा 20 फरवरी 1922 तक स्थगित कर दिया जाए ।'

20 तारीख को मजिस्ट्रेट ने दोनों मामला के लिए नए सिरे से, अलग अलग आरोप तयार किए, व इस प्रकार थे

'कि आपने 3 दिसंबर 1921 या इसके आसपास लाहौर में पजाब प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष के नाते एक घोषणा-पत्र जारी किया जो 11 दिसंबर, 1921 के दिव्यून में प्रकाशित हुआ, इस घोषणा पत्र में आपने सामान्य जनता को

उक्तमाया कि वह उन सभी स्थानों पर, जहाँ राजद्रोही बैठकें बानून पाए हैं सब जगह सभाए करें, जो इस बानून का सरासर उल्लंघन है, तथा गिरफ्तारियां दी जाएं। आपने मविम अख्ता का प्रचार किया और इस प्रकार अपराध किया जो 1911 के बानून 10 की धारा 7 तथा भारतीय दंड विधान की धारा 117 के अधीन सजा योग्य है और मेरे विचारधकार मे है।

आपने 3 दिसंबर 1921 या उसके निकट लाहौर में पञ्जाब प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष की हैसियत से घोषणा पत्र जारी किया जो 5 दिसंबर 1921 के 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुआ, उस घोषणा पत्र में आपने प्रत्येक कांग्रेसी को, जिसे परिणाम की चिंता नहीं थी, 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक' संगठन में नाम लिखवाने का कहा। यह संगठन पौजदारी बानून सशोधन एक्ट की धारा 17 के अधीन गैरकानूनी है। उसी प्रकार जिस तरह कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवक सरकार द्वारा बानू विराधी घोषित किए गए हैं और इस प्रकार आपने कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों के योग्यता, जिनकी संख्या दस से अधिक थी, अपराध करने के लिए उक्तमाया, जो 1908 के अधिनियम 14 की धारा 17 (1) के अधीन, भारतीय दंड विधान की धारा 117 के साथ, सजा योग्य है, तथा मेरे विचारधकार में है।"

उस दिन पहली बार लालाजी ने असहयोगकर्ता की वापरवाही को छोड़कर क्षोभ के पक्ष में मुकदमे की सुनवाई मुलतवी करने का आग्रह किया, ताकि वह दोष सूची में सशोधन करने की सरकारी वकील की याचिका का उत्तर दे सकें। अदालत ने, जो अभियोग पक्ष के अनुरोध मानने में इतनी उदार थी, कारवाई स्थगन के बारे में लालाजी का अनुरोध अस्वीकार कर दिया और लिखा

'श्री हरदत्त सरकारी वकील ने आज एक याचिका पेश की है, इसमें कहा गया है कि इस मामले का समन का मुकदमा समझा गया है, परन्तु अभियुक्त से 7 फरवरी 1922 का पूछे गए प्रश्नों तथा अभियोग पक्ष द्वारा पेश की गई गवाहियों को ध्यान में रखते हुए, यह मुकदमा चारण्ट का मामला बनता है जो 1881 के अधिनियम 10 की धारा 7 और उसके साथ भारतीय दंड विधान की धारा 117 के अधीन आता है। इसलिये सरकारी वकील की प्रार्थना है कि इस मामले में उपरोक्त धाराओं के अधीन आरोप निर्धारित किए जाएं और अभियुक्त

से कहा जाए कि वह अपनी सफाई पेश करे और यदि उसकी इच्छा हो तो इस्तगासे के गवाहा का जिरह के लिए बुला ले ।

‘अभियुक्त ने अदालत से निवेदन किया है कि उसे सरकारी वकील द्वारा दी गई याचिका का उत्तर देने के लिए समय दिया जाए । वतमान स्थिति में मुझे वारवाई स्थगित करना अनुचित दिखाई देता है । मैं सरकारी वकील से सहमत हूँ कि इस मुकदमे की सुनवाई वारण्ट बेस के तौर पर की जानी चाहिए थी । अदालत द्वारा अभियुक्त से, जो एक वकील है, 7 फरवरी 1922 को पूछे गए प्रश्न में उसे पता चल गया होगा कि उसके विरुद्ध मुकदमा 1911 के अधिनियम 10 की धारा 7 और भारतीय दंड विधान की धारा 117 के अधीन है ।

“अभियुक्त ने सारे मुकदमे में कहा है कि वह अमहयागर्ता है जिसका अर्थ है कि वह मुकदमे की वारवाई में भाग नहीं लेगा । मैं सरकारी वकील से सहमत हूँ कि अभियुक्त के साथ पशपात नहीं होगा, यदि उसके विरुद्ध आरोप आज निर्धारित किए जाए और फिर उसे जो याचिका वह देना चाहे उसके लिए समय दे दिया जाए ।”

जब मक्षिप्त स्थगन के लिए उनका आवेदन स्वीकार करने से इन्कार कर दिया गया, तो लालाजी ने दरअसल अपना मुकदमा किसी अन्य अदालत में तब्दील करवाने के लिए उच्च न्यायालय में याचिका देन की धमकी दी थी । जो कुछ अदालत ने स्वयं किया और जो उसने अभियोग पक्ष को करने दिया, निस्संदेह वह दुग्ध करने के लिए काफी था, परन्तु लालाजी के क्षोभ का अमल कारण तो कहीं और ही था । (वह हम अगले अध्याय में देखेंगे) । इसके पश्चात् लालाजी ने अदालत के मामले काई लिखित या जबानी बयान न दिया, परन्तु उन्होंने एक बयान बाहर भेजा जिसमें अपन सबध में इन दोनों मुकदमा का इतिहास जुड़ा हुआ था । यही वह बयान था जिससे हम उद्धरण दे रहे थे ।

इसमें उन्होंने अधिकारियों को नहीं, अपन दशवामिया को संबोधित किया था, जिसमें सत्ताधारी लोगों के चालबाजी वाले तौर-तरीके नये किए गए थे । यह बयान जारी करने का तात्पर्य शुरू से ही बिल्कुल स्पष्ट था । यह अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए नहीं, न ही दया या सहानुभूति जीतने के लिए था, इसका उद्देश्य तो केवल यह दिखाना था कि “पजाव में सम्राट के कई अधिकारी और मजिस्ट्रेट वानून से कितने अनजान हैं और किस प्रकार वानून के अधिकार

का राजनीतिक उद्देश्या के लिए दुरूपयोग किया जा रहा है।" "याय घबहैया के इस आयर्चयजनक भण्डाफोड के अंत में उन्होंने लिखा —

"यह बात सत्य के अधिक निकट होगी और इससे भ्रकार की मात्र मयादा बढ़ेगी यदि यह सरकार यह कह दे कि असहयाग के कारण हमने वानून के अनुसार हममें व्यवहार के सभी अधिकार छो दिए हैं और जहा तक हमारा सबध था सभी वानून नियम तथा अधिनियम निलम्बित कर दिए गए हैं। ऐसा करने से दोनों पक्षा को बहुत से अनुचित कष्ट से बचाया जा सकेगा।"

उनके विरुद्ध लगाए गए नए आरोपों के बारे में असल तरया हा भी इन वयान में माराश दिया गया था

"कि 14 नवंबर को सगठन का, जिस अब खिलाफत स्वयसेवक' कहत हैं, सरकारानुनी घोषित करने की मूल अधिसूचना भी गनत थी। पहली बात ता यह कि 'कांग्रेस स्वयसेवक' नाम का कोई सगठन नहीं था। जिन युवकों का स्वयसेवक कहते थे उनके अलग अलग स्थानों पर अलग अलग नाम थे। प्रातीय स्तर पर ऐसा कोई सगठन नहीं था। जो पजाब प्रातीय कांग्रेस समिति के अधीन काय करते थे उन्हें भारतीय राष्ट्रीय सेवा कहत थे। जो नगर कांग्रेस समिति, लाहौर के अधीन काय करते थे उन्हें स्वराज सेना कहत थे। इस मामले पर बम्बई में 20 नवंबर को अधिल भारतीय कांग्रेस समिति की काय समिति की बैठक में विचार किया गया था और यह निणय किया गया था कि स्वयसेवकों का त्रिभुल नए सविधान के अधीन सगठित किया जाए। (क) उसका नाम नेशनल बाल टियर कर होगा (ख) सारे प्रांत के लिए उसकी एक ही इकाई होगी और (ग) वह एक केंद्रीय प्रातीय बोर्ड के अधीन हागी। (घ) प्रत्येक व्यक्ति को अहिंसा तथा अय मामला के बारे में लिखित रूप में तीन अलग प्रतिज्ञा पत्र हस्ताक्षर करने देने होंगे (ङ) इन सभी प्राथना पत्रों को पजाब प्रातीय बोर्ड को स्वीकार करना था। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि न ता मूल अधिसूचना ठीक ढग से जारी की गई थी और न ही दूसरी अधिसूचना को पिछली तारीख में लागू किया जा सकता था। काई स्वतंत्र मजिस्ट्रेट अभियोग पक्ष को यह सभी पूरी करने के लिए और समय नहीं दे सकता था। वह पिछले दम गप्ताह से मुझ पर मुकद्मा चला रहे हैं और उनके पास तथ्य तथा वानून, दोनों ढूढने के लिए काफी समय था। परन्तु मजिस्ट्रेट तो याय तथा औचिय के सभी विचारों के प्रति विभुल निष्प्रय था। वह तो जिला मजिस्ट्रेट तथा सम्राट को प्रसन्न करना चाहता था।

इसलिए अमल में उसने उनकी इच्छा के अनुसार किया और मुझे उत्तर देने या आपत्ति करने के लिए एक दिन भी न दिया।”

उसके नए आराप गिद्ध होने में भी कई अनियमितताएँ थी क्योंकि यह बयान छपन तक उन्हें सजा हो चुकी थी।

“धारा 117 (भारतीय दंड विधान) के अध्ययन से पता चलेगा कि वह इस मुकामों के तथ्या पर लागू नहीं होती।

पहली बात—अगर यह मान लिया जाए कि मने सागा का उकसाया कि वे स्वयं-सेवक बनें तथा सावजनिक सभाएं करें, यह स्पष्ट है कि धारा 117 लोगों द्वारा सामूहिक कारवाई से सम्बद्ध है (फौजदारी -11, बीकली रिपोटर 3 के अनुसार जो दंड विधान रत्नलाभ पेनल कोड में उद्धृत किया गया है)। स्वयंसेवक के तौर पर नाम लिखवाना प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत काम है। यह जनता की ओर से सामूहिक तौर पर और इकट्ठे नहीं किया जा सकता। इस प्रकार जनता द्वारा सामूहिक तौर पर और मिलकर लेखक अथवा भाषण नहीं हो सकते कि 1911 के कानून 10 की धारा 7 के अधीन आए।

दूसरी बात—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संगठन घोषणा पत्र के बाद तक संगठित नहीं हुआ था।

तीसरी बात—घोषणा पत्र में स्पष्ट तौर से कहा गया था कि काय समिति की पूव स्वीकृति के बिना किसी भी व्यक्ति द्वारा सविनय अवज्ञा नहीं की जानी थी।

चौथी बात—यही घोषणा पत्र और यही तथ्य भारतीय दंड विधान की धारा 145 के अधीन दोष सिद्ध तथा सजा का आधार थे, जो अब भी कायम है।

पाचवी बात—इन दोनों कानूनों की भाषा ऐसी है जिससे यह आभा होता है कि उकसाना मूल अपराध का ही भाग है। मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा है कि इस घोषणा पत्र के आधार पर मेरे सिर पर कितने आरोपों की तलवार लटक रही है। परन्तु मैं बलि का बकरा बनने के लिए सहमत हूँ।”

इस सबके बाद भी वह दापी सिद्ध हुए और उन्हें दो वर्ष के कारावास का दंड दिया गया।

49. बारदोली का निर्णय

पञ्जाब कांग्रेस की बैठक में सात्ताजी की गिरफ्तारी और 20 फरवरी 1922 को उन्हें सजा सुनाए जाने के बीच के तीन महीनों में भारतीय राजनीति में बहुत परिवर्तन हो गए थे। बीज ता गिरफ्तारी के समय ही मौजूद थे परन्तु उनके फूटने के बाद के जीवन की भविष्यवाणी करना शायद इतना सरल नहीं था। यह घटना चक्र दो बारणा में हुआ—कांग्रेस द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने गया कांग्रेस द्वारा हिंसा पर उतारू न हाने के आदेश के बावजूद भीड़ द्वारा हिंसक बारवाहिया करने से।

‘सविनय अवज्ञा’ को ता शुरू से ही लगातार अहिंसक अमहयोग कायन्त्रम की चरम स्थिति माना गया था, मद्यपि यह संभव है कि असहयोग के प्रवक्तक न अपन मन में यह आशा लगा रखी हो कि असहयोग आन्दोलन के कर अदाम्यमी न करने की स्थिति तक पहुचन से पूव ही सरकार से समझौता हा जाएगा। यह आशा पूरी न हाने पर बारदोली के लोग ने—जो गुजरात का एक छोटा सा तालुका है—बल्लभ भाई पटेल के मागदशन तथा अध्यक्षता में अक्टूबर 1921 में सविनय अवज्ञा का आन्दोलन शुरू करने का निर्णय किया। असहयोग के प्रवक्तक न यह योजना बनाई थी कि यह प्रयोग बारदोली में उनकी अपनी देख रेख में शुरू होगा ताकि अय जगहों के स्थानीय नेताओं के लिए यह आदेश का काम दे। काय कारिणी न 3 नवम्बर 1921 को पास किए गए प्रस्ताव में कुछ कमौटिया निर्धारित की थी, यदि वे खरी उतरती तो प्रांतीय कांग्रेस समितियां को थी व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से सविनय अवज्ञा शुरू करने की अनुमति दे दी जाने वाली थी। इसके एक पखवाडे के अदन ही बम्बई में फसाद हो गए—जिनमें 50 व्यक्ति मरे तथा 400 घायल हो गए। ये दमे उस समय हुए जब प्रिस आफ वेल्थ के भारत आगमन के अवसर पर सावजनिक बहिष्कार के लिए हडताल का आहवान किया गया। अहिंसक असहयोग का नेता पीछे हट गया। परन्तु प्रभावशाली अनशन के अतिरिक्त जुल मिथाकर परिणाम यह निकला कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने के लिए और अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए और स्वमसेवकों के लिए अहिंसा की और अधिक व्यापक प्रतिपा तयार की गई। परन्तु जादोला किसी भी स्थिति में नहीं छोडा जाना था। निश्चय ही इसे तज किया जाना था।

अधिन मे-अधिव स्वयसवको के नाम दज किए जात थे और यद्यपि कियो विशप क्षेत्र म सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करन रा निणय अज प्रातीय ममितिया नही कर सकती थी, फिर भी उनसे आशा की जाती थी कि व ऐसे अभियान के लिए सक्रिय तैयारिया आरम्भ कर दें और यदि सभव हो इसकी गति और तज कर दें । धम्बई के दगो ने बारदाली के सघप की तयारी की गति धीमी कर दी थी, परन्तु स्पष्ट तौर पर एसी बाई आशवा नही थी कि किसी भगलभावी घायणा के साथ यह कहकर उम निणय को छोड दिया जाए कि कायक्रम अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया है । अभियान की घडी की प्रतीक्षा मे वातावरण का तनावपूण रखा गया था ।

यह वह अवसर था जब लालाजो गिरफ्तार हुए । दण म हर पल काई बडी घटना होन की आशा की जा रही थी । उन्हुनि अपना विश्वास 'स्वराज एक वष मे पर निश्चित नही किया था, परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए वह निकट भविष्य म, काई साहसी प्रयत्न करने की प्रतीक्षा अवश्य कर रहे थे । गिरफ्तारी के समय दशवामिया के नाम एक सदेश म उन्हुनि कहा

'जब मन अमरीका का तट छोडा था, म जानता था कि मुझे अधिक समय के लिए जेल से बाहर नही रहन दिया जाएगा और वहा से रवाना होत समय मन अपने मित्रा को बता दिया था कि यदि मुझे अपन देशवासियो मे रहकर छ महीने के लिए भी काय करन दिया गया ता मैं सतुष्ट रहूंगा । परन्तु अब भगवान की कृपा से मुझे आपके साथ 19 महीन रहकर काय करन का अवसर मिला है और मैं बहुत प्रसन्नचित्त से जेल जा रहा हूँ और मुझे विश्वास है कि जा कुछ भी हमन किया है, हमन अपने अन्त करण और भगवान की इच्छा के अनुसार किया है । मेरे मन मे न काई भय है और न काई सदेह । मुझे यकीन है कि जा माग हमने धुना है वह सही माग है और हमारी सफलता निश्चित है । मेरा यह विश्वास भी है कि म शीघ्र ही आपके पास लौट आऊंगा और फिर से अपना काय करूंगा । परन्तु यदि ऐसा न भी हुआ, तो म आपका विश्वास दिलाता हूँ कि जब म अपने खप्टा के पास जाऊंगा ता मुझे किसी बात का खेद नही होगा । म एक कमजोर तथा नाजुक व्यक्ति हूँ और यह दावा नही करता कि मेरे पास महात्मा गांधी जसी शानदार आध्यात्मिकता है । कई बार म अपने मुस्मे को नियंत्रण मे नही रख पाता न ही म यह कहता हूँ कि मेरे मन म ऐसी भावनाएँ कभी उत्पन्न नही

हुई जो मरे मन मे नहीं आनी चाहिए । परंतु मैं यह बात पूरी सच्चाई से कह सकता हूँ कि मैंने अपने देश तथा कौम का हित सदा ही अपने मन मे रखा है और मने जो भी कय किया उसमे मेरी नजर सदा ही देश के हित पर रही । मैं जानता हूँ कि अपना वक्तव्य पालन करते समय मैंने बहुत सी गलतिया की है और कई बार ऐसी आलोचना भी की है जिमसे मेरे देशवासियों को नाराजगी हुई है । मैं उस सबके लिए क्षमा चाहता हूँ । मुझे आशा है कि विशेषकर मेरे मिताचारी और श्यामसाजी भाई उसके लिए क्षमा कर देंगे ।

“मेरे देशवासियों, अब मैं आपका विदा करता हूँ । मैं इस दठ निश्चय के साथ जेल जा रहा हूँ कि मेरी प्यारी भातभूमि का सम्मान आपके हाथों मे सुरक्षित है । ‘वन्दे मातरम्’ तथा ‘तिलक स्वतन्त्र आण्ड पालिटिक्स’ मेरे दो बच्चे हैं । उन दोनों को भी मैं आपके संरक्षण मे सौंपता हूँ ।”

अली बधु तो लालाजी से भी पहले गिरफ्तार हो चुके थे, यद्यपि महात्मा गांधी ने उन्हें इस बात के लिए सहमत कर लिया था कि वे अपने कुछ वक्तव्यों के लिए खेद व्यक्त कर दें । फिर एक एक करके प्रथम पक्ति के अन्य नेता भी जेल गए—सी० आर० दास, अबुल कलाम आजाद और मोतीलाल नेहरू । अब महात्मा गांधी का उनकी आलाचना तथा सलाह उपलब्ध नहीं थी । अब तो मतलब केवल मात्र एक व्यक्ति का मामला रह गया था ।

कांग्रेस अधिवेशन दिसम्बर 1921 में अहमदाबाद में हुआ और महात्माजी को औपचारिक रूप में कांग्रेस का कार्यकारी प्रमुख नियुक्त कर दिया । यदि आप चाहें तो डिक्टेटर कह सकते हैं । परंतु इने स्पष्ट तौर पर युद्ध काल की आवश्यकता समझा गया था । महात्माजी को ये असाधारण अधिकार, अभियान आरंभ करने तथा उन यथामभव सफल बनाने के लिए दिए गए थे । कांग्रेस के जिन प्रस्तावों में उन्हें परीक्षक रूप में डिक्टेटर नियुक्त किया था उनमें विशेष तौर पर उनके निरंकुश अधिकारों की सीमा निश्चित कर दी गई थी

‘कांग्रेस के कार्यक्रमों की बड़े पैमाने पर समावित गिरफ्तारियों को देखते हुए यह कांग्रेस अधिवेशन कांग्रेस के कार्य के लिए सामान्य व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से आगामी निर्वाचन तक महात्मा गांधी को कांग्रेस का पूर्ण कार्यकारी अधिकार देता है कि वह कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुला सकते हैं या अखिल भारतीय

काग्रेस समिति या काय ममिति की बटव बुला सकत है । वह काग्रेस क दा अधि वेणाना के बीच की अवधि मे ऐसे अधिकार इस्तेमाल कर सकत है और जापात स्थिति मे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकत है ।

“यह काग्रेस अधिवेशन इसके द्वारा उस कथित उत्तराधिकारी तथा उसके बाद नियुक्त होने वाले सभी उत्तराधिकारियां का उनके पूर्ववर्तिया के ये सभी अधिकार प्रदान करता है ।

“शत यह है कि इस प्रस्ताव की किमी बात से यह न ममज्ञा जाए कि महात्मा गाधी या उनके किसी उपराकन उत्तराधिकारी का भारत सरकार या ब्रिटिश सरकार के साथ शांति की शर्तें तय करने का पूण अधिकार नहीं होगा, जब तक आल इंडिया काग्रेस कमेटी की पूव अनुमति न ली गई हो और उसी विशेष उद्देश्य के लिए बुलाए गए विशेष काग्रेस अधिवेशन न उसकी पुष्टि न की हो । यह शत भी है कि काग्रेस के वतमान सिद्धात महात्मा गाधी या उनके उत्तराधिकारिया द्वारा तब्दील नहीं किए जाएंगे जब तक उनके लिए काग्रेस से पूव अनुमति नहीं ली जाएगी ।”

महात्मा गाधी ने नतत्व सभाल लिया और अभियान पूरी गति सं चल पडा । 1 फरवरी 1922 को उन्हान लाड रीडिंग का प्रसिद्ध अल्टीमेटम दे दिया, जिसम कहा गया था कि गिरफ्तार किए गए जिन व्यक्तियों के विरुद्ध कोई हिंसक मामला सिद्ध नहीं होता उन सबका एव सप्ताह के अदर रिहा कर दिया जाए, इसके अतिरिक्त यह आश्वासन दिया जाए कि खिलाफत और पजाब के सबध म जा ज्यादतिया हुई है उन्हें दूर करवाने के लिए तथा स्वराज की प्राप्ति के लिए अहिंसक आंदोलन जारी रखने की पूण स्वतंत्रता हायी । यदि इस अवधि मे इसके अनुसार नहीं किया गया तो सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया जाएगा । जिसका आरंभ बारदाली मे हागा ।

फिर अचानक ही एक नया अध्याय आरंभ हा गया । एक अनजान से छोटे गाव चौरी चौरा मे (उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले म) अनियमित रूप से विद्रोह हो गया, जिसके बाद यह नाम ऐतिहासिक बन गया । 22 कास्टेबल मार डाले गए ।

वम्बई (17 नवंबर) फिर मद्रास (13 जनवरी) और अन्त म चौरी चौरा मे 5 फरवरी को ‘धारदोली अल्टीमेटम’ की अवधि समाप्त होने मे दो दिन पूव ये घटनाएं हुई ।

महात्मा गांधी एक बार फिर पीछे हट गए। इस अमानत और दूसरे तर्कों के बाद उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन के बारे में पुनः विचार आरम्भ कर दिया। क्या उन्होंने यह पुनः विचार बम्बई की घटनाओं के बाद ही आरम्भ कर दिया था? क्या यह विचार बम्बई की घटनाओं के बाद से प्रिंस आफ वेल्स की गडबड के समय भी जारी था? क्या 'विष्णु रूप' इसी विचार का आरम्भ था जो हिंसक घटनाओं के कारण किया गया। इन प्रश्नों के जो कुछ भी उत्तर रहे हों, हम गांधी से मन्त्री घत अगली घटना 12 फरवरी 1922 वाली थी। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक बारदोली में हुई तथा महात्मा गांधी की मनाहट पर व्यापक सविनय अवज्ञा आंदोलन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया, यह निणय बम्बई तथा बीर चारा में हिंसा के फूट पड़ने के कारण लिया गया था। गिरफ्तारियाँ देने, जुलम निकालने तथा सावजनिक समाएँ करने आदि अधिकारियों द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध तोड़ने जैसी सभी गतिविधियाँ छाड़ दी गईं और इनके स्थान पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं से कहा गया कि वे अपनी शक्ति रचनात्मक कार्यों में लगाएँ, जिसकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात चरखा काटना थी।

अभियान के आरम्भ की घड़ी आन की प्रतीक्षा की यह धरम पराकाष्ठा थी।

50. शिष्टता से निश्चेष्ट

अतत गाधीजी १ पीछे लोटन का निश्चय पर ही लिया । लालाजी का इम प्रकार के अन्त की पूर्वसूचना से किसी प्रकार की मात्बना नहीं हुई । उन्होने सब विन्म की शबाए ममाप्त कर दी थी और मन मे किसी प्रकार का समोच रखे बिना महात्माजी के नतृत्व को स्वीकार कर लिया था और उनके प्रति पूरी वफादारी दिखाई थी । मौन धारणा यह थी कि 'मिनापति त्रिमर्ती' वह और उनके अय सहयागी पूरी वफादारी मे जाणापानन कर रहे थे, अपनी गना का निश्चय ही विजय या पराजय तक पहुँचा दमा । परतु सेना को परीक्षा म डाले बिना ही सेनापति न उमे पीछे हट जाने का आदेश द दिया था । निश्चय ही इस प्रकार पीछे हटना पूरी तरह विश्यामघात दिखाई देता था । आयरलैंड के लाखा विसान अपन 'प्रमुख' डेनियल आ'वानल' मे 'युद्ध का आदेश सुनने के लिए उपस्थित थे परन्तु उन्हें चुपचाप घर लौटा दिया गया था—यह उदाहरण भी उस प्रतिक्रिया को ध्यस्त नहीं कर सताता जा गाधीजी न ठीक उस अवसर पर, जब लागा को बहुत उच्च आशाए थी, बायनम वापस लेन का निणय करके जन समूह की मनोस्थिति पर अकथनीय उलटा प्रभाव डाला था ।

यह पृष्ठ भूमि थी जब लालाजी न 20 फरवरी को अदालत के मुकदम की सुनवाई स्वयं गित करने की माग की थी और मुकदमा किसी अय अदालत म तब्नील परत के लिए याचिका पश करने की धमकी दी थी । दरअसल मुकदमा तब्नील करवाने मे उनकी अधिक् रुचि नहीं थी । "मे ता केवल समय चाहता था" यह बात उन्होंने एक लम्बे वक्तव्य मे लिखी जिसकी चर्चा हम फिर करेंगे । उनके मन म बहुत रोप था कि स्थिति का खराब किया जा रहा है और हालत को सभालने के लिए उन्हें जेल से बाहर आना चाहिए था तारि कम से-कम अपने अतद्द को पूरी तरह व्यक्त कर सके । वह जानत थे कि उनके विरुद्ध बहुत कच्चे आधार पर गलत ढग से बनाया गया मुकदमा है, वह समन का मामला था और जमानत पर उनकी रिहाई हो सकती थी और उनके लिए इतना ही अवसर थायद बहुत होता कि जेल से बाहर जाकर वह आन्दोलन वापस लेने वाले अपन सहयोगियों पर गुस्सा निकाल सकते और अपना मन हल्का करके जेल म अपने साथिया के पास लौट सकते । बाय समिति के वारदोली निणय पर विचार

करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक 24 तारीख का बुलाई गई थी इसलिए उन्हें जेल से बाहर जाने में और भी शीघ्रता करनी थी।

यह जेल से बाहर आने पर बहुत गभीर थे। वे सदानम, जान कदी थे और न उन पर मुकदमा चल रहा था, परन्तु एक मित्त के नात अदालत में उपस्थित थे, उ ज्ञान लाजपत राय को इस प्रकार मनोवेग में विद्रोह न करने के लिए सहमत कर लिया। परन्तु इतने जाश के मनोवेग में लालाजी का सभाल पाना आसान नहीं था। अदालत के कमरे के एक काने में काफी देर तक लम्बी बहस चलती रही तब जाकर लालाजी सहमत हुए। यह सहमति मैत्री के नात निवेदना और विनती के कारण थी, वरन् वह सदानम तथा उनका ममभन करने वाले मित्रों की दलीला से समुप्ट नहीं हुए थे।

अब उन्होंने अपनी भावनाएँ व्यक्त करने के लिए महात्मा गांधी को लिखे एक लम्बे पत्र का रास्ता अपनाया। यह सदानम के साथ हुए समझौते का भाग था कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में स्वयं जाकर यह गुस्सा निकालने की बजाय वह एक पत्र द्वारा ऐसा करें और यह पत्र स्वयं सदानम पहुँचाने की व्यवस्था करेगा। पत्र के आरम्भ में गांधीजी को महान व्यक्ति तथा महान नेता के तौर पर बहुत उच्च श्रद्धाजलि अर्पित की गई थी, उसके साथ ही कहा गया था कि उनकी महानता के अनुसार ही उनकी गलतियाँ भी बहुत बड़ी थीं। गांधीजी के अपन शब्द के अनुसार (हिमालय जितनी बड़ी) पत्र में ऐसे अवसरों का उल्लेख था, जब उन्होंने ऐसी गलतियाँ की थीं। पत्र में असहयोग के कई अंशों की आलोचना भी की गई थी जो अंग्रेजों को केवल इसी लिए स्वीकार करने पड़े थे क्योंकि गांधीजी ने ऐसा करने की जिद की थी, वैसे उनके अनुमान के अनुसार वे ठीक नहीं थे। इस सबके बावजूद पत्र में बारदोली निषेध की बहुत बड़ी आलोचना की गई थी और एक सुयोग्य शल्यचिकित्सक के चाकू के इस्तेमाल के समान अहिंसा की वृद्धियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया था क्योंकि पूरा अहिंसा का वातावरण जिसे गांधीजी आन्दोलन आरम्भ करने के लिए आवश्यक समझते थे विल्कुल ही असंभव बात थी कि यह बहुत बड़े जनसमूह का नेतृत्व करने का प्रश्न था। पत्र सरल और निष्कपट था और अंत में लालाजी ने क्षमा याचना की थी कि यदि उन्होंने भूल से कोई भाराजगी की बात कर दी हो। और महात्मा गांधी से अनुरोध किया था कि वह उन्हें मनोवेग के अधीन तथा छल्दबाज चाहे जो समझ लें, पर गैरवफादार न समझे।

महात्मा गांधी ने इस पत्र की प्राप्ति सूचना, वे० सधानम की लिखे एक पास्ट कार्ड द्वारा दी। उन्होंने केवल इतनी बात कही कि लालाजी शिष्टता से निश्चेष्ट हो चुके हैं। और उन्हें ऐसे पत्र लिखने का कोई अधिकार नहीं—यह ऐसा उतर था, जिसमें एक उपयुक्त तथ्य की अनदखी भी गई थी—वह था कि लालाजी ने राजनीतिक कैदिया के लिए महात्मा गांधी द्वारा निर्धारित संहिता का कभी स्वीकार नहीं किया था और वह उसके लिए बाध्य नहीं थे। यह बात स्मरण करना उपयुक्त है कि इसी प्रकार के राय पत्र जेल से प्रमुख सहयोगियां न भी भेजे थे परन्तु उन्हें यह कभी न कहा गया कि वह शिष्टता से निश्चेष्ट हो चुके हैं। यह पत्र एक बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज था जो लाहौर सेंट्रल जेल से छिपाकर बाहर लाया गया। गांधीजी ने, यह देखते हुए कि यह पत्र गुप्ते की स्थिति में लिखा गया था, ये निर्देश दिए कि इस पत्र को बागजात में न रखा जाए। परन्तु इस निर्देश के बावजूद यह दस्तावेज बच गया और इस दलील की कोई गुणाइश नहीं दिखाई देती कि यह पत्र बारदोली निणय द्वारा पीछे हट जान के विरुद्ध एक शांत निणय था—'मनोवेग' के उम पल में बहुत समय बाद, जब असहयोग आन्दोलन का जायजा लेने के बारे में समाचार पत्रों के लिए लेख श्रृंखला में उन्होंने लिखा

“परन्तु बारदोली के बारे में निणय तथा बारदोली के प्रस्ताव, जो इस निणय के परिणामस्वरूप थे, विश्वास करने वाले तथा आशापूर्ण राष्ट्र पर बम के समान गिरे। यह धक्का बहुत ही अचानक, महाप्रलय के समान तथा अप्रत्याशित था। इससे लागावो चकित ही नहीं किया बल्कि कुछ हद तक आश्चर्य में डाल दिया और उनके मन में गुप्ता पैदा कर दिया। पार्टी के कोई बीस हजार नेता तथा कार्यकर्ता जेल में थे। लगभग एक कराड रुपये एकत्र किये गये थे। प्रातः में प्रमुख कार्यकर्ताओं का अभाव हो गया था। सरकार तथा उसके ऐजेंटों द्वारा अधिक से अधिक उत्तेजना के बावजूद उन्होंने अपने आपका शांत रखा था। हजारों लागावो पुलिस द्वारा जेलों में दी मुसीबतें सहने की थी और उसके विरुद्ध कोई प्रतिक्रियात्मक कारवाही नहीं की थी। यह सभी कुछ बारदोली में आरम्भ होने वाले स्वयंसेवक की आशा से किया गया था। निराशा, रोष और गुप्ता हाना इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही थी।”

महात्मा गांधी का अर्थ जेलों से भी आलोचना प्राप्त हुई—मोतीलाल नेहरू से और शायद सी० आर० दास से भी। महात्मा गांधी ने लालाजी की प्रतिनिध्या के बारे में, अपने मित्रों के साथ 24 फरवरी 1922 का डा० एम० ए० अन्तारी

के घर पर विचार-विमर्श किया और यह टिप्पणी दी कि जो लोग जेलों में 'शिष्टता में निश्चेष्ट' हैं उनसे आंदोलन के बारे में मलाह तथा मागदशन मिलना संभव नहीं। पराक्ष रूप से यह महात्माजी की निजी सहिता थी, इस सगठन का अधिकांश प्राप्त नहीं था। न ही नालाजी और न ही मोतीलाल एवं दाम न अपन का 'शिष्टता से निश्चेष्ट' समझा।

बारदोली के बाद स्याभाविक ही था कि महात्माजी के सभी सूझवान सह पागिया ने स्थिति का नए मिरे से जायजा लेना आरम्भ कर दिया। कुछ भी हा, लालाजी त तो बारदोली नियम में पीछे हटने का फैसला करने ही पुन विचार शुरू कर दिया था।

जब अम प्रमुख नेता जेलों में बाहर आए, तो उन्होंने स्थिति का नई दिशा देनी शुरू कर दी। जून 1922 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने 'मविनय अवज्ञा समिति' नियुक्त कर दी और नवंबर में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने इस समिति की रिपोर्ट पर विचार किया। प्रकट रूप में यह समिति मविनय अवज्ञा आंदोलन फिर से आरम्भ करने के लिए बनाई गई थी और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने प्रांतीय संगठनों को कुछ शर्तों के अधीन मविनय अवज्ञा फिर से आरम्भ करने की अनुमति दे दी थी। परन्तु बमोवेश यह समझा जाता था कि निवृत्त भविष्य में वे जेलों पूरी हान की संभावना नहीं थी और न ही मविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किए जान की। इस समिति के प्रयत्नों का परिणाम बेचन पड़ी हुआ कि विधान महत्ता पर संशय गया प्रतिबंध वापस लेना का मुझाव दिया गया और एक प्रकार कांग्रेस पार्टी को ऐसा सगठन बनाना का अवसर मिल गया जो 1924 में हासिल चुनाव के लिए सक्रिय कार्य कर सके।

साप्ताहिकी भी प्रायः एक दिन में गोप्य रूप से और अपनी जय-श्रींती में उम विद्रोह के लिए अपना सांगठन करने से त्रिगुणे परिणामस्वरूप स्वराज पार्टी की स्थापना हुई। श्री० आर० दाम मलाह आये और यह स्वाभाविक ही था कि यह जानना चाहते थे कि कांग्रेसी के बाद के दौर में साप्ताहिकी के विचार क्या थे। उन्हें साप्ताहिकी में सूनाकाव नहीं करनी थी और इस प्रकार व्यक्तित्व विभाजित विमर्श संभव न हो सका। परन्तु साप्ताहिकी में श्री० आर० दाम का एक दिन में विचार विचार व्यक्त कर लिए त्रिगुणे 'अस' विचारों के बाद में साप्ताहिकी मय तथा प्रसंगी बहा। इस पत्र का आरम्भ 'बाबू' की धरती पर आरम्भ

पर स्वागत तथा एन प्रगसक और सहयोगी शक्ति की ओर से स्नेहपूर्वक सलाम तथा आदर" शब्दा से हुआ। इस पत्र में सालाजी ने निश्चित निणय के तौर पर लिखा कि "हमारे प्रचार ने आश्चर्यजनक प्रयास डाल दी है और यह शानदार ढंग से सरूब रहा है। हमारी गलतियों के बावजूद इसने हमारे लोगों की मनोवैज्ञानिक स्थिति बिल्कुल ही बदल दी है और उनके राजनीतिक विचारा, दृष्टिकोण तथा आदर्शों में परिवर्तन ला दिया है। इस दृष्टिकोण से देश पर मुझे हमारे किये पर कोई खेद नहीं।"

प्रारम्भिक स्थिति में असहयोग आन्दोलन के बारे में अपने सहाय की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा -

"तुम जानते हो मुझे कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर इस कार्यक्रम के बारे में पूर्ण रूप से सदेह था, परन्तु पिछले दो वर्षों का पुनरावलोकन करते समय मुझे कोई सदेह नहीं कि आखिरकार महात्माजी ठीक ही थे।"

इस निणय के बावजूद जब उन्होंने असहयोग कार्यक्रम के एक-एक नुक्ते पर विचार किया, तो ऐसा दिखाई पड़ता था कि उन्हें अपने विचारों में काफी परिवर्तन करने की आवश्यकता थी। गुप्त मिलाकर, उन्होंने देखा कि यह कार्यक्रम एक रूप के अभियान के लिए बहुत बढिया था। परन्तु अब जबकि यह कुछ कम जोरदार कार्यक्रम बनाने की सोच रहे हैं, जो अधिक सम्बन्धी अवधि के लिए होगा, वे पुराने दकियानुसी सिद्धांतों को नहीं दुहरा सकते। जो बलिदान लोगों से एक वर्षीय कार्यक्रम के लिए मांगे जा सकते हैं, वे अनिश्चित काल के कार्यक्रम के लिए नहीं मांगे जा सकते। यह चाहते थे कि रणनीति में लचीलापन होना चाहिए, जिसकी महात्माजी ने कई बार कभी दिखाई देती थी।

"असल गलती जिसके लिए मैं खेद व्यक्त करने को तैयार हूँ वह दिसंबर और जनवरी में महात्माजी के व्यवहार में लचीलेपन का अभाव था। मेरा विचार है कि राजनीति में व्यक्ति को सिद्धांतों के मामले में लचीला नहीं होना चाहिए (अवश्य नहीं) परन्तु रणनीति तथा तरीकों में लचीलापन होना चाहिए। कृपया मुझे गलत मत समझिए, 'रणनीति' से मेरा अर्थ 'छलबल' से नहीं है। मैं किसी भी स्थिति में ईमानदारी तथा सत्य को व्यावहारिकता की बलिबेदी पर बलिदान देने को तैयार नहीं हूँ। परन्तु फिर भी मैं अपने आपको इस बात के साथ सहमत नहीं कर सकता कि 'राजनीतिक' अभियान से रणनीति तथा व्यावहारिकता को

विल्कुल ही निकाल दिया जाए। मेरे अनुमान में महात्माजी ने मुद्रस्थिति को स्वीकृत करने का आदेश देने का वह अवसर खो दिया जो वायसराय ने दिसंबर में उन्हें दिया था। फिर मालवीय सम्मेलन के अवसर पर उनके स्वयं का लचीला न होना तथा उनका अटीमेटम गभीर गलतियाँ थी। मैं यह सारा कुछ कपटपूर्ण आलोचना की भावना से नहीं कर रहा और न ही महात्माजी की गन्तिमा निवातन के उद्देश्य से ही कर रहा हूँ, बल्कि मैं तो ऐसा इसलिए कर रहा हूँ कि अपने काय की सही समीक्षा करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है (अपन लाभ तथा हानि और गलत तथा ठीक कार्यों की) ताकि हम भविष्य के लिए तैयारी कर सकें। हम यह देखना चाहिए कि हम कहाँ खड़े हैं। सरकार आणवित्त भी है और उद्द भी। यह देण में हमारे प्रभाव में भयभीत है परंतु हम कुचल देने के लिए दब दिखाई देती है। हम कुचल देने के काम में उन्होंने चाय, औचित्य और नैतिकता सभी बातों को त्याग दिया है। वह तो युद्ध तथा प्रेम में सभी कुछ उचित है, मैं सिद्धांत में विश्वास रखते हैं और उसी पर अमल करते हैं। निस्संदेह हमने उनसे सभी ऐसी आशा नहीं की थी, परंतु महात्माजी तथा हम लोगो ने से कुछ सोचा था कि वह इन सभी बातों तथा सिद्धांतों का ध्यान रखेंगे।”

प्रमुख सशोधन जिसमें दास की रचि थी वह विधान मण्डलो से प्रतिवध को हटाने का था। महात्माजी के नेता चाहते थे कि असहयोग का सारा कार्यक्रम समाप्त कर दिया जाए। यद्यपि नालाजी उनके दृष्टिकोण से सहमत थे, फिर भी वह उस बात को नहीं समझ पा रहे थे कि उन बातों को “छोड़ देना का क्या लाभ होगा जिनका प्रभाव पहले ही समाप्त हो चुका था तथा उनमें कोई हानि नहीं हो रही थी।” इस प्रकार स्कूलों के बहिष्कार की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा

“हम स्कूलों के विरुद्ध कोई प्रचार नहीं कर रहे, यह बात (स्कूलों का बहिष्कार) आदेश से अधिक और कुछ नहीं। जो व्यक्ति इस पर अमन नहीं कर सकता चाहे उसे मजा नहीं देती।”

इसी प्रकार वह अदालतों के बहिष्कार की निन्दा की बातों पर बेवकाल समय नष्ट नहीं करना चाहते थे, यद्यपि अदालतों का पूर्ण बहिष्कार ‘असंभव’ बात थी, जिस बात का सभी असहयोगकर्ताओं ने अपने व्यवहार में स्वीकार किया।

“मैं कई कांग्रेसजनों को जानता हूँ (जिनमें से कुछ नेता भी हैं) जिनमें दीवानी अदालतों का बहिष्कार नहीं किया। क्या व्यापारी लाभ दीवानी अदालतों का

बहिष्कार कर सकते हैं ? क्या जमींदार तथा कृषक ऐसा कर सकते हैं ? यदि हम चाहते हैं कि कांग्रेस पार्टी सर्वव्यापी राष्ट्रीय संगठन हो, तो इस विचार को कार्यान्वित करना बिल्कुल असंभव है ।”

परन्तु ‘मेरे विचार में हमने बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया कि सरकार द्वारा हमारे विरुद्ध आरम्भ किये फौजदारी मुकदमों में अपनी सफाई नहीं दी, हम एक प्रदर्शन करना चाहते थे वह हमने सफलतापूर्वक कर दिया है । यह स्वीकार किए बिना कि हमने अब तक गलती की है । मैं साचता हू कि अब वह अवसर आ गया है कि इस मामले में रवैये के परिवर्तन की स्वीकृति दी जाए । युद्ध-काल के इस उपाय का (असहयोग कार्यक्रम के) समर्थन किया जा सकता है, परन्तु इसे लम्बे अनिश्चित काल के लिए नैतिक आदेश के साथ भी लागू नहीं किया जा सकता । हमने से जो चाहें इसे कर लें परन्तु राष्ट्र तथा कांग्रेस संगठन समूचे तौर पर ऐसा नहीं कर सकता ।”

इस पत्र में उन्होंने उस प्रमुख सशोधन की व्यौरवार चर्चा नहीं की जिसमें दास की रचि थी—विधान मण्डलो पर कांग्रेस का प्रतिबध । प्रतिबध को उचित करार देते हुए, जो उन्होंने स्वयं आरम्भ किया था और असहयोग आंदोलन के प्रवर्तक न जिसे स्वीकार कर लिया था । उन्होंने कहा

“अब हम तीसरी बात की चर्चा करते हैं जो शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद मैं इस राय पर पहुँचा हूँ (अस्थायी रूप से) कि परिपदा में सहयोग या विरोध करने के लिए जाना एक गलती होगी । ‘प्रति सवेदी सहयोग’ या ‘प्रतिसवेदी असहयोग’ केवल शब्द हैं और उनका कोई अर्थ नहीं । सबसे अच्छी-से अच्छी बात हम केवल यह कर सकते हैं कि सिएन फिएन योजना पर अमल करें—अर्थात् मुकाबले की सरकार स्थापित करें । सरकारी मतदाता सूचियों के अनुसार विरोधी सभा तथा विरोधी परिपद निर्वाचित करने से अधिक नैतिक विजय मिलेगी । मेरे तुच्छ अनुमान में तो बुद्धिमत्ता यही है कि कार्यक्रम में सभी परिवर्तन अगले वर्ष अप्रैल अथवा मई में होने वाले विशेष अधिवेशन तक स्थगित कर दिए जाए । राजनीति एक परिवर्तनशील खेल है और मैं नहीं मानता कि कोई ऐसी पहले से तैयार नीति हो सकती है जो हर अवसर पर उपयुक्त हो । सविनय अवज्ञा आंदोलन की तब तक आज्ञा न दो, तब तक उसे आरम्भ न करो जब तक यकीन न हो जाए कि तुम हर कीमत तथा हर खतरे

पर उसे लागू कर सकते हो। जहाँ तक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा का प्रश्न है उस समय तक इसकी व्यापक स्तर पर स्वीकृति न दो जब तक आप कम से कम पचास हजार व्यक्तिमा को गिरफ्तारिया देन तथा उन्हें जेल भिजवाने की व्यवस्था नहीं कर सकते, परन्तु इससे साथ ही इसकी मनाही भी न करो।”*

परन्तु अब यह परिपदा पर लगी निषेधाज्ञा परम करन के बारे में साथ रहें थे, यद्यपि उनके विचारों ने अभी स्पष्ट रूप नहीं लिया था। न ता सुधारा को कार्या चित्त करने की उदार धारणा उनके मन को जची थी और न ही अदर में अमहयोग करने का वाकट डालने की नीति अच्छी लगी थी। असल बात यह थी कि वह जो विधान मडलो का विरोध करने के सिद्धांत के प्रवक्तक थे, इन सदनों का बहिष्कार करने पर अधिक जार नहीं दे रहे थे। दाम के तुरत सङ्घ के लिए इतना ही काफी था। दास ने सदेश भेजा कि वह इस परिवर्तन पर गया अधिवेशन में ही जोर देंगे और उनकी इच्छा थी कि इस उद्देश्य के समर्थन के लिए वह (लालाजी) जेल में रहते हुए जो भी कर सकते हैं, करें।

यह निवेदन व्यथ नहीं था। लालाजी ने एक बहुत तीखी तथा जोरदार लेख माला लिखी जो समाचार पत्रों में 'साविधानिक आलोचक का चिंतन' के रूप में प्रकाशित हुई, जिसमें सविधान के संबंध में शिवायत करने वाला अपन मन का बोझ दयालदाम के आगे हलका करता है, जो तपस्वी के रूप में, जो गांधीवाद के सिद्धांत की एक विशेषता है, प्रतिदिन ठीक छ बजे प्रात मिलता है, बिना इस बात की परवाह किए कि नवम्बर में कितनी सर्दी है और धाय का एक प्याला भी स्वीकार नहीं करता। एक बड़ी प्यारी आत्मा जो अपन सिद्धांत की खातिर फासी पर झल सकती है अथवा आग में बूद सकती है। गांधी जी ने उनके लिए जीवन तथा मृत्यु की सभी समस्याएँ हल कर दी थी और उन्हें अपने बारे में सोचने की सभी चिंताओं से मुक्त कर दिया था।

* इन पत्र के अंतिम अंश में हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में कुछ बात बनावी गई है। आज तक इन पत्र के अंशों को बहस में उद्धृत (या अनृत उद्धृत) किया जाता रहा है। आगे के अध्यायों में इन पत्र के बारे में कुछ उल्लेख करेंगे।

51. कैद

'आपके बन्दी के तौर पर मैं आपसे बाईं रियायत अथवा विशेष सुविधा नहीं चाहूंगा, जो आप देंगे, मैं खा सूंगा तथा जो मशकत आप चाहेंगे करूंगा,' यह बात सालाजी ने हरकिशन साल से कही (जो उस समय पंजाब सरकार के मंत्री थे), जब गिरफ्तारियों से कुछ सप्ताह पूर्व, वह एक दिन दोपहर याद 2, काट स्ट्रीट में मिलने आए थे।

दरअसल वह कैद को आत्मानुशासन तथा धार्मिकता के लिए शिक्षा का अवसर मानते थे।

"मैं बिल्कुल प्रमत्तचित्त हूँ", यह बात सालाजी ने महात्मा गांधी को एक पत्र में प्राप्त लिखी (उस दिन वह गिरफ्तारी की प्रतीक्षा कर रहे थे) "और मैं किसी रियायत के लिए चिन्ता नहीं करूंगा। यदि वे इतने दयालु भी होंगे कि मुझे कुछ विशेष सुविधा भी दें, तो मैं उनसे आप्रह्न करूंगा कि वह मेरे साथ माध्याह्निक भोजन जैसा व्यवहार ही करें, परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि वह इतने दयालु भी होंगे। आप विश्वास रखें मैं आपके आन्दोलन को बदनाम नहीं करूंगा।"

हवानात भेजे जाने से पूर्व, सरकारी तारघर से उहाने सदेश भेज दिया कि उनके लिए जेल में घर से खाना न भेजा जाए। जेल में उनके 'भाग्य' में जो लिखा होगा वह खा लेंगे। जेल भेजे जाने के पश्चात्, जब उन पर कुछ सप्ताह तक मुकदमा चल रहा था, पंजाब के लागा के नाम सदेश में उहाने फिर इसी स्वर में बात कही थी। उहोने अपनी कद का 'नतिक साधना' बताया और यह अवसर प्रदान करने के लिए भगवान को धन्यवाद दिया। आसपास पहली नजर डालने से ही कुछ मौलिक रुचियाँ व वार में उनके मन में विचारा था एक सिलसिला आरम्भ हो गया था, जिम्मे उनके मन में जेल के सुधार के लिए दृढ़ रुचि उत्पन्न कर दी। वह केवल राजनेता ही नहीं थे और उन्हें केवल राजनीतिक कैदियों को रियायत देने में ही रुचि नहीं थी, उनकी व्यापक मानवता में घणित महापराधी भी शामिल थे। इस सदश में हम इसकी अच्छी झलक मिलती है

"पिछली बार (1907 में) मुझे जेल जीवन का कोई अनुभव नहीं था और मुझे वह दृश्य देखने का अवसर नहीं मिला था, जहाँ मनुष्या को मानवता से गिरा

पर उमे लागू कर सकते हो। जहाँ उस समय तक इसकी व्यापक स्तर पचास हजार व्यक्तियों को गिरफ्तार नहीं कर सकते, परंतु हमके माथ ही है

परन्तु अब वह परिपदा पर लगी। यद्यपि उनके विचारों ने अभी स्पष्ट रचित करने की उदार धारणा उनके करके खराबट डालने की नीति अच विधान मंडलो का विरोध करने के करने पर अधिक जोर नहीं दे रहे। काफी था। दास ने सदेश भेजा कि जोर देंगे और उनकी इच्छा थी (जी) जेल में रहते हुए जो भी करे।

यह निवेदन व्यर्थ नहीं था। * माला लिखी जो समाचार पत्रा प्रकाशित हुई, जिसमें सविधान के बोध दयालदास के आगे हलका के सिद्धांत की एक विशेषता है प्रकृत बात की परवाह किए कि नवम्बर में स्वीकार नहीं करता। एक बड़ी फासी पर झूल सकती है अथवा आग जीवन तथा मृत्यु की सभी समस्याएँ सोचने की सभी चिन्ताओं से मुक्त कर

* हम पत्र के अंतिम अक्षर में हिंदू मुस्लिम एकता व हम पत्र के अक्षरों को अक्षर उद्धृत (श्री गणेश उद्धृत) म हम हम के बारे में कुछ उल्लेख करेंगे।

इस लम्बे उद्धरण के लिए किसी क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं। इससे हम केवल जेल-मुधारों के बारे में विशाल दृष्टिकोण का ही पता नहीं चलता, परन्तु यदि ध्यान से विचार किया जाए, तो लाजपत राय के प्रजातांत्रिक होने का प्रकट प्रभाव भी मिलता है, जो केवल लम्बी बहस के बाद ही प्राप्त करना संभव हो सकता था।

अधिकारियों को भी इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि उन्हें विशेष सुविधाएं दी जाएं। एक बात यह भी थी कि मजिस्ट्रेटों ने अपनी भूखतापूण अज्ञानता के कारण ऐसी बड़ी-बड़ी गलतियाँ की थीं, जिनसे निकलना उनके लिए एक समस्या बन गयी थी और इस भावना को छुपाने के लिए असाधारण कायकौशल की आवश्यकता थी कि वह उनके लिए सिरदद सिद्ध हो रहा था। वरना कोई ऐसा कारण नहीं था कि उनके मुकदमों के लिए सफाई की तैयारी करने के वास्तविकी भी सबधी या मित्त को उनसे भेंट की आज्ञा न दी जाए। शुरू में उन्हें तथा उनके साथियों को मुलाकात की आज्ञा न दी गई, यहाँ तक उनको बकीलों के साथ भी नहीं मिलने दिया गया। लालाजी के कहने के अनुसार, जेल नियमावली का भी निलम्बित कर दिया गया था।

परन्तु यह त्रुटिपूर्ण स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो गई थी और विचाराधीन मुकदमों वाले व्यक्ति के तौर पर उन्हें मुलाकात की सभी सुविधाएं दी जाने लगी। जेल के भाजन के साथ मित्रों द्वारा उदारता से भेजे गए फलों आदि की टोकरियाँ भी शामिल होने लगी, परन्तु वे अन्य कांग्रेसी कैदियों के साथ मिल-बाटकर खाए जाते थे। जेल अधिकारियों द्वारा उन्हें जो भोजन दिया जाता था, वह विरस और थोड़ा होता था और अक्सर ठीक ढंग से पका हुआ भी नहीं होता था। फिर भी, कुछ अन्य कांग्रेसी कैदियों को—जिन्हें जेल अधिकारी महत्वपूर्ण नहीं समझते थे—और भी कम तथा घटिया खाना दिया जाता था। 'उच्च श्रेणी' के कैदियों ने, जिनके प्रमुख लालाजी थे जेल अधिकारियों को लिखा कि यह भेदभाव समाप्त किया जाए।

परन्तु अधिकारियों ने ऐसे समतावादी अनुरोधों की आरंभ कोई ध्यान नहीं दिया चाहे, यह 'अच्छी श्रेणी' के कैदियों द्वारा अपनी सुविधाएं छोड़ देने को लेकर थे या 'साधारण श्रेणी' द्वारा 'घटियापन' के विरुद्ध आवाज उठाने के रूप में थे। और कई बार तो 'साधारण' वर्ग वाले 'अच्छे वर्ग' वालों के साथ खुश

दिया जाता है। जो अनुभव मुझे इस बार हो रहा है उसने मुझे पठा दिया है कि धन, सम्पत्ति, ज्ञान तथा प्रतिष्ठा से मनुष्य मात्र के सम्मान में वृद्धि नहीं की जा सकती। ससार में बहुत कम 'मनुष्य' हैं और मेरी केवल यह इच्छा है कि मैं मनुष्य बन सकूँ। मेरे आसपास असह्य मनुष्य हैं, उनमें से बहुत सेट्रेटरी हैं तथा कुछ अधिकारी। मेरे अनुमान में जेलों से बाहर रहने वाले अधिकतर लोग, जिन्हें धन, सम्पदा, ज्ञान तथा प्रतिष्ठा के कारण समाज में सम्मान से देखा जाता है, इन कैदियों से अच्छे नहीं हैं। वे जेलों से बाहर हैं, क्योंकि समाज की संस्था के अनुसार गरीबी तथा असहायपन को सजा दी जाती है, अपराध को नहीं। कौन है जो बदमाशी नहीं करता? परंतु निधन तथा असहाय कैदी को निर्दयता से मानवता के स्तर से गिरा दिया जाता है, जबकि अन्य लोगों को बदमाशी के लिए पदोन्नति तथा सम्पत्ति मिलती है। एक कैदी को मानवाचित व्यवहार से वंचित कर दिया जाता है, केवल इसीलिए कि वह एक कैदी है। इतना ही नहीं धीरे-धीरे उसके सभी श्रेष्ठ गुण समाप्त कर दिए जाते हैं और वह केवल एक पशु रह जाता है। उसके जेलर भी पशु बन जाते हैं, क्योंकि समाज उन्हें सहन करता है। दोना मामलों में परिणाम वही है। मैंने यह महसूस किया है कि हमारे लिए यह जरूरी है कि हम मनुष्यों से केवल इसी लिए प्यार करें कि वे मनुष्य हैं उनकी धन, सम्पदा, ज्ञान तथा प्रतिष्ठा के लिए नहीं। जेलों में शान्त के घर हैं; उनके अंदर भी इतनी बेईमानी तथा शरारत है कि जिसका वपन नहीं किया जा सकता। मेरा मन इस दुर्व्यवहार तथा दुःख के मारे अपराधियों से अधिक-से अधिक प्रेम करता चाहता है। वे दुष्ट तथा अपराधी हैं, क्योंकि समाज न गरि-मानवीय व्यवहार के साथ उन्हें ऐसा बना दिया है, नहीं तो उनमें से प्रत्येक ने अंदर भी वही अमूल्य देन मौजूद है जो महात्मा गांधी में है। ये जेलों सुधार के उद्देश्य से नहीं बनाई गईं, बल्कि इसलिए बनाई गईं कि कुछ व्यक्ति जा सता में हैं, उन्हें अपने गर्व के पोषण का अवसर प्राप्त हो सके। वे लोग स्वयं असहाय हैं। उनकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण उनके असहायपन के लिए जिम्मेदार हैं। यही कारण है कि वे स्वयं दया के पात्र हैं। मैं अपने मन को बिल्कुल स्वतंत्र करने का प्रयत्न कर रहा हूँ (किसी प्रकार के कठोर विचारों से) ताकि मेरे मन में उनके प्रति कोई कठोर विचार न हो और न ही उनके प्रति कोई शिंका शिक्षापात हो। इही कारणों से मैं अपनी कैद को एक अद्वितीय बदलाव समझता हूँ। आत्म सत्य और मानवता के ज्ञान का अभ्यास करने के लिए इससे बढ़कर और कोई पाठशाला नहीं है, शत केवल यह है कि व्यक्ति अपने स्वभाव को ऐसा करने के योग्य बना ले।”

नहीं होते थे, यद्यपि उन्हें यह मालूम होता था कि 'अच्छे' वग वाला कुछ बाहर से भेजते थे उसे वे 'साधारण' वग वालों के साथ मिलने हम पर नाराज थे कि उनके पास वैसे उपहार क्यों नहीं आते।

यह व्यय राय अथवा प्रतिवेदन जत्र समाप्त हो गए, ता वह में 'अच्छे वग' के बंदी के जीवन में व्यस्त हो गये। जब मुकदमे की की अग्रधि समाप्त हो गई तो जेल से बाहर के ससार से उनका स्वाभाविक ही था। उस समय के जेल नियमों के अनुसार एक मास के अंतर से ही हो सकती थी। अब उन्होंने जेल के उपहार अक्सर या नियमित रूप से प्राप्त करने पर भी निभरता थी। जेल के अधीनस्थ कमचारी उनके प्रति बहुत सहानुभूति थे। श्रद्धा तथा सम्मान, जो प्रतिदिन उन्हें कैदियों तथा मिलता था अवश्य ही माइले दुर्ग में सलाम करने का स्मरण कुछ साथी कैदियों पर, जो आम तौर पर राजनीतिक नहीं सेवा के लिए निर्भर कर सकते थे, जा वह केवल श्रद्धाभाव से कम्पार वह धके हुए दिखाई देते, तो सावले चेहरे वाला एक काफी बलिष्ठ था, उनकी भालिश कर दिया करता और श्रद्धानु, जो जेल में उनके साथ थे, उस विशेषाधिकार किया करते थे। काफ़ेसी स्वयंसेवक उनकी सेवा का थे, विशेषकर उनमें से एक, जो लाहौर कार्ट का कप्तान हुआ था। अनपढ़ अकाली सिख था, जिसकी शिक्षा के लिए देर के इकट्ठे जेल में रहे, कोई कमर बानी न रखी।

पुस्तकें तथा लेखन-सामग्री की खुली आज्ञा थी, परन्तु समाप्तिकाओं की कड़ी मनाही थी और समाचार-पत्र एक ऐसी वस्तु थी, वह रह नहीं सकने थे। दरअसल वह बहुत अच्छे कैदी थे, क्योंकि धुशी से सहन किए, रियायती तथा सुविधाओं के लिए कभी और सम्मान की मर्यादा को कभी न छोड़ा, उन्होंने अपने आसपास मनुष्यों में गहरी रुचि ली उनके साथ मैत्री की और उनके मन में कोशिश भी ली। इस सबके अनुसार, एक बंदी के तौर पर उनकी पर वह नहीं थी जो महारमा गांधी के एक आदेश सत्याग्रही की हानी चा- यदि जेल अधिव-री इस बात को नहीं समझते कि सभाचार पत्र था

क्या महत्व है, तो यह स्वयं उनका काम था कि वह प्रतिबन्ध के बावजूद प्राप्त करे। महान राजनीतिक कैंदिया के जेल-संस्मरण पठन जाने इस बात से सहमत होंगे कि जितनी अच्छी सगति वह चाहते थे, वह उन्हें मिलती थी, फिर चाहे यह सगति महात्मा गांधी की नहीं थी। दरअसल इन मामला में धम की खातिर बलिदान दन वालो की नीति उन लोग से विल्कुल भिन्न होती है, जिन्हान राज नीतिक उद्देश्यो के लिए बलिदान किए। निम्सदेह यदि वह महात्मा गांधी के सत्याग्रही यन और उन्हाने 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होन की घोषणा स्वीकार की थी, तो बात कुछ अलग थी।

बट गांधी सहिना के लिए वाध्य नहीं थे और उन्हान बाहरी ससार क साथ सबधा के लिए अपन ही सम्पर्क बना रखे थे, जिनसे उन्हें समाचार-पत्र तथा पत्रिकाए प्राप्त होती रहती थी और जा उन्हें समाचार-पत्रो में प्रकाशित कराना हाता था, वह भी बाहर पहुच जाता था और पत्र भी बाहर पहुच जाते थे, जा सामान्य व्यवस्था में बाहर नहीं पहुच सकते थे। यह उनने युवा सहयोगिया का काम था—लाक सेवका का (मर्वेंटस आफ पीपुल) कि समाचार पत्रा की आवश्यक कतरने या विशेष तौर पर तैयार किया गया समाचार-माराश आदि प्रतिदिन जेल द्वार पर पहुच जाता, जहा से उनकी अपनी व्यवस्था का काय आरम्भ हो जाता था। जब सी० आर० दास को उनके साथ मुलाकात की अनुमति दी गई, ता बदली हुई स्थिति के बारे में उन्होंने अपने विचार इन सम्पर्क मार्गों से भेज दिए थे और देशगधु के सुझाव पर उन्हाने समाचार-पत्रा में लेख लिखकर कांग्रेस द्वारा विधान परिषदो पर लगाया गया प्रतिबन्ध समाप्त करन के बारे में आवश्यक प्रचार भी किया था।

जा पत्र तथा लेख सी० आर० दास का प्राप्त हुए थे, उनका उहाँ गया अधि बेशन में बहुत प्रभावशाली ढग से प्रयाग किया था। जब महात्मा गांधी का आदालत वापस लेने के ढग पर आपत्ति का पत्र मिला ता वह इतना कहकर ही सतुष्ट हो सने कि जालाजी तथा मोतीलाल के 'शिष्टता से निश्चेष्ट' हान के कारण ऐसे पत्र लिखन का अधिकार नहीं रखते। जालाजी और दास तथा नेहरू प्रकट तौर से मह नहीं मानते थे कि जब किसी व्यक्ति को जेल भेज दिया जाता है तो वह 'शिष्टता से निश्चेष्ट' हो जाता है (वाद की जेल यात्राओं में यह मालूम हो जाएगा कि महात्मा गांधी भी यह मिद्धात लागू करने से हट गए थे)।

नहीं होते थे, यद्यपि उन्हें यह मालूम होता था कि 'अच्छे' वगैरे वाला के मित्र जा कुछ बाहर से भेजते थे उसे वे 'साधारण' वगैरे वालों के साथ मिल-बाटकर खाते थे। वे इस पर नाराज थे कि उनके पास वैसे उपहार क्यों नहीं आते।

यह व्यर्थ रोष अथवा प्रतिवेदन जब समाप्त हो गए, तो वह लाहौर सट्रल जेल में 'अच्छे वगैरे' के बंदी के जीवन में व्यस्त हो गये। जब मुकदमे की लम्बी सुनवाई की अवधि समाप्त हो गई तो जेल से बाहर के ससार से उनका सम्पर्क कम होना स्वाभाविक हो था। उस समय के जेल नियमों के अनुसार मुलाकातों केवल एक मास के अंतर से ही हो सकती थी। अब उन्होंने जेल के भोजन में पूरक उपहार अक्सर या नियमित रूप से प्राप्त करने पर भी निभरता समाप्त कर दी थी। जेल के अधीनस्थ कमचारी उनके प्रति बहुत सहानुभूति तथा आदर रखते थे। श्रद्धा तथा सम्मान, जो प्रतिदिन उन्हें कैदियों तथा कैदी कायकर्ताओं से मिलता था अवश्य ही माडले दुर्ग में सलाम करने का स्मरण करवाते होते। अपने कुछ साथी कैदियाँ पण, जो आम तौर पर राजनीतिक नहीं होते थे, वह व्यक्तिगत सेवा के लिए निभर कर सकते थे, जो वह केवल श्रद्धाभाव से ही करते थे। कभी-कभार वह पके हुए दिखाई देते, तो साबले चेहरे वाला एक युवा भगी कैदी, जो काफी बलिष्ठ था, उनकी मालिश कर दिया करता और सालाजी के कुछ अणु श्रद्धालु जो जेल में उनके साथ थे, उस विशेषाधिकार प्राप्त भगी से कुछ ईर्ष्या किया करते थे। काफ़ेसी स्वयंसेवक उनकी सेवा का कोई अवसर नहीं गवात थे, विशेषकर उनमें से एक, जो लाहौर कोर्ट का कप्तान था और दूसरा, जो दोआबा का अंतपठ अकाली सिपा था, जिसकी शिक्षा के लिए सालाजी ने, जितनी देर वे इकट्ठे जेल में रहे, कोई कमर बाकी न रखी।

पुस्तकें तथा लेखन-सामग्री की खुली आज्ञा थी, परन्तु समाचार-पत्र तथा पत्रिकाओं की कड़ी मनाही थी और समाचार-पत्र एक ऐसी वस्तु थी, जिनके बिना वह रह नहीं सकते थे। दरबख्त वह बहुत अच्छे बंदी थे, क्योंकि उन्होंने कष्ट पुरी से सहन किए, रियायतों तथा सुविधाओं के लिए कभी चिल्लाहट न की और सम्मान की मर्यादा को कभी न छोड़ा, उन्होंने अपने आसपास रहने वाले मनुष्यों में गहरी रुचि ली, उनके साथ मैत्री की और उनके मन में उतरने की कोशिश भी की। इस सबके अनुसार, एक कैदी के तौर पर उनकी नीति स्पष्ट तौर पर वह नहीं थी जो महात्मा गांधी के एक आदेश सत्याग्रही की हानी चाहिए थी। यदि जेल अधिबन्दी इस बात को नहीं समझते कि समाचार पत्र का उनके लिए

क्या महत्व है, तो यह स्वयं उनका काम था कि यह प्रतिबंध के बावजूद प्राप्त कर । महान राजनीतिक बंदिया के जेल-संस्मरण पत्रन बाल इस बात से सहमत होंगे कि जितनी अच्छी सगति वह चाहत थे, वह उन्हें मिलती थी, फिर चाहे यह सगति महात्मा गांधी की नहीं थी । दरअसल इन मामला में धर्म की छातिर बलिदान दन बाला की नीति उन सागा से बिल्कुल भिन्न होती है, जिन्होंने राजनीतिक उद्देश्या के लिए बलिदान किए । निस्संदह यदि वह महात्मा गांधी के सत्नाग्रही बन और उन्होंने 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होने की घोषणा स्वीकार की थी, ता बात कुछ अलग थी ।

वह गांधी-सहिता के लिए बाध्य नहा थे और उन्होंने बाहरी सत्तार के साथ सबधों के लिए अपने ही सम्पक बना रखे थे, जिनसे उन्हें समाचार पत्र तथा पत्रिकाए प्राप्त हाती रहती थी आर जा उन्हें समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराना हाता था, यह भी बाहर पहुंच जाता था और पत्र भी बाहर पहुंच जात थे, जा सामान्य व्यवस्था में बाहर नहीं पहुंच सक्त थे । यह उनके युवा सहयागिया का काम था—लाक-सेवका का (सर्वेंटस आफ पीपुल) कि समाचार पत्रा की आवश्यक कतरन या विशेष तौर पर तैयार किया गया समाचार-भाराण आदि प्रतिदिन जेल द्वार पर पहुंच जाता, जहा से उनकी अपनी व्यवस्था का काय आरम्भ हो जाता था । जब सी० आर० दास को उनके साथ मुनाकत की अनुमति न दी गई, तो बदली हुई स्थिति के बार में उन्होंने अपने विचार इन सम्पक मार्गों से भेज दिए थे और दशरथु के सुझाव पर उन्होंने समाचार-पत्रा में लेख लिखकर कांग्रेस द्वारा विधान-परिपदा पर लगाया गया प्रतिबंध समाप्त करने के बार में आवश्यक प्रचार भी किया था ।

जो पत्र तथा लख सी० आर० दास का प्राप्त हुए थे, उनका उन्होंने गया अधि-वेशन में बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया था । जब महात्मा गांधी का आदालतन वापस लेन के ढंग पर आपत्ति का पत्र मिला ता वह इतना कहने ही सतुष्ट हो सके कि लालाजी तथा मोतीलाल के 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होने के कारण ऐसे पत्र लिखन का अधिकार नहीं रखते । लालाजी और दास तथा नेहरू प्रकट तौर से यह नहीं मानत थे कि जब किसी व्यक्ति का जेल भेज दिया जाता है तो वह 'शिष्टता से निश्चेष्ट' ही जाता है (बाद की जेल यात्राओं में यह मालूम हो जाएगा कि महात्मा गांधी भी यह सिद्धांत लागू करने से हट गए थे) ।

समाचार पत्र उनके लिए अनिवाय थे और वह उन्हें प्राप्त कर लेते थे, चाहे जेल के नियम कुछ भी रहे हों। यदि उन्हें बख्त मिलने में देरी हो जाती, तो वह काफी बेचैन हो जाते। यदि इसमें अत्यधिक देरी हो जाती, तो फिर सारी शक्ति समाप्त हो जाती। वह जोर-जोर से कोसते और रोष व्यक्त करते कि उनके लोग ने उनका थोड़ा सा ध्यान करना भी छोड़ दिया है। जेल के कुछ कमचारियों को इस बात की जानकारी थी कि समाचार पत्र न मिलने पर वह कितने चिन्ताग्रस्त होते हैं, दयालु डाक्टर जब धक्कर लगाने आते तो अक्सर 'ट्रिब्यून' की अपनी प्रतियाँ उनकी कोठरी के पास 'भूल' जाया करते थे, ताकि चोरी छिपे लाया जाने वाला अपना समाचार-पत्र मिलने से कुछ घंटे पूर्व ही उन्हें समाचार पत्र पढ़ने का अवसर प्राप्त हो सके। माइकेल भी हज्जाम तथा भिक्ती उन्हें अपने ढंग से समाचार-पत्र पहुँचाया करते थे।

पंजाब के अधिकारी सामान्य तौर पर मुलाकात का अवसर देने में सकारण थे काम लेते थे, परन्तु कभी-कभार वे आज्ञा दे भी देते थे, जब मुलाकात करने वाला सी० आर० दाम जैसा आपत्तिजनक व्यक्ति नहीं होता था, पठित भेदन मोहन मालवीय ने जेल में उनके साथ बहुत लम्बा बातलाप किया, यद्यपि वह उनके लिए लाए गए समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं का बखल उन्हें न दे सके और यह बाद में साधारण साधनों से उन तक पहुँचा दिया गया। सी० एफ० एड्रियुज को मुलाकात की आज्ञा लेने में विशेष कठिनाई न हुई। डाक्टर एन० आर० धमवीर जो पैडीहैम (इग्लैंड) में बकालत करत थे और लम्बी अनुपस्थिति के बाद थोड़ी अवधि के लिए भारत आए थे, लालाजी से भेंट करने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्होंने लालाजी के साथ दो बार भेंट की, एक बार लाहौर में तथा दूसरी बार प्रमशाना में।

सत निहाल सिंह भी काफी लम्बी अनुपस्थिति के पश्चात् 1921 के आरम्भ में भारत लौटे थे, जब लालाजी के पहले मुकदमे के पश्चात् उन्हें गरजानूनी कैद की सजा सुनाई गई थी। वह प्रिंस आफ वेल्स के साथ आए समाचार पत्र प्रतिनिधियों में शामिल थे और एक दिन भोज के समय उन्होंने पंजाब के राज्यपाल सर एडवर्ड मैकनागन से आप्रह्न किया था कि क्या उन्हें अपने मित्र लाजपत राय से भेंट करने की आज्ञा मिल सकती है? सर एडवर्ड ने तुरत आवश्यक निर्देश जारी कर दिए। विशेषाधिकार प्राप्त मुलाकाती होने के नाते सत निहाल सिंह ने जेल में जेल अधिकारियों से इच्छा व्यक्त की कि वह लालाजी से उनकी जेल कोठरी

मे मिलना चाहते । उह सीधे काठरी म ल जाया गया और बाद म उहान अपन सस्मरण सुस्पष्ट तथा प्राजल शैली म दिर् हूँ । उ होंने विशेषतौर पर जेल म दिया गया घाना देखकर बहुत दुख व्यक्त किया । वह "चमडे जती राटी का टुकड़ा अपन साथ न गये ताकि उसे श्री माटेग्यू का दिया सगें, परन्तु मेरे लदन लौटन से पूव ही बेचारे माटेग्यू का उनके विरोधिया न पद से हटा दिया था ।" मन निहाल सिंह न यह भी लिखा कि "लालाजी न जेल के 'आंतरिक' जीवन् की जा जानकारी प्राप्त की उसन उनके मन मे विद्रोह उत्पन्न कर दिया । उहाने मुझे जेल अधिकारी की उपस्थिति म बताया कि जब वह जेल से बाहर आएंगे ता जेला के सुधार के लिए काय करेगे ।"

अन्य मित्रो मे से, जो उनके निकट सहयोगी थे और उनके साथ ही जेल म थे, के० सयानम और डाक्टर गोपीचन्द भागव को ता उसी समय रिहा कर दिया गया जब पजाब सरकार न सजा देने वाले मजिस्ट्रेटों द्वारा की गई गलतियों को सुधारने का प्रयत्न किया । हम कभी को राम प्रसाद ने पूरा कर दिया, जिहें वन्दे मातरम्' मे उनके लेखा के कारण का प के कारावास की सजा दी गई थी । एस० ई० स्टोकस का लालाजी तथा उनके अन्य पजाबी मित्रा से अलग रखे जान का उतना ही दुख था जितना लालाजी का । आगा मुहम्मद सफ्दर जिहें लालाजी न (प्रातीय कांग्रेस समिति की अनुमति से) अपन बाद पजाब कांग्रेस का प्रमुख नियुक्त किया था, शीघ्र ही जेल मे उनस आ मिले । कुछ अन्य प्रमुख मुसलमान मित्र भी थे— उत्तर-पश्चिम मीमात से खान अब्दुल गफ्फार था, जा उस समय नौजवान थ और अभी ख्याति प्राप्त नहीं थे, परन्तु उचे लम्बे बदन, बिनम तथा सदभावपूण व्यवहार के कारण आकर्षक व्यक्तिस्व के धनी, एक अन्य प्रमुख नेता थे । इन मुस्लिम मित्रा का साथ होने से लालाजी का उनके साथ स्पष्ट और खुलकर बातचीत करन से भारतीय राजनीति म मुसलमाना का धार्मिक तथा नागरिक दृष्टिकान समझन का अवसर मिल पाया । ऐस अवसर उन्हें पहले कभी नहीं मिले थ ।

उनके कारावास के दौरान ही लम्बी इश्यारेस कम्पनी की स्थापना की कल्पना की गई । वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि सयानम को, जिहोंने अपनी शानदार कालत छोड दी थी और जो पजाब म उनके सहायको मे से बहुत ही बुद्धिमान थे, रोजगार की तलाश मे अपनाया हुआ प्राप्त छोडना न पडे । इसी चिन्ता के कारण उन्हें यह जीवन बीमा कार्यालय खोलने की बात सूझी ।

इसी कारणास के दौरान ही उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'ही तीसरी विस्त की रचना हुई । पहली विस्त की रचना पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक में आय समाज के दिनों में हुई थी । उसमें उर्दू की जीवनिया भी थी, जिनकी रचना में एबटावाद के सम्बन्धी बीमारी के दिना का काम भी था । एक छोटी पुस्तक की रचना माण्डले दुग में छ महीने के कारावास के दौरान हुई थी । रचना क्रम की दूसरी महत्वपूर्ण विस्त पाच वर्ष के निर्वासन काल की दन थी और यह तीसरी विस्त द्यतमान कारावास की उपज थी । इममें (समाचार-पत्रा के कुछ लेखों के अतिरिक्त) प्राचीन भारत का उर्दू इतिहास भी था, जिसमें 600 पन्ने थे । 'महान व्यक्तिया' की एक अतिरिक्त रचना (अशोक के बारे में) भी थी और नए सिरे में लिखी 'महान व्यक्ति—शिवाजी' पुस्तक भी थी ।

समाचार-पत्र में प्रकाशित रचनाओं में उनके वे लेख भी शामिल थे, जिनमें में कुछ उहान असहयोग आन्दोलन की रूढ़िवादी विचारधारा के विरुद्ध कांग्रेस में विद्रोह खड़ा करने के लिए, विशेषकर विधान मंडला पर प्रतिबंध के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न करने के लिए लिखे थे । 'सांविधानिक आलोचक का चिन्तन' (द कौजिटेशज आफ ए वास्टिट्यूशनल गम्बलर) लेख मात्रा अपनी किस्म की एक ही थी और जिस उद्देश्य से लिखी गई थी, उसको बहुत बल मिला । 'शिष्टता में निश्चेष्ट होने के कारण उहान बिना नाम के या छदम नाम से लिखना आरम्भ कर दिया, कई बार उनके लेखों के नीचे 'विदुर' नाम से हस्ताक्षर होते थे । गुप्त नाम धारण करने में 'सांविधानिक आलोचक' उत्पन्न हुआ, जिसके चिन्तन में मूर्तिमजक की पूरी शक्ति को निष्पक्ष पटताल तथा बेलाग विप्लेषण के साथ इस ढंग से मिलाया कि वह निष्पक्ष तथा निष्कपट आत्म आलोचना का रूप ले सका और कई बार ही यह ध्यग्य और विडम्बना ऐसी शानदार प्रतिभा व्यक्त करती थी कि यह इच्छा होती कि काश वह गुप्त रहने के लिए ही बाध्य रहने, ताकि उहे अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावशाली अभिव्यक्ति की जरूरत रहती और यह इस प्रतिभा का पूरा और उचित लाभ उठा सकते ।

एक और वणन योग्य रचना भारतीय राजनीति का क० ख० ग०' (ए० बी० सी० आफ इंडियन पालिटिक्स) थी, जो माडन रियू' में उनके पुत्र के नाम से प्रकाशित हुई परन्तु ताडने वाले पाठक आसानी से पता लगा सकते थे कि वह पिता की कृति थी । यह एक अद्वितीय प्रयत्न है (मानसवादी क्षेत्रों के बाहर) जय किसी भारतीय राजनीतिक नेता ने मूलभूत सिद्धांतों की जांच-पड़ताल की

हो और सक्रिय राजनीति को ठोस सामाजिक आधार से जोड़ने का प्रयत्न किया हो। लालाजी का स्वयं सिद्धांतवादी बनने का विशेष शौक बिल्कुल नहीं था। कुछ उदारवादी नेता 'कानून तथा व्यवस्था' और 'मूलभूत कतव्यों की कुछ पाठ्य पुस्तक' के बारे में बातें श्रद्धामय ढंग से करते थे और उहाने गहराई से यह बात महसूस की थी कि उन भद्र पुरुषों का निरपेक्ष राजनीतिक तथा आधुनिक समाज वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की शिक्षा दी जानी चाहिए। उन्होंने बम्बई के अपने प्रसिद्ध भाषण में मिताचारियां पर भारी विश्वासघात करने का आरोप लगाया था और बाद में श्रीनिवास शास्त्री के साथ द्वंद्व का आनन्द लिया था। 'क्षिन्तन' में उन्होंने वही आरोप उसी उत्साह तथा तीव्रता से लगाया। ए०बी०सी० में न (जो उन्होंने सिद्धांतवाद के समर्थकों के मुखौटे का जायजा लिया था कि मिताचारियां अपने आपको उदारवादी कहते थे) दमन की नीति के बारे में अफसरशाही के साथ मिली-भगत करने के लिए ओढ़ा था।

यह एक बंदी का कठिन काय भी करते थे, और उन्हें यह काय करने में प्रेम था। पहले कुछ सप्ताहों में उन्होंने हाथ से कटाई करने में निपुणता प्राप्त करने का प्रयत्न न किया—बारदोली के निणय के बाद तो वह करना भी नहीं चाहते थे। परन्तु हाथ से काय करने का उन्होंने एक और साधन ढूँढ लिया। यह था मूज, जिससे उन्होंने कई घंटाइयां बनाईं। उन्हें अपने हाथ से किए काय पर बहुत गर्व था। जब वह जेल से बाहर आए, तो वे घंटाइयां अपने साथ ले आए। थोड़े ही समय में वे घंटाइयां एक-एक करके या तो उन धनी प्रशासकों के घरों में पहुंच गईं या उन कार्यों के लिए उदारता से धन देते थे, जो उन्होंने आरम्भ किए हुए थे, या उन मित्रों के घरों में पहुंच गईं, जिनका स्नेह उनके लिए अमीरात का बान से भी अधिक बहुमूल्य था।

दा वय की कद काफी कड़ी सजा थी और दरअसल यह बात आश्चर्यजनक ही थी कि जेल की असुखद स्थिति में भी उनका स्वास्थ्य खराब न हुआ।

बारदोली का कदम वापस लेने का निणय, जो असल में पराजय ही बन गया और बार-बार साम्प्रदायिक दंगा के कारण देश में स्थिति निराशाजनक होती जा रही थी। इस उदासी में एक मौत ने और वृद्धि कर दी—उनके पिता का 1923 में देहांत हो गया। वह इस बात का जानते थे और गहराई से महसूस करते थे कि अन्तिम समय में उनके निकट न होने को पिता ने बहुत महसूस किया होगा।

इन कई कारणों ने उनका स्वास्थ्य विगाड़ दिया। यद्यपि उन्हें कुछ समय के लिए अधिक ठंडे स्थान, धमशाला जेल (कागडा घाटी में) में रखा गया था, फिर भी उनका स्वास्थ्य अधिक चिन्ता का कारण बना हुआ था। इसमें पूर्व ही जेल में उनके युवा माथी डाक्टर गोपीचंद भागव ने देखा लिया था कि जेल के खाना उन्हें हजम नहीं होता था, अनिद्रा रोग बढ़ रहा था और उन्हें अजीर्ण हो रहा था। धीरे-धीरे उनकी समूची शारीरिक व्यवस्था अस्त व्यस्त होती दिखाई दे रही थी। उन्हें थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी रहने लगा और जेल के डाक्टर उनका कोई उपचार न कर सके। ज्वर लगातार आ रहा था और उनका बल कम हो रहा था। फेफड़ों को किसी प्रकार का रोग लग गया था। परन्तु वह क्या था, उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता था। उनके स्वास्थ्य की खराबी से व्यापक चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। सरकार को विधान परिषद में प्रश्नों का सामना करना पड़ा, आरम्भ में तो उन्होंने इनका कहना ही काफी समझा कि बीमारी गंभीर नहीं है। उनका ठीक ढंग में उपचार हो रहा है। बाराबान में पूर्व ही उनका जिगर बड़ा हुआ था, जेल के डाक्टर बिल्कुल असफल रहे और रागी को अपने डॉक्टरों से मझविरा करने की अनुमति दे दी गई। डॉक्टर महाराज कृष्ण कपूर तथा डॉ० निहालचन्द सीकरी ने उनका निरीक्षण किया और केन्द्रीय जेल के अधीक्षक ले० बनल ए० डब्ल्यू० ग्रेग के साथ इस सब में विस्तारपूर्वक बातचीत की। डा० महाराज कृष्ण कपूर ने अपनी राय एक लम्बे पत्र में ले० बनल ग्रेग को भेज दी। फेफड़ों की स्थिति गहरी चिन्ता का कारण थी, क्योंकि थोड़ी-थोड़ी अवधि के बाद निरीक्षण करने से पता चला था कि रोग लगातार बढ़ रहा था और परिवार में तपेदिक के रोग की पुच्छभूमि के कारण यह एक बड़ी चिन्तावनी बन गई थी। जब डाक्टरों ने लाहौर की जोरदार गर्मी में छ-सान सप्ताह उन्हें लगातार हल्का ज्वर आते देखा लिया, तो उन्हें धमशाला (कागडा) जेल भेज दिया गया। वहां भी रोग चिन्ता का बराबर कारण बने रहने के कारण पंजाब सरकार को मजबूर होकर उनकी रिहाई का निणय लेना पड़ा। इसलिए उनकी वापस लाहौर भेज दिया गया और वहां से 1॥ अगस्त 1923 को रिहा कर दिया गया। उन्हें तबदील करने आदि की व्यवस्था का गोपनीय रखने का उद्देश्य था, परन्तु यह व्यवस्था पूर्णतया गुप्त न रह सकी। कैदी ने यह जान-बारी देने के लिए अपनी व्यवस्था इस्तेमाल करनी चाही, परन्तु यह भी पूरी तरह

सुरक्षित न रह पाई । सर्वेंट्स आफ पीपुल सोसायटी क थ्री पी० एल० सोधी को लिखे उनके दो पत्र रास्ते में ही पकड़े गए । यह जानकारी उन्हें धमशाला से रवाना होने से पूर्व ही मिल चुकी थी । फिर लाहौर में भी इम मामले की गोपनीयता कायम न रह पाई और इस प्रकार जब उनकी गाड़ी लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुंची, जहां से उन्हें अन्तिम व्यवस्था के अनुसार जेल पहुंचाया जाना था, पी० एल० सोधी प्लेटफार्म पर उस स्थान पर उपस्थित थे, जहां लालाजी उतरे । यह बात लालाजी के लिए आश्चर्य तथा प्रसन्नता का कारण और सुरक्षा अधिकारियों के लिए बेचैनी का कारण थी । लालाजी न विजय की मन स्थिति में उन्हें छेड़ते हुए कहा "दिख लो, मेरी गुप्तचर व्यवस्था किस प्रकार काम करती है ।"

52. महान व्यक्ति : पुनरावलोकन

जेल के अभ्यन्त हो जान के तुरत बाद लालाजी ने अपन काम भारतीय इतिहास के बारे में गहन-सी पुस्तकें जमा कर लीं और व्यापक रूप में प्राचीन भारत का इतिहास उद्घु मंत्रिजन का काम आरम्भ कर दिया। लाहौर जेल में रहने के पहले दो माम में उन्होंने इस पुस्तक के छ मी से कुछ अधिक पन्ने लिखवा दिए। जब तक डाक्टर गापीचन्द भागव, जो उनके त्रिपिक के तौर पर काम कर रहे थे, रिहा हुए, पुस्तक का पहला मसौदा तैयार हो गया था। लालाजी क जेल में बाहर आने पर यह पुस्तक लाक नवा मध्य द्वारा उनके सामान्य प्रकाशक के सहयोग में प्रकाशित कर दी गई। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं नौवें दशक में लालाजी ने प्राचीन भारत के बारे में एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की थी और वायदा दिया था कि वह इस मध्य में एक व्यापक पुस्तक लिखेंगे। कारावास ने उन्हें कुमत का समय दिया और उन्होंने यह काम आरम्भ कर दिया, जिससे उनका एक पुगना वायदा पूरा हो गया तथा इससे उन्हें व्यक्तिगत रूप में बहुत प्रसन्नता भी हुई। जय मस्करण में पहले संस्करण के समान मूल शाघकाय का कोई दावा नहीं किया गया था, परन्तु सामान्य पाठकों के लिए, जो यूरोपियन भाषाओं से लाभ नहीं उठा सकते थे, इस विषय पर यह बहुत बढ़िया पुस्तक थी। लालाजी ने विशेष प्रयत्न किया था कि उन समय तक भारतीय आय मस्कृति के बारे में जो भी ब्यौरा उपलब्ध था उसके अनुसार एक मुखमल चित्र पेश किया जाए। एक बहुत ही रोचक परिशिष्ट में उन्होंने इस मस्कृति की तुलना आधुनिक पश्चिमी मस्कृति के साथ की थी और आशा व्यक्त की थी कि मनुष्य एक और नई मस्कृति को जन्म देगा जिसमें इन दोनों के सर्वोत्तम गुणा का सुचारु तथा सुव्यवस्थित सम्मिश्रण होगा।

इस छण्ड के बाद यह एक और छण्ड लिखना चाहते थे, जो मुगल-काल के बारे में हो। दरअसल, उन्होंने इस सबंध में बहुत-सी सामग्री एकत्र की कर ली थी, यह फारसी की मूल पुस्तका में से थी, जो उन्होंने कुछ जेल में तथा कुछ जेल से सोटने पर एकत्र की। परन्तु उन्हें इस सामग्री को पुस्तक रूप देने का फुरमल न मिल सकी। उन्होंने पहले छण्ड में सशोधन करने का विचार भी कुछ वय बाद बनाया। इसके लिए भी उन्हें फुरमल न मिल पाई, यद्यपि उनके ग्हात से कुछ समय पूर्व इस पुस्तक के हिंदी संस्करण के लिए उनके निर्देश के अनुसार कुछ सशोधन अवस्य किया

गया। प्राचीन भारत का उर्दू इतिहास उन्होंने अपने पहले अध्यापक, मुन्शी राधा विश्वानन्द का समर्पित किया, जिन्होंने इतिहास के अध्ययन का शौक उन्हें विरासत में मिला था—और जिनकी मृत्यु उस समय हुई, जब वह जेल में इस पुस्तक का तैयार कर रहे थे।

इतिहास के अध्ययन की उर्दू-श्रद्धालुता में अगली पुस्तक महाराजा अशाक के बारे में थी, जो तीन सौ पन्ना में अधिकांश की थी। उन्नीसवीं शताब्दी के नौवें दशक में अशाक एक बहुत ही मध्यम प्रतिध्वनि थे। उसके बाद के वर्षों में भारतीय इतिहासकारों का गौरवमय कारनामा अशोक का इस गुमनामी से निकालकर अमर व्यक्तित्व की दीर्घा में उचित स्थान दिलाना था। यह सफलता अशाक की अपनी दूर-दृष्टि के कारण मिली, क्योंकि उन्होंने अपनी कहानी पत्थरों पर अंकित करवा दी थी। पत्थरों पर अंकित यह इतिहास दूर-दूर फैले क्षेत्रों से मिला था जो भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुए थे और उन लोगों के लिए पूरा उत्तर थे, जो यह कहते थे कि ब्रिटिश राज्य से पहले भारत में प्रशासनिक एकता कभी नहीं थी। परन्तु अशोक के जीवन का मुख्य आकर्षण उनका उच्च आदर्शवाद था, जो पैगम्बरों तथा दार्शनिकों के जीवन में देखा जा सकता है, राजाओं के जीवन में नहीं। उनका यह महान तथा अद्वितीय गुण ही था जिसने लालाजी को आकर्षित किया और अशाक के जीवन की कहानी अपने लोगों के लिए लिखने के वास्तव प्रेरित किया।

अशोक की महान राजाशाही पर टिप्पणी करते हुए जब लालाजी अपने आपको एक सवेदनशील मनोवैज्ञानिक के रूप में व्यक्त करते हुए कहते हैं कि कभी कभी उन्हें व्यक्तिगत गरूर की गंध आती है, “परन्तु इस कमजोरी से तो कोई पैगम्बर प्रचारक, वक्ता, फकीर अथवा नना बचा हुआ नहीं, और यदि इस प्रकार की कमजोरी से कोई मुक्त भी हुआ हो तो उसने आने वाली पीढ़ियों के लिए अपने आपको विलुप्त छोड़ दिया है।”

महाराजा अशाक पुस्तक का समर्पण समुचित तौर पर महात्मा गांधी को किया गया। लालाजी ने गांधीजी से इस सबंध में आज्ञा ले ली थी, परन्तु पुस्तक इसके बिना ही प्रकाशित हुई, या तो इसका कारण प्रकाशक की गलती थी या फिर यह अनुमति बहुत देर से मिली होगी।

'महाराजा अशोक' नामक पुस्तक के अन्त में चालीस पन्नों का शोध निबन्ध है। यह उपकथन लालाजी का जीवन दर्शन समझने की चेष्टा रखने वाले व्यक्ति के लिए बहुत महत्व का है, इसका विकास किस प्रकार हुआ, जब औपचारिक धर्म से मवध विच्छेद हो चुका था। दूसरे शब्दों में स्वतन्त्र परिपक्वता, परमात्मा तथा मनुष्य, धर्म तथा मानव जीवन के सही उद्देश्यों के बारे में जो अन्तिम रुचि तथा महत्व की प्राप्ति मानी जाती है, वह लालाजी का दृष्टिकोण था। कई वर्षों के लिए वह प्रवचन मंच से दूर रहे थे, परन्तु धर्म के प्रति अशोक की तल्लीनता ने उन्हें प्रवचन का उचित अवसर प्रदान कर दिया, जिसके द्वारा वह इस विशाल विषय पर अपने विचार व्यक्त कर सके। अशोक के जीवन के बारे में इस पुस्तक के उपकथन से हम कुछ उद्घरण देख रहे हैं

'म अपने तौर पर किसी भगवान में विश्वास नहीं रखता जो वही ऊँचे स्थान पर अपने आसन से दिन रात हम पर शासन चलाता है और जिसे यकीनी तौर पर सबशक्तिमान, 'मायपूण तथा दयालु कहा जा सकता है, यद्यपि वह दब भी देता है और नाश भी करता है और जिसकी प्रार्थना तथा आराधना के साथ पूजा अर्चना की जानी चाहिए। हाँ, मैं ऐसी हस्ती में अवश्य विश्वास करता हूँ, जो सारे अस्तित्व का अन्तिम कारण है, जिसके स्वभाव का कोई भी निश्चित नहीं कर सकता। वह हस्ती कौन है या वह क्या है इसको कोई मालूम नहीं कर पायगा। ससार अनन्त तथा सुंदर है, इसलिए वह हस्ती भी ऐसी ही होगी। परन्तु कोई व्यक्ति उस 'परम' को नहीं जानता और न ही जान सकता है। वेदों तथा उपनिषदों का यह कथन नेति-नेति यह नहीं, यह नहीं, मेरे मन में इस सत्य का प्रकट करता जान पड़ता है। बड़ी विनम्रता से उपनिषदों में कहा गया है कि जो जानने का दावा करता है, कुछ नहीं जानता।

'परन्तु जो धर्म यह कहते हैं कि वह सब बुद्धिमान लोग न्यायप्रिय हैं, निश्चय ही 'उसका' अपमान करते हैं जबकि उसके साथ ही वे अपने अनुयायियों में बहुत हैं कि यह ससार दुःख का घर है और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए उन्हें त्याग के मार्ग पर चलना चाहिए। हमें, जो जीवन दिया गया है, वह जीने के लिए दिया गया 'जीवन मृत्यु के चक्कर' से मुक्ति प्राप्त करने के लिए नहीं। जीवन का दीर्घ और सुंदर बनाने तथा इस विशाल और समृद्ध बनाने के लिए कि दान और प्रेम इन प्रकार मिल जाए कि जीवन ही प्रेम रूप बन जाए। जीवन को ऐसे उच्च तथा सम्पूर्ण जीवन की ओर ले जाने के लिए और इस सच्ची प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करना

ही जीवन का प्रयोजन है और यही स्वयं है। इस प्रकार की सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए सत्य के बिना और कुछ अधिष्ठा सहायता नहीं दे सकता। उपनिषदों में ठीक ही लिखा है, सत्य से ऊपर कोई धर्म नहीं है। जो भी व्यक्ति इस धर्म को अपना लेता है, वह सही अर्थों में धर्मात्मा बन जाता है और सत्य उमे अहंकार तथा गव से मुक्त करता है, काम तथा क्रोध से मुक्ति देता है, धनलोलुपता तथा अय सभी बातों से, जो घटिया और जकड़न वाली हैं, मुक्त करता है। वह सदा उच्च स्थान पर, स्वतंत्र तथा निर्भीक महान तथा दयालु रहता है और उमकी प्रेम धारा बहती रहती है। उसके लिए सारा ससार सुंदरता का दृश्य होगा।

“क्या मृष्टा न मनुष्य के लिए प्रकृति और सुंदरता की रचना इसलिए की थी कि वह उन्हें घातक विष के समान त्याग दे? क्या वह अपनी सर्वोत्तम सुंदर प्रकृति, स्त्री को ऐसी वस्तु बना सकता था कि उसे त्याग दिया जाए? निम्सदह सत्य तथा प्रेम का धर्म, मनुष्य का इस बात के लिए बाध्य करता है कि सुंदरता की मूर्ति का दुरुपयोग न किया जाए और न ही उसे काम-तृप्ति के लिए दास बनाया जाए।

“और सुंदरता के इस व्यापक दृश्य में स्त्री की क्या भूमिका है? यह केंद्रीय प्रश्न है, विशेषकर सन्मास के दशन में (जा भारत में कई शताब्दियों से प्रचलित है) जिसके अनुसार स्त्री बुराई की प्रतिमा है या मनुष्य के पतन का मूल कारण है और इसकी निन्दा से अकर्म अपन ही उद्देश्य को विफल कर देते हैं।” लालाजी इस प्रश्न में घृणा नहीं करते और मातृत्व की सुंदरता पर बल देते हुए स्त्री की महान तथा उच्च भूमिका बताते हैं और अपने इस दशन में सुंदरता शामिल कर देते हैं।

“स्त्री, प्रकृति की रचना में एक अद्भुत प्रतिमान है और इसके साथ ही सुक्ष्म रूप में ममूची प्रकृति भी। मातृत्व ब्रह्माण्ड की अधिकतम आश्चर्यजनक, बहुत ही सुंदर और महानतम अभिव्यक्ति है। पुरुष के लिए इससे महान और कोई बात नहीं है कि वह उसकी रचनात्मक शक्ति में प्रकृति का अनुसरण करे।

“स्त्री, पुरुष के प्रेम की प्रेरणा स्रोत है। वेद, स्त्री को वीरा की जननी बनने को कहते हैं, परन्तु यह तभी भभव हो सकता है जब प्रकृति का आदेशानुसार पुरुष तथा स्त्री शुद्ध प्रेम में एक दूसरे में युक्त हों, ऐसे प्रेम में, जिसमें पाप लेशमात्र भी न हो।

“इस सृजनात्मक कृतव्य मे दूर भागना धम नहीं, बल्कि इसे निभाना धम है। यह स्त्री ही है जो पुरुष को सिखाती है कि सृजनात्मक क्रिया के लिए कोई भी जोखिम—मृत्यु भी—ज्यादा नहीं। प्रजनन के लिए स्त्री को कितना जोखिम उठाना पड़ता है।

“प्रजनन ही तो सृजन का एकमात्र रूप नहीं। अनुसंधान, आविष्कार, खोज, कला और दस्तकारी सभी रचनात्मक क्रियाएँ हैं। इन रचनात्मक शक्तियों का अधिकतम विकास करना और उन्हें पूरा अवसर देना—यही स्वग है।

“आध्यात्मिक उपलब्धि का अर्थ यह नहीं कि अल्लाह या राम राम रटते जाओ, वेदा का उच्चारण करते रहो या मंदिरों की घटिया बजाते रहो। सर्वोच्च उपलब्धि उन लोगों की है जो अपनी रचनात्मक शक्तियों का विकास करें। इस सत्कार की सुदरता में वृद्धि करते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की उपलब्धि प्राप्त कर लेते हैं और अपने चारों ओर सुदरता फैलाते हैं, उनकी सभी खामिया तथा अवगुण इस महान सुदरता में ढक जाते हैं।

‘त्याग करके जीवन का अन्त कर देना उस सुदरता को, जो रचनात्मक है, नकारात्मक बनाना है। यहाँ तक कि उचित समय पर मृत्यु की भी अपनी सुदरता है, परन्तु असामयिक मृत्यु बहुत बुरी होती है जिसके विरुद्ध सारी प्रकृति रोप व्यक्त करती है।’

धम, जो पुजारी वर्ग की उत्पत्ति है, उसके लिए, वह अधिक प्रशंसा के शब्द नहीं कहते

“क्या इन रीतियाँ या धर्मों का उस बात में कोई अधिक महत्व है जिस पर मैं विचार करने जा रहा हूँ परन्तु यह मेरा पक्का विश्वास है कि वह विशुद्ध धम नहीं—वह सामाजिक धम का एक भाग मात्र है। यह शिक्षा देना कि जो उन्हें स्वीकार नहीं करेगा वह नरक में जाएगा, मानव-जाति को गुमराह करना है। मेरे लिए यह जरूरी नहीं कि मृत्यु के बाद के जीवन की धारणा को स्वीकार करूँ या अस्वीकार, परन्तु मैं मृत्यु से पहले के जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकता और इस जीवन में हम अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहिए—सत्यवादी जीवन बिताकर। मैं उस बात में विश्वास नहीं रखता कि मनुष्य को भविष्य की खातिर वर्तमान जीवन का परित्याग कर देना चाहिए। इसके विपरीत यदि मृत्यु के बाद कोई और जीवन है वह उस व्यक्ति के लिए और भी समृद्ध होना चाहिए जिसने वर्तमान जीवन का

किया था। 1896 में मराठी सामग्री बहुत ही कम थी, उस समय एक मराठा मित्र पर निभर करना पड़ा था, जो उन्हें एम० जी० रानडे की मराठी रचना 'मराठा इतिहास' (हिस्ट्री आफ द मराठाज) जो अभी पाण्डुलिपि के रूप में ही थी, पढ़कर सुनाता था। अग्रेज लेखक (घाट दफ) जैसे द्वारा लिखित, जो इतिहास उस समय उपलब्ध थे, वह केवल फारसी स्रोतों पर ही निभर दिखाई देते थे, अब रोलिनसन जैसे उनके उत्तरवर्तियों ने मराठी दस्तावेजों तथा इतिहास पुस्तकों के अनुसार पहली रचनाओं तथा निणयों की जांच पड़ताल करने का प्रयत्न किया था (सालाजी ने जब वह अमरीका में थे रोलिनसन की पुस्तक की समीक्षा की थी) इसके अतिरिक्त ताकाखाऊ और किलॉम्कर जैसे मराठी विद्वान भी थे, जिन्होंने मराठी भाषा तथा मराठी दृष्टिकोण अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध कराया। इन सभी बातों की राशनी में व्यापक संशोधन की ही नहीं, दरअसल नये सिरे से पुस्तक लिखन की आवश्यकता थी।

इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी के नौवें दशक के बाद, सालाजी का अपना दृष्टिकोण भी विशाल हो गया था। जन 1895 में नितक तथा उनके सहयोगियों ने महाराष्ट्र को एक नया वार्षिक उत्सव दिया था—शिवाजी उत्सव, जो शिवाजी के राजतिलक की स्मृति में था। शिवाजी को नायक के रूप में व्यक्त करने का नायक पूजा का सिलसिला आरम्भ हो गया था। उस समय सालाजी ने अपने विषय को नामक-भूजा करने वाले की दृष्टि से पक किया और यह स्वाभाविक ही था कि कई बार उनकी प्रस्तुति एक समयक अथवा प्रचारक जैसी थी। वर्तमान दृष्टिकोण विमृदध रूप से इतिहास के एक विद्वार्थी का था और प्रस्तुति अधिक वास्तविक तथा आलाचनात्मक थी।

अपनी नई प्रस्तावना में उन्होंने लिखा

“एक झूठ, झूठ ही है, बेईमानी, बेईमानी ही है, फरेब, फरेब ही है और स्वाय, स्वाय ही है, साम्राज्यवाद और कुछ नहीं केवल साम्राज्यवाद ही है, चाहे वह एशिया में हो, यूरोप में या अमरीका में, चाहे वह अंग्रेजों द्वारा हो, भारतीयों द्वारा, चीनियों द्वारा, हिन्दीयों द्वारा अथवा जापानियों द्वारा। उनमें से किसी एक को केवल इसी लिए और समझना कि लेखक हमारा अपना आदमी है, पाप है। पापी, पापी ही है, उसकी नस्ल या राष्ट्रीयता चाहे कुछ भी हो। उसके लिए घृणा प्राप्त करने की खातिर परिस्थितियों की दलील चाहे दी जाए परन्तु वह उसका पाप गहा घों सक्ती। हम यह दलील भी द सकते हैं कि नैतिकता के मापदण्ड

विभिन्न युगों के लिए विभिन्न रहे हैं और किमी व्यक्ति व बार में अनुमान उससे युग के मापदंड से ही लगाया जा सकता है। शिवाजी के बारे में हम अपना निष्कर्ष यह सामान्य सिद्धांत निश्चित करने के बाद ही देंगे। अपनी जवानी के दिनों में, हिन्दू राष्ट्रवाद के मंदो-मत्त प्रभाव के अधीन होने शिवाजी के चरित्र के बारे में, जो अनुमान लगाया था, वह इस अध्याय के अन्त में दिया गया है। मैं यह नहीं कहूंगा कि वह अनुमान झूठा था और अब उसे वापस ले लिया गया है, परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि जो कुछ उस समय लिखा गया था, वह उससे कुछ भिन्न है, जो अब मेरा विश्वास है, वह अनुमान समय में प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।”

शिवाजी दरअसल आलोचनात्मक तथा और भी कड़ी परीक्षाओं में बहुत सफल रहे—उस व्यक्ति के समान, जिसकी सफलता उसकी निश्चित उपाधि है, जिसके कारण वह माननीय व्यक्तियों में गिना जा सके, जिसका निजी जीवन शानदार हृदय तक स्वच्छ था, जो युद्ध तथा लूटमार के समय भी स्त्रियों का उच्च सम्मान करता था, जिसके नेतृत्व के महान गुण और चरित्र उसके व्यक्तित्व को उसके ममकालीन व्यक्तियों में विशिष्ट उज्ज्वल स्थान दिलाते हैं जब उनकी तुलना की जाती है या उनका औरगजेय से मुकाबला किया जाता है। परन्तु लालाजी ताकाखाऊ जैसे प्रशासक द्वारा शिवाजी के देवीकरण के प्रयत्न का स्वीकार नहीं कर सके, जिन्हें प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास में शिवाजी की तुलना में योग्य प्रशासक और प्रतिभावान नेता नजर ही नहीं आता था और जो इसके अतिरिक्त शिवाजी के व्यक्तिगत शासन की आधुनिक प्रजातांत्रिक विचारों की रोशनी में ध्याख्या करते थे। लालाजी की दृष्टि में शिवाजी साम्राज्य निर्माता थे, उनका शासन प्रजा के अपने शासन की धारणा के अनुसार स्वराज नहीं था, उनके मंत्री प्रत्येक तानाशाह द्वारा नियुक्त अफसरशाही अमला के समान थे, लोगों के प्रतिनिधि नहीं थे और यद्यपि वह एक दयालु तानाशाही थी, लालाजी किसानों से की जाने वाली भारी जबरनी वसूली को दयालुता से स्वीकार नहीं कर सके दो बटा पाच तथा कुछ और कर जिससे यह वसूली कुल उपज का लगभग आधा हो जाती थी। शिवाजी के प्रति उनकी प्रशंसा बहुत अधिक तथा सच्ची थी, फिर भी लालाजी उन्हें “स्वतंत्रता का समर्थक” घोषित नहीं कर सकते थे।

उन्होंने अफजल खा और शायस्ता खा की घटनाओं का नए सिरे से जायजा लिया, फिर भी शिवाजी की निन्दा नहीं कर सके। ‘फरेब’ का दोष सही सिद्ध नहीं हो सका। न ही वह शिवाजी के छापामार तौर-तरीकों की भी निन्दा कर पाये, “एक

टाली के लिए जिसके पास साधन नहीं आर जिसे बढिया संगठित सेना को चुनीती देनी हो, छापामार युद्ध प्रणाली ही सर्वोत्तम है।" उनके मन में राजपूता की बिना सोचे समझे जूझने की प्रवृत्ति की बहुत प्रशंसा थी, परन्तु वह इस बात को भी भलीभांति समझते थे कि इस सप्सार में स्थिति के अनुसार व्यवहार करना अत्यावश्यक है और ऐसा न होना विल्कुल घातक हो सकता है। उनके अपने सद्म के मापदंडों से उनका मूल्यांकन करने पर शिवाजी बहुत ऊँचे नजर आते थे। पर बाह्यी मानदंडों के आधार पर विचार करने वाले गलती करते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं था कि लालाजी का मापदंड, यदि कहा जाए, पश्चिम के मापदंडों से कम था। शिवाजी के मूल्यांकन के बारे में प्रोफेसर राल्फ़ सन क इस आरोप का कि शिवाजी का मूल्यांकन उन्ही के युग तथा उन्ही के लोग (देश) के मापदंड के अनुसार ही किया जाना चाहिए, लालाजी ने उपयुक्त उत्तर दिया, जो पश्चिम के मापदंडों के बारे में था, उन्होंने कहा कि पश्चिम के प्रख्यात विद्वानों ने भी राष्ट्रीय का नैतिक व्यवहार आकने के लिए तीन अलग अलग मापदंड अपना रखे थे। एक केवल सैद्धांतिक उद्देश्य तथा केवल प्रचार मात्र के लिए, दूसरा यूरोपियन राष्ट्रों से व्यवहार के लिए और तीसरा 'घटिया और बे कानून नस्लों' की निन्दा के लिए। "उपयुक्त मापदंड" में लालाजी का तात्पर्य साम्राज्य निर्माताओं का मूल्यांकन करने के मापदंडों से है चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के। सिकंदर, तैमूरलंग, महमूद गजनवी, अलाउद्दीन खिलजी, नेपोलियन या क्लाइव की ध्यतिगत अथवा सांख्यिक नैतिकता के साथ तुलना करने पर शिवाजी कहीं भी ओछे नहीं ठहरते थे। यदि वह तुलना में कम दिखाई देते ह, तो केवल अशोक की तुलना में, सिकंदर और नेपोलियन की तुलना में नहीं।

सक्षिप्त वय में लालाजी ने महान व्यक्तियों को तीन वर्गों में बाटा है। इसमें से सर्वोच्च वे व्यक्ति हैं, जिन्होंने निजी लाभ का मामूली सा ध्यान किए बिना अथ लोको की भलाई के लिए काय किया, इनमें बुद्ध, शंकर, ईसा, मुहम्मद, उमर, सेंट, पाल, नानक, ल्यानन्द, गांधी, अशोक, काल माक्स, मैजिनी और वाशिंगटन शामिल है। इस सर्वोच्च वर्ग में शिवाजी नहीं आते थे। महान व्यक्तियों के सबसे निम्नवर्ग में वे व्यक्ति आते हैं, जिन्होंने स्वाय के लिए बहुत अत्याचार किए जैसे चंगेज खा और तमूरलंग। शिवाजी मध्य वर्ग में आते थे, जिनकी उपलब्धि, चाहे मुख्य तौर पर ध्यतिगत आकांक्षा से प्रेरित थी फिर भी उसने लोगों को लाभ हुआ था।

53. सोलन मे स्वास्थ्य लाभ

यह बात विस्तृत अनिवाय हो गई थी कि उन्हें शीघ्रता के साथ किसी ठंडे स्थान पर पहुंचा दिया जाए, ताकि उन्हें साहार की झुलसा देने वाला गर्मी स बचाया जा सके । सालन मे व्यवस्था कर ली गई और जेल स रिहा हो जान के दा तान दिन के अंदर ही वह पहाड पर चले गय । थोडे ही समय म उनका ज्वर काबू म आ गया और उन्हें स्वास्थ्य लाभ करना आरम्भ कर दिया । ऐसा दिखाई पडता था कि जवान न रहने के बावजूद उनमे तदुस्त होन की शक्ति कम नहीं हुई और अन्त तक यह देखा गया कि गभीर रोग के बाद भी, जब एक बार उनके रोग का निदान हो गया, वह बहुत शीघ्रता से स्वस्थ हो गए और उसके पश्चात उन्हें लिखने, सावजनिक भाषण देने तथा दौरे करने का सिलसिला बहुत शीघ्र फिर से आरम्भ किया, जितना शीघ्र उनके मित्रा तथा डाक्टरों का आशा न थी । इम्यात की उस कमानी के समान जिस पर स दबाव हटाते ही वह पूर्ववत अपने स्थान पर आ जाती है । सोलन म यद्यपि उनका रोग बढन स रोक लिया गया था और जल्दी ही उहे खतर न बाहर घोषित कर दिया गया था, फिर भी उनका स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक न हुआ । ऐसा दिखाई पडता था कि उनके शरीर को लम्बी अवधि के लिए आराम की आवश्यकताए थी, कुछ भी हो, गर्मी का सारा मौसम उन्हें सोलन मे स्वास्थ्य लाभ करने के लिए बिताना पडा, निस्सदेह वह कुछ पढने लिखने का काम और अपन से सम्बद्ध सस्याआ के लिए निर्देश तथा सलाह-मशविरे देते रहे । कभी-कभार वह राजनीतिक सलाह मशविरे मे भी भाग लेते थ, क्योंकि अबुल कलाम आजाद तथा मोतीलाल नेहरू न भी गर्मी का मौसम सालन म बितायो था । उनकी मुलाकातें अक्सर होती थी और बडी चिन्ता से नई समस्या—हिन्दू मुस्लिम विवाद के बारे मे तथा विधान मण्डला पर “कब्जा” करन के सबध मे बातचीत करते थे । यह विचार हो रहा था कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समाधान के लिए “राष्ट्रीय सधि” को जाए, जिम प्रकार की सीमित सधि लखनऊ कांग्रेस मे की गई थी । काकीनाडा (आंध्र प्रदेश) में होने वाले आगामी कांग्रेस अधिवेशन म ऐसी सधि पर विचार होने की आशा थी । साजाजी तथा आजाद न ऐसी सधि के बारे मे व्यापक

आधार के लिए कई बार बातचीत की और ऐसा दिखाई पड़ता था कि इस सम्बन्ध में वह मोटे तार पर सहमत हो गए थे ।

मातीलाल नेहरू के साथ राजनीतिक बातचीत सामान्य तौर पर स्वराज पार्टी की रूपरेखा तथा कांग्रेस को कांग्रेस पार्टी द्वारा विधान मण्डलो पर वज्रा करने के कार्यक्रम के बारे में शिक्षित करने तथा इस सम्बन्ध में लोकमत तयार करने के बारे में होती थी । स्वराज पार्टी तो पहले ही स्थापित हो चुकी थी, तब लालाजी जेल में ही थे । सी० आर० दास उसके अध्यक्ष तथा मोतीलाल नेहरू उससे सचित्र थे । लालाजी ने जेल में होत हुए भी सहायता की थी । अब जब वह जेल से रिहा हो गये थे, तो इस बात की पूरी आशा थी कि ऐसे स्वास्थ्य के साथ, वह जितनी सहायता उनसे बन पायेगी, करेंगे । विशेषतौर पर पंजाब विधान परिषद के आम चुनाव की निगरानी का दायित्व उन्हीं का होगा । सोलन में स्वास्थ्य लाभ करते समय ही उन्होंने पंजाब विधान परिषद के चुनाव के लिए उम्मीदवारों का चयन किया, उनका प्रचार किया । इस काम में उन्हें स्वराज पार्टी की ओर से पूरा अधिकार प्राप्त था । पार्टी के लिए उन्होंने जो सफलताएँ प्राप्त की, वह स्वराज पार्टी के लिए गव की बात थी । यहाँ पार्टी के लिए अन्य विधान मंडलों की तरह स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना संभव नहीं था, जिस प्रकार उसने नागपुर में किया, परन्तु फिर भी शहरी क्षेत्रों की सभी हिंदू सीटें, कुछ देहाती स्थान और कई सिख सीटें पार्टी के लिए जीत ली गई । निस्संदेह इस बात में और अधिक सफलता की आशा भी नहीं की जा सकती थी, क्योंकि यहाँ की परिस्थितियाँ विशेष प्रकार की थी । हिन्दुओं तथा मुसलमानों में समझौते का अब कोई अस्तित्व नहीं था, इसलिए स्वराज पार्टी वालों को मुसलमानों में अधिक सफलता की आशा भी नहीं थी और इसका अर्थ था—आधी सीटें । पंजाब में शहरी लोगों के मुकाबले के लिए देहाती उम्मीदवार खड़े करने की नीति जान बूझकर अपनाई गई थी । निर्वाचन क्षेत्र इसी ढंग में बनाए गए थे, ताकि अधिकतर स्थान जमींदार प्रतिनिधि ही जीते । पंजाब के जमींदार भी अर्थ स्थानों को तरह प्रतिक्रियावादी थे । इसलिए जितनी सीटों पर भी विजय प्राप्त हुई, यद्यपि वह पार्टी के लिए अधिक बहुमत वाली बात नहीं थी, फिर भी वह बर्दाई का पात्र थी ।

पंजाब स्वराज पार्टी लगभग पूरी तरह लालाजी के निर्देशन में चल रही थी, यद्यपि वह स्वयं परिषद के सदस्य नहीं थे (न ही पार्टी के) और शीघ्र ही लालाजी

हो रही थी कि सी० राजगोपालाचारी के नेतृत्व में "न बदलने" वाला ने एक दूसरे के विरुद्ध अपना अभियान पूरे जोर से शुरू कर दिया। अग्रिम भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक होना तब अबुलकलाम आजाद और जवाहरलाल नेहरू, जो गया कांग्रेस अधिवेशन के समय जेल में थे, रिहा होकर आ गए थे और उनके जोरदार प्रयत्नों से कुछ सप्ताह के लिए युद्धविराम हो गया, ताकि एकता के लिए प्रयत्न किए जा सकें और विच्छेद रोका जा सके। परन्तु एकता नहीं हो पाई और निर्धारित समय बीत गया और अग्रिम भारतीय कांग्रेस समिति ने प्रस्ताव पास कर दिया, जिसका सी० राजगोपालाचारी तथा पुरातन विचारों वाले अथवा "न बदलने वाले गुट" ने विरोध किया था। उनमें से छठे काय समिति से त्याग पत्र दे दिया। डाक्टर अंसारी की अध्यक्षता में काय समिति का पुनर्गठन किया गया और स्थिति से निपटने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन मितंबर के तीसरे सप्ताह में अबुलकलाम आजाद की अध्यक्षता में बुलाया गया।

जब यह अधिवेशन हुआ लालाजी अभी सोलन में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। जेल से रिहाई के लिए लालाजी को शुभकामनाएं भेजी गई।

अधिवेशन बहुत ही चिन्ता का कारण था क्योंकि आमतौर पर इस बात की आशंका थी कि कांग्रेस पूरी तरह दो हिस्सों में विभाजित हो जाएगी। दास और नेहरू इस बात की ओर पूरा ध्यान दे रहे थे कि उनके समयक दिल्ली में एकत्र हो जाए और इस उद्देश्य के लिए वे पूरे कौशल का प्रयोग कर रहे थे।

6 सितंबर को मोतीलाल नेहरू का तार आया 'यदि डाक्टर आज्ञा दे, तो 10 सितंबर का दिल्ली में होने वाले प्रारम्भिक सम्मेलन में आपकी उपस्थिति बहुमूल्य होगी। आपके ठहरने के लिए कुतुब में व्यवस्था होगी, केवल चुने हुए लोग आपसे मिलेंगे, तार दीजिए—नेहरू'।

परन्तु लालाजी को प्रारम्भिक बैठक तथा अधिवेशन से दूर ही रहना था। दिल्ली अधिवेशन की कायवाही की अध्यक्षता के लिए आजाद को चुना गया, क्योंकि उन्हें दानों का विश्वास प्राप्त था। परन्तु इस बात का संदेह बढता जा रहा था कि क्या इससे भी विभाजन रूक पाएगा। जब में आजाद जेल से बाहर आये थे, उनके प्रयत्नों से समझौते के लिए नेहरू दा महीन की अवधि प्राप्त करने में सफलता मिली थी। ऐसा दिखाई पड़ता था कि काय उाकी

समझौता करवा पान की क्षमता से बाहर है। परन्तु खुशकिस्मती से एक अन्य नेता उचित समय पर जेल से रिहा होकर आ गये और अधिवेशन में पहल ही आकर उहाने अशुभ विपत्ति टाल दी। मुहम्मद अली ने बताया कि "एक पक्षी ने मेरे कान में कहा है कि परिपद में प्रवेश के विरुद्ध महात्माजी स्वयं नहीं लड़ेंगे।" उहाने इन बातों को बड़े सुदूर ढंग से अस्पष्ट रखा, परन्तु परिवर्तन न चाहने वाला के लिए यह अनुमान लगाने का कोई कारण नहीं था कि वह दूसरे गुट के पक्ष में भेदभाव करते रहे हैं और ऐसा दिखाया गया कि महात्मा गांधी ने जेल से देवदास गांधी द्वारा मुहम्मद अली को संदेश भेजा है, जिसमें समझौता या समर्थन किया गया है। कांग्रेस अधिवेशन में एक अनुमति बाधक प्रस्ताव पाम किया, जिसमें घोषणा की गई

"ऐसे कांग्रेसजन जिन्हें धार्मिक या अन्तःकरण की दृष्टि से विधान मण्डला में प्रवेश पर कोई आपत्ति नहीं उन्हें चुनाव के लिए उम्मीदवार बनने की छूट है और वे आगामी चुनाव में अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। इस लिए यह कांग्रेस अधिवेशन परिपदा में प्रवेश के विरुद्ध सभी प्रकार स्थापित करता है।"

यही नियम तीन मास बाद काकीनाडा में नियमित वार्षिक अधिवेशन के समय दोहराया गया, जिसमें सी० राजगोपालाचारी ने भी इसका समर्थन किया। इस नियम से स्वराज पार्टी को बड़ा छूट मिल गई जो वह चाहती थी, कांग्रेस से पूर्ण अधिकार प्राप्त करने जैसी बात कुछ समय के लिए प्रतीक्षा कर सकती थी।

दिल्ली कांग्रेस ने भी इस समस्या की एक समिति राष्ट्रीय सचिव का मसौदा तैयार करने के लिए बनाई। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की पिछली बैठक में जो काम डाक्टर अंसारी का सीपा गया था उसमें अब लालाजी को भी शामिल कर लिया गया।

मालन का लम्बा प्रवास आखिरकार समाप्त हो गया। लालाजी लाहौर लौट आए, उनका स्वास्थ्य अभी भी कुछ कमजोर था, परन्तु वह किसी सीमा तक अपना मामला चला करने लगे थे।

54. एक हकीम द्वारा रोग-मुक्ति

सोलन में रहते समय एक बार लालाजी को एक प्रकार का उदरशूल हुआ। उसके बाद दूसरी बार और तीसरी बार फिर उसी प्रकार की पीड़ा हुई, बाद में तो यह उदरशूल हर सप्ताह ही होने लगा—हर बार उससे, पिछले सप्ताह के मुकाबले अधिक कष्ट हाता था। सोलन तथा शिमला के डाक्टरों ने ऐमिटीन का टीका लगाया तथा कई अन्य उपचार किए, परन्तु उदरशूल पहले से अधिक शीघ्र तथा तीव्र होने लगा और हर बार उस शूल के बाद वह पेटने में कमजोर हाते गए।

अच्छी चिकित्सा सुविधा के लिए वह लाहौर चले आये हालांकि गर्मी का मौसम अभी समाप्त नहीं हुआ था। डा० महाराज कृष्ण कपूर, डा० निहालचन्द सीकरी, डॉ० गोपीचंद भागवत, ले० कनल डी० एच० राय, ले० कनल अमीरचंद—ये सभी मित्र डाक्टर प्रतिदिन उनका हाल पूछने आते। उनमें से कुछ तो दिन में कई बार आते, आपस में सलाह मशविरा करने और अपने ज्ञान के अनुसार उनका अच्छे से अच्छा उपचार करते। उन्हें पूरी तरह तरल खुराक दी जान लगी और विस्तर में लेटे रहने को कहा गया तथा प्रतिदिन जुलाब दिया गया। हवा बदल तथा औषध परिवर्तन के बावजूद कोई लाभ हाता दिखाई नहीं दे रहा था। सभी डाक्टर इस बात पर सहमत थे कि राग का कारण उनके पित्तापय में था। पित्त नली में बाधा पड़ी हुई थी, शायद यह पित्त पथरी के कारण थी। कई तरह की हर्बासिद्धि जाच में कोई ठोस परिणाम न निकला।

प्रसिद्ध राग विज्ञानी, मेजर सी० जे० फाक्स, जा सेवामुक्त होने के बाद शिमला पहाडिया में बस गए थे, सोलन में लालाजी से मिलते रहे थे। इसका मुख्य कारण यह था कि तपस्वि सनिटोरियम की स्वीम की बढ़ावा देने के लिए वह लालाजी का सहयोग प्राप्त कर सके। उन्हें सदेह हुआ कि यह तकलीफ स्ट्रैप्टो कोकी के कारण है और इसके अनुसार उन्होंने स्वयं टीका बनाया और लिखा कि उन्हें इससे 'महत्वपूर्ण' परिणाम की आशा है।

'पित्त पथरिया', बहुत डीठ सिद्ध हुई। जुलाब तथा तरल खुराक भी रोगी को उनसे मुक्त न करा सके। इस बीच उदरशूल बार बार कमजोर हो गए थे और अगर डाक्टरों का

का जोश्रिम न उठाते । इसके अतिरिक्त कोई छोटी का शय्य चिकित्सक भी उस समय लाहौर में उपस्थित नहीं था ।

आधिरवार लालाजी ने डॉक्टरों से यह दिया कि यदि वह पला दिन तक सफत न हो पाए, तो यह किसी अन्य चिकित्सा प्रणाली का सहारा लेंगे । डॉक्टर खुद बुरी तरह उलझन में पड़े हुए थे और नाटिस की अवधि समाप्त होने पर डॉक्टरों की ओर से कोई विशेष विराध के बिना एक दा होमियोपथिक डॉक्टरों से जो उस समय लाहौर में थे, उपचार कराया गया । उन्हें भी कोई सफलता न मिली तो लाहौर में एक हकीम को बुलाया गया । वह थे स्वर्गीय शिफा उन मुन्क परीर मुहम्मद, जो लाहौर के चाटी के हकीम होने के अलावा लाताली के अपने नगर जगराय के थे और इसके अतिरिक्त वह अपने स्वून काल में मुशी राधा विमान के शिष्य रह चुके थे । हकीम अजमल खा, जिनसे वह पहले भी कई बार मशविरा ले चुके थे, उस समय दिल्ली में नहीं थे और उनका कोई पता नहीं मिल रहा था । लिल्ली के एक-दा अन्य प्रसिद्ध हकीमों के बारे में पता किया गया, परन्तु उनमें से भी कोई मिलता दिखाई नहीं देता था । तब के० डी० बाहली ने एक नबीना माहिल के बारे में सुना—एक नेत्रहीन हकीम, जिन्हें दिल्ली आए अधिक समय नहीं हुआ था और जिहोंने कई रोगी ठीक कर दिए थे, जिनको अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली के डॉक्टरों ने अपेंडिस का रोगी होने की सभावना व्यक्त की थी । टेलीफोन पर सक्षेप में बातचीत के बाद कोहली तुरत ही उस नेत्रहीन करामाती हकीम को लाहौर ले आए ।

बद्ध हकीम अगले दिन प्रात लाहौर पहुंचे और आत ही उहोने आश्चर्य-जनक आत्मविश्वास के साथ रोगी के उपचार का काय सभान लिया । उन्होंने आधे घंटे में ही भविष्यवाणी कर दी कि उदरशूल अब नहीं हागा और दा दिन के अंदर वह काय भुक्त होकर दिल्ली लौट सकेंगे ।

अब जान पडा कि वह हकीम डाक्टर एम० ए० असारी के बडे भाई थे, और दिल्ली में उन्हें बहुत कम लोग जानते थे, क्योंकि उहोने अपने जीवन का अधिक समय हैदराबाद दरबार की मेवा में बिताया था और दरवार के साथ अनबन हो जाने पर वह हाल ही में दिल्ली आए थे । उन्होंने लालाजी की नब्ब देखने में कई पंद्रह मिनट लगाए, क्योंकि हकीम का आते ही उपर लालाजी के कमरे में पहुंचा दिया गया । जब तक हकीमजी ने लालाजी की नब्ब देखी, मने उनका सामान कमरे में अच्छी तरह टिका दिया । जब मैं ऊपर पहुंचा, तब तक वह राग

का निरूपण तथा पूर्वानुमान लगाने का काय पूरा कर चुके थे और इस बात पर जोर दे रहे थे कि उन्होंने लालाजी की नब्ब देखने में काफी समय लगाया है, उन्हें विश्वास है कि कहीं कोई पथरी नहीं है केवल थूक-बफ की खराबी है, वह उनकी दवाई से ठीक हो जाणगी। उन्होंने केवल तरल खुराक दिए ज्ञान पर भी आपत्ति की और इससे भी अधिक आपत्ति बार-बार जुलाब देने पर की। पहले दिन ही उन्होंने कुछ ठोस पौष्टिक आहार देने पर जार दिया, परन्तु उसके लिए लालाजी बहुत भिन्न रहते थे। वह एक दिन के लिए या एक वक्त के भोजन का करने के लिए सहमत हो गए। फिर भी उन्होंने शोरबे में गोदी डालकर खिला ही दी।

जब हकीमजी पहुँचे थे, तो लालाजी को दिन में कई बार उदरशल क दौरे पड़ते थे और जो कोई भी उनके पास होता था, पीडा से उनको तडपते हुए देखना कठिन हो जाता था। उस शाम लालाजी को बहुत अधिक कष्ट था, जब दिल्ली से व० डी० बोहली न नबीना हकीम का सुझाव दिया था। लालाजी बहुत ही अधिक पीडा में थे, शाम को डाक्टर महाराज कृष्ण ने लालाजी को देखा। लालाजी अब उनकी चिकित्सा में नहीं थे, क्योंकि उनका अंग्रेजी दवाइयो का इलाज बंद कर दिया गया था। परन्तु उन्हें आशा दे दी गई कि यदि वह चाहें तो पीडा कम करने के लिए उपाय कर सकते हैं। उन्होंने तुरत ही टीका लगाने की सिफारिश निकाली, परन्तु उनके धैर्य में माफिया का कोई टीका नहीं था। वह घर से टीका लाने के लिए तुरत बाजार में गए, परन्तु वहाँ भी कोई ऐसा टीका न मिला। दवाई विक्रेताओं की सभी दुकान उस समय बन्द थी और जब तक वह किसी विक्रेता से टीके की व्यवस्था करें, तब तक काफी समय बीत गया था। यह सब दरी भी उस समय हुई जब प्रत्येक पल कष्ट की घड़ी महसूस हो रही थी। आखिरकार टीका लगा दिया गया, जिससे पीडा घटी तो नहीं, परन्तु उसका अह्मास अवश्य कम हो गया, क्योंकि बार-बार टीके लगाने से कारण अब टीके भी कम असर करने लगे थे। उस दिन डाक्टर बापी रात तक ठहरे रहे। वह बहुत चिन्तामग्न थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि दवाइया में उपचार हानि की अब कोई आशा नहीं रही। एतन्मात्र उपाय शल्य चिकित्सा ही थी। उन्हें इस बात का यकीन नहीं था कि रोमी उस कष्ट को सहन कर पायेगा भी या नहीं और दूसरे लाहौर में उस समय उपलब्ध सज्जन इतन मुशकिल भी नहीं थे कि वे सफलतापूर्वक आपरेशन कर सकें, फिर भी लाभ-हानि का

लेखा जोखा करन के पश्चात् उन्होंने रोगी का अगले दिन आपरेशन के लिए सजन को सौंप देने का निणय किया ।

अगले दिन प्रात हकीमजी ने रोगी को सभाल लिया और उनके आने के बाद शूल का हल्का सा दौरा पडा और वह भी केवल कुछ मिनटा के लिए । हकीम ने कहा कि यह दद त्रिन्कुल भिन्न प्रकार का है और उन्हानि निश्चित तौर पर दावा किया कि यह पीडा, जा रागी को अब तक कष्ट दती रही थी पहले ही हमेशा के लिए समाप्त हो गई है । हकीमजी का शय्यागत उपचार और उनका व्यक्तित्व, उनका शिष्टतापूर्ण व्यवहार और दरबारी अदब आदाब, धार्तालाप की प्रतिभा, उनका आत्मविश्वास, यह सब भी उपचार में उतने ही महत्वपूर्ण थे शायद जितना उनकी शीशियो वाली पेटी में दी गई दवाइया । उनकी स्मरणशक्ति तथा उनकी सवदनशील उगलिया का बिना गलती किये अनक शीशियो में से सही शीशो निकालना अदभुत था । उन्होंने ताहौर में दो रातों तथा तीन दिन बिताए, वह इस बात का मानने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे कि इससे अधिक समय के लिए उनकी वहा जरूरत थी । वह यह कहते हुए दिल्ली के लिए रवाना हुए कि उन्हें हफ्त दस दिन में लालाजी से दिल्ली में मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी और फिर वह उनकी पूरी प्रणाली का ठीक करने के लिए लम्बी अवधि के लिए उपचार करेंगे ।

डाक्टर-मित्रो को बहुत अदेशा था । उनमें से एक ने हकीमजी के साथ बातचीत की और शारीरिक सरचना के बारे में उनसे कुछ प्रश्न पूछे और घोषणा कर दी कि उन्हें तो बिल्कुल कोई ज्ञान नहीं । कुछ दिना के लिए दद का न होना केवल सौभाग्यपूर्ण संयोग था, जो डाक्टरों का विश्वास था कि पित्त पथरी के स्थिति में बदल लेन के कारण नहीं हुआ था । परन्तु यह एक हकीमत थी कि उस दिन के बाद फिर कभी लालाजी को वह पीडा नहीं हुई ।

रोग चाहे कही भी था, हकीमजी ने उसका उपचार कर दिया था । प्राय एक रात में ही नवीना साहिब पजाबभर में करामाती के तौर पर प्रसिद्ध हो गए और शीघ्र ही अनेक लोग दिल्ली में उनके दवाखान पर पहुंचने शुरू हो गए । कई वर्ष तक उनकी यह जोरदार ख्याति बनी रही । जब कभी भी लालाजी आभार के तौर पर हकीमजी के पास कुछ उपहार लेकर जाते, तो वह विरोध करते हुए बहा करते थे "क्या मुझे पहले ही काफी सिला नहीं मिल गया है कि मेरा नाम हजारा लोगो में प्रसिद्ध हो गया है उनमें जिन्हान मेरा नाम नहीं सुना था ।"

55. बंगाल की संधि

कुछ समय बाद यह सुझाव दिया गया कि सभवत सागर नट लालाजी के स्वास्थ्य के लिए ठीक रहे, खुश तथा स्वास्थ्यवधक होने के नाते कराची का चयन किया गया। वहा वह कुछ समय के लिए जमवत राय के अतिथि रहे जो 'द पजाबी के घाद के दिना से वहा बस गये थे और बहुत ही सफल व्यापारी के रूप में सफलता प्राप्त की थी। 8 दिसंबर 1924 को लालाजी को कराची में मोतीलाल नेहरू का एक तार मिला "अबुल कलाम आज़ाद का महत्वपूर्ण मशविरा करने का प्रस्ताव है, यदि स्वास्थ्य आज्ञा दे, तो 11 जनवरी को दिल्ली पहुंचें—नेहरू"। इसके बाद पण्डितजी का एक और तार मिला "12 का लाहौर पहुंच सकते हो, दास को तार दे रहा हूँ।"

वे विचारों के आदान प्रदान के लिए लाहौर में मिले। इस बात की आवश्यकता इस मामूली भी आशा के कारण हुई थी कि शायद लालाजी आगामी कांग्रेस अधिवेशन में भाग ले सकें।

कुछ दिनों के बाद वह फिर सिंध के लिए रवाना हो गये, ताकि कराची में स्वास्थ्य लाभ कर सकें। कुछ दिनों के लिए वह हदराबाद रुके। पिछली यात्रा के दौरान उन्होंने जैरामदास दौलतराम और चोपथराम गिडवानी तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ बातचीत की थी, जो मुख्य तौर पर दंगों से उत्पन्न स्थिति तथा उसके बाद समाधान का कोई सिधधान्त खोजने के बारे में थी। लालाजी ने देखा कि हैदराबाद के मित्त उनका दृष्टिकोण सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे। कराची के लिए दूसरी बार रवाना होने से पूर्व लालाजी को लाहौर में जैरामदास से पत्र तथा तार मिले थे, जिसमें अनुरोध किया गया था कि वह काकीनाडा अवश्य पहुंचें विशेषकर प्रस्तावित हिन्दू-मुस्लिम सम्मेलन के लिए। 'डाक्टर चोपथराम और मैं आपसे निवेदन करते हैं कि 22 तारीख से पहले हिन्दू कांग्रेसजनों की एक बैठक का आयोजन करे, यदि 22 तारीख की हिन्दू मुस्लिम बैठक स्थगित नहीं की जा सकती।' और इस पत्र के बाद तार दिया गया, जिसमें कहा गया था "चोपथराम और मैं आपसे अपील करते हैं कि काकीनाडा में अवश्य भाग लें नहीं तो हिन्दू मुस्लिम प्रश्न बिगड़ जाएगा।"

कावीनाडा जान का इरादा न हान के कारण, उन्होंने इन मित्रा के साथ उनके कारेम की बैठवा म भाग लेन के लिए रवाना हान से पूव हँदरावाद मे भेंट की । उन्हें कामकर्ताआ की यह टाली बहुत अच्छी लगी । विशेषकर वह जयरामदास से उनकी बफादारी, निष्ठा और काम करन के सुव्यवस्थित ढग से बहुत प्रभावित हुए । सानाजी न जयरामदास तथा अय मित्रा के साथ ताजा राजनीतिक स्थिति के बारे म विचार विमर्श किया, विशेषकर अपने तथा उनके प्रान की समस्याआ के बारे म । इस बार्तालाप क बीच म भारतीय इतिहास के बारे मे भी बातचीत हाती रही । उन्होंने स्मरण किया कि कारावास के दौरान भारतीय इतिहास की पुस्तक लिखते समय उन्होंने भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण के कुछ ब्योरे प्राप्त करन चाह के और उन्हें चाचनामा की प्रति नहीं मिल पाई थी । वह चाचनामा का पूण विवरण पढना चाहते थे । इस स्रोत पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद अब छप नहीं रहा था, उसकी प्रति उन्हें तुरत प्राप्त न हो पाई, परन्तु उन्होंने इब्रार किया कि वह प्रति प्राप्त करने का प्रयत्न करेगे । बाद म उह इमकी प्रति मिल गई और वह उन्होंने लालाजी के पास पढवा दी ।

कावीनाडा आन के लिए सभी प्रलोभना के बावजूद वह कराची म ही रहे । परन्तु जब कारेम अधिवेशन आरम्भ हुआ ता के उमके समाचार सुनन के बारे मे अधीर हा उठे । नोपहर बाद वह गाडी पर घूमने तथा क्लिपटन के साथ सर परत निकल जात । रास्त म वह एक समाचार-पत्र के कार्यालय के बाहर ताजा समाचार जानन के लिए कार रोक लेत । सम्पादक खुलकर मुस्कराता हुआ बाहर निकल आता और जब वह वाई समाचार पूछत, तो फिर खाली मुस्करा देता और आखिरकार कह देता कि कोई विशेष समाचार नहीं है । ऐसा सिलसिला कई दिन चलता रहा और अत मे हम पता चला कि शिष्टता के कारण वह हम स्पष्ट तौर पर यह नहीं बता पा रहे थे कि उनके समाचार पत्र के पास समाचार सेवा की कोई व्यवस्था नहीं है और उसे स्वयं दिन के समाचारो के लिए सायनाल प्रकाशित हान वाले समाचार पत्रों की प्रतीक्षा करनी पडती है । मे उन दिनों कराची मे लालाजी के साथ था तथा शेष यात्रा मे भी उनके साथ रहा और शाम को साथ ही घूमने जाता था ।

फिर भी, लालाजी के लिए कुछ महत्वपूर्ण समाचार उनके कराची म ठहरन के समय प्राप्त हुए । इनमे से तीन महत्वपूर्ण थे । एक कामेस अधिवेशन

55. बंगाल की सधि

कुछ समय बाद यह सुझाव दिया गया कि सम्भवतः सागर नट लालाजी के स्वास्थ्य के लिए ठीक रहे, खुश तथा स्वास्थ्यवधक होने के नाते कराची का चयन किया गया। वहाँ वह कुछ समय के लिए जमवत राय के अतिथि रहे जो 'द पंजाबी' के बाद के दिनों में वहाँ बस गये थे और बहुत ही सफल व्यापारी के रूप में सफलता प्राप्त की थी। 8 दिसंबर 1924 को लालाजी को कराची में मातीलाल नेहरू का एक तार मिला "अनुसु बलाम आज़ाद का महत्वपूर्ण मशविरा करने का प्रस्ताव है, यदि स्वास्थ्यय आज़ा दे, तो 11 जनवरी को दिल्ली पहुँचें—नेहरू"। इसके बाद पण्डितजी का एक और तार मिला "12 को लाहौर पहुँच सकते हो, दास का तार दे रहा है।"

यह विचारा के आदान प्रदान के लिए लाहौर में मिले। इस बात की आवश्यकता इस मामूली सी आशा के कारण हुई थी कि शायद लालाजी आगामी कायम अधिवेशन में भाग ले सकें।

कुछ दिनों के बाद वह फिर सिंध के लिए रवाना हो गये, ताकि कराची में स्वास्थ्य लाभ कर सकें। कुछ दिनों के लिए वह हैदराबाद रुके। पिछली यात्रा के दौरान उन्होंने जैरामदाम दौलतराम और चोयपराम गिडवानी तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ बातचीत की थी, जहाँ मुख्य तौर पर दंगा में उत्पन्न स्थिति तथा उसके बाद समाधान का कोई सिद्धान्त खोजने के बारे में थी। लालाजी ने देखा कि 'हैदराबाद' के मित्त उनका दृष्टिकोण सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे। कराची के लिए दूसरी बार रवाना होने में पूर्व लालाजी को लाहौर में जयामदास से पत्र तथा तार मिले थे, जिसमें अनुरोध किया गया था कि वह काकीनाडा अवश्य पहुँचें, विशेषकर प्रस्तावित हिन्दू-मुस्लिम सम्मेलन के लिए। 'डॉक्टर चोयपराम और मैं आपसे निवेदन करते हैं कि 22 तारीख से पहले हिन्दू कांग्रेसजनों की एक बैठक का आयोजन कर, यदि 22 तारीख की हिन्दू मुस्लिम बैठक स्वयंजित नहीं की जा सकती। और इस पत्र के बाद तार दिया गया, जिसमें कहा गया था "चोयपराम और मैं आपसे अपील करते हैं कि काकीनाडा में अवश्य भाग लें नहीं तो हिन्दू मुस्लिम प्रश्न बिगड़ जाएगा।"

काकीनाटा जान का इरादा न हान के कारण, उन्होंने इन मित्रों के साथ उनके कांग्रेस की बैठक में भाग लेने के लिए खाना हान से पूव हँदराबाद में भेंट की। उन्हें कायवर्ताआ की यह टोली बहुत अच्छी लगी। विशेषकर वह जयरामदास से उनकी वफादारी, निष्ठा और काम करने के सुव्यवस्थित ढंग से बहुत प्रभावित हुए। लालाजी ने जयरामदास तथा अय मित्रों के साथ ताजा राजनीतिक स्थिति के बारे में विचार विमर्श किया, विशेषकर अपने तथा उनके प्रांत की समस्याओं के बारे में। इस वार्तालाप के बीच में भारतीय इतिहास के बारे में भी बातचीत होती रही। उन्होंने स्मरण किया कि काराबास के दौरान भारतीय इतिहास की पुस्तक लिखते समय उन्होंने भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण के कुछ म्योर प्राप्त करने चाहे थे और उन्हें चाचनामा की प्रति नहीं मिल पाई थी। वह चाचनामा का पूरा विवरण पढ़ना चाहते थे। इस खाल पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद अब छप नहीं रहा था, उसकी प्रति उन्हें तुरंत प्राप्त न हो पाई परन्तु उन्होंने इत्दार किया कि वह प्रति प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। बाद में उह हमकी प्रति मिल गई और वह उहाने लालाजी के पास पहुँचा दी।

काकीनाटा आने के लिए सभी प्रलाभनों के वायजूद वह कराची में ही रहे। परन्तु जब कांग्रेस अधिवेशन आरम्भ हुआ, तो वे उसमें समाचार सुनने के बारे में अधीर हो उठे। दोपहर बाद वह गाड़ी पर घूमने तथा निलपटन के साथ नैर करने निकल जाते। रास्ते में वह एक समाचार पत्र के कार्यालय के बाहर ताजा समाचार जानने के लिए कार रोक लेते। सम्पादक खुलकर मुस्कराता हुआ बाहर निकल आता और जब वह कोई समाचार पूछते, तो फिर खाली मुस्कराता और आखिरकार कह देता कि कोई विशेष समाचार नहीं है। ऐसा सिलसिला कई दिन चलता रहा और अंत में हमें पता चला कि शिष्टता के कारण वह हम स्पष्ट तौर पर यह नहीं बता पा रहे थे कि उनके समाचार पत्र के पास समाचार सेवा की कोई व्यवस्था नहीं है और उसे स्वयं दिन के समाचारों के लिए सायकल प्रवाहित हान वाले समाचार पत्रों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ये उन दिनों कराची में लालाजी के साथ था तथा शेष यात्रा में भी उनके साथ रहा और शाम को साथ ही घूमने जाता था।

फिर भी लालाजी के लिए कुछ महत्वपूर्ण समाचार उनके कराची में ठहरने के समय प्राप्त हुए। इनमें से तीन महत्वपूर्ण थे। एक कांग्रेस अधिवेशन

से पहले वा, दूसरा कांग्रेस अधिवेशन के दौरान का तथा तीसरा उससे तुरत बाद का ।

इनमें से पहला समाचार बंगाल की सधि का था जो सी० आर० दाम ने बंगाल की राजनीति में मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए की थी । लालाजी का यह समाचार मुनकर धक्का लगा । उन्हें सधि की कुछ घाटाएँ बिल्कुल पसंद नहीं थी । उनका यह पक्का विचार था कि बंगाल के लिए अलग सधि करना दूरदर्शिता की बात नहीं थी, विशेषकर उस समय, जब राष्ट्रीय-सधि के प्रश्न पर बातचीत हो रही थी । क्योंकि राष्ट्रीय सधि समिति ने, जिसके लालाजी भी सदस्य थे, एक मसौदा तैयार किया था, जिस पर काकीनाडा के विचार किया जाना था । बंगाल के लिए सधि न एक प्रकार से राष्ट्रीय सधि को डबा दिया था । दो विरोधी मसौदों देखकर काकीनाडा अधिवेशन ने अपनी स्वीकृति रोक ली और केवल उन्हें प्रचारित कर दिया ।

लालाजी के लिए अधिक गंभीर बात यह नहीं थी कि मोर्चों के गुण क्या थे या किन अवसर पर उसे पाम किया गया था, बल्कि अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि दास ने उन्हें जान-बूझकर इस मामले से अपरिचित रखा था और इस घटना की सूचना उन्हें केवल समाचार पत्रों से ही मिली थी, जबकि स्वयं उन्हें (लालाजी को) यह विश्वास था कि वह आपस में बहुत निकट सलाह से कार्य कर रहे थे । कई अर्थ लागो की तरह लालाजी को संदेह था कि इस समझौते में बातचीत के लिए मौलाना अबुल कलाम आजाद का बहुत बड़ा हाथ था । यह केवल निष्कर्ष था, जो आज प्रायः सत्य सिद्ध हो चुका है क्योंकि मौलाना ने इस समझौते के लिए दाम की राजनीति बुद्धि की भरपूर प्रशंसा की थी । यदि गलतफहमी सही सिद्ध हुई तो यह बहुत गंभीर बात थी, क्योंकि अबुल कलाम आजाद लालाजी के साथ बिल्कुल अलग सधि पर बातचीत कर रहे थे और उन्होंने दाम से सधि की, जिसे अब उचित बताया, निश्चित रूप में निंदा की थी । यह पक्की बात थी कि अबुल कलाम कलकत्ता में थे, तो क्या दाम कलकत्ता के मुसलमानों के साथ सधि करने समय उनकी पूरी उपस्था कर सकते थे ? कुछ भी हो, दाम लालाजी के छोड़ी देर के लिए कलकत्ता में मिले थे और यद्यपि उन्होंने हिन्दू मुस्लिम प्रश्न पर काफी बातचीत की थी, फिर भी उन्होंने ऐसा कोई मसौदा नहीं दिया था कि कोई स्थानीय सधि होने वाली थी । यदि इस सधि का विचार उनकी बातचीत में बाद आया था, तो दाम का यह पूरी

पूरी जानकारी थी कि लालाजी एक राष्ट्रीय सधि के धारे में कायरत हैं और यह कम मे-कम इतना तो कर सकने थे कि लालाजी को बता देते कि म्यानीय आपा-स्थितियाँ के कारण वह मजबूर हो गया है। दास न ता इतनी मामूली शिष्टता भी नहीं की थी।

सधि होने में अबुल कलाम का हाथ रहा हा या नहीं, यदि उनका हाथ था तो यह उचित बात नहीं थी। परन्तु जो दास ने किया था, उसमें लालाजी को व्यक्तिगत रूप में शक्यतः पहुँचा था। यह बात मंत्री तथा कफादारी के उद्देश्य अपने उमूला के विरुद्ध विरुद्ध थी और फिर दास ता इतन प्यारे मित्र थे। अपने राजनीतिक जीवन में उनके निकटतम संबंध महाराष्ट्र और बंगाल के राष्ट्रवादिता के साथ रहे। जब देश से लम्बी अनुपस्थिति के बाद लालाजी ने राजनीतिक कार्य बलकत्ता के विशेष अधिवेशन से ही फिर से आरम्भ किया था, दास उस समय बंगाल के राष्ट्रवादिता के प्रमुख थे और वह तथा महाराष्ट्र के गुट इकट्ठे थे। बलकत्ता में गांधीजी, लालाजी या दास को परिवर्तित नहीं कर पाए थे। शोना ही नागपुर अधिवेशन तक डटे रहे थे और फिर दोनों ने ही गांधीजी के साथ समझौता कर लिया था। जेल में होते हुए दोनों ने असहयोग के शब्दवादी कार्यक्रम के खिलाफ विद्रोह आरम्भ कर दिया था, दास पहले रिहा हो गये थे और उन्होंने खुलेआम विद्रोह आरम्भ कर दिया था, लालाजी ने जेल कोठरी से बड़ी प्रसन्नता से उन्हें सहायता दिया था। रिहाई से लेकर अब तक वह सोचते रहे थे कि दास, मोतीलाल नहीं तथा स्वयं व बहुत निकटतम सम्पर्क से कार्य कर रहे थे। नेहरू से भी वही अधिक उन्हें दास से लगाव था, क्योंकि वह बंगाल के साथ लालाजी के पुराने बहुमूल्य संबंध के प्रतीक थे और जो गांधीवादी असहयोग की तथा उससे दूर जाने के राजनीतिक चक्कर में उनके इतने निकट थे—इलाहाबाद के पण्डितजी से बहुत निकट, जिन्होंने बलकत्ता में ही असहयोग का स्वीकार कर लिया था, जबकि दास और लालाजी ने उसके बाद ऐसा किया था और जो परिपदों के कार्यक्रम के साथ उन शोना के बाद सहमत भी हुए।

लालाजी ने यह स्मरण भी किया कि दास न उनके गुप्त पत्र, जो उन्होंने जेल से भेजे थे प्रचारित करके उनके साथ न्याय नहीं किया। उनमें से एक पत्र में उन्होंने बहुत ही स्पष्ट ढंग से दास के सामने वे सदेह रख दिए थे, जो खाहीर केन्द्रीय जेल में कुछ मुस्लिम मित्रों के साथ बातचीत के दौरान उनके मन में

उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यह पत्र केवल दास के लिए था फिर भी लालाजी को पता चला था कि दाम न इस पत्र को इस प्रकार नहीं रखा था।

बुद्ध समय पूर्व बम्बई के श्रमिक नेता जासफ वैपतिस्ता न, जा बहुत लज्जवान थे, एक चुटकुला बनाया था कि इतिहास का यह निणय होगा कि "दामवादी गधे थे" (दासिज वर ऐसेज)। अब लालाजी को यह चुटकुला आधी निराशा तथा आधी हसी में पाद आया और कई दिन उठे यह चुटकुला अपने आपसे दोहरत सुना गया। "सन्धि" १ उनके मन पर बहुत ब्राम डाला, यद्यपि वह यह कहने में स्वतंत्र थे कि इसमें उन्हें हैरानी हुई और वह इसे स्वीकार नहीं करत, फिर भी वह अपनी भावनाओं का स्वतंत्रता से व्यक्त न कर पाए। जहा सी० आर० दाम का सबध होता, वह मशक से काम लेते।

कांग्रेस अधिवेशन की जिस बात ने लालाजी का आश्चर्य में डाला, वह अध्यक्ष पद से मुहम्मद अली का यह निर्भीक प्रस्ताव था कि "अछूता" का हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विभाजन कर दिया जाए—और यह भी एकता के लिए योगदान तथा उनको बढावा देने के लिए था। स्वाभाविक ही इससे लालाजी अशांत हुए। इसलिए एक दिन प्रात उठते ही उठ्ठार पवित्र दिन के अवसर पर प्रतिज्ञा के तौर पर घोषणा की—हरअसल यह गुरु गोविन्दसिंहजी का जन्म दिन था— कि वह देश से अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाएंगे। उठ्ठान इस प्रतिज्ञा की पुष्ट भूमि तथा तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए मुझे एक काफी सम्मान पत्र दिया, ताकि मैं उसे समाचार-पत्रों के लिए तार के रूप में संक्षिप्त कर सकूँ और साथ ही यह भी कहा कि इसने पत्रकारिता के काम के द्वार में मेरी रुचि का भी पता चम जायगा (क्योंकि वह पहले ही मुझे पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने के लिए निणय कर चुके थे)। वह एक वय में स्वराज्य दिलाने का वायदा तो नहीं कर सकते थे, परंतु बारह मास में अस्पृश्यता काफी हद तक दूर की जा सकती है। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम तो पीछे रह गया था और अब वह "रचनात्मक कार्य" में जुट रहे थे और उनके वचनानुसार विश्व विद्यालय प्रतीक्षा कर सकते हैं।

तीन समाचारों में से सबसे प्रमुख को मिला और सहज में यह सबसे बड़ा या यशदा जेल में महात्माजी

13 जनवरी

अस्पताल, पुणे में बनल मडाक का उनका आपरेशन करना पडा था । शीघ्र ही घोषणा की गई कि आपरेशन मफल रहा है, परन्तु इससे चिन्ता समाप्त नहीं हुई । लालाजी ने पुणे जाने का निणय कर लिया और हमन बम्बई के लिए जहाज पकड लिया ।

इन बातों के कारण उन पर पडने वाले बोझ के धावजद कराची में उनका ठहरना उनके स्वास्थ्य के लिए निश्चिन रूप से अच्छा रहा था । जब उनका मन चाहना था वह कुछ लिख-पड लेते थे या अपनी चिटठी-पत्री को देख लेते थे परन्तु अधिक बात का काय नहीं करते थे । जलवायु बल देने वाली थी मौसम बढ़िया और बलान के लिए क्लिफ्टन गाडी, बहुत बढ़िया सडक तथा मागर तट एक मनोहर स्थान था । सबसे बढ़िया बात यह थी कि दशक बहुत अधिक नहीं होत थे । कुछ-एक थे जा बार-बार आत थे, टी०ए०० वासवानी का छ डकर—जिनके साथ वह कभी-कभार गीता के बारे में विचारा का आदान-प्रदान कर लेते थे । एक अन्य सज्जन थे, जा शारीरिक शिक्षा में बहुत रुचि रखते थे । वह लालाजी को उनके स्वास्थ्य के बारे में कुछ मूत्र बताना चाहते थे और उन्होंने लालाजी का एक पेडोमीटर दिया था क्योंकि वह इस बात का महत्व देते थे कि दिन भर में उनकी टाया न कितना काय किया है । अपनी डच्छा से लालाजी कभी कभार जमगेद मेहना, अब्दुन्ना हार या हानिम अलवी से मिलने चले जात और कभी-कभार शाम को घूमने के लिए निकलने से पूब समृद्ध व्यापारियों, पञ्चायिया, सिधिया या मारवाडिया के पाम साक सेवा सध के लिए धन एकत्र करन चले जात थे । परन्तु भीड का सामना नहीं करना पडना था, रेवक्त आने वाले दशनाभिलाषिया की समस्या नहीं थी और कोई सावजनिक समारोह नहीं थे सिवाय उस विशाल उद्यान अभिनन्दन के, जा कराची के नागरिका की ओर से उनके सम्मान में दिया गया था ।

बम्बई में वह एक दिन ठहरे, कुछ मित्रों से मिले और पुणे के लिए रवाना हा गये । ए० सी० केलकर तथा केमरी गूट से सम्बद्ध उनके मित्रों ने बहुत मद्भावना तथा गरमजोशी के साथ उनका स्वागत किया, जा महाराष्ट्र के प्रति उनकी पुरानी मित्रता के कारण उचित ही था । उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता महात्मा गांधी को देखने की थी, इसलिए वह शीघ्रता से सासून अस्पताल पहुचे । रोगी ने भुस्तुरा कर उनका स्वागत किया । आधी चिन्ता तो इमी में समाप्त हो गई । निस्सदेह तब तक गभीर आशका का कारण समाप्त हा चुका था, मदमपि

उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यह पत्र केवल दाम के लिए था, फिर भी लालाजी का पता चला था कि दाम ने इस पत्र का इस प्रकार नहीं रखा था।

कुछ समय पूर्व बम्बई के श्रमिक नेता जासफ वैपतिस्ता ने, जो बहुत तज्जबान थे, एक चुटकुला बनाया था कि इतिहास का यह निणय होगा कि "दासवादो मधे थे" (दासिज वर एसेज)। अब लालाजी का यह चुटकुला आधी निराशा तथा आधी हसी में याद आया और कई दिन उन्हें यह चुटकुला अपन आपसे दोहराते सुना गया। 'सधि' में उनके मन पर बहुत बाध डाला, यद्यपि वह यह कहने में स्वतंत्र थे कि उससे उन्हें हैरानी हुई और वह इस स्वीकार नहीं करते, फिर भी वह अपनी भावनाओं का स्वतंत्रता से व्यक्त न कर पाए। जहाँ सी० आर० दास का सबध होता, वह सकोच से काम लेते।

कांग्रेस अधिवेशन की जिस वान में लालाजी का आश्रय में डाला, वह अध्यक्ष पद से मुहम्मद अली का यह निर्भोक् प्रस्ताव था कि "अछूतों" का हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विभाजन कर दिया जाए—और यह भी एकता के लिए योगदान तथा उमका बढ़ावा देने के लिए था। स्वाभाविक ही इससे लालाजी अशांत हुए। इसलिए एक दिन प्रात उठते ही उन्होंने पवित्र दिन के अवसर पर प्रतिज्ञा के तौर पर घोषणा की—वरअसल यह गुरु शीबिर्दानिहजी का जन्म दिन था— कि वह दश में अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाएंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञा की पृष्ठ भूमि तथा तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए मुझे एक काफी लम्बा पत्र दिया ताकि मैं उसे समाचार पत्रों के लिए तार के रूप में संक्षिप्त कर सकूँ और साथ ही यह भी कहा कि इसमें पत्रकारिता के काम के बारे में मेरी रुचि का भी पता चल जाएगा (क्योंकि वह पहले ही मुझे पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने के लिए निणय कर चुके थे)। वह एक वचन में स्वराज्य दिलाने का वायना ता गही कर सकत थे, परंतु बारह मास में अस्पृश्यता काफ़ी हद तक दूर की जा सकती है। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम ता पीछे रह गया था और अब वह "रचनात्मक कार्य" में जुट रहे थे और उनके कथनानुसार विरन विन्यालय प्रतीक्षा कर सकत है अछूत नहीं।

तीन समाचारों में से सबसे प्रमुख समाचार उन्हें कराची में 12 या 13 जनवरी को मिला और महज्ज में यह मसल अधिक चीका देन वाला था। यह समाचार था यस्वदा जेल में महात्माजी का अपदेमाइस्ट से रानी हान का। सामू

अस्पताल, पुणे में कनल मडाक को उनका आपरेशन करना पडा था । शीघ्र ही घोषणा की गई कि आपरेशन सफल रहा है, परंतु इससे चिन्ता समाप्त नहीं हुई । लालाजी ने पुणे जाने का निणय कर लिया और हमन बम्बई के लिए जहाज पकड लिया ।

इन बातों के कारण उन पर पडन वाले बोध के बावजूद, कराची में उनका ठहरना उनके स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूप से अच्छा रहा था । जब उनका मन चाहता था वह कुछ लिख-पढ लेते थे या अपनी चिट्ठी पत्री का देख लेते थे, परन्तु अधिब ब्राह्म का काय नहीं करते थे । जलवायु बल देने वाली थी, मौसम बढ़िया और चलाने के लिए क्लिफटन गाडी, बहुत बढ़िया सडक तथा सागर तट एक मनोहर स्थान था । सबसे बढ़िया बात यह थी कि 'दशक' बहुत अधिक नहीं होते थे । कुछ एक थे, जो बार बार आते थे, टी०एल० वासवानी का, छ डवर—जिनके साथ वह कभी-कभार गीता के बारे में विचारों का आदान-प्रदान कर लेते थे । एक अग्र सज्जन थे, जो शारीरिक शिक्षा में बहुत रुचि रखते थे । वह लालाजी को उनके स्वास्थ्य के बारे में कुछ सूझ बताना चाहते थे और उहाने लालाजी को एक पेडोमीटर दिया था, क्योंकि वह इस बात को महत्व देते थे कि दिन भर में उनकी टांगों ने कितना काय किया है । अपनी इच्छा से लालाजी कभी-कभार जमशेद मेहता, अब्दुस्ता हार या हातिम अलवी से मिलने चले जाते और कभी-कभार शाम को धूमने के लिए निकलने से पूर्व समुद्र व्यापारियों, पजाबियों, सिंधियों या मारवाडियों के पास लोक सेवा मघ के लिए धन एकत्र करने चले जाते थे । परन्तु भीड़ का सामना नहीं करना पडता था ब्रैवन्स आने वाले दशनाभिलाषियों की समस्या नहीं थी और कोई सावजनिक समाराह नहीं थे, सिवाय उस विशाल उद्यान अभिनन्दन के, जो कराची के नागरिकों की ओर से उनके सम्मान में दिया गया था ।

बम्बई में वह एक दिन ठहरे, कुछ मित्रों से मिले और पुणे के लिए रवाना हो गये । एन० सी० केलकर तथा केसरी गूट से सम्बद्ध उनके मित्रों ने बहुत मद्भावना तथा गरमजोशी के साथ उनका स्वागत किया, जो महाराष्ट्र के प्रति उनकी पुरानी मित्रता के कारण उचित ही था । उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता महात्मा गांधी को देखने की थी, इसलिए वह शीघ्रता से सासून अस्पताल पहुंचे । गेमी ने मुस्कुरा कर उनका स्वागत किया । आधी चिन्ता ता इमी से समाप्त हो गई । निस्संदेह तब तब गभीर आशका का कारण समाप्त हो चुका था, यद्यपि

उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यह पत्र केवल दास के निष्ठा था फिर भी लालाजी का पता चला था कि दास न इस पत्र को इस प्रकार नहीं रखा था।

कुछ समय पूर्व बम्बई के थर्मिक नेता जोसफ वैपतिस्ता ने, जो बहुत तज्ञ जवान थे, एक चुटकुला बनाया था कि इतिहास का यह निष्कर्ष होगा कि "दासवाद गद्य थे" (दासिज वर ऐसेज)। अब लालाजी का यह चुटकुला आधी निराशा तथा आधी हर्षी में याद आया और कई दिन उन्हें यह चुटकुला अपने आपसे दाहरते सुना गया। 'सधि' न उनके मन पर बहुत बान्न डाला, यद्यपि वह यह कहन म स्वतंत्र थे कि इससे उन्हें हैरानी हुई और वह इसे स्वीकार नहीं करत, फिर भी वह अपनी भावनाओं का स्वतंत्रता से व्यक्त न कर पाए। जहा सी० आर० दास का मवध होता, वह सकोच से काम लेत।

कांग्रेस अधिवेशन की जिस बात न लालाजी को आश्चर्य में डाला, वह अध्यक्ष पद से मुहम्मद अली का यह निर्भीक प्रस्ताव था कि "अछूतों" का हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विभाजन कर दिया जाए—और यह भी एकता के लिए योगदान तथा उसका बड़ावा देने के लिए था। रवाभाविक ही इससे लालाजी अशांत हुए। इसलिए एक दिन प्रात उठते ही उन्होंने पवित्र दिन के अवसर पर प्रतिज्ञा के तौर पर घोषणा की—दरअसल यह गुरु गोविन्दसिंहजी का जन्म दिन था— कि वह देश से अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाएंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञा की पृष्ठभूमि तथा तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए मुझे एक काफी लम्बा पत्र दिया ताकि मैं उसे समाचार पत्रों के लिए तार के रूप में संक्षिप्त कर सकूँ और साथ ही यह भी कहा कि इससे पत्रकारिता के काम के बारे में मेरी रुचि का भी पता चल जाएगा (क्योंकि वह पहले ही मुझे पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने के लिए निष्कर्ष कर चुके थे)। वह एक वषर में स्वराज्य दिग्गज का वायदा तो नहीं कर सकते थे, परंतु बारह मास में अस्पृश्यता काफी हद तक दूर की जा सकती है। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम तो पीछे रह गया था और अब वह "रचनात्मक कार्य" में जुट रहे थे और उनके कथनानुसार विश्व विद्यालय प्रतीक्षा कर सकते हैं अछूत नहीं।

तीन समाचारों में से सबसे प्रमुख समाचार उन्हें कराची में 12 या 13 जनवरी को मिला और महज म यह सबसे अधिक चौंका देने वाला था। यह समाचार था मरवदा जैन में महात्माजी का अपडेटाइटस स रोगों हान का। सामन

राणी का स्वास्थ्य कमज़ार था, फिर भी उसमें सतोपजनक ढंग से मुघार हा रहा था ।

लालाजी को पुणे आकर बहुत प्रसन्नता हुई और उन साहमी मित्रा का स्मरण हो आया जो अब नहीं थे और जिनकी मित्रता का उनके लिए बहुत महत्व था—लोकमाय तथा गोखले—1905 में पुणे की उनकी प्रथम यात्रा और शिवाजी की ऐतिहासिक स्मृतिया भी उनके मन में आ गई । सबसे सुखद समाचार जो उन्हें मिला वह था कि बेलकर साकमान्य निलन की जीवनी तैयार कर रहे हैं । मराठी की यह पुस्तक समस्त पूण जोवनी हा । वह बहुत प्रसन्नता तथा सुख महसूस कर रहे थे । निस्संदेह उन्होंने इस अवसर का नई समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श के लिए पूरा उपयोग किया । ये नई समस्याएँ गडबडी, हिंदू मुस्लिम एकता, अछूता के बारे में मुहम्मद अली का प्रस्ताव आदि थी । बातचीत में पुणे के मित्रों के अलावा, कुछ अन्य नेता भी, जिनमें कर्नाटक के गंगाधर राव देशपांडे भी थे, शामिल हुए । ये नेता महात्माजी की बीमारी के सबंध में वहाँ आए हुए थे ।

बम्बई लौटकर लालाजी ने कई पुराने मित्रों से भेंट की, जिनमें विठ्ठल भाई पटेल जीर आर० बी० लोटावाला भी थे । वह बालकेश्वर रोड पर सेठ हिंदूमल दानी के घर पर ठहरे, जहाँ पटेल पुणे जाने से पूर्व मिलने आए । बाद में वह पटेल के कार्यालय, आय भवन में (उनकी राजनीतिक गतिविधियों का कार्यालय) मिले, जो चौपाटी के निकट था । बातचीत के दौरान पटेल ने लालाजी को बाकीनाडा कांग्रेस अधिवेशन के बारे में अपने विचारों से अवगत कराया तथा उनसे यह भी पूछा कि बम्बई से अब वह कहा जाएँगे । लालाजी ने कहा कि फिलहाल उनका ध्यान कलकत्ता की ओर केंद्रित है, ताकि वह सी० आर० दास को यह बता सकें कि वह इस मधि वाले मामले को क्या समझते हैं । म उ हें चूम लूँगा और बता दूँगा कि वह गधे हैं और म उ हें फिर भी प्रेम करता हूँ ।” पटेल भी इस मधि को ठीक नहीं समझते थे, परन्तु जहाँ तक फट वार के तौर पर चूमन वाली बात थी उनके विचार में दाम उम प्रकार के व्यक्ति नहीं थे जा ऐसा करने को अच्छा समझे ।

कलकत्ता जात हुए लालाजी नागपुर में ठहरे जहाँ उन्होंने बरिस्टर देशमुख भेंट की और उन्हें अग्यवर से मिलने का अवसर भी मिला—समस्त मुजे

भी वहाँ आ गये थे—इस प्रकार पुणे और नागपुर के बीच उन्होंने महाराष्ट्र के प्रायः सभी बड़े नताबा से मुलाकात कर ली और उनसे स्वयं स्पष्ट तौर पर विचारों का आदान प्रदान कर लिया ।

आखिरकार वह बलवत्ता पहुँच गये ।

जब वह रुसा रोड पर विशाल भवन की सीढियाँ चढ़े, जिनकी लाना आर हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ ताका तथा अन्य उच्चिन्म स्थानों पर सजाई हुई थी, उन्हें वापतिस्ता की गुस्ताखीपूर्ण बात अवश्य याद आई होगी, जो इतिहास के निणय के बारे में थी, उन्हें दाम को चुमने और उन्हें यह कहने की कि वह गधे हैं और वह फिर भी उन्हें चाहते हैं, अपनी इच्छा का स्मरण भी हुआ होगा और उनके साथ ही विद्वान भाई पटेल की चेतावनी भी, जो इस विषय में अन्तिम मन्ना के समान थी ।

जिस विशाल कमरे में वह बातचीत के लिए बठे, वहाँ योजना के अनुसार बातें होती दिखाई न दी । जारभ में बातचीत का माहौल बहुत ही भावहीन था, जिसमें लालाजी का अपने मन की बात बिना नाराजगी पैदा किए कहना कठिन दिखाई दे रहा था । औपचारिक अभिवादन के पश्चात् दास ने लालाजी से उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा । फिर लालाजी ने दास से पूछा कि उनका पुत्र कहाँ था, क्या कर रहा था और उसकी योजनाएँ क्या थी । दास ने सरमरी तौर में उत्तर दिये और बहुत ही घृणापूर्वक बताया कि बिहार के मकान के अतिरिक्त (जहाँ उनका पुत्र था), उसकी योजनाएँ क्या थी ? यानी कुछ नहीं और — उनकी जामदाद केवल रुसा रोड का यह मकान रह गया है और वह कह नहीं सकते कि यह कर उनसे कर्जों की अदायगी के लिए छिन जाएगा । इस समय दास इतने उदास थे जितना कोई भी नहीं हो सकता था, क्योंकि अपनी सम्पत्ति समाप्त होने पर दशवधु के अलावा और नौन इस प्रकार चिन्तारहित ही मक्ता था ?

जब वह लालाजी का अपने मामला के बारे में बता चुके, दास ने भी लालाजी से उसी प्रकार व प्रश्न पूछे—घरेलू किस्म के । फिर दाना आर चुप्पी छा गई । जब इस चुप्पी का तोड़ना ही पड़ा, तो दास ने एक ही घमावे से इसे ताड़ा ।

दाम 'बताइए, आपके मन में मेरे विरुद्ध क्या है?'

लालाजी 'अधिकतर उस ढंग के विरुद्ध जैसा आपन किया है ।

रागी वा स्वास्थ्य कमजोर था, फिर भी उसमें सतोपजाव ढंग से मुधार हा रहा था ।

सालाजी को पुणे आकर बहुत प्रमत्तता हुई और उन माहसी मित्रा का स्मरण हा आया जो अब नही थे और जिनकी मित्रता का उनके लिए बहुत महत्व था—साकमाय तथा गोखले—1905 में पुणे की उनकी प्रथम यात्रा और कुछ समय बाद लाहौर में गोखले का उनका अर्निर्णय होना तथा सिंहगढ और गिवाजी की ऐतिहासिक स्मृतिया भी उनके मन में आ गई । सबसे सुखद समाचार जा उह मिला वह था कि बेलकर साजमान्य तिलक की जीवनी तयार कर रहे ह । मराठी की यह पुस्तक सम्भवत पूण जीवनी हा । वह बहुत प्रमत्त तथा सुख महसूस कर रहे थे । निस्संदह उन्हान इस अवसर का नई सम्म्याभा के बारे में विचार-विमर्श के लिए पूरा उपयोग किया । ये नई सम्म्याए गडबडी, हिंदू मुस्लिम एकता, अछतो के बारे में मुहम्मद अली का प्रस्ताव आदि थी । बातचीत में पुणे के मित्रा के अलावा, कुछ अन्य नेता भी, जिनमें कर्नाटक के गंगाधर राव देशपांडे भी थे, शामिल हुए । ये गता महात्माजी की बीमारी के संबंध में चर्चा आए हुए थे ।

बम्बई लौटकर सालाजी ने कई पुरान मित्रों में भट की, जिनमें विठ्ठल भाई पटेल जीर आर० बी० लोटाबाला भी थे । वह बालकेशवर रोड पर सेठ हिंदूमल दानी के घर पर ठहरे, जहा पटेल पुणे जान से पूव मिलन आए । बाद में वह पटेल के कार्यालय, आर्य भवन में (उनकी राजनीतिक गतिविधियों का कार्यालय) मिले, जो चौपाटी के निकट था । बातचीत के दौरान पटेल ने सालाजी का कार्कीनाडा कांग्रेस अधिवेशन के बारे में अपने विचारों से अवगत कराया तथा उनसे यह भी पूछा कि बम्बई से अब वह कहा जाएंगे । सालाजी ने कहा कि विलहाल उनका ध्यान कलकत्ता की ओर केंद्रित है ताकि वह सी० आर० दाम का यह बता सकें कि वह इस संधि बाने मामले का क्या समझते हैं । 'म उ हें चूम लगा और बता दूंगा कि वह गधे हैं और मैं उ हें फिर भी प्रेम करता हूँ ।' पटेल भी इस संधि का ठीक नही समझते थे, परन्तु जहा तक फटकार के तौर पर चूमन वाली बात थी, उनके विचार में दाम उम प्रकार के व्यक्ति नही थे, जा ऐसा करने को अच्छा समझे ।

कलकत्ता जाते हुए सालाजी नागपुर में ठहर, जहा उन्हान बरिस्टर लामाख भेट की और उन्हें अम्बर से मिलन का अवसर भी मिला—सम्भवत मुझे

भी वहा आ गये थे—इस प्रकार पुणे और नागपुर के बीच उहाने महाराष्ट्र के प्राय सभी बड़े नेतावा से मुलाकात कर ली और उनसे स्वय स्पष्ट तौर पर विचारा का आदान-प्रदान कर लिया ।

आखिरवार वह कलकत्ता पहुच गय ।

जब वह रसा रोड पर विशाल भवन की सीढिया चढे जिनकी दाना ओर हिन्दू दर्वा-दशताआ की मूर्तिया ताका तथा अय उचित स्थानो पर सजाई हुई थी, उहें वाप्तिस्ता की गुस्ताखीपूण बात अवश्य याद आई हागी, जा इतिहाम के निणय के बारे म थी, उहें दास का चूमने और उहें यह कहने की कि वह गधे हैं और वह फिर भी उ हे चाहते है, अपनी इच्छा का स्मरण भी हुआ होगा और उनके साथ ही विट्ठल भाई पटेल की चेतावनी भी, जो इस विषय मे अन्तिम शब्दा के समान थी ।

जिस विशाल कमरे मे वह बातचीत के लिए बठे, वहा याजना के अनुमार बातें होती दिखाई न दी । आरभ मे बातचीत का माहौल बहुत ही भावहीन था जिसमे लालाजी का अपने मन की बात बिना नाराजगी पदा किए कहना कठिन दिखाई द रहा था । औपचारिक अभिवादन के पश्चात् दास न लालाजी स उनके स्वाम्य्य के बारे मे पूछा । फिर लालाजी न दास से पूछा कि उनका पुत्र कहा था, क्या कर रहा था और उसकी योजनाए क्या थी । दास न सरसरी तौर मे उत्तर दिये और बहुत ही घणापूर्वक बताया कि बिहार के मकान के अतिरिक्त (जहा उनका पुत्र था), उसकी योजनाए क्या थी ? यानी कुछ नहीं और — उनकी जायदाद केवल रसा रोड का यह मकान रह गया है और वह कह नहीं सकने कि यह सब उनसे कर्जा की अदायगी के लिए छिन जाएगा । इस समय दाम इतने उदास थे, जितना कोई भी नहीं हो सकता था, क्योंकि अपनी सम्पत्ति समाप्त हाने पर दशवधु के अलावा और कौन इम प्रकार चिन्तारहित हो सकता था ?

जब वह लालाजी को अपन मामलो के बारे म बता चुके, दास ने भी लालाजी से उसी प्रकार न प्रश्न पूछे—घरेलू विस्म के । फिर दानो ओर चुप्पी छा गई । जब इस चुप्पी को तोडना ही पडा, तो दास न एक ही धमार्ने से इमे तोडा ।

दाम "बताइए, आपके मन मे भेरे विरुध क्या है?"

लालाजी 'अधिकतर उस ढग के विरुध जैसा आपन किया है ।

दिल्ली में निवास के दौरान उन्हें हकीम अजमल खा और डाक्टर एम० ए० असारी के साथ हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बिगड़ रहे सबघों के बारे में बातचीत करने का अवसर भी मिला ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए सागर किनारे निवास और उसके पश्चात कई प्रातों में धुमकड़पन, जो पुणे की तुरत यात्रा में आरम्भ होकर दिल्ली तथा लाहौर में समाप्त हुआ, काफी लाभकारी रहा । शायद हममें उन्हें असहयोग आन्दोलन के अमफल हान के पश्चात देश का झूठ अच्छी तरह जान सफने का अवसर मिला गया हो काकीनाडा अधिवेशन में भाग लेने में शायद इतना न मिला पाता । हमसे उनकी काय की प्रथम प्राथमिकता भी तय हो गई—वह थी 'अच्छत उद्धार', जो वाम उन्हें निवृत्तम भविष्य में करना था ।

वर्तमान लेखक इस महत्वपूर्ण यात्रा में राजाजी के साथ था लाहौर में मिथ तथा वापस लाहौर तक ।

56. छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत के विरुद्ध अभियान की कल्पना 1923 के अंत में हुई और इसका तुरंत कारण वह अयायपूर्ण प्रस्ताव था, जो मुहम्मद अली ने अपने अध्यक्षीय भाषण में काफीनाडा-अधिवेशन में किया था कि अछूतों को हिन्दू तथा मुसलमान प्रचारक संगठना के बीच विभाजित कर दिया जाए। यह सुझाव असल में एक समृद्ध मुसलमान ने दिया था जो इस क्षेत्र में इस्लाम के काय के लिए काफी धन देने को तैयार था। इस विचार की सूचना कांग्रेस का उसके मुसलमान अध्यक्ष ने इस प्रस्ताव के रूप में दी थी कि इससे टवराव के एक प्रभावी कारण का अंत होगा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि वह अनाम, अमीर, मुसलमान, दानशील व्यक्ति महामहिम आगा खां थे, जिनका धन तथा जन असन में पहले ही हिन्दू धर्म में मत परिवर्तन के लिए काफी हस्तक्षेप कर रहे थे।

जुगत विश्वोर विरमा द्वारा पांच हजार रुपये महीना देन की वदान्यता ने लालाजी का तुरंत धन भागने से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और उन्होंने पंजाब में काम के लिए सीधे ही अछूत उद्धार समिति नियुक्त कर दी जिसमें मनातनी व्यक्ति रूडि विरुद्ध व्यक्तियों के साथ सहयोग कर सकते थे। लालाजी ने एक अखिल भारतीय समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वह स्वयं ही थे। इस समिति का मुख्यालय, सन्धी मंडी दिल्ली में था। लोक सेवा सभ के सदस्य (जिनकी शाखाओं की संख्या, नई शाखाओं समेत 12 में अधिक हो गई थी) सार-के-सार अछूत उद्धार के लिए पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में फैल गए। इन सभों के अधीन पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की संख्या एक समय पर लगभग एक सौ हो गई थी। यह कार्य अधिकतर पंजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक सीमित था, परन्तु लोक सेवा सभ के केंद्र तो इन क्षेत्रों से बाहर भी थे। इस क्षेत्र में लालाजी द्वारा पहले किए गए कार्य की एक निशानी रावी के निकट भूमि का एक टुकड़ा था, जो शाहदरा रेलवे स्टेशन से अधिक दूर नहीं था और बारहदरी के निकट था। उन्होंने यह भूमि एक बस्ती बसान के लिए खरीदी थी, जहां

दिल्ली में निवास के दौरान उन्हें हकीम अजमल खा और डाक्टर एम० ए० असारी के साथ हिंदुओं और मुसलमानों के बीच रिगड़ रह संबंधों के बारे में बातचीत करने का अवसर भी मिला ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए सागर किनारे निवास और उसके पश्चात् कई प्रातः में घुमकड़पन, जो पुणे की तुरन्त यात्रा से आरम्भ होकर दिल्ली तथा लाहौर में समाप्त हुआ, काफी लाभकारी रहा । शायद इसमें उन्हें असहयोग आन्दोलन के अमफल होने के पश्चात् देश का मूठ अच्छी तरह जान सकने का अवसर मिल गया है। काकीनाडा अधिवेशन में भाग देने से शायद इतना न मिल पाता । इससे उनकी कार्य की प्रथम प्राथमिकता भी तय हो गई—वह थी 'अच्छूत उद्धार' जो काम उन्हें निवृत्तम भविष्य में करना था ।

वर्तमान लेखक इस महत्वपूर्ण यात्रा में लालाजी के साथ था लाहौर में मिथ तथा वापस लाहौर तक ।

56. छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत के विरुद्ध अभियान की रूपरेखा 1923 के अंत में हुई और इसका तुरंत कारण वह आयायपूर्ण प्रस्ताव था जो मुहम्मद अली ने अपने अध्यक्षीय भाषण में काशीनादा-अधिवेशन में किया था कि अछूतों का हिन्दू तथा मुसलमान प्रचारक संघटना के बीच विभाजित कर दिया जाए। यह सुझाव असल में एक गममुद्ग मुसलमान ने दिया था, जो इस क्षेत्र में इस्लाम का काय के लिए काफी धन देने का तैयार था। इस विचार की सूचना कांग्रेस का उसने मुसलमान अध्यक्ष ने इस प्रस्ताव के रूप में दी थी कि इससे टकराव का एक प्रभावी कारण था अंत होगा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि यह अनाम, अमीर, मुसलमान, दानशील व्यक्ति महामहिम आगा खां थे, जिनका धन तथा जन भजन में पहले ही हिन्दू धर्म में मत परिवर्तन के लिए काफी हस्तक्षेप कर रहे थे।

जुगत विश्वर विरमा द्वारा पांच हजार रुपये महीना देने का वचन देना ने लालाजी का तुरंत धन मागने से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और उन्होंने पंजाब में काय के लिए सीधे ही अछूत उद्धार समिति नियुक्त कर दी, जिसमें सनातनी व्यक्ति रुडि विरुद्ध व्यक्तियों के साथ सहयोग कर सकते थे। लालाजी ने एक अखिल भारतीय समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वह स्वयं ही थे। इस समिति का मुख्यालय सन्धी मठी दिल्ली में था। लोक सेवा संघ के सदस्य (जिसकी शाखाओं की संख्या, नई शाखाओं समेत 12 से अधिक हो गई थी) मारे-बे-सारे अछूत उद्धार के लिए पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में फैल गए। इस मस्या के अधीन पूणकारिक कार्यकर्ताओं की संख्या एक समय पर लगभग एक सौ हो गई थी। यह कार्य अधिकतर पंजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक सीमित था, परन्तु लोक सेवा संघ के बंडू लाल इन क्षेत्रों से बाहर भी थे। इस क्षेत्र में लालाजी द्वारा पहले किए गए कार्य की एक निशानी रावी के निकट भूमि का एक टुकड़ा था, जो शाहदरा रेलवे स्टेशन से अधिक दूर नहीं था और बारहदरी के निकट था। उन्होंने यह भूमि एक बस्ती बसाने के लिए खरीदी थी, जहां

दिल्ली में निवास के दौरान उन्हें हकीम अजमल खा और डाक्टर एम० ए० असारी के साथ हिंदुओं और मुसलमानों के बीच बिगड़ रहे सबघों के बारे में बातचीत करने का अवसर भी मिला ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए सागर किनारे निवास और उसके पश्चात् कई प्रातः में घुमक्कड़पन, जो पुणे की तुरत यात्रा से आरम्भ होकर दिल्ली तथा लाहौर में समाप्त हुआ, काफी लाभकारी रहा । शायद इसमें उन्हें असहयोग आंदोलन के असफल होने के पश्चात् देश का झूठ अच्छी तरह जान सकने का अवसर मिल गया जो काकीनाडा अधिवेशन में भाग लेने से शायद इतना न मिल पाता । इससे उनकी काय की प्रथम प्राथमिकता भी तय हो गई—वह थी 'भ्रष्ट उद्धार' का काम उन्हें निकटतम भविष्य में करना था ।

वर्तमान लेखक इस महत्वपूर्ण यात्रा में सालाजी के साथ था, लाहौर में निधन तथा वापस लाहौर तक ।

56. छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत के विरुद्ध अभियान की कल्पना 1923 के अंत में हुई और इसका तुरंत कारण वह अयायपूर्ण प्रस्ताव था, जो मुहम्मद अली ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कावीनाडा-अधिवेशन में किया था कि अछूतों को हिन्दू तथा मुसलमान प्रचारक संगठना के बीच विभाजित कर दिया जाए। यह सुझाव असल में एक समृद्ध मुसलमान ने दिया था जो इस क्षेत्र में इस्लाम के कार्य के लिए काफी धन देने को तैयार था। इस विचार की सूचना कांग्रेस का उसके मुसलमान अध्यक्ष ने इस प्रस्ताव के रूप में दी थी कि इससे टकराव के एक प्रभावी कारण का अंत होगा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि वह अनाम, अमीर, मुसलमान, दानशील व्यक्ति महामहिम आगा खाँ थे, जिनका धन तथा जन असल में पहले ही हिन्दू धर्म में मत परिवर्तन के लिए काफी हस्तक्षेप कर रहे थे।

जुगन विशोर बिरला द्वारा पाच हजार रुपये महीना देने की वदायता ने लालाजी को तुरंत धन मागने से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और उन्होंने पंजाब में काय के लिए सीधे ही अछूत उद्धार समिति नियुक्त कर दी, जिसमें सनातनी व्यक्ति ऋषि विरुद्ध व्यक्तियों के साथ सहयोग कर सकते थे। लालाजी ने एक अखिल भारतीय समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वह स्वयं ही थे। इस समिति का मुख्यालय, सन्जी मंडी दिल्ली में था। लोक सेवा सच के सदस्य (जिमकी शाखाओं की संख्या, नई शाखाओं समेत 12 से अधिक हो गई थी) सारे-सारे अछूत उद्धार के लिए पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में फल गए। इन संस्था के अधीन पृथक्कालिक वायवर्ताओं की संख्या एक समय पर लगभग एक सौ हो गई थी। यह काय अधिकतर पंजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक सीमित था, परन्तु लोक सेवा सच के केंद्र ता इन क्षेत्रों से बाहर भी थे। इस क्षेत्र में लालाजी द्वारा पहले किए गए काय की एक निशानी रावी के निकट भूमि का एक टुकड़ा था, जो शाहदरा रेलवे स्टेशन से अधिक दूर नहीं था और बारहदरी के निकट था। उन्होंने यह भूमि एक बस्ती बसान के लिए खरीदी थी, जहां

दलितवर्ग के कुछ परिवारों को बसाने की योजना थी और एक केंद्र बनाने का विचार था, जिसमें उन लोगों को शिक्षा देने तथा लघु उद्योग लगाकर अपना जीवन स्तर सुधारने का कार्यक्रम था। बीच में अचानक आ गइ विधेयक निर्वासन की लम्बी अवधि। अब उन्होंने कई बार इस योजना को कार्यान्वित करने तथा इस भूमि का उचित प्रयोग करने के बारे में विचार किया—अछूतों के लिए बस्ती बनाने के बारे में। परन्तु इस बार अधिक जोर सामाजिक समाज, राष्ट्रिय बंधन, और सम्मेलनों द्वारा हिंदुओं में प्रचार करने पर था ताकि उनके मन से अस्पृश्यता का विचार निकाला जा सके। बारहदरी की यह भूमि आखिरकार लोक सेवा मंत्रालय ने लालाजी के देहात के बाद बेच दी और उससे प्राप्त धन सच के अछूत उद्धार फंड में चला गया। इन भूमि का एक भाग सच के पास रहा, जिसमें एक साधारण आश्रम स्थापित किया गया जिसे ग्रामीण उद्योग ऐंसासिएशन चलाती थी।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने रचनात्मक कार्यक्रम में अस्पृश्यता समाप्त करने का मूल भी शामिल किया था। लालाजी ने इसे कार्यान्वित करने के लिए अपना समय तथा शक्ति दी क्योंकि यह मूल उन्हें सार कार्यक्रम में अच्छा लगता था। उनके विचार में यह धार्मिक था, न धर्मपरिवर्तन में सम्बद्ध। दरअसल उनका दृष्टिकोण महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित कार्यक्रम में भिन्न नहीं था। फिर भी कुछ आलोचक जा रचनात्मक कार्यक्रम का स्वीकार करते थे, लालाजी व अछूत उद्धार पर आपत्ति करते थे कि यह साम्प्रदायिक कार्य है। यह बात बहुत कम लोग कि यह कांग्रेस के तत्वावधान में नहीं था। यह बात बहुत कम लोग का मालूम थी कि लालाजी ने कांग्रेस कार्यक्रम काय करवाया था। रचनात्मक कार्यक्रम के इस मूल का लागू करने के लिए आगे बढ़ना पड़ा। रचनात्मक कार्यक्रम के इस मंत्रालय को पर बोलन दिया और न इस मंत्रालय में देनाबधु दाग न किया

तीर

किया था, परन्तु अध्यक्ष (मुहम्मद अली) प्रस्तावित बाड में शामिल किए जाने वाले कुछ नामों को, जो लालाजी ने तजवीज किए थे, स्वीकार न कर सके। जिन नामों पर आपत्ति थी, उनमें मालवीयजी का नाम भी था। देश-बधु ने कहा था कि वह मौलाना के साथ इस विषय पर फिर बातचीत करेंगे। परन्तु लालाजी को बाद में नायकारिणी, अध्यक्ष या देशबधु से इस संबंध में कोई सूचना न मिली। परन्तु विश्वस्त सूत्रों से पता चला था कि मौलाना ने कहा था कि कांग्रेस "दूसरे श्रद्धानंद" को अपने तत्वावधान में काम करने की आज्ञा नहीं दे सकती। कुछ भी हो, उ होने लालाजी को अस्पृश्यता के बारे में कांग्रेस के कार्यक्रम को सफल बनाने का अवसर न दिया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि लालाजी का नियम मुहम्मद अली द्वारा अध्यक्ष के रूप में आगा खा के प्रस्ताव के पूरी तरह विरुद्ध था। यह महत्वपूर्ण बात है कि महात्मा गांधी ने काफी समय बाद, जब वह अली बधुओं के प्रभाव से मुक्त हो गए थे, हरिजन संघ की स्थापना की थी।

आरम्भ में विरला परिवार द्वारा केवल एक रूप के लिए धन देने का वायदा किया गया था, परन्तु हकीकत यह है कि उन्होंने यह सिलसिला लालाजी की मृत्यु तक जारी रखा और उसके बाद भी कुछ कम दर पर यह सहायता मिलती रही। फिर, हरिजन संघ की स्थापना हो गई और उन्होंने इसकी राशि बढ़ा दी। पंजाब के लिए हरिजन संघ लालाजी के कार्य को ही आगे बढ़ाने के बराबर था, क्योंकि धीरे धीरे उन्होंने अपने आजीवन सदस्य अछूत उद्धार समिति से हटा लिए थे, क्योंकि उनकी कही और आवश्यकता थी।

57. एक बार फिर यूरोप को

अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान पूरी तरह आरम्भ हो जाने, अपने युवा आजीवन सदस्यों को 'अछूता' की सेवा के लिए रचना देने तथा अस्पृश्यता के विरुद्ध सघन करने तथा महत्वपूर्ण लोगों के साथ विचार विमर्श कर चुकने के बाद लालाजी कुछ फुरसत महसूस कर रहे थे। पंजाब के चुनाव उन्होंने सामन में उपचार तथा स्वास्थ्य लाभ करते हुए लड़े थे और पंजाब परिषद में स्वराज पार्टी के सदस्य प्रमुख विपक्ष के तौर पर अपना कार्य उचित ढंग से करने के लिए पूरी तरह स्थिर हो गए थे। अपने भ्रमण के दौरान उन्होंने लोक सेवा सघ के लिए धन एकत्र किया था और लाहौर लौटकर उन्हें 'बड़े भातरन्' का कार्य देणन का अवसर भी मिल गया था। कुछ मिलाकर वह उस कार्य से सतुष्ट थे, जो उन्होंने उपचार तथा स्वास्थ्य लाभ के दिना में किया था।

परंतु यह महसूस किया गया कि यही अर्थों में वह तभी स्वस्थ हो पाएंगे, यदि वह पूरी तरह और विश्राम करेंगे। लेबर पार्टी के सत्ता में आने के पश्चात कई नेताओं के मन में आया कि विदेशों में सबसे अधिक अनुभव वाले पारसी नेता होने और इंग्लैंड में अच्छे संबंध होने के कारण (विशेषकर जातिवादियों तथा लेबर नेताओं से) लालाजी को अनौपचारिक प्रतिनिधि के तौर पर कुछ समय के लिये वहां भेजा जा सकता है या यदि वह विदेश में छुट्टी बिताए तो स्वास्थ्य लाभ के साथ साथ वह राजनीतिक कार्य भी कर पाएंगे। इस संबंध में इंग्लैंड से भी सुझाव मिले थे। विशेषकर बीट्रिस वैंडर का पत्र भी आया था (सिडनी वैंडर, मन्निमडल में शामिल हो गए थे और लाड पारसफ़ीरड बन गए थे, परंतु बीट्रिस ने लेडी पारसफ़ीरड कहलवाने से इन्कार कर दिया था)। वह तो यह सोचती थी कि मन्निमडल में किसी को बतयाया जाए कि भारत के लिए क्या किया जा सकता था, इसलिए यह सुझाव दिया था कि यह बात अच्छी होगी, यदि लालाजी कुछ समय के लिए उनके पास आ जाए। यद्यपि उन्होंने नेतावनी दे दी थी कि उन्हें किसी बड़ी बात की आशा नहीं रखनी चाहिए। उन्होंने कहा कि लेबर पार्टी ने कार्यभार मभाला है, सत्ता नहीं मभाली। सोलन तथा कराची न उनके स्वास्थ्य के किसी हद तक ठीक कर दिया था। यूरोप की छोटी अवधि की भांति समयवत उनसे बहुत से दायित्व सभालने योग्य शक्ति दे दे। आखिरकार सोलन या भारत में

किसी अय स्थान पर उन्हें पूर्ण विश्राम नहीं मिल पाया था, जो उनके स्वास्थ्य के लिए अब अति आवश्यक था। यूरोप के विशेषज्ञों ने सलाह मशविरा भी शायद लाभकारी रहता। लेबर सरकार शायद कुछ अधिक न कर पाए परन्तु यह भी एक और बहाना था, जिसके कारण 1924 में यूरोप यात्रा हो सकती थी। उन्होंने यह यात्रा करने का निणय कर लिया। उन्होंने 9 अप्रैल, 1924 को बम्बई में लायड ट्रीस्टिनो का जहाज पकड़ लिया।

यह यात्रा उन्होंने केवल स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से की थी। यह यात्रा अच्छी रही, जो विश्राम उन्हें मिला वह उनके लिए लाभकारी रहा। उन्होंने विशेषज्ञों से सलाह भी ली, विशेषकर स्विटजरलैंड के नर्सिंग होम्स की। अपने पुराने मित्रों के साथ फिर मुलाकात उनके लिए प्रसन्नता की बात थी। पुराने साथियों में स्विटजरलैंड में श्यामजी कृष्ण वर्मा, पैरिस में राणा और महामा वामा, मुंबा लोगो में बर्लिन में चट्टोपाध्याय तथा एनेस स्मिथले, जिन्हें अपने अमरीका प्रवास में वह पछी कहा करते थे और इसी आधार पर वह अपनी रचनाओं के नीचे, जो भारतीय पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुआ करती थी 'एक पछी' द्वारा लिखा करती थी (ए बड या एलिस बड)। अपनी पुस्तक में जो उनका आत्मकथा रूपी सर्वोत्तम उपमास 'घरती की बेटी (डाटर आफ अथ) था, लालाजी का नया नाम रखा था (रणजीत सिंह)। वह कुछ समय पूर्व ही अंध महासागर पार करके आई थी और उन दिना बर्लिन में चट्टोपाध्याय के साथ रह रही थी। व दाना कम्युनिस्ट विश्व क्रांति के लिए काय कर रहे थे। इंग्लैंड में लालाजी भारतीय मित्रा तथा वैजबुड दम्पति से भी मिले तथा वैश्व दम्पति और अप्रेज मित्रा से भी भेट की जो अधिकतर लेबर तथा क्रांतिकारी वग से थे। इस यात्रा में उनका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं था इसलिए उन्होंने अधिक सावजनिक भाषण या लिखन का काय नहीं किया।

मई 1924 का पूरा महीना उन्होंने इंग्लैंड में हेम्पस्टैड में रहते हुए बिताया। उन्होंने शीघ्र ही प्रधानमंत्री रमजें मैकडोनाल्ड के साथ भेंट का अवसर जुटा लिया। उन्होंने लाड ओलिवर के साथ सम्पर्क भी किया। उन्होंने लालाजी को 7 मई को सेवाय में अपने साथ दोपहर का भोजन करने का निमन्त्रण दिया। कुछ दिन पश्चात उन्हें लाड ओलिवर का पत्र मिला, जिसमें कहा गया था "मुझे अति प्रसन्नता हागी, यदि आपके साथ बातचीत का एक और अवसर मिल जाए।" और साथ ही सेवाय में दोपहर को भोजन का निमन्त्रण था। उन्हें आपस

मे बातचीत करने का कई बार अवसर मिला और डाकी मंत्री लेबर सरकार के सत्ता से हट जाने के पश्चात् भी जारी रही। लाड ओलिवर जो विशद् सहानुभूतियो तथा विस्तृत ससृति के व्यक्ति थे बहुत ही अच्छे साथी हो सकते थे। सबसे अच्छी बात, जो राजनीतिव क्षेत्र मे इस सम्पक से हुई, वह यह थी कि लालाजी ने इंडिया आफिम को यह अहसास करवा दिया कि भारतीय जेलों म सुधार की बहुत आवश्यकता थी। इस प्रकार उन्होने लाहौर केंद्रीय जेल म की गई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। शेष मामलो मे लालाजी ने वाद मे अक्सर स्वयं कहा कि आलिवर "स्थायी तौर पर अस्थिर" व्यक्ति था।

लालाजी के इंग्लैंड निवास के आरम्भ मे ही एक दिन (5 मई को) प्रात 'टाइम्स' ने अपने कलकत्ता सवाददाता को तार के हवाले से समाचार दिया कि श्री गांधी का परिपदो मे सहयोग करने का कायत्रम है। वह उसे काप्रेस के आगामी अधिवेशन मे स्वीकार करवाएंगे और वह विधान समाआ तथा परिपदो म बहुमत प्राप्त करने का प्रयत्न भी करगे। समाचार चौका देने वाला था और लालाजी का उसके बारे म तुरत विश्वास नहीं हो रहा था। महात्मा गांधी जुहू में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे और सवाददाताओ को अपनी यात्रनाओ के बारे मे अटकले लगाने का अवसर दे रहे थे। लालाजी ने महात्मा गांधी से इस समाचार के बारे म तार बवारा पूछा जिसका उत्तर मिला

“ऐसी बात स्वप्न में भी नहीं सोचो। दिलो मे कोई परिवर्तन की सभावना नहीं, जिसके कारण सहयोग हा सके—गांधी।” यह उत्तर उन्होने तुरत ही 'टाइम्स' रैमजे मैकडोमलड तथा लाड ओलिवर को भेज दिया।

इंग्लैंड मे स्थिति के बारे म अपने प्रभावा की जानकारी उन्होन पंडित मोतीलाल नेहरू तथा मालवीयजी को भेज दी जिनके साथ उनका पत्र व्यवहार नियमित रूप से चल रहा था। ये प्रभाव क्या थे, उनकी जानकारी उस उद्धरण से मिल सकती है जो मालवीयजी द्वारा उन्हें कुछ समय बाद भेजे पत्र मे है, जिसका उद्देश्य उन्हें भारत की ताजा स्थिति से अवगत रखना था

“अहा तक लेबर पार्टी का प्रश्न है म अब तक की सारी स्थिति को समझ गया हू। वह भारत के लिए कुछ-न कुछ करके प्रसन्न हाने पर तु उनके पास काफी अधिकार नहीं है। वे हमारे लिए कोई ऐसी बात करने को तयार नहीं जिसके लिए लिबरल तथा कजर्वेटिव पार्टियो का समथन उन्हें नहीं मिल सकता। यह समथन किसी ऐसी

बात के लिए नहीं मिलेगा, जिसना भारत सरकार समर्थन नहीं करेगी। भारत सरकार हम देश के सोचमन के प्रति त्रिदयी हो गई है और यह बात इंग्लैंड में लोकमत के अनुकूल है। इसलिए जब तक हम अपने आपको अधिक अच्छी तरह संगठित नहीं करते और यहाँ अपना प्रचार जोरदार ढंग से नहीं करते, हमें स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने की आशा नहीं लगती। सुधार समिति (रिफॉर्म कमेटी), जिसमें सर टी० बी० सप्रू, सर शिवस्वामी अय्यर और श्री जिन्ना शामिल हैं, निस्संदेह प्रांतीय तथा केंद्र सरकारों के बारे में कई सिफारिशें करेगी, जो हमें प्रांतीय स्वायत्ता के माग पर आगे ले जाएगी। पर मुझे यकीन नहीं है कि समिति सक्षममति से ऐसी स्वायत्ता के लिए सिफारिश करेगी। दरअमल मेरा विचार है कि वह ऐसी सिफारिश करेगी ही नहीं।

‘जहाँ तक केंद्र सरकार का प्रश्न है समावनाए इसकी आशाजनक नहीं है। परन्तु मेरे पास इससे जिना कोई विकल्प भी नहीं कि केंद्र सरकार में जिम्मेदारी दिए जाने की खातिर कामरत रहूँ। मुझे आशा है कि उपरोक्त तीनों व्यक्ति इस प्रकार की जिम्मेदारी दिए जाने का किसी-न-किसी सीमा तक समयन अवश्य करेंगे। परन्तु हमारी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इस विषय पर लोकमत को संगठित करने में कहां तक सफल होते हैं और इस आवाज को काफी शक्तिशाली बना पाते हैं। इसके लिए भारतीय लोकमत के सभी वर्गों में पूर्ण एकता की आवश्यकता है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि कांग्रेस जनों में भारी फूट पड़ी हुई है।’

फिर भी कई छोटी बातों के लिए लालाजी से कहा गया था कि लेबर सरकार में सम्मिलित करे। उद्घरण के तौर पर मालवीयजी के पत्रों में आगे कहा गया था

“मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप स्वदेश लौटने से पहले एक बार फिर इंग्लैंड जाएँ। सम्भवतः हमारी राष्ट्रीय समस्याओं के कई पहलू आपके इंग्लैंड पहुँचने तक यह बात अनिवाय कर दें कि आप प्रधानमंत्री, सत्रेद्री आफ स्टेट तथा सामान्य तौर पर लेबर पार्टी से बातचीत करें। मेरे मन में विरोध बात यह भी है कि हमारा रक्षा व्यय कम किया जाए। मैं आपको कुछ लेख भेज रहा हूँ जो विधान मंडल में मेरे सुयोग्य सहयोगियों में एक के० राम अयंगर ने लिखे हैं, इनसे आपको यह पता चल जाएगा कि वर्तमान सरकार के प्रमुख व्यक्तियों का ध्यान

विगप तौर पर आवपित करन की आवश्यकता क्या है और सबर पार्टी में यह कहने की जरूरत क्या है कि हमारा ध्यय घटाया जाए। यहां 27 हजार ब्रिटिश सैनिक हैं उन्हें रखने का बार्ड भी तैयार नहीं। यह बान बैंक वित्त धिन पर अपन भाषण में विरोध व्यक्त करत हुए बहो थी। भारतीय संघीय सना का इस ढंग से संगठित करन की बात पर भी जार रिया गया था कि उग दूसरी सुरक्षा पब्लिक बनाया जाए। टमका परिणाम सनित म्यथ में बहोनी के रूप में होगा। वह मायद हम अधिरार न दें। परंतु सबर सरकार सनित घा की बान समझन की मांगिश क्या नहीं कर सकती और इस घब में उभिन कभी करन की बात क्या नहीं कर सकती? यदि तेगा हो जाए ता उन सबटा का बाध कम हो जाएगा, जिगवे नीर आम लोग कराह रहे हैं। और इससे प्रातीय सरकारें इस स्थिति में हार जाएगी कि वह अपनी देग्र रेश में लिए गए लोगो में राष्ट्र निर्माण की गतिविधिया आरम्भ कर सके। कुछ अन्य मामले भी हो सकते हैं, जिनके कार में आपने लिए अग्रज सनाओ के साथ बानचीन करना समभव हो पाए। कुल मिलाकर भर विचार में यह कई पहनुआ से लाभकारी होगा कि स्वदेश सौटन से पूव आप फिर इग्लैंड जाए।”

पत्र में भारत में घटित कुछ घटनाओं की जानकारी भी दी गई थी

“भिरा ख्याल है आपको यहां के समाचार पत्र पर्याप्त सख्या में मिल जात हांग और आपको उन घटनाओं की पूरी जानकारी हागी, जो अहमदाबाद में हुई है। इस बात की भविष्यवाणी करना कठिन है कि बेल्गाव में होने वाले वार्षिक कांग्रेस अधिवेशन में क्या होगा। स्वराज पार्टी के नेताओं की बैठक अगले मास में आरम्भ में कलकत्ता में हो रही है और श्री गांधी अखिल भारतीय यात्रा आरम्भ करने वाले हैं ताकि लोकमत अपन पक्ष में तैयार कर सकें। निस्संदेह यदि वह असहयोग आंदोलन में अधिक जान तथा शक्ति हासल करें, ता वह सरकार पर स्वराज पार्टी द्वारा परिपदा में किए जा रहे काय के मुकाबले अधिक प्रभाव डाल सकेंगे। परंतु श्री गांधी जो चाहते हैं क्या उसको प्राप्त कर पायेंगे, यह बात अभी सदहजनक है। फिर भी, जहां तक उनका प्रश्न है, उनके लिए कोई और रास्ता भी तो नहीं। मैंने स्वराज पार्टी का एक वचन पूव यह बता दिया था कि श्री गांधी यह रास्ता अपनाएंगे जो उन्होंने अब निणय किया है। इससे बिना मुझे आशा नहीं कि वह इतने मशक हो सकें कि परिपद में प्रवेश कर पाए।”

मालवीयजी ने उनके विथाम करने पर अधिक बल दिया और विशेषतौर पर देश में हानि वाले विवादों के बारे में खामोश ही रहने को कहा

“कृपया अपने आपको स्वित्जरलैंड में निवास के समय पूर्ण आराम दीजिए। अच्छा उद्धार का कार्य चल रहा है। राम प्रसाद ईर्से ठीक तरह से चला रहे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ किया जाना है। मैं इस समस्या को जितनी शीघ्र सम्भव हो सके, हल करने के लिए पूरी तरह जागरूक हूँ।”

परन्तु देश की गतिविधियाँ के बारे में उन्हें मोतीलाल नेहरू अधिक नियमित ढंग से जानकारी देते रहते थे। वह स्वराज पार्टी के अन्य सभी नेताओं के मुकाबले लालाजी के साथ अपनी योजनाओं के बारे में सलाह माँगकर चलाया करता था। नेहरू उन्हें वह सभी व्यौरा भेजते थे, जो उन्हें भारतीय समाचार-पत्रों में मिलना सम्भव नहीं था, महात्मा गांधी तथा उनके बीच बातचीत तथा कार्यकारिणी, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठकों की जानकारी आदि।

इंग्लैंड की इस यात्रा के दौरान वह पहली बार औपचारिक रूप से किसी समाजवादी पार्टी में शामिल हुए। इसमें सन्देह नहीं कि उनका दृष्टिकोण काफी लम्बी अवधि से समाजवाद से और न्यूयाक के रैंड स्कूल जैसे समाजवादी सबंधों से प्रभावित रहा था। भारत में उनका सामाजिक कार्यक्रम था, जो उन्होंने उस समय तैयार किया था, जब वह अभी अमरीका में ही थे। ये सब स्पष्ट रूप से इंगित करते थे कि उनका झुकाव समाजवाद की ओर था परन्तु उनका विचार नहीं था कि भारत में समाजवादी आन्दोलन या पार्टी शुरू करने के लिए उचित समय आ गया है। परन्तु 1920 में लौटने पर उन्होंने अपने श्रमिक संगठन के आन्दोलन को अखिल भारतीय रूप दिया और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशन की अध्यक्षता की। अब अगला कदम समाजवादी पार्टी में शामिल होने का था। भारत में कम्युनिस्ट पार्टी पहले ही थी, परन्तु उसका निर्देशन रूस से हाता था। स्वदेशी समाजवादी संगठन तो अभी स्थापित होना था। इंग्लैंड में निवास के दौरान लालाजी इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी में शामिल होने के लिए सहमत हो गए, बाद में उन्होंने विधायक दल में समाजवादी या लेबर गट बनाने के भरसक यत्न किए परन्तु कोई खास सफलता न मिली। जिन कुछ लोगों की रुचि वह पैदा कर पाए उनमें दीवान चमन लाल, तारिणी मिन्हा और एम० एम० जाशी शामिल थे। परन्तु इंग्लैंड में वह निश्चित रूप से इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी में शामिल हो गए।

जब वह इस्ताम्बूल में थे (जिमका नाम उन दिना वास्टेटिनापल था) उन्हें जाज लेंसवरी से एक पत्र मिला जिसके साथ ए० फैनर शकवे का एक पत्र भेजा गया था, जिसमें कहा गया था

“आपको (साजपत राय को) केंद्रीय लदन शाखा का सदस्य नामजद करने का अधिकार है, यद्यपि वह भायद राष्ट्रीय शाखा का सदस्य बनना पसंद करे, नयोंकि वह अक्सर लदन से बाहर हागे ।

‘ वह राष्ट्रीय शाखा में सदस्य बन सकते हैं, इससे लिए उन्हें कम से कम पाच पींड वार्षिक चन्दा देना हागा । यदि आप चाहते हैं कि वह केंद्रीय लदन शाखा के सदस्य बनें, तो जे० एलन स्विनर, 92 आबले स्ट्रीट, चैलसी, एस० डब्ल्यू० 3, इससे सचिव है । ”

इंग्लड में कुछ खास काम नहीं था । पुराने मित्रों से उनकी मुलाकात हो चुकी थी, कुछ नए मित्र भी बने थे, सार लेबर नीतिवानों का अध्ययन किया जा चुका था, उनसे उनकी कठिनाइयां के बारे में सुन लिया गया था और एक प्रकार की दिमागी गणित प्रक्रिया से इस बात का अनुमान लगा लिया गया था कि उनकी सहानुभूति तथा मित्रता का जो बाह्य रूप है उसकी तह में अमलियत कितनी है । उनका एक महत्वपूर्ण काम इडिपेंडेंट लेबर पार्टी में शामिल होना तथा आनिवर के मन में भारतीय जैसा के प्रति रुचि पैदा करना था । इसलिये वह छ सप्ताह स्विटजरलड में ठहरने तथा कुछ दिनों के लिए यूरोप में घूमने के लिए रवाना हो गये । उन्होंने जर्मनी डेनमार्क, आस्ट्रिया, हंगरी और तुर्की में प्रवेश के लिए बीमा-बुद्धि करवा ली थी । इंग्लंड से रवाना होने से पूर्व भारतीय छात्रों तथा भारतीय डाक्टरों ने उन्हें थैली भेंट की, जो बाद में गुलाब देवी तपेदिक अस्पताल के कोष में दे दी गई । सबसे पहले उन्हें अपने स्वास्थ्य के बारे में सोचना था और सब बातों से अधिक वह स्विटजरलड में समय बिताना चाहते थे ।

मोनीलाल नेहरू के अधिकतर पत्र उन्हें स्विटजरलैंड में निवास के दौरान मिले और महात्मा गांधी का यह पत्र भी वही मिला

प्रिय बालाजी,

मुझे प्रसन्नता है कि आखिरकार आप वहां पहुंच गए हैं जहां आपको होना चाहिए था । मुझे आशा है कि जब तक आपना स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक नहीं हो जाना आप इस स्थान से नहीं हिलेंगे ।

मुझे आशा है यहाँ की घटनाएँ आपको विचलित नहीं करेगी। स्वराज पार्टी वाला तथा मेरे बीच एक ही मंच पर महयोग सम्भव नहीं, परन्तु अलग अलग पार्टियों में काय करने से यह सम्भव हो सकता है। कांग्रेस को एक समय पर बेवत एक ही कार्यक्रम आरम्भ करना चाहिए। एक ही समय पर आप सरकार तथा लोगों से किस प्रकार आशा रख सकते हैं ?

4-7 24

भवदीय

एम० के० गांधी

लाला लाजपत राय,

ग्लेसें, मोंट्रियूस, स्विट्ज़रलैंड।

वह कास्टेंटिनोपल जाने को बहुत उत्सुक थे। उन्होंने युवा तुर्क आन्दोलन को आरम्भिक दिनों से बड़े ध्यान से देखा था और इसके नेताओं की प्रशंसा की थी। वे अब सत्ता में थे, उस विशाल साम्राज्य में नहीं जिस पर सुल्तान अब्दुल हामिद का शासन था, बल्कि अपनी मातृभूमि पर। परन्तु उन्हें यूरोप की शक्तियों द्वारा पैदा की गई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। इन कठिनाइयों को आंशिक तौर पर 1923 की लुसाने संधि से हल कर लिया गया था। इसलिए उन्होंने सोचा कि उन्हें युवा तुर्कों को अपना शासन चलाते हुए देखने का अच्छा अवसर मिलेगा, वह शासन जो तुर्कों की सेनाओं ने सशस्त्र सत्ता छीन लेने के बाद स्थापित किया था। उनका कास्टेंटिनोपल में स्वागत किया गया, उन्हें इस बात का गव था कि स्वागत करने वालों में वहाँ के महत्वपूर्ण लोग भी शामिल थे। भारतीय मुहाजरिन में से एक शौकत उस्मानी ने, 'हजरत काल' के अपने सस्मरणों में लिखा है कि किस प्रकार अन्तर्वर्षीय आशा से उनकी भेंट मध्य एशिया में किसी स्थान पर हुई थी, तो उस प्रसिद्ध सैनिक ने उनसे जो पहला प्रश्न पूछा था वह लाला लाजपत राय तथा उनकी गतिविधियों के बारे में था और उन्होंने भारतीय नेता के नेतृत्व को गहरी श्रद्धाजलि अर्पित की थी।

लाजपत राय के पुत्र, अमृतराय, जो जमनी में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे अब लालाजी के पास आ गये थे। तुर्कों से पिता तथा पुत्र मिल चले गये और कुछ दिन वहाँ ठहरने के पश्चात् वह उसी इटैलियन जहाज से अलेक्जेंद्रिया से बम्बई के लिए रवाना हो गए, जिसमें लालाजी बम्बई से विदेश गए थे। वह 20 मितबर, 1924 को बम्बई पहुँच गये।

58. स्वराज पार्टी में

‘अब आप तोना म से लालाजी के लिए कौन स्थान घाली करेगा?’ यह आकस्मिक सा प्रश्न शामलाल नेहरू न पंजाब के स्वराज पार्टी के तीन विधायकों दुनीचन्द (अम्बाला), रायजादा हसरत तथा दीवान चमन लाल से पूछा था, जो विधान सभा के पुस्तकालय में उन्हें बाँटें करते मिल गए थे। उन्हें कुछ देर पहले ही पता चला था कि विधायक की पात्रता के नियमों में संशोधन किया जाना चाहिए और यह नियम किया गया था कि वर्तमान नियम, जिसके अनुसार छ मास से अधिक केंद्र भ्रमण करने वाला केंद्रीय विधायक बनने के अयोग्य है, समाप्त हो जाएगा।

“हमसे कोई भी, और प्रसन्नता से,” शामलाल के प्रश्न का पंजाब के तीनों विधायकों ने एक ही उत्तर दिया। उन सभी को प्रसन्नता थी कि लालाजी विधायक बनने योग्य होंगे।

यह गैर सरकारी भविष्यवाणी 1925 के आरम्भ में विधानसभा के दिल्ली अधिवेशन में सामन्य जा गई। तब लालाजी सदन के सदस्य बनने के अयोग्य थे, बेचल जेल की सजा के कारण ही नहीं, बल्कि इसलिए भी कि चीफ कोर्ट ने उन्हें वकालत के व्यवसाय की मनाही कर दी थी। 1917 में युद्ध काल में अमेरिका में निर्वासन के दौरान प्रशासन ने उनकी कुछ पुस्तिका पर प्रतिबंध लगा दिया था। इसके अतिरिक्त अत्याचार के बारे में उनके कुछ निबन्धों में भी तर्की मोचा था और आमतौर पर जेल की सजा को ही एकमात्र बाधा माना जाता था। यह प्रश्न स्वाभाविक ही था कि यदि यह बाधा दूर हो जाए तो क्या लालाजी के लिए सदन में स्थान मिल जाएगा।

जिस दिन शामलाल यह समाचार लाए उसी दिन रायजादा हसरत ने लालाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि वह अपनी मीट लालाजी के लिए छोड़ने को तैयार है। आशा की गई मास में उन्होंने अपनी पेशकश कई बार दोहराई और यह बात लालाजी पर छोड़ दी कि वह जब उचित समझे इस पेशकश में लाभ ले सकते हैं।

उसी अधिवेशन के दौरान नियमों में संशोधन को अधिसूचित कर दिया गया परन्तु यह काफी नहीं था। छ मास की सीमा बढ़ाकर एक वर्ष कर दी गई और

चूँकि लालाजी ने कुल मिलाकर इस अवधि से अधिक जेल वाटी थी, यह बात निश्चित दिखाई नहीं देती थी कि वह चुनाव के योग्य हो सकेंगे। रायजादा ने स्वयं विधानसभा में कुछ प्रमुख वकीलों से इस बारे में सलाह ली, जिनमें एम० ए० जिन्ना भी थे, परन्तु कोई भी सतोपजनक उत्तर न दे पाया। बाद में शिमला-अधिबेशन के दौरान गृह सदस्य सर अलेक्जेंडर मुडडीमैन से अनौपचारिक तौर पर पूछा गया और उनकी व्याख्या से लालाजी के लिए विधानसभा का रास्ता साफ हो गया, सर अलेक्जेंडर की व्याख्या के अनुसार यह विभिन्न जेल सजाओं का कुल जोड़ नहीं, बल्कि एक ही बार की सजा की अवधि के आधार पर था। लालाजी का किसी भी मामले में दो गई बंद की सजा एक वर्ष से अधिक नहीं थी, इस लिए संभव था कि उन्हें सदन की सदस्यता के योग्य समझा जाए।

इसके थोड़े समय बाद लालाजी मोलन में बीमार हो गए। स्वस्थ होने पर उन्होंने रायजादा हसराम को बताया कि उन्होंने सशोधित नियम की व्याख्या के बारे में अच्छी तरह समझ लिया है और अब वह विधानसभा में जा सकते हैं। इस पर रायजादा ने अपना त्याग पत्र लिख दिया और इसे लालाजी को देने के लिए स्वयं लाहौर चले आये।

दूसरी अयोग्यता के बारे में लालाजी के कुछ मित्रों ने पंजाब के अधिकारियों से पूछताछ की और इस बात का पता लगाया कि उनका लालाजी के लौटने में रुकावट डालने का कोई इरादा नहीं था। शायद यह अनुमान लगाया गया था कि किसी भी हालत में यह अयोग्यता चीफ कोर्ट को अर्जी देकर समाप्त करवाई जा सकती है। क्योंकि इस बात को निश्चित कर लिया गया था कि कोई विरोधी उम्मीदवार इस असुखद तथ्य को दूध निकालकर रिटनिंग अधिकारी के सामने नहीं लाएगा। लालाजी को यह पक्का यकीन हो गया था कि विधानसभा के लिए उनका रास्ता साफ हो गया था। इस प्रकार रायजादा हसराम ने त्याग पत्र दे दिया और अपने निर्वाचन क्षेत्र को समाचार-पत्रों द्वारा बिदाई देते हुए उन्होंने धन्यवाद सहित यह बात स्मरण कराई कि वे निर्विरोध निर्वाचित हुए थे और विश्वासपूर्वक उन्होंने आशा व्यक्त की कि लालाजी को भी उसी प्रकार बिना मुकाबले के चुन लिया जाएगा। विधानसभा में अपने सहयोगियों का धन्यवाद देते हुए रायजादा ने आशा व्यक्त की कि लालाजी पंडित मातीलाल ने दिए “बढ़िया तथा सच्चे मित्र” सिद्ध होंगे।

जब उपचुनाव की तारीखें राजपत म प्रकाशित हा गईं, ता लालाजी को तार द्वारा दिल्ली से जातघर बुलाया गया, ताकि वह बागज दाखिल कर सकें । लालाजी तथा रायजादा ही नामावन पत्र दाखिल करन वाले थे । लालाजी को 6 दिसबर 1925 को बम्बई म हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता करनी थी, इसलिये वह नाम वापस लेने के दिन चले गए । उस दिन (लालाजी के जाने के पश्चात्) रायजादा द्वारा नाम वापस लेने पर लालाजी निर्विरोध निर्वाचित हो गए । 'द पीपुल' (13 दिसबर) म उन्होने रायजादा हसराम तथा निर्वचन क्षेत्र का धन्यवाद दिया । उन्होने अधिकारिया को भी धन्यवाद दिया कि उन्होने "मेरे रास्ते मे कोई बाधाएं खड़ी नही की ।"

धन्यवाद के अंतिम शब्द थे

"विधानसभा के अपने कार्यक्रम को तैयार करने म मुझे कुछ समय सगेगा ।"

हमन यह सारा ब्यौरा जान चुककर दिया है, क्याकि बाद के विवाद मे सबसे बडा प्रश्न यह था कि क्या लालाजी ने चुनाव के समय दिए गए वचना के अनुसार स्वराज पार्टी म शामिल होने की प्रतिगा की थी । पार्टी की सहिता का कडाई मे पालन करते हुए रायजादा हसराम को अपना त्याग पत्र लालाजी को 7 देवर पार्टी के नेता को देना चाहिए था । सध्य तो यह है कि रायजादा ने साल के दौरान लालाजी को त्यागपत्र की जो कई बार पेशकश की, थी उस समय कभी भी उन्होने कोई शत नही रखी थी और न ही कभी आश्वासन मागा था । अपने पत्रा मे या त्यागपत्र देने के सबध मे की गई जातचीत के दौरान किसी शत के बारे मे कोई मामूली सा सकेत भी नही दिया गया था । जब अंत मे लालाजी ने रायजादा को त्यागपत्र देने के लिए कहा, तो यह पूरे विश्वास से कहा था कि यह स्थान बिना किसी शत के खाली किया जा रहा था "लालाजी" के लिए, एक या दूसरी पार्टी के मन्स्य या भावी सदस्य के लिए नही । रायजादा की ओर से केवल एक साव-जनिक वक्तव्य था, जिसमे उन्होने विधान सभा मे अपन सहयोगिया तथा निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं को धन्यवाद दिया था और आशा व्यक्त की थी कि लालाजी पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिए "बहिष्ता मित तथा सच्चे सहयोगी" मिट्ट होंगे । यह आशा तो केवल उन्होने अपनी ओर से इच्छा के तौर पर व्यक्त की थी और यह कोई आश्वासन नही था, जा लालाजी से मागा

गया हा या सालाजी ने दिया हो। और इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट तौर पर नहीं कहा था कि उन्हें आशा है सालाजी स्वराज पार्टी में शामिल होंगे। क्या यह "आशा" किसी प्रकार के "आश्वासन" पर आधारित थी? इसके उत्तर के लिए हम दो और व्योरे देते हैं। एक छोटी सी बातचीत, जो रायजादा के वक्तव्य से पहले हुई थी और एक पत्र जो इसके परिणाम-स्वरूप लिखा गया था। जब रायजादा ने अपने त्यागपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए और उसे सालाजी को सौंप दिया तो उन्होंने कुछ कहने की आज्ञा मांगी कि वह पण्डित मोतीलाल नेहरू का बहुत आदर करते हैं और उन्हें दुःख होगा यदि उनके (सालाजी के) कारण पण्डितजी को किसी प्रकार का कष्ट हो। सालाजी ने इसके उत्तर में कहा था, 'पण्डितजी मुझे बड़िया मित्र तथा सच्चा सहयोगी पायेंगे।' यह बातचीत बहुत संक्षिप्त थी और बहुत व्यापक तथा अस्पष्ट रूप में थी। बाद में जब रायजादा हसराम ने समाचार पत्रों को वक्तव्य जारी किया, तो वह सालाजी के ही शब्द दोहराना चाहते थे, परन्तु उन्होंने स्पष्ट रूप से ऐसा न किया। इसमें गलत अर्थ निकाले जान या गलतफहमी होने के संदेह को देखते हुए सालाजी ने रायजादा हसराम को लिखा कि यदि किसी प्रकार यह संकेत मिला कि इसमें कोई शक या आभार व्यक्त होता था तो वह इस पत्रकशा से लाम उठाने के लिए तैयार नहीं और यद्यपि यह स्थान पहले ही रिक्त हो गया है, तो वह जिम्मेदारी लेने को तैयार हैं कि रायजादा फिर से निर्वाचित हा जाए और इस चुनाव का मारा खर्च वह देने को तैयार हैं। रायजादा हसराम द्वारा इसके पश्चात् कोई और कारवाई की गई दिखाई नहीं देती—न समाचार-पत्रों को दिया वक्तव्य वापस लेने की और न सालाजी को स्पष्टीकरण देने की, और न दुबारा निर्वाचित होने के लिए सालाजी की पेशकश से लाम उठाने की। इसके थोड़े समय बाद उन्हें नामजदगी के काम के लिए जालधर में मिलना था, दोनों न जागज भरे, परन्तु किसी ने भी समाचार-पत्रों के लिए वक्तव्य या पत्र की चर्चा न की। सालाजी के चने जाने के पश्चात् हसराम ने अपना नाम वापस लेने का जागज भरा और इस प्रकार सालाजी निर्विरोध निर्वाचित हा गए।

सालाजी का निर्वाचन दिसंबर 1925 के आरम्भ में हुआ था। वह उस महीने के अन्त में कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में शामिल हुए परन्तु उन्होंने अपने आपको स्वराज पार्टी में शामिल होने के लिए माध्य नहीं किया था। दरअसल कानपुर

मे वह मोतीलाल नेहरू से अलग रास्ता अपनाने के बरीब पहुच गए थे । 17 जनवरी के 'द पोपुल' मे उन्होने कहा

“मैं स्वराज पार्टी का सदस्य नहीं हूँ, मुझे उसका सदस्य बनने की आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि कांग्रेसजन होने के नाते मैं पूणतया स्वराजी हूँ ।”

जब उन्होंने शपथ ग्रहण की, उस समय तक वह पार्टी मे शामिल नहीं हुए थे । दरअसल 25 जनवरी को पार्टी में शामिल होने से पूर्व, वह विधानसभा की कई बैठका मे भाग ले चुके थे । पार्टी मे विधिवत शामिल होने से पाच दिन पूर्व उन्होंने स्वराज पार्टी मे शामिल होने के बारे मे पण्डित मोतीलाल नेहरू का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था और ऐसा करते समय उन्होंने उन्हें पार्टी के नेता के रूप मे एक पत्र लिखा था

मेरे प्रिय पण्डितजी,

20 जनवरी 1926

आपकी ओर से विधानसभा में स्वराज पार्टी में शामिल होने के निमन्त्रण के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ । पिछली बार जब आपसे भेंट हुई थी, तो मन कहा था कि व्यक्तिगत रूप मे मैंने आपका निमन्त्रण स्वीकार करने का फैसला कर लिया है, परन्तु अपना अन्तिम निणय बताने से पूर्व मे लाहौर में अपने मित्रों से सलाह लेना चाहता हूँ और अन्तिम निणय अपने सोमवार तक बता दूंगा । उसके पश्चात मैंने अपने मित्रों से सलाह ली है, और यह पत्र उसी सलाह भराविते का परिणाम है । पार्टी में शामिल होने हुए मैं अपनी स्थिति पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, ताकि इस सबध मे अभी या भविष्य मे कोई गलतफहमी न रहे । जिन प्रकार मैंने पार्टी के नियम पत्रे है, मुझे उनमे कोई ऐसी बात दिखाई नहीं देती, जो मेरी स्थिति के अनुकूल न हो ।

(क) मैं परिषद के कार्य में विश्वास करता हूँ । मैं परिषद या सभा का बहिष्कार करने के विरुद्ध हूँ । मैं इस बात के पक्ष मे नहीं हूँ कि स्वराज पार्टी के सदस्य सरकार से उपहार के तौर पर कोई पत्र स्वीकार करे ।

(ख) मैं व्यापक तौर पर बाधा डालने के पक्ष मे नहीं हूँ और न ही इसमें मन कभी विश्वास किया है ।

(ग) साम्प्रदायिक प्रश्न पर मैं अपनी स्वतंत्रता बनाए रखना चाहता हूँ । मैं समझता हूँ कि साम्प्रदायिकता के प्रश्न का निणय पार्टी के मत से नहीं किया जाएगा ।

(घ) श्रमिकों तथा पूजीपतियों के बीच विवाद में मैं श्रमिकों का प्रतिनिधि हूँ, परन्तु मैं समझता हूँ कि स्वराज पार्टी के अधिकतर सदस्य भी इसी प्रकार से सोचते हैं।

इन टिप्पणियों के साथ मुझे पार्टी का सदस्य बनने में प्रसन्नता होगी।

भवदीय

लाजपत राय

इसके अतिरिक्त उन्होंने मोतीलालजी को बता दिया कि पार्टी में शामिल हो जान से उनके समाचार-पत्र 'द पीपुल' और 'बड़े मातरम् पार्टी' के नियंत्रण में नहीं होंगे, वे उसी प्रकार ही पार्टी से स्वतंत्र रहेंगे, जिस प्रकार पहले रहे हैं।

इन आवासनों तथा औपचारिकताओं के अतिरिक्त जिस समय लालाजी पार्टी में शामिल हुए, उस समय उनकी राजनीतिक विचारधारा क्या थी? जुलाई 1925 में उन्होंने साप्ताहिक 'द पीपुल' आरम्भ किया था, यद्यपि उससे पूर्व भी वह समाचार पत्रों के लिए अक्सर लिखते रहते थे और अपने विचार व्यक्त करत रहते थे और अब वह हर सप्ताह ऐसा करते थे। इसलिए सदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी कि इस बात की पहले जानकारी नहीं थी कि वह किस बात के विरुद्ध हैं तथा किस बात का विरोध करते हैं। जब चोरी चारा की प्रतिक्रिया के पश्चात् असहयोग आन्दोलन वापस लेना आरम्भ किया गया, उन्होंने राजनीति के बारे में पुनर्विचार आरम्भ किया था और जेल से भी लेख भेज थे (इन लेखों का उनकी ओर से लिखा जाना गुप्त बात नहीं थी)। उन लेखों से उनके विचारों की पूरी जानकारी मिलती थी। स्पष्ट तौर पर यह स्वराज पार्टी वाला शब्द था—यह था कि कांग्रेसजन विधान मण्डल पर कब्जा कर लें। जेल में होते हुए भी उन्होंने इस पार्टी का आधार तैयार करने में सी० आर० दास की सहायता की। जब वह रिहा हुए और अभी अस्वस्थ ही थे, तो भी उन्होंने स्वराज पार्टी के उम्मीदवारों की सफलता के लिए वाय किया। पंजाब में सारे अभियान का दायित्व उन्हीं पर था। उसके बाद जब वह इंग्लैंड गए, उनका पण्डित मोतीलाल नेहरू के साथ निकट सम्पर्क रहा और उन्होंने स्वराज पार्टी की ओर से लेबर पार्टी के नेताओं के साथ बातचीत की। परन्तु वह पार्टी में शामिल नहीं

हुए। वह उसने अनुशासन के अधीन नहीं थे और अपनी स्वतंत्रता को तथा जब उचित महसूस किया पार्टी की आलोचना करने को महत्वपूर्ण और बहुमूल्य मानने थे। वह एक प्रकार से स्वराज पार्टी में शामिल न होने हुए भी स्वराज पार्टी में थे। यह अनौपचारिक रूप से हम प्रकार स्वराज पार्टी से सम्बन्ध थे कि

(1) उन्हें परिपद के वायव्य में विश्वास था और वह "परिवर्तन न चाहते थे" की विचारधारा से सहमत नहीं थे, और (2) वह एक स्वीकार करने में विश्वास नहीं रखते थे और इसलिए प्रतिमवेदी विचारधारा से सहमत नहीं थे।

मोटे अनुमान लगाने वाले किसी जल्दबाज के लिए यह आसानी से स्वराजवादी दिखाई दे सकते थे और कुछ नहीं, फिर भी अधिक ईमानदार व्यक्ति के लिए, जो अधिक धैर्य में जाने वाला हो, स्वराजवाद में उनके मतभेद विह्वल स्पष्ट दिखाई दे सकते थे, जिन्हें हर सप्ताह उनके लेखा में विशेषतौर पर अंकित किया जा सकता था। एक विचार के तौर पर आरम्भ होकर और अपरिवर्तनवादीयों द्वारा कुछ समय के लिए ऐसा ही समझ लेने के पश्चात् स्वराज समय और पर एक विचारधारा बन गया था और इसके अपने सिद्धांत विकसित हो गए जैसे "जो कोई भी बचेगा" उसे "बाधा डालने, लगातार, समान तथा बराबर बाधा डालने की प्रतिज्ञा करनी होगी।" इस सिद्धांत को लालबाहू किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं कर पाए थे। "एक वर्ष के अंदर स्वराज" और एक निश्चित तारीख के अंदर की बात उन्हें विलुप्त अभ्यावहारिक महसूस होती थी और उनके मान में कपट की आवाज महसूस होती थी। व्यवहार में स्वराजवादी अक्सर इस सिद्धांत की भावना से हट जाते थे। उन्होंने यो० जे० पटेल को अध्यक्ष बना दिया था और विधान मण्डल के अंदर उनका दैनिक व्यवहार किसी भी ढंग से बाधा डालने के सिद्धांत के अनुसार नहीं होता था। बाधा डालना तो उनके शास्त्री में से केवल एक हथियार था। परन्तु उन्होंने अपने सहयोग के लिए बहुत कड़ी सीमाएँ निश्चित की हुई थीं—वह पद स्वीकार नहीं करेगा और इस सिद्धांत के व्यापक क्षेत्र में सदन की मामूली भी इस प्रतिबन्ध के क्षेत्र में आती थी। परन्तु जब तक लालबाहू का आगमन हुआ, इस नियम की कड़ाई कम होती जा रही थी, क्योंकि स्वराज नता स्वयं और पूरी बुद्धिमत्ता से (जैसा लालबाहू का विचार था) सेवा के भारतीयकरण के संबंध में स्कीम समिति का सदस्यता स्वीकार

नर ली थी। यह स्वराजिया के निश्चित मत में महत्वपूर्ण परिवर्तन था, एक के बाद दूसरे निषेध का घोर उल्लंघन होने की आशंका थी। दरअमल कुछ एक को मय था (कुछ एक को आशा) कि संभवतः यह भेद का आरंभ हो।

नई बार लालाजी महसूस करते थे कि स्वराज पार्टी के नेता अनुशासन के नाम पर बहुत बठार होते जा रहे थे और बहुत शीघ्र यह भूल रहे थे कि उन्होंने स्वयं अपने "अपघम" के लिए बहुत छूट ली थी, और हाल ही में "बीमार अंग को काट पकन" की बहुत बात होने लगी थी, जब कि रूढ़िवादी असहयोगी अभी भी अपने आपको यह आश्वासन नहीं दिला पाये थे कि समूचा संसदीय अंग, जो अपने आपको स्वराज पार्टी कहता था, राजनीतिक शरीर का केवल रोगग्रस्त भाग नहीं था। नताशा के व्यवहार की, जो उन्हें असहनीय लगता था, आलोचना करते हुए, ऐसा जान पड़ता था कि लालाजी नई बार प्रतिसवेदी विचार का पक्ष लेते थे, यद्यपि 1925 के सिद्धांत के साथ उन्हें कोई सहानुभूति नहीं थी अर्थात् द्विशासीय संविधान में पद स्वीकार करने की इच्छा।

स्वयं उन्होंने सदेह व्यक्त किया था कि उन्होंने संसद में आने के लिए गलत अवसर चुना था। क्योंकि, जैसा कि उन्होंने कहा था कि "स्थिति अनिश्चित तथा अस्पष्ट" थी। 1925 में स्वराज पार्टी मतभेदों के कारण अनुशासन तथा एकता की दृष्टि से क्षीण होती जा रही थी और अनुशासन पर अधिक जोर देने से स्थिति और बिगड़ रही थी। ताबे की घटना के कारण एक संकटपूर्ण स्थिति आ गई। श्रीपद बलबन्त ताबे को, जो प्रांतीय विधान परिषद में स्वराज पार्टी के सदस्य तथा अध्यक्ष थे, कार्यकारी पापद का पद पेश किया गया था और उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया था। उनका यह काम तीन प्रकार से आपत्तिजनक था। द्विशासीय प्रणाली के अधीन किसी कांग्रेसजन के लिए पद स्वीकार करना गलत बात थी। यह एक गलत उदाहरण था कि किसी अध्यक्ष का इस प्रकार सरकार द्वारा बरगला लिया जाए। यह बात पूरी तरह स्पष्ट थी कि यह अनुशासन के घोर उल्लंघन का मामला था, क्योंकि ताबे ने स्वराज पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी को इस पक्षक तथा अपने इरादों के बारे में कभी जानकारी नहीं दी थी। पण्डित मोतीलाल स्वभाविक ही इस बात पर बहुत नाराज थे। स्थिति उस समय और भी बिगड़ गई, जब जयकर और वेत्तकर तथा स्वराज पार्टी के कई अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों ने, यदि सही अर्थों में क्षमा-याचना नहीं की, तो कम से कम ताबे के व्यवहार की इस बड़ी

बात का छोटा बनान का प्रयत्न अवश्य किया। उनके लिए यह मामला तो प्रायः वी० जे० पटेल को अध्ययन पद पर नियुक्त करा तथा पण्डित मातीलाल का 'स्वीट मिसिडि' में नामजद करा के ममान ही था। यह समय है कि पण्डित मातीलाल और वी० जे० पटेल का व्यवहार तबनीही तौर पर निरदनीय नहीं था, क्योंकि यह पार्टी का उन्नयन नहीं बढ़ा जा सकता था, परन्तु मूल प्रश्न यह था (दोना अमहमता के अनुसार) कि नियम पार्टी के सिद्धांत तथा नीतियों के अनुकूल विचरिन नहीं है। पाण। इनमें तो निरन्तर परिवर्तन होता रहा है और पूर्णरूपण बाधा डालने का मिट्टाल पार्टी द्वारा गुने आम स्वीकार करने से पहले ही बहुत बदल गया है और प्रतिसवेदना की ओर बढ़ गया है और यह बात समय के विन्वुल अनुकूल है कि पार्टी के नेता तथा सिद्धांत इस तथ्य का स्वीकार करे।

हामे का यह मामला नारे अक्टूबर मास में राजनीतिक मंच पर छाया रहा। पहली नवंबर का स्वराज पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारणी की बैठक नागपुर में हुई। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने विचार व्यक्त किया कि तावे की कार्रवाई का मामला अवेला नहीं, बल्कि अय लोका का समझन इसे प्राप्त है और केंद्रीय प्राता में—जहा स्वराज पार्टी की चुनाव सफलता अन्य सभी प्राता के मुकाबले अधिक थी, पार्टी के नेता ने स्वयं पद प्राप्त करने के लिए प्रात्साहन दिया। यह बात स्पष्ट थी कि तावे की घटना के बारे में स्वराज पार्टी एक मत नहीं थी और काफी सख्या प्रतिसवेदी अपघम की समर्थक थी। बम्बई में जयकर तथा बेलकर ने अभियान शुरू किया कि स्थानीय स्वराज पार्टी प्रतिसवेदी सहयोग को स्वीकार कर ले। कुछ ही मास पूर्व सी० आर० दास की मृत्यु स्वराज पार्टी के नेताओं के लिए एक जोरदार धक्का थी। मोतीलाल नेहरू को इसके बाद इतनी जल्दी तूफान का सामना करना पड़ा। उन्हें सी० आर० दास की अलौकिक अन्त प्रज्ञा की सलाह और काय में उनकी महत्गतिशील शक्ति का अभाव अवश्य महसूस हुआ होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक नागपुर में हुई, जो एक सधि पर पहुँचकर समाप्त हो गई परन्तु इसके कुछ ही दिना बाद बेलकर और जयकर ने कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि उन्हें शिकायत थी कि पार्टी के नेता ने प्रतिसवेदी सदस्यों पर लगातार आक्षेप किए हैं। उन्होंने त्यागपत्र इसलिए दिए हैं, ताकि वे अपने विचार व्यक्त कर सकें।

इस प्रकार यह तूफान अभी चल ही रहा था, जब लालाजी जालधर निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होकर आ गए ।

यद्यपि लालाजी स्वयं पद सम्भालने के प्रयोग के विरुद्ध थे फिर भी उनकी सहानुभूति प्रतिसवेदियों के साथ थी । ये सबघ व्यक्तिगत सम्मान पर आधारित थे— यह धारा तिलक के दिनों की थी, केलकर तथा जयकर और प्रायः सारा महाराष्ट्र-गुट हिंदू सगठन स्थापित करने की उनकी राय से सहमत था । परंतु अधिक बड़ा प्रश्न तो यह था कि "समान, लगातार और बराबर बाधा" लालाजी के लिए पदों के प्रश्न से भी अधिक थी । इसके अतिरिक्त उस समय जब असहयोग जैसे बड़े कामन्म नहीं चल रहे थे, जब नेता स्वयं अघेरे में हाथ मार रहे थे और सभी नीतियां तथा सिद्धांत अस्पष्ट हो गए दिखाई देते थे, उन्होंने महसूस किया कि ऐसे अवसर पर "अनुशासन" के नाम पर असहमति की आवाजा का गला घोटना बुद्धिमत्ता की बात नहीं थी । इसके विपरीत आवश्यकता तो इस बात की थी कि सभी कामों का पूरी तरह मूल्यांकन किया जाए, ताकि कोई स्पष्टीकरण संभव हो सके । जयकर ने शिकायत की कि नेता का स्वर रोब जमाने वाला है और कई ऐसे व्यक्ति, जो जयकर के प्रतिसवेदी विचारों से तो सहमत नहीं थे, फिर भी महसूस करते थे कि नेता "अनुशासन" का इस्तेमाल बहुत करते हैं और वह नहीं चाहते कि नेता शीरफाह के लिए सदा तैयार रहें, ताकि जो राजनीतिक अंग उन्हें "रोगग्रस्त भाग" महसूस हो उसे काटकर अलग कर दें ।

इस प्रकार प्रतिसवेदी लालाजी से किसी हद तक सहानुभूति और समर्थन प्राप्त कर रहे थे, यद्यपि स्वयं लालाजी उनके इस नाम से आकर्षित नहीं थे और न ही उन्हें त्रिशासीय संविधान के अधीन पद स्वीकार करने को अकलमती का काम होने के बारे में विश्वास था । दरअसल वह अध्यक्ष पद स्वीकार किए जाने के बारे में भी सहमत नहीं थे, यद्यपि इस सबघ में बाद के अनुभव ने शीघ्र ही शकाए दूर कर दी । इसका श्रेय वी० जे० पटेल की प्रतिभा को जाता है, जिन्होंने इस पद को गरिमा प्रदान की और आशाओं से बही अधिक देश हित के लिए सेवा की ।

स्वराज पार्टी का यह आंतरिक विवाद उस समय एन० सक्कट का रूप धारण कर रहा था, जब लालाजी ने विधानसभा में प्रवेश किया । वह दल के पक्षपाती भी

नहीं थे और यहाँ तक कि वह पार्टी के सदस्य भी नहीं थे। उन्होंने अपने प्रभाव का सतुलन के लिए इस्तेमाल किया। अपने नामाङ्कन पत्र दाखिल करने के पश्चात् लालाजी हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए बम्बई चले गए थे, जिसके लिए एम०आर० जयकर स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गए थे। पण्डित मोती लाल तहल तथा आगामी कांग्रेस अधिवेशन के लिए नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बम्बई में थीं और काफी विचार विमर्श के पश्चात्, जिसमें लालाजी न प्रभावशाली भूमिका निभाई, समझौता हो गया।

परन्तु 'युद्धविराम' का अर्थ समझौता नहीं था। इसमें केवल युद्धविराम हुआ। क्या समझौते की कोई संभावना थी या कि इसका निणय मासान में कानपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में ही होना था ?

जब कानपुर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, तब भी समझौता उतना ही दूर तक आता था, जितना पहले था। इस अधिवेशन में सराजिनी नायडू ने महात्मा गांधी से कायमार मभाला। अपने कायबाल के अंत में महात्माजी राजनीतिक अघाड़े से निबर वप भर के लिए अपने जाश्रम में चले गए, ताकि वह अपने मनपसंद कायप्रम अवकाश का निर्देशन कर सकें। कांग्रेस भयठन अब उन्हाण स्वराजवादिया को सौंप दिया—सुपुदगी का जो काम उन्होंने कुछ माह पहले शुरू किया था, पूरा कर लिया। सुपुदगी का प्रारम्भ स्वराज पार्टी के अपघम के ससदीय कायप्रम का सहन करन से हुआ था। इस प्रकार सहन करने का भी स्वराजियों का मूल्य चुकाना पडा था, जो खादी कायप्रम को विशेष समघन देने क रूप में था। बंनगाम में, जब गांधीजी ने अध्यक्षता की, उन्होंने उनके साथ समझौता कर लिया और यह स्वीकार कर लिया कि कांग्रेस की सदस्यता के लिए "खादी मताधिकार हागा। जब कुछ मां पश्चात् पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का बैठक हुई, यह स्पष्ट था कि स्वराजिया ने इस मताधिकार का अव्यावहारिक पाया, यदि इसे स्पष्टता में कहा जाए तो उसे बण्टव जैमा पाया और परिवलन न करने के कुछ समयका न यह बात साफ साफ कह दी कि स्वराजा इस मताधिकार को स्वीकार करने में कभी भी निष्ठावान नहीं थे। गांधीजी स्वयं और अधिक झुकने की मन स्थिति में थे, उन्होंने यह प्रश्न भी हटा दिया कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को पूर्ण अधिवेशन से पारित प्रस्ताव से रद्दोबदल करन की बात उसने अधिकार क्षेत्र में आती है। माथ ही उन्होंने अपनी शत 'बनाई की भी छोड दी। वह इसे शानि की पेशकश तथा विशाल हृदयता की सम्भावना के तौर पर करना चाहते थे।

कानपुर में उन्होंने सगठन का काय स्वराज पार्टी को सौंपकर यह सुपुदगी पूरा कर दी। अब तक स्वराज पार्टी चुनाव का अपने तार पर प्रबंध करती रही थी ताप्रस से कम से कम महायना लेने के साथ, अब चुनाव पूरी तरह कांग्रेस के तन्वावधान में किए जाने थे। मसदीय कायक्रम अब तक केवल स्वराज पार्टी का ही मामला था। अब यह मामला कांग्रेस का मामला बन गया था। इस प्रकार स्वराजिया को कांग्रेस का सम्मान, सगठन तथा धन अपने अधिकार में मिल गए थे। कांग्रेस ने यह बात स्वीकार कर ली थी कि अब वे जो भी करेंगे वह उनके लिए जिम्मेदार होंगे, इसका अर्थ यह भी था कि अपने कार्यों के लिए स्वराजवादी समूची कांग्रेस पार्टी के आगे उत्तरदायी थे। स्वराजवादियों का ऊट अर् अर्थ के सारे तबू पर अधिकार बन चुका था। सुपुदगी मुकम्मल हो चुकी थी, गांधीजी सब कुछ छोड़कर सारा समय चर्खे तथा कताई को बढ़ावा देने के लिए साबरमती चले गए थे।

परन्तु कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन के प्रमुख प्रस्ताव न केवल स्वराजवादियों का कांग्रेस को सत्ता में ही स्थापित न किया, बल्कि उनके लिए कायक्रम भी निर्धारित कर दिया। और विवाद न अपना मिर फिर उठाया, क्या यह कायक्रम प्रतिमवेदी हागा या बाधा डालने वाला ?

बाई वीस का रास्ता दूढ़न के सभी प्रयत्न असफल रहे। पण्डित मोतीलाल प्रतिसवेदी हाने का लेवल सहन करने का तैयार नहीं थे, न ही कोई ऐसा फार्मूला सहन करने का तैयार थे—प्रत्यभ या पराम्भ रूप में—कि पद स्वीकार किए जाए। इन सीमाओं में रहते हुए केसकर तथा जयवर को सतुष्ट करना संभव नहीं था।

सालाजी 1907 में सूरत और 1920 में नागपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन के लिए प्रश्नचिह्न थे। वह स्वराज पार्टी में भी शामिल नहीं हुए थे, निर्विवाद निर्वाचित होने के कारण उन्हें पार्टी की आर स नामजद किए जाना या पार्टी अथवा इसके कायक्रम के नाम पर अपील करने की आवश्यकता भी नहीं हुई थी। और निर्वाचित होने के पश्चात् समाचार पत्रों में अपन लेखा में उन्होंने स्वराज पार्टी के 73 कार्यों तथा कई सिद्धांतों की आलाचना भी की थी। प्रतिसवेदिया को कुछ सीमा तक उनके समयन प्राप्त था, परन्तु वह उनके गुट से सम्बद्ध नहीं थे, न ही उन्होंने लेवल तथा पद स्वीकार करने का उनका मत स्वीकार किया था। अपने

ही प्रातः म स्वराज पार्टी द्वारा बोर्ड पद ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं था, न ही पञ्जाब में उनसे सहायता एक मित्रों में बोर्ड प्रतिमवेदी था। दरअसल, उनका पूरा दयाव ता पण्डित मोतीलाल से समझौता करने के लिए था। दूसरी ओर यदि वह नहूँ से समझौता करने का प्रतिगवेदी महसूस करते कि उनसे साथ बफादारी नहीं हुई।

जय स्वराजवादी पहनी बार इडिपेंडेंट पार्टी के साथ विधान सभा में गए थे, तो उन्होंने सरकार के साथ समझौते के लिए कुछ शर्तें रखी थीं। यह 18 फरवरी, 1924 का हुआ था और कांग्रेस में सभी "भाली भाली आत्माएँ" विश्वास करती थी कि स्वराजवादी बेचल वही माग करेंगे—जिसे कुछ लोग "अल्टीमेटम" कहना पसंद करते थे—और हमेशा के लिए विधान सभा से निपट जाएंगे। माग रख दी गई और परीच दो घण तज इम बात का कोई खरेत नहीं था कि यह स्वीकार की जा रही थी, इस बीच जो लोग बड़ी चिंता से कांग्रेस सदस्यों के विधानसभा से निवलने की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे आश्चय तथा शका से देख रहे थे। मूल रूप से बाधा डालने का कायक्रम धीरे धीरे नरम पडता गया और अतः म स्थिति महा तक पहुंच गई कि स्थान कमिति में गामजद स्थान भी ले लिया गया। अब जब कि अगले चुनाव निगट आ रहे थे, तो स्वराजवादी फिर से सोचने लगे थे कि काफी देर से लटके "राष्ट्रीय माग" के प्रश्न को लेकर अलग हो जाए। कानपुर-अधिवेशन के प्रस्ताव के प्रारूप में कहा गया था कि वे विधान सभा से बाहर निकल जाए और गांधी के जाकर अपना समय पुराने रचनात्मक कायक्रम को बढावा देने में लगाए। इस प्रकार की मदभावना से उनका विश्वास था मतदाताओं की राय बहुत प्रभावित होगी और इस प्रकार वे पार्टी के लिए 1923 के चुनाव के मुकामले अधिक शानदार विजय प्राप्त कर पाएंगे।

ऐसा कायक्रम लालाजी को अधिक पसंद नहीं था। ऐसा दिखाई पडता था कि वह भालवीपजी, जयकर तथा बेलकर का साथ देंगे और फिर स्वराज पार्टी से सबध विच्छेद कर लेंगे—जिसका अब अथ था कांग्रेस पार्टी के बहुमत में। परंतु उन पर दबाव डाला गया, विशेषकर पञ्जाब के मित्रों द्वारा कि वह ऐसी स्थिति को टालें, पण्डित मोतीलालजी से समझौता कर लें। नाथपुर में भी पञ्जाब के प्रतिनिधिमंडल ने जोर दिया था कि वह गांधीजी से समझौता कर लें। परंतु उनमें अन्तर इतना था—वह गांधीजी के साथ समझौता करने के लिए उत्सुक थे, क्योंकि उन्होंने असहयोग आंदोलन स्वीकार कर लिया था और वह बड़ा असहयोग

आन्दोलन आरम्भ करने के पक्ष में थे, उन्हें केवल कुछ ब्यौरा स्वीकार्य नहीं था। उनके अपने झुकाव तथा वचनबद्धता दिसम्बर 1925 में उन्हें नहरू-कायत्रम से अधिक दूर ले गई, जितने दूर वह गांधी कार्यक्रम से चार वर्ष पूर्व नहीं थे। बात चीत बार-बार टूट जाने की नौबत आ जाती थी, परन्तु दाना के समान मित्र इधर-उधर भाग दौड़ करके बार-बार पण्डितजी और लालाजी का समझौते पर ले आते थे। लालाजी के आग्रह पर प्रस्ताव के मसौदे की कई व्यवस्थाओं में परिवर्तन कर दिया गया, विशेषकर यह व्यवस्था की गई थी कि विधानसभा तथा राज्य परिषद में स्वराज पार्टी के सदस्य वित्त बिल को अस्वीकार करने के लिए मत देंगे और तुरत ही अपने स्थान त्याग कर चले जाएंगे। तब तक वे उसी प्रकार कार्य करते रहेंगे, जिस प्रकार वे पार्टी के नियमों के अधीन अब तक करते रहे हैं इसमें यह व्यवस्था भी की गई थी —

“विशेष समिति का यह अधिकार होगा कि वह स्वराज्यी सदस्यों को विधान मण्डला के अधिवेशन में भाग लेने की अनुमति दे दे, जब उसके विचार में यह उपस्थिति कि-ही विशेष कारणों तथा अमाधारण उद्देश्यों के लिए आवश्यक हो।”

दूसरे शब्दों में ब्रजट अधिवेशन (नई दिल्ली में) का केवल अंतिम भाग ही नियुक्तियों के खाता में था, जब कि शिमला-अधिवेशन में भाग लेने की मनाही थी और यदि ऐसी कर्तृ स्थिति हो कि विशेष समिति असाधारण महत्व महसूस कर, तो वह स्वराज पार्टी के विधायकों को अधिवेशन में उपस्थित होने के लिए कह सकती थी। यह समझौता प्रस्ताव पण्डित मोतीलाल ने रखा था और लालाजी ने इसका समर्थन किया था। मालवीयजी ने इसमें एक सक्षिप्त सशोधन पत्र किया।

“विधान मण्डला में कार्य इस ढंग में किया जाए, ताकि इससे यथाशीघ्र उत्तरदायी सरकार स्थापित करने में अधिवक्त्र से अधिवक्त्र सहायता मिले, सहयोग केवल उन्म समय दिया जाए, जब इससे राष्ट्रीय हित को बढ़ावा मिल सकता हो तो स्वराज पार्टी के सदस्यों को इसमें भाग लेने के लिए कह दिया जाएगा और बाधा डालने के लिए भी तभी कहा जाएगा जब इसी हित को बढ़ावा मिलता हो।”

प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए जयकर ने विधान सभा से अपने तथा क्लककर के त्यागपत्रों को तथा प्रांतीय विधान परिषद से मुजे के त्यागपत्र की घोषणा की।

इस प्रकार विच्छेद हो गया—भातीलाल नेहरू के साथ नहीं, बल्कि केलकर और जयकर के साथ—आर लालाजी के लिए यह कम पीठा की बात न थी। यदि पंजाब से उनके सहायक इतना अधिक जोर न देते, ता संभव था कि उनका व्यवहार कुछ और ही होता, परन्तु लज्जावती, सतनाम और अचित्त राम ने उनसे इतना जोरदार अनुरोध किया कि लालाजी के लिए उनके जोरदार निवेदन की अवहेलना करना संभव न हो पाया। शायद उनके सहायक का, यदि इस बात का ज्ञान होता कि जयकर तथा पुणे गुट के साथ उनके नेता के वधन कैसे है और यदि उन्होंने यह अहसास किया होता कि उनसे अलग होने पर वह कितना कष्ट महसूस करेंगे, तो शायद वे इतना अधिक जोर न देते। कानपुर प्रस्ताव में, जिस रूप में वह अंतिम तौर पर पारित हुआ, बहुत लचक थी और उनके अपन अनुमान के अनुसार उसमें राजनीतिक स्थिति में निपटन के लिए अधिक कुछ नहीं था, फिर भी उन्होंने जयकर तथा पुणे गुट से विच्छेद को पसंद न किया जाता। प्रस्ताव के गुणों के बारे में उन्होंने अपने समाचारपत्र में लिखा कि कानपुर अधिवेशन ने “कांग्रेस को फिर अपने आप में ला दिया था।” क्योंकि अब सारा राजनीतिक काम “कांग्रेस के नाम पर और कांग्रेस के निर्देशन में होगा। स्वराज पार्टी विधान मण्डली में छाई हुई थी, उनके बाहर उसका कोई संगठन नहीं था।” ऐसी आत्मनिभर पार्टी के बारे में, जो अपने मतदाताओं के अलावा किसी और के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, उनकी टिप्पणी इस प्रकार थी “बहुत से स्वराजवादी कांग्रेस समितियाँ की कोई पगवाह नहीं करते थे। वे कोई चंदा नहीं देते थे, किसी बैठक में भाग नहीं लेते थे और कांग्रेस के हित का बढावा देने के लिए कोई काम नहीं करते थे। वे जिस अधिकार से दिशा लेते थे या जिसकी परवाह करते थे, वह उनका अपना नेता ही था। दरअसल परिपदा की स्वराज पार्टी में ऐसे सदस्य थे, जो कांग्रेसजन नहीं थे। कांग्रेस प्रस्ताव न इस सब में परिवर्तन कर दिया था।”

वर्तमान विवाद के बारे में दो ठोस प्रश्न सामने आते थे—बाधा तथा पद। उनमें से पहले के बारे में उन्होंने अपना पक्ष दोहराया “मेरे परिपदा का बहिष्कार करने के विरुद्ध हूँ और इसी प्रकार परिपदा में व्यापक रूप में बाधा डालने की नीति के भी विरुद्ध हूँ। मेरा विश्वास है कि परिपदा से उसी प्रकार काय लिया जाए जिनके वह योग्य हैं और जिस प्रकार पिछले दो वर्षों में स्वराज पार्टी ने उन्हें इस्तेमाल किया था।”

पद स्वीकार करने के बारे में उनका विचार था "मेरा अब भी विचार है कि राष्ट्रवाद का यह तकाजा है कि भारतीय राजनेताओं की कम से कम एक पार्टी ऐसी होनी चाहिए, जो सरकारी उपहार के तौर पर पद स्वीकार न करे। ऐसा करने भारतीय राष्ट्रवादी केवल आयरलैंड के राष्ट्रवादियों के ऐतिहासिक उत्साह का अनुसरण ही करेंगे।"

कानपुर प्रस्ताव किसी भी तरह ऐसी स्वीकृति के विरुद्ध नहीं था। परन्तु यह पूछा जा सकता था कि, 'प्रस्ताव के उस भाग का क्या अर्थ है, जिसके अनुसार स्वराजवादी अगले अधिवेशन के पश्चात् परिपदा से बाहर आ जाएंगे और दश से अपील करेंगे ?'

इस व्यवस्था की लालाजी द्वारा व्याख्या (जाचित्य) यह दी गई "जसा मैं समझता हूँ इसका उद्देश्य असाधारण प्रदर्शन करना है। हमारा जैसे असहाय लोग जिनके पाम अपनी भाग के समर्थन में भौतिक स्वीकृति नहीं, अपन कायक्रमों में ऐस प्रदर्शनों का समाप्त नहीं कर सकतें। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में ऐसा अनेक बार किया गया है तब भी जब महात्मा गांधी के आन्दोलन का जन्म भी नहीं हुआ था। सर फिरोजशाह मेहता न एक बार सरकार के व्यवहार के विरुद्ध रोप व्यक्त करने के लिए अपने साथियों समेत सदन त्याग किया था। श्री शास्त्री उस समय परिपदा से निकल आए थे, जब वाइसरॉय ने पंजाब में माशन ला प्रबंध के बारे में उनका प्रस्ताव रद्द कर दिया था। स्वराजवादी दश के सामने नए चुनाव के लिए जा रहे हैं। वर्तमान विधानमंडल में उनका मुख्य कार्य सविधान में परिवर्तन की भाग बनवाने के लिए अर्थ पार्टियों में सहयोग करना है। उनके इस रास्त के लिए अपनाए गए इस सिद्धांत पर मुझे कोई आपत्ति नहीं। वह भारतीय जनता को और विश्व को आम तौर पर यह दिखाना चाहत है कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने के लिए हर संभव उपाय किया और सरकार ने अक्सर उनके प्रयत्नों का घुणा से ठुकरा दिया है।"

कांग्रेस की उपलब्धियों की चर्चा करते हुए लालाजी ने लिखा "य साक्ष्य है कि कांग्रेस अधिवेशन की एक स्थायी उपलब्धि यह है कि कांग्रेस अपने आप में आ गई है। जहां तक राजनीतिक कार्य का प्रश्न है, पिछले तीन वर्षों में यह न के बराबर रहा है। सारा राजनीतिक कार्य स्वराज पार्टी ने किया है। इस परिणाम स्वल्प वह छा गई और उसने कांग्रेस को पीछे हटा दिया। स्वराज पार्टी अत्र

प्रायः समाप्त ही हो जायेगा। कांग्रेस कायकारिणी अथवा उनका साया का नियंत्रण तथा भागदशन करेगी जो उसके नाम पर परिपत्र तथा सभाओं के लिए चुनाव लड़ेगे। नीति तथा व्यवहार दाना की दृष्टि से ही यह अवश्य लाभकारी बात है, हालांकि यह पृथक् जातिम तंत्रिण नही है।”

यह आपका गुनन म चाह किंतना ही विश्वसनीय लग, अगल म दाना विराधी विचारधारारा के नना इसस मतुष्ट नही थे और दाना आर मद्भावना तथा विग्राम का अभाव था, जो किसी भी समझौते का मफल बनान के लिए आवश्यक हाता है। स्वयं लालाजी पर आवश्यकता मे अधिक दबाव डाला गया था—विशेष कर लज्जावती तथा सतनाम की आर से—कि वह पण्डित मातीलाल से अलग न हा आर समझौते का काई भाग संयाग या स्वीकार कर। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार के दबाव स कोई चिरस्थायी समझौता न हो पाया।

इस अधिवेशन म एक छाट्टी-भी घटना नई थी—यह थी राष्ट्रीय तिरगे का औपचारिक रूप मे पहराना। हार्डिंकर का हिंदुस्तानी सेवा दल अब नियमित रूप से काय कर रहा था। लालाजी का ध्वज पहरान तथा सलामी लेने के लिए बुना गया था।

परन्तु जिस प्रकार आशा की जा सकती थी, महाराष्ट्र का गूढ नाराज था। शीघ्र ही लालाजी का उनकी कटु टिप्पणी के बारे म शिकायत करनी पडा। उन्होंने द पीपुल म लिखा

‘मर ‘मराठा’ के मित्त मुनस बहुत नाराज दिखाई देत ह। कांग्रेस क वानपुर-अधिवेशन के बाद से ‘मराठा’ म मुझ पर किसी-न-किसी ढंग से आक्षेप किए गए है। हर मामले म उहाने मुझ पर आक्षेप किया है। मैने कभी उत्तर नही दिया और न ही जब दूंगा। हमारी नीति म मतभेद के बावजूद श्री जयकर तथा श्री केलकर के प्रति मेरे सम्मान तथा स्नेह म काई अन्तर नहीं आया। पुणे के ये महाराष्ट्रीयन और मैं जीवनमर के साथी रह है और यदि मुझे उनके बार म काई कटु बात कहने पर मजबूर हाना पडे ता मुझे अत्यंत दुख होगा। मुझे उस परीणा से जितना मुझस हो सके, अवश्य बचना है। मुझे यकीन है कि हम उमी मच स और उसी उत्साह तथा सद्भावना स काय करेये जिस प्रकार से हम अब तक करते रहे ह। वतमान मतभेद बिल्कुल अस्थायी है। मैं नही समझता कि कटाक्ष तथा व्यथ का मित्ता के विरुद्ध प्रयाग किया जाना चाहिए और ‘मराठा’ म मुझ पर किए गए अन्तिम आक्षेप का यही उत्तर है।’

उन्हें बर्मा में एक हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए बुलाया जा रहा था। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया, परन्तु सम्मेलन के आयोजकों में अनुरोध किया कि नई दिल्ली अधिवेशन समाप्त होने तक वह सम्मेलन स्थगित कर दिया जाए। परंतु जैसा कि उन्होंने बाद में 'द पीपुल' में लिखा, "बर्मा दखन की इच्छा और उसे पूरा करने की आशा बनी हुई थी"। ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि 1907 के बाद वह कभी बर्मा नहीं गए थे और उस समय भी उन्हें वही देखे जान के कारण उनके मन में बर्मा के प्रति उत्सुकता पैदा हुई थी, जिस मत्तुष्ट करन का अवसर नहीं मिला था। मभवत वह बानपुर की घटनाओं में उत्पन्न हानि वान विपादमय प्रभाव को दूर करना चाहते थे और पुन विचार करके उन्होंने बर्मा जान का बुलावा स्वीकार कर लिया। बानपुर में अचि तराम के साथ वह नववय दिवस पर कलकत्ता से स्ट्रीमर पकडने के लिए रवाना हो गए।

वह अपने पुराने बर्मी मित्रों से मिले, नए लोगों से सम्पर्क किया और वहाँ भारतीय मूल के लोगों से बातचीत की तथा उनकी समस्याओं के समाधान के लिए समुचित सलाह दी। इन सबके अलावा वह माउले दुग में फाट डफरिन और पी०डब्ल्यू०डी० डाक बंगला दखन भी गए, जिनमें उन्हें बर्मी रखा गया था।

उन्होंने पगोडा और चिख भी देखे, पुरातन तथा नए मंदिर देखे, जहाँ वे अवसर रखे जाने थे, जो ब्रिटिश अधिकारियों ने पशावर में बर्मी पुजारियों का भेद किया थे।

'द पीपुल' में प्रकाशित उनकी अल्प टिप्पणियाँ, जो बर्मी व्यवहार तथा नीति कता के बारे में थीं, बहुत राक्षक थीं। उनमें सुंदर रगीने परिधान का, जो पुरुष भी पहनते थे और महिलाओं के अति लम्बे बेशा की चर्चा भी थी—जो दखन तक होत थे—और उनसे भी लम्बे होत थे। उन्होंने गुना कि जय भुक्त गणय पुर्क दशभक्त पुजारी उत्तमा को जेल से रिहा किया गया था। "उन्हें बर्मी युवकों की दो पक्षियों के बीच से गुजारा गया, जिन्होंने उन्हें साथ में धरती पर बिछाए हुए थे।" जन समूह द्वारा अपने नेता के लिए वायव्यक थायी का गीता उदाहरण शायद ही कोई है, जो उन्होंने उग लेन में रखा।

भारतीय समुदाय, गर-बर्मी मूल के लोगों का यथा संभव दान के द्वारा ही प्रस्तावित कानून के बारे में चिंतित था। यथायथी गृहीत नीति परामर्शगत म्पटवादिता से उन्होंने इन स्थिति का यथा किया, "भारतीय मूल के लोगों ने अपना अपना समय जी लिया है, अब वे यहाँ के लिए धारणक नहीं हैं। देश का शक्ति

उनकी सहायता तथा महयाग के विना भी चलाया जा सकता है। दरअसल एगला इंडियन शासक, ध्यापारी तथा वारीगर भारतीयों के वमा में प्रिबुल चन जान से बहुत प्रमत्त होंगे।" उहाा स्पष्ट तौर पर कहा, "वमा की समस्या का समाधान वमा तथा वर्मा के लागू न हिया न ध्यान में रखाकर किया जाना चाहिए, जिमी ओर न हिन में नहीं।" इसलिए ज्हानि वहा रहन काल भारतीय समुदाय से समझाया कि वे वहा 'वेवल प्रमिया के समान' रहें, अपन आपनो पूरी तरह समिया के बराबर समझें, ताकि उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता न पड़े और वर्मा के लागू उन्हें विद्वशी न समझे। यह आदेश महाविरा विल्कुल न माना गया और इसका परिणाम भारतीय समुदाय के लिए कष्ट तथा कठिनाइया के रूप में आया, जब उन्हें 1942 में मजबूर होकर भारत भागना पडा, जिस समय जापानी आक्रमणकारी वडी तेजी से वढे चले आ रहे थे।

जमी से वह विधानमभा के अधिवेशन में भाग लेन के लिए नई दिल्ली लौट आए जा जनवरी 1926 के मध्य में आरम्भ हुआ था। कुछ ही दिन पश्चात् जसा कि हमने दखा है वह स्वराज पार्टी में शामिल हो गए। इस अधिवेशन में उहाा अनेक महत्वपूर्ण वाद विवादों में भाग लेकर प्रमुख यागदान दिया—जब भारतीय श्रमिक संगठन विल पक्ष हुआ, राजगार के बारे में आर (श्री शफी का) राजनीतिक कैदिया तथा निवासिता के बारे में प्रस्ताव पक्ष हुआ। उपयुक्त न उनके अपन मन के तार झनझना दिए आर समपण करवा दिया कि किस प्रकार उहाान कष्ट झेले थे और दावा किया कि सदन में व्यक्तिगत अनुभव से इन संबंध में बोलने के लिए और अधिक माय्य व्यक्ति कोई नहीं।

'व्यावहारिक' तार पर तीना उपधाराए मर जीवन में कभा न कभी मुझ पर लागू हुई है। 1907 में मुझे 1818 के अधिनियम 3 के अधीन निर्वामित किया गया। 1921 में मुझे एक अपराध के लिए सजा दी गई जिसके बारे में भारत सरकार ने वाद में घोषणा की कि वह अपराध ही नहीं था। उमी वष मुझे एक अन्य अपराध के लिए सजा दी गई, जो सरकारी वकीला के कथनानुसार सिद्ध ही नहीं हुआ था। जब मैंने अमरीका से लौटना चाहा, तो मेरे साथ निर्वासित के तौर पर व्यवहार किया गया आर पामपोट देन में इकार कर लिया गया।'

अभी यह अधिवेशन चल ही रहा था कि दिल्ली में हिन्दू महासभा का अधिवेशन राजा मरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता में हुआ। सानानी ने इस अधिवेशन की कायवाहा

में प्रमुख हिस्सा लिया। दरअसल महासभा की नीति की रूपरेखा उम समय मुख्य तौर पर मानवीयजी तथा लालाजी तैयार कर रहे थे। पढ़ने स्थान पर राजाजी का अध्ययन पढ़ के लिए चुनाव उन दोनों का संयुक्त निणय था। सगठन के बहुमत का विचार था कि आगामी चुनावों में, जो कुछ ही मास में होने वाले थे, हिंदू महासभा अपना टिकट पर उम्मीदवार खड़े करे। लालाजी (और मानवीयजी) ने इस नीति का विरोध किया और उनके नतुत्व में प्रतिनिधियां ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध निणय दिया, सिवाय इस भीमा तक कि जहां स्थानीय परिस्थितियां के कारण अत्यावश्यक हो, महासभा अपने उम्मीदवार खड़े करे।

माच में जब अधिवेशन अभी चल ही रहा था, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक दिल्ली में हुई और उसने सदन-त्याग के बारे में कानपुर-प्रस्ताव की व्यवस्था में काफी परिवर्तन कर दिया। अब यह रास्ता अपनाया गया कि सदन त्याग वित्त विधेयक रद्द होने तक स्थगित न किया जाए। लालाजी ने आपत्ति की कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को पूर्व अधिवेशन द्वारा पास किए गए प्रस्ताव में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं। यह आपत्ति स्वीकार कर ली गई, परन्तु नया प्रस्ताव रखने वाला न अब आधार तब्दील कर लिया और कहा कि कानपुर प्रस्ताव में ता अन्तिम तिथि कहा गया है और किसी पहली तारीख पर सदन त्याग इसके मूल के विपरीत नहीं। लालाजी ने इस व्याख्या पर आपत्ति की, परन्तु उनके विरुद्ध मत अधिक थे। कानपुर में उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि सदन त्याग वित्त विधेयक रद्द होने के बाद ही किया जाए। वह व्यवस्था अब समाप्त कर दी गई थी, इसलिए उन्हें भी अब छूट थी और वह कानपुर में दिय गए बचन से मुक्त थे। दरअसल अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के प्रस्ताव में विधानसभा में पार्टी के सदस्यों की उपस्थिति में केवल कुछ ही दिन की कटौती की थी—वैसे भी अधिवेशन का प्रायः जत ही था—लालाजी ने अपने सभाचार पत्र में लिखा कि यदि उनका बस चलता, तो वह सदन त्याग अगस्त अधिवेशन तक स्थगित कर देते, परन्तु 'अब तो निणय ही चुना था।'

59. श्रमिक प्रतिनिधि के रूप में जेनेवा में

‘जहाज पर प्रवासियों की जाच को सरल करना’ सभवतः उचित समस्या थी, जो मई 1926 में अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय द्वारा जेनेवा में बुलाए गए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के विचारणीय विषयों में शामिल की जा सके, परन्तु प्रवासियों की जाच के ब्यौरे में लालाजी की रुचि क्या थी? शायद इस ब्यौरे में लालाजी की रुचि इंडिया बिल की धाराओं से भी कम थी, जिसके कारण वह 1914 में कांग्रेस प्रतिनिधि के तौर पर लंदन गए थे। तब की तरह अब भी उनकी अधिक रुचि अजय सम्बद्ध मामलों में अधिक थी। सबसे अधिक, ऐसे अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में, जहाँ विश्वभर से प्रतिनिधि एकत्र होंगे, विचारणीय विषय कुछ भी हों, मित्रों की तरह मुलाकात अधिक महत्व की चीज थी।

जिस प्रकार हम देख चुके हैं भारतीय श्रमिक संगठन आंदोलन में लालाजी की सक्रिय गतिविधियाँ 1920 में उस समय से आरम्भ हो गई थी, जब उन्होंने कलकत्ता में इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता की थी। उसके पश्चात् वह ट्रेड यूनियन कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में रहे और अपनी महत्वपूर्ण राय देते रहे। उन्होंने पंजाब में श्रमिक संगठनों में कुछ रुचि ली, उत्तर पश्चिम रेलवे के हड़तालियों को चारी भी उनसे मागदर्शन तथा समर्थन लेते रहे, परन्तु कुछ मिलाकर उनको लिए ध्यान ऐसी थी कि वह केवल सीमित समय ही दे पाते थे क्योंकि वह अन्य कार्यों में व्यस्त थे और इस प्रकार श्रमिक आंदोलन के लिए उतना कार्य नहीं कर पा रहे थे, जितना उनका भाव था। जैसा कि उनका विचार था, “असहयोग आंदोलन” उस समय श्रमिक वर्ग के लिए उचित नहीं हो सकता था, उन्होंने आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अपने पद में, अपना कार्यकाल समाप्त होने से बहुत पूर्व, त्यागपत्र दे दिया। परन्तु यह उनकी मनोकामना थी कि श्रमिक संगठन आंदोलन को सशक्त बनाने में महभाग दें। जब उनके लिए अवसर आया, उन्होंने उत्तर प्रदेश से लोक सेवा संघ के अपने दो कार्यकर्ताओं को मजदूर सभा के लिए काय करल के वास्तु मानपुर भेजा। य दाना, हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम

शास्त्री शीघ्र ही श्रमिक समठन के महत्वपूर्ण नेता बन गए। अपने समाचार पत्रा से, विशेषकर 'द पीपुल' से उन आरम्भिक दिनों में श्रमिक तथा ममाजवादी आन्दोलनों का महत्वपूर्ण सहयोग मिला। जब वह विधान सभा में आए तो उन्होंने शीघ्र ही ससदीय श्रमिक ग्रुप बनाने के बारे में विचार किया। यही कारण था कि स्वराज पार्टी में शामिल होने के वार में मोतीलाल नेहरू का निमन्त्रण स्वीकार करने वाले पत्रा में उन्होंने विशेष तौर पर लिखा था कि श्रमिका का दृष्टिकोण व्यक्त करने के लिए वह अपने आपको स्वतंत्र रखेंगे। उनका विचार था कि विधानसभा में कुछ विशेष उद्देश्यों के लिये श्रमिक ग्रुप बनाया जाए, यद्यपि इन विशेष कार्यों के अलावा इन ग्रुप के सदस्य विभिन्न दला, कांग्रेस, लिबरल, मुस्लिम लीग या इंडिपेंडेंट पार्टी के सदस्य रहें। एन० एम० त्राशी, दीवान चमन लाल और स्वयं वह इस गुट में आरम्भ करने वाले मूल केंद्र थे। उन्होंने उनके माथ तथा तारिणी पी० सिन्हा के साथ कई बार बातचीत की परंतु कुछ कारणों से यह योजना स्थगित कर ली गई और श्रमिक ग्रुप का उद्घाटन न हुआ।

लीग आफ नेशंस के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन स्थापित किया जाना उन महत्वपूर्ण कारणों में से एक था, जो लालाजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत में बिना दरी के राष्ट्रीय श्रमिक संगठन स्थापित करने के पक्ष में कहे थे। सी० एफ० एड्यूज ने भी जिन्होंने महात्मा गांधी के आदेश पर आरम्भिक अधिवेशन में भाग नहीं लिया था, क्योंकि महात्माजी के विचार में इस उद्देश्य के लिए अभी उचित समय नहीं था, लालाजी के समान ही महसूस किया था। जब कुछ वर्ष पश्चात् उन्होंने आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की अध्यक्षता की, तो उन्होंने भी भारत के श्रमिक वर्ग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के महत्व पर बल दिया और उही की अध्यक्षता में लालाजी को जेनेवा सम्मेलन के लिए श्रमिका का प्रतिनिधि नामजद किया गया।

असहाय के मित्रतावादियों ने प्रश्न उठाया कि क्या कोई कांग्रेसजन अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन के लिए नामजदगी स्वीकार कर सकता है, यदि यह नामजदगी स्वीकार की जा सकती है तो क्या विधानसभा से बहिष्मन के पश्चात् भी इसे मर्यादा के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। दरअसल मात्र

म दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में प्रश्न उठाया गया था कि वहाँ वी० जे० पटेल सभा का अध्यक्ष पद न त्याग दें, और क्या पण्डित मातीलाल को म्कीन समिति में रहने दिया जाए। बैठक में अध्यक्ष न अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन के लिए लालाजी को श्रमिका का प्रतिनिधि नामजद कराने के प्रश्न पर बहस की आज्ञा न दी, किन्तु मदन न नियम दिया कि पटेल विधानसभा के अध्यक्ष पद पर वन रह और नहूँ अपने स्थान पर वन रह सकते हैं। कांग्रेस अध्यक्ष तथा स्वराज पार्टी के नेता, दोनों ही इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट थे कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन के लिए लालाजी का चयन पक्ष का निषेध कराने आदि के क्षेत्र से बाहर था। लालाजी स्वयं इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट थे कि वह श्रमिका के मायता प्राप्त प्रतिनिधि के तौर पर जा रहे थे, सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर नहीं और भारतीय श्रमिका की सेवा का यह शानदार अवसर तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बनाने का यह अमूल्य मौका व्यय नहीं जाने देना चाहिए।

दिसम्बर में, रवानगी से कुछ दिन पूर्व उन्हें लालाजी के अपवस्थ महाराजा रिपुदमन सिंह का, जा देहरादून में थे, एक तार मदेश मिला और उसके पश्चात् एक विशेष मदेशवाहक पहुँचा। महाराजा की सरकार अच्छा नहीं समझती थी, क्योंकि व्यापक तौर पर (कम से कम जागिक तौर पर) उन्हें शासक का बफादार नहीं समझा जाता था जसा कि उन्हें होना चाहिए था। महाराजा का राष्ट्रवादी नेतावा की महानुभूति प्राप्त थी। सिखा की व्यापक महानुभूति के अनिरिक्त उस समय महाराजा इंडिया आर्गनिस में अपने साथ हुई ज्यादाता समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे और इसके लिए उन्होंने मुख्यतौर पर सदन में अपने बचीला की भाषण पक्ष पेश किया था। लालाजी से भी उठान इसी उद्देश्य के लिए सहामता चाही थी, ताकि उनका मामला ठीक ढंग से पेश हो सके। लालाजी ने महाराजा के दूत का यह बात स्पष्ट कर दी कि सावजनिक शान के ताने उन्हें इस प्रकार के काम में बाई के तौर पर उनकी सहायता चाहिए, तो तैयार हैं। यह बात उन्होंने लिखे एक पत्र में बिल्कुल स्पष्ट था— 'मने आपका बेस प्रतिनिधि के

के तौर पर नहीं।" इस बार वह पी० एड ओ० के स्टीमर एस० एस० रणपुरा से जा रहे थे, जो कम्पनी के सबसे बड़े जहाजा में से एक तथा आधुनिकतम था। उन्होंने देखा कि जहाज पर परोसा गया भोजन युद्ध-पूर्व के निर्धारित स्तर का नहीं था, दरअसल यह उस इटली के जहाज पर मिले भोजन से भी घटिया था, जिससे वह पहले दो बार यूरोप गए थे।

पी०एड ओ० के नस्लभेद के कारण ही भारत में औद्योगिक प्रगति के पितामह जमशेदजी टाटा ने भारत में जहाजरानी उद्योग की आवश्यकता के महत्व को महसूस किया था। हालात काफी बदल गए थे, परन्तु "पी०एड ओ०" का वातावरण से नस्लभेद समाप्त होना अभी बहुत दूर की बात थी।"

सालाजी 7 मई 1926 को प्रातः मार्साई में उतरे और तुरत पेरिस के लिए रवाना हो गए। जेनेवा में अन्तर्गष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन जिसमें उन्हें भाग लेना था, मई के अन्तिम सप्ताह में होना था। ब्रिटेन उन दिनों बहुत बड़ी आम हड़ताल में फसा हुआ था—इस बड़ी हड़ताल के बारे में कुछ लोगों का विचार था, श्रामबल के बाद ब्रिटेन का यह एकमात्र गृहयुद्ध था, इसलिये उन्होंने अपना भारी सामान, यद्यपि सीधा लन्दन भेज दिया था, अभी उनके स्वयं शीघ्र लन्दन जाने की सभावना दिखाई नहीं देती थी। दरअसल एच० एस० एल० पोलक ने उन्हें तार द्वारा सलाह दी थी कि वह फिलहाल पेरिस में ही ठहरे। इसलिए उन्होंने ऐसा ही किया और हड़ताल समाप्त होने तक लन्दन के लिए रवाना न हुए।

पेरिस में वह मोतिमो के व्यापारी एस० आर० राणा तथा कई अन्य पुराने मित्रों के पास ठहरे। नए क्विंकर सम्पर्कों में ज्या लोगो भी था 'जा फ्रांस की सोशलिस्ट पार्टी के दो प्रमुख नेताओं में से एक था,' और काल मार्क्स का नाती था, ज्या की माता न एन फ्रांसीसी से विवाह किया था। सालाजी ने उसके साथ बहुत दिवचस्प भेट की। "वह बहुत मुदर, बलिष्ठ, ऊंचे कद का, चौड़े ललाट वाला, बहुत ही बिनम्र बहुत ही ज्ञानवान तथा अति सतुनित विचारों वाला व्यक्ति था।" क्योंकि वह कम्युनिस्ट विचार धारा की वसम नहीं उठाता था और उसे आशा थी कि शीघ्र ही रूस में किमान सत्ता में आ जाएंगे और कम्युनिस्ट शासन को समाप्त कर दगे।

वह लंदन में केवल एक सप्ताह के लिए ठहरे—अपने मित्रों से मिलन तथा हाल की आम हड़ताल के बारे में जानकारी लेने के लिए तथा वकील मित्र, एच० एस० एल० पोलक के साथ नाभा महाराजा के मामले के बारे में प्रारम्भिक बातचीत करने के लिए उन्होंने अधिक विस्तार में बातचीत और कार्यक्रम तय करने की बात सम्बद्ध दस्तावेज आने तक के लिए छोड़ दी थी और 'लाइट ऑफ एशिया' नामक चलचित्र देखने के लिए पत्र दिए। यह इंग्लैंड में भारतीय निर्माता द्वारा बनाया पहला चलचित्र था जिसकी नायिका देविका शर्मा थी। इस चलचित्र के निर्माता निरंजन पाल थे। लालाजी को उनमें इसलिए रचि थी कि वह विपिन चंद्र पाल के पुत्र थे।

उसके पश्चात् वह जेनेवा के लिए रवाना हो गए। अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक अधिवेशन 26 मई 1926 का जेनेवा में शुरू हुआ—जहाजा पर आग्रजका की निरीक्षण प्रक्रिया का सरल बनाने पर विचार करने के लिए पहले ही दिन लालाजी ने दो प्रस्ताव रखे, इनमें एक प्रस्ताव में माग की गई थी कि अफ्रीका और अमरीका में कायूरत बहा के तथा गर गोरे विदेशी श्रमिका की स्थिति की जांच कराई जाए। यह प्रस्ताव कुछ सशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया गया। लालाजी ने सशोधित प्रारूप को पहली विस्तार के रूप में मान लिया। उनके दूसरे प्रस्ताव में संचालन समिति का ध्यान भारत में एक पत्रकार नियुक्त करने के बारे में पहले स्वीकार किए गए एक प्रस्ताव की ओर दिलाया गया था जो पिछले चार वर्षों से बिना किसी कारवाई के पड़ा था। उन्हे बताया गया कि उस वक की बजट व्यवस्था हा चुकी है और सुरत कुछ नहीं किया जा सकता, परन्तु उन्हें आश्वासन दिया गया कि उनका प्रस्ताव आगामी वक से कार्यान्वित हो जाएगा।

परन्तु उनका मुख्य भाषण दो जून का हुआ, जिस दिन सस्था के निदेशक ने अपनी रिपोर्ट पेश की। उन्हे केवल द्वारा कानपुर से एक प्रतिवेदन प्राप्त हुआ था जिसमें माग कि गई थी की भारत में श्रमिकों के लिए आठ घंटे की दिहाड़ी लागू की जाए। परन्तु इस मामले के बारे में उन्हे पूरी जानकारी थी कि (उस समय) आठ घंटे के नियम की ता अभी कुछ प्रमुख यूरोपियन देशों में भी पुष्टि नहीं की थी और इस वर्ष लंदन में हुए एक सम्मेलन में भी इस विषय पर विचार किया गया था। उन्हे इस बात की भी जानकारी थी कि भारत इस मामले में अपने प्रतिद्वन्दी जापान में आगे रही जा सकता और

उन्होंने जापानिया से आग्रह किया कि इस मामले में वे ही कोई रास्ता दिखाएँ। उन्होंने बेगार की चर्चा की, जो ब्रिटिश शासित भारत में तथा भारतीय रियासतों में एक अपमानजनक तथ्य था और विश्व का पूरी तरह मालूम नहीं था। इस बात पर सर ए० सी० चटर्जी ने नाराजगी व्यक्त की, जो भारत सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और भारत के प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते थे। लालाजी ने सम्मेलन के अध्यक्ष का अगले दिन एक पत्र लिखा और जाच कराने की चुनौती दी और इक्विवर किया कि 'मैं भारत लौटते ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय को अपने भाषण के समवन में प्रमाण भेज दूंगा।' लालाजी के अनुरोध पर इस पत्र को सम्मेलन की कारवाई का भाग बना दिया गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने भारत लौटते ही अपना इक्विवर पूरा किया।

लालाजी सम्मेलन में महाद्वीपीय वातावरण देखकर बहुत प्रभावित हुए। निस्संदेह ब्रिटेन लीग पर छाया हुआ था परन्तु श्रम सम्मेलन को अपने ढंग से विकसित होने दिया गया था और वहाँ ब्रिटेन को प्रभुत्व प्राप्त नहीं था। इससे लालाजी की दलील का बल मिला कि क्यों भारत को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सङ्गठन की ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए और सम्मेलन में पूर्णतया सही अर्थों में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल भेजना चाहिए। जिस सम्मेलन में लालाजी ने भाग लिया था, उसमें केवल चार भारतीय प्रतिनिधि थे—सर लुई कैरणी और सर ए० सी० चटर्जी सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। सर आयर फ्रम मालिका के प्रतिनिधि थे और लालाजी मजदूरों के, यानी डेलीगेटों की यूननम संख्या में साध-साध सरकारी प्रतिनिधि के लिए केवल एक सचिव, न कोई वैकल्पिक व्यवस्था, न मालिका तथा कमचारियों का कोई सलाहकार। इस प्रतिनिधि मण्डल में केवल सर अतुल और लालाजी—दो ही भारतीय थे। सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के प्रबंधक एस० एन० हाजी ने, जो जेनेवा में उपस्थित थे, सम्मेलन के अधिकारियों का बहुत योग्यता से तैयार किया गया शापन भेजा, जिसमें सर आयर फ्रम के प्रतिनिधित्व को चुनौती दी गई थी, जिन्हें यूरोपियन चैम्बर आफ कामर्स ने चुनकर भेजा था, जबकि इंडियन मर्चेंट्स चैम्बर को कोई अवसर ही नहीं दिया गया था। विशेषज्ञ सलाहकार न होने के कारण लालाजी अक्षमता महसूस कर रहे थे। शायद समूचे सम्मेलन में, जिसमें 30 से अधिक देशों

के प्रतिनिधि शामिल थे, लालाजी और सर आयर ही केवल ऐसे प्रतिनिधि थे, जिनके साथ कोई विशेषज्ञ सलाहकार नहीं था। दां भारतीयों के मुकाबले जापान के 15 प्रतिनिधि थे, जिनमें प्रतिनिधि, वैकल्पिक प्रतिनिधि और सलाहकार शामिल थे—यह संख्या अधिकतम थी और कुछ अतिरिक्त लोग भी थे। उन्होंने देखा कि जापानी उन्हें मिलने वाले प्रत्येक अवसर से पूरा लाभ उठा रहे थे।

लालाजी ने इस सम्मेलन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की थी, क्योंकि अमरीका से लौटने के पश्चात् उनके लिए यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क था। उस सफल बनाने के लिए यथामभव उपयोग किया। इस अवसर की अनौपचारिक घटनाओं में 3 जून का लालाजी का भोज उल्लेखनीय था, जिसमें युरोपियन तथा पूर्वी देशों के लगभग सभी श्रमिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें फ्रान्स के मोशलमिन्ट नेता डुफ्री, जापान में सुजूकी, ब्रिटिश ट्रेड यूनियन नेता पग, बैंड टिलिट तथा मार्सेट बैंडफोल्ड (जा बाद में लेडी घटर्जी बनी) शामिल थे। इनके अतिरिक्त स्विटजरलैंड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, हॉलैंड, जर्मनी, बल्गारिया, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि भी थे।

जवाहरनाथ नेहरू, जो अपने पत्नी कमला की बीमारी के सबंध में स्विटजरलैंड में थे, सम्मेलन का कायवाही देखने वाले भारतीय दलका में थे। अन्य भारतीय दलको में डा० तारकनाथ दास और चीनी के वैज्ञानिक सारगधर दास और उनकी अमरीकन पत्नी (फ्रीडा जिहनि बाद में दास का छोड़ दिया और एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम उन्होंने 'मेरिज टू इंडिया रखा) और एस० एन० हाजी (सिंधिया बम्पनी के जहाजरानी विशेषज्ञ) और श्रीमती हाजी भी थे। जेनवा में लालाजी को अपने पुराने मित्र श्यामजी कृष्ण यर्मा में मिलने का अवसर भी मिला, परन्तु वह उदाम और तटस्थ व्यक्ति थे और कई मामलों में उन प्रसिद्ध विद्रोहियों के विपरीत थे—रुसा, प्रोपाटकिन, मैजिनी, त्रेनिन—जिहनि स्विटजरलैंड में शरण ली थी और लंबे समय में गरीबी तथा कठिनाई झेन रहे थे। 'श्यामजी के पास पर्याप्त धन है परन्तु यह भी गरीबी का जीवन व्यतीत करना चाहत है। वह कोई प्रचार नहीं करत केवल साधारण जीवन जीत है।' कुछ आश्चर्य की बात थी कि श्यामजी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पत्रकार के तौर पर भाग ले रहे थे इंडियन सांशनिस्ट के प्रतिनिधि के रूप में, जिसका नियमित प्रवाशन उन्होंने

इंग्लड छाडने के बाद, कोई दो दशक पूव ही, बन्द कर दिया था और अन्तिम सस्करण 1920 मे प्रवाशित किया था, जब लाकमाय की मृत्यु हुई थी ।

राम्या रोला फिक्ट ही रहने थे और लालाजी उनके घर कई बार मिलने गए ।

लालाजी कोई तीन मप्ताह जेनवा मे रहे और इस अवधि म उन्हाने एक दा अन्तर्राष्ट्रीय समारोहो मे भाग लिया (उस सम्मेलन के अतिरिक्त जिसमे भाग लेन के लिए वह आए थे) इनमे से एक सम्मेलन विश्व समद सगठन के नाम का था ।

उसके पश्चात वह फिर इंग्लड चले गए और लगभग दा मास वहा ठहरने के दौरान अपनो अनेक मित्रो से मिलते रहे ।

जेनवा मे, जा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाभा का केन्द्र था, वह कई अन्य सगठनो के सम्पक मे भी आए । विश्व समद सगठन ने उनका विशेष ध्यान आर्कषित किया । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सम्मेलन से थोडे समय पहले, उनका सम्मेलन लदन मे हुआ था, जिसम सर पुरूषात्तमदास ठाकुर दाम भारत के प्रतिनिधि थे ।

वल्ड माइप्रेसन काग्रेस की बठक ल दन मे हो रही थी, जिसमे लालाजी को भारतीय श्रमिक बग के प्रतिनिधि के तौर पर भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था । लालाजी रगभेद के प्रश्न पर उतने ही जोर से बाले और शायद कुछ ब्रिटिश तथा औपनिवेशक "लेबर समयक देशा" ने भारतीय प्रतिनिधि द्वारा कही गई इन सच्ची बातो को अच्छा न समझा ।

इन दोनो सम्मेलनो ने उहू विश्व के श्रमिक तथा समाजवादी आन्दोलना के साथ सम्पक करने के बहुत बढिया अवसर दिए ।

लालाजी के ल दन प्रवाम के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय हस्ताक्षरो से मागपत्र भेजा गया, जिसमे जवरन भरती बढ करने की माग की गई थी । इस पर हस्ताक्षर करने वालो मे राम्या रोला हैनरी वावस्स तथा भारत से टैगोर, लाजपत राय और गांधी शामिल थे ।

अन्तर्राष्ट्रीय सगठनों की बात करते समय हमें एव और सस्या का उल्लेख करना चाहिए, चाहे यह अलग किस्म की थी, क्योंकि इसमें थमिका के कोई प्रतिनिधि नहीं थे और इसका सम्बन्ध थमिका या वामपथी आन्दोलन से नहीं था। लालाजी ने उस समय इस सम्बन्ध में कुछ रुचि दिखाई। यह थी साम्राज्य ससदीय यूनिशन, जिसमें लालाजी तथा कुछ प्रमुख स्वराजवादी रुचि लेने लगे थे। भारत में इसकी एक स्थानीय शाखा स्थापित की गई और अगले वर्ष भारत से स्वराज पार्टी के दो विधायक उम सगठन की ओर से कनाडा तथा आस्ट्रेलिया गए। स्वराज पार्टी के मत या नीति में उस समय ऐसी कोई बात नहीं थी, जो साम्राज्य की ससदा में इस प्रकार रुचि लेने पर रोक लगाए, परन्तु हम यह कहना चाहते हैं कि स्वराज पार्टी के नेताओं की इस रुचि के अधिकतर कारण इस सगठन के सचिव सर हावर्ड डीएजविल का सहमत कर लेने वाला कूटनीतिक व्यक्तित्व था, जिन्होंने भारत की सक्षिप्त सी यात्रा के दौरान अनेक भारतीय नेताओं के साथ मन्त्री बना ली थी।

लन्दन में लालाजी के निवास के दौरान भारतीय मुद्रा के बारे में राजकीय आयोग, जिसके अध्यक्ष सर हिलटन यंग थे, अपनी रिपोर्ट तैयार कर रहे थे। इसी आयोग की सिफारिश पर थोड़े समय बाद सरकार ने भारतीय रुपय की विनिमय दर 18 पैसे नियत करने का कानून बनाया। इस निषेध को ब्रिटेन के पक्ष में कहकर भारत में इसकी आलोचना की गई, भारत के अधिवासर आर्थिक विशेषज्ञों का विचार था कि 16 पैसे प्रति रुपया की दर बहुत उपयुक्त थी। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने, जो इस शाही आयोग के सदस्य के रूप में इंग्लैंड में थे, अपने सहयोगियों द्वारा सिफारिश की गई इस दर को भारतीय हिता के लिए विनाशकारी बताया, उन्होंने कुछ अन्य सुझावों के बारे में भी सदेह व्यक्त किए। उन्होंने लालाजी से भी सलाह की और कई बैठकों में अनेक सदेहों तथा कठिनाइयों की बात दोहराई। लालाजी बम्बई के उम विशेषज्ञ का तकनीकी पहलू से कुछ पता पान की बात तो नहीं कर सकते थे, फिर भी, उन्होंने दृढ़ता से यह बात कहकर बहुत सहायता की कि वह बहुमत की राय में ठरे नहीं और नहीं उनकी ओर से रजामन् करने या मनाने पर उन सिफारिशों पर हस्ताक्षर करें, जो उनके अपने अनुमान के अनुसार भारत के हित के लिए हानिकार हो सकती हैं। लालाजी सर पुरुषोत्तमदास के

विशेषज्ञ की जानकारी तो नहीं दे सका था, परन्तु उन्होंने उह नैतिक समथन अग्रथ दिया, जिसकी आवश्यक्ता समझते थे । इस प्रवार लालाजी ने सर पुरुषोत्तमदास को असहमति की टिप्पणी लिखने के लिए पराश रूप से योगदान दिया । यह भी कहा जा सक्ता है कि उन्होंने इस टिप्पणी के दृढ़ स्वर में भी योगदान दिया ।

लालाजी को निर्धारित समय में अधिक् लंदन में रुकना पडा और क्वालत के मामले के कारण एक वार और अपनी रवानगी रदद करनी पडी । महाराजा का एक व्यक्ति लालाजी के साथ गया था, परन्तु उसके पास ज़रूरी दस्तावेज नहीं थे, विश्वास यह था कि दस्तावेज शीघ्र ही डाक द्वारा पहुंच जाएंगे । लंदन में लालाजी ने अपन सालिसिटर मित्र एच० एस० एल० पोलक से मशविरा किया, परन्तु कोई असरदार कारवाई करने से पूव सालिसिटर कुछ दस्तावेज चाहते थे जा लालाजी और उनके साथ गए महाराजा के प्रतिनिधि के पास नहीं थे । दस्तावेज भगवाने का वाय शीघ्र करने के लिए चिट्ठियों तथा तारा का कोई असर न हुआ । आखिरकार लालाजी ने महाराजा को लिखा कि वह अनिश्चित काल के लिए नहीं ठहर सकते और उनके पश्चात वह लौट आए । महाराजा बहुत नाराज हुए, परन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि परिस्थितिया के अनुसार लालाजी उचित ही थे, तो महाराजा ने लालाजी से अपनी नाराजगी के लिए खेद व्यक्त किया, उनके साथ समधीता कर लिया और अगले वष लालाजी जब फिर यूरोप जा रहे थे, तो उन्होंने अनुराध किया कि वह उनके लिए कुछ छोटे-मोटे मामले पर कानूनी मशविरा ले दें, इसके लिए लालाजी सहप सहमत हो गए ।

लंदन में निवास के दौरान हाउस आफ कामंस में भारत के मामले पर बहस हुई, लालाजी ने इस बहस को कुछ बैठने देखी ।

वापसी यात्रा पर रवाना होने से एक सप्ताह पूव 'द टाइम्स' ने लालाजी का एक पत्र प्रकाशित किया, जो "भारत में साम्प्रदायिक तनाव" के बारे में समाचारपत्र के कालमें में प्रकाशित पत्र व्यवहार में उठाए गए कुछ विषयों के बारे में था । इससे उन्हें असाधारण किस्म की प्रताडना पडी । यह नेशनल लिबरल क्लब में शामिल हो गए । इससे पूव कि वह उसके लिए निर्वाचित हाउस आफ सदस्य के तौर पर उनकी पुष्टि होती, वह उसके नियम

भग करने के दोषी हो गए। 'द टाइम्स' में प्रकाशित पत्र के नीचे लेखक के क्लब का पता था। तुरंत ही सचिव ने उनका ध्यान उस नियम की ओर दिलाया, जिसमें यह व्यवस्था थी कि क्लब का कोई भी सदस्य समाचारपत्रों के साथ पत्र-व्यवहार में क्लब का नाम उस समय तक इस्तेमाल नहीं कर सकता जब तक उसने जनरल कमेटी से उसकी पूर्व अनुमति न ले ली हो।

पूरे दो दिन लालाजी पुराने मित्रा वैश्व दम्पति के साथ रहे। उन्होंने 'द पीपुल' में लिखा कि यद्यपि उन्हें वैश्व दम्पति के कई वर्ष पुराने मित्र होने के विशेषाधिकार प्राप्त हैं "वह उन्हें इतनी अच्छी तरह पहचान नहीं जान पाये थे जिस तरह उनके साथ दो दिन रहकर तथा श्रीमती वैश्व की पुस्तक, 'माई एप्रेंटिसशिप' आदि से अतः तक पढ़कर जान पाये हैं।"

लालाजी इस पुस्तक से बहुत प्रभावित हुए और जब वह वापस आए, तो ऐसा दिखाई देता था कि वही उनका मुख्य जाग था। उन्होंने इस पुस्तक के लिए 'द पीपुल' में उत्साहपूर्वक लिखा ही नहीं, उसकी कई प्रतियां अपने साथ लाए, जो उन्होंने अपने मित्रों को पत्र की एक सज्जावती को, एक अपनी पुत्रवधु, सरस्वती (श्रीमती अमतराय) को, शानदार प्रशंसा के साथ भेंट की।

वापसी यात्रा पर वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय सहयात्रियां में थे। आचार्य राय उस समय आत्मकथा लिख रहे थे और वह बड़े शौक से क अध्ययन लालाजी को पढ़कर सुनाने, जो उन्होंने अब तक पूरा किए थे और कभी उनके बारे में लालाजी के विचार जानने या आलाचना करने को कहते, परंतु जैसा उनकी आदत थी, सदा ही पूछते रहते "समझे आप?" कई बार लालाजी को उनके वैचित्र्य व्यवहार पर हसी आती और कई बार खीन आती और तब वह कह देते, "म ठीक तरह से समझ रहा हूँ भगवान के लिए मुझसे बार बार यह कहने को न कहिए कि मैं समझ रहा हूँ।"

13 अगस्त 1926 को वह बम्बई पहुंच गए।

60. सम्प्रदायवादी ?

I

देवताओं तथा दानवों ने सागर मंथन किया, ताकि अमृत खोज पाए। मंथन से बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुईं तथा कुछ अनिष्टकर वस्तुएँ भी निकलीं और आखिरकार देवताओं तथा दानवों में झगडा हो गया, दोनों पक्षों का यत्न था कि अमृत को सागर उधे मिल जाए। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने महात्मा गांधी के निर्देशन में ऐतिहासिक मंथन आरम्भ किया। परिश्रम का वर्ष समाप्त हो गया, परन्तु ऐच्छिक फल की प्राप्ति न हुई, यद्यपि मंथन थोड़ी देर बाद ही समाप्त कर दिया गया और अनिष्टकर वस्तुओं ने इससे पूर्व ही गडबड आरम्भ कर दी थी—इसमें सबसे अधिक खतरनाक था यह छिपा हुआ सदेह कि कहीं दूसरा पक्ष यह मनोवाञ्छित वस्तु न ले जाए, यद्यपि यह फल अभी पहुंच से बहुत दूर था और यद्यपि बुद्धिमान लोगों ने यह चेतावनी भी दी कि यदि दानवों ने मिलकर प्रयत्न न किया, तो मंथन नहीं हो पाएगा और ऐसा किए बिना वह वरदान प्राप्त न हो सकेगा।

यद्यपि निर्वाचन के अन्तिम वष की पंजाब की घटनाओं से लालाजी को कुछ पहुंचा था, परन्तु स्वामी श्रद्धानंद के जामा मस्जिद के मंच पर पहुंचने की बात कुछ अद्वितीय सी थी और उससे आशा बंधी थी। अमरीका से स्वदेश रवाना होने से पूर्व अपने देशवासियों के नाम सदेश में अत्यधिक जोर इस बात पर दिया था कि सर्वाधिक आवश्यकता एकता की है। उन्होंने देशवासियों से गांधीजी की अगुवाई में चलने को कहा, क्योंकि सभी बातों से अधिक उसी में एकता की आशा थी। भारत भूमि पहुंचने पर उन्होंने अपने देशवासियों को साम्प्रदायिकता के विरुद्ध, विशेषकर अपने सह-धर्मियों को चेतावनी दी। उन्होंने खिलाफत के साथ ज्यादाती का गलत घोषित किया, साम्राज्य-विरोधी आधार पर भी जोर मुसलमानों की भावुकता के साथ सहानुभूति के तौर पर भी। अमरीका में मित्रा न जा घन उनके हवाले किया था, उसमें से बचे हुए घन में से उन्होंने कुछ दान खिलाफत काप के लिए दिया। असह्याग आंदोलन के दौरान

उहाने शाकृत अली के साथ दीर भी किए। जब अली बंधुओं पर कराची में मुकदमा आरम्भ हुआ, तो वह उस अवस्थिति पर हस्ताक्षर करने वाले 17 व्यक्तियों में शामिल थे जिसके लिए अली बंधुओं के विरुद्ध मुकदमा चलाया गया था। यद्यपि उहे कुछ वाता के बारे में सदह मा, फिर भी उन्होंने महात्माजी के नेतृत्व को अमूल्य घोषित किया, क्योंकि वह मुसलमानों का समयन प्राप्त कर सके थे।

II

जब अभी वह जल में ही थे, परिस्थितियां बदल गईं और हिन्दू मुस्लिम फगाद तो जैसे राजाना का रिवाज हो गए। एकता की आवश्यकता तो अब भी पहले के समान थी, परन्तु गांधीजी के ढंग से निपटने के कारण स्पष्ट तौर पर इसे प्राप्त करने में अयफलता हुई थी। कारावास में जा विश्राम मिला लालाजी ने उनका सबसे अधिक इस्तेमाल मूल्यांकन में लगाया—इसका परिणाम कई लक्ष्यमालाओं के रूप में प्रकाशित हुआ, जो जेल से चोरी चोरी ग्राह्य भेजे गए थे और कर्जी नामा से प्रकाशित किए गए थे। इस मूल्यांकन और एकता के प्रश्न पर सोच विचार करने के परिणामस्वरूप, लालाजी ने इस्लाम तथा मुस्लिम इतिहास का और मुस्लिम देशों में आधुनिक परिवर्धिया का व्यापक अध्ययन किया। वह शिबली की रचनाओं के प्रशंसक बन गए—पगम्बर तथा उमर की जीवनि तथा अन्य जीवन कथाओं और ऐतिहासिक रचनाओं के।

बहुत ही स्वाभाविक था कि उहाने इन बातों के बारे में अपने साथी बंधियों के साथ विचार विनिमय किया। एक बार की बातचीत में कुछ म्यायी संदेह उत्पन्न हो गए थे, इसलिए यहाँ उनका उल्लेख करना उचित है। यह त्रिषीय विचार विनिमय भीतवी हवीव-उर रहमान (सुधियाना) के साथ हुआ था जो खिलाफत आन्दोलन के प्रमुख नेता और महत्वपूर्ण धार्मिक नेता थे और लालाजी के साथ ही जेल में थे। स्पष्ट विचारविमल में भीतवी साहित्य को संपत्ति हुए लालाजी ने यह जानने का प्रयत्न किया कि कौन धार्मिक सोमाओं के अंदर रहते हुए मुसलमान बहा तब हिन्दुओं के साथ सहयोग कर सकते थे। उत्तर अमन में यह था कि धार्मिक सोमाई आमतौर पर देशों की सीमा तब बाहिर के साथ सहयोग कर सकते हैं, उममें आगे बढ़ाएँ नहीं। श्री आर० दास को एव

पत्र में लालाजी ने इस प्रकार पैदा हुई गलतफहमियां वा उल्लेख किया और मुझाव दिया कि वह उन गलतफहमियां की अधिवृत्त व्याख्या के लिए प्रयत्न करे और इस सम्बन्ध में राष्ट्रवादी कायप्रमा पर उनके प्रभाव के बारे में विचार करे। लालाजी ने एक गोपनीय पत्र में आत्मविचार के रूप में बात की थी। ऐसा दिखाई पड़ता था कि दास को मुस्लिम नता द्वारा नहीं गई बातों में कोई रुचि नहीं थी और वह पत्र का गोपनीय तौर पर रख नहीं सकते थे क्योंकि वह पत्र के उन भागों का इस्तेमाल करना चाहते थे जिनमें विधान भण्डला का बहिष्कार करने के बारे में पुनर्विचार करने की बात कही गई थी। गया अधिवेशन में दास ने इस पत्र में उल्लेख की गई बातों की जाम चर्चा की और पत्र में निहित चेतावनी को अनदेखी करते हुए उठोने गया अधिवेशन में ही एक और मौलवी के कहने पर काबुल स्कीम स्वीकार कर ली—जिसका उल्लेख हम इसी अध्याय में और किसी स्थान पर करेंगे।

कुछ राष्ट्रवादियों ने ऐसे टट्टे प्रश्न उठाना या ऐसे सदेह व्यक्त करना अनुचित समझा, जिनमें लोगो को परेशानी है। निस्सदेह ये वही लागू थे जो अपन मन में हम धार्मिक निगम के बारे में सहमत थे, यद्यपि वे समझते थे कि सुधियाना के मौलवी की स्पष्टवादिता असामयिक थी।

सी० आर० दास का लिखे उस पत्र की चर्चा करना भी जरूरी है क्योंकि इससे लालाजी के अपने सहयोगियों के बारे में कुछ जानकारी मिलती है। दास का वह बहुत सम्मान करते थे—फिर भी दास की केवल उसी बात में दिलचस्पी दिखाई देती थी, जिसका सबंध तुरत राजनीतिक सबंध से हो। वह उस दृष्टि से गभीरतापूर्वक नहीं साचत थे, जिस प्रकार लालाजी उसे बुनियादी महत्व का समझते थे।

लालाजी ने यह बात अपने दिमाग में बैठ ली और चुप रहे। वह यह मोचे बिना न रह सके कि नेताओं की इस प्रकार की सापरवाही क्षाम पदा करने वाली बात थी।

रिहाई के थोड़ी देर बाद लालाजी ने देखा कि कांग्रेस कायकारिणी द्वारा राष्ट्रीय सधि तैयार करने के लिए बनाई गई समितियों में से एक में उनका नाम है। अमारी—लाजपत राय ममाते पर विचार किए जाते से पूर्व कलकत्ता से ममाचार आया कि सी० आर० दास ने एक स्थानीय सधि

कर ली है। बंगाल की सधि अन्य अवधि की प्रारम्भिक सफनना ही थी, ममय बीत जान पर इमने केवल उलझना म ही बृद्धि की और बंगाल कांग्रेस म असहमति ही बन्नाई और इमन राष्ट्रीय सधि हाने की समावनाआ का गमाप्त कर दिया। ऐमा निम्नाइ पडना था कि दास तुरत काम की आर अधिक् ध्यान देत है।

लालाजी सालन म स्वास्थ्य लाभ कर रहें थे और साथ म काग्रम म कुछ अय नता जिनमे अबुल कलाम आजाद भी थे, वे भी सयोगवश पहाडी स्थल पर थे। उन छुट्टिया के घाडे समय बाद सी० आर० दास की बंगाल सधि आक्स्मिक घटना के समान घटित हुई। लालाजी का आश्चय हो रहा था कि आजाद, जिहोने बहुत ही विभिन्न स्वर मे उनक् साथ बात की थी, बंगाल की सधि की किम प्रकार पुष्टि कर सकते थे, और यह किस प्रकार संभव हो सनता था कि दास यह सधि कर ले यदि आजाद उस प्रस्ताव से सहमत ही न हो? लालाजी के पास कोई तथ्य न थे कि पर्दे के पीछे क्या हुआ था, परन्तु मौलाना के मरणापरत उनकी जो पुस्तक (इंडिया दिस फ्रीडम) प्रकाशित हुई, उसमे दास की राजनीतिज्ञ योग्यता को बहुत ही उच्च श्रद्धाजलि अर्पित की गई, उससे लालाजी के सदेह की पुष्टि होती है।

गाधीजी की कारा चक्" वाली नीति सफल नहीं हुई थी और राष्ट्रीय नता ठोस समझौते के बारे म बातचीत करते हुए, पल भर के लिए स्थानीय जहूरत के लालच म आ गए दिखाई पडत थे, जबकि उह चिरस्थायी समझौते के लिए प्रयत्न करना चाहिए था, जो परस्पर उचित तालमज पर आधारित हो।

III

हिंदू-मुस्लिम फसादा ने लालाजी के व्यवहार का कितना प्रभावित किया? 1924 की घटनाओ के विशेष उल्लेख की आवश्यकता है, विशेषकर कोहाट म हुई तबाही की।

सन 1924 मे कई स्थाना पर साम्प्रदायिक जुन्न से फसाद हुए। ये एक के बाद एक स्थान पर हुए, जो एक दूसरे से काफी दूर थे- विशेषकर दिल्ली गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहापुर, इलाहाबाद, जबलपुर और सबसे भयानक कोहाट म। * काहाट मे हिंदू बहुत ही अल्प

* हिस्ट्री आफ कांग्रेस, भाग I पृष्ठ 275

सख्या में थे—पाच प्रतिशत से भी कम, तबही बहुत हुई, परन्तु क्षाभ की एक विशेष बात यह थी कि सारी हिन्दू आबादी वहा से निकल गई और उन लोगो न 320 किलोमीटर दूर रावलपिण्डी में शरण ले ली ।

सारी साम्प्रदायिक गडबड में, सितंबर 1924 में कोहाट में हुई गडबड सबसे अधिक घबरा देने वाली थी । लालाजी ने पीडित लोगों को सहायता देने के लिए यथासंभव काय किया, परन्तु वह उस आदशवादी सलाह का अनुमोदन न कर पाये जो गांधीजी की प्रथम प्रतिक्रिया के रूप में प्राप्त हुई । गांधीजी न शीघ्र ही अपना सर्वोच्च शक्तिशाली अस्त्र इस्तेमाल किया—घोर ब्यापूण प्रायना, 21 दिन का अनशन, जिसके परिणामस्वरूप एक एकता सम्मेलन हुआ, जो सचमुच बड़ी शान में आरम्भ हुआ और उससे बड़ी आशाएँ बंधी, परन्तु उससे कोई इक्कार न निकल पाया । जैसा कि कांग्रेस इतिहास में बड़े अयपूण ढंग से कहा गया कोहाट ने भारत की रीढ़ की हडडी तोड़ दी ।

गांधीजी का अली बघुआ में गहरा विश्वास था । एकता सम्मेलन के अतिरिक्त, उन्होंने अली बघुआ की सहायता से स्थिति को सुधारन का प्रयत्न किया ताकि हालात को ऐसा बनाया जा सके कि कोहाट के विस्थापित लोग अपने घरों को लौट सकें । यह प्रयत्न भी बहुत निराशाजनक रहा ; आचार्य कृपलानी ने गांधीजी की जीवनी में इन घुघटना की संक्षिप्त चर्चा करते हुए लिखा

“गांधीजी कुछ मुसलमान नेताओं के साथ कोहाट जाना चाहते थे ताकि वहा की साम्प्रदायिक घटनाओं की जांच कर सकें और शांति स्थापित कर सकें । सरकार ने उन्हें वहा जाने की आज्ञा न दी । फिर भी कुछ मास पश्चात् उन्हें वहा जाने की अनुमति दे दी गई । काम मसिरी ने उन्हें तथा शौकत अली को जांच करने रिपोर्ट देने के लिए कहा । यह कार्य ठीक ढंग से न हो पाया । मुसलमान तथ्य पत्र करन को तैयार थे । परन्तु शौकत अली ने उन्हें सिखा दिया कि वह ऐसा न करे । परिणाम यह हुआ कि गांधीजी और शौकत अली एकमत रिपोर्ट न दे पाए । वहा से गांधीजी और अली बघुआ ने बीच मन-मुटाव आरम्भ हो गया । यह बात इससे पूर्व एकता सम्मेलन में भी दिखाई दे रही थी ।” *

इस विच्छेद का रोचक व्यौरा महादेव देसाई की डायरी में देखा जा सकता है। ऐसा दिखाई पड़ता है कि महात्माजी अपनी व्यथा में तब तक तीन वजे उठा करते थे और भगवान से मागदशम की कामना किया करते थे। सितंबर का अचानक उत्तर मिला—21 दिन का उपवास। उनके बहुत से मित्रों तथा अनुयायियों ने (जिनमें महादेव भी थे) निवेदन किया कि विनाश के लिए वह किसी भी प्रकार से जिम्मेदार नहीं है, उनके लिए पश्चात्ताप की आवश्यकता नहीं, उहाँ को हमारा उत्तर दिया

"गलती मेरी है। क्यों मुझे हिंदुओं के विश्वास भंग का बोझ बरार दिया जाना चाहिए। मैंने उनसे मुसलमानों के साथ मैत्री करने का कहा था। मैं उनसे कहा था कि वे अपनी जान तथा माल मुसलमानों को सौंप दें, जिससे वे अपने धार्मिक स्थानों की रक्षा कर सकें। आज भी उनसे यही कहता हूँ कि वे अहिंसा पर चल और इसी ढंग से भरकर अपन भगड़े हल कर, मारकर नहीं। और इसका परिणाम क्या देखता हूँ? कितने मंदिरों को अपवित्र किया गया है? कितनी बहानों मेरे पास शिकायत लेकर आई हैं। जैसाकि मैं बल हकीमजी से कह रहा था, हिंदू महिम्ना को मुसलमान गुण्डा से प्राणा का भय है। कई स्थानों पर वे अकेली ग्राहक निकलती डरती हैं। मुझे एक पत्र मिला है। मैं यह किस प्रकार सहन कर सकता हूँ कि उनके छोटे-छोटे बच्चा से किस प्रकार छेड़खानी की गई? मैं हिंदुओं को किस प्रकार बह सकता हूँ कि वे सब कुछ धय से सहन कर लें? मैंने आश्वासन दिया था कि मुसलमानों से मैत्री का अच्छा परिणाम होगा। मैंने उनसे कहा था कि वे उनके साथ मित्रता करे चाहे परिणाम कुछ भी हो। आज यह मेरे बस में नहीं कि मैं उस आश्वासन को पूरा करूँ। फिर भी मैं आज हिंदुओं से पढ़ी कहूँगा कि वे मर जाएँ, किंतु मारे नहीं। मैं ऐसा केवल अपनी जान देकर कर सकता हूँ। मैं अपना उदाहरण देकर उन्हें मरने के लिए बह सकता हूँ।"

एकता सम्मेलन, जो 21 दिन का अनशन के दूसरे सप्ताह में आरम्भ हुआ, बहुत प्रभावशाली समारोह था और इसमें ही गद्द अपीला तथा मेलजोल के लिए लिंग गए आश्वासनों में लगता था कि "मैंने अनशन

को सचमुच सफल बना दिया था। दरअसल राष्ट्रीय पचायत बाड, जिसे इमने जम दिया, केवल मृतजात वच्चा सिद्ध हुआ। वर्पन्ति व निवट गाधीजी ने पजाव की यात्रा की। (गाधीजी कुछ मुस्लिम नेताओं के साथ काहाट जाना चाहते थे, परन्तु अधिकारियों ने उन्हें मनाही कर दी)। अन्य नेता, जिनमें अली बंधु, हकीम साहिब और डाक्टर असारी भी थे, उनमें साथ शामिल हो गए। लालाजी में बहुत लम्बी-चौड़ी बहस हुई, प्रत्येक ने अपने मन की बात कही और दिखाई देता था कि इस अवसर पर विशेष जोर (विधान मण्डला आदि में) विभाजन के लिए कोई स्वीकार योग्य फार्मूला ढूँढने पर किया था। कोई समझौता न हो सका। यहाँ पर प्रासंगिक बात यह है कि इन बहसों में, जसा कि आम अवसर पर होता था, चाहे वह व्यापक एवता सम्मेलन हो या छोटे आकार की राष्ट्रीय सधि समिति, लालाजी ने बड़े धैर्य और निष्ठा से तबसगत ढंग से समझौता तलाश करने के लिए प्रयत्न किया (विशुद्ध भावुकता से ऊपर उठकर) और वातावरण चाहे कितना ही अविद्येकी या असुखद हो, उन्होंने स्थिति के यथार्थ को ध्यान में रखा। उन्होंने हिन्दू श्रोताओं को भी संबोधित किया। उन्होंने साम्प्रदायिक मेलजोड़ बनाये रखने की आवश्यकता पर अधिकतम बल दिया और लोगों से आग्रह किया कि वे समझौते की भावना अपनाएँ। उन्होंने माहस तथा बल की प्रशंसा की, परन्तु जवाबी गुंडागर्दी या इस्लाम या पगम्बर का अपमान करने की यथासम्भव शक्ति से निन्दा की। बेलगाव में हिन्दू महामभा की बैठक में (जब कांग्रेस की बैठक वहाँ गाधीजी की अध्यक्षता में हुई) कोहाट का मामला बहुत छाया रहा। परन्तु वहाँ लालाजी का भाषण (और कांग्रेस मंच से भी उनी विषय पर दिए गए भाषण) गाधीजी को बिल्कुल आपत्तिजनक नहीं लगा। यद्यपि जब लालाजी ने कांग्रेस की बैठक में गाधीजी के 'कताई मताधिकार' का विरोध किया, तो गाधीजी ने उनकी कुछ बातों पर आपत्ति करते हुए कहा कि कोहाट के दुखान्त में लालाजी की नीद तथा स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डाला है। परन्तु काहाट के बारे में लालाजी के भाषणों, विशेषकर महामभा की बैठक वाले भाषण में स्पष्ट तौर पर दिखा दिया कि उनके स्वास्थ्य को चाहे क्षति पहुँची हो, उन्होंने अपना सतुलन नहीं खोया था।

लालाजी का व्यवहार तथा संदेश गांधीजी में भिन्न नहीं था, सिवाय इस बात के कि लालाजी ने अपने संदेश के लिए हिंदू धर्म का पूरा इस्तेमाल किया और गांधीजी ने अपने आपको "दान" के विषय घोषित किया, लालाजी यद्यपि गांधीजी के इस सिद्धांत की प्रशंसा करते थे, फिर भी उन्होंने "दान" के लिए धर्म एकत्र किया।

IV

जिस उम्र से अली बधुआ ने कोहाट की घटना के बारे में प्रतिक्रिया दिखाई, उससे विषमता प्रकट हो गई, जिसके कारण महात्मा गांधी का उनके बारे में भ्रम दूर हो गया। जैसा कि हमने उल्लेख किया कि लालाजी ने 'पहा' नेताओं के विचार-विमर्श में (दिसंबर 1924) भाग लिया अली का एकमात्र योगदान "हाली" के लिए बोला हुआ था, जिसे लालाजी ने केवल मसखरेंपन का दर्जा दिया, परन्तु गांधीजी अभी भी अली बधुआ पर विश्वास करते थे और उन्हें "खालिस सोना" समझते थे। एक और बातचीत में जब एक अली बधु ने पंजाब में हुए खून खराबे को हिंदू मुस्लिम गंगा का गम दिया, तो लालाजी ने स्वाभाविक प्रत्युत्तर में कहा कि 'गंगातटी रामपुर में है,' जहां वे रहने वाले अली भाई थे।

अली बधुओं के बारे में गांधीजी का भ्रम टूटने की प्रगति का पता महादेव देसाई की डायरी से चलता है। इस उम्र में कुछ उद्धरण देंगे। दिसम्बर (1924) के अन्तिम सप्ताह में बेलगाव में महात्मा गांधी ने औपचारिक रूप से निर्गमि अख्यस मुहम्मद अली से कांग्रेस अध्यक्ष का कामभार संभाल लिया। कोहाट की घटनाओं के बारे में दोनों में कोई भिन्नता दिखाई नहीं देती थी, यद्यपि ये घटनाएँ प्रमुख समस्या तथा चिन्ता का कारण थीं। परन्तु केवल कुछ ही दिन बाद दिसम्बर में मुस्लिम लीग की बैठक हुई और उसमें कोहाट के बारे में एक प्रस्ताव पास किया गया, जिससे गांधीजी को बहुत परेशानी हुई, विशेषकर इस बात के कारण कि यह प्रस्ताव मुहम्मद अली ने रखा था। अगले ही दिन (पहली जनवरी, 1925 को) गांधीजी ने मौताना को एक पत्र लिखा जिसमें जोरदार डांट झपट की गई थी और गहरी निराशा व्यक्त की गई थी। पत्र के बाद हम महादेव का अपना लिखा देखते हैं

“बापू पहले तो मुझे इस पत्र की प्रति लेने की आज्ञा नहीं दे रहे थे, परन्तु बाद में महमत हो गए। जब मैंने शौकत अली की लज्जाहीनता की बात की, तो बापू ने कहा, “बिल्की इस वष के अन्त तक धैले से बाहर आ जाएगी।” बल्कि दो-तीन* मास के अन्त तक ही बापू ! मैंने कहा। यह तो और भी अच्छा होगा, बापू का उत्तर था।”*

संशोधित अधि निशाने के अधिब निवट सिद्ध हुई। क्या शौकत अली की “लज्जाहीनता” का प्रदर्शन मुस्लिम लीग में भी हुआ, यह बात स्पष्ट नहीं। छोटे मौलाना ने जा कांग्रेस प्रस्ताव में भागीदार थे, लीग की बैठक में बिल्कुल भिन्न प्रस्ताव पेश किया और यह प्रस्ताव मुहम्मद अली ने एक अय प्रस्ताव के स्थान पर पेश किया जिसे गांधीजी कम आपत्तिजनक समझते थे—यह कम आपत्तिजनक प्रस्ताव अन्य किसी ने नहीं दुर्जेय जफर अलीखा न रखा था, जिन्होंने वेलगाव कांग्रेस अधिवेशन पर अमतोप व्यक्त किया था।

अभी भी दिखावा बनाए रखा गया और फरवरी के आरम्भ में गांधीजी शौकत अली के साथ रावलपिण्डी पहुँचे, ताकि कोहाट की घटनाओं की जांच कर सकें। कायकारिणी न यह काय उन दोनों को सँपा था। इस जांच का परिणाम स्पष्ट टकराव के रूप में सामने आया—बिल्की धैले से बाहर आ गई थी और वह भी दो मास में नहीं, बल्कि एक ही मास में।

10-2-1925 की डायरी का शीपक है ‘स्तब्ध करने वाला रहस्योद्घाटन’। हम व्यापक तौर पर उद्घरण नहीं दे सकते, परन्तु कुछ नमूने के उद्घरण देंगे। गांधीजी की जिरह के सामने दो प्रमुख मुसलमान गवाहों ने “अनजान में ही रहस्योद्घाटन करने वाले, परन्तु सच्चे उत्तर दिए”—और ये उत्तर मौलाना के लिए असुखद सिद्ध हुए। डायरी में बताया गया है कि शौकत अली ने ‘पीर तथा अय सभी लोगों को पूव चेतावनी दे दी थी’ कि वह गवाही में अपने आंतरिक मतभेदा को व्यक्त न करें। परन्तु पूरी तरह पढ़ाने के बावजूद पीर ने स्तब्ध करने वाले रहस्योद्घाटन किए।

* महाव वेतार्ई के टूटे वि० गांधी पृष्ठ 5 पृष्ठ 11*

“प्रतिवप धम परिवतन करके (कोहाट में) इस्लाम में शामिल होने वाला की संख्या 150 तक पहुँच जाती है। प्रत्येक शुक्रवार को निश्चित ही ऐसे कुछ न कुछ धम परिवतन होते हैं। व्याहता महिनाआ का भी धम-परिवतन होता है। परंतु कठिन प्रश्न यह होता है कि धम-परिवर्तित महिला किसकी पत्नी हो? शरीअत के अनमार उसे अपने पति के पास जाने की आज्ञा नहीं दी जा सकती।*”

गवाहा ने “स्तब्ध करने वाले” ये ब्यान “मरल भाव तथा नापरवाही से लिये, जैसे इसमें कुछ भी गलत न हो” — गाधीजी शौकत अली के ‘निष्कपट विचार’ भी जानना चाहते थे।”

“यह मचमुच ही स्तब्ध करने वाला मामला है। यह बहुत असंगत बात है यदि आप जैसा व्यक्ति भी “उलेमा” के पास जाए और उनमें बुरान तथा शरीअत की व्यवस्था की व्याख्या करने का कहें।”**

मौलाना ने कहा कि उन्हें अरबी नहीं आती। और उन्होंने (गाधीजी) उनके अतिरिक्त उकसाने वाली कई अन्य बातें भी कहीं। शौकत अली ने टानन तथा अटपटे से उत्तर दिए।”

अगले दिन प्रातः (10 फरवरी) गाधीजी ने “दिल हिला देने वाला प्रवचन” आरंभ किया।

‘मैं अब उस व्यक्ति की स्थिति नहीं देखे अपनी रज्जई में साप देखकर धक्का पहुँचता है और वह उसे पूरी तरह चटकता है और सारे कमरे को पूरी तरह साफ कर देता है। मुझे काहाट के बारे में आवश्यकतक बातों का पता चना है, जिनकी मुझे पहले मिल्लुल जानकारी न थी। †

जब गाधीजी ने अगवा करके बड़े पमाने पर धम परिवतन की बात की तो मौलाना ने केवल ‘पाप की पीक की पिचकारी पेंकी आर धुप रहे।’

धक्का पट्टेचाने वाली अन्य कई बातें भी थीं—जिनका मसबब कोहाट में नहीं था—अफगानिस्तान से मिली खबरे, जहाँ जुनूनी लोया ने विघ्नमिया का इट-पत्पर भार-भारकर हनाल कर दिया था, और शौकत अली ने हम माय का समयन किया था।

* यही पृष्ठ १८१

** यही पृष्ठ 2८१

† यही पृष्ठ १६६

सालाजी की बगटी गांधीजी की परंपरा अच्छी थी, जिन्होंने ऐसी गदगी का "गरा सोना" कहा था।

आखिरकार नहरू रिपोट ने अली बघुआ को उनसे सही रंग में पेश कर दिया—प्रजातंत्र राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय कांग्रेस के युते विरोधी। शायद मृत्यु ने उनको पूरी तरह मुन-मोन में बहुत शीघ्र हस्तक्षेप किया था।

अनुदण में यह बात बहुत ही आश्चर्यजनक लगेगी कि कट्टरपंथी अली बघुआ का कांग्रेस राष्ट्रवाद का प्रवक्ता स्वीकार किया गया था और यद्दान्त को ही नहीं, बल्कि मालवीय और साजपत राय का भी, "समप्रदायवादी" घोषित कर दिया गया था। जब तक अली बघुआ का कांग्रेस में सत्ता प्राप्त नहीं, उन्होंने सपनतापूर्वक सालाजी तथा कांग्रेस के अन्य कई नेताओं के बीच दूरी बनाए रखी। गांधीजी, सालाजी का बहुत अच्छी तरह समझते थे और अली बघुआ के प्रयत्न से पूरी तरह गुमराह नहीं थे, परंतु यह एक तथ्य है कि गांधीजी और सालाजी के बीच अधिक समन्वय उस समय हुआ जब अनिष्ट अली-प्रभाव समाप्त हो गया। राष्ट्रवाद तथा साम्प्रदायिकता के बारे में सालाजी के दृष्टिकोण का सही ढंग से अनुमान लगाने के लिए गांधीजी और अली बघुआ की पहली एक प्रामाणिक तथ्य है।

V

अली बघुआ के बारे में सालाजी का सही निष्कर्ष कि यह इनका धर्म है कि उन्हें राष्ट्रवादी नहीं समझा जा सकता, गांधीजी के निष्कर्ष में बहुत दूर हो गया था।

एक बार कई प्राता का व्यापक दौरा करने के बाद दिल्ली में सालाजी के दौरान सालाजी हकीम अजमल खा से मिलने गए, सादर रूप से प्रार्थना और शायद अबुल कलाम आजाद भी उपस्थित थे। वह अजमल खा बहुत ही हिंदू-मुस्लिम तनाव पर पहुंच गईं। "हिंदुआ तथा मुस्लिम" में शायद पांच-पाच व्यक्ति ऐसे हैं, जो स्थिति को देखते हैं कि आपसी सदभावना तथा पूर्ण स्पष्टता में आजाद और अमारी तथा अपन

लिया। अपनी स्पष्टवादिता के साथ लालाजी ने तुम्हें उतर दिया, "मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं अली बघुआ को असारी और अजमल खा में अलग स्तर पर मानता हूँ। मेरा विचार है कि मैं उन पर इस निर्विवाद ढंग से विश्वास नहीं कर सकता।"

मामला उस समय चरम सीमा पर पहुँच गया जब मुहम्मद अली ने नारी नाडा में (1923 के जनम) कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की और अपने अध्यक्षीय भाषण में जायबपूण प्रस्ताव रखा, जो आग्रा खा की उकमाहट पर था कि "अछूतों" को हिंदुआ तथा मुसलमानों में बांट दिया जाए। विभाजन के इस वार और अक्खड़ मुझाव ने लालाजी के मन का गहरी ठेस पहुँचाई और जमा कि हम देख चुके हैं कांग्रेस अध्यक्ष पद से किए गए इस प्रस्ताव के कारण लालाजी ने छूआ छान के विरुद्ध देश-व्यापी अभियान चलाने और इस अभियान का अपने कार्यक्रम का प्रथम सूत्र बनाने का निणय किया। जिस प्रकार हमने इस अभियान में सबट अध्याय में उल्लेख किया है, लालाजी ने जायवारिणी को जो प्रस्ताव दिया और मौलाना ने उसके साथ जो व्यवहार किया (कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में) वह लालाजी और अली बघुआ के बीच खाइ को चौड़ा करने के लिए काफी था।

मुहम्मद अली ने अजय पतिभावा के अलावा उनकी अत्यंत कटु लेखनी तथा अत्यंत कटु भाषा भी थी, जिसे वह अपने साथ सहमत न होने वाले व्यक्ति के विरुद्ध तब तक बर्तार पर इस्तेमान करने के लिए तयार रहते थे। जब लालाजी ने कांग्रेस नेतृत्व के कई पहलुआ की आलोचना करनी आरंभ की, मुहम्मद अली ने अपनी भाषाई गुलिल से उन पर अनेक वार किए और अपने पत्र 'कामरेड' में उनके विरुद्ध अनेक निंदा लेख प्रकाशित किए, जिनमें उनकी कलम से विभिन्न प्रकार के अपमानजनक तथा व्यंग्यात्मक लेख लालाजी के विरुद्ध लिखे गए। इस लगातार निंदा लेखों की लालाजी ने रती भर परवाह न की और उन्हें बेवस गाली-गलौच का महत्व ही दिया, परंतु कुछ संता में इन लखा को अवश्य ही शरारत करती थी।

लालाजी पर आरोप करने के लिए मुहम्मद अली अक्सर कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों या महात्मा गांधी की अनुमति प्राप्त कार्यक्रमों के विरुद्ध लालाजी के अपघर्षों को चुनने, परंतु कई मामलों में ऐसे बहानों का महारा भी न लिया जाता। लालाजी ने सावजनिक तौर पर मौलाना के सुझाव का कि दलित

वर्गों का, जिन्हें बाद में हरिजन कहा गया, हिंदूओं तथा मुसलमानों में आधे-आधे घाट दिया जाए, उनके साथ भयानक विरोध खड़ा कर लिया था। इस विरोध का और भी बटु बनाने के लिए लालाजी द्वारा मौलाना के प्रस्ताव के विरोध में आरंभ किए कार्यक्रम का भी दखल था। शायद कोई भी प्रमुख हिंदू नेता, मौलाना के इस प्रस्ताव का, जो उन्होंने अर्थात् पद से किया, समर्थन नहीं कर सकता था। परंतु जब उनमें से अधिवक्ता उस चुपचाप सुनने रहें, गांधीजी, जो जेन मेथे और लालाजी यद्यपि काकी नाडा अधिवक्ता में नहीं थे, फिर भी उन्होंने इस शरारत का असफल बनाने के लिए असरदार कारवाही करने का इस्तेमाल किया। मौलाना धर्म प्रचार के जाश का ? रोने सने, परंतु कांग्रेस के अध्यक्षीय पद से इस प्रकार इसे व्यक्त करना और बिना विरोध के यह सचेत बहुत शोभ देना वाला था और इससे मूल्यों का दूषण व्यक्त होता था। इस उल्टे प्रसंग में निस्संदेह लालाजी की भूमिका एक सम्प्रदायवादी की दिखाई देती थी।

VI

उत्तमाही राष्ट्रवादी के तौर पर लालाजी ने हिंदू समुदाय के प्रति अपने कृतव्या की त्यागा नहीं था, मुख्य तौर पर जा वाम समाज सुधार के या पिछड़े वर्गों के कल्याण के थे आर जहां भी हिंदूओं का किसी विपत्ति का सामना करना पड़ता था, चाहे वह मनुष्य की पैदा की हुई हो या परमात्मा का काय हो, के आशा करते थे कि लालाजी (और मौलवीय) तुरंत उनकी सहायता का पहुंचेंगे। इन गतिविधियों के कारण कुछ लोग लालाजी का "सांप्रदायिक" कहते थे। हम यहां सन्निप्त तौर पर लालाजी की सांप्रदायिक गतिविधि का दखना है कि क्या सचमुच ही वह राष्ट्रवाद के उनके काम के विपरीत थी।

निस्संदेह लालाजी की "सांप्रदायिक" गतिविधियां में प्रमुख बात उन लोग के लिए काय था, जिनके साथ "अछूता" का व्यवहार किया जाता था। उनकी इस काय में अपने मावजनिक् जीवन के आरंभ से ही रूचि रही थी, वह इसे सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे—हिंदू सुधारक के रूप में, भारतीय राष्ट्रवादी के तौर पर और सबसे अधिक सभी मनष्यों में आपसी समानता में विश्वास रखने के कारण। यहां उनका काय, उद्देश्य या तौर-तरीका के कारण राष्ट्रवाद के विपरीत नहीं था। गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस काम को अपने "रचनात्मक कार्यक्रम" के एक भाग के तौर पर अपनाया

और इसी प्रकार यह चलता रहा, चाहे मुहम्मद अली के अध्यक्षीय भाषण में इसमें खेदजनक त्रुटि आई या यह विवृत हो गया।

लालाजी ने इस क्षेत्र में अपना राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम, "हरिजन सेवा" सस्था की स्थापना के साथ, लगभग एक दशक पूर्व आरम्भ किया। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम स्थगित किए जाने के बाद, कांग्रेस का विचार रचनात्मक कार्यक्रम आरम्भ करने का था, परन्तु जहाँ कांग्रेस का स्वयं का अति महत्वपूर्ण भाग उपभूत रहा था। लालाजी ने निष्ठापूर्वक यह कार्य शुरू किया, उन्हें अपने साधन जुटाने से और राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए 'सांप्रदायिक' सस्थाओं का भी इन्तजाल करना था। मर्मा महत्वपूर्ण पहलुओं से लालाजी का यह कार्य, गांधीजी द्वारा सच के माध्यम से किए जाने वाले कार्य का पूर्व-संपादन ही था। लालाजी द्वारा यह कार्य शुरू किए जाने के बाद तुरंत ही मुहम्मद अली का वह प्रस्ताव आया जो उद्घाटन आगा खा के बहाने पर किया था। इसने लालाजी का उसी प्रकार अशांत किया, जिस प्रकार रेमजे मेन्डोन्सो के नियंत्रण में (बाकीनाडा प्रस्ताव के ममान) किया था, जिसका साक्षात् ममान उद्देश्य कि हरिजनों को हिंदू समुदाय का भाग न माना जाए या उन्हें हिंदू समुदाय का ऐसा भाग माना जाए जिसे अलग किया जा सकता हो। अपनी व्यथा में महात्माजी ने उपवास किया और प्रायश्चित्त की और प्रतिनिधित्व का स्वीकारीय फामूला तैयार करवा लिया और हरिजन मंच स्थापित किया। लालाजी ने अशांत होने पर एक पवित्र दिन प्रेरणा चाही—यह पवित्र दिन गुरु गान्धिवि मिह जी का पवित्र दिन था—और उन्होंने घोषणा की और उसके बाद अछूत उद्धार समिति द्वारा आगे की कारवाही आरम्भ कर दी।

लालाजी की गतिविधि में एक और 'सांप्रदायिक' कार्य हिंदू महासभा के साथ उनके सहयोग था। ऐसी सस्था के साथ लालाजी का प्रथम सहयोग, इस शताब्दी के प्रथम दशक में था, जब पंजाबी हिंदू सभा आरम्भ हुई थी। यह तारीख महत्वपूर्ण है, क्योंकि लालाजी की ये सांप्रदायिक सस्थाएँ एक प्रकार से सविधान की सांप्रदायिक व्यवस्थाओं का परिणाम मात्र थीं। मिंटो ने उस समय सांप्रदायिक निर्वाचन-पद्धति लागू की थी और लालाजी की टीम के बावजूद गोखले का यह पद्धति स्वीकार करने योग्य लगी थी। हमने इस नय की ओर पहले ही ध्यान दिलाया है, क्योंकि लालाजी सांप्रदायिक चुनाव पद्धति को भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के लिए विपरीत मानते थे, परन्तु

यदि हम मजबूर हाकर साम्प्रदायिक आधार पर मतदाताओं तक पहुंचना है, हम न चाहें हुए भी किसी न किसी प्रकार के साम्प्रदायिक संगठन स्थापित करण हाने, परंतु राष्ट्रीय लक्ष्य दृष्टिगत रखना होगा। भारतीय आंदोलन के एक ब्रिटिश मित्र न लालाजी के इस मिश्रण का अधिकृत रूप में इस प्रकार उल्लेख किया

“ यदि साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति से बचा जा सकता, तो प्रजातांत्रिक संस्थाओं का दाना ममुदाया का एक करन के लिये इस्तमाल किया जा सकता और इस प्रकार उन्हें आर्थिक स्तर के आधार पर इकट्ठे किया जा सकता था। परन्तु साम्प्रदायिक चुनाव-पद्धति पूरे जोर से होने आर किसी प्रकार का ज़ारदार मघप हित न हाने के कारण हमें समय की गति पीछे की आर करनी पड़ी है।”

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हिंदू महासभा कई चरणों से गुजरा है और यह संभव है कि लालाजी ने उसकी सभी नीतियां तथा गतिविधियां की पुष्टि नहीं की होगी। (पंजाब सभा में भी लालाजी की सक्रिय रुचि अल्प अवधि की थी, क्योंकि वह उसके अनेक कार्यों को ठीक नहीं मानते थे।) महासभा में लालाजी की गतिविधियां का जायजा लेने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक होगा कि वह उस संगठन की केवल उसी अवधि के कार्य का जायजा न, जब लालाजी को उसके सहायकारों में निर्णायक अधिकार प्राप्त था।

इस प्रकार देखने से एक बात विशेष दिखाई देगी कि मालवीय लाजपत राय नेतृत्व के अधीन महासभा के चुनाव के माध्यमों से खास वास्ता नहीं था। इस प्रकार कांग्रेस जैसे संगठनों के साथ कोई टकराव नहीं था और न ही स्वाधीनता प्राप्ति के मघप का किसी प्रकार कमजोर करन की बात थी। इस प्रकार महासभा में लालाजी का सहाय्य पराम्भ रूप में कांग्रेस पार्टी के लिए सहाय्यक हो सकता था। इस बात का स्वयं पंडित मोतीलाल ने स्वीकार किया और वह भी लालाजी के विरुद्ध वाद विवाद के दौरान

‘ भारत से रवाना हान तक आप कांग्रेस उम्मीदवार के जोरदार समर्थक थे और जब हिंदू महासभा में आपने उनका लिये ज़ारदार मघप किया। आप वह विशेष बात नहीं कहते जिन्होंने पिछले चार महीनों में आपके विचारों में श्रुति ला दी है।’ (लालाजी द्वारा स्वराज पार्टी से त्यागपत्र देन के परा 3 के उत्तर में पंडित मोतीलाल के 30 अगस्त के उत्तर से उद्धृत)।

* जाशिया सी० बजबुड का 8 अक्टूबर 1926 का लालाजी के साथ पत्र जो 7 नवंबर 1926 को द पीपुल में प्रकाशित हुआ।

लालाजी का सभा पर प्रभाव राष्ट्रवादी हित के लिए लाभकारी था, शायद उसकी आवश्यकता भी बहुत थी। (एक "विशेष घटना" भी थी जैसा कि हम देखेंगे। मातीलालजी को ममवत बहुत चालाकीपूर्ण मदद था और लालाजी इससे बचते नहीं कहते थे)। उस समय भी जब लालाजी ने स्वराज पार्टी से त्यागपत्र दे दिया और चुनाव के लिए इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी की स्थापना के लिए मानवीयजी को सहयोग दिया, तो उनका उद्देश्य उत्साही लोग का नियंत्रण में रखना था, जो महासभा द्वारा अपन उम्मीदवार छोड़ करने के पक्ष में थे।

बंबई में हिंदू सम्मेलन में किसी व्यक्ति ने "गैर हिंदू" के उपस्थित हान पर आपत्ति की, यह गैर-हिंदू प्रसिद्ध पारसी विद्वान जी० के० नरीमन थे। लालाजी ने सीधे ही यह आपत्ति रद्द कर दी (इस बात की चर्चा स्वयं नरीमन ने की*) और कहा कि कोई भी व्यक्ति हिंदू मुस्लिम या ईसाई-सम्मेलन में शामिल हो सकता है, भले यह है कि वह भारत से प्रेम करता हो। हिंदू सभा में लालाजी के कार्य की यह विशाल हृदय उनकी विशेषता थी।

उन्होंने सदा ही इस बात का विशेष ध्यान रखा कि उनके अपने समुदाय के लिए उनका काम इस ढंग से किया जाए कि कुल मिलाकर उस महान लक्ष्य को योगदान प्राप्त हो सके, जिसके लिए उन्होंने अपने आपका समर्पित किया हुआ था—भारत की स्वाधीनता और महान भारतीय राष्ट्र के निर्माण। उन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने की सोची और इसके लिए साम्प्रदायिकता सगठनों द्वारा काम किया—निस्संदेह अपने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से, जो काम सहायक ही नहीं अन्निवाय भी था। उनका दृष्टिकोण और तरीके उन नेताओं से स्पष्ट तौर से अलग थे जो सकीण एक साम्प्रदायिक सीमाओं को पार नहीं कर सकते थे। उन हिंदू नेताओं से भी, जो भारतीय सद्म के यथाथ की उपेक्षा करते थे और सभी हिंदू सगठनों से दूर रहते थे कि कहीं उनके सम्यक् से उनका राष्ट्रवाद दूषित न हो जाए। इनमें कई महानुभवों ने निजी तौर पर लालाजी का पूरा समर्थन देने का आश्वासन दिया था, परन्तु सावजनिक तौर पर उनका व्यवहार बिल्कुल अलग था। बलगाव में श्रीनिवास अयंगर ने असल में उनसे कहा था "मैं आपके दृष्टिकोण से सहमत हूँ परन्तु चाहूंगा कि एक वष के लिए मुझे अलग रहने दिया जाए।"

* द पोपुल साजपत राय अंक 13 अप्रैल 1929

VII

अन्य कदम लागा के समान लालाजी भी महमूम करते थे कि खिलाफत आंदोलन के साथ गलत ढंग से निपटने के कारण धर्म का बहुत अधिक छूट दे दी गई थी। वह खिलाफत माग के लिए मुसलमानों का पूरा जोर से समर्थन करते थे परन्तु जब कुछ अधिक जाशीने लोग न अनवर पाशा के सैनिकों या अफगानिस्तान के सैनिकों के भारत आने के गीत गान शुरू कर दिए, तो लालाजी चुप न रह आर विचलित पर लालाजी न जो महमूम किया उसे व्यक्त करने के लिए खिलाफत का मंच ही चुना। सर तेज बहादुर सफर ने, जो हिंदू सभाई नहीं थे, लालाजी को लिखा

“खिलाफत सम्मेलन की दूसरी बैठक में आपके जाशिये तथा स्पष्ट भाषण का व्यौरा पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं सोचता हूँ कि यह हमारा कृतव्य है कि शांति अली तथा उनके मित्रों का बता दे कि हम अपनी ‘मुक्ति’ के लिए अफगान मित्रों के आने की मभावना की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह मरदासर बकवास तथा शरारत है और मुझे डर है मुसलमान समुदाय में हमारे कुछ मित्रों ने असहयोग आंदोलन को जो समझा है वह गांधीजी के असहयोग आंदोलन से बिल्कुल भिन्न है यद्यपि मैं गांधीजी के विचार से भी सहमत नहीं हूँ। परन्तु चाहे वाई व्यक्ति श्री गांधी के साथ सहमत न हों, उनके विचारों का सम्मान अवश्य करता हूँ। परन्तु शांति अली तथा उनके मित्रों के साथ सहमत होना बिल्कुल असंभव है, जो यह स्वप्न लेते हैं कि अफगानिस्तान भारत का सहायक और मुक्तिदाता है। मुझे यह सुनकर अति प्रसन्नता हुई है कि आपने उन्हें बताया है कि हिंदू इसके बारे में क्या सोचते हैं।

जब भारतीय महाजरीन युवकों की मध्य एशिया में किमी स्थान पर अनवर पाशा से भेंट हुई, तो बहादुर तुंग न विनम्रता के साथ उनसे जो पहला प्रश्न पूछा, वह लाजपत राय के बारे में था—एकमात्र भारतीय नेता, जिनमें उमन गहरी रूचि दिखाई। मुवा तुकों तथा मिस्री लोगों में भी लालाजी के मित्र थे। जब भी उनके शिष्टमंडल भारत आए लालाजी को उनका अतिथि मत्कार करना गव महमूम हुआ, जिन प्रकार उनके देश में लालाजी को उनकी मेजबानी स्वीकार करके होता था।

VIII

काहाट की दुखात घटन के बाद, सांप्रदायिक जुनून की जा कारवाही लालाजी का बहुत हृदय विदारक लगी, वह थी श्रद्धानंद की हत्या। परंतु इनमें से किसी भी घटना न, जब भी अवसर मिला, समझाना करान के उनका प्रयत्न न न राका। चाहे उन्हें व्यक्तिगत तौर पर धमकिया भी दी गई। श्रद्धानंद की हत्या के कुछ दिन पश्चात उन्हें एक गुमनाम पत्र मिला जिसमें धमकी दी गई थी कि 'सगठन' की उनकी गतिविधिया के लिए उन्हें अपनी जान की कीमत देनी पड़ेगी। उन्होंने यह मूल पत्र तथा जिस लिफाफे में वह पत्र आया था, वह साहार के जिला मजिस्ट्रेट का भेज दिया। लगभग उही दिना एक अनजान व्यक्ति न काट स्ट्रीट के उनके भकान पर उन पर सदिग्ध ढग में झपटन का यत्न किया था। जब उससे पूछा गया ता वह अपन उद्देश्य के वार न कोई सतापजनक उत्तर न दे पाया, ऐसा दिखाई देता था वह बहुत भयभीत हा गया था। यह किन्तुल स्पष्ट दिखाई देता था कि वह मुसलमान था और किसी माधारण काय के लिए नही आया था। लालाजी न उसे वहा में चले जाने को कह दिया आर उसे पुलिस के हवाले करने में इवार कर दिया। इन परिस्थितिया में लालाजी न एक नई आदत अपना ला थी, वह जब न रिवाल्वर डाल कर जान लगे थे। इसके अनिश्चित उनके आमपास रहने वाले लोग न इस बात पर जार देना आरभ कर दिया कि यथा सभव वह अकेले घर से बाहर न जाया करे। परंतु किसी भी घटना के वार न हा-हूला न किया गया—न धमकी भरे पत्र के वार न आर न आए सदिग्ध व्यक्ति के वार में। जहां तक मझे याद है उसकी समाचार पत्रा में भी चर्चा न हुई।

IX

लालाजी न महसूस किया कि गांधीजी का धम पर जार, जा महामा के लिए सभी बातों से बढकर था, आखिर में जाकर उत्तमन पदा करणा, क्योंकि इसमें उन बात की उपदा की गई थी, जा मंदिर की मदम बडा विशेषता थी। यह अवारण नही कि जग्गी शब्द फनटिक, जिसका अर्थ जूनूनी ह शब्द फनम के मूल में है, जिसका अर्थ मंदिर है।

लालाजी का मदा ही प्रयत्न था कि दोनों समुदाया के बीच किसी ठग आर उचित ढग में निर्धारित समझान पर पहुंचा जा सके जिसमें आपसी समानता और समझौत की जान हा। उन्हें इस बात के लिए महमन नही किया जा सकता

था कि (हिंदुआ द्वारा) कारा चक्र दन जसो उच्च सद्भावना दिखाई जाए जार यह चक्र मुस्लिम नेता भरे, या खानदानी मुसलमाना (दसरे दशक के आरम्भ मे मह वाक्य गाधीजी का बहुत मनपसंद था) मे निर्विवाद विश्वास समस्या को हल कर सकता था। लालाजी ने इतिहास के अध्ययन से समकालीन भारतीय स्थिति के अनुभव से, ऐस प्रचार की पुष्टि हाती दिखाई नहीं देती थी। आज इस बात का आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि 'कारे चक्र' वाले रवय के कारण किसी सीमा तक हिंदुआ की सहानुभूति खान का कारण बना, इसके साथ ही मुसलमान भी इस पर विश्वास नहीं करते थे और इस कुछ कुटिलता या टासन वाली कारवाई समझते थे।

लालाजी ने तीसरे दशक के आरम्भ में गाधीजी के आदर्शवादी रवय पर अधिक आशाएं नहीं लगाई थी। इसमें व्यावहारिकता नहीं थी और लालाजी के दृष्टिकोण में व्यावहारिक राजनीति पर इसका प्रभाव नहीं हो सकता था।

लालाजी हिंदू-मुस्लिम प्रश्न पर अपने रवय में अपने ही ढंग से दृढ़ रहें अर्थात् कुछ बुनियादी सिद्धांतों के प्रति मजबूत रहे (जैसे उट वृक्ष दब रहता है), फिर भी व्योरे के बारे में समझौता करने के लिए तैयार रहते थे (जैसी लता में लकड़ होती है)। उनके विचारों का यह दार जिसका हम यहां जिक्र कर रहे हैं अमरीका में उनके निवास के दौरान आरम्भ हुआ जब उन्होंने मात्र दायित्वता के विरुद्ध जारदार घाषणा की जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। जब बाद में उन्होंने देखा कि हिंदुआ को माप्रदायिक मंच पर संगठित करने की आवश्यकता है, उन्होंने जा चेतावनी पहन ही थी अपने सामने रखी कि वह हिंदू महासभा का उस प्रकार खतरनाक ढंग से इन्तमाज करने की आज्ञा नहीं देंगे। उन्होंने अत तक हिंदू महासभा का चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े करने की अनुमति नहीं दी ताकि इस प्रकार राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ झगडा न हो जाए। विचारों का जो दौर अमरीका में हिंदू मुस्लिम मतभेदों से सवधित घाषणा से आरम्भ हुआ था, अत तक जारी रहा, क्योंकि अपने अन्तिम समय तक उनका अधिकतर समय तथा शक्ति नेहरू (मातीलाल) द्वारा तैयार समझौते के मसाले का कार्याचित करने में ही लगी। अन्तिम अध्यक्षीय भाषण जो लालाजी ने लिखा और अपने अंत में तीन मघ्ताह से भी थोड़े समय पूर्व इटाव में हिन्दू सम्मेलन में दिया, नेहरू रिपाट के आधार पर हिंदू-मुस्लिम समझौता लागू करने के लिए भावात्मक निवेदन था। यह तथ्य कि इस मामले

पर लालाजी और मानीलालजी में पूरी सहमति थी, इस बात का आकाशमय प्रमाण है कि दोनों के परिपक्व विचार इस समस्या पर समान थे और दाना एक ही परिणाम पर पहुंचे थे और एकता बनाए रखने के लिए एक दूसरे जितने ही उत्सुक थे। उदाहरण के तौर पर लालाजी ने जो बात हिंदू समाज के मंच में कही, मानीलालजी उम मंच का प्रयोग नहीं कर सके थे। और एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ की तरह मानीलालजी ने अवश्य ही यह भाव लिया होगा कि नहर्न स्वीम का बड़ा दान के लिए महासभा पर लालाजी का प्रभाव कितना लाभकारी तथा आवश्यक था।

स्वाधीनता के बाद आरंभ के बाद भी हिंदू-मुस्लिम एकता की समस्या राजनीतिज्ञों का उलझा में डाले हुए थी। परंतु बुनियादी तौर पर भारत के नए मानचित्र में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के बारे में नहर्न स्वीम के प्रस्ताव ही भारतीय संविधान में अपनाए गए हैं। इससे यह समस्या हल नहीं हुई, इसका अर्थ यही है कि इस समस्या का पूरा समाधान नहीं हो सकता और यह समझौता ही इसका आंशिक समाधान है।

लालाजी ने हिंदू-मुस्लिम मनभेदा का उरी ईमानदारी से धारदार तथा यथावसरक अध्ययन किया, जो 1924 में समाचार पत्रों के लिए लिखे गए 13 लेखों की शृंखला में प्रकाशित हुआ। जिस पुस्तिका में ये लेखों द्वारा प्रकाशित किए गए हैं इसका प्रत्येक पन्ना एकता के प्रति उनकी गहरी इच्छा का व्यक्त करना है और उनमें जो मुझाव दिए गए हैं उनमें से अधिकतर आज भी सत्य हैं, यद्यपि 1947 में भारत का जो मानचित्र फिर से बना है उसने समय की कई अर्थ दिव्यगिया को गलत मिद्ध कर दिया है।

जो व्यक्ति लालाजी के 'सम्प्रदायवाद' और राष्ट्रवाद का समुचित जायजा लेना चाहता है हम उसे मुझाव देंगे कि वह बड़ी सावधानी से उस पुस्तिका का तथा हिंदू सम्मेलन में दिए गए भाषणा का ध्यान में लें। एकता के लिए उनकी आकांक्षा और इसका जिस उनके निष्ठापूर्ण प्रयत्नों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, चाहे उनकी आंश में दिए गए मुझावा की छबिया कुछ भी हों।

लालाजी केवल एक समझौता ही नहीं चाहते थे, क्योंकि वह अच्छी तरह समझते थे कि केवल ऐसा करने में ही समस्या का असरदार समाधान नहीं

* हिंदू मुस्लिम समस्या पर यह उल्लेख का सं० लालाजी के साजपत राय संस्करण भाग १ में साजपत राय साइंटिफि एंड स्पेशलिज्म में पृष्ठ 170-200 में प्रकाशित हुई है।

हो सवता । एवना वा अगल बाय ता शिक्षा के माध्यम से हाना था और इसम लालाजी का योगदान भार्गभिन है—मुस्लिम शासन के इतिहास का आदारा निखन की उनगभपूण समम्या सं निपटने की—जा उन्हान राष्ट्रीय शिक्षा के बारे म अपनी पुस्तक में बही । इसम बार्द मदह नही कि डॉ० जाकिर हुसैन विशेषतौर पर लालाजी के उम योगदान में बहुत प्रभावित हुए थे, जब उहानि इस पुस्तक के शताब्दी मन्वरण का बहुत ही प्रशंसात्मक प्राक्वचन लिया ।

X

नेहरू-स्कीम के लिए केवल हिंदुआ का समयन प्राप्त करन के लिए ही मोतीलालजी को लालाजी पर अधिन निभर नही रहना पडा, बल्कि जिन्ना जिन्हें प्रमुख मुस्लिम नेता का समयन प्राप्त करन के बारे म यदि उन दिना व सभी आवडा का अध्ययन किया जाए, तो पता चलेगा कि लालाजी का योगदान अय किमी काप्रेस नेता के मुकाबले बहुत अधिक था । लालाजी १ साईमन कमीशन का सयुक्त विराध करन के लिए प्रयत्न किया और जिन्ना में पूण समथन प्राप्त किया । अपने अंतिम दिना म उहानि फिर जिन्ना स सपक बनाया हुआ था ताकि नेहरू-स्कीम पर विचार करन के लिए सबदलीय सम्मेलन के लिए उनका समयन लिया जा सके ।

लालाजी को एम० ए० जिन्ना के साथ मिलकर काय करन म आमतौर पर कोई कठिनाई नही होती थी । उहाने अमहयोग आदोलन से पहले के दिना म अकसर इकटठे काय किया था और यद्यपि गांधीजी के मत्ता में आन पर जिन्ना न काप्रेस छोड दी थी, उहाने उम समय फिर मिलकर काय किया, जब लालाजी विधान सभा के लिए चुन गए थे—और उन्हें अक्सर एक दूसरे में विचार विमश करत हुए दखा गया था । यह बातचीत विधान सभा की काय मूची के बारे म नही, बल्कि हिंदू मुसलमान सबधा के व्यापक पहलुआ के बारे म होती थी । वे हमेशा एक दूसरे स सहमत नही होत थे और कई बार उनके मतभेद बहुत तीक्ष्ण हात थे और वे एक दूसरे की सावजनिक तौर पर बडे जोश और जोर में आलोचना करत थे, परंतु यह सदा ही संभव होता था कि यह मालूम हो सके कि मतभेद का कारण क्या है और वे कहा तक एक दूसरे से मिलकर काम कर सकने हैं । गाइमन कमीशन का बहिष्कार करन में महयोग इसका एक उदाहरण है । विधान सभा के दिना म जिन्ना अनेक बार लालाजी के कमरे में चले आते बिना पहले से निश्चित किये या बिना बताए । कई बार तो वह

एक एक दिन मही कई बार इस प्रकार आया करते थे। लालाजी भी इसी प्रकार उनमें मिलन चले जाते और अक्सर बातें करत हुए दोना इकट्ठे ही खड़े हो जाते और बातचीत जारी रखने के लिए उसी प्रकार मालवीयजी के पास पहुँच जाते। कोई औपचारिकता नहीं थी, जानकी का परिणाम समझना होता था या नहीं कभी यह प्रश्न नहीं उठाया कि कौन किससे मिलने जाएगा। तीसरे या चौथे दशक में जो मामूली बात आमतौर पर बातचीत करने वाला में टक्कावट बनती थी, व नहीं थी। केन्द्रीय मन्त्रालय जिन्ना की कोई मुस्लिम लीग पार्टी नहीं थी, वह निदलीय सदस्यों के एक छोटे से गुट के नेता थे। स्वराज पार्टी के नेता और निदलीय सदस्यों के नेता में सब कुछ इतना सुस्पष्ट नहीं थे जितने विपक्ष के दो नेताओं के हाने की आशा हो सकती है। लालाजी और जिन्ना सांख्यिक मन्त्रालय के लिए कोई सतोपजनक फामूला चाहे न डब मके हों, परन्तु विधान मन्त्रालय के अन्तर्गत मामला में एक दूसरे का पूरा सहयोग दे सकते थे।

XI

1926 के चुनाव की चर्चा करते हुए लालाजी ने कहा कि मैं अपनी आत्मकथा में लिखा है *

"मैं और लालाजी गणित म जेनवा में मिले थे और बातचीत से मैंने यह अनुमान नहीं लगाया था कि वह कांग्रेस पार्टी के विरुद्ध आक्रामक रवैया अपनाने का इरादा रखते हैं। परन्तु चुनाव अभियान के दौरान उन्होंने कुछ स्पष्ट आरोप लगाए, जिन्से पता चलता था कि उनका मन किस दिशा में जा रहा था। उन्होंने कांग्रेस के नेताओं पर आरोप लगाया कि वे भारत में बाहर जाकर के साथ पड़्यत्र कर रहे हैं। उन्होंने यह आरोप भी लगाया कि ऐसा ही पड़्यत्र वावुन म कांग्रेस की शाखा स्थापित करने के लिए किया गया है।

'मुझे याद है कि जब मैंने भारतीय समाचार पत्र में लालाजी द्वारा लगाए गए आरोपों के बारे में पढ़ा, तो मैं स्तब्ध रह गया। कांग्रेस मन्त्रियों के तौर पर मुझे अपनी पार्टी के बारे में पूरी जानकारी थी। वावुन-मिति

का सबद्ध करने मर्मने स्वयं कारवाई की थी। देशबन्धु दास न इस मामले में पहल की थी। मुझे मालूम नहीं लालाजी का इस मामले में गलतफहमी कैसे हो गई। मभव है उन्होंने कई अपवाहा पर विश्वास किया हा और मेरा विचार है वह हाल ही में मौलवी उवेदुल्ला के साथ हुई बातचीत में प्रभावित हुए हों, यद्यपि उस बातचीत में कुछ नहीं था जो मुझे असाधारण दिखाई दे।'

स्पष्ट है कि जवाहरलालजी का यूरोप में रहने के कारण सभी बातों की जानकारी नहीं थी, नहीं तो वह अन्य महत्वपूर्ण मामला के मुकाबले, जो लालाजी के अभियान में प्रमुख थे, काबुल कांग्रेस समिति को इतनी प्राथमिकता कभी न देते, जबकि काबुल कमेटी का उन्होंने अपन भाषणों में शायद ही उल्लेख किया हो।

परन्तु काबुल कांग्रेस कमेटी का अपना योगदान भी था असल अभियान के अग के रूप में नहीं, बल्कि घुंठभूमि के रूप में, जिन्होंने लालाजी के रखे गये प्रभावित किया और उनके मन में गहन तथा काले सदह उत्पन्न किए, जो उन सदहा से भी भरे थे, जो मालाबार, मुन्तान, कोहाट तथा अन्य स्थानों के लगातार गगाने उत्पन्न किए थे।

लाहौर जेल में हबीबुरहमान ने जो सदह उत्पन्न किए थे, वे और उग्र हो गए थे उन घटनाओं के कारण जिन्हें उवेदुल्ला घटना कहा जाता है, क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वह शाखा स्थापित करने का श्रेय मौलवी उवेदुल्ला मिर्झी को जाता है। उवेदुल्ला घटना का उल्लेख विशेषतौर पर करने की आवश्यकता है क्योंकि इसका प्रभाव, वास्तविक या काल्पनिक, 1926 के चुनाव पर बहुत महत्वपूर्ण था और इससे भी अधिक लालाजी के विचारों तथा दृष्टिकोण तथा समकालीन कांग्रेस नेताओं के प्रति व्यवहार पर बहुत अधिक था। इसके अतिरिक्त बाद में होने वाली घटनाओं की दृष्टि में भी इसका महत्व था।

सबसे पहले ठोस तथ्य अगस्त 1924 में उवेदुल्ला इस्ताम्बुल में लालाजी से मिले, उनके मुलावाती काबुल पर लिखा था कि वह काबुल कांग्रेस समिति के कार्यकर्ता थे और मौलवी न महाद्वीप के गणराज्यों के साथ की एक छोपी हुई याजना लालाजी का थी, यह स्वीक समिति की आर से जारी की गई थी।

भारत गठन पर लालाजी न, जिन्होंने पहले ऐसी किसी समिति के बारे में नहीं मुना था न ही गणराज्या के सघ के बारे में, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के मुख्यालय से (जो उन दिना इलाहाबाद में था) पूछताछ की, जहां से पुष्टि हुई थी कि काबुल समिति को 1922 में संबद्ध किया गया था जब देशवधु कांग्रेस अध्यक्ष थे और लालाजी जेल में थे।

मुलाकाती काट में एक त्रुटि थी, क्योंकि काबुल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कोई सुर नहीं थी और हमारे अतिरिक्त, कांग्रेस कार्यकारिणी का मदस्य हाते हुए यह ऐसी व्यवस्था से बने अनजान रह सकते थे? शायद हमारी स्थापना बिना आना ही गई थी। लालाजी की ऐसी पुष्टि हम नहीं थी कि चाल का ताड़ गई और उन्होंने समझ लिया कि यह चाल भारत का विभाजन करने के लिए है ताकि हम प्रकार एक स्वतंत्र मुस्लिम राज्य की स्थापना हो सके। काबुल को मेरी चाल में दिलचस्पी हो सकती थी। उवेदुल्ला मेरी व्यक्ति का जिनका टगादा की विशेष जानकारी नहीं थी, परंतु उसका क्या टगादा था? और हम क्यों अधिक कि कांग्रेस का क्या अधिकार था कि वह हम अपनी मांग और अधिकार का हम प्रकार प्रयोग करने दे, जिनकी बातें उन्होंने काबुल समिति की स्वीकृति के रूप में दर्ज की थी? उद्भावना के बारे में उन्हें कोई मालूम नहीं था, जो कुछ हमारे पीछे था वह गलतनाम ही भी मरना था और नहीं भी, यह गलतनाम था भी तो किना? परंतु गांधीजी में गांधी करने तथा चीनमी करने की आवश्यकता की जरूरत थी।

हम में आजादी के प्रमुख लक्ष्यों का साथ देने के बारे में बात करनी पड़ी। परंतु अंगरेज शासन (हम बातें पर जोर दिया जाता था) का हमारी प्रतिनिधि में था जो 'गांधी' हुआ? हम लेकर लालाजी को भी व्यवहार और प्रश्न की उताहरी बना ली थी। उनके अंगरेज माधिया तथा मद पागिया टगा जा सकता है, हम प्रकार का व्यवहार भी बुरा था।

अब यह समझ हो गया था कि गांधी मामलों का व्यावहारिक और परीक्षा के आधार पर निराकरण किया जाए। उद्भावना के पीछे टिप्टी बातों के बारे में अंगरेजों को पता चल नहीं सकता था कि यह निष्पक्ष और मरने के लक्ष्य के लिए ही था और अंगरेजों को उद्भवता मिली रख दिया। यह वह बुरा हुआ कि हमारे अंगरेजों को पता ही गया कि अंगरेजों की मरना ही अंगरेजों

करने का निर्णय कर लिया और अपने को भारतीय धर्मतत्त्वा की एक विचार-धारा से पूरी तरह जोड़ लिया, जिसने मुगल साम्राज्य के पतन से लेकर उस समय तक पीढ़ी-दर पीढ़ी यह दृढ़ इच्छा कायम रखी थी कि धर्म का आधार पर एक मुस्लिम राज्य की स्थापना की जानी चाहिए। इस सख्य की प्राप्ति के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान भी कम था। साधनों में छद्म बरण, विदेशी मुस्लिम शक्तियों के साथ समझौते और बाढ़ में—प्रथम विश्व महा युद्ध के पश्चात् भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने वाली राष्ट्रवादी तथा पारितोषिकी शक्तियों के साथ काय करना। दूसरे दशक में इस विचारधारा के उपदेशों, तरीकों तथा उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त करना कठिन था। आज उस घटना का स्मरण करने वाला कोई भी व्यक्ति, जो उस तथ्यों पर व्यवहारिक जाब करेगा, लालाजी की पैनी दृष्टि की प्रशंसा किए बिना नहीं रहेगा कि उन्होंने इस्तबुल की एक ही भेंट में दूर-दृष्टि से उस बात को भाप लिया था जो छद्म-बरण के पीछे बड़ी चालाकी से छिपी हुई थी और दास तथा नेहरू पिता-पुत्र का सावधान कर दिया था। लालाजी को उस समय पृथक्ता की गंध था गई जब कि अन्य लोगों को कोई संदेह नहीं था।

परंतु वह "पृथक्ता" की सावजनिक चर्चा करते हुए बिसकते थे कि कहीं ऐसा न हो कि इस सावधानी से परिस्थितिमा विगड़ जाएं और यह एक जीवत समस्या बन जाए, जब कि यह संभव था कि चौकसी और अनभवी व्यवहार से इस बरार्द को आरम में ही समाप्त किया जा सकता था। उनका यह पूर्वाभ स जा अधिक-तर उन्होंने उन व्यक्तियों के साथ निजी बातचीत में ही व्यक्त किया, जिनके साथ वह उस विचार के बारे में पता करना चाहते थे और जो उस समय एक बेसिर-पर की कथाएँ कहते थे—उनकी मृत्यु के दो दशक में ही बड़ी ठोस वास्तविकताएँ बन गयीं। इतिहास के निणय ने इस विवाद को समाप्त कर दिया, जब उस पूर्वज्ञान को भविष्यवाणी सिद्ध कर दिया। यहाँ जिस बात के उल्लेख की आवश्यकता है वह यह है कि उबेदुल्ला घटना 1926 के चुनाव में एक महत्व-पूर्ण सहायक तथ्य थी, क्योंकि यद्यपि लालाजी ने सीधे तौर पर उबेदुल्ला की चर्चा नहीं की और न ही वृत्तेआम पृथक्ता का उल्लेख किया, फिर भी मजबूर हो कर उन्होंने नेताआ की असावधानी और उनकी लापरवाही के खबरे के लिए आलोचना की, जो उन्होंने बुनियादी महत्व के मामलों के प्रति अपनाया था। चुनाव

प्रचार में काफी कटुता बढ़ी और इस प्रकार कुछ समय के लिए इसने वाग्गण लालाजी और कुछ अन्य नेताओं के बीच दुर्भाग्यपूर्ण अनबन हो गई।*

इस घटना का राजनीति के प्रति लालाजी के दृष्टिकोण पर क्या प्रभाव पड़ा उसका इस अध्याय में संक्षिप्त सार इस प्रकार है

(क) "पृथक्ता" की यह छद्मपरिणय योजना या धर्म के आधार पर मुस्लिम राज्य स्थापित करने की योजना ने सांप्रदायिक चुनाव पद्धति के बारे में उनकी आशाओं की और पुष्टि कर दी, विशेषकर इसने उन्हें सांप्रदायिक चुनाव पद्धति के विरोध में और कठोर बना दिया, क्योंकि इसका तत्काल परिणाम यह "पृथक्ता" के रूप में दिखाई दे रहा था। इसलिए यह अनिवाय था कि केवल छद्मपरिणय वाली उर्वेदुल्ला योजनाओं से ही सावधानी न बरती जाए, बल्कि सांप्रदायिक चुनाव पद्धति के विस्तार करने का भी विरोध किया जाए और दृढ़ता के साथ सांप्रदायिक चुनाव पद्धति पर आधारित समझौते के फामूला का डटकर विरोध किया जाए।

(ख) राष्ट्रीय नेताओं को काबुल समिति जैसी योजनाओं में सावधान रहना चाहिए। इस मामले में असावधानी भारतीय एकता के लिए हानिकारक हो सकती है।

विरोधाभास की बात तो यह है कि उर्वेदुल्ला विचारधारा वाले लोग चौथे दशक के आरंभ में लीग द्वारा तयार की गई विभाजन की स्कीम के विरुद्ध दिखाई देते थे। इसमें अंतर केवल यह था कि इस विचारधारा के उल्लेख ब्रिटिश सत्ता के साथ दानवीत को पसंद नहीं करते थे और अपने अंतिम सक्षय (अभी भी गुप्त) में वह अभी भी पूरी तरह धर्मतरीय थे। "पृथक्ता" के बारे में लालाजी के संदेह दोनों पर लागू होते थे, यद्यपि कांग्रेस खिलाफन सहयोग की ममाप्ति के बाद, उर्वेदुल्ला विचारधारा, गुप्त ढंग से काम करने के कारण और पार न की जा सकने वाली धर्मतरीय बाधा, खड़ी करने के कारण जो स्थायी एकता के विरुद्ध थी, एक गंभीर विनाशकारी थी।

* इस घटना का पूरा विवरण इसी लेखन की पुस्तक 'द अनहोल्ड प्रोन्स' में दिया गया है।

हमने प्रमुख घटनाओं की ओर ध्यान दिला दिया है, जो दंगों से उत्पन्न होने वाले सामान्य निराशावाद के अतिरिक्त लालाजी की एकता के बारे में और अधिक निराशावादी बनाती थी—लाहौर जेल में स्पष्टतापूर्ण वाद-विवाद, मुहम्मद अली का अध्यक्षीय भाषण और उबेदुल्ला घटना । इन निराशाजनक प्रभावों के बावजूद लालाजी ने एकता के बारे में अपने प्रयत्नों में बिल्कुल डील न आने दी । ऐसी कठिनाइयाँ के कारण प्रयत्न और बढान की आवश्यकता थी । जेल से बाहर आते ही उन्होंने असारी के सहयोग से "राष्ट्रीय सघ" तैयार करने का काम आरम्भ किया । उबेदुल्ला से भेट के बाद उन्होंने तेरह लेखा की शृंखला लिखी, जो एक ही समय कई समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराई और उसके पश्चात् उन्हें एक पुस्तिका के रूप में जारी किया । यह हम विषय पर लालाजी का बहुत ही सोचा समझा और निष्ठापूर्ण योगदान था । मुझे नहीं मालूम कि किसी अन्य व्यक्ति ने इतने कष्ट उठाकर सारी समस्याओं तथा कठिनाइयों को इतने विस्तार से पेश किया हो और उनका सामना करने के लिए गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए सुझाव दिए हैं और वह भी न्यायोचित तथा आपसी समझौते की भावना से ।

विशेष बात तो यह है कि ये लेख लिखते समय लालाजी के मन पर 'एकता' की पूर्व सूचना की बात छाई हुई थी, उन्होंने इन लेखों में काबुल-स्कीम तथा उसके प्रवर्तक के बारे में एक शब्द भी नहीं लिखा, परन्तु कुछ रहस्यमय ढंग से उन्होंने इस शृंखला का अंत इस प्रकार किया

"मैंने वह सब कुछ नहीं कहा, जो मैं कहना चाहता हूँ । मैंने जान बूझकर कुछ महत्वपूर्ण और अरुचिकर तथ्य, जो हाल ही में मेरी जानकारी में आए हैं, नहीं दिए, इस आशा के साथ कि उनका प्रचार करने की कोई आवश्यकता नहीं ।

61. सेवा के लिए सेवा

“सेवा की भावना हमारे चरित्र का अंग बन जानी चाहिए, जो हमारे अनुशासन का अनिवार्य अंग हो। सेवा के लिए सेवा की भावना डालनी चाहिए, जो सभी प्रकार के उद्देश्यों तथा प्रतिफल के विचारों में स्वतंत्र हो। कैंदियों की सेवा, इस बात की चिन्ता किए बिना कि समय नष्ट होता है, निधनों के बच्चा को खिलाना, पिलाना, उन्हें सुरक्षा तथा स्नेह देना चाहे वे गंदे या भद्दे हों, जाति, रंग या राष्ट्रीयता के भेद के बिना महिलाओं की सहायता करना और सामान्य तौर पर अर्थ सागो की सेवा करना, अपने हितों का बलिदान करना—यह हमारा प्रतीक होना चाहिए।”

—साजपत राय

जब लालाजी युद्धकाल के निर्वासन से स्वदेश लौटे, वह समय एक विशाल सामूहिक सघर्ष की जन्म पीड़ाओं का या और भाग दौड़ का वह समय लम्बी अवधि की योजनाओं के उपयुक्त नहीं हो सकता था। परन्तु ऐसा दिखाई पड़ता है कि निर्वासन काल के दौरान सोच विचार ने कई योजनाओं को रूप दिया था, जो निर्वासन समाप्ति के बाद समय मिलने पर सामने आती गईं।

इनमें से सबसे प्रथम घोषित तथा क्रियान्वित की गई योजना अपना दैनिक समाचार-पत्र शुरू करने की थी। थोड़ी अवधि के बाद, अगली जा योजना सामन आई, वह थी तिलक स्कूल आफ पारिटेक्स, जो रूप बदलकर आजीवन सदस्यों के रूप में लोक सेवा सघ बन गया और लालाजी द्वारा स्थापित संस्थाओं में सबसे प्रमुख बन गया। यह अध्याय, जो लालाजी द्वारा निर्वासन से लौटने के पश्चात् स्थापित की गई योजनाओं में सम्बद्ध है, लोक सेवा सघ में आरंभ करना उचित है, जो काल क्रमानुसार प्रथम होने का दावा कर सकती है।

लोक सेवा सघ का, उसके प्रवक्तव्य के मन में मूल बूझने के लिए, हम 1905 में लौटना होगा, जब पंजाब की इंडियन एसोसिएशन ने लालाजी की इंग्लैंड यात्रा के लिए लगभग तीन हजार रुपये एकत्र किए। लालाजी उस

समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा इंडियन एसोसिएशन के संयुक्त प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड गए थे। स्वदेश लौटने पर लालाजी ने धारणा की कि उन्होंने विदेश यात्रा के दौरान अपनी ही ओर से ही खच किया था और जा घन जमा किया गया था उसमें से उन युवकों को बर्जीफे दिए जाएंगे जो अपना समय राजनीतिक अध्ययन तथा स्नातकोत्तर अनुसंधान के लिए लगाना चाहते हैं। वह उस व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुए थे जो उन्होंने बम्बई से इंग्लैंड के लिए रवाना होने से पूर्व पुर्ण में देखी थी। गोखले ने उस समय सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी स्थापित की ही थी। लालाजी ने जो कुछ देखा तथा सुना था उससे प्रभावित होकर उन्होंने इसी प्रकार की संस्था पंजाब में स्थापित करने का निगम किया। राजनीतिक शिक्षा के लिए बर्जीफे देने की योजना उस महान लक्ष्य की ओर पहला लघु कदम था।

1905 के इस स्वप्न के फलितभूत हान में कई रूकवटें आईं। जब सोसायटी अभी पांच वर्ष पुरानी ही थी, तो लालाजी ने लिखा, जो उस समय से लेकर सासायटी की रिपोर्टों का प्राक्कथन सा बन गया है।

"परन्तु 1907 में मेरे निर्वासन में कोई निश्चित कारवाई किए जाने में बाधा डाल दी। 1907, 1910 और 1914 में मेरी विपत्तियां और इस अवधि में मेरी सार्वजनिक गतिविधियां तथा निराशाभा ने मुझे चैन न लेने दिया और न ही अपने विचारों का विस्तार करके व्यावहारिक रूप देने दिया।"

प्रारम्भिक भाग में, जिसमें मैं हमने अभी उद्धरण दिया है, दक्कन एजुकेशन सोसायटी जैसे अग्रगामी कार्य करने के लिए महाराष्ट्र और गोखले के प्रति, जिन्होंने सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी स्थापित की थी, आभार व्यक्त करने के पश्चात्, लालाजी कुछ अमरीकी संस्थाओं की चर्चा करते हैं जिन्होंने उनके विचारों को निश्चित रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अमरीका में अपने प्रवास के वर्षों में उन्होंने अनक बातें "सीधी तथा अनेक पहलें की सीखी हुईं भूला दीं" और कुछ अमरीकी संस्थाओं में नहीं कमर वह "प्राध्यापक भी रहे तथा छात्र भी।" वह विशेषतौर पर यूनाइटेड स्टेट्स स्कूल आफ सोशियलोजी की ओर आकर्षित

हुए, जो ऐसे लोगों का समाज विज्ञान की शिक्षा देता था, जिन्हें उनकी परिस्थितियों ने विधिवत रूप से विश्वविद्यालयों में इन विषयों की शिक्षा का अवसर नहीं दिया था और ऐसे लोगों का भी, जो भारी फीस नहीं दे सकते थे। उन्होंने कहा था, "यह स्कूल प्रायः स्वसहायता के आधार पर चलाया जाता था। प्राध्यापकों को फीसों में से थोड़ा सा मानदेय दिया जाता था" व्यक्तिगत आभार स्वीकार करते हुए लालाजी कहते हैं "राजनीति और समाज विज्ञान में मेरी अधिकतर पढ़ाई यूनाइटेड प्रोवांस की देन है और एक विचार, जो मैं वहाँ से लाया हूँ, वह यह है कि मेरे देश में भी ऐसी सस्था होनी चाहिए।"

रड स्कूल, जैसा कि लालाजी कहते हैं, "समाजवाद का एक केंद्र है।" इस केंद्र से लालाजी ने अपने देश में राजनीति स्कूल (स्कूल आफ पॉलिटिक्स) स्थापित करने की प्रेरणा ली, जिसकी घोषणा उन्होंने स्वदेश लौटने के थोड़े समय बाद की।

बम्बई में एक विशाल सभा में साजपत राय का स्वागत करने के छ मास के अंदर ही नितक इस सप्ताह से 1 अगस्त 1920 को चले गए और भारत के लोगों को, जो उन्हें सादर—"लोकमाय" कहते थे, शाकाकुल फ़ौड गए, जिनके लिए उन्होंने अपना सबकुछ बलिदान कर दिया था और असह्य कष्ट झेले थे। इस शोकमय घटना के थोड़ा समय पश्चात् लालाजी ने घोषणा की कि वह "नितक स्कूल आफ पॉलिटिक्स" नाम की सस्था स्थापित कर रहे हैं। इस स्कूल की प्रारम्भिक योजनाएँ बहुत हद तक रड स्कूल की स्मृतियों से प्रभावित थीं परंतु जिस प्रकार हम दबंगे, वाद की घटनाओं के प्रभाव ने उन्हें इन योजनाओं में परिवर्तन करने के लिए बाध्य कर दिया।

नितक स्कूल द्वारा आरम्भ में बड़ी आशाजनक प्रगति दिखाई गई—उसका अपना मुख्य भवन, ब्रिटिश पुस्तकालय, लालाजी की जमीन पर काफी धन, जो उनके यत्नों से शीघ्र ही 6 अका की पूंजी बन गया। लालाजी के प्रोत्साहन से इस स्कूल द्वारा शीघ्र प्रगति की आशा की जा सकती थी। परंतु इस स्कूल की स्थापना की घोषणा तथा दिसंबर 1920 में इसके साथ आरम्भ करने के बीच के तीन मास में ऐसी ही घटनाएँ घटीं जिनका प्रभाव बड़े पुरानी स्थापित अन्धी सस्थाओं पर भी पड़ा—इस उदीयमान सस्था पर ता पड़ना ही था।

य घटनाएँ, जिनका इतना प्रभाव पडना था, निस्संदह असहयोग आंदोलन स सम्बद्ध थीं। 1920 के अन्त में नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में लालाजी न कानिज छात्रा का असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए आह्वान करने के लिए अपने आप का वचनबद्ध कर लिया था। किन्तु यह स्वाभाविक ही था कि कुछ छात्र शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था चाहते थे। पंजाब में राष्ट्रीय पद्धति पर शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए एक बोर्ड स्थापित करना पडा और एक महाविद्यालय या राष्ट्रीय कालिज इस बोर्ड के अधीन बनाया गया। यद्यपि तिलक स्कूल इबहू उन्ही नियमों पर नहीं बनाया गया था, फिर भी बहुत से मामलों में दोहरा काम हा गया। इसके परिणामस्वरूप जब महाविद्यालय स्थापित हुआ, लालाजी ने कुछ प्राध्यापकों को, जो तिलक स्कूल के लिए नियुक्त किए गए थे, उसमें भेज दिया, जिनमें एक प्रिंसिपल भी थे। इस प्रकार स्कूल अपने प्रारम्भिक भूमिका से वंचित हा गया।

इसके साथ ही नई स्थिति में एक अधिक महत्वकांक्षी अवसर प्रदान किया। असहयोग करने वाले कुछ युवक संभवतः लम्बी अवधि के लिए निष्ठापूर्वक सेवा के लिए उपलब्ध हा जाएँ और इस प्रकार पूणकाल के मामाजिक तथा राजनीतिक कार्य के लिए पूणकालिक निष्ठावान लोग का एक दल उपलब्ध हो जाएँ—जा पुणे सोसायटी के समान कार्यरत हाकर आजीवन संगठन में रहने का स्वप्न पूरा कर दें। तिलक स्कूल का शैक्षिक कार्य अब महाविद्यालय में सभाल लिया था। यह सारी सम्पत्ति (भवन, पुस्तकालय तथा कार्य) आजीवन व्यवस्था के लिए प्राप्त हा गईं। परंतु इस बात का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि इस आजीवन व्यवस्था का नाम यद्यपि लाक सेवा संघ (मवेण्टस आफ द पीपुल सासाइटी) रखा गया, फिर भी कई वर्षों तक प्रथम चरण के लिये स्वीकार किया गया नाम "तिलक स्कूल" जारी रहा। विशेषकर स्वयं लालाजी दोना नामा का अक्षर एक ही अर्थ में इस्तमाल किया करते थे।

लालाजी आमतार पर अय लोगो के कोई कार्य करने से पूर्व स्वयं वह कार्य करते थे। लोगो से चन्दा मागने से पूर्व उन्होंने घोषणा की कि वह तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स की स्थापना के लिए बनाए जाने वाले ट्रस्ट (यास) के लिए 2, फोर्ट स्ट्रीट वाला अपना मकान दान में देते हैं। इस घोषणा में थोड़ी सी शर्त थी—लालाजी अपने परिवार के लिए ट्रस्ट

वे कोप भ से थोडा धन लेकर उस मकान के आगन मे एक क्षोपडी बनाना चाहते थे । शायद अपने परिवार के सदस्या को इस निणय की सूचना देने के लिए यह ढग अपनाया गया था, ताकि उनकी ओर से यदि कोई विरोध हो, तो उसको दूर किया जा सके । जब उन्होंने अपने परिवार को सहमत कर लिया तो किसी ने फिर उस शत के बट्टे मे न सुना । आगन का दक्षिणी भाग परिवार के पाम रहा, परन्तु ट्रस्ट के धन को छुआ नही गया ।

ट्रस्ट मे हुनीचद (डीरेक्टर), भाई परमानन्द, रामप्रसाद और जसवत राय थे, और लालाजी उसके अध्यक्ष थे ।

तिलक स्कूल को गोखले के "सर्वेंट्स आफ इडिया" के समान आजीवन सदस्य बनाने के निणय ने, रावलपिण्डी मे 1921 की वसत ऋतु मे हुए एक राजनीतिक सम्मेलन मे निश्चित रूप लिया । अचिन्तराम, पी० एल० सोधी तथा इस पुस्तक का लेखक इसके पहले तीन सदस्य थे ।

सक्षिप्त तथा सरल नियमो मे—केवल एक छपा कागज—केवल एक व्यवस्था थी, 20 वष के लिए काय करने का वचन । कई प्रतिज्ञाएँ और अनेक "यह करो और यह न करो" का कोई नियम नही, अग्नि को साक्षी रखकर यह प्रतिज्ञा करना अलग मामला था । धार्मिक सिद्धांतो मे रूढता आ जाने पर भी उनको कुछ मौलिक तत्व इस रीति को गभीरता प्रदान करते है ।

उदघाटन के कोई तीन सप्ताह बाद लालाजी जेल चले गए ।

इस बात से पूरी तरह जागरूक कि नए युवका को उनकी अपनी देख रेख मे "प्रशिक्षण" का अवसर नही मिल पाया, उन्होंने जेल से एक पत्र भेजा "तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स (अथवा सोसायटी) के युवका को, जिसमे लालाजी ने इच्छा व्यक्त की थी कि वह उनसे किस प्रकार का जीवन जीने की आशा करते हैं और उन्हें किस प्रकार के प्रशिक्षण मे से गुजारना चाहते हैं ।" यह पत्र उर्दू मे था और उसने नीचे लिखा गया था, "आपका मिल, नंदी । यह नव दीसितो के लिए एक बुनियादी दस्तावेज बन गया, जिससे उन्हें अध्ययन के पाठ्यक्रम के लिए महत्वपूर्ण मागदर्शन मिला । इसके अतिरिक्त उन्हें आने "प्रमुख" के विचारा की

जानकारी भी मिली कि जीवन के लिए वह उनसे किस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करने की आशा करन हैं, ताकि उनका जीवन लक्ष्य प्राप्त हो सके। उम पत्र में वह सुनहरे शब्द भी थे, जिस भावना को लेकर उन्हें अपना काय करना था और जो उनके हर काय की तह में होनी अनिवार्य थी और जिसके बिना उनकी प्रशिक्षण तैयारी, यहाँ तक कि काय भी, खाली छिलका ही होगा और उसमें से गिरी गायब होगी। इस अध्याय के विवरण से पूव जो उद्धरण दिया गया है, वह उस बुनियादी दस्तावेज से है।

भाग-दौड़ के उन दिना में सुव्यवस्थित ढंग से क्रमानुसार प्रशिक्षण देने का ता प्रश्न ही नहीं उठता था, परन्तु भाग-दौड़ का समय अपने आप में बहुत ही बहुमूल्य शिक्षा थी—लोगों के साथ निकट सम्पर्क, सामूहिक प्रचार के लिए देहात का अनुभव, साथियों के साथ सहयोग की भावना से काय करना सगठन करने का अनुभव, तथा जेल में कक्षा में प्रशिक्षण तथा पाठ्यक्रम का अध्ययन मूल्यवान् हा सकता है, परन्तु सक्रिय प्रशिक्षण अपने ही ढंग से बहुमूल्य है। किसी भी व्यक्ति के लिए, जा बुद्धिजीवी सामग्री की खोज में हों, द्वारका दास पुस्तकालय, जो लालाजी के उपहार से इपी नाम से आरम्भ किया गया था, पाठ्यक्रम के भागदशान के लिए लालाजी का पत्र कम से कम बुनियादी आवश्यकताओं के लिए तो पर्याप्त था। यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि जिस प्रशिक्षण की लालाजी अपने पूण-कालिक कायकर्ताओं के लिए कामना करते थे, यद्यपि उसमें बौद्धिकता की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था, फिर भी यह शक्ति सत्साधना से बिल्कुल भिन्न किस्म का प्रशिक्षण था। यह प्रशिक्षण मयाथ जीवन और पुस्तकों, दाना से प्राप्त हाना था। इस प्रकार जिन लोगों को बुद्धिजीवी क्षेत्र में काय करना था, उन्हें भी सावजनिक काय करने का अनुभव अवश्य प्राप्त करना था। लगभग सभी लोगों को, जिन्हें लालाजी ने अपने इस मत के लिए आजीवन सदस्य बनाया, असहयोग आन्दोलन में सामूहिक प्रचार करने का अनुभव था और अगले चरण में जब लालाजी ने अस्पृश्यता उन्मूलन अभियान आरम्भ किया, प्रायः सभी कार्यकर्ताओं ने अछूत उद्धार समिति में सार्वजनिक काय किया।

यद्यपि हमारे संस्थापक न भागदशी संस्था के लिए गायल का आभार व्यक्त किया था, ये दोनों सासायटिया एक दूसरे में बहुत भिन्न थीं। पुणे सासायटी न हमारी सासायटी की स्थापना होना तक अपन आपका पूरी तरह लिबरल पार्टी की राजनीति के साथ जाड़ लिया था, जबकि माहौर वाली सासायटी की स्थापना अमहयाग कायकर्ताओं ने की थी। एक और बुनियादी अंतर यह था कि हमारे संस्थापक नहीं चाहते थे कि परिवर्तनशील राजनीतिक आवश्यकताओं या नायबों का स्थाई विश्वास का विषय बनाया जाए, जबकि 'सर्वेंट्स ऑफ इंडिया' ने अपना संस्था में ब्रिटिश सभ्यता का उल्लेख किया हुआ था, जम के धार्मिक सिद्धांत जैसे पवित्र हैं। यद्यपि आजीवन कायकर्ताओं का यह संगठन प्रचारकों की भावना से कार्य करता था, राजपत राय का यह संगठन यहीदियों के संगठन के समान बिल्कुल नहीं था—अर्थात् इसमें न प्रतिज्ञा थी, न बहुत ही पक्के नियम और न ही असहमति पर प्रतिबंध।

कठ सागा का शाब्द यह अजीब लगे, हमारे संस्थापक हमारे नए संगठन के सदस्य नहीं थे, यह दोनों सासायटियों में एक और प्रमुख अंतर था। हमारे संक्षिप्त सविधान में उन्हें आजीवन संस्थापक निदेशक का पद स्पष्ट करने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ी थी। संस्थापक सदस्य के रूप में माखले ने पहले शपथ ग्रहण की थी और फिर उन्होंने पहली टाभी के सदस्यों का सात सूत्री शपथ दिलाई थी। सागाजी न न स्वयं कोई शपथ ग्रहण की और न अन्य सदस्यों का दिलाई। उनका जीवन तो पहले ही त्याग का जीवन था, जो कई वर्ष पूर्व भ्रमपित किया जा चुका था, फिर से भ्रमपित करने की बात बिल्कुल फिजूल और व्यर्थ दिखाई देती थी। यद्यपि उन्होंने राजगार के लिए सामान्य व्यवसाय छाड़ दिया था वह मावजनिक सभ्यता पर दृष्टि नहीं बन था। यदि यह इस पद्धति में परिवर्तन करत, तो मभवत उसमें मानसिक मोक्ष बढ़ता। वह संगठन के सदस्य नहीं थे इसलिए संगठन से कोई धन नहीं लन था। कुछ सागा के लिए शाब्द यह बात गलत है परन्तु हमारे यह स्वाभाविक बात थी।

परिवार के पिता के नात उन्हें नतिक आजीवन निदेशक बनाकर सविधान में मान्यता

तोर पर उम्मीद और न मागदगन तथा पिता या म्मह सदा ही प्राप्त रहा, परन्तु मदम्यो के लिए नियम बनाना उहे पमद नही था, उम ममय भी नही जब वह प्रणिमण प्राप्त कर रह थे । म्वछद, वहस आर वितारण व स्वयन आदान-प्रदान से अमगर महमति प्राप्त हानी थी, परन्तु जहा सहमति नही होती थी, असहमति वा पूरी तरह स्वीकार किया जाता था । क्या दम ममाज में यह मभव था ? इगा उत्तर यह है कि कभी-कमार काद सदस्य 20 वष का कायकाल पूरा करे से पूव ही छुट्टी पाहता था, परन्तु ऐसा राजनीतिक मनभेद के कारण कभी नही हुआ था । राजनीतिक परिस्थितिया बदलती रहती थी और कायत्रमा का समय ममय पर जायजा किया जाना आवश्यक था । इनम कोई स्थायित्व नही हो सेवा इगलिए कोई नमूना तैयार करना अत्र आवश्यक था, जिसमे विरस्थायी आवश्यक बाता का कायम रखा जाए और शेष के लिए ममव्यय रखना म्मय था, समानता नही । आमतौर पर ममवीत की इच्छा हाती थी, परन्तु जिम मामले म यह न हा पाना, अन्य सागा के विचारा का सावभीम ममवय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता था ।

म सिहावलोकन करता हू तथा स्मरण करता हू ता यह देणे बिना नही रह सकता कि हमारा प्रणिमण तथा सेवा का जीवन अय सभी बाता के मुकाबले, जिनकी मन चर्चा की ह, हमारे सस्थापक के व्यक्तित्व के प्रभाव का परिणाम थी । प्रेरणा का स्थायी स्रोत या उनका स्वतंत्रता के सभ्य तथा भारत के सागा के प्रति अपना पूण समथन था और समन्वित ढग से काम करने के लिए उनकी सावभीम विशाल हृदयता और विश्वास व प्रति निष्ठापूण सम्मान, चाहू वह उनके अपन विश्वास से भिन्न ही क्यों न हा । 1926 के चुनाव म जब अचिल्ल राम लालाजी के विराधी स्वराज पार्टी ने उम्मीदवार का वोट दकर आए ता लालाजी न उाका स्नेहपूवक आतिमण किया—जिसकी वहानी उस समय से सम्बद्ध वणन भे दी गई है—यह बात अद्वितीय सुदरता और विरस्थायी महत्व की थी, ऐसा प्रकाश जो कई वष धीमा न हो तथा जिसे कोई आधी न बुझा सके, वह विरासत जो हमारे सस्थापक १ हमार लिए छोडी, यह हमारी परम्परा का शानदार भाग बन गया ।

उनके जेल म नाटने के पश्चात् सासायटी पजाव तथा उत्तर प्रदेश के कद केदो अथवा शाखाओ द्वारा काय कर रही थी और लालाजी के अधिकतर

काय मे सोसायटी के एक या दो सदस्य उनके साथ काय करत थे, विशेषकर आरम्भ मे, अस्पृश्यता उन्मुलन काय मे। इसके अतिरिक्त वह कांग्रेस के काय मे भी उनकी सहायता करते थे और बाद मे पत्रकारिता के काम मे तथा उनके निर्देशन मे आरम्भ की गई अथ गतिविधिया मे, जिनमे कानपुर श्रमिक सगठन केन्द्र भी काय करते थे। पी० एल० साधी 'बदे-मातरम्' को देख-रेख कर रहे थे और छवाल दास प्रिंसिपल के तौर पर नेशनल कालिज चला रहे थे।

जब सासायटी ने अपना आरम्भिक काल पूरा कर लिया और सस्थापक का इसकी स्थिरता और इसकी ओर से किए गए काफी लाभकारी काम के बारे मे सतोष हो गया जिससे उसे सावजनिक सहायता मिल सके, ता माच 1927 मे पहली बार सावजनिक रूप से उसकी "बपगाठ" मनाई गई। सोसायटी को अब सभा भवन की आवश्यकताबा और पुस्तकालय तथा कार्यालय के लिए पीला बगला अपर्याप्त महसूस होता था। उसी समय एक दा मजिले भवन की योजना बनाई गई। उस भवन के लिए आवश्यक धन प्रथम सावजनिक समारोह से पूव सस्थापक की साठवी बपगाठ पर प्राप्त हुआ, जब काफी नकद उपहार मिले। लाजपत राय हाल के निमाण के लिए, जो इस भवन का नाम रखा गया था मालबीरजी ने 1928 मे लालाजी के जन्म दिवस पर शिलान्याम किया।

सस्थापक निदेशक ने काठियावाड से पहले ही एक सदस्य बलवत राय जी० मेहता को ले लिया था और उडीसा मे सोसायटी की एक शाखा गोपबधु दास के अधीन काय कर रही थी, जा सोसायटी के उपाध्यक्ष भी चुने गए थे। 'समाज' उसका छापाखाना तथा गोपबधु के कुछ सहायक (लिंगराज मिश्र, राधानाथ रथ) इस शाखा के अथ थे। 1928 के जन्म दिवस समारोह से लाटते समय गोपबधु बानू बीमार पड गए और कुछ समय बाद उनका देहात हो गया। निस्सदेह उडीसा न अपन नेता का शाक मनाया, लालाजी तथा सोसायटी ने भी इस छति का बहुत महसूस किया। गोपबधु के स्थान पर लालाजी (तथा सदस्या ने) उपाध्यक्ष पद के लिए इस पुस्तक के लेखक को चुना। यू० पी० की सदस्यता काफी बढ गई थी, इनमे काशी विद्यापीठ के चार शास्त्री थे—अलमुराय हरिहरनाथ, लालबहादुर

(जो लालजी के समय प्रशिक्षण ले रहे थे) और राजा राम तथा इनके अतिरिक्त बलदेव जो सबसे वरिष्ठ थे (हरनाम सिंह त्याग-पत्र दे चुके थे) और मोहनलाल गौतम भी थे।

1947 के विभाजन के पश्चात् सोसायटी ने अपना मुख्यालय नई दिल्ली में स्थापित किया और कुछ ही समय में बहुत विकास किया शाखाओं की संख्या बढ़ाई तथा कायसोल विस्तृत किया। इसका विशेष सौभाग्य यह रहा कि इसे पुरपोसम दास टडन, बलवन्त राय मेहता और लाल बहादुर जैने अध्यक्ष मिले, तत्कालीन अध्यक्ष विश्वनाथ दास थे। इनमें से बलवन्त राय तथा लालबहादुर को स्वयं लालाजी ने सोसायटी में शामिल किया था। टडनजी, लालाजी के अनुरोध पर, इलाहाबाद में लाहौर आए थे (पंजाब नेशनल बैंक के सचिव के तौर पर) जहां वह लालाजी और सोसायटी के निकट सम्पर्क में रहे। निस्संदेह लालाजी चाहते थे कि टडनजी उनके मत में एक दिन शामिल हो जाए, परन्तु वह यह सोचते हुए हिचकिचा रहे थे कि उनसे बलिदान की मांग उस समय तक करना उचित नहीं होगी, जब तक परिवार के युवा सदस्य रोजगार नमाने योग्य नहीं हो जाते। यह बलिदान लालाजी के देहात के पश्चात् हुआ, क्योंकि यह हमारे "प्रमुख" की इच्छा थी, जिसकी हम जानकारी थी।

लालाजी के अंतिम दिना में एक और उल्लेखनीय बात उनकी माताजी के नाम पर तपेदिक अस्पताल की स्थापना थी। यह अधिक सही है कि अस्पताल की स्थापना उनके मरणोपरांत हुई, लालाजी ने तो केवल ट्रस्ट स्थापित किया था और उसको दो लाख रुपये से अधिक की पूंजी दी थी। तपेदिक, जिसने लालाजी के होनहार भाई दलपत राय की जान ली थी और वह भी युवावस्था में और फिर उनके बहुत ही होनहार बेटे प्यारे कृष्ण के प्राण ले लिए थे, जब वह केवल 20 वर्ष का था, इस रोग की ओर उनका विशेष ध्यान जाना स्वाभाविक ही था।

लालाजी ने गुलाबदेवी ट्रस्ट की अस्थायी योजना टिप्पणी के लिए अपने कुछ मित्रों को भेजी, जिनमें गांधीजी भी थे। गांधीजी ने विचार व्यक्त किया कि विचार बहुत नेक है, परन्तु योजना को कार्यान्वित करने में

सुधार की आवश्यकता है। इस प्रकार मून योजना में गांधीजी के विचार के अनुसार मणोधन किया गया।

1947 में विभाजन के समय गुलाबदेवी अस्पताल सुस्थापित संस्था बन चुका था, जो बहुत ही लाभकारी कार्य कर रहा था। अस्पताल तथा उसका माज-सामान नई सीमा रेखा का पार न कर पाया। अनुमान है कि लाहौर हवाई अड्डे के निकट यह अस्पताल अब भी पाकिस्तान के लोगों की सेवा कर रहा है।

लालाजी के कर्याणकारी कार्यों में गुलाबदेवी ट्रस्ट अन्तिम नहीं था। क्योंकि उनका अन्तिम उपहार, जो उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम महीना में स्थापित किया, महिलाओं का शारीरिक संरचना केंद्र था। यह एक छोटी योजना थी, जो योजना स्तर पर व्यापक तैयारी के बिना कार्यान्वित हो सकती थी। परंतु लालाजी इसे फनीभूत होते देखने को इस संसार में न रहे।

इस योजना की कल्पना करने के लिए हम स्मरण करना होगा कि उनके मन में (अन्तिम वर्षों में) कौन से संदेह मने हुए थे। योजना तथा संदेह, दोनों का मूल हिंदू-मुस्लिम समस्या के गंदा रूप लेने की तरह में था। वह उस स्थिति की स्पष्ट रूप से कल्पना करने लगे थे जब 'पृथक्ता' की भाग की जाएगी तो उसके साथ व्यापक रूप में हिंसा होगी—विशेषकर भीड़ और गुंडा द्वारा। वह चाहते थे कि हमारी महिलाएँ ऐसी परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो जाएँ और कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर ले जाँ ऐसी स्थिति में उनके काम आ सके। उनके विचारों का यह दौर आरम्भ होने में कुछ समय पूर्व उन्होंने एक महिला को, जो उनके बहुत निकट थी, एक कटारी उपहार के रूप में दी थी और उन्हें ऐसा असाधारण उपहार देने की तरह में छुपा उद्देश्य स्पष्ट किया। निस्संदेह उन्हें इस बात की प्रेरणा गुरु गाविंद सिंह से मिली थी, जिन्होंने किरपान को अपने अनुयायियों के परिधान का अंग बना दिया था। भारत की अखंडता तथा स्वतंत्रता की मांग थी कि हिंदू महिलाएँ जम डग का जीवन अपनाएँ, असहाय तथा दुबल न रहें और कठिन और लड़ाकू रवैया अपनाएँ, जिस प्रकार का रवैया राजपूता या खालसा का था।

परापकार की इस श्रृंखला में एक पहलू की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। परापकार जैसा आमतौर पर समझा जाता है या जिस प्रकार अपनाया जाता है, वह उस प्रकार का न था। इसे "त्याग बहुत हुए हिचकिचाहट होती है, क्योंकि इस शब्द का प्रत्यक्ष या निहित अर्थ स लालाजी को चिढ़ थी। परन्तु इसे कोई भी नाम दिया जाए, यह सिलमिला उस समय आरम्भ हुआ था, जब उन्होंने युवावाला म घोषणा की थी कि वह मार्क्सवादी क्राय को व्यावसायिक क्राय की तुलना में स्पष्ट प्राथमिकता देंगे। इससे अतिरिक्त धन का मोह कम करने के लिए उन्होंने निश्चय किया था कि घर का खर्च चलाने के बाद बचने वाली शेष आय का सारा धन वह लोग के लिए दे देंगे।

यह हम निश्चय के अनुसार ही था कि उन्होंने अपनी सारी पूंजी का त्याग कर दिया, जो सगई गई पूंजी के रूप में, या बचत के रूप में, जो उनकी पहने की आय में बचा था या दूसरे दशक में अर्जित धन से आगे अर्जित हुआ था, जो घर का माधारण खर्च चलाने से शेष बचा था।

एक नियमित तथा प्रमुख परापकारी सीसिल रोडेज का एक कथन है कि परोपकार अच्छा है, परन्तु परोपकार जमा पाच प्रतिशत बहुत अच्छा है। इन बाल की लालाजी की सस्थाभा में से एक लक्ष्मी इश्योरेस, रोडेज के इस कथन के अनुकूल दिखाई देती है। व्यक्तिगत दृष्टि से यह सस्था के सतनाम का रखने की समस्या के समाधान के लिए स्थापित की गई थी, जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के दौरान बकालत का उदीयमान व्यवसाय छोड़ दिया और लालाजी उन्हें अपन उच्चकाटि के सहायका में मानते थे। यदि उन्होंने दोबारा बकालत नहीं शुरू करनी थी, तो लाहार छोड़कर नया व्यवसाय आरम्भ करने के लिए दक्षिण जाना था। लालाजी ने इसके समाधान की जो कल्पना की वह सतनाम के लिए आजीवन पद की व्यवस्था थी और निस्संदेह यह आजीवन पद लालाजी के स्वदेशी कायक्रम का एक भाग होना चाहिए था। लालाजी इस नई सस्था के अध्यक्ष रहे और इस सस्था में आश्चर्यजनक तेजी से प्रगति की। लालाजी के कायकाल की एक विशेष बात थी अधिकारों की सभावना को सीमित करना, क्योंकि (अध्यक्ष के जोर देन पर) यह नियम था कि बोर्ड एक सी से

अधिन शेपरा (100 रुपये का प्रति शेपरा) से अधिक के किसी आवेदन को स्वीकार नहीं करेगा। गणनाम का भी इस सीमा का उल्लंघन करने की आज्ञा नहीं है।

लालाजी के समाचार पत्र उनका धाय का महत्वपूर्ण अंग थे। निर्वासन में स्वदेश सौटने से पूरा ही उन्होंने अपना समाचार पत्र शुरू करने का निणय किया हागा। जैसे ही वह ठीक ढंग में व्यवस्थित हुए, उन्होंने एक ज्यादा स्ट्राव सत्या रजिस्टर करवा ली, जिसका नाम था पंजाब अखबारात एंड प्रेस कम्पनी लिमिटेड, जिसने 'बंद मातरम्' समाचार-पत्र आरम्भ किया। लालाजी इस कम्पनी के चेयरमैन तथा दैनिक के सम्पादक थे। किसी भी हिस्सेदार को नियंत्रण अधिकार प्राप्त नहीं था। परन्तु हरकिशन लाल के पास काफी शेपरा थे और वह उस समय तक निर्देशक मण्डल में रहे, जब तक वह भाटेगु चनमफाड सुधारा के अन्तगत पंजाब के मंत्री नहीं बन गये।

'बन्दे मातरम्' आरम्भ से ही बहुत महत्वपूर्ण समाचार-पत्र था। उर्दू पत्र-कारिता के इतिहास में यह समाचार पत्र एक महत्वपूर्ण अध्याय है और उसने स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लालाजी ने अभी अपना नाम नहीं दिया था। यद्यपि त्वालमण्डी में उनका सम्पादकीय कार्यालय नहीं था, वहाँ वह कभी-कभार, थोड़ी देर के लिये जाया करते थे, परन्तु उनका दूसरे नंबर का व्यक्ति, आय समाज के समय से उनका विश्वसनीय सहायक रामप्रसाद, निश्चित रूप से दोपहर बाद उनके निवास स्थान 2, कोट स्ट्रीट पर जाता था, जब लालाजी कहीं बाहर नहीं गए होते और दोनों के बीच इस प्रतिदिन के सम्पादकीय सम्मेलन में पिछले दिन की प्रगति और उस दिन दोपहर बाद निकलने वाले समाचार पत्र के बारे में विचार-विनिमय किया जाता था। लाहौर से प्रातः प्रकाशित हान वाले समाचार पत्र कुछ दिनों के बाद आरम्भ हुए थे और यह परिवर्तन लागू करने में 'बन्दे मातरम्' पहले पत्रा में से था।

थोड़े ही समय में 'बन्दे मातरम्' प्रमुख उर्दू दैनिक बन गया, जिसका प्रभाव पंजाब में किसी भी अन्य दैनिक समाचार पत्र से अधिक था। इस समाचार पत्र ने उर्दू पत्रकारिता का स्तर सुधारने में सर्वोत्तम योगदान

रिया। इस यागदान में विविधता, जोरदार और विचार से भरपूर टिप्पणियाँ, जोरदार तथा उच्च नैतिक मूल्यों के साथ उच्चवादि के निष्पादन और नमस्कारियाँ का उदार बतन देने के रूप में था। 'बंदे मातरम्' ने महात्मा गांधी के तत्त्व में जोरदार बिये गए महान सामूहिक आंदोलन का निडर और सुमनाचार प्रचारक बनकर शीघ्र ही प्रचलता, प्रसिद्धि तथा शक्ति प्राप्त कर ली। अंग्रेजी साप्ताहिक 'द पीपुल' का जन्म उस समय हुआ जब अमहयोग आन्दोलन का जोर कम हो गया था। 'द पीपुल' की भूमिका साप्ताहिक विषया के बारे में थी, जिनमें अधिकतर जोर शैक्षिक मूल्यों पर और निश्चय ही अलग रूप का था। उसने विशेष सफलता तटस्थ यथापवादी पद्धतल और लेखा-जोखा, स्वतंत्र, निडर, यथापपरय विश्लेषण तथा राजनीतिक वायत्रमा, नीतियों, नारा और रूढ़िवादी विश्वास-मिद्धाता के विश्लेषण में प्राप्त कर ली थी और हम बात का कोई पक्षपात नहीं किया जाता था कि कौन सा व्यक्ति या अधिकार इसका स्रोत है। उस अपघम के आरोप का भय नहीं था और न ही "अनुशासन" के नाम पर वह अपना अधिकार छानने या कृतव्य की अपसो करने का तैयार था। हम काम के लिए उससे भी बहुत उच्च नैतिक साहस की आवश्यकता थी, जो कि विदेशी शासन पर जोरदार आक्रमण करने के लिए आवश्यक था।

बंदी के रूप में लालाजी ने निश्चय किया था कि जेलों के सुधार के लिए वह यथासंभव प्रयत्न करेंगे, केवल जेल जान वाले नेताओं के हित में ही नहीं, बल्कि "साधारण बंदियों" की खातिर भी। यह बचन उठाने अपने समाचार-पत्रों के माध्यम से पूरा करना था।

'बंदे मातरम्' द्वारा जेला की स्थिति के रहस्योद्घाटन के परिणामस्वरूप मानहानि का एक मामला बन गया था, जिसके कारण कुछ अन्य रहस्योद्घाटन हुए, फिर एक समिति नियुक्त हुई और इसकी सिफारिशों पर एक कानून बना, जिस पर नड्ड आन्डर (सिक्रेट्री आफ स्टेट फोर इंडिया) ने 'द पीपुल' और 'बंदे मातरम्' की शानदार प्रशंसा की।

62. कहानी एक मुकाबले और पराजय की

ऐसा दिखाई पड़ता था कि श्रीमती सरोजिनी नायडू को यह विशेषाधिकार प्राप्त था कि जब कभी भारतीय राजनीति के चोटी के नेताओं में गरमा-गरमी हुई, तो उ होने शान्ति और सद्भावना के दूत के तौर पर काय किया। 1926 में जब वह कांग्रेस अध्यक्ष थी, तो अनेक बार उनकी जादुई प्रतिभा गरम हुए माहौल को शांत करने के लिए झुंटेमाल करनी पड़ी। बानपुर तथा साबरमती में उन्हां जोरदार प्रयत्न में जो सफलता प्राप्त की थी, वह अधिक समय के लिए न रह पाई और विधान सभा के शिबिर अधिवेशन की पूर्व संध्या के अवसर पर शायद उनके सामने अधिकतम कठिन काय था। विशेष दशका की दीर्घा से दिल्ली के अधिवेशन देखना अक्सर उन्हें बहुत रोचक लगा, परन्तु शिमला के अधिवेशन, जो सामान्य तौर पर सक्रिय हुआ करते थे, आम तौर पर महत्वपूर्ण नहीं होते थे, उनके लिए अधिक आकर्षण का ब्रह्म नहीं होते थे। परन्तु 1926 की समस्या विशेष थी और उनके कर्तव्य का आह्वान ज़रूरी था, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रमुख थी।

लालाजी मध्य अगस्त में विदेश से लौटे। कुछ ही दिनों में विधान सभा का शिबिर अधिवेशन आरम्भ होना वाला था।

जब अंग्रेजों के अंत में वह भारत में खाना हा रहे थे, साबरमती संधि अभी सम्पन्न हुई ही थी, यद्यपि उनका जहाज अभी भारत की सागर सीमा में ही था जब उस संधि के बारे में मदेह व्यक्त किए जाने लग। उसी समय से क्लवता से साम्प्रदायिक दंगे तथा खून खराबे के समाचार मिल रहे थे।

स्वदेश लौटने पर लालाजी ने देखा कि उनकी साबरमती-संधि का पढ़ने ही बहुत गहरा दफन किया जा चुका था। यह संधि (मातीलालजी

के शब्दा में) मृतजात सिद्ध हुई। प्रायः आरम्भ से ही प्रत्येक पक्ष ने इसकी अपनी ही व्याख्या दी। स्वराजवादिया तथा प्रतिसवेदिया के बीच पगल जारी रहा। साम्प्रदायिक अत्याचार की दुग्ध से वातावरण बोझिल तथा गंदा हो गया था।

जब लालाजी यूरोप से लौटे, तो उन्होंने यहाँ-वहाँ कुछ मित्रों से बातचीत की कि उन्होंने कुछ योजनाओं के बारे में सुना था, जो कुछ "क्रांतिकारियों" द्वारा रखी गई थी कि भारत का विभाजन कर दो। इन योजनाओं को कार्यन्वित करने में सहायता देने के लिए काबुल में कांग्रेस समिति बनाई गई थी।

हमने इस काबुल समिति का उल्लेख किसी अन्य स्थान पर कर दिया है। प्रासंगिक बात तो यह है कि यद्यपि लालाजी इस मामले को लेकर सावजनिक विवाद खड़ा नहीं करना चाहते थे, फिर भी उन्होंने देखा कि यद्यपि कोई भी व्यक्ति इस योग्य नहीं था कि इस त्रुटिपूर्ण स्थिति को स्पष्ट कर पाता, यह बात इस प्रकार शरारतपूर्ण थी, जिसके परिणाम बहुत ही गंभीर हो सकते थे। उन लोगों द्वारा लालाजी की बात को गंभीरता से न लेना उन्हें मूल त्रुटि से भी अधिक गंभीर स्थिति के लक्षण दिखाई दिए। इसने लालाजी-तथा उन लोगों के बीच रिक्ति बढ़ा दी। यह एक महत्वपूर्ण पहलू था, यद्यपि यह परिणाम की पृष्ठ भूमि में ही था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लालाजी उस लापरवाही को ठीक नहीं समझते थे, जो कुछ लोगों का "साम्प्रदायिकता" के प्रश्न के बारे में स्वागसा बन गया था। उन्होंने उस सप्तदीय कार्यक्रम को कभी स्वीकृति नहीं दी थी जिसमें सदन में अधिकतर अनुपस्थित रहने की बात कही गई हो। उन्होंने यह अहसास करना भी शुरू कर लिया था कि विधायक अनुपस्थित रहकर, उन निर्वाचन क्षेत्रों के हितों को जिन्होंने उन्हें चुनकर सदन में भेजा है, हानि पहुँचाते हैं या उनकी उपेक्षा करते हैं। चूँकि अनुपस्थित रहने वाले विधायक अधिकतर हिंदू निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधि थे, तो स्पष्ट था कि विधायकों की इन कारवाइयाँ से हिंदुओं के हितों को ही अधिक हानि पहुँचती थी। जो विधायक इस कार्यक्रम में रुचि लेने के लिए विधान सभा के पिछले अधिवेशन से ही अधिक उत्सुक थे, वे सदन-त्याग को विशिष्ट

कारवाई मानत थे। असल में उनका विचार था कि चुनाव में, जो शीघ्र ही हान वाले थे, इस कारवाई का बहुत अच्छा लाभ प्राप्त होगा। जबकि दूसरी ओर सालाजी का विचार था कि भय है मतदाता अपने प्रति निधि में यह यह दें कि उन्होंने अपने नतव्य की ओर ध्यान नहीं दिया, इसलिए यह उनका विश्वास ग़ो बँठा है। शिमला अधिवेशन में दा महत्वपूर्ण सरकारी त्रिल आन जाने थे, इनमें म एव म मुद्रा तथा विल के बारे में शाही आयोग के निगया का लागू करना था। इस प्रकार यह भारत में उदयोग तथा व्यापार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था, अ प विल में जायता फौजदारी में सशासन की व्यवस्था थी, जिससे नागरिक स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़ना था। भय था कि सरकार इन विला के बारे में जल्दबाजी में काम लेना चाहती थी, क्योंकि उसका विचार था कि स्वराज पार्टी के विधायकों द्वारा सदन-त्याग से उन्हें बहुत बढ़िया अवसर मिल जाएगा कि जो कुछ उन्हें लिए बहुत सुखद रहेगा यही, सदन से पाम करवा लेंगे।

इस प्रकार सदन त्याग नीति की बुद्धिमत्ता के बारे में सदेह से भरे हुए तथा साबरमती संधि की पुष्टि न होने के कारण महाराष्ट्र के अपने मित्रों में अलग होने पर क्षोभपूर्ण विचारों में डूबे हुए सालाजी शिमला पहुँचे।

उन्होंने मालवीयजी से विचार विनिमय किया, जो उनके सदेहा तथा मशया से बहुत हद तक सहमत थे और जिन्होंने कभी भी स्वराज पार्टी के अनुशासन तथा चाना को स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने उसी समय मोतीलाल तथा अय स्वराजवादी मित्रों के साथ भी बातचीत की। चूँकि इन बातों का अधिक से अधिक रख विच्छेद की ओर था, सराजिनी नायडू ने एकता बनाए रखने की चिन्ता में महिलाओं वाली दक्षता से काम शुरू कर दिया। जमीन घँय से प्रत्येक की स्थिति प्रत्येक को स्पष्ट करते हुए, जो भी सदेश, फामूला, प्रश्न या उत्तर उठ मिला, बँवक्त भी नेकर कभी फिरप्राव (जहाँ सालाजी ठहरे हुए थे) और कभी शान्ति कुटीर (जहाँ मालवीयजी का निवास था) और कभी सीसिल होटल गढ़ (जहाँ मोतीलालजी का मुख्यालय था)। परतु आराम देने वाला मरहम जिसमें

युक्ति या बुद्धि-भादय तथा धय शामिल थे, राग हरन म सफल न हा पाया । स्वराजवादिया ने मुद्रा सबधी प्रस्तावित बिल की कारवाई की अवधि के लिए विधान सभा म उपस्थित होन पर प्रतिवध एक दिन के लिए उठा लिया । इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार न बहुमत के धार म विश्वास न होन के कारण इस बिल पर बहुम नई विधान सभा क प्रथम अधिवेशन तक के लिए स्थगित कर दी । उसने वाद स्वराज पार्टी की नायकारिणी न शेष अधिवेशन की उपेक्षा करन का निणय कर दिया । यह बात लालाजी का ठीक न लगी । 24 तारीख का पार्टी की महत्वपूर्ण बैठक हुई । रात को सरोजिनी नामडू और ए० रगास्वामी अयगार ने लालाजी को एक सदेश दिया था कि मोतीलालजी चाहत ह कि लालाजी बैठक म आए और मोतीलालजी बैठक से पूव सीसिल होटल मे अपन कमरे म उनसे मिलना चाहेंगे । लालाजी का विचार था कि अब बातचीत का सिलसिला समाप्त हो चुका है । वह बैठक से पूव पंडितजी से मिलने गए, परन्तु विरोध सदेश के कारण वह बैठक मे शामिल हुए जहा स्वराज पार्टी से उनका त्यागपत्र, जा टाइप किया हुआ लम्बा पत्र था, पढा गया ।

सराजिनी नायडू न अपने प्रयत्न तक भी जारी रखे कि शायद अभी भी मतभेद दूर हो जाए और त्यागपत्र वापस ले लिया जाए । किन्तु तीन चार दिन बाद यह त्यागपत्र समाचार पत्रों का दे दिया गया और इस प्रकार यह उन वष राजनितिक युद्ध का ही नहीं, शायद कई वर्षों के स्मरणीय राजनीतिक युद्ध का पहला गाला सिद्ध हुआ ।

त्यागपत्र का पहला लम्बा पैरा मुख्यत सदन-त्याग की चाला की आलाचना ही था और लालाजी ने शिवायत की कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का भाव का प्रस्ताव उनके प्रति नायपूर्ण नहीं था ।

‘बानपुर म मन बजट पर बहुस के बारे म अपने सशाधन पर जोर दिया था और प्रस्ताव का समर्थन करने की अनिवाय शत के तौर पर उस स्वीकार करन के लिए कहा था । पार्टी न इसे स्वीकार कर लिया था । यद्यपि हिंसावादाहट के साथ ऐसा किया गया था । परन्तु दो मास पश्चात बानपुर मे स्वीकार किया गया सशोधन कांग्रेस न नगण्य शक्ति से रद्द कर दिया था । मने इस परिवर्तन के विरुद्ध

मत दिया था और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा ऐसा करने के अधिकार को चुनौती दी थी। परन्तु मेरी आपत्ति रद्द कर दी गई थी। फिर भी, अनुशासन के हित में, मैं शेष पार्टी के साथ बैठक से उठकर चला आया था।”

परन्तु उन्होंने विचार व्यक्त किया कि बाद में प्रस्ताव में परिवर्तन किए जाने के कारण, इसका पालन करने का उनका अपना दायित्व भी समाप्त हो जाता है।

पत्र में लिखा था, “धीरे धीरे मैं अथ हिंदुआ के इस विश्वास से सहमत हो गया हूँ कि स्वराज पार्टी, जिस प्रकार उसका वर्तमान गठन है, स्पष्ट तौर पर हिंदुआ के हितों के लिए हानिकर है—मुसलमानों के साथ उनके मतभेदों के मामले में, सरकार और हिंदुआ के बीच मतभेदों के मामला में, यह हानि अधिक है। जहाँ तक सदन-त्याग की बात है वह विधायकों द्वारा अपने सामान्य कर्तव्य की अपेक्षा है। इस प्रकार जिन हिंदू निवाचन क्षेत्रों ने हम चुनकर भेजा है, उस नीति से उनको उनके प्रतिनिधियों की सेवाओं में वंचित हाना पडा है। मैं इस निवाचन क्षेत्रों के साथ विश्वास भंग मानता हूँ और मैं इस प्रकार के विश्वास भंग में और अधिक भागीदार नहीं बन सकता।”

अतः मैं उन्होंने सुझाव दिया कि राजनीतिक स्थिति की विशेष आवश्यकता यह नहीं है कि जोरदार पार्टी नीति को बर्खास्त किया जाए, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रगतिशील व्यक्ति तथा गुट इकट्ठे हो जाए।

कुछ समाचार पत्रों ने इस पत्र का स्वराज पार्टी के विरुद्ध गंभीर अभियोग पत्र बताया। यह सत्य है कि इस पत्र में स्वराज पार्टी की रणनीति की कटु आलोचना की गई थी, परन्तु अपने दृष्टिकोण का स्पष्ट तौर से पेश करते हुए, लालाजी यह प्रयत्न करते रहे थे कि बहुत ही विभीषण प्रकार की कटुता न आए।

मातीगलजी ने इस “अभियोग-पत्र” का उत्तर दिया। इस उत्तर में सदन त्याग की रणनीति का उचित सिद्ध करने का अधिक ध्यान नहीं किया गया था, जो त्यागपत्र का मुख्य आधार था और जिस

पत्र का उत्तर दिया जा रहा था, उमका मुख्य विषय यही था, परन्तु उममे ध्यय तथा कटाक्ष का कोई अवसर व्यथ नहीं जान दिया गया। गुण दोष के आधार पर मातीलालजी की मुख्य दलील यह थी कि लालाजी स्वराज पार्टी से उमी प्रवार बघे हुए थे जिस प्रकार वह तब हात, यदि वह स्वराज पार्टी के टिकट पर निर्वाचित हात। यह ता केवल मात्र सँदघातिष फिजूल दलील थी, क्याकि उस विधान मण्डल के अन्निम अधिवेशन के केवल दा-तीन दिन ही शेष रह गए थे और नए चुनाव की प्रशिया प्राय शुरू होन वाली थी। हम इस प्रश्न से मन्व्रद्ध मामला के धार म मोतीलालजी द्वारा अपने दो पत्रा म उठाए मामला की पहल ही चर्चा कर चुके ह और उन्हें इस जगह दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इन तथ्या के आधार पर पाठक को स्वय निष्पप निवाचनवर मोतीलालजी के प्रश्ना तथा दलीला का स्वय उत्तर देना चाहिए (उन दलीला का, जा उन्होंने अपने दूसरे पत्र मे दी है)।

परन्तु मातीलालजी के पत्र म विशेष जथा न तो इसक तथ्य थे और न ही स्वराजवादियो की रणनीति के समयन म दी गई दलीलें थी, वल्कि य उनके ध्यग्यात्मक आक्षेप थे। पत्र का आरम्भ उन्होने स्वाभाविक तार पर लालाजी का बघाईं दन से किया, 'आपको भारत के अधि-कारा तथा आजाधाभा के पायनियर जैसे मित्त की आर से बहुत ही उचित अभिन-दन आर बघाईं।' सदन त्याग की रणनीति पर आपत्ति पक्ष का उत्तर दत हुए, मोतीलालजी न बार-बार कहा कि लालाजी (कानपुर मे लिए गए) इस निणय मे भागीदार थे या उनको स्वीकार करन म या उनसे मतभेद होन म (दिल्ली ए० आई० सी० सी० बठक म) उहान परिस्थितिया का स्पष्ट विच्छेद का रूप न दिया। धीरे-धीरे और सहज, स ब्यवहार न मोतीलालजी का ब्यग्य करने का बहुत उपयुक्त अवसर दिया—शायद उहे दलील का उत्तर दन के लिए आभार मुक्त कर दिया। उहें एक वाक्य ब्यग्य के लिए और भी अच्छा लगा—लालाजी की यह घापणा कि स्वराजवादियो की रणनीति अपन निर्वाचन क्षेत्रा से विश्वास भग की कारवाई ह और उनका यह कथन कि अब वह आर अधिक समय के लिए इसमे भागीदार नहीं बन सकते।

मोतीलालजी ने सावरमती-सधि की पुष्टि न किए जाने की जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया, "यदि उस सधि को उभी रूप में ली जाये, जिस प्रकार वह है, तो इसकी पुष्टि न करने के लिए कान जिम्मेदार है?" और ऐसे स्वर में, जिसमें व्यंग्य था, उन्होंने कहा, "मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि पद स्वीकार करने के बारे में आपके विचार नहीं बदले और मैं विश्वास करता हूँ कि आप इन विचारों पर कुछ आरंभ के लिए काम करेंगे।" यदि छिपे हुए व्यंग्य के साथ वह किसी भविष्यवाणी की आरंभ कर रहे थे, तो वह सत्य में हुई।

काय समिति का यह प्रस्ताव कि एक सम्प्रदाय विधेयक की स्वीकृति में बाधा डाल सके, मोतीलालजी का भी स्वीकार नहीं था। उन्होंने कहा कि "यह गणतन्त्रवादी के कारण मेरी अनुपस्थिति में पास किया गया था और इस पर फिर से विचार किया जा रहा है।" उनकी अपनी प्रतीय कांग्रेस समिति का प्रस्ताव, जिसमें सिफारिश की गई थी कि स्वराज पार्टी चुनाव लड़े, जिस प्रकार काठपुर प्रस्ताव से पहले था और कांग्रेस सीधे चुनाव न लड़े, पण्डितजी ने तकनीकी आधार पर एक आरोप का सहारा लेकर रद्द कर दिया, जिसको अन्य लोगों के अलावा अध्यक्ष ने भी इन्कार किया—कि "यह बहुत से व्यक्तियों का, जो सदस्य नहीं थे, बैठक में भाग लेने की अनुमति देने से हुआ और कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस प्रस्ताव पर विचार से इन्कार कर दिया था।" वह कांग्रेस नेता के बीच बढ़ रही इस भावना को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे कि कांग्रेस के अधिकार को चुनाव झगडा के बीच नष्ट किया जाए। एक अन्य आरोप त्यागपत्र की उस बात पर किया गया कि पाटियों में विरोध के स्थान पर संयुक्त मोर्चा होना चाहिए।

पत्र में अन्य कई स्थानों पर भी छिटाकशी की गई, जिनमें लालाजी पर "मिताचारी" का आरोप लगाया गया था। कुछ व्यंग्य तो ऐसे थे जिनसे स्पष्ट दिखाई पड़ता था कि वह उसी व्यक्ति पर उल्टा चार करेगे, जिसने वह व्यंग्य किए थे। लालाजी के पत्र के समान मोतीलालजी का पत्र भी सदभावना के स्वर में समाप्त हुआ, यद्यपि इस अवसर पर भी वह "धीरे-धीरे और सहज से" के नथन को गलत तौर पर

माइने से न रुके, जा उन्होंने लालाजी के पत्र से खिल्ली उड़ान के लिए चुना था— “मुझे आशा है कि आप अपना मन बदलन में जल्दबाजी से काम नहीं लेंगे, परन्तु मुझे आशा है कि ‘धीरधीर और सहज से आप देखेंगे कि आप अपना विश्वास पा लेंगे और स्पष्ट शब्दा में उम्मीद धारण कर देंगे।”

एक बड़े रात एक चाट बड़ी शीघ्रता से आई थी, जिस दिन लालाजी का पत्र प्रकाशित हुआ मोतीलालजी ने अपना पत्र लिखकर समाचार-पत्रों को भेज दिया। (सरोजिनी नायडू ने निराशा हात हुए भी आशा बनाए रखी और अपने प्रयत्न जारी रखे, परन्तु मोतीलालजी ने उचित समझते हुए अपने सदेशवाहक को बदल दिया और अपना पत्र अमतसर के लाला गिरधारी लाल के माध्यम से लालाजी को भेजा) मोतीलालजी का पत्र 30 अगस्त की रात को लालाजी को पहुंचाया गया और 2 सितंबर को लालाजी ने दूसरा पत्र भेजा, क्योंकि उन्होंने देखा कि मोतीलालजी का पत्र ‘आरापा व वक्रोक्तिया, अध-सत्या तथा गलत बयानों से भरा हुआ था, जिन्हें मैं नजरअन्दाज नहीं कर सकता था और उनका उत्तर दिए बिना नहीं रह सकता था।”

मोतीलालजी ने यह कहने की चिन्ता नहीं की कि क्या वह जायदा फौजदारी में सशोधन बिल को इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझते थे कि स्वराजवादी विधान सभा की बैठक में भाग लें। लालाजी के विचार में, वह सशोधन का नागरिक अधिकारी (विशेषकर समाचारपत्रों की स्वतंत्रता की) की गंभीर अवहेलना मानते थे। इसके विपरीत उन्होंने यह ध्यान लिया कि मालवीयजी ने हम व्यवस्था की सराहना की थी और लालाजी ने मालवीयजी का दिए गए इस तान पर अपने पत्र में सबसे अधिक राय व्यक्त किया था। मालवीयजी को “आपका वर्तमान सहयोगी” कहते हुए और बिल के समर्थन में दिए उनके भाषण की चर्चा करते हुए मोतीलालजी ने पूछा था, “मैं आपसे ही पूछना हूँ कि हम प्रकाश की शक्ति में एक स्वराजवादी क्या कर सकता है।”

यह आलोचना कि सदन त्याग जोरदार प्रदर्शन था, अपना महत्व खो चुकी थी। अपवादों के कारण अर्थात् “सदन भंगन” के कारण यह असफल सिद्ध हो चुकी थी क्योंकि यह आशा कि स्वराजवादी

मिनाचारित तथा उग्रवाद के न्यायोचित मध्य का रास्ता अपनाया यह बहुत ही उचित बात थी, जैसा कि आपने भाषण से व्यक्त हाता है जिसमें आपने इच्छा व्यक्त की थी कि भारतीय अपीलें भारतीय नुचतम न्यायालय के स्थान पर सन्न मे प्रीवी कांसिल द्वारा सुनीं और आपने अदालत की मानहानि से सम्बद्ध बिल के प्रारम्भिक समर्थन भी दिया था। मेरा अनुमान है कि इन दोनों कार-का पावनियर तथा सरकार दोनों का समर्थन प्राप्त था।”

“जस अधिक तालाजी न मालवीयजा को दिए गए
 1. 1. 1. व्यक्त की।

“, फिर अपील की कि रखाई से बचा जाए—
 तो स्वच्छ तीर से लडा जाए।”

1. 1. के एक आर पत्र के बाद समाप्त
 के प्रकाशित होने के साथ आरम्भ
 मेरा अनचाहा अन्तिम यागदान। इन पत्र
 गई और न पहले से बहुत के अधील मामला
 दी गई। पण्डितजी ने एक द्वार विधान
 चुनाव की चर्चा की और इस विषय पर
 “तथ्या” में इस विषय को लिया। “म
 तथ्या के बारे में खडन चाहूंगा। यह
 आपका आपकी दया पर छोड दूंगा।”

1. दिया कि तालाजी का यह निष्प
 1. 1. मदनमोहन मालवीय के प्रति सम्मान
 1. मे हिस्सेदार नहीं और उन्होंने
 बदलत हुए अस्थिर व्यवहार का मिश्रण
 1. 1. थे और त्याग पत्र देन वाले को

ही समाप्त हो गई दाना आर स
 (सितंबर) के साथ भेट में तालाजी
 जाने के लिए मैंने रायजादा

अपना समक्षीय जमल छाड देगे, ताकि वे अपना समय चरपा कातन, खादी का प्रचार करने और रचनात्मक कार्यक्रम वे अय नाम करा म लगाएगे, अधिक सीमा तक पूरी नहीं हुई थी। यहा भी मातीलालजी न न ता आराप का रण्डन किया और न ही इमके मत्य का स्वीकार किया, बरान्क सालाजी का बताया कि "सदन गमन" की अनुमति केवल उन पर आभार व्यक्त करन के लिए दी गई आर यदि "रचनात्मक" काय आरम्भ नहीं किया गया ता पार्टी के सदस्य के तीर पर लालाजी किसी अय व्यक्ति के मुकाबल अधिक जिम्मेदार थे, अय याता के अतिरिक्त, यद्यपि पंडितजी जानन थे कि सालाजी ने छुट्टिया पुराप म बिताई थी।

लालाजी के दूसर पत्र म एक बार फिर यह सिद्ध करन का यत्न किया गया था कि वह एक निदलीय उम्मीदवार के तीर पर निर्वाचित हुए थे और उन्होंने मतदातामा का धाई रचन नहीं दिया था, न ही स्वराज पार्टी का पार्टी आशवासन दिया था। और "सदन म रहन" की धारा तथा उसके उपयाग के बार मे मातीलालजी न जब इनकी जिम्मेदारी लालाजी पर डालनी चाही, ता उन्होंने उत्तर दिया, 'यह सभी सदन गमन मेरी भारत से अनुपस्थिति के कारण हुए आर मैं उनक बार म किमी भी निणय म शामिल नहीं था।'

'सदन गमन' के बार म कई बार जाना विशेष ममिति न दी थी आर कुछ एक की ता औपचारिक स्वीकृति भी नहीं दी गई थी केवल मिली भगत थी और थी मौन स्वीकृति।

उन्होंने फिर भावरमती मधि की भददी कथा की चर्चा की।

'पायनियर की बघाई के तान और मिनाचारी हान के व्यंग का सुरत उत्तर मिला

'पायनियर की बघाई के बारे म आपकी टिप्पणा की चुभन चुनाव क सबध म एक रणनीति ही ह। इम प्रकार का टिप्पणी एक ऐसे सज्जन का शोभा नहीं देती, जिसे उस समाचारपत्र म तथा अनक एग्ला इंडियन समाचार-पत्रा स विद्यान सभ म उनकी समतल मिताचारी राजनीति के लिए स्वय बघाई मिल चुकी हा। आपने

मिताचारित तथा उग्रवाद के न्यायाचित मध्य का रास्ता अपनाया यह बहुत ही उचित बात थी, जैसा कि आपके भाषण से व्यक्त होता है जिसमें आपन इच्छा व्यक्त की थी कि भारतीय अपीलें भारतीय उच्चतम न्यायालय के स्थान पर लंदन में प्रीवी कांसिल द्वारा सुनी जाए और आपन अदालत की मानहानि से सम्बद्ध बिल के प्रारम्भिक चरणों में समय भी दिया था। मेरा अनुमान है कि इन दोनों कार-बाहियों को पायटियर तथा सरकार दोनों का समय प्राप्त था।”

परन्तु इन सबसे अधिक लालाजी ने मालवीयजी को दिए गए ताने पर बहुत नाराजगी व्यक्त की।

अन्तिम पहर में उन्होंने फिर अपील की कि रुखाई में बचा जाए—
“यदि हमें लड़ना ही है, तो स्वच्छ तौर से लड़ा जाए।”

यह पत्र युद्ध मातीलालजी के एक और पत्र के बाद समाप्त हो गया। “आपके त्यागपत्र के प्रकाशित होने के साथ आरम्भ हुए अनुचित वाद-विवाद में मेरा अनचाहा अन्तिम योगदान।” इस पत्र में न कोई नई बात कही गई और न पहले से बहस के अधीन मामला के बारे में कोई और दलील दी गई। पण्डितजी ने एक बार विधान सभा के लिए लालाजी के चुनाव की चर्चा की और इस विषय पर अपने आरोपों के “चार केंद्रीय तथ्या” में इस विषय का लिया। “मैं आपकी ओर से चार केंद्रीय तथ्या के बारे में खडक चाहूंगा। यह निर्णायक होगा और मैं अपने आपको आपकी दया पर छोड़ दूंगा।”

उन्होंने यह स्पष्टीकरण भी दिया कि लालाजी का यह निष्कष क्रिकुल गलत था कि “मैं पंडित मदनमोहन मालवीय के प्रति सम्मान तथा आदर की आपकी भावनाओं में हिस्सेदार नहीं और उन्होंने त्यागपत्र के बारे में विवाद का बदलते हुए अस्थिर व्यवहार का मिश्रण बताया, जो सारे के मारे अनुचित थे और त्याग पत्र देने वाले को मजबूर होकर जपाने पड़े थे।”

बागजी गोलाबारी इसके साथ ही समाप्त हो गई, दाना और सदा दो गोले दाने गए। ‘ट्रिब्यून’ (5 सितंबर) के साथ भेंट में लालाजी ने दाहराया कि विधान सभा में जाने के लिए मैंने राजादा

हसराम की पशकश बिना शत स्वीकार की थी, पञ्जाब के अय सदस्या ने भी उनके लिए म्यान छोड़ने की पशकश की थी और किसी ने भी कोई शत नहीं रखी थी। उन्होंने दलील दी थी कि मदन-त्याग की नीति देश के लिए, विशेषकर हिन्दुओं के लिए हानिकर थी। उन्होंने यह भी बताया कि स्वराज पार्टी से उनका त्याग पत्र देने की सम्भावना नहीं थी, यदि पार्टी ने जायदा फौजदारी मशोधन प्रिल तथा साम्प्रदायिक प्रस्ताव पर बहुतायत भाग लेना का निश्चय किया होता। बातचीत का त्यागपत्र देने के बाद भी जारी रही थी अचानक समाप्त हो गई और इसके शीघ्र ही फिर से शुरु होने की आशा नहीं थी, क्योंकि पण्डित मातीशाल के पत्र में मालवीयजी का अपमान किया गया था।

त्यागपत्र में कुछ राजनीतिक प्रश्न उठाने का प्रयत्न किया गया था—सावर मती संधि, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का भाव का प्रस्ताव, मदन त्याग की नीति तथा उनके प्रभाव, और क्या कांग्रेस संगठन को चुनावों में भाग लेना चाहिए और या कांग्रेसजनों को, जैसा कि उन्होंने पहले किया था, समदीय कार्य के लिए अलग संगठन के माध्यम से कार्य करना चाहिए। परन्तु इन प्रश्नों की ओर अपभ्रष्ट धाडा ध्यान दिया गया था, और क्या लालाजी द्वारा विधान मन्त्रालय के समय काई आश्वासन दिए गए थे या वायदे किए गए थे जयवा नहीं, यह बात विवाद का केन्द्रीय विषय बन गयी थी। इस बात में लालाजी अपना ध्यान रखने में मन्त्रम थे क्योंकि तथ्य जारदार तौर पर उनके पक्ष में थे, स्वराज-यादिया की राजनीतिया की लालाजी द्वारा जारदार आलोचना का कुछ प्रभाव पडना भी आवश्यक था, परन्तु यद्यपि उन बहुत से लोगों के दिमाग जो इस पत्राचार के राजनीतिक जानकारी के लिए नहीं बल्कि केवल साहित्यिक विवाद के तौर पर अध्ययन करना चाहते थे कि दाना में म किम व्यक्ति ने ध्यम्य आर बटाया व शस्ता का अधिक दक्षता से प्रयोग किया है उनके विचार में विजय इताहावाद के प्रन्थान यकील व पत्र में थी।

इस युद्ध लड़ने वाले इन दाना अनुभवों महारथिया द्वारा जारदार आप्रमण करने तथा बार बचाने के दाव पत्रा से उम महान युद्ध की पूव जानकारी मिलती थी जा आगामी चुनाव में, दा माम बाद हान वान थे।

ये पत्र आम चुनाव की उस असल प्रतियोगिता का प्रारम्भ मात्र थे, जिसके लिए टीमा का चयन दोना पार्टिया दवारा किया जा रहा था। अधिवृत्त तौर पर कांग्रेस के उम्मीदवारो का चयन अब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी को करना था और लालाजी उस मस्या के अभी भी सदस्य थे। काय ममिति न सितवर के आरम्भ म उम्मीदवारो का चयन आरम्भ कर दिया था और अपनी याजनाजा को अन्तिम रूप दना शुरू कर दिया। लालाजी ने जान-बूझकर उस बैठक तथा आगामी बैठको मे भाग न लिया। इसकी वजाय वह उन कांग्रेसजना की एक और पार्टी बनाने मे व्यस्त हो गए, जो समदीय कायन्म के पक्ष म थे और इसके साथ ही स्वराजवादिया की रजनीति से अमतुष्ट थे—जो सामान्य तौर पर उनके अपने तथा मालवीयजी और महाराष्ट्र गुट के दृष्टिकोण मे सहमत थे।

एक ओर मातीलालजी तथा उनके सहायका न तथा दूसरी ओर मालवीय-जी, लालाजी तथा उनके मित्रा न जोरदार अभियान आरम्भ कर दिया था। दूसरे पक्ष ने अपने आपको इष्टिपडेंट कांग्रेस कहलवाने का निणय किया, शायद अचेतन तौर पर यह ब्रिटिश आइ० एल० पी० की प्रणाली के अनुसार था। उन्होंने मतदाताओ को न केवल हिंदू महासभा के नाम पर अपील करने से ही इन्कार किया उन्होंने यह दावा भी किया कि वे स्वराज पार्टी वाले कांग्रेस कार्यकर्ताओ जैसे ही अच्छे कांग्रेसजन थे। यद्यपि वे स्वराज-वादियो के ममान 'बाधा डाल' नीति म विश्वास नहीं रखते थे। इसके अतिरिक्त उहान यह बात भी स्पष्ट कर दी कि वे कांग्रेस पार्टी द्वारा चुनाव मे भाग लेने के पक्ष म नहीं थे।

अक्सर यही प्रश्न किया जाता था कि क्या असल टकराव सिद्धाता और नीतियो का था या व्यक्तित्व का। सिद्धातो और नीतिया के मतभेदो का तो हम पहल ही स्पष्टीकरण दे चुके है और किसी भी तरह से यह मतभेद अवास्तविक अथवा मामूली नहीं थे। परन्तु यह सभव है कि व्यक्तित्वा के टकराव ने उन्हें विराट तीव्रता प्रदान कर दी हा तथा मामले का और उलझनपूर्ण बना दिया हा। जब आरम्भ मे स्वराज पार्टी की स्थापना की गई थी, लालाजी जेल म थे (यद्यपि उन्होन

वहा से ही सहयोग दिया था)। जब वह जेल से रिहा होकर आए तो वह विधान मंडल की सदस्यता के अयोग्य थे और उहनि पार्टी में शामिल होना ज़रूरी न समझा। दास और नेहरू पार्टी के मस्थापक थे और उन्होंने अच्छा ही किया कि जपन लिए बायक्षेत्र निर्धारित कर लिए—दास पार्टी के अध्यक्ष और बंगाल विधान मंडल में पार्टी के नेता थे, नेहरू पार्टी के सचिव और केंद्रीय सभा में पार्टी के नेता थे। दास के देहांत के बाद नेहरू ही इसके प्रधान तथा केंद्रीय सभा में इसके नेता थे, जब लालाजी के लिए सदन की सदस्यता की व्यवस्था की गई। दोनों के दृष्टिकोण में मतभेद होने के बावजूद, लालाजी और मोतीलालजी ने आपसी सहयोग बहुत अच्छी तरह किया, जब तक लालाजी औपचारिक रूप से मोतीलालजी के दल में शामिल न हो गए। इस दृष्टिकोण से लालाजी का विधान मण्डल में प्रवेश एक गलती थी, क्योंकि पार्टी के नेता के साथ समझौता अब और अधिक अनिवाय और कठिन हो गया था। कई बार ऐसे अवसर भी आए जब या तो उन्होंने महसूस किया कि अनुशासन बहुत कष्टप्रद था या नेता बहुत राबीला था या जब नेता ने महसूस किया कि उसने जो डग निपटन के लिए अपनाया था, लालाजी का व्यक्तित्व उससे कहीं अधिक बड़ा था। लालाजी मोतीलालजी से कनिष्ठ स्थान पर हा, यह बात बहुत से लोगों का अनुपयुक्त दिखाई देती थी, यद्यपि इस स्थिति को समाप्त करने के लिए बिच्छेद ही समाधान नहीं था, क्योंकि लालाजी आमानी संसभा से बाहर रह सकते थे और तब वह मोतीलालजी की सहायता भी कर सकते थे और आलोचना करने के लिए भी स्वतंत्र रह सकते थे।

चुनाव अभियान ने लालाजी की बहुत शक्ति खच करवाई। विभिन्न प्रांतों से पार्टी के उम्मीदवार नामजद करना उनकी जिम्मेदारी थी और अभियान की योजना का प्रभावित करने वाले प्रमुख प्रश्नों का निणय करना भी उनके जिम्मे था। निस्संदेह उन्हें अपने प्रांत तथा अन्य प्रांतों में बहुत से निवाचन क्षेत्रों का दौरा करना पड़ा, ताकि अपनी पार्टी के उम्मीदवारों की सहायता कर सकें और मतदाताओं का बता सकें कि नई पार्टी का लक्ष्य क्या था। इसने अतिरिक्त उनका व्यक्तिगत रूप से बहुत इश्वर

विरोध किया जा रहा था। जब मोतीलालजी लाहौर आए ताकि लालाजी को उनके गढ़ में ही पराजित किया जाए, तो बहुत से कांग्रेस-जनना न इच्छा व्यक्त की कि लालाजी और मालवीयजी का विरोध न किया जाए, क्योंकि उनकी निजी हितसंबन्धी भाग करती थी कि उन्हें विधान मंडल में होना चाहिए, चाहे कुछ मामलों में उनका कांग्रेस के समर्थित नेताओं के साथ मतभेद भी क्या न हो और इसलिए भी कि विरोध न करने से फिज़ूल ही बटुता से बचाव होगा, नहीं तो पीछे बहुत अधिक तलबी रहेगी। कुछ वक्ताओं ने उनका दृष्टिकोण पण्डित मोतीलाल के सामने रखा। पण्डित मोतीलालजी से आग्रह किया गया कि ऐसे प्रमुख दशभक्ता के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े किए जाने को मतदाता पसंद नहीं करेंगे और ऐसा करना सामान्य तौर पर कांग्रेस पार्टी के हित में नहीं होगा। परंतु मोतीलालजी का पचास में उनके कुछ समर्थकों ने आश्वासन दिया था कि उनकी भारी बहुमत में विजय होगी और कम बहुत ही मजबूत आश्वासन के अनुमान के कारण यह बहुत ही घमट में थे। नायडू जाज का उद्धरण देते हुए उन्होंने अपने भेंटकर्ताओं से कहा, 'मैं अपनी पार्टी के माची को भी विरोधी पार्टी के नेता में अच्छा समझता हूँ।'

यद्यपि उन्हें बहुत ही अहंकार था परंतु यह अहंकार तो उनका मिर नीचा करने के लिए था। जब चुनाव परिणाम घोषित हुए तो उन्हें पराजय नहीं, बल्कि घोर पराजय की स्वीकार करना पड़ा। वह विधान मंडल में अब भी विपक्ष के नेता बने रहें, परंतु वह केवल इसलिए कि लालाजी और मालवीयजी ने केवल उत्तर भारत में ही उनका मुकाबला किया था, प्रायद्वीप में नहीं। मोतीलालजी विपक्ष के नेता भी नहीं रह सकते थे, यदि मद्रास के विधायक उनका समर्थन न करते। उनके अपने प्रांत में मतदाताओं ने उन्हें बहुत बड़ी सजा दी थी।

पचास के स्थानीय परिषद के लिए स्वराज पार्टी का प्रायः सफाया ही हो गया, केवल एक स्थान को छोड़कर, जहां उम्मीदवार के व्यक्तिगत सम्मान को देखते हुए लालाजी का उस निर्वाचन क्षेत्र का खुला छोड़ देने के लिए सहमत कर लिया गया था। मतदान के अन्तिम चरणों में, जब लालाजी का मतदान सम्पन्न हो चुका था, उन्हें सहमत कर लिया

गया कि वह बोधराज (मुलाना का) का विरोध न करे और इस प्रकार बोधराज को निर्वाचित होन दिया गया, जो बहुत कम मतों से निर्वाचित हुए थे। पंजाब में केंद्रीय सभा के लिए स्वराज पार्टी का एक भी उम्मीदवार सफल न हुआ। लालाजी ने दो निर्वाचा क्षेत्रों से चुनाव लड़ने का उपाधारण कदम उठाया और इस यत्निकत सभ्य के अतिरिक्त वह पार्टी के उम्मीदवारों की महायता के लिए पंजाब ही नहीं, अप प्रायः में भी दौड़-भाग कर रहे।

अपने दो निर्वाचन क्षेत्रों में लालाजी का विरोध रामजादा हमराज तथा दीवान चमालात कर रहे थे। रामजादा हसराम चुनाव लड़ने के लिये तैयार न थे और उन्होंने अपने नेता को लालाजी के विरोध उम्मीदवार खड़ा करने के लिये सहमत करने की कोशिश की, परंतु उनकी सलाह नजरबंद कर दी गई और उन्हें आदेश दिया गया कि वह चुनाव अवश्य लड़े। उन्होंने शफावारी से आदेश का पालन किया और सूचिया प्रस्तुत की और कुछ समय के लिए पूरी शक्ति भी लगाई। परंतु उन्हें यह अहसास होने में अधिक समय नहीं लगा कि उनकी सफलता की संभावना भी संभावना नहीं, इसलिए वह मतदान से काफी समय पूर्व चुनाव मदान से हट गए।

लाहौर के कांग्रेसजना का जो प्रतिनिधि मंडल पंडित मातीलाल से मिला था, उसे हाट डपटकर लायड जाज के चुभते हुए, रुपये शब्द कहकर लौटा दिया गया था। उनमें कुछ लोग लाक सेवा सभ के थे, जिन्होंने पूरा आश्वासन लिया था कि उनकी नई पार्टी बनाने में कोई बाधा नहीं, जैसा कि लालाजी और मालबायजी का प्रस्ताव था और न ही बदले हुए परिस्थिति में उनका वफादारी बदलने का इरादा था। लालाजी ने कभी उनसे नई पार्टी में शामिल होने को कहा भी न था (इस पुस्तक का लेखक प्रतिनिधि मंडल का एक सदस्य था)।

यद्यपि भेंट के समय किसी शिष्टकी से मन को बहुत ठेस लगी हुई थी, फिर भी अचिन्तराम, जो मध्य के संस्थापक सदस्य में से थे, कमलनाथ को वोट डालने के लिए मतदान मंत्र गर्वें। जब बोट डानने के बाद वह घर लौटे तो लालाजी ने उन्हें गले लगाकर स्नेहपूर्वक पपकी

दो कि उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार कार्ग्वार्ड की थी। अचिन्तराम को शायद अपने व्यवहार पर अप्रसन्नता हुई हो, क्योंकि अगले दिन के समाचार-पत्रों में स्वराजवादी नेताओं ने (जिन नेताओं ने अचिन्तराम का उक्ताया था) उस बात का गनत ढंग से पक्ष किया था।

परन्तु लालाजी ने कोई शिकायत नहीं की। लालाजी की अपनी लाहौरी विजय की कहानी भी उल्लेखनीय है। दीवान चमन लाल सुरत 2, कोट स्ट्रीट पहुंचे, ताकि अपन लिए वह स्थान यकीनी बना सकें जो लालाजी को खरीदना था। उन्होंने कहा "यदि मैं विधायक नहीं बन पाया तो मेरा महत्व कुछ भी नहीं और मैं कहीं का भी नहीं।" लालाजी के विरुद्ध अभियान में जो कुछ वह करते रहे थे, वह अब समाप्त हो चुका अग्र्याय था। लालाजी ने सुरत स्वीकार कर लिया कि उन्होंने विधान सभा में सराहनीय कार्य किया था और इसलिए उन्होंने राजादा हमराज वाला स्थान (जालंधर) रख लिया। राजादा हमराज भी लाहौर आये। वे पहले जैसी ही सद्भावना से मिले और ऐसी व्यवस्था की गई कि वह भी पंजाब विधान सभाल में सदस्य बन गये। यदि लालाजी ने लायड जाल वाला सिद्धांत इस्तेमाल किया होता तो न चमन लाल सभा में पहुंचते और न हमराज विधान परिषद में सदस्य बन पाते।

चुनाव भी अजीब परिस्थिति में होता है और चुनाव लड़ने वाला का व्यवहार अक्सर विचित्र होता है। लालाजी की नामजदगी पर भी इस आधार पर कांग्रेस पार्टी की आर स आपत्ति की गई थी कि उनका बकालत का लाइसेंस चीफ कोर्ट ने इसलिए रद्द कर दिया था कि उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी जिसे राजद्रोही समझते हुए सरकार ने उनपर पाबंदी लगा दी थी। इसलिए वह विधान सभा के लिए चुन जाने के अयोग्य हैं, यह दलील प्रतिद्वंद्वी कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार ने कांग्रेसों की पड़ताल के समय दी थी। परन्तु लालाजी ने इस विस्मय की परिस्थिति के लिए अपन जापना पहले से तैयार कर लिया था और एक याचिका द्वारा 1917 के वेहदा आदेश का रद्द करवा लिया था।

यद्यपि स्वराज पार्टी द्वारा उनका डटकर विरोध किया जा रहा था तथा उन्हें परेशान किया जा रहा था और मोतीलालजी ने कहा था कि उनका मोची नालाजी से अधिन महत्व का है, परन्तु अब उन्हें पता चला कि यू० पी० में मालवीयजी के कुछ समर्थक मोतीलालजी के विरुद्ध उम्मीदवार खड़ा करने पर बहुत जोर दे रहे हैं, ता उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया और मालवीयजी को लिया

14 अक्टूबर 1926

मेरे प्रिय पंडित मालवीय,

मने समाचार पत्रों में एक बखनध्य पढ़ा है कि यू० पी० में इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी के सदस्य आप पर दबाव डाल रहे हैं कि उसी स्थान से विधान सभा के आगामी चुनाव लड़ें, जहां से पण्डित मोतीलाल के खड़े होना की आशा है। मेरा ख्याल है इस बक्तव्य में कोई सार नहीं। कुछ भी हो, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि इस मामले में आप अपने मित्रों की मलाह न मानें, क्योंकि मेरे अनुमान में आप दाना का विधान सभा में होना देश के हित में है।

जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं अपना ध्यान स्वयं रख सकता हूँ। मैं प्रतिशोध के सिद्धांत में विश्वास नहीं रखता।

भवदीय

लाजपत राय

स्वतंत्रता के लिए व्यापक सघन के सबसे मोतीलालजी पार्टी के लोगों को अधिक महत्व नहीं देते थे। यहां भी राजनीतिक पार्टी में अनुशासन की धारणा के मामले में उनके सिद्धांत स्वराज पार्टी के प्रमुख द्वारा धारित सभा स्वीकृत सिद्धांत से भिन्न थे।

मालाजी ने जोरदार सघन किया और गयाशक्ति युद्ध का स्वच्छ और सम्मानपूर्वक खनन का प्रयत्न किया, उस समय भी जब उन्हें पता था कि उन पर कीचड़ उछाली जा रही थी। उनके पक्ष की ओर से एक घटना घटना हुई, जबकि इसमें मालाजी का कोई हाथ नहीं था। यह घटना 'वन्दे मातरम्' (तथा कुछ अन्य समाचार पत्रों में भी) में मोतीलालजी के विरुद्ध एक निन्दात्मक कहानी के प्रकाशन

की थी। जब यह घटना हुई उस समय सालाजी लाहौर से बाहर गए हुए थे, परन्तु जैसे ही उन्हें इसकी जानकारी मिली उन्होंने उसकी जोरदार निन्दा की और चुनाव के बाद उन्होंने दोषी समाचार पत्र को मोतीलालजी से बिना शर्त क्षमा याचना करने और स्वराज पार्टी के नेता के सतोप के अनुसार भूल सुधारने के लिए कहा।

जवाहरलाल नेहरू उस समय कमला नेहरू की बीमारी के कारण उनके पास थे। अपना चुनाव अभियान समाप्त करने के पश्चात, जबकि अभी सभी चुनाव परिणाम आए भी नहीं थे, मोतीलालजी ने उन्हें बहुत ही निराशापूर्ण पत्र लिखा। धार पराजय ने उन्हें इतना हताश किया था कि वह विधान सभा की सदस्यता से त्यागपत्र देने और सावजनिक जीवन से अवकाश लेने की सोच रहे थे। यद्यपि वह "अभी भी सबसे बड़ी पार्टी के नेता" होने का दावा करते थे, वह इस बात को नहीं भूल सकते थे कि केवल पंजाब में ही नहीं, अपने प्रांत यू० पी० में भी जो हुआ, वह पूर्ण विनाश के सिवा कुछ नहीं था।*

मतदाताओं द्वारा किसी को अस्वीकार करने की बात तो समझ में आ सकती थी, परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक स्वीकृति तो यह थी— "मेरे अपने प्रांत में मेरी सहायता करने के लिए नाममात्र को भी कायकर्ता नहीं है।"*** यकीनी तौर पर इसका कारण "बिरला का धन" या "भालवीय लाला टोली" के "झूठ" नहीं हो सकते थे परन्तु कारण चाहे कुछ भी हो, असल बात यह थी— "मैं पूरी तरह निराश हूँ और अब सावजनिक जीवन से अवकाश ले लेना चाहता हूँ।"*** वह इस अवघट में चुप रहना चाहते थे, जबकि तीन चार सप्ताह बाद गुवाहाटी में कांग्रेस की बैठक होने वाली थी। वह कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात त्यागपत्र देने के बारे में सोच रहे थे, परन्तु ऐसा दिखाई देता है कि अधिवेशन में अनुपस्थिततावरण देखकर उन्होंने अपना विचार बदल लिया।

* एच आर ओल्ड सेंटस पृष्ठ 49

** वही पृष्ठ 49

*** वही पृष्ठ 50

63. केन्द्रीय विधान सभा में

विधान सभा में आखिरकार पण्डित मोतीलाल विपक्ष के नेता बने रहे । दक्षिण भारत में लालाजी या मालवीयजी ने कोई मुकाबला नहीं किया था । उन्होंने तो केवल उत्तर भारत के हिंदुआ का निणय लिया था और यह निश्चित तौर पर उनके पक्ष में गया था । मध्य भारत तथा पश्चिमी प्रेसीडेंसी की अपेक्षा नहीं की गई थी, परंतु दक्षिणी प्रेसीडेंसी को अभियान-क्षेत्र में बाहर रखा गया था । चुनाव का परिणाम भारी बहुमत से (अभियान-क्षेत्र में) उनके पक्ष में गया था, परंतु चुनाव अभियान का लालाजी के स्वास्थ्य पर बहुत भारी बोझ पड़ा था । सिंध यात्रा के दौरान तो प्रायः उनका स्वास्थ्य जवाब ही दे गया था । इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी में पर्याप्त मात्रा में प्रतिभा तथा असली देशभक्त तत्व भी थे और उनके पास लालाजी और मालवीयजी का अनुभवी नेतृत्व भी था । “मैं पार्टी का नेता हूँ और मालवीयजी मेरे नेता हूँ” लालाजी यह कहा करते थे । दोनों नेताओं में बहुत समझौता था । इस नई पार्टी में स्वाधीनता के लिए सघन शान्तिपूर्ण ढंग से जारी रखा । अफसरशाही के विरुद्ध सभी मधुपर्गों में स्वराजवादी तथा इंडिपेंडेंट कांग्रेसजन कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़े ।

चुनाव के शीघ्र बाद कांग्रेस अधिवेशन गुवाहाटी (असम) में एस० श्रीनिवास अयंगर की अध्यक्षता में हो रहा था । लालाजी के सहयोगियों का उचित मुनवाई का अवसर प्राप्त करने के लिए जोरदार प्रयत्न करने का इरादा था और यदि संभव हो सके तो कांग्रेस से अपने पक्ष में निणय लेना का । मालवीयजी ने जोरदार आप्रह किया कि लालाजी गुवाहाटी अधिवेशन की बाग्याही में भाग लें । एम० आर० जयकर ने भी ऐसा ही आप्रह किया । लालाजी ने शायद गुवाहाटी में अपने समयको को एकत्र करने का समर्थन प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न न किया परंतु स्वयं गुवाहाटी अधिवेशन में भाग लेने के लिए महत्तम हो गए । वह रास्ता में थे कि उन्हें दुःखदायी खबर मिली कि एक जुनूनी मुसलमान हत्यारे ने स्वामी ध्यानद को

शहीद कर दिया था। गुवाहाटी में शाकम्ब वातावरण हाना स्वाभाविक था और उस दुःघात घटना की पुष्टभूमि में सार राजनीतिक विवाद कुछ समय के लिए बहुत फीके तथा हल्के दिखाई पड़ने वाले थे। काई भी व्यक्ति यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता था कि इस घटना के पश्चात् दिल्ली में क्या होगा या उत्तर क्षेत्र के अग्र स्थानों पर क्या होगा? गुवाहाटी जात हुए कलकत्ता में लालाजी के मन में पहले तो यह विचार आया कि तुरन्त दिल्ली तथा पंजाब लौट जाए। महात्मा गांधी इस बात से सहमत थे। गुवाहाटी जाने की बजाय लालाजी तुरन्त दिल्ली पहुँच (बेलकर और जयकर बीमारी के कारण जा नहीं पाए थे, इसलिए मैदान स्पष्ट तौर पर स्वराजवादियों के पक्ष में था)। लालाजी का अन्तिम कांग्रेस अधिवेशन यू० पी० का था—चालीसवा अधिवेशन वानपुर में—उनका पहला अधिवेशन भी यू० पी० में ही था—चीया अधिवेशन इलाहाबाद में।

शीघ्र ही दिल्ली में विधान सभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ गया, पार्टी के नेता के तौर पर उनका काम बहुत कठिन था। पिछले वर्ष मध्य अगस्त में यूरोप से लौटने के बाद से लेकर उहाँ आराम नहीं किया था और अधिवेशन के दौरान वह लगातार थकान महसूस करते रहे थे। सभा का अधिवेशन समाप्त होने के बाद उँहोंने मन बना लिया कि वह अवश्य ही आराम करेंगे और उँहोंने पिछले वर्ष की तरह इस बार भी यूरोप की तीन चार मास की यात्रा की व्यवस्था कर ली। उँहोंने 'द पीपुल में लिखा

'मैं यूरोप किसी लक्ष्य से नहीं जा रहा हूँ। इस यात्रा का आर काई उद्देश्य नहीं, केवल आराम तथा स्वास्थ्य लाभ है। भारत के स्वास्थ्यवधक स्थानों (पहाड़ों तथा सागर तट के) के अनुभव से मन नेत्र लिया है कि उनका जलवायु तथा वातावरण मुझे वह विश्राम नहीं दे सकत, जिसकी मुझे आवश्यकता है। पहाड़ों की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं, मेरा आमाशय गड़बड़ हो जाता है। इसके अतिरिक्त भाषणा तथा बैठक आदि के लिए बुलावे इतने अधिक तथा इतने जारदार हीत हैं कि उनसे इकार करना कठिन हो जाता है। यदि इकार भी किया जाए तो मित्त जयवा निर्वाचन क्षेत्र के लोगो की

नाराजगी का डर रहता है। भारत के पहाड़ी स्थला का छत्र यूरोप के पहाड़ी स्थला से कम नहीं। म यूरोप में भी काफी कम छत्र पर गुजारा कर सकता है, क्योंकि मुझे अधिक आमाम प्रमोद अथवा शानदार ढंग से रहने की जरूरत नहीं। मेरा विश्वास है कि साठे तीन मास की यह यूरोप यात्रा (क्योंकि मुझे इतना ही समय मिलेगा) मुझे इतनी शक्ति दे देगी कि मैं भारत में फिर गभीर काय करन के योग्य हो जाऊँ, इसलिए मुझे आशा है कि मेरे मित्र तथा देशवासी भारत से मुझे इस छोड़ी सी अवधि की अनुपस्थिति के लिए क्षमा करेंगे। स्वदेश लौटने पर मैं फिर उनकी यथायोग्य सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।”

4 मई 1927 को वह पी० एड आ० के जलपोत 'एस० एस० रावलपिण्डी' द्वारा रवाना हो गए।

इस बार विदेश में उठाने जान-बूझकर अपन स्वास्थ्यहित में राजनीतिक काय से परहेज किया। मध्य अगस्त में स्वदेश लौटने पर उठाने लिखा

“म उनके साथ विल्फुल साफगोर्ड से पक आऊँगा। मैंने विशेष तौर पर कुछ नहीं देखा और न ही कुछ किया, केवल विधाम किया और डाक्टरों में उपचार कराया। विल्कुल आरम्भ से ही मैंने दठ निषय कर लिया था कि इस यात्रा में राजनीतिक काय विल्कुल नहीं किया जाएगा। फिछल नवंबर में मेरा स्थायु तब प्राय जवाब द गया था। अप्रैल में फिर सिध-यात्रा के दौरान मेरा जिगर खराब हो गया था। इसलिए मैं अपने निषय पर कायम रहा। जहाज पर जान हुए मन बर्ई काय नहीं किया और पहले दठ मिन विल्कुल ठीक रहा, काफी स्वस्थ तथा ताजगी महमूस की। दुर्भाग्य से भूमध्य सागर में मुझे सर्दी लग गई, जिससे जुजाम हो गया, जिसके कारण म प्राय पाच सप्ताह के लिए अस्वस्थ रहा। मैं लदन में चार सप्ताह तथा कुछ दिन के लिए रहा। इस अवधि में मैंने कोई काय न किया और न ही किसी से मिली, सिवाय लेबर पार्टी के कुछ मित्रों के। मन सेनेट्री आफ स्टेट फार इटिया में मुलाकात के लिए कोई समय नहीं मिला और इटिया आफिस भी नहीं गया। मेरी अण्डर सेनेट्री फार इटिया के माथ हाउस

आफ कमस में एक भोज में भेंट हो गई थी, जहाँ मैं कोई राजनीतिक बात नहीं की। अधिक बातें, कविता, साहित्य तथा प्राथना पुस्तक की हुई।”

परन्तु जब वह लौटे तो ऐसा दिखाई देता था कि उनके पास हाथ में और नाम है, जिसके कारण वह आगामी छ मास के लिए व्यस्त रहेंगे। यह एक पुस्तक के बारे में था, जो अभी प्रकाशित हुई थी और जो यूरोप से लौटने वाले अथवा यात्रियों के समान जहाज पर वह भी अपने साथ लाए थे। यह कोई और पुस्तक नहीं थी, बल्कि कैम्ब्रिज में लिखित सिद्धांतवाद 'मदर इंडिया' थी। स्वदेश लौटने पर शिमला में अपने निवास के आरम्भ में, जहाँ उन्हें विधान सभा अधिवेशन के संबन्ध में रहना पड़ा था, ऐसा दिखाई पड़ता था कि उन्होंने इस अपवाद पुस्तक का उत्तर प्रकाशित करने का निणय किया। दरअसल, जब वह शिमला से लाहौर लौटे, तो ऐसा दिखाई पड़ता था कि उन्होंने पुस्तक लेखन का काफी कार्य समाप्त कर लिया था। परन्तु लाहौर में यह कार्य काफी धीमी गति से हुआ। उन्हें अधिक आराम न मिला। इसके अतिरिक्त वह चाहते थे कि मैं जल्दी में लिखी उनकी पाण्डुलिपि का सम्पादन करूँ और उस सही रूप में दूँ, किन्तु मैं स्वयं कोई गतिविधियाँ नहीं फसा हुआ था। इसलिए उन्होंने निणय किया कि हम दोनों कलकत्ता चलें और जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं हो जाय, अपने आपका कार्य कामों से अलग रखें। हम कलकत्ता चले गए और कोई एक मास के कठिन परिश्रम के बाद हमने 'अनहृषी इंडिया' तैयार कर ली। यह नाम लालाजी की उस अन्तिम पुस्तक के लिए चुना गया, जो प्रकाशक का दी गई। यह पुस्तक 1928 की वसंत ऋतु में ही प्रकाशित हो सकी।

विधान सभा का उनका कार्य कुछ अधिक ही समय ले लेता था, क्योंकि वह दो समितियों के सदस्य थे, एक मताधिकार की जाय के बारे में तथा दूसरी सड़का के बारे में और इन दोनों के संबन्ध में काफी यात्रा करना अनिवार्य था। सड़क समिति के कार्य के संबन्ध में उन्हें कई स्थानों की यात्रा करनी पड़ी जिनमें अड्यार भी शामिल थे, जहाँ उन्हें एनी बेसेट के साथ कई वर्षों के बाद फिर से मुलाकात का अवसर

अगरत के अन म सघनऊ म गवदनीय समिति न नहृ-रिपाट पर विचार किया धार मामुनी परिवता न गाथ उम र्वीकार कर लिया । तालाजी, डॉ० अमारी श्रीमती बसेट मालवीयजी श्री जिना आर विजय गणेश पारियर का समिति म शामिल कर लिया गया । तालाजी न अपन आपका पूर सन मन म अभियान म इतर दिया । तालाजी आर पण्डित मानीनाल के बीच गह्याग की मही तर्कीर कुछ उन पत्रा म प्राप्त की जा सकनी है, जा इन अधि म गना न एक दूसर का लिए थ

मिला। जब 4 अप्रैल को समिति का काय समाप्त हो गया, तो वह 6 अप्रैल को महात्मा गांधी से मिलने सावरमती चले गए, जो यूरोप यात्रा की तैयारी कर रहे थे। यह यात्रा रद्द करना पड़ी थी जिसका मुख्य कारण साइमन कमीशन था। लालाजी न महात्माजी के साथ कांग्रेस के लिए कताइ मतदाधिकार यहिंधार अभियान के बारे में विचार-विमर्श किया, जिसका उठोने पहले विरोध किया था। स्पष्ट तथ्य तो यह है कि वह जोरदार यहिंधार अभियान चलाना चाहते और वह मिल भालिका के विरुद्ध सुरक्षा व्यवस्था चाहते थे, ताकि वह राष्ट्रीय वस्तुओं की कीमत पर शापण न कर पाए। उन्होंने यह महसूस भी किया कि केवल मित्रों के उत्पादन से भारत कपड़ों की अपनी सारी जरूरत पूरी नहीं कर सकता। श्री ग्रैंग की पुस्तक की जिस मुख्य बात ने उन्हें प्रभावित किया वह भारत में "खैरोजगारी" के कारण होने वाली हानि के बारे में था और इसे घटाने के लिए कताई बुनाई में किस प्रकार दूर किया जा सकता था।

जून तक बारदोली में नगान न देन का अभियान शुरू कर दिया गया था। जब वह पुणे में थे, तो उन्होंने वल्लभ भाई पटेल का लिखा, "क्या वह उनकी कुछ महायता कर सकते हैं," परंतु सरदार न उन्हें उत्तर में लिखा

"वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई है और गावा में पहुंचना असम्भव हो गया है। जखती की बारबाई ठण्ण हो गई है और लोग कृषि संबंधी कार्यों में लग गए हैं। मेरे लिए आपको विभिन्न कम्पों तथा महत्वपूर्ण गावा में ले जाना कठिन होगा। त्रअसल, आप केवल बारदोली आश्रम तक ही आ सकते हैं, जहां आपके लिए मुझसे तथा इस आश्रम में काम करण वाले कुछ सहयोगियों में मिलना सम्भव होगा।"

इसलिए उन्होंने वहां जाने का निणय किया। चुनाव समिति की बात अब बीने दिनों की बात हो रह गई थी और लालाजी तथा पण्डित भोतीलाल विधवा नभा में मिलकर भतीपूण डंग से डकटठे काय कर रहे थे। परंतु जिस डंग में लालाजी ने नेहरू रिपाट का समर्थन किया और जिस विशाल हृदयता से उन्होंने सभी कार्यों के लिए पण्डित भोतीलाल का अपनी मर्मापित की ताकि यह काय पूरी तरह सफल हो, इसमें दोनों द्वारा मिलकर पूरे विश्राम के साथ काय करना सम्भव हो गया, जसमें श्री अधिव विश्राम के साथ जैसा उन्होंने 1921 या 1924 में किया था।

अगस्त के अंत में लखनऊ में संवदसीय समिति ने नहर रिपोर्ट पर विचार किया और भामूली परिवर्तना के साथ उस स्वीकार कर लिया। लालाजी, डॉ० अमारी श्रीमती वेसेंट, मालवीयजी, श्री जिना और विजय राघव चारियर को समिति में शामिल कर लिया गया। लालाजी ने अपने आपका पूरा तन-मन से अभियान में भाग दिया। लालाजी और पण्डित मातीलाल के बीच सहयोग की सही तस्वीर कुछ उन पत्रों से प्राप्त की जा सकती है जो इस अवधि में दाना ने एक दूसरे का लिखे थे।

64. अंतिम...

जब आप आक्रमण की सलाह देते हैं, तो यह मत कहो "जाओ", बल्कि कहो 'आओ'। श्रीमती ऐनी बेसट न लालाजी को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए बहुत ही उचित ढंग से चार्ल्स ट्रेडला के कथन का उद्धरण दिया।

साइमन कमीशन दूसरी बार 11 अक्टूबर 1928 को रात्रि के समय पहुंचा था और कार्यक्रम के अनुसार उसे 30 तारीख का लाहौर पहुंचना था। 27 और 28 तारीख का लालाजी ने इटावा में आगरा प्रांतीय हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता की। वह वहां नेहरू रिपार्ट के प्रस्तावों के पक्ष में हिंदू जनमत तयार करने के लिए गए थे। नेहरू योजना तथा साइमन कमीशन का बहिष्कार, वा बाते ही उस समय उनके ध्यान का केंद्र थीं। इटावा से वह घमाशीघ्र लाहौर पहुंचे, ताकि अपने शहर में साइमन कमीशन के पहुंचने के समय वहां हो और बहिष्कार के प्रदर्शनों में वह 'आओ' कह सकें और 'दू' से ही "जाओ" न कहें।

30 तारीख की प्रातः जब वह "साइमन वापस जाओ" के विशाल जनसमूह की अगुवाई कर रहे थे, तो उन्होंने कहा— "आओ"। यह एक विशाल जनसमूह था, जिसकी 'वापस जाओ' आवाज गूजती थी, फिर भी उनके दिनों की निराशा का उचित प्रतीक था वे उदास छोटी झड़ियाँ जिन्हें वे लिए हुए थे और सहारा रहे थे। काले झंडे महव्यक्त कर रहे थे कि वे नहीं चाहते थे कि जान साइमन तथा उनके साथी आए और वह 'वापस जाओ, साइमन' की भांग को और जोरदार बनाने के लिए उन झंडों का सहारा रहे थे। यह प्रदर्शन लाहौर में हुए सभी प्रदर्शनों में अधिक व्यवस्थित तथा नियंत्रित था। प्रदर्शन के आगे लालाजी की उपस्थिति न जोश और बड़ा दिया था, परंतु यह इस बात की गारण्टी भी थी कि प्रदर्शनकारी बिल्कुल अनुशासन में तथा शांत-मन होंगे। वह ब्राउनिंग के 'पाइड पार्लर' के समान भीड़ की अगुवाई कर सकते थे परन्तु उन्होंने सदा ही अनुभवी और जिम्मेदार सनापात के समान उनका नतुत्व किया।

अधिकारियों ने पहले से ही अपनी व्यवस्था की हुई थी। रात ही रात में उन्होंने रेलवे स्टेशन के पश्चिम की ओर सभी रास्ता पर काटेदार तारों की बाधा खड़ी कर दी और यह प्रबंध किया गया कि साइमन कमीशन पूर्वी सिरे के रास्तों से निकलेगा। जुल्स बाधाओं के पास रुक गया। वे जानते थे कि उनके जोरदार नार इतने ऊँचे अवश्य होंगे कि जब सर जान साइमन तथा उनके साथी रेलवे स्टेशन से बाहर खड़ी मोटरकारों में बैठेंगे, तो उनके कानों तक अवश्य पहुँचेंगे। उनका अभिवादन उन कानों तक अवश्य पहुँचेगा, जिनके लिए वह थे, चाहे काले बड़े दूर होने के कारण वह न तो देख पाए जो उन अवाञ्छनीय विदेशियों के लिए थे।

वही पर जुल्स को रुकना पड़ा और साइमन टीम के पहुँचने के संकेत की प्रतीक्षा करनी पड़ी। वहाँ रुककर वे अपना समय काट रहे थे। भीड़ को नियंत्रण में रखने बात जादूगर, अताउल्लाशाह बुखारी, जा लागा को आधी-आधी रात तक मंत्र-मुग्ध रख सकते थे, वहाँ उपस्थित थे। जनसमूह का व्यस्त रखने में उन्होंने बहुत सहायता की। काफी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी और यह समय भी प्रातः का नहीं था। धूप की तेजी बढ़ती गई। सालाजी छात के नीचे खड़े थे और इस बात से बहुत सतुष्ट थे कि भीड़ सयत थी चाहे काटेदार तारों की बाधा रह-रहकर उन्हें उत्तेजित कर रही थी।

परंतु कानून और व्यवस्था के अधिकारियों की मनास्थिति कुछ और ही थी। उन्होंने पुलिस कर्मचारियों को साठिया के साथ तैयार रखा हुआ था। केवल प्रदर्शनकारियों के लिए ही नहीं, पत्रकारों के प्रति भी उनका व्यवहार ऐसा था जैसे वे "बाई बेहूदगी" सहन करने को तैयार न हों। पुलिस के वरिष्ठ अधीक्षक ने उस आज्ञा-पत्र की प्रमाणिकता के बारे में पूछा, जिसे लेकर 'ट्रिब्यून' का प्रतिनिधि रेलवे स्टेशन पर जा पहुँचा था। उसने उसका अपमान किया—वाद में इस सबंध में वह एक मुकदमा हार गया और उसे काफी हजाना देना पड़ा।

इस बात की जांच करना ब्यव हागा कि अगल में किस कारण पुलिस उत्तेजित हुई और उसे प्रदर्शनकारियों पर धावा करने का आदेश दिया गया। केवल यही दिखाई देता था कि ऐसा करने के लिए उन्होंने पहले से ही

आक्रमण रूख गया और प्रदर्शन का अवसर समाप्त हो गया, मानसिक तौर से सघातित रूप से घायल, परन्तु देखने में जूलूस का वापसी के समय भी नतत्व किया।

नाहीर के लोग भाटी गेट के बाहर एक विशाल घायल शेर फिर दहाडा। साजपत राय न घटना अपने लोगो को गभीर उत्तेजना के बावजूद व्यवस्था का अपूर्व परिचय देने के लिए बधाई हुए अत्याचार का चिरस्मरणीय उत्तर दिया। कहा, अगले दिन उसे सारा शहर दोहरा वाक्य सारे भारत में गूजने लगा। आज सुनाई देती है, जिसकी भविष्यवाणी सही है। गई साठी की प्रत्येक घाट साम्राज्य के लिए।" और उन्होंने कहा कि यदि उनकी ने जिहें उन्होंने नियंत्रण में रखा हुआ है, तो जो कुछ भी वे करना पसंद करेंगे, होगा। मुलम्मेदार कमरो तथा विदवान नारा, चाहे जो भी हो, वह घायल शेर नहीं था। ऐसे भाषण तथा व्याख्यान इस दुबल तथा वेहदा गत लगेंगे।

॥ बहुत तीव्र हा चुकी थी—एक लाख आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे या के आदेश के लिए सैनिक सेनापति के लालाजी न एक दड निश्चय स्पष्ट निगय जारी रखो और किमी भी कष्ट या तैयार रहो।

तौर पर विवरण दिया गया। उसके उस का विरकुल दोष मुक्त करार तौर जाच का आदेश दिया गया। यह, आई० सी० एस० को यह जाच

निगम पर रखा था। यदि आपने लिए वाह 'कारण' अवश्य हो चाहिए ता उसके लिए ईसप की ममने और भेदिये वा कहानी आपका उपयुक्त कारण बतान के लिए काफी रहगी।

शांतिपूण जनसमूह पर लाठी चार्ज किया गया, विशेषकर उसके नेता पर जिसन जनसमूह वा उत्तेजना व बावजूद सयत और व्यवस्थित रखा। नेता पर लाठिया बरसती रहीं। मुख्य आक्रमणकारी पुलिस का बरिष्ठ अधीक्षक स्वाट स्वय था और दूसरा था उसका सहायक साइस। उस दिन अग्नेज की 'शानदार क्रूरता' का प्रमुख निशाना छात व नीचे वा नेता थे, नाटे बंद व बद्ध व्यक्ति, जिन्हो हाथ व पैर करन की छडी थी, जो निहत्थ जनसमूह की बमान कर रहे थे और जिसे उ हाने सयत तथा शांतिमय रखा, चाहे उनके अपने शरीर पर लाठियो की सीधी जोर पूर जोर की बपा हो रहीं थी।

देखन म वह बमजोर जोर छोटे लगते थे, परंतु उनकी आत्मा निर्भीक थी। उ होने पूरे साहम और पौरुष स लाठिया बेली। वह भाग नहीं, न ही पीछे हटे, न अपने स्थान से हिले। उ हान अपने लागो को प्रतिकूल बार करन के लिए नहीं कहा। उनके सहायको ने उहे घेरन और लाठिया के बार अपन ऊपर सहने का यत्न किया, फिर भी वह लाठिया के अधिकतर बार सहत रह। उनके अपने डाक्टरा म स एक—डॉक्टर गापीचंद भागव, जि हान उपस्थित गवाह के रूप मे नहीं, बल्कि स्वय अपने ऊपर सहकर लाठी के बार का चाट का असर देखा ग, जो उनके प्रमुख पर पड रही थी—उ हे आश्चर्य हा रहा था कि उनके प्रमुख ने इतना लाठिया किस प्रकार सहत की और वह घटनास्थल पर गिरे क्या नहीं।

उ हान वीरता से चाटे सहन की और अपन आक्रमणकारियो का घोर बे समान ललबारा। उत्तर मे लाठिया के और प्रहार हुए। उ हाने प्रहार करन वाले के पौरुष का फिर चुनाती दी और फिर उमम नाम पूछा। परन्तु लाठी वाले उस अमानवीय जंतु पर उस चुनाती का बार्द प्रभाव न पडा। उसने लाठी के और प्रहार किए। उटे नाम मालूम न ही पाया, कम से कम उस बर-मानवीय जंतु म। परंतु उनकी ललबार जनसमूह को अपन स्थान पर कायम रखन म सफल रही—जनसमूह गुस्ते स बिकरा हुआ, परंतु पूरी तरह नियंत्रित था।

जब आक्रमण रक गया और प्रदर्शन का अवसर समाप्त हो गया, क्षतविक्षत, मानसिक तौर से सघातित रूप से घायल, परन्तु देखने में निर्भीक, उन्होंने जुलूस का वापसी के समय भी नतृत्व किया।

शाम के समय लाहौर के लोग भाटी गेट के बाहर एक विशाल जनसभा में एकत्र हुए। घायल शेर फिर दहाटा। लाजपत राय ने घटना का पूरा विवरण दिया, अपने लोगों को गभीर उत्तेजना के वाक्य शानदार नियंत्रण तथा व्यवस्था का अपूर्व परिचय देने के लिए बधाई दी और उस दिन प्रातः हुए अत्याचार का बिस्मरणीय उत्तर दिया। एक वाक्य जो उन्होंने वहाँ कहा, अगले दिन उसे सारा शहर दोहरा रहा था और शीघ्र ही वह वाक्य सारे भारत में गूँजन लगा। आज भी उस आवाज की प्रतिध्वनि सुनाई देती है जिसकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। —“हम पर मारी गई लाठी की प्रत्येक चोट साम्राज्य के ताबूत में कील सिद्ध होगी।” और उन्होंने कहा कि यदि उनकी मृत्यु हो गई और उन युवकों ने जिन्हें उन्होंने नियंत्रण में रखा हुआ था, कोई और कारवाई अपनाई, तो जो कुछ भी वे करना पसंद करेंगे, उसे उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा। मुलम्मोदार कमरो तथा विद्वान सभाया में जोरदार भाषणाद्वारा, चाहे जो भी हो, वह घायल शेर की गरज के सामने कुछ भी नहीं था। ऐसे भाषण तथा व्याख्यान इस सलकार के मुकाबले बहुत ही दुबल तथा बेहया बात लगेंगे।

उनके श्रोताओं की प्रत्याशा बहुत तीव्र हो चुकी थी — एक लाख आयरिश लोग जो कैनिन के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे या शत्रु के दुग पर चढ़ाई करने के आदेश के लिए सैनिक सेनापति के आदेश पर तत्पर खड़े थे। सालाजी ने एक दृढ़ निश्चय स्पष्ट निणय की घोषणा की कि अपना सधप जारी रखा और किसी भी कष्ट या बलिदान का मामला करने के लिए तैयार रहो।

अगले दिन घटना का सरकारी तौर पर विवरण दिया गया। उसने बाद विभागीय जांच हुई, जिसने पुलिस का बिरकुल दोष मुक्त करार दिया। कोई दो मप्ताह पश्चात् एक और जांच का आदेश दिया गया। रावलपिंडी प्रभाग के कमिश्नर डी० जे० बायड, आई० सी० एस० को यह जांच

निगम पर रखा था। यदि आपका लिए वाद कारण" अत्यन्त ही चाहिए ता उसके लिए ईश्वर की ममता और भेदिये की कहानी आपका उपयुक्त कारण बतान के लिए काफी रहेगी।

शांतिपूर्ण जनसमूह पर लाठी चार्ज किया गया, विशेषकर उसके नेता पर जिन्होंने जनसमूह का उत्तेजना के वावजूद सतत धार व्यवस्थित रखा। नेता पर लाठिया बरसती रहीं। मुख्य आक्रमणकारी पुलिस का वरिष्ठ अधीक्षक स्वाट स्वयं था और दूसरा था उसका सहायक नाडस। उस दिन अग्नेज की "शानदार क्रूरता" का प्रमुख निशाना छात क नीचे का नेता थे, नाटे बदन के वृद्ध व्यक्ति, जिनके हाथ में सैर करने की छडी थी, जा निहत्थे जनसमूह की कमान बर रहे थे धार जिसे उ हान मयत तथा शानमय रखा, चाहे उनके अपन शरीर पर लाठिया की सीधी और पूरे जोर की बपा हो रही थी।

देखन मे वह कमजार और छोटे लगते थे, परन्तु उनकी आत्मा निर्भीक थी। उ होन पूर साहस और पीरुष म लाठिया झेली। वह भागे नहीं, न ही पीछे हटे, न अपन स्थान स हिये। उ हान अपने लोवा का प्रतिकूल वार करन के लिए नहा कहा। उनके सहायका न उहे घेरने और लाठिया के वार अपन उपर सहने का यत्न किया, फिर भी वह लाठियो के अधिकतर वार सहत रहे। उनके अपन डाक्टरा म स एक—डाक्टर गोपीचंद भागव, जिन्होंने उपस्थित गवाह के रूप मे नहीं, बल्कि स्वयं अपने ऊपर सहकर लाठी के वार की चाट का असर दिया था, जा उनके प्रमुख पर पड रही थी—उ हें आश्चर्य हो रहा था कि उनके प्रमुख न इतनी लाठिया किस प्रकार सहन की और वह घटनास्थल पर गिरे क्या नहीं।

उ होने वीरता से चाटें सहन की और अपन आक्रमणकारिया का शेर के समान चलवारा। उत्तर म लाठियो के और प्रहार हुए। उ हान प्रहार करने वाले के पारंग 7) फिर चुनौती दी आर फिर उमसे नाम पूछा। परन्तु लाठी वाल उस अमानवीय ज तु पर उस चुनौती का कोई प्रभाव न पडा। उसन लाठी के और प्रहार किए। उ ह नाम मालूम न हो पाया, कम से कम उस गैर मानवीय ज तु मे। परतु उनकी सलकार जनसमूह को अपने स्थान पर कायम रखने म सफल रही—जनसमूह गुस्से स बिकरा हुआ, परतु पूरी तरह नियंत्रित था।

जब आश्रमण रूक गया और प्रदर्शन का अवसर समाप्त हो गया, क्षतविक्षत, मानसिक तौर से सघातित रूप में घायल, परतु देयन में निर्भय, उन्होंने जुलूस का वापसी के समय भी नेतृत्व किया।

शाम के समय नाहौर के लोग भाटी गेट के बाहर एक विशाल जनसभा में एकत्र हुए। घायल शेर फिर दहाड़ा। लाजपत राय ने घटना का पूरा विवरण दिया, अपने लोगों को गभीर उत्तेजना के साथ जूट शानदार नियंत्रण तथा व्यवस्था का अपूर्व परिचय देने के लिए बधाई दी और उस दिन प्रातः हुए अत्याचार का चिरस्मरणीय उत्तर दिया। एक वाक्य जो उन्होंने कहा कहा, अगले दिन उसे सारा शहर दोहरा रहा था और शीघ्र ही वह वाक्य सारे भारत में गूँजने लगा। आज भी उस आवाज की प्रतिध्वनि सुनाई देती है जिसकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। —“हम पर भारी गई ताड़ी की प्रत्येक घाट साम्राज्य के ताबूत में कील सिद्ध होगी।” और उन्होंने कहा कि यदि उनकी मृत्यु हो गई और उन युवकों में, जिन्हें उन्होंने नियंत्रण में रखा हुआ था कोई और कारवाई अपनाई तो जो कुछ भी वे करना पसंद करेंगे, उसे उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा। मुसलमानों के कहर तथा विद्वान समाज में जोरदार भाषणों द्वारा, चाहे जो भी हो, वह घायल शेर की गरज के सामने कुछ भी नहीं था। ऐसे भाषण तथा व्याख्यान इस सलकार के मुकाबले बहुत ही दुबल तथा बेहया बात लगेंगी।

उनके श्रोताओं की प्रत्याशा बहुत तीव्र हो चुकी थी — एक लाख आयरिश लोग आ' कैबिनेट के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे या शत्रु के दुग पर चढ़ाई करने के आदेश के लिए सैनिक सेनापति के आदेश पर तत्पर खड़े थे। लालाजी ने एक दृढ़ निश्चय स्पष्ट निष्पत्ति की घोषणा की कि अपना सधप जारी रखा और किसी भी कष्ट या बलिदान का सामना करने के लिए तैयार रहो।

अगले दिन घटना का सरकारी तौर पर विवरण दिया गया। उसने बाद विभागीय जांच हुई, जिमने पुलिस को बिल्कुल दोष मुक्त करार दिया। कोई दो सप्ताह पश्चात् एक और जांच का आदेश दिया गया। रावलपिंडी प्रभाग के कमिश्नर डी० जे० बायड, आई० सी० एस० को यह जांच

करने तथा रिपोर्ट देने का आदेश दिया गया। लालाजी तथा अय मावजनिक नेताओं ने श्री वायड के सामने पेश होने से इन्कार कर दिया। लालाजी ने कुछ वैकल्पिक सुझाव दिये।

“मने पुलिस द्वारा 30 अक्टूबर को स्वयं पर तथा अय लोग पर प्रहार के बारे में सरकारी सूचना पडी है। यह हमेशा की तरह पूरी तरह एक तरफा दस्तावेज है और झूठ का पुलिन्दा है। मैं इस पर अभी कोई टिप्पणी नहीं करूंगा और श्री वायड की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करूंगा। सरकारी विवरण दिन-प्रतिदिन बदल रहा है और हम प्रतीक्षा करेंगे तथा देखेंगे कि श्री वायड की रिपोर्ट प्रकाशित होने तक और क्या परिवर्तन किए जाते हैं। हम इस जांच का स्वीकार नहीं करते और मेरा श्री वायड के सामने उपस्थित होकर कोई सबूत प्रमाण पेश करने का इरादा नहीं। मैं अपने सभी मित्रों को भी यही सलाह दूंगा। मैं स्पष्ट तौर से स्वीकार करता हूँ कि मुझे पता था सरकार से और अच्छे व्यवहार की आशा नहीं थी। हम विभागीय जांच नहीं चाहते और न ही हम अकेले आई० सी० एम० अधिकारी से जांच चाहते हैं। यदि जांच की जानी है तो यह एक आयोग द्वारा खुली जांच हो, जिसके दो सरकारी सदस्य तथा एक सदस्य 'यांत्रिक' अधिकारी हों। यदि पुलिस अधिकारियों का बयान झूठा सिद्ध हो, तो उनसे जिरह कराने की अनुमति होनी चाहिए। मैं पहले से ही मैं अपनी चुनौती दोहराने से अच्छा और कुछ नहीं कर सकता।”

विमान मण्डल में, जहां बहुत बितम्ब होने के कारण लालाजी की रुचि नहीं रही थी जांच करवाने के बारे में एक प्रस्ताव सरकार के मतदान से स्वीकार कर दिया गया।

मौके के गवाह का अपना विवरण लालाजी ने स्वयं उसी शाम मावजनिक सभा में दे दिया था। उनके दावतों ने प्रहार के बाद उनकी जांच की थी और देखा था कि छाती के बाईं ओर लम्बाई के रंग में नील के दो निशान अथवा खुसटें बने हुए थे। उन्होंने 29 घंटे के बाद उनके चित्र उतरवाए और वे चित्र समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए थे। उन्होंने अस्पष्ट आरोप लगाने पर ही मतोप नहीं किया, बल्कि साप्ताहिक

के आगामी संस्करण में उहाने अपन हस्ताक्षर से लेख लिखा, जिसका शीर्षक था "कानून के रक्षकों का व्यवहार कैसा है" और उहोन कुछ दोषी कमचारियों के नाम प्रकाशित किये और निर्भीक चुनौती दी।

"भारत में शासन चलाने वाली शक्तियाँ के नैतिक पतन के बारे में प्रमाण एतद्वय हो रहे हैं। मैंने ऐसे नैतिक पतन के ऐसे अकाट्य प्रमाण पहले कभी नहीं देखे, जिस प्रकार के प्रमाण मैंने मंगलवार का साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध कारवाई के समय देखे।"

घटनाओं का विवरण देते हुए उहोने बताया कि किस प्रकार जुलूम काटेदार तार की बाधा के निकट ठहर गया था, जो रेलवे आशुयागिक स्कूल की दीवार से लगभग पाँच फुट या इससे कुछ अधिक दूरी पर था और 'बाधा पार करने का कोई इरादा बिल्कुल ही नहीं था।' सरकारी विवरण में दिया गया यह वस्तुस्थिति घणित झूठ है कि मैंने या किसी अन्य व्यक्ति ने बाधा पार करने का यत्न किया। यह झूठ लाहौर के पुलिस अधीक्षक श्री स्काट तथा अन्य पुलिस अधिकारियों द्वारा मुझ पर तथा बाधा और दीवार के बीच के खाली स्थान के निकट हमारी ओर खड़े अन्य लोगों पर किए गए कायरतापूर्ण प्रहार का उचित बनाने के लिए गढ़ा गया है। स्काट तथा दा अन्य पुलिस अधिकारियों ने जिस ढंग का व्यवहार किया उससे उनके पूरे नैतिक पतन का पता चला है। उत्तेजना दिलाते वाली कोई कारवाई नहीं हुई तब भी इन लोगों का पारा चढ़ गया क्योंकि उनके विचार में यह हमारी बहुत बड़ी गुस्ताखी थी कि हम वहाँ आ पहुँचे थे और फिर उहाने हमारी इतनी अधिक पिटाई की, जबकि हम बिल्कुल निहत्थे थे—मेरे हाथ में सँभरने की छड़ी थी और अन्य लोगों के हाथों में ताँबे की छड़ी भी नहीं थी। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि भारत पर शासन करने वाले ब्रिटिश अधिकारी अपने चरित्र का नियंत्रण खो चुके हैं जिससे उन्होंने भारत का शासन प्राप्त किया था। कोई शालीनता नहीं थी और न ही विनम्रता का प्रदर्शन मैंने कई बार चित्लावर उन अधिकारियों के नाम पूछे, जिन्होंने मुझ पर प्रहार किए थे। पञ्जाब विधान परिषद के सदस्यों ने, जो मेरे पास खड़े थे, मजिस्ट्रेट को पकिया लिखकर भेजीं और डिप्टी

कमिश्नर को भी और मुझ पर प्रहार करने वाले आदमी का नाम पूछा, परन्तु कोई उत्तर नहीं दिया गया। मैंने अपन आग्रमणकारी म चित्लावर कहा कि यदि वह आदमी है, तो अपना नाम बताये, परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। घटना के कई मिनट पश्चान उन्हें कुछ प्रमाण एकत्र करने का विचार आया, ताकि यह दिया मवें कि भीड़ ने उन पर पत्थर फेंके थ। भीड़ पर यह आरोप बिल्टुन झूठा है और जिम व्यक्ति न भी यह तथाकथित मरकारी बयान लिया है या लिखवाया है। जा ट्रिब्यून म प्रपाशित हुआ है, मुझे यह कहने में सिक्त नहीं यह पणित और झूठा है और मैं उसे चुनौती देता ह कि मेर इम बयान के लिए मम पर मुपदमा चलाए। इम मरकारी बयान में कई बातें झूठी ह और इनका घटनाचक्र व्यक्त करता है कि मारी यातें जानकर गबी गई हैं, ताकि औचित्य दिवाया जा सके।”

असहयोग आंदालन के प्रारम्भिक दिना के शुरू की घटनाआ का धणन करत हुए उहान बताया कि पजाब के अधिबारिया म कानून के नान का अभाव, राजनीतिन सूझबूझ की कमी और ज्यादाती करने की प्रवृत्ति ह। सांलाजी ने अपन विवरण में आगे कहा

“बताया गया है कि पुलिस के वरिष्ठ अधीक्षक ने उस सरकारी आज्ञा पत्र की प्रमाणिकता पर सदह किया, जा ट्रिब्यून के प्रतिनिधि ने रेलवे प्लेटफाम पर प्रवेश के समय दिखाया था और रेलवे स्टेशन के इस आर उसी पुलिस अधिकारी ने एकत्र भीड़ से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए अयोग्यता का परिचय दिया। मैं महामहिम रवनर महादय से पूछ सकता ह कि क्या वह प्रात पर ऐसे अधिबारिया के सहयोग से शासन चलाना चाहते ह? यदि ऐसा है तो राज्य में राजनी-निनो का बोर्ड काम नहीं रह जाता क्याकि शांति के ये रक्षक खूनी सघप के लिए माग प्रशस्त कर देंग और सरकार इम काय म हमारी काफी सहायता करेगी यदि वह आन वाल व्रान्ति को राबने के लिए इम ढग के अधिबारियो पर निभर करगी।’

महानुभूति के अनक संदेशा को स्वीकार करते हुए समाचारपत्रा म प्रवाशित एक परे म उहाने कहा

“मैं बधाई तथा सहानुभूति के उन अनेक भदेशों से बहुत प्रभावित हुआ हूँ, जो मुझ पर हाल ही के पुलिस प्रहार की घटना के बारे में मुझे अनेक देशवासियों से मिले हैं। मैं इन संदेश भेजन वाला की स्नेहपूर्ण वृत्ता तथा महानुभूति का पर्याप्त मात्रा में धन्यवाद नहीं कर सकता। मेरा विचार है कि पुलिस का प्रहार कुल मिलाकर राष्ट्रीय अहित के स्थान पर हितकर रहा है। सबसे पहले मैं उन लोगों का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे ऊपर पड़ने वाली लाठियों अपने ऊपर सहन कीं, इनमें डाक्टर सत्यपाल, डाक्टर गोपीचन्द, रायचंदा हसराम और डाक्टर आलम तथा अजय राग शामिल हैं। मैं सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर के इस वक्तव्य को स्वीकार करता हूँ कि इन लाठियों का निशाना मैं ही था और यदि ये सज्जा अपने ऊपर चोटें सहन न करतें, तो ये ज़रूर अधिक गंभीर और गायब घातक ही होते।”

फिर भी वह दैनिक काय सामान्य तौर से करते रहे। ए० आई० सी० सी० की बैठक दिल्ली में 3 और 4 नवम्बर को ही रही थी और वह उस बैठक में शामिल हुए, वहाँ भाषण दिया और उसकी कायदाही में महत्वपूर्ण भाग लिया। परन्तु उन्होंने महसूस किया कि यह बर्बाद बहुत अधिक था। उन्हें बैठकें छोड़कर शीघ्रता से लाहौर जाना पड़ा। दरअसल उन्होंने एक सार्वजनिक बैठक एमि बेसेट के लिए छोड़ी जिसके लिए उनके नाम की घोषणा की गई थी। लाहौर लौटकर उन्होंने अपने समाचार पत्र (द पीपुल नवंबर) में लिखा

“अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में मेरे भाषण का समाचार उचित ढंग से नहीं दिया गया। मैं कुछ उत्तेजित अथवा धबराया हुआ था। लाहौर में पुलिस के प्रहार से मुझे जो चोटें आई थी वे अधिक गंभीर नहीं थी, परन्तु मेरा विचार है कि उनके बाद के प्रभाव के कारण मेरी शारीरिक अवस्था को सदमा पहुँचा है, जिसका प्रभाव मेरे स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। दिल्ली में ठहरने के दौरान सारा समय मैंने बहुत कमजोरी महसूस की और सामवार को बुखार के कारण मैं उस सार्वजनिक सभा में भाग न ले सका, जिसमें मेरे भाषण देने के बारे में घोषणा की गई थी। एक प्रकार के इन्फ्लुएन्जा के कारण मुझे बैठक छोड़नी पड़ी और उस रात के बाद से मैं अभी भी स्वस्थ नहीं हूँ।”

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के भाषण में उन्होंने जवाहरलाल नेहरू के साथ विवाद किया। अपनी आत्मकथा में नेहरू ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है

“साइमन कमीशन के समय पीटे जाने के थोड़े समय बाद लाला लाजपत राय दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में शामिल हुए। उनके शरीर पर अभी घोटो के निशान थे और उस मारपीट के बाद का प्रभाव अभी शेष था। स्वाधीनता का प्रश्न किसी न किसी प्रकार विचार के लिए आया। मुझे याद है मैंने कुछ भाषण दिया तथा भाषण इतना महत्वपूर्ण नहीं था और शायद मैं उसे भूल ही जाता, परंतु इसलिए नहीं भूल पाया क्योंकि लालाजी ने उसका उत्तर दिया था और उसके कुछ भागों की आलोचना की थी।

‘लाहौर लौटने के पश्चात्, लालाजी ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में मेरे भाषण के विषय का प्रश्न फिर उठाया और अपनी साप्ताहिक पत्रिका ‘द पीपुल’ में उस भाषण के विभिन्न पहलुओं से सम्बद्ध विषयों पर लेखों की एक शृंखला लिखनी आरम्भ कर दी। आगे के संस्करण में दूसरा लेख प्रकाशित होने से पूर्व उनका देहान्त हो गया। उनका पहला अपूर्ण लेख, जो शायद उनकी अन्तिम प्रकाशित रचना थी, मेरे लिए बहुत ही विषाद का विषय था।”

‘व्यावहारिक’ तौर पर उन्होंने जवाहरलाल नेहरू और मुभाष चंद्र बोस की बहुत प्रशंसा की थी और कहा था, “युवा लोगों में से केवल दो हैं जिनकी वफादारी, उच्च चरित्र और विद्वत्ता की मैं बड़ा करता हूँ।” परन्तु वह “पूण स्वराज” की बात से पूरी तरह सहमत नहीं थे, क्योंकि यह अभी सैद्धांतिक सी बात ही थी और दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि उनके विचार में कुछ लोग इसका लाभ केवल ‘नेहरू-ममोदे’ को विफल करने के लिए कर रहे थे या तो वह कुछ कारणों से इस ममोदे को अच्छा नहीं समझते थे या फिर इसलिए कि इसे मोतीलाल नेहरू ने बनाया था।

पहली नवंबर के ‘द पीपुल’ के संस्करण में लाला लाजपत राय ने धुनीती दी थी, ‘जो हमारे साथ नहीं, वह हमारे विरुद्ध है’ — यह नारा उठाने अपने विरोधियों द्वारा कोई दो दशक पूर्व कही बातों से लिया था।

इसकी उन्होंने अगले लेख में व्याख्या की थी, जो अप्रकाशित ही रहा—यह उनकी अतिम रचना थी, जो प्रायः उसी स्वर में लिखी गई थी जिस स्वर में उनका 30 अक्टूबर का भाषण था, जिसमें उन्होंने कहा था कि उनकी आत्मा युवा लोगों को उस ढंग से काय करने की अनुमति देगी जैसा वह अधिकृत अधिकृत समझेगी—और उनके काय के लिए उनका आशीर्वाद देगी।

* * *

"प्रत्येक लाठी प्रहार —साम्राज्य के ताबूत में कील सिद्ध हुई।" उसने प्रहार करने वाले को धायल किया, उन्हें नहीं। महान अध्यापक ने अपने अन्तिम और अमर भाषण में स्वयं यह कहा था

"कोई चीज मुझे धायल नहीं करेगी, न मैंल टूस को और न ही एनीटस—वह धायल कर ही नहीं सकते, क्योंकि एक बुरे व्यक्ति को अपने से अच्छे व्यक्ति को धायल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि शायद एनीटस उसे मार डाले या उसे निर्वासित कर दे या उसे नागरिक अधिकारों से वंचित कर दे और वह सोचे या अन्य लोग यह सोचें कि शायद वह उसे बहुत बड़ी क्षति पहुंचा रहा है। परन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ, क्योंकि जो कुछ वह कर रहा है, उसकी अन्यायपूर्ण ढंग से दूसरे के प्राण लेने की बुराई और भी बड़ी है। और अब, एंसेसनिवासियों (महान, शक्तिशाली तथा बुद्धिमान ब्रिटेनवासियों), मैं अपनी खातिर दलीलबाजी नहीं कर रहा, जिस प्रकार शायद आप सोचें, परन्तु आपकी खातिर क्योंकि यदि आप मेरी हत्या कर दें, तो आपको मेरा उत्तराधिकारी आसानी से नहीं मिलेगा।"

और फिर भी उन्होंने अपना काय जारी रखा, विशेषकर नेहरू-रिपोर्ट के बारे में उन्होंने बहुत ही अच्छे ढंग से काय किया। वह हिंदू नेताओं से मिलने में व्यस्त रहे, उन्हें अपने विचारों से सहमत करते रहे और उनकी आपत्तियाँ दूर करते रहे। उन्हें अपने नगरों को वापस भेजा, ताकि वे नेहरू-समझौते के पक्ष में समर्थन का प्रचार कर सकें और उसके लिए समाचार पत्रों तथा प्रचार मंच से प्रचारित करने की व्यवस्था करे। उन्होंने अपने आपको इस काय में व्यस्त रखा और अपने आपको वह आवश्यक

आराम न दिया, जो डाक्टरों के अनुसार उनके लिए अनिवाय था। चाटें अर भी उनका ध्यान आकर्षित करती थी। कभी कभी पीडा के रूप में और कभी मामूली बुखार की शयन में, परन्तु वने वह उनकी अधिक चर्चा नहीं करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि अपन मन में वह हर समय एक भारी गोज़ लिए फिरते थे और गहरे अपमान की भावना उनके अतमन को घुतरती रहती थी। उनके डाक्टर ने देखा कि यह कुछ अधिक धये हुए और पहले से अधिक जद नजर आ रहे थे, परन्तु आराम करने के लिए उनके आग्रहा का कोई अमर नहीं था।

दीवाली के अवसर पर उनके मन में प्राकृतिक प्रमत्तता के तार क्षनक्षान में कभी विलम्ब नहीं होता था। बच्चा के समान वह माम वक्तिया तथा मिठाइया में प्रसन्न होते। इसलिए उन्होंने अपने कुछ युवा मित्रों को 12 नवम्बर, दीवाली की शाम को, अपने साथ भाजन पर बुलाया। उस शाम का बहुत ही स्पष्ट चित्र उस दिन भोजन पर आमन्त्रित मित्रों में से एक* ने खींचा है

“परन्तु हुजूर में आज शाम व्यस्त हूँ।” वह मुझे उस शाम भाजन पर आने के वास्ते कह रहे थे। मैं उसी शाम एक पखवाड़े के लिए साहौर से बाहर जा रहा था। और अनेक छोटे मोटे काम करने गेप थे। मेरा इन्कार तथा चिन्ता दोनों व्यर्थ थे। उन्होंने एक हाथ मेरे कंधे पर रखा, पहले पुराने दिना के ढग से, जब मैं अभी केवल बच्चा था, और कहा “हा, मैं जानता हूँ। परन्तु आप आज शाम आ रहे हैं। शामद मैं बहुत शीघ्र जा रहा हूँ और काफी समय तक वापस न आऊँ।”

“हम कमरे में बैठे थे, फश पर पालथी मारकर। मौसम में कुछ सर्दी थी। वह दीवार का सहारा लिए बैठे थे। कमरे में हसीमजाक का माहौल था—उनकी हसी लडकी जैसे ठहाकी में, कमरे से बाहर तक जा रही थी। खाना बहुत स्वादिष्ट था और हमने पेट भर खाया—परन्तु किसी ने ध्यान न लिया कि उन्होंने क्या खाया। हम सदा उनकी बातें सुनते—और हमें आश्चर्य होता कि वह जा सलाह दन में मदा इतने बुद्धिमान है, हमी दिलगी में इतने बिलोनी कसे

*मन्मोहन मिश्र।

हा सक्त ह । कभी-कभार आवाजें मद्धिम हानी आर हम सब पर धाडी गमी छा जाती, क्याकि उनकी आवाज न निक्लती थी । हम पता था वह अभी भी कष्ट म ह और उनमें पीडा की एक धडकन थी । उन्हाने कभी शिवायत न थी । नहीं, उन दिना भी नहीं, जब वह "उा चाटा पर हसते हुए विन्तर म नटे हाते थे, जिन चाटा न उहे मरणासन्न कर दिया था ।"

वह शर दित थे, जैसा कि हम उहे जानत थे, जसा दुनिया उहे हमणा कहती थी ।"

*

*

*

'हम दूसर कमरे म चले गए थे, सान के कमर म । यह विन्तर म लेटे आराम कर रह थे । उनकी जकिन क्षीण हा चुकी थी । उन्हान हम अपनी मूल्यवान मुस्मान में बचित न किया । हम उनके साथ हसत रह । परन्तु उस शाम वह पहने स अधिक प्रसन्नचित्त थे । वह उस काय की बातें करत रहे थे, जा उनके सामन था । उन्हाने कहा कि राष्ट्रीय मामला म हम उस माड पर पडुच गए ह जहा से हमारे रास्त अलग हा जात ह । हम सही माग का चयन करना है । हमे केवल अतीत के अपन अनुभव पर ही निर्भर करना चाहिए । हमारे पाम और काई घाग भी नहीं । दूरदर्शिता, व्यायहारिक बुद्धि से उहान दृढ़ आधार पर निर्माण किया । उहान मयाग पर काई बात नहीं छोडी, वह हमारी कठिनाइया का जानत थे आर हम उनम सघप करन के लिए तयार करन के पग म थे । उनके अपन कष्ट तथा कठिनाइया तो बवल आरम्भ मात्र थी । परन्तु यह आत वाली बाता का पूव अनुभव था । उन्हाने मह विकुल स्पष्ट अनुभव किया, जस वह स्वय उन सघप म रह ह ।

/

*

*

हा, अब हम सभी कुछ मजीदा हा गए थ । म उनक विन्कुल निकट बैठा था, उनके विस्तर के पायन के निकट । शायद इसी लिए म मघम अधिक उलाम था । वह उदाम नहीं थे कुछ गभीर

थे। कुछ देर के लिए दूर ताकते, किसी चीज या पुरुषाभास करते, फिर बताते। यह उनकी सामान्य मन स्थिति नहीं थी। वह अपने स्वप्न अपने तक ही रखते थे। वह केवल उसी के बारे में बात करते थे, जो था— उसकी नहीं, जो होगा। परन्तु आज की रात यह भिन्न था। यही कारण है कि यह सभी कुछ मुझे स्मरण हो रहा है, जैसे कल की ही बात हा।

* * *

“हा, मैं उनके सबसे ज्यादा निकट बैठा था और उन्हें बिस्तार में लेटे हुए बातें करते सुन रहा था। उन्होंने कष्ट झेले थे, परन्तु शिकायत नहीं की थी। भला हम किस प्रकार जान सकते थे जिन्होंने कष्ट कम झेले हों और शिकायतें अधिक की हों। हमने सोचा यह यकान के कारण है। उन्होंने हमारी खातिर अपना सब कुछ दे दिया। मैं वहा से जाने के बारे में अपना फैसला नहीं कर सका। मैं नजरे उठाकर उनकी ओर देखा और जाने ही वाला था कि वह बोले—तनिक और रुक जाओ। तुम तो कभी-कभार ही मेरे पास आते हो। और सब तो सवा यही रहते है। वे मेरे साथ ही काम करते है।

“उनकी आवाज या शब्दों में कोई उलाहना न था—एक अपूर्ण इच्छा थी, एक आकांक्षा थी जो पूरी न हो पाई थी। हा, मैंने निराशाजनक स्थिति में अपने आपको गडबड स्थिति में डाल लिया था। मैं उनके लिये या उनके महान काय के लिए ध्येय था। परन्तु उन्होंने सदा ही मेरी बात का समसा था और उसके बारे में मेरी इच्छा के बिना कभी बात नहीं की थी। और क्या हमने अक्सर याजनाएँ नहीं बनाई थी और सोचा नहीं था कि जीवन के मेरे दृष्टिकोण में किस प्रकार निकलता जाए और स्वतंत्र, सादा और नेक बना जाए? परन्तु उनकी आवाज मुझे कभी ऐसी सुनाई नहीं दी थी, जिस प्रकार आज सुनाई दी थी—एक अपूर्ण इच्छा।

* * *

“हा, मैंने उन्हें निराश किया था, क्योंकि मेरी आशा से पहले ही अन्त आ गया था। दरअसल वह दूर देश की लम्बी यात्रा पर जा चके थे और मैं उनसे फिर कभी न मिल पाऊँगा।”

2, बोट स्ट्रीट म द्दग प्रकार की परिस्थिति थी ।

16 नवम्बर दापहर बाद, अपनी आदत के अनुसार वह आन यागा तथा मित्रा से बातें कर रहे थे । विशेषकर उहाने जी०एस० रापवन से कारोबारी बातचीत की, जिसने बीच मे वह जारदार ठहाके लगाते रहे । उन्हान रापवन का बताया था कि नहम्-रिपोट के समाचार-पत्रा म प्रचार के लिए उन्हें नियुक्त किया जा रहा है । इससे पूर्व उनके डाक्टर एन० आर० घमवीर उनसे मिलने आए थे और उहाने वहा एक मटा बिनाया था । सालाजी न उन्हें बताया था कि वह एक महत्वपूर्ण घंठक की अध्यक्षता करन से इन्कार कर रहे है, क्योंकि वह अपने आपको उनके योग्य नहीं समझते । उन्हाने डाक्टर ने यह भी कहा कि वह शाम को उन्हें घुमाने से चले । परन्तु डाक्टर के आगे मे पूर्ण ही उहाने सवारी पर जान की वजाय टहलने का इरादा कर लिया था और टहलने निकल गए थे और डाक्टर को अपने पीछे आन का सदेश दे गए थे । उन्हें झूठ पाने में असफल रहने के कारण डाक्टर रात के छाने के बाद फिर आये ।

परिवार म ब्रिज का खेल हा रहा था, शायद सालाजी का मन कोई गभीर काम करने की नहीं चाह रहा था । सालाजी भी खेल रहे थे और डाक्टर से जाच करवान के लिए उठ खडे हुए । डाक्टर ने देखा कि उनकी थकान ने सार शरीर म दद का रूप ले लिया था और इससे साथ ही उनकी छाती के दाईं आर पीडा भी आरम्भ हो गई थी और रीढ़ के निकट भी दद होने लगा था । हृदय गति अथवा नब्ज म कोई गडबड नहीं दिखाई दे रही थी । घडकन सामान्य थी और यही हालत तापमान की थी, यद्यपि सास की गति सामान्य से कुछ अधिक थी, जीभ कुछ घुरदरी थी, परन्तु न सिरदद था न प्यास । और दद भी बहुत मामूली था । यद्यपि सालाजी को सदेह था कि उन्हें शायद डेंगू ज्वर हो जाए, जा पहले नभी नहीं हुआ था । डाक्टर ने देखा कि थकान, जो पहले आराम या भालिश करने या खुली हवा म टहलने या गाडी म सैर करने से दूर हा जाती थी, तीस अक्तूबर के बाद से प्राय लगातार रहने लगी थी । निस्तदेह उन्हें मह सोचकर चिन्ता हुई थी । परन्तु उन्हें खतरे का कोई कारण नहीं दिखाई दिया । वह सालाजी को एस्प्रीन द देते हैं और 11 बजे शुभ रात्रि बहकर चले जाते हैं ।

17 नवंबर अभी ऊषाकाल ही है और लालाजी का नौकर उनकी रिहायश के कमरे से भागता हुआ पुराने बगले के उन कमरे में आता है, जहां लोक सेवा सघ के कार्यकर्ता रहते हैं। अभी उनमें से सभी बिस्तरों से नहीं निकले हैं। तुरंत ही सभी लालाजी के कमरे की ओर दौड़े। पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा परिवार के अन्य सदस्य पहले ही जड़वत वहां खड़े थे। डाक्टरों को टेलीफोन किया गया और उनकी प्रतीक्षा की जा रही है, यद्यपि स्पष्ट दिखाई देता है कि सब खेल खत्म हो चुका है। पूरी तरह फैली हुई शांति जैसे फुसफुमात हुए कह रही हो कि "अनियमित बुखार समाप्त हो गया है"।

डाक्टर आते हैं और इसी बात की घोषणा करते हैं।

बीती रात जब डाक्टर चला गया था, तो वह सो गए थे। परन्तु उन्हें शीघ्र नींद कभी कभी ही आती थी और उस रात उनका पौत्र, भारती उनकी डेढ़ बजे के बाद तक मालिश करता रहा। साढ़े छ बजे भारती ने मुना वह पीड़ा घट जाने की शिवायत कर रहे थे और तुरंत ही वह अमृत से जगाने उन के कमरे में चला गया। पौत्रे मात बजे से पूरा ही जब वह दोनों उनके बिस्तर के पाम खड़े हुए, तो पहले ही उनका अन्त हो चुका था।

असल कारण कौन बता सकता था आर मृत्यु भेद का कौन जान सकता है? परन्तु घमवीर, गापीचन्द्र आर अन्य डाक्टर मित्रों को, जो उनके सम्भव में थे, कोई संदेह नहीं था कि शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक चोटों ने, जो तीस अक्टूबर को पाश्विक प्रहारा से लगी थी, अपना भयानक प्रभाव डाला था।

कुछ ही पला में यह समाचार सारे शहर में फैल गया। पुराना तथा नया लाहौर (फ्रील के अन्दर का क्षेत्र तथा मिडिल लाइंस) अन्तिम दशना के लिए उमड़ पड़ा, ताकि वरिष्ठतम नागरिक का थडार्जलि अर्पित कर सकें। उपस्थित लोग में से सभी फौरन ही 17 नवंबर के दुष्घात को 30 अक्टूबर की घटना से जोड़ने हैं। सभी उस दिन रेलवे स्टेशन के बाहर हुई पाश्विक वता के बारे में सोचते हैं, जिसमें स्पष्ट तौर पर प्रमुख का चोटें मारी गई थी। परन्तु अप्रत्यक्ष तौर से उन चोटों में लोग ने मना को और भी गहरा और गभीर आघात पहुंचाया था। उदासी में वे इसके बारे में सोचते हैं — उस शाम की उन्हें शेर की अन्तिम गौरवपूर्ण दहाड़ स्मरण हो आती है — "प्रत्येक चोट ने साम्राज्य के ताबूत में नील ठानी है।"

दापहर बाद मनुष्या का मागर शाकाकुल रावी की आर वदता दिखाई देता है और उस नदी के किनारे पर घम त्रिया से उम अग्नि-पुत्र का आदिपिता का, अर्पित कर दता है ।

नगर के शोकाकुल लोग जलती हुई चिता के इव गिद खडे हैं, जिसकी लपट गगनचुम्बी लगती है, जिनका प्रतिबिम्ब रावी के शात जल म दिखाई देता ह । हम वहा मूक मूर्तिवत खडे उम जन ममूह का आर अस्त हा रह मूय का दख रह थे । मनुष्य, प्रकृति और आग की लपटे सभी एव ही रग म—शात, दीप्ति-पान, समृद्ध और शानदार ।

हा, यह शानदार मूर्त्त ही ता था ।

65. भरतवाक्य

यह कोई गीत नहीं, जो
 तीन म दना रहे,
 द्वार पर व्यक्त हो, मच से-न कहा जाए ।

(गालिय के फारसी गैर का साराश)

एक मास परचात

17 दिसम्बर मास के झुटपुटे में जिला पुलिस कार्यालय के नजदीक रिवास्वर से गाली चलने की आवाज आती है। बिप्ली की तेजी से गभीर समाचार फैलता है। रात के अघेर म लोग 30 अक्टूबर की स्मरणीय सभा को याद करते हैं और उस स्मरणीय वाक्य को “प्रत्येक घाट ने साम्राज्य के ताबूत में एक कील ठोकी है।” क्या यह बात उस व्यक्ति द्वारा भविष्यवाणी थी, जिसको अस्पष्ट रूप से निकट आ रहे अपन अन्त का अहसास हो गया था ? “और अब जब आपने मुझे दब द दिया है, मैं आपके लिए भविष्यवाणी करने को तैयार हूँ, क्योंकि मैं अब मरने ही वाला हूँ और मृत्यु की घड़ी में मनुष्य में भविष्यवाणी की शक्ति आ जाती है। और अब मैं आपके लिए, जिहो मुझे मृत्युदंड दिया है, भविष्यवाणी करता हूँ कि मेरी मृत्यु के पुरत बाद, आपका उससे भी कड़ी सजा मिलेगी, जो आपने मुझे दी है। क्योंकि उस समय अभियोक्ताआ की सख्या अब के मुकाबले बहुत अधिक होगी, अभियोक्ता को मने अब तक नियंत्रित रखा है और घूँक के सुबक है वह आपके साथ अधिक बेलिहाज हामें और आपका उन पर अधिक रोय आएगा यह भविष्यवाणी है जो मैं अपने जान से पूव करता हूँ ।”

टिप्पणीकार हमें आश्वासन दिलाते हैं कि यह भविष्यवाणी सुकरात की मृत्यु के शीघ्र बाद ही पूरी हो गई थी। उसके अभियोक्ताआ का सावजनिक तौर पर तिरस्कार और अपमान किया गया—एक के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए और दूसरा शरण लेने के लिए भाग गया और इसने अतिरिक्त ऐसे सको भयानक प्लेग ने बर्बाद कर दिया। लाजपत राम पर प्रहारकर्ता स्काट को, जो प्रमुख था, लाहौर से अपनी नौकरी से दूर किसी सुरक्षित स्थान पर

शरण लेने के लिए भोज दिया गया। उसने एक युवा सायी का सडका ले गाली से उडा दिया (शायद वह मांडम के स्थान पर स्वाट की ही जान सेना चाहते थे) और यह घटनास्थल पर ही मर गया। परन्तु य घटनाएँ और "एपेन्त की प्लेग", जा बर्द वष फँती रही, हमारे वणन के कायशेत्त से बाहर है। जवाहरनाम नेहरू ने उचित ही कहा

'भगत सिंह अपनी आतक की बारवाई स प्रसिद्ध नहीं हुए, बल्कि इसलिए हुए कि ऐमा दिव्याई दता था उहोन साजपत राय के सम्मान का और उनके द्वारा राष्ट्र के सम्मान को ऊचा उठाया था। वह प्रतीक बन गये हैं, बारवाई भुना दी गई, प्रतीक शेष रह गया और कुछ ही मास म पजाब के प्रत्येक शहर तथा गाव और शेष उत्तर भारत म कुछ कम, यह नाम गूजता रहा। उनने बारे म अनेक गीत बने और उहे जा श्र्याति प्राप्त हुई, वह आश्रयजनक थी।'

इन घटनाभा का इतिहासकारा का काय शेत रहने द। 1907 म साजपत राय का निर्वासन युवा लोणा द्वारा हिंसा पर उतारु हाने म निर्णायक था। 1928 मे लालाजी पर प्रहार, उसम निहित राष्ट्रीय अपमान और लालाजी की मृत्यु ने फिर वही भावना उत्तेजित की। उहाने युवा गुट को, जो पहले ही बेचैन था, इस निणय की आर बढ़ाया। 1907 की घटना और परिणाम का स्पष्ट तौर से लालाजी ने स्वय 'यग इंडिया' म वणन किया था 'एन इटरप्रेटेशन एंड ए हिस्ट्री' लेखक ने अपनी चर्चा (श्रीव इतिहासकार थ्यूसीडाइडस के समान) अन्य पुरुष के रूप में की और अपने सम्बध म घटनाओ की चर्चा बहुत निर्विकार ढग से की। 1928 की घटना का शायद उस योग्यता और कौशल से वणन न हो सके। परन्तु इतिहासकार चाहे कोई भी हाँ और इन घटनाभा का वणन वह चाहे किसी भी ढग से कर, उसकी रचना के पन्ना म यह भविष्यवाणी तथा इसके सत्य होने की गूज सुनाई देती रहेगी।

"क्याकि मैं कहता हू कि अब के मुकाबले उस समय अधिक अभियोक्ता होंगे, अभियोक्ता, जिनको मने अब तक नियंत्रित रखा है और चूकि वे युवा है, व आपके साथ अधिक बेलिहाज हागे यह भविष्यवाणी है, जो मैं अपने जाने से पूब करता हू।"

1907 में पत्राबंदी के अधिकारियों ने साजपत्र राय तथा अज्ञान सिंह का एक प्रकार में 'नियंत्रण अध्याय' बना लिया था—पत्राबंदी का एक ही अधिकारियों के अधीन नियंत्रित करना, दोनों का एक ही अधिकारियों में बंद किया, यन्त्रों के साथ या मुलाकात का अवसर नहीं था और दोनों का उभो भाग में वापस लाकर लाहौर में रखा करना। यह उर्हो अज्ञान सिंह के भर्ताओं ने भगतसिंह जिनका नाम 1928 में अखिल भारतीय पर जुड़ गया था और जो युवा पार्टी के 'आत्म पुत्र' का नाम था कि उर्हो अज्ञानसिंह प्रहार और क्रोध के अपमान का बदला एक मान के अन्दर लिया और स्वयं शहीद हुए और प्रहार मर्हो करने का नाम था शहीद का दर्जा दिया था।

युवा भगतसिंह का सम्पूर्ण पारिवारिक विरागन मिला थी—उनके पिता विरागन सिंह ने साजपत्र राय के निष्पत्ति में समाज सुधार का कार्य आरम्भ किया था जो जनता के प्रथम दल में 'भारत माता' दिना में उनका सबसे उदात्त राजनीतिक आन्दोलन मर्हो था। अधिक शक्तिशाली प्रभाव उनके चचा अजीत सिंह का था, उम्र चर्चा की जाग्रत की कहानियां, वह लड़का चचा के लम्बे निर्वासन के कारण उनमें मिल ही नहीं पाया था और जब वह बड़ा हुआ उस दृष्टता और उनके साथ सम्पर्क बनाना तो जग युवा भगत की चरम कामना बन गई थी। यह भावना राष्ट्रीय क्रांति लड़ाई के दिना में जो तीव्र हो गई, इस तीव्रता की प्रेरणा मुख्य तार पर भाई परमानन्द म मिला, जहां वातावरण भारत की स्वाधीनता प्राप्ति की आशा में गरम था। यहां उर्हो बूका विद्रोह के बारे में सुना और कुछ युवा क्रांतिकारियों के कारनामों के बारे में भी, जिनमें करतार सिंह मराठा भी थे, जिनके नाम लक्ष्य के लिए आभिलषित दिये थे।

साहस और दृढ़ता की अद्वितीय प्रतिभाओं का भगतसिंह में नतत्व का बहुत खूबिया थी और उन प्रभावों से, जिनकी हमने चर्चा की है, भगतसिंह के लिए शहीद की भूमिका प्रायः निश्चित थी। वर्तमान लखनऊ का उर्हो कई वर्ष देखने का अवसर मिला और वह उनके व्यक्तित्व के पूर्ण चित्र का स्मरण करने का यत्न करता है, तो उसे गालिब का फारसी और याद आता है, जो इस अध्याय के प्रारम्भ में दिया गया है।

सोगा के नता पर प्रहार और राष्ट्र के बहुत ही अधिक अपमान न उस अवधनीय/गोपनीय वान को फासी के तखने मे व्यक्त होन के लिए प्रात्साहन दिया, निणायक प्रेरणा, जिसन इम मामले को शिखर तक पहुचाया, वासती देवी (दशबध मी०आर० दाम नी विधवा) के चुनौतीपूण वनतव्य से मिली, जिन्होंने भारत की महिला" के रूप म भारतीय युवका का राष्ट्र के अपमान का ममुचित बदला लेन का आह्वान किया था ।

भारत के युवक ऐसी चुनौती की अनदखी बँस कर सकत थे । यह उत्तर भगतसिंह द्वारा अवश्य आना था । उ हाने थार-थार वासती देवी के वक्तव्य के धारे म सोचा । ऐसा लगता था कि वह चुनौती उनके पीछे पड गई हा । उ हाने बहुत महराई से माचा, आखिरकार उ हें प्रवास दिखाई दे गया—और उ होंने निश्चय कर लिया ।

यहुत जागरदार सरकारी व्यवस्था के बावजूद कि फासी के मामले का गुप्त रखा जाए, यह सदेश प्रकट तथा प्रसारित हो गया । "इकलाब जिंदाबाद" शायद केवन नारा ही रह जाता परतु फासी के तहत से भगतसिंह न इसे माकार कर दिया और अद्वितीय जक्ति के साथ फासी से हुआ यह प्रमारण एवदम भडक उठा ।

सामग्री स्रोत

लाजपत राय के अपने दस्तावेजा, आत्मकथा आदि सामग्री पर सक्षिप्त टिप्पणी के सम्बन्ध में अक्सर ही प्रश्न किया जाता है कि लाजपत राय के कामजात कहा देखे जा सकते हैं। लालाजी के निजी कामजात, जैसा कि एसी चिट्ठी-पत्री (और समाचार पत्रा की कतरनें) जो युद्धकाल तथा निर्वासन के समय उहोने सुरक्षित रखी थी, मुझे लाहौर में उस समय उपलब्ध थी, जब मैंने उनकी जीवनी लिखने का काम आरम्भ किया था। यह महत्वपूर्ण सामग्री अब पूरी तरह 1947 के विभाजन के कारण समाप्त सामग्री मानी जानी चाहिए। लालाजी के पत्र या तो अब प्रकाशित सामग्री में मिल सकते हैं या उन लोगों के कामजात में, जिनके साथ उनका पत्र व्यवहार होता था।

लालाजी डायरी नहीं रखते थे। यदि उहाने कभी डायरी रखी भी होगी, तो कुछ अवधि के लिए और वह भी उहोने सुरक्षित नहीं रखी।

आत्मकथात्मक रचनाएँ 'स्टोरी आफ़ माई डिपोर्टेशन' (उर्दू में मेरी जलावतनी की दास्तान) उनके माण्डले से लौटने के थोड़ा समय बाद प्रकाशित हुई थी। लालाजी के निर्वासन तथा माण्डले के किले में नजरबंदी के ज. उद्धारण इस पुस्तक में बिना आभारोक्ति के दिए गए हैं, वे इसी पुस्तक से हैं। निर्वासन में पूरा की कहानी उहोने 1914 में उर्दू में लिखी थी और यह विदेश में सुरक्षित रही। असहयोग आन्दोलन के बाद यूरोप की यात्रा के दौरान वह इस पाण्डुलिपि को अपने साथ ही लाए थे—परन्तु यह अप्रकाशित ही पड़ी रही। उनके मरणोपरांत यह उर्दू पुस्तक दैनिक 'द दे मातरम्' में प्रकाशित की गई और इसका अंग्रेजी रूप 'द पीनुल' में छपा (अप्रैल 1929 से आरम्भ होकर)। हिन्दी में इसे साप्ताहिक 'पंजाब केसरी' ने, जो लाहौर से प्रकाशित होता था, प्रकाशित किया। यह समाचार पत्र लोक मेवा सभ द्वारा प्रकाशित किया जाता था।

अपने अन्तिम दिना में लालाजी ने अपने युद्धकाल के निर्वासन के बारे में लिखना आरम्भ किया था। यह अंग्रेजी में उनके मरणोपरांत 'द पीनुल' में प्रकाशित हुए थे (1929-30)।

गदर पार्टी के जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आए, उनके बारे में स्मरणपत्र दिखाई देने वाले बागज साजपत राय ने जून 1919 में तैयार किये थे और मुहरबद लिफाफे में बंद करके 'यूयाव' के अपने मित्र तथा प्रकाशक श्री बी० ट्यून्यू० ह्यूब्ले को सौंप दिए। लालाजी के देहांत के कई वर्ष बाद श्री ह्यूब्ले ने यह बंद लिफाफा, जिसे किसी ने नहीं मांगा था, 'यूयाव पब्लिक लायब्रेरी' को सौंप दिया। अब यह भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार में है। स्पष्ट है कि यह कभी प्रकाशित करने के लिए नहीं था। लालाजी की 'जीवनी की पुस्तकी' में इसे पुनः प्रकाशित किया गया। इसे बी० सी० जोशी ने (साक सेवा सम के लिए) सम्पादित किया।

लालाजी के यात्रा विवरण निस्संदेह जीवन कथा के लिए दिलचस्प है। इनका आरम्भ लालाजी द्वारा 'पजावी' को लेख भेजने के सिलसिले के साथ शुरू हुआ, जब (1904 में) वह पहली बार यूरोप तथा अमरीका गए थे। (उन्होंने कुछ उर्दू पत्रिकाओं के लिए भी लिखा—विशेषकर कानपुर से प्रकाशित होने वाले साहित्यिक मासिक पत्र 'जमाने' के लिए। 'द पीपुल' के आरम्भ के बाद वह, जब भी विदेश गए, अपने साप्ताहिक को ऐसे पत्र भेजते रहते थे।

'द पीपुल' का साजपत राय अब अप्रैल 1929 में प्रकाशित हुआ था। लालाजी के 'आत्मकथात्मक' लेखों का सिलसिला इस अब के साथ आरम्भ हुआ। लालाजी के बागजा में कुछ चुनी हुई रचनाएँ भी इसमें प्रकाशित की गईं, इससे अतिरिक्त भारत तथा विदेश में लालाजी के मित्रों के स्मरणों का महत्वपूर्ण भाग तो था ही।

